कृष्णायन

विषय-सूची

दिव्य जन्म कर्महु मम होई,
जानत तत्त्व रूप जो कोई,
तजि तनु बहुरि जन्म नहि पावत,
तहि मोरिहि गति मम ढिग आवत।

गीता, अ० ४ श्लो० ९

प्राक्कथन

[लेखक—देशरत्न श्री डा० राजेन्द्रप्रसाद, एम० ए०, एम० एल०, डी लिट्०]

आर्य साहित्य मे, चाहे वह सस्कृत साहित्य हो अथवा प्रान्तीय भाषाओं का, जितनी चर्चा भगवान् रामचन्द्र और भगवान् कृष्णचन्द्र की मिलती है उतनी और किसी की नहीं—और न अन्य किसी विषय की। धार्मिक दृष्टि से भी अनेक अवतार माने गये हैं, पर किसी दूसरे अवतार को न तो वह महत्व मिला और न साहित्य में वह स्थान। भगवान् रामचन्द्र को पुरुषोत्तम के नाम से व्यक्त किया गया है, क्योंकि जन-साधारण के लिए उनका जीवन गृहस्थ जीवन का आदर्श रूप है। पिता का पुत्र के प्रति, पुत्र का माता और पिता के प्रति, भाई का भाई के प्रति, पति का पत्नी के प्रति आदर्श प्रेम, सत्य-निष्ठा, शौर्य, सौहार्द इत्यादि सभी गुण रामचन्द्र में मिलते हैं, और मनुष्य उस जीवन के ढाँचे में अपने जीवन को ढाल सकता है। भारतवर्ष की असख्य पीढ़ियों ने उसी ढाँचे में अपने जीवन को ढालने का प्रयत्न भी किया है। श्रीकृष्णचन्द्र को पूर्णावतार कहा गया है जिनमें सभी कलाओं का पूर्णरूपेण विकास हुआ है। यदि बचपन में ही उन्होंने गोपियों के प्रति अलौकिक, असाधारण प्रेम का परिचय दिया है तो उसी अवस्था में दूसरी ओर कस के भेजे हुए अनेकानेक असुरों का वध करके अलौकिक शक्ति और शौर्य का भी दृष्टान्त उपस्थित किया है। यदि गीता का ज्ञान रण-स्थल में उन्होंने अर्जुन को दिया है तो समय-समय पर अपनी चातुरी और सासारिक बुद्धिमत्ता से पाण्डवों को अर्थ-सकट और धर्म-सकट से भी बचाया है। यदि वह अनेक रानियों और पटरानियों के पति हुए हैं तो साथ ही स्थिरप्रज्ञ योगी भी रहे हैं। श्रीकृष्ण शास्त्र शस्त्रविद् हैं, कला-कोविद हैं, राजनीति विशारद हैं, योगी हैं, दार्शनिक हैं,—सभी एक साथ हैं और सभी में महान् हैं।

संस्कृत और हिन्दी साहित्य में श्रीरामचन्द्र का पूर्ण चरित एकत्र मिलता है। आदि कवि वाल्मीकि ने उस चरित्र का चित्रण रामायण महाकाव्य में आदि में ही कर दिया, और तत्पश्चात् अनेकानेक कवियों ने पूर्ण अथवा आंशिक रूप से उनका अनुसरण करके पूर्ण जीवन की कथा कह डाली। हिन्दी साहित्य में भी तुलसीदास ने यही किया और आज 'रामचरित मानस' घर-घर की सम्पत्ति, जीवन का मार्ग-दर्शन, शोक और वियोग में शांति-दायक और सर्वोपरि भक्ति-रस-वारिद बन रहा है। श्रीकृष्णचन्द्र की जीवन-कथा इस प्रकार एकत्र कहा नहीं मिलती। वह आंशिक रूप में संस्कृत साहित्य में बिखरी पड़ी है। महाभारत और श्रीमद्भागवत दो मुख्य ग्रंथ हैं जिनमें कृष्ण-चरित का अधिक से अधिक मसाला मिलता है। पर इन दोनों में भी उसके हर पहलू पर न तो समान प्रकाश ही डाला गया है और न दोनों एक उद्देश्य अथवा दृष्टि से लिखे ही गये हैं। जब संस्कृत साहित्य में ही इस पूर्णावतार की पूर्ण कथा एकत्र नहीं मिलती तो हिन्दी साहित्य में उसका अभाव आश्चर्य-जनक नहीं है। प्रस्तुत ग्रंथ में श्री द्वारकाप्रसाद मिश्रजी ने हिन्दी साहित्य की इस कमी को दूर करने का अत्यन्त विशद और सफल प्रयत्न किया है। कृष्णायन में जन्म से स्वर्गारोहण तक की सभी घटनाओं को क्रम-बद्ध करके दर्शाया गया है। यह स्तुत्य प्रयत्न प्रबन्धकाव्य द्वारा ही सफल हो सकता था, और मिश्रजी ने शील, सौन्दर्य और शक्ति तत्त्वों के चित्रण में असाधारण प्रतिभा प्रदर्शित की है। यदि बच्चे के प्रति माता और मातृ-सदृश गोपियों के मृदुल प्रेम व स्निग्ध स्पर्श का हम एक स्थान पर अनुभव कर सकते हैं तो दूसरे स्थान पर विकट, विकराल युद्ध का भयावह प्रदर्शन भी देखने को मिलता है। यदि वसंत का सुन्दर, सुखद और मनोरंजक वर्णन हमें मिलता है तो अत्यन्त भयानक जंगल से होकर भी हमें गुजरना पड़ता है। गीता के ज्ञान के साथ-साथ चार्वाक की चटपटी विलासपूर्ण और उस मिस से आधुनिक प्रचलित भौतिकवाद का भी दिग्दर्शन हो जाता है। पर सर्वोपरि कृष्णायन कृष्ण-चरित को आज के जीवन और आज की समस्याओं को सामने रखकर चित्रित करता है। उसमें हम पीड़ित प्रजा-द्वारा विप्लव का चित्र मिलता है। युद्ध से बचने के असफल प्रयत्न और बाध्य होकर धर्म संस्थापन के लिए उसमें प्रवृत्त होने की मजबूरी और उसके अन्त में जीवन की समस्याओं के हल करने में युद्ध की असफलता और उस मर्यादा का प्रमाण मिलता है। भगवद्भक्तों को श्रीकृष्णचन्द्र की अनेक झाँकियाँ मिलती हैं और देशभक्तों को अखण्ड भारत का दर्शन मिलता है। हमारी सभ्यता और संस्कृति में आस्था रखनेवालों को प्रोत्साहन मिलता है और कविता

प्रेमियों को रसास्वादन। यह ग्रंथ युग-प्रवर्त्तक होने और 'रामचरित मानस' की भाँति घर-घर में प्रवेश करने की शक्ति रखता है।

भाषा अवधी है और इसलिए 'मानस' की भाँति मीठी। संस्कृत का प्रयोग 'मानस' से अधिक मात्रा में है और यदि प्रचार में कमी होगी तो इसी कारण से। पर यदि विषय और काव्य-कला की अनिवार्य आवश्यकताओं पर विचार किया जाय तो शायद मानना पड़ेगा कि यह अनिवार्य था। सारे ग्रंथ में चौपाई, दोहा और सोरठा का ही प्रयोग किया गया है। तुलसीदास ने जहाँ-तहाँ अन्य छन्दों का भी प्रयोग किया है, और कहीं-कहीं दो दोहों के बीच में चौपाइयों की संख्या आठ से अधिक कर दी है। प्रस्तुत ग्रंथ में 'मानस' की भाँति सात काण्ड हैं, पर दोहों के बीच में आठ चौपाइयों से अधिक का शायद कहीं भी समावेश नहीं किया गया है। 'मानस' की भाँति ही यह ग्रंथ भी गाया जा सकता है, और मुझे आशा है कि गाँवों के चौपालों में शिक्षित और निरक्षर एक साथ मिलकर 'मानस' की तरह इसे भी गायेंगे। मिश्रजी की यह कृति अमर हो यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है।

जीरादेई, (सारन, बिहार प्रान्त)
विजयादशमी, २००२ वि०

भूमिका

लेखक—श्री डॉक्टर धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी·लिट्० (पेरिस)
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, प्रयाग विश्व-विद्यालय, (प्रयाग)
तथा
श्री डॉक्टर बाबूराम सक्सेना एम० ए०, डी·लिट्० (प्रयाग)
रीडर, संस्कृत-विभाग, प्रयाग विश्व-विद्यालय, (प्रयाग)

(१)

प्रस्तुत बृहद् ग्रंथ कृष्णायन में श्रीकृष्ण भगवान् के संपूर्ण चरित्र का चित्रण है। भारतीय गणना के अनुसार कृष्ण द्वापर युग में हुए। इनके ही समान पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी त्रेता युग में हुए थे। पर श्रीरामचन्द्रजी के अस्तित्व के बारे में कुछ मान्य मनीषियों को संदेह है और उनकी दृष्टि में रामायण आदि ग्रन्थों में वर्णित उनका चरित्र कवि-कल्पना मात्र की उपज है। श्रीकृष्ण-जी के विषय में ऐसी कोई बात किसी विद्वान् ने उठायी नहीं और अब भविष्य में भी उठने की आशंका नहीं। हर देश और हर युग में महापुरुषों का जन्म होता है। ये अपने अदम्य उत्साह और आदर्श चरित्र के द्वारा अत्याचार-पीड़ित प्रजा का उद्धार करके चले जाते हैं और कृतज्ञ प्रजाजन इनकी स्मृति को युग-युगान्तर तक अंतस्तल में रखकर स्वयं कृतकृत्य होते हैं तथा कविवृन्द उसे शब्दों में अंकित कर आगे की पीढ़ियों को आदर्श मार्ग का दर्शन कराया करते हैं। यह भगवती सरस्वती की कृपा से ही संभव होता है। आचार्य दण्डी ने कहा है—

इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम् ।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारान्न दीप्यते ॥
आदिराजयशोबिम्बमादर्शं प्राप्य वाङ्मयम् ।
तेषामसन्निधानेऽपि न स्वयं पश्य नश्यति ॥

—काव्यादर्श प्र० ४-५

इस प्रकार ये वीर महापुरुष चिरकाल तक जीवित रहते हैं। इनका भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है पर यशःशरीर भक्त जनता के हृदय में सर्वदा विद्यमान रहता है। अपने देश में आदि काल से ही वीरों के चरित्र का चित्रण होता आया है। कालातिपात से ये ही देव या अवतार की पदवी प्राप्त कर लेते हैं। वैदिक ऋषि-कवियों के स्तोत्रों में देवत्व की प्रशंसा भरी पड़ी है। इन्द्र ने वृत्र का वध करके जन का त्रास और भय दूर किया। फल-स्वरूप वह अमानुष देव हो गये और वृत्र भी अमानुषिक शक्तिवाला असुर बन गया। आज हम उनके चरित्र का चित्रण ऋग्वेद के सूक्तों में देखते हैं तो उनके ऐहिक अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर पाते। कवि की कल्पना और अपने वीर पुरुष में अलौकिक चमत्कार के आरोप करने की भक्त प्रजाजन की शक्ति, वस्तुस्थिति से इतना भिन्न चित्र स्थापित कर देती है कि उस चित्र में अतिरागरंजन देखनेवाला अन्वेषक जनता द्वारा नास्तिक समझा जाता है और दूसरी ओर उस चित्र के विवरण पर ही दृष्टि रखनेवाला विद्वान् उस चित्र के मूलरूप में ही अविश्वास कर बैठता है।

वैदिक सूक्तों केउपरान्त भारतीय वाङ्मय में इस विषय का चित्रण नाराशंसी गाथा के रूप में मिलता है। इन गाथाओं में नरों के चरित्र का वर्णन है। अनुमान है कि इनके और महाभारत और रामायण नाम के आख्यान काव्यों के बीच में वीरों के यशःशरीरों के बहुतेरे चित्र अपने देश में कवि-चित्रकारों ने खींचे होंगे जो अब मिलते नहीं। इनके न मिलने का एक कारण यह भी है कि इनमें से जो महत्वपूर्ण थे उनका महाभारत में समावेश हो गया और उनके पृथक् अस्तित्व की ज़रूरत न रही। महाभारत में इधर उधर की बहुत-सी सामग्री भरी पड़ी है। तभी तो अंतिम संकलयिता ने अधिकारपूर्वक घोषित कर दिया कि

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ।

इसीलिए उसमें नलोपाख्यान आदि कितनी ही बाहरी सामग्री दिखायी पड़ती है। पर ऐसा जान पड़ता है कि जिन विवरणों का समावेश महाभारत आदि बृहद् ग्रन्थों में भी न हो सका वे जनश्रुति में सम्प्रदाय रूप से चलते रहे और उनकी झलक बाद को बने हुए पुराणों में दिखायी जा सकी। रामायण

महाभारत से कई बातों में भिन्न है। उसमें अधिक एकसूत्रता है। रामायण में महाभारत की अपेक्षा कवि-प्रतिभा की उपज काव्य-चमत्कार भी कहीं अधिक है। इसीलिए जहाँ महाभारत आख्यान-मात्र रह गया, रामायण अपने देश का आदिकाव्य है और उसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि आदिकवि समझे जाते हैं। रामायण का विस्तार महाभारत से कम है, उसकी श्लोक संख्या २५००० के क़रीब है, महाभारत के वर्तमान संस्करण की १००००० के ऊपर। महाभारत में स्वयं उल्लेख मिलता है कि उसका पहला रूप २४००० श्लोकों का था। रामायण में भी भरती की गयी है, पर महाभारत की अपेक्षा बहुत कम। परवर्ती कवियों ने रामायण को ही सामने रखकर अपनी कवित्व शक्ति का प्रदर्शन किया है।

वाल्मीकीय रामायण को आदर्श मानकर रचे गये ग्रंथों को दो भागों में बाँट सकते हैं, एक चरित-काव्य, दूसरे महाकाव्य। प्रथम में चरित चित्रण पर अधिक ज़ोर मिलता है, दूसरे में कवित्व पर। कुमारसंभव, रघुवंश, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषध-चरित बहुमूल्य महत्वपूर्ण महाकाव्य हैं। पढ़िये और कविता समुद्र की हिलोरों में डूबिये और उतराइये। इनमें कथानक का उपयोग केवल साधन के रूप में ही किया गया है। चरित-काव्यों में कथानक ही प्रमुख चीज़ है, काव्य गौण। चरित प्रचारार्थ लिखे गये, महाकाव्य केवल रसास्वादन के लिए। संस्कृत भाषा में अश्वघोष-कृत बुद्ध-चरित आदि चरित काव्य समझा जाता है, कुमारसंभव आदि महाकाव्य। रघुवंश में समस्त सूर्यवंश के विस्तृत कथानक को उठाकर कालिदास ने सुश्लिष्ट सुन्दर चरित-काव्य रचने का उपक्रम किया। उनको कार्यगुरुता देखकर संदेह था—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥

कि वह भार सँभाल भी सकेंगे कि नहीं और चरितशैली को ऊपर उठा सकेंगे या नहीं। पर महाकवि की इस चरित-रचना में कथानक का भाग गौण रह गया और कवित्व का प्रमुख हो गया। वह अपनी कवित्व शक्ति को दबा कर कथानक को प्रमुख नहीं कर पाये। फलस्वरूप रघुवंश की गणना महाकाव्यों में करनी पड़ी, न कि चरितों में और इसी कारण महाकाव्य के प्रमुख लक्षण, एकनायकत्व, में भी उत्तरकालीन साहित्य शास्त्री विश्वनाथ को इस ग्रन्थ का समावेश करने के लिए महाकाव्य के नायक के बारे में इतना और जोड़ना पड़ा—

एकवंशभवा भूपा कुलजा बहवोऽपि वा॥

संस्कृत भाषा में महाकाव्य के आगे चरित शैली नहीं ठहर सकी। इसने आश्रय पाया प्राकृत और अपभ्रंश में। अर्धमागधी प्राकृत का विमलसूरि-कृत पउमचरिउ (पद्मचरित) प्राकृत भाषा का आदि चरितकाव्य समझा जाता है। इसमें राम के ही चरित का वर्णन जैन धर्म की दृष्टि से किया गया है। इस ग्रन्थ में रविसेन को इतना कम कवित्व दिखायी पड़ा कि उन्होंने इसी के आधार पर संस्कृत में पद्मचरित की रचना कर डाली। पर यह संस्कृत रचना भी महाकाव्य की पदवी को न पहुँच पायी। इसकी गणना पुराणच्छाया के कारण (जैन) पुराणों में की जाती है और इसका नाम पद्मपुराण भी पड़ गया है। इसके बाद बहुतेरे चरित बने। इनमें से कुमारपालचरित भविष्यदत्त कथा, यशोधरचरित, नागकुमारचरित, करकण्डुचरित प्रमुख हैं और प्रकाशित हो चुके हैं। प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में चरित लिखने की प्रथा वर्तमान आर्य भाषाओं (हिन्दी आदि) तथा द्राविड़ भाषाओं (तामिल आदि) के साहित्यिक रूप धारण कर लेने के उपरान्त भी जारी रही। आज से प्रायः ढाई सौ वर्ष पूर्व श्रीरि नामक ग्रन्थ की रचना हुई। इसकी हस्तलिखित प्रति मद्रास की गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लाइब्रेरी में मौजूद है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने जब रामचरितमानस की रचना की उस समय उनके ध्यान में यह संपूर्ण पूर्वकालीन चरित साहित्य रहा होगा। उन्होंने विषय की सामग्री "नानापुराणनिगमागम" से ली, विभागों के नाम रामायण से लिये और एक दोहा कहकर सात-आठ चौपाई और फिर एक दोहा और सात-आठ चौपाई यह क्रम अपभ्रंश के चरित-काव्यों से ग्रहण किया। मलिक मुहम्मद जायसी की पद्मावत में भी कुछ ऐसा ही क्रम है और वह भी चरित काव्य से ही लिया हुआ जान पड़ता है। फारसी में भी चरित-काव्य के ढंग की मसनवी नाम की रचनायें हैं पर उनमें यह क्रम नहीं दिखायी देता। जो कार्यभार महाकवि कालिदास ने रघुवंश का उपक्रम करते हुए उठाया था और निर्गुम कथानक और काव्य को बराबर न दे सके वही गोस्वामीजी ने सफलता पूर्वक निभा दिया है। मानस में कथानक और काव्य-रस समरूप दिखायी पड़ते हैं। यह उत्तम महाकाव्य भी है और उसमें श्री रामचन्द्रजी का संपूर्ण चरित्र का विशद चित्रण भी मौजूद है।

इधर दो ढाई हजार साल से भारतीय साहित्य को दो महापुरुषों, राम और कृष्ण, के चरित बराबर सामग्री देते रहे हैं। दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य दोनों का विषय इन्हीं दो के चरित का कोई न कोई अंश बना है। पतंजलि के महाभाष्य में कंसवध और बलिबंध इन दो दृश्य काव्यों का उल्लेख मिलता

है। प्रथम का संबंध कृष्ण के चरित से है। माघ का शिशुपालवध नाम का महाकाव्य भी कृष्णचरित का ही एक अंश है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण दिये जा सकते हैं।

(२)

आलोचनात्मक दृष्टि से विश्लेषण करने से कृष्ण-चरित के हमें तीन मुख्य रूप दिखलायी पड़ते हैं—

१. धर्म-संस्थापक कर्मयोगी कृष्ण,
२. गोपीजनवल्लभ और राधाकृष्ण तथा
३ बालगोपाल

ऐतिहासिक दृष्टि से कृष्णचरित्र का प्रथम रूप सबसे अधिक प्राचीन तथा कम से कम काल्पनिक है। यह रूप हमें महाभारत में सुरक्षित मिलता है। इन कृष्ण को हम आजकल के शब्दों में राजनीतिज्ञ तथा दार्शनिक कह सकते हैं—आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक कंस, जरासंध, जयद्रथ, दुर्योधन आदि का नाश करानेवाले तथा आर्य-धर्म के प्रतिनिधि पाण्डवों के पक्ष के समर्थक। धर्म-संस्थापन में अपने-पराये का भेद व्यर्थ है, यह तो आदर्श की रक्षा का प्रश्न है; फलत अर्जुन के मोह को दूर करने के लिये इन्होंने धर्मक्षेत्र-स्वरूप कुरुक्षेत्र में महाभारत के युद्ध के अवसर पर गीता का उपदेश दिया तथा अधर्म-पक्ष के समर्थक भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य जैसे गुरुजनों का वध कराने में भी इन्हें लेशमात्र संकोच नहीं हुआ। आसुरी प्रवृत्तियों को कुचलने के लिये आसुरी उपायों का अवलम्बन भी अनुचित नहीं बल्कि आवश्यक हो सकता है—आर्य-धर्म तो आर्यों के आपस के व्यवहार के लिए है—यह भी एक अत्यंत महत्व-पूर्ण संदेश इनके अनेक व्यवहारों और उपदेशों से स्पष्ट है। भविष्य के संबंध में भी आशा का संदेश यह सदा के लिये छोड़ गये हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

अर्थात् अधर्म के बहुत अधिक बढ़ जाने पर यह असंभव है कि किसी न किसी असाधारण आत्मा का अवतार उसे नष्ट करने के लिये न हो।

किन्तु इन कृष्ण को और इनके सच्चे संदेश को भारतवासियों ने भुला दिया। फलत आसुरी शक्तियों को कुचलने और आर्यधर्म की रक्षा करने की शक्ति देश ने खो दी। पर श्रीकृष्णजी को जनता कैसे भुला सकती थी? उनके चरित्र का एक नया पहलू धीरे-धीरे कवियों, दार्शनिक पण्डितों और धर्माचार्यों ने विकसित किया। यह थे-गोपीजन-वल्लभ कृष्ण। अंत में इन्होंने ही राधाकृष्ण

का रूप धारण कर लिया। कृष्णचरित का यह रूप हमें महाभारत में विशेष नहीं मिलता, परन्तु हरिवंशपुराण, श्रीमद्भागवत, गीतगोविन्द, विद्यापति पदावली और गौड़ीय वैष्णवों द्वारा प्रभावित साहित्य में निरंतर विकसित होता हुआ दिखलायी पड़ता है। हिन्दी का भक्ति तथा रीतिकाल का ब्रजभाषा साहित्य इस प्रवाह में पड़कर ऐसा बहा कि उसके पाँव ही पृथ्वीतल से उखड़ गये। गोपीकृष्ण और राधाकृष्ण की संयोग-वियोग-लीलाओं के सामने महाभारत के राजनीतिज्ञ श्रीकृष्ण के चरित्रों और उपदेशों की जनता को बिलकुल सुध न रही। यह अवश्य है कि कृष्णचरित्र के इस नये रूप ने कवियों के हृदयों में अनगिनती कोमल कल्पनाओं का सृजन किया, रसराज शृङ्गार की अन्तर्तम अनुभूतियों का चित्रण करने के लिए उन्हें प्रेरित किया तथा भाषा के परिमार्जन और अलंकार विधान द्वारा काव्य को भूषित करने में उन्होंने अपनी ओर से कुछ उठा न रक्खा। धर्माचार्यों ने गोपीकृष्ण और राधाकृष्ण की भावना को लेकर एक नया दर्शनशास्त्र ही बना डाला जो अनेक सम्प्रदायों में उपनिषदों के समान गंभीर और रहस्यमय माना जाने लगा और जिसकी ध्वनि को लेकर कवियों ने अपनी कल्पनाओं के लिए नये-नये मार्ग ढूँढ निकाले।

कृष्ण-चरित्र का चरम विकास हम वल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग में बालगोपाल के रूप में पाते हैं। इस भावना को काव्यमय रूप महाकवि सूरदास ने अपने बाललीला सम्बन्धी पदों में दिया है। यद्यपि इन चरित्रनायक के चरित्र का यह एक अति सीमित अंग था तथापि साथ में ही इसमें एक व्यापक नित्य आकर्षण भी सन्निहित था। इष्टदेव के सम्बन्ध में बालगोपाल की भावना भावुकता की दृष्टि से मनुष्य को ममता की साकार मूर्ति माता के कोमल हृदय के निकटतम पहुँचा देती है। असुर-संहारक कृष्ण राष्ट्र की कल्पना में एक बार फिर बालक हो गये और उनके साथ साथ जनता का हृदय भी इस कल्पना के लालन-पालन में व्यस्त हो गया। सूरसागर का बाललीला-सम्बन्धी अंश अपने सीमित क्षेत्र में बहुत ही ऊँचा और साथ ही बहुत ही गहरा है, किन्तु यह भी कहना पड़ेगा कि कृष्ण चरित का यह एक ऐसा रूप है जो ऐतिहासिकता से और वास्तविकता से हम इतनी दूर ले जाता है कि हम एक प्रकार से नये काव्यमय काल्पनिक जगत में विचरण करने लगते हैं।

कृष्णायन में श्रीकृष्णचन्द्रजी का संपूर्ण चरित्र हिन्दी जनता के सामने प्रबन्ध, काव्य के रूप में आ रहा है और फलस्वरूप इस महान् चरित्रनायक के आदर्श तथा संदेश का सच्चा स्वरूप सर्वसाधारण को सुलभ हो सकेगा। "जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी"—यद्यपि यह पंक्ति श्रीराम-

चन्द्रजी के विषय में कही गयी है तथापि वास्तव में यह श्रीकृष्णजी के चरित्र पर अधिक उपयुक्त है और अक्षरशः घटित होती है। अपने देश में किसी अन्य महापुरुष के चरित्र में इतने भिन्न (और परस्पर विरोधी से) रूप नहीं मिलते जितने इस चरित्र के। सैकड़ों वर्षों की बहुमुखी भावनाओं के विकास के फलस्वरूप कृष्णचरित्र राष्ट्र की बहुमूल्य रहस्यमयी संपत्ति हो गया है जो लाखों और करोड़ों व्यक्तियों के हृदयों को सैकड़ों और सहस्रों वर्षों से आनन्द-मग्न करती रही है तथा नयी-नयी स्फूर्ति देती रही है। ईश्वर की कृपा से आज भी यह ज्यों की त्यों अक्षुण्ण है। प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता ने कृष्ण-चरित के उपर्युक्त तीनों विकसित रूपों को संपूर्ण रूप से उपस्थित किया है। बाल-गोपाल और गोपीजनवल्लभ तथा राधाकृष्ण का स्वरूप सजीव भाषा में फिर हमारे सामने आ गया है। यह उचित ही है। राष्ट्र की सैकड़ों वर्षों की साधनाओं और प्रवृत्तियों को सहसा ठुकरा नहीं सकते, यह संभव ही नहीं। पर उसके साथ सुयोग्य ग्रन्थकार ने महाभारत तथा भगवद्गीता के धर्म-संस्थापक और कर्मयोग-प्रवर्तक कृष्ण को सच्चे वास्तविक रूप में हिन्दी भाषाभाषी जनता के सामने प्रथम बार उपस्थित किया है, और आर्य संस्कृति तथा धर्म की ओर प्रेरित किया है। वर्षों से कृष्णचरित्र के चारों ओर जो कुहरा सा एकत्रित हो गया था उसे दूर करके इस महान् चरित्रनायक के उज्ज्वल स्वरूप और तेज को अपने असली रूप में बीसवीं शताब्दी के इस महाकवि ने सफलतापूर्वक चित्रित किया है। यह इस युग और स्वदेश की वर्तमान परिस्थिति मे आवश्यक था। इस कृति द्वारा ग्रन्थकार ने एक राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति की है।

(३)

प्रस्तुत ग्रन्थ गोस्वामीजी के मानस को आदर्श मानकर लिखा गया है। यह भी सात काण्डों में विभाजित है, इसमें भी दोहा चौपाई का वही क्रम है, इसकी भी भाषा अवधी है। सामग्री के चयन, संनिवेश, विभिन्न काण्डों के भीतर का कथाभाग इत्यादि कई बातों से पाठक को तुरन्त मानस और उसके रचयिता की याद आ जाती है। भाषा आदि के बारे में विचार करने के पूर्व इन सात काण्डों के विषय पर एक दृष्टि डाल लेनी आवश्यक है।

प्रथम (अवतरण) काण्ड में श्रीकृष्णजी के पूर्व की मथुरा की परिस्थिति, असुरों के अत्याचार तथा उनके निवारण के लिए कृष्णजी के जन्म और उनकी बाल-लीलाओं तथा अलौकिक वीर कर्मों का प्रधान रूप से वर्णन है। ग्रन्थकार ने बाललीला संबंधी अंशो में सूरदास की तत्सम्बन्धी ललित भावनाओं और शब्दावली का जान-बूझ कर गुंफन किया है। आरंभ का अंश पढ़ते ही

पाठक को यह विश्वास हो जाता है कि चरितनायक उनके सुपरिचित भगवान् कृष्ण हैं, कोई भिन्न व्यक्ति नहीं। सूरदास का वर्णन एक ही वस्तु को बार-बार तरह-तरह से चित्रित करने के कारण कुछ पुनरावृत्ति-युक्त और बिखरा-सा है, कृष्णायन में प्रबन्धकाव्य के अनुरूप यह संगठित मिलता है। कंस के भेजे हुए अनेक असुरों का वध कवि ने विस्तार से दिखाया है। उसे कृष्ण के चरित्र के इस पहलू को आगे चलकर विशेष रूप से विकसित करना है, इसलिए स्वाभाविक ही था कि इस पहलू पर ज़ोर दिया जाता। गोपी और कृष्ण के प्रेम को अक्षुण्ण रखकर भी उसकी कलुषता दूर कर दी है। गोपी-चीरहरण में समाजसुधारक कृष्ण का चित्र है, न कि व्यसनी विषयासक्त कृष्ण का, यह भी लेखक ने स्पष्ट कर दिया है। राधा को अवश्य ही लेखक ने कृष्ण की कान्ता कामिनी माना है और भक्ति का अवतार। राधा को प्रथम बार देखने पर कवि ने यह कहकर—

जनु कछु क्षीर-सिन्धु सुधि आयी,
चौंकक मोहित भये कन्हाई।

श्रीकृष्ण के मन में क्षीरसागर की यह पूर्व स्मृति जाग्रत कर राधा को परकीया होने से बचाया है। उनका विवाह कहीं नहीं हुआ (राधा का किसी से भी परिणय नहीं हुआ) तब भी दोनों की रासलीला और प्रेमलीला प्रति रात्रि वृन्दावन और गोकुल में होती है, ऐसा मान कवि की प्रतिभा को हुआ है। मथुराकाण्ड में जब ब्रज से लौटकर उद्धव कृष्ण के पास पहुँचते हैं तब भी भगवान् कहते हैं—

एकहि मैं अरु राधिका द्वैत भाव भव-भ्रांति,
भजजन समुझि रहस्य यह, लहहिं पुनि सुख शांति।

प्रथम काण्ड को छोड़कर गोपीजनवल्लभ के रूप में और राधा के प्रेमी के रूप में कृष्ण के चरित्र की झलक केवल एकबार फिर आगे चलकर गीताकाण्ड में कुरुक्षेत्र के मेले में मिलती है। इस प्रकार इस अंश को अनावश्यक और वाग्जालिक विस्तार से दूर रखने की इस ग्रन्थ में चेष्टा की गयी है।

द्वितीय (मथुरा) काण्ड का मुख्य विषय कंस-वध और वसुदेव देवकी तथा अन्य यदुवंशियों का कंस आदि असुरों से उद्धार है। परम्परागत कथानक तथा वातावरण में लेखक ने जहाँ-तहाँ छोटे-मोटे ऐसे परिवर्तन किए हैं जिन्हें जनता अनजाने ही ग्रहण कर सके और जो आधुनिक परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। श्रीकृष्ण के मथुरा में प्रवेश करते समय मथुरावासी जनता के हार्दिक भावों और व्यक्त तथा अव्यक्त कार्यों के वर्णन से आधुनिक राजनीतिक आन्दोलनों के समय की अपने नगरों की जनता की मनोवृत्ति

की सहज ही याद आ जाती है। और अत्याचार-पीड़ित निरस्त्र निःशस्त्र प्रजा-जन ऐसे अवसरों पर किस प्रकार आत्मपरित्राण और अत्याचार-निवारण में सहायक हो सकते हैं तथा कैसे बल प्राप्त कर सकते हैं, इस सबका भी यथेष्ट निर्देश कवि ने कर दिया है। कंस के वध के पश्चात् ही बंदीगृह टूटने की घटना फ्रान्स की क्रान्ति के समय 'बास्तील' के पतन से मिलती-जुलती है। कवि के ये शब्द मार्मिक हैं—

घरि पद राजद्रोह-पथ माहीं,
सकत लौटि पाछे कोउ नाहीं।

भारत में चक्रवर्ती राज्य स्थापित करने के लिए सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की आवश्यकता है, इस भावना को भी यथेष्ट रूप में कवि ने सामने खड़ा किया है। कृष्ण की अवन्ति-यात्रा के जनपदों के स्थलों, वनों और पर्वतों के बहुतेरे सुन्दर चित्र उपस्थित किये गये हैं जो पढ़ते ही बनते हैं। उज्जैन में सान्दीपनि गुरु के पास गुरुकुल में कृष्ण और बलराम के अध्ययन के वर्णन के सिलसिले में प्राचीन गुरु-शिष्य-सम्बन्ध और ब्रह्मचर्य के आदर्शों का अच्छा वर्णन है। राजनीतिक सिद्धान्तों की चर्चा तो बराबर मिलती है। गुरु-दक्षिणा रूप कृष्ण ने गुरुपत्नी की इस इच्छा की पूर्ति, कि उसका एकलौता पुत्र जो कि कभी समुद्र-स्नान के समय लुप्त हो गया था लौटा लाया जाय, अपने अलौकिक चमत्कार से की है। इसी प्रकार का एक चमत्कार आगे चलकर आरोहणकाण्ड में मृत शिशु परीक्षित को फिर योग द्वारा जिला कर किया है।

तृतीय (द्वारका) काण्ड में कृष्ण और यदुवंशियों का मथुरा छोड़कर द्वारका चले जाने और वहाँ असुरों के त्रास से बचकर धन, जन, शक्ति इकट्ठी करके भारतवर्ष से असुरों के आतंक को हटाकर फिर आर्य-धर्म, संस्कृति और साम्राज्य के स्थापित करने के उद्योग का विशद वर्णन है। बम्बई को आधुनिक 'भारत का द्वार' समझे जाने की भावना को कवि ने द्वारका पर घटित किया है और द्वारका को भारत का द्वार मानकर उसकी अत्यावश्यक रक्षा पर ज़ोर दिया है। कराँची और बम्बई की भाँति द्वारका को विदेशी यातायात का केन्द्र भी बताकर कवि ने द्वारका को वैभवशाली नगरी माना है। चारों ओर समुद्र से घिरी हुई द्वारका की प्राकृतिक और कृत्रिम सुन्दरता का वर्णन बड़ा सजीव है। समुद्र के विविध दृश्यों का वर्णन कवि उसी आत्म-विश्वास से करता है जिससे कि स्थल का। समुद्र के अन्दर के दृश्यों की अत्यंत सुन्दर और वैज्ञानिक कल्पना का समावेश लेखक ने कौशल से पिछले काण्ड में ही कर दिया है। युवा कृष्ण के रुक्मिणी-परिणय, जाम्बवन्त कन्या का परिणय,

स्यमंतक मणि की कथा, कालिन्दी-कृष्ण-विवाह, सुभद्रा-हरण आदि कितने ही कथानक इस काण्ड में माला में मोतियों की भाँति पिरोये मिलते हैं। क्षत्रियों के विवाह में कन्या की योग्यता का एक मुख्य अंश सहाय प्राप्ति और अरि-मर्दन भी होता है, यह भी कवि ने कई स्थलों पर स्पष्ट किया है। आगे चलकर महाभारत के दृश्य दिखाने हैं, इसलिए कौरव वंश में पाण्डु-पुत्रों की स्थिति आदि का भी आवश्यक कथानक द्वारकाकाण्ड से ही कवि ने आरंभ कर दिया है।

चतुर्थ (पूजा) काण्ड का कथानक विशेष रूप से पाण्डवों के सम्बन्ध का है। युधिष्ठिर नायक हैं, पर कृष्णायन के रचयिता ने अपने प्रबन्धकाव्य के अनुकूल महानायक कृष्ण का कथानक इस काण्ड में तथा आगे के काण्डों में भी अल्प होने पर भी सर्वोपरि रक्खा है। इस विषय में कवि की सफलता देखकर साधुवाद किये बिना पाठक नहीं रह सकता। चतुर्थ काण्ड का नाम पूजाकाण्ड इस कारण रक्खा गया है कि राजसूय यज्ञ में सर्व-पूज्य होने के कारण श्रीकृष्ण की प्रथम पूजा की गयी है। चेदिराज शिशुपाल के आपत्ति करने पर कृष्ण ने उसका वध करके असुर-संघ के एक प्रबल समर्थक को मिटा दिया। जिस कौशल से जरासंध वध किया गया वह भी प्रशंसनीय है। राजसूय यज्ञ कराकर कृष्ण भगवान् के द्वारका लौट आने पर दुर्योधन के कुटिल परामर्श से प्रेरित होकर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को द्यूत क्रीड़ा के लिए बुलाया, उन्होंने पितृव्य की आज्ञा शिरोधार्य कर इस व्यसन में भाग लिया और शकुनि की कुटिलता से सर्वस्व गँवाकर वन की ओर प्रस्थान किया—यह सब कथानक भी इसी काण्ड में आ गया है। द्रौपदी-चीर हरण और उसकी लाज की रक्षा का वर्णन बहुत चित्ताकर्षक है।

पंचम (गीता) काण्ड का आरंभ दुर्योधन और अर्जुन दोनों के द्वारा भगवान् कृष्ण से युद्ध में मदद करने की प्रार्थना से होता है। कृष्ण दूत बन कर हस्तिनापुर जाते हैं और उनकी इस अभिलाषा और उद्योग पर कि यह युद्ध यथासंभव न हो बार-बार ज़ोर दिया गया है। इस सम्बन्ध में वर्तमान भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में गाँधीजी के नेतृत्व और तत्कालीन कृष्ण के नेतृत्व में विशेष समता दिखायी पड़ती है। दुर्योधन के हठ के कारण समझौता नहीं हो पाता और दोनों पक्ष युद्ध करके ही निर्णय करने का निश्चय करते हैं। इस बीच में कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण का मेला होने का समय आ जाता है और कृष्ण की अनुमति से दोनों पक्ष ऋषि-मुनियों के इस कथन का आदर करते हैं कि मेला होने के उपरान्त युद्ध छिड़े। इसके द्वारा कृष्णायन के रचयिता ने एक उच्च आदर्श को कार्यरूप में परिणत करने का मार्ग सुझाया है और

इशारे से अभी कुछ साल पूर्व की उस जघन्य स्थिति की ओर हमारा ध्यान खींचा है जिसमे क्रिसमस ऐसे सर्वमान्य त्योहार पर भी जर्मनी और इंग्लैण्ड अपनी लड़ाई न रोक सके थे। कुरुक्षेत्र के मेले के बाद ही युद्ध करने की चुनौती दुर्योधन की ओर से आती है और दोनों पक्ष युद्ध-क्षेत्र मे आ डटते हैं। अर्जुन को मोह हो जाता है और भगवान् कृष्ण गीता का उपदेश करते हैं। गीताकाण्ड का अधिकांश उत्तर भाग भगवद्गीता के सरल, सुबोध तथा सपूर्ण अनुवाद के रूप मे है। अनुवाद दोहा नबर १०७ से प्रारभ होता है, और गीता के प्रत्येक अध्याय के अत का सकेत सोरठे के प्रयोग से किया गया है। इस अमूल्य ग्रन्थरत्न के सैकड़ों भाष्यों मे से लोकमान्य तिलक के भाष्य की छाया लेखक के अनुवाद में स्पष्ट है।

षष्ठ (जय) काण्ड में महाभारत के सपूर्ण युद्ध का वर्णन है। आरभ के पूर्व युधिष्ठिर का भीष्म के पास जाकर आशीर्वाद पाने का वर्णन अद्भुत और हृदयद्रावक है। कर्ण के जन्म के सम्बन्ध में लेखक ने अत तक रहस्य को कहीं प्रकट नहीं किया, पर साथ-ही-साथ उनको पाडु का ही कुन्ती से उत्पन्न कानीन पुत्र माना है। कुन्ती की लज्जा का कारण कर्ण का कानीन होना था, न कि सूर्य का पुत्र होना। द्रौपदी के पचपतित्व को लेखक ने पूर्व जन्म की घटना का प्रभाव माना है। इस प्रकार महाभारत मे सदाचार के विरुद्ध जो कुछ जुड़ा मिलता है, उसका निराकरण करने का प्रयत्न ग्रन्थकार ने किया है। नायकों के चरित्र पर जो धब्बे थे उनको भी यथासभव लेखक ने या तो अन्यथा रूप दे दिया है, या बिल्कुल उड़ा दिया है। इस प्रकार अश्वत्थामा (हाथी) के मरण की सूचना विषयक युधिष्ठिर की सत्यवादिता के विरुद्ध जो आरोप किया जाता है उसका कृष्णायन में कहीं उल्लेख नहीं है। जय-काण्ड का सारा कथानक कौरवों के सम्बन्ध का है, पर इस ग्रन्थ के रचयिता ने उसको ऐसा रूप दिया है कि महानायक कृष्ण का ही प्रभुत्व और प्रमुखत्व सब कहीं स्पष्ट हो रहता है। यह प्रबन्ध काव्य की रचना के सर्वथा अनुकूल है।

सप्तम (आरोहण) काण्ड का आरम्भ युधिष्ठिर के विजयी होकर पुरी में प्रवेश करने से होता है। चार्वाक युधिष्ठिर के मन में आत्मग्लानि और वैराग्य पैदा कर देता है और कृष्ण भगवान् को उनके मन को स्थिर और दृढ करने का श्रम करना पड़ता है। पर विजय में हर्ष और उल्लास नहीं आ पाये और उदासीनता सभी ओर जड़ पकड़ती जाती है। इसी काण्ड मे भीष्म का युधिष्ठिर को राजनीति का उपदेश है जो महाभारत से लिया गया है। पर दोनों में महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि जहाँ महाभारत में पुरानी वर्णन-पद्धति के अनु-

सार एक प्रकरण में उच्च कोटि की राजनीति है तो दूसरे में गोदान प्रशंसा आदि, वहाँ कृष्णायन में केवल राजनीति से सम्बन्ध रखनेवाले बिखरे हुए ग्रंथों को क्रम देकर वर्णन किया गया है। यह सामयिक आवश्यकताओं के सर्वथा अनुकूल हुआ है। कृष्णजी हस्तिनापुर से द्वारका पहुँचते हैं और वहाँ की विलासप्रियता और गृहकलह देखकर स्वर्गारोहण का निश्चय करते हैं। अंत में युधिष्ठिर के अश्वमेध का वर्णन भी आता है और इससे लौटकर कृष्ण, नारद की इच्छा के अनुकूल भौतिक शरीर के बारे में दुर्वासा के आशीर्वाद की रक्षा करने के लिए वन में जाकर विश्राम करते हैं और वहीं एक व्याध के तीर से उनके पाँव में चोट लगती है। इसी समय मैत्रेय ऋषि उपस्थित होते हैं। भागवत पुराण में भी मैत्रेय की उपस्थिति का उल्लेख है, पर कृष्णायन में कृष्ण के मुख से ऋषि को उपदेश कराया गया है। इस उपदेश में भारतीय दार्शनिक तत्वों का सार ललित सुबोध भाषा और समयानुकूल भावों में मिलता है। यह भाग कृष्णायन में बड़े महत्व का है। मैत्रेय को उपदेश करते करते कृष्ण योग द्वारा सदा के लिए आँखें मूँद लेते हैं।

(४)

कृष्णायन की भाषा अवधी है। इधर प्रायः सौ वर्ष से खड़ी बोली ने पूर्वकालीन साहित्यिक ब्रज और अवधी को विस्मृति और अवहेलना के गर्त में डाल रक्खा है। अवधी का साहित्यिक क्षेत्र में जीता-जागता रहना केवल रामचरित मानस के कारण संभव रहा है। यह नहीं कि अन्य रचनाएँ इस भाषा में उपलब्ध नहीं। मलिक मुहम्मद जायसी की पद्मावत मानस से भी तीस साल पहले (१५४० ई० में) लिखी गई थी। नूर मुहम्मद की इंद्रावती पद्मावत से प्राय दो सौ साल पीछे (१७५७ ई० में) लिखी गयी और प्रकाशित है। जायसी के ग्रन्थ के प्राय: सौ साल बाद लालदास गुप्त ने (१६४३ ई०में) अवध-विलास लिखो। कुतबन की मृगावती और शेख निसार की यूसुफ-जुलेखा अवधी में हैं। यह सभी ग्रन्थ दोहा चौपाई में हैं। इनके अतिरिक्त धरणीदास का प्रेम प्रगास और शिवनारायण का गुरु अन्यास भी पुराने अवधी ग्रन्थ, दोहा चौपाई में, विद्यमान हैं। अवधी के और भी छोटे-मोटे ग्रन्थ विकीर्ण इधर-उधर पड़े हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि किसी समय अवधी एक सजीव साहित्यिक भाषा थी और यद्यपि संभवतः यह साहित्य में इतना महत्व और विस्तार न पा सकी जितना ब्रज भाषा को मिला, तब भी महत्त्व में अवधी कम स्तर की नहीं है। प्रबन्धकाव्य की रचना के लिए ब्रज की अपेक्षा अवधी की प्रकृति अधिक अनुकूल जान पड़ती है। यह कहना उचित होगा कि हिन्दी की

बोलियों में व्रज गीतिकाव्य की भाषा है और अवधी प्रबन्ध काव्य की। अवधी की रचनाओं में कृष्णायन का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगा, ऐसी हमारी धारणा है।

कृष्णायन की भाषा आधुनिक बोलचाल की अवधी नहीं है, वह है तुलसीदास के मानस की अवधी। उदाहरणार्थ, आज की अवधी में परसर्गों का काफी प्रयोग अन्य वर्तमान आर्य भाषाओं की तरह है। कृष्णायन के रचयिता ने तुलसीदास की भाषा अपनायी है। यह निश्चय है कि तुलसीदास की भाषा से समस्त हिन्दी ससार परिचित है और उसे मानस की परम्परा के कृष्णायन के पढ़ने में वर्तमान अवधी की रचना की अपेक्षा अधिक सुविधा होगी। कृष्णायन की भाषा सस्कृत-प्रचुर है, तुलसीदास की भाषा से कहीं अधिक। तुलसीदास ने बराबर तद्भव रूपों का अधिक प्रयोग किया है, द्वारकाप्रसाद मिश्र ने तत्सम शब्दों का। वर्तमान भाषा में तत्सम शब्द प्रचुरता गुण है या दोष इस पर हिन्दी ससार में थोड़ा-बहुत मतभेद है, पर अधिकाश जन और साहित्य-सेवी तद्भव रूपों को त्याग कर तत्सम की ही ओर झुक रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में यदि कृष्णायन के रचयिता बहुमत के पोषक हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

आरम्भिक प्रतिज्ञा में ही ग्रन्थकार ने स्पष्ट कर दिया है कि वह पूर्ण ब्रह्म हरि के विमल यश का वर्णन करने जा रहा है और सूर और तुलसी का आभार उसने इन शब्दों में माना है—

तुलसी शैलिहि मोहिं प्रिय लागी,
भाषहु बिनु विवाद रस पागी।
सूरदास पद-ज्योति सहारे,
बरने बाल चरित मैं सारे।

महर्षि वेदव्यास को बार-बार कवि ने आर्य सस्कृति और धर्म का सस्थापक और रक्षक बताया है और कृष्ण भगवान के मुँह से भी उनकी अत्यधिक प्रशसा करवायी है। इस तरह कृष्णायन में प्राय सर्वत्र इन तीन महाकवियों के ग्रथों का प्रभाव मिलता है, क्या विषय-सामग्री और क्या भाव की अभिव्यक्ति में। महाभारत के कई अशों का यहाँ भावानुवाद मिलता है। इनके अतिरिक्त कालिदास, भारवि, भवभूति, माघ आदि की भी छाया कवि के भावों में जहाँ-तहाँ मिलती है। इसको लेखक ने छिपाया नहीं, प्रारम्भिक प्रतिज्ञा मे ही स्पष्ट कर दिया है—

जदपि ध्येय निज कतहुँ न त्यागा,
मधुर स्वभाव मोहिं प्रिय लागा।

छमहिं अकिंचन जानि सुजाना,
रंचहु उर न काव्य अभिमाना।

मधुप-स्वभाव द्वारा पूर्ववर्ती कवियों के भावों के ग्रहण के कुछ उदाहरण नीचे लिखे हैं—

(१) तजि सुमेरु प्राची दिशि आयी
उदित दिनेश भुवन - सुखदायी।
तमस असुर हति, हरि शशि शासन
बसेउ भानु उदयाद्रि सिंहासन।
उडुगण क्षीण, कुमुद श्री-हीना;
अंध - उलूक तेज-हत, दीना।

—मथुराकाण्ड, दोहा ४८ के अन्तर्गत

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां ह्री विचित्रो विपाकः॥

—माघ

(२) धन, यौवन, प्रभुता, अविवेकू,
जुरे सकल, नहिं अंकुश एकू।

—द्वारकाकाण्ड, दोहा १७ के अन्तर्गत

यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

—कालिदास

(३) वारिद दसन दूरि नभ माहीं,
मृगपति पहुँच तहाँ लगि नाहीं।
तबहुँ सुनत घन गर्जन घोरा,
करत दहाड़ गाजि तेहि ओरा।
तेजस्विन उर सहज अमर्षा,
सहत न कबहुँ शत्रु - उत्कर्षा।

—पूनाकाण्ड, दोहा ११८ के अन्तर्गत

विमर्दक्षमं पश्य पयोधरान्
ध्वनतः मार्गयते मृगाधिपः।

प्रकृतिः खलु सा महीयसः
सहते नान्यसमुन्नतिं यया ॥

—भारवि

(४) मृत्यु अवार्य मर्त्य हित तैसे ।
चय परिणाम अपहि जग माहीं,
कहँ प्रक ? अवनति जहँ नाहीं ?

—जयकाण्ड, दोहा २६२ के अन्तर्गत

सर्वे क्षयान्ता निचयाःपतनान्ताःसमुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तञ्च जीवितम्॥

—योगवासिष्ठ

(५) रवि सम कवि स्वल्प धन धारी,
बरसि सहस गुण करत सुखारी ।

—आरोहणकाण्ड, दोहा १२७ के अन्तर्गत

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥

—कालिदास (रघुवंश)

(६) मृगहु शृंग-सोहराय मृगि, रहेउ पुलक उपजाय,
कुसुम चषक मधु प्रेयसिहिं, मधुपहु रहेउ पियाय ।

—द्वारकाकाण्ड, दोहा ३७

मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे
पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।
शृंगेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं
मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ॥

—कालिदास (कुमारसम्भव)

मानस में भी इसी प्रकार, इससे भी अधिक, भाव पूर्ववर्ती ग्रन्थों, अध्यात्म रामायण, हनुमन्नाटक आदि के मिलते हैं, पर उनसे गोस्वामी जी के गौरव में कोई क्षति नहीं होती ।

जिस प्रकार ऊपर उल्लिखित भाव कवि ने ग्रहण किये हैं उसी प्रकार कथानक का क्रम भी कहीं-कहीं अन्य ग्रन्थों से लिया है । पूजाकाण्ड का अंतिम भाग महाभारत और किरातार्जुनीय में आये हुए भीम-द्रौपदी के संवादों की याद दिलाता है।

कवि ने जायसी का अनुसरण करते हुए अपने सारे ग्रन्थ में केवल तीन छन्दों (दोहा, सोरठा, चौपाई) का प्रयोग किया है । तुलसीदास ने अवसर के

अनुकूल अन्य कई छंदों का आश्रय लिया है। मानस से भी बृहत् आकार के ग्रन्थ में यदि कुछ और छंदों का समावेश होता तो अच्छा था। भाषा-सम्बन्धी एक त्रुटि देख पड़ती है। आर्य भाषाओं में जो समास का क्रम है उसका उल्टा क्रम कवि ने जगह-जगह अपनाया है। यह उचित नहीं है। उदाहरणार्थ—दिन प्रति, द्रुम सदेह, जाया वीर, रथ प्रति, प्रान्त प्रति, सर्वस्व-हृत, पालकर्ण की जगह होना चाहिए—प्रति दिन, सदेह द्रुम, वीर जाया, प्रति रथ, प्रति प्रान्त, हृत सर्वस्व, कर्णपालक।

(५)

कृष्णायन पढ़ने का अधिकारी कौन है? इसके लिखने का प्रयोजन क्या है? इत्यादि प्रश्नों का भी समाधान इस भूमिका में संक्षेप में होना चाहिए। कवि के हृदय में एक गहरी अनुभूति है कि अपने पददलित राष्ट्र का त्राण कृष्ण सरीखा ही कोई नेता कर सकता है, जिसके हृदय में आर्यधर्म और संस्कृति का गौरव हो, जो एकछत्र राष्ट्र का अनन्य भक्त हो और जो कृष्ण की भाँति नितान्त निःस्पृह हो। वह अनार्य संस्कृति से दूर रहना चाहता है और देश से आसुरी संस्कृति को निकाल फेंकना चाहता है। आर्य और अनार्य संस्कृति के परस्पर भेद की ओर बार-बार तरह-तरह से कवि ने संकेत किया है। आर्य संस्कृति में मनुष्येतर जीवों, यहाँ तक कि वृक्षों, पर भी दया की भावना है, अनार्य संस्कृति में मनुष्य के प्रति मनुष्य का बन्धु प्रेम नहीं। दोनों में जन्म सिद्ध कोई भेद नहीं इसकी ओर इन जोरदार शब्दों में संकेत है—

अंग न अनार्य ललाट न नामा,
आर्य भाल नहिं विधु अभिरामा।

अनार्य संस्कृति का तत्त्व आरोहणकाण्ड में चार्वाक की वक्तृता में और आर्य का उदय, व्यास, भीष्म, कृष्ण के उद्गारों में तथा युधिष्ठिर के आचरण में मिलता है। अवाञ्छनीय विदेशी प्रभाव का कवि घोर विरोधी है। आरम्भ में कृष्णायन के पढ़ने का कौन अधिकारी है इसका विवरण देते हुए कवि कहता है—

जिनहिं न धर्म न संस्कृति ज्ञाना,
जिनहिं गरल सम शास्त्र पुराना,
जीवन-तरहिं समूल विनाशी,
जे नव बीज वपन अभिलाषी,
जलधि पार के नित नव वादा,
परत श्रोत्र जे मानि प्रसादा,

पर बस तन सँग मनहु आपन,
कीन्हेउ जिन पर चरण समर्पण,
नात पुरातन जिन सब तोरा,
तिन हित यह प्रयास नहिं मोरा।

प्रचलित प्रगतिवादों के प्रति कैसी घृणा है और स्वदेशी का कैसा निरछल प्रेम। आगे चलकर जयकाण्ड में कवि फिर कहता है—

गहत त्यागि निज जे पर धर्मा,
निर्मर्याद सदा तिन कर्मा।

महाकाव्य में खल निन्दा रूपी अग की पूर्ति इन अशों से होती है। पाठकों को ध्यान रखना चाहिए कि इस महाकाव्य का प्रणयन कृष्ण मंदिर (जेल) में हुआ है। आरम्भ ही कितना हृदयद्रावक है—

जन्मेउ बंदी धाम, जो जन जननी मुक्ति हित,
वदहुँ सोइ घनश्याम, मैं बंदी, बंदिनि तनय।

कवि ने जगह-जगह राष्ट्र के पददलित होने पर और मातृभूमि के बंदिनी होने पर क्षोभ, दुःख और रोष प्रकट किया है और तरह-तरह से सकेतों द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने की ओर प्रेरित किया है। आसुरी गणों के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए, इस विषय में अक्रूर की उक्ति है—

छलिन सग जे छल नहिं करहीं,
दलित पराभव मूढ़ ते मरहीं।

मथुरा काण्ड में उदधि के ये वचन—

दैत्य यवन, सुर नाना नाती,
ग्रासत भारतमहि दिन राती।

आज की लूट-खसोट की ओर सकेत करते हैं।

कवि को हृदयहीन बुद्धि-साम्राज्य नापसन्द है। इसका सुन्दर चित्रण उसने कितने सुन्दर शब्दों में किया है—

बुद्धि भावना सतुलन आर्य धर्म आधार,
नष्ट भावना आजु प्रभु! शेष बुद्धि व्यभिचार।
घधक्त मानस, थिर न विचारा,
मन छय बढ्यु, छय अन्य प्रकारा।
आत्मघात - पथ चलु
प्रेय

अनुचित ज्ञानोपासन माहीं,
श्रद्धा बिनु न सार तेहि माहीं।
भक्ति सहाय सहत जय ज्ञाना,
सकत सबहिं करि नर-कल्याणा।
सृजन शक्ति ताही महँ होई,
प्रकटत प्रतिपल जीवन सोई।
बुद्धि-जीवि हम सुनि जग माहीं,
सकत ज्ञान है श्रद्धा नाहीं।
तेहि हित प्रभु! अवतार तुम्हारा,
शुभ कृति, भक्ति, ज्ञान साकारा।

—द्वारकाकाण्ड, दोहा १४६

श्रीकृष्ण के चरित पर जितने लांछन लगाने संभव थे, उनको कवि ने पूजा-काण्ड में शिशुपाल के मुँह से कहलाया है। उनमें एक यह भी है—

परसहिं जदपि अधम संहारा —दोहा, ५२

यही लांछन महात्मा गाँधी पर कुछ लोग लगाते हैं। पर श्रीकृष्ण बंध्या आसक्ति तथा बंध्या आसक्ति का भेद भली प्रकार जानते थे। यह भेद आरोहणकाण्ड में (दोहा ३३ और ३४ के अन्तर्गत) स्पष्ट किया गया है। इसलिए पत्नग्रह आदि कर्म भी उन्हें संसृति में नहीं बाँध सके। श्रीकृष्ण ने पूर्व दिशा में दैत्य का संहार करके सोलह हजार एक सौ गलित-सतीत्व कुमारियों को दुष्ट के चंगुल से मुक्ति दी। अपनी दशा पर वे रोयीं-बिलखीं और कहने लगीं कि उनको कौन स्वजन आश्रय देगा। कृष्ण भगवान् ने उनको पत्नी रूप में स्वीकार कर सत्यभामा आदि के समकक्ष पदवी दी। आततायियों द्वारा भगायी हुई स्त्रियों के कल्याण का यह ऊँचा मार्ग प्रदर्शित है।

इस प्रकार कितनी ही उपयोगी सामग्री कृष्णायन में सुधार के पोषण और कुरीतियों के निवारण के लिए सर्वत्र फैली मिलेगी। भूमिका में उसकी ओर केवल संकेत किया जा रहा है। इस ग्रन्थरत्न में केवल कृष्ण-चरित या महाभारत की कथा नहीं है। इसमें देश की धार्मिक तथा सांस्कृतिक विचारधारा का वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुरूप, पुनर्निर्माण किया गया है। प्राचीन तत्त्वों और आदर्शों का चित्रण नये और सुबोध रूप में मिलता है। उपयोग यह है कि जो भेद जनता की विचारधारा और साहित्य के बीच किन्हीं कारणों से आ गया है वह मिट जाय और साहित्य का जो कर्तव्य 'कान्ता सम्मित' उपदेश देने का है वह निभ जाय।

काव्य-परम्परा में यह ग्रन्थ रीतिकालीन काव्य ग्रन्थों से सर्वथा भिन्न है। यहाँ न तो है बुद्धि को परास्त कर देनेवाला चित्रकाव्य, न दुर्गम श्लेष, न यमकों का वैचित्र्य। इसमें मिलता है उच्चकोटि का काव्य। प्राय सभी रसों का समावेश इस ग्रन्थ में मिलता है, पर अधिकाश में अद्भुत, करुण, रौद्र, वीर और भयानक का चित्रण है। शृङ्गार कम है पर जो है वह उच्चकोटि का, निर्दोष, पवित्र, उल्लासवर्धक। हास्य का पुट बहुत कम है, जो है वह सुन्दर बन पड़ा है। वीभत्स भी नगण्य है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, विरोधाभास, परिसख्या आदि श्रेष्ठ अलकार मानस की भाँति यहाँ भी यथेष्ट हैं। समुद्र, ऋतु, प्रात काल, सन्ध्या, विवाह, अभिषेक आदि सभी आवश्यक वस्तुओं के वर्णन यहाँ भी मौजूद हैं जिनमें से बहुत से सजीव हैं और अच्छे बन पड़े हैं। वर्णन सभी भारतीय जनता की चिर-परिचित परम्परागत शैली में हैं। रोचकता में कमी नहीं आने पायी है और साथ ही काव्य सुबोध हो गया है। कुछ वर्णनों को पढ़कर तो लेखक की निरीक्षण शक्ति की प्रशसा किये बिना पाठक नहीं रह सकता। भाव शबलता आदि के भी अच्छे उदाहरण इस ग्रन्थ में मिलते हैं।

कृष्णायन प्रबन्ध काव्य है। हिन्दी के वर्तमान युग में मुक्तक काव्य (गीत आदि) का अधिक चलन है और प्रबन्ध काव्य थोड़े ही लिखे गये हैं। दूसरी ओर सभी आधुनिक कवि गीत लिखते हैं। मुक्तक की अपेक्षा प्रबन्ध काव्य की रचना अधिक कठिन और परिश्रम-साध्य है। कृष्णायन वृहत् प्रबन्ध है। आजकल छायावाद और रहस्यवाद की धारा अधिक प्रचलित है। कृष्णायन के रचयिता ने इनको न उठाकर इतिवृत्त का आश्रय लिया है। वर्तमान भारत में अंग्रेजी पढ़ी लिखी जनता के बीच ईश्वर की भावना या तो लुप्त हो गयी है या है तो बहुत निर्बल। कृष्णायन के कवि का प्रतिपादन ईश्वर का ही नहीं, सगुण ईश्वर का है और वह उसी की स्तुति और प्रशसा करता है। उसने बुद्धिवाद के युग मे परम्परावाद का प्रचार करना चाहा है। वर्णन शैली सर्वथा सुगम और स्वदेशी होते हुए भी वर्तमान हिन्दी काव्य धारा की शैली से भिन्न है। इन बातों से लगता है कि वह कोई विचित्र बात करने जा रहा है। परन्तु इस विचित्रता का समाधान कवि के व्यक्तित्व से होता है। ग्रन्थकार राजनीतिक कार्यकर्ता ही नहीं, उसकी गणना देश के प्रमुख नेताओं में है। वह महात्मा गांधी का अनुयायी है। उसका लक्ष्य कुछ लाख की सख्यावाली पढ़ी लिखी जनता नहीं, वल्कि भारतवर्ष के गाँवों में फैले हुए, रूढ़ियों में श्रद्धा और विश्वास रखनेवाले जन-समुदाय हैं। महात्मा गांधी की तरह उसकी दृष्टि उन करोड़ों मनुष्यों की ओर है। [illegible]

नवीन विचारों को भरकर उनको मार्क्सी स्वावलम्बी मनुष्य बनाना चाहता है। महात्माजी के विरुद्ध घड़ी की सुइयों को पीछे हटाने का उद्योग करने का जो लांछन लगाया जाता है, वही द्वारकाप्रसाद मिश्र के विरुद्ध लगाया जा सकता है। मिश्रजी इसे इष्टापत्ति समझते हैं—

परम्परा - प्रिय मति मैं पायी,
पैतृक संपति तजि नहिं जायी।
करि तप ऋषिन कहेउ जो ज्ञाना,
भयेउ न आजहु सो निष्प्राणा।
बीज रूप सब निज उर धारी,
मौनति कर्मभूमि भव वारी।
बाजी जो व्रज बाँसुरी, अजर जदपि प्राचीन,
भक्त श्रवण आजहु सुनत, युग संगीत नवीन।

वह प्राचीनता को क़ायम रखकर नवीनता लाना चाहते हैं। सम्पूर्ण भारत राष्ट्र की जनता का कल्याण उनका ध्येय है। उसके संस्कारों को नवीन साहस देकर उसमें वे जान फूँक देना चाहते हैं। ईश्वर उनके प्रयत्न को सफल करे।

साहित्यिक क्षेत्र में भी पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र अपरिचित नहीं हैं। हिन्दी-संसार उन्हें जबलपुर की श्रीशारदा, लोकमत, सारथी के सम्पादक के रूप में जानता है। आज वे उसके सामने कवि रूप में उपस्थित होते हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी जनता उनके इस रूप का भी आदर और स्नेह से स्वागत करेगी। दशरूपकार धनञ्जय ने कहा है—

कस्यचिदेव कदाचिद्दयया विषयं सरस्वती विदुषः।
घटयति कमपि तदन्यो व्रजति जनो येन वैदग्धीम्॥

मिश्रजी ने एक आवश्यक अंग की पूर्ति की है। यह ग्रन्थ सब वर्गों और श्रेणियों के आबाल-वृद्ध-जनों के काम का सिद्ध होगा। रामचरित पर अद्वितीय प्रबन्ध काव्य मानस के रूप में भाषा में था ही। आज कृष्णचरित पर भी उस स्तर का अमूल्य प्रबन्ध हिन्दी भाषा पा गयी जिससे उसका भण्डार और भरा-पूरा हो गया।

हम गर्व और उल्लास के साथ अपने चिरपरिचित स्नेही मित्र की इस अमर कृति को हिन्दी संसार के सामने उपस्थित करते हैं। हमें पूरा विश्वास है कि हिन्दी भाषा-भाषी इसे पढ़कर कृतार्थ होंगे।
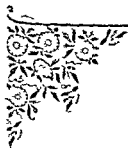
अवतरण काण्ड

सोरठा —जन्मेउ नदी-धाम, जो जन जननी मुक्ति हित,
बंदहुँ सोइ घनश्याम, मैं बदी, चँदिनि-तनय।
जेहि सद्गति निस्तार, कीन्हेउ क्रीडा हेतु निज,
बंदहुँ रस-आगार, कलाकार सोइ प्रथम हरि।
रच्यो श्रुति इतिहास, कलि-वारिधि बूडत निरखि,
बंदहुँ वेदव्यास, ज्ञान-मूर्ति कृष्णाहि स्वयम्।
बंदहुँ तुलसीदास, सत-रवि-भासित-ज्ञान-घन,
सतत अनत निवास, नत बरसत महि काव्य-जल।
युग युग हरि पद चूमि, मुक्ति, मुक्ति, जय जेहि लही,
बंदहुँ भारत भूमि, हरि-जननी, हरि-यश-मयी।

दोहा —सुरसरि-हृत-पद-पद्म रज, पुण्य भूमि निर्माण,
संचित चरणोदक उदधि, लहरत करि यश गान। १ -

मनुजहु तेहि रज वारि प्रजाना,
दृढ़व्रत रहत सहज हरि-नाता।
तजि भव भोग धरत हरि-ध्याना,
पावत परब्रह्म भगवाना।
सौंपि प्रभुहिं कर्मज फल सारे,
पाप पुण्य गत होत सुखारे।
ताते भोग-भूमि महि सारी,
कर्म-भूमि इक जननि हमारी।
संचित पुण्य न जब लगि होई,
पावत जन्म न यहि महि कोई।
भोगत देव जदपि सुख नाना,
स्वर्ग न मिलत मोच्छ निर्वाणा।
छीण पुण्य सुख विभव विनाशा,
बाँधत तिनहिं बहुरि भव-पाशा।
ताते जब तब हरिहिं रिझायी,
जन्मत सुर भारत महि आयी।

दोहा :— *जानि आत्मजा, लखि चरण, अर्पित तन, मन, प्राण,*
होत सगुण निर्गुण हरिहु, लसति भूमि भगवान। २

जन्म हेतु कबहुँक जन-त्राणा,
कबहुँ युगोचित ज्ञान-प्रदाना।
जो कछु धर्म कर्म यहि देशा,
सो सब आपु दीन्ह विश्वेशा।
जबहिं म्लेच्छ भारत चढ़ि आवहिं,
संस्कृति, धर्म, सुनीति नशावहिं,
हरिहिं पुकारति भारत माता,
तब तब जन्म लेत जन-त्राता।
ये अंशन अवतार कहावत,
कछुक ईशाना प्रभु दरसावत।
भयेउ पूर्ण एकहि अवतारा,
जब हरि कृष्ण रूप ब्रज धारा।

प्रकटे भुवन-विमोहन वेषा,
विश्वहिं दीन्ह अभय संदेशा।
खल-शिक्षण जन-रक्षण कीन्हा,
धरणिहिं धर्मराज प्रभु दीन्हा।

दोहा :— *भयेउ कला षोडश सहित, कृष्णचंद्र अवतार,*
पूर्ण ब्रह्म हरि यश विमल, बरनहुँ मति अनुसार। ३

ज्ञान ध्यान नहिं कछु मम पासा,
भक्ति न अचल, न बल विश्वासा।
मूल भाव, कछु कवितहु नाहीं,
चलन चहहुँ गहि कवि परिछाहीं।
तुलसी-शैलिहि मोहिं प्रिय लागी,
भाषहु नितु विवाद, रस-पागी।
सूरदास-पद-ज्योति सहारे,
बरने बाल चरित मैं सारे।
जदपि ध्येय निज कतहुँ न त्यागा,
मधुप-स्वभाव मोहिं प्रिय लागा।
क्षमहिं अकिंचन जानि सुजाना,
रंचहु उर न काव्य अभिमाना।
एक यहहि अभिलाषा मोरी,
सुनहिं कृष्ण-यश लाख-करोरी।
मोहिं भरोस पढ़ि-गुनि आद्यंता,
क्षमिहैं सकल दोष मम संता।

दोहा :— *दण्डनीय अपराध यदि, वंदनीय हरि नाम,*
रुचत जिनहि नहि हरि चरित, मोहि न तिन सन काम। ४

जिनहि न धर्म, न संस्कृति ज्ञाना,
जिनहिं गरल सम शास्त्र पुराणा,
जीवन-तरुहिं समूल विनाशी,
जे नव बीज वपन अभिलाषी,

उदधि-पार के नित नव वादा,
धरत शीश जे मानि प्रसादा,
पर-वश तन सँग मनहू आपन,
कीन्हेउ जिन पर-चरण समर्पण,
नात पुरातन जिन सब तोरा,
तिन हित यह प्रयास नहिं मोरा।
परंपरा-प्रिय मति मैं पायी,
पैतृक संपति तजि नहिं जायी।
करि तप ऋषिन लहेउ जो ज्ञाना,
भयेउ न आजहु सो निष्प्राणा।
बीज रूप सब निज उर धारी,
माँगति कर्मभूमि नव वारी।

दोहा :—*बाजी जो ब्रज बाँसुरी, अजर, जदपि प्राचीन,*
भक्त-श्रवण आजहु सुनत, युग संगीत नवीन। ५

सकत जो स्वल्प-मतिहु यश गायी,
सो केवल हरि-चरित बड़ाई।
प्राची दिशा निरखि रवि-रोली,
देत कमल विह्वल मुख खोली।
भरत भुवन जब तंत्री-नादा,
प्रकटत फणिहु सलय आह्लादा।
बौरत विपिन विलोकि रसाला,
गावत कोकिल विवश बिहाला।
व्योम विलोकि घटा घन घोरा,
उठत नाचि आपुहि वन मोरा।
उपवन निरखि यूथिका फूली,
गुंजत भृंग रंग निज भूली।
गगन विलोकि उदित रजनीशा,
गावत लहरि आपु वारीशा।
चंद्रकांत मणि उरहु पसीजो,
आपुहि आपु जात रस भीजी।

दोहा :— *हरि-चरितहि विरचत कविन, रचत चरित कवि नाहिं ,*
अस गुनि गावहुँ हरि-सुयश, सुनि भ्रम भीति नसाहिं । ६

भारत-हृदय आर्यजन-धामा ,
जनपद शूरसेन अभिरामा ।
जहँ गोवर्धन सोहत पहारा ,
तरुवर सघन कंदरा भारा ।
चूमि तमाल-द्रुमन आनंदिनि ,
बहति निकुंजन जहँ रवि-नंदिनि ।
जहाँ रम्य वृन्दावन, मधुवन ,
महि अवतीर्ण मनहुँ वन नंदन ।
ताल-फलन जहँ वन-श्री श्यामा ,
दाड़िम-फूलन-फलन ललामा ।
हरि जहँ अनिल बकुल-आमोदा ,
थान्त पान्थ मन भरत प्रमोदा ।
विपिन विपिन जहँ नयन-रसायन ,
पुलिन पुलिन मंजुल कामायन ।
जहँ तरु तरु अलि-रव वाचाला ,
कुंज कुंज पिक-गायन-शाला ।

दोहा :— *शोभित दिशि दिशि व्रज जहाँ, रम्य गोपजन-ग्राम ,*
ताते व्रज, व्रजमण्डलहु, अन्य पुण्य महि नाम । ७

तृण सुकुमार चरत जहँ कानन ,
विचरत तृप्त, निरामय गोधन ।
रंभा-रव जहँ श्रुति-सुखदाई ,
ग्रीवा-घंटी ध्वनि वन छायी ।
जहँ स्वच्छंद चरावत धेनू ,
वादत गोप मधुर ध्वनि वेणू ।
जहँ रसाल वन, वंजुल-पाली ,
गावति प्रीति गीत गोपाली ।
सुनि काकली मुरलि मधु संगा ,
भूलत जहँ तृण चरन कुरंगा ।

धवलित महि जहँ फेन-उद्गिरण,
पूरित घृत आमोद समीरण।
जहँ मथन ध्वनि घन-गभीरा,
सुनि चातक आनद अधीरा।
अहोरात्र शुचि क्षीरस्नाता,
महि क्षीराब्धि जहाँ साक्षात्ता।

दोहा —*भोगत जहँ द्वापर युगहु, कृत युग गोप अशोक,*
सुकृतिन हित महि अवतरित, व्रज मिस जनु गोलोक। ८

सोरठा—*पावन प्रांत विशाल, व्रजमण्डल सुषमा-सदन,*
शोभित जनु वर माल, भारत वक्षस्थल विशद।

शासक यदुवंशिन रजधानी,
मथुरापुरी धान्य धन खानी।
क्रीडति पुर सँग जमुन-तरंगा,
जनु सुरपुर सँग व्योमग गंगा।
राजभवन जनु दुर्ग महाना,
यत्र, शतघ्नी आयुध नाना।
सुधा धवल अट्टालक धामा,
जनु शशिलोक नगर अभिरामा।
विपणि धनश धाम प्रतिरूपा,
हेम रत्न मणि विविध अनूपा।
गुरुकुल, शिल्प-कला-गृह नाला,
धारागृह, उपवन, उद्याना।
बहु आमोद प्रमोद-निकेतन,
सुन्दर गायन, वादन, नर्तन।
हय, गय, रथ, जन-रव पथ माहीं,
महापुरी मथुरा सम नाहीं।

दोहा —*नगर नारि नर शुचि सुभग, वीर धीर मतिमान,*
उमसेन यादव-पतिहु, महि अमरेश समान। ९

बरनहुँ किमि यदुकुल-विस्तारा,
जहँ हरि आपु लीन्ह अवतारा।
भोज, वृष्णि, अंधक बहु शाखा,
भाँति अनेक पुराणन भाखा।
पृथक-पृथक नायक प्रति वंशा,
उग्रसेन अंधक अवतंसा।
कृतवर्मा, शतधन्वा भ्राता,
भोज वंश भूषण विख्याता।
वृष्णि वंश वसुदेव सुजाना,
अक्रूरहु, सात्यकि युयुधाना।
सकल प्रतिस्पर्धी कुल-नायक,
उग्रसेन यादव-अधिनायक।
प्रजा, वंश-हित नित उर धारे,
बैठत राज-सभा मिलि सारे।
प्रमुख सचिव उद्धव-मत पायीं,
प्रकटत स्वमत सर्व-सुखदाई।

दोहा :— धारत *निर्णय शीश निज, उग्रसेन नरनाथ,*
राजतंत्र गणतंत्र-सुख, लहति प्रजा इक साथ। १०

सुखी नरेश, सुखी सब देशा,
कहहुँ विपति जस कीन्ह प्रवेशा।
रही पवनरेखा पटरानी,
सती, सुशील, रूप-गुण-खानी।
दिवस एक वन-क्रीड़ा हेतू,
गवनी सहचरि सखिन समेतू।
लखि प्रमोद वन उर अनुरागा,
रवितनया-तट स्यंदन त्यागा।
वीचि-विलास मंजु मन भावा,
रेणु मनहुँ मणि-चूर्ण बिछावा।
विहरत केलि-शैल, वन, बेली,
रानिहिं छूटेउ संग सहेली।

वाम नियति गति, तहँ तेहि काला,
निकसेउ यातुधान विकराला।
द्रुमिल रक्षपति विश्रुत वीरा,
निरखि इन्दुमुखि मदन-अधीरा।

दोहा :— *उग्रसेन नृप रूप धरि, गवनेउ रानी पास,*
समुझि ताहि निज पति सती, पूजी मन अभिलाष। ११

धरि तनु निज भाषेउ जब नामा,
वपु विलोकि व्याकुल वर वामा।
सजल विलोचन कम्पित देही,
दग्ध-हृदय, नहिं सुधि बुधि तेही।
दशा विलोकि द्रुमिल समुझावा,
निज बल वीर्य प्रताप बतावा।
भयेउ विलीन त्यागि वन रानी,
हिम-हत मनहुँ नलिनि कुँभिलानी।
मिलीं वहुरि सब सखी सहेली,
रानी बिलखत लखी अकेली।
वसन बिशृंखल, नष्ट सिंगारा,
अविरल वहति विलोचन धारा।
गयीं लिवाय सखी पुर माहीं,
वन-रहस्य जानेउ कोउ नाहीं।
रहेउ गर्भ, पूजे दश मासा,
उपजत कंस जगत सत्रासा।

दोहा :— *महि काँपी, वासर भये, सर्व निशा-व्यापार,*
टूटे तारागण गगन, छायेउ घन अँधियार। १२

देखे उग्रसेन उत्पाता,
व्यापी हृदय भीति अज्ञाता।
राज-ज्योतिषी नृपति हँकारे,
करि गणना निज वचन उचारे—

"जन्मेउ तनय विवेक-विहीना,
राक्षस-वृत्ति, कुपंथ-प्रवीणा।
कुल-कलंक, खल, कामी, कोही,
पितु-त्रासक, गो-द्विज-हरि-द्रोही।"
मृत्यु लिखी सुनि श्रीहरि-हाथा,
व्यथा-विकल हत-मति नरनाथा।
सहज सनेह त्यागि नहिं जायी,
पालेउ बाल भुआल लोभायी।
शैशव ते सत संगति राखा,
नहिं सद्वाक्य जो गुरु नहिं भाखा।
विफल प्रयास भये सब तैसे,
शंख-निनाद बधिर ढिग जैसे।

दोहा :— *बाढ़ेउ जस जस कंस खल, भयेउ वीर बलवान,*
बाढ़ी राक्षस-वृत्ति तस, असत, अनय, अज्ञान। १२

पुरजन-शिशु दुर्मति जहँ पावहि,
गिरि-गह्वरन माहिं धरि आवहि।
शिला खंड पुनि रोपि दुआरे,
बाल असंख्य कंस संहारे।
अग्नि कांड रचि अन्य नसाये,
खेलत जमुना विपुल बहाये।
पुरजन लखि लखि करहिं विलापा,
कंस-त्रास दिन प्रति पुर व्यापा।
जाहिं जनेश-भवन जन धायी,
"पाहि! पाहि!"—कहि करहिं दोहाई।
भूपति सकत सुतहिं नहिं रोकी,
सकत न प्रजा विलाप विलोकी।
उद्धव, यादव-नायक सारे,
नृप सम अन्तर्दग्ध दुखारे।
ग्रस्त दिवस निशि करत विचारा,
केहि विधि होय प्रजा उद्धारा।

दोहा :— *यहि विधि इत मथुरा पुरी, व्याप्त कंस-कृत भीति,*
जरासंध मगधेश उत, चहत लेहुँ ब्रज जीति। १४

मगध-नाथ भारत सम्राटा,
आयुध अगणित, सैन्य विराटा।
सेवत अमित शूर सामंता,
विभव असीम, प्रभाव अनंता।
कीन्हे विजित चतुर्दिक देशा,
भयेउ चक्रवर्ती मगधेशा।
धर्म मोक्ष हित ज्ञान विहीना,
काम अर्थ महँ परम प्रवीणा।
चार्वाकहिं निज गुरु करि मानत,
वेद-विरोधिन नृप सन्मानत।
असुर नीति, असुरन व्यवहारा,
प्रिय तेहि सकल असुर आचारा।
जहँ जहँ विजय लहत मगनाथा,
गवनति आसुरि संस्कृति साथा।
सुनतहि ब्रज-अशांति-संदेशू,
पठयेउ राजदूत मगधेशू।

दोहा :— *गुप्तचरहु पठये विपुल, पहुँचे मधुपुर माहिं,*
छद्म वेष विचरत फिरत, बचेउ गेह कोउ नाहिं। १५

दूत प्रकट कीन्हेउ निज काजा,
मिलेउ सभा यदुजन यदुराजा।
लहि अनुमति, करि विनय अशेषू,
कहेउ दूत निज नाथ सँदेशू—
"भरतखंड यह भूमि विशाला,
अगणित राज्य, अनेक भुआला।
युद्धत नित महि-शांति नसावत,
क्लेश अशेष प्रजाजन पावत।
करन हेतु सुख शांति प्रसारा,
हरन हेतु जन-कष्ट अपारा,

मथन हेतु विच्छिन्न समाजू,
इच्छत एकछत्र मैं राजू।
कीन्हेउँ राज-चक्र निर्माणा,
तासु सदस्य आजु नृप नाना।
जे निर्बुद्धि, युद्ध-अभिलाषी,
हत रण अथवा कारावासी।

दोहा :—*यदुवंशी नृप-वृंद महँ, अग्रगण्य तुम राव,*
राज-चक्र स्वीकारि मम, प्रकटहु निज सद्भाव।"१६

मधु-मिश्रित विष असुर-सँदेशा,
सुनि यदुवंशिन रोष अशेषा।
समिति-नृपति-मत उद्धव चीन्हा,
उत्तर समुचित दूतहिं दीन्हा—
"प्रेषेउ मगध नरेश सँदेशू,
रहित रहस्य, प्रकट उद्देशू।
वाक्य-जाल-निर्मित नृप-वाणी,
अर्थ-हीन परमार्थ-कहानी।
व्यर्थ सर्व यह वाक्य-विलासा,
बसी हृदय ब्रज-जय-अभिलाषा।
जरासंध सँग सहज न रारी,
जानत हम, जानति महि सारी।
यह यदुकुलहु निबल पै नाहीं,
जानहु उत्तर इतनेहिं माहीं।"
समुझेउ मर्म दूत मतिमाना,
लखि रण-वृत्ति कीन्ह प्रस्थाना।

दोहा :—*रण-वार्ता परिव्याप्त पुर, कहुँ भय कतहुँ उमंग,*
कंस-हृदय उल्लास बहु, सुनि सुनि समर-प्रसंग।१७

पितु समीप गवनेउ अभिमानी,
सेनापति पद हित हठ ठानी।

उग्र नृपहि अगज-मत भावा,
सोचत मन अस मंत्र दृढावा—
सकहि जो यह मगधपतिहि हरायी,
वृद्धि वंश-यश, फल सुखदाई।
मरहि जो रण महि प्रजा उजारा,
उभय भाँति कल्याण हमारा
सकै न उद्धव नृप-मत मानी,
समुझायेउ नय नीति बखानी—
"मगध-विजय जो नृप! मन माहीं,
सेनप-योग्य कंस यह नाहीं।
कंस-नाश जो उर उद्देशा,
पठवब उचित न यहि अरि-देशा।
साधन-साध्य-विवेक बिहायी,
किये कार्य नहिं भूप भलाई।"

दोहा:— *भावी नृपति मन बसी, कीन्हे वचन न कान,*
पितु-निदेश लहि, सैन्य सजि, कीन्ह कंस प्रस्थान। १८

चली वाहिनी जस चतुरंगा,
गुप्तचरहु गवने तेहि संगा।
कंस-स्वभाव, शौर्य, गुण-दोषा,
तेहि प्रति वंश-प्रजाजन-रोषा।
सब सुत-पितु-विरोध, कटुताई,
बरनत मगेशहि जाय !
इत वाहिनि गिरिव्रज नियरानी,
उत मन युक्ति मगधपति ठानी।
यम पास निज दूत पठावा,
कहि मधु बैन भवन लै आवा।
कीन्हेउ अवनिनाथ सत्कारा,
कहि—"रण वृथा सैन्य संहारा।"
वंश-शौर्य, मान्य, यश गाथा,
कीन्हेउ मल्ल-युद्ध प्रस्तावा।

स्वीकारेउ कंसहु दुर्धर्षा,
भयेउ घरिक भीषण संघर्षा।

दोहा :— *चीन्हि तरुण-कौशल बलहि, नीति निपुण मगधेश,*
ब्याहीं तेहि निज द्वय सुता, कहि कहि नृप ! मथुरेश ! १६

शोधी लग्न, विपुल उत्साहा,
गवने गिरिव्रज बहु नरनाहा—
भौमासुर सुर-नर-भयकारी,
कन्या-हरण-व्यसन जेहि भारी।
म्लेच्छ, विदेशी, सीमा-वासी,
काल यवन नित भारत-त्रासी।
शाल्व विमान-बली, छलकारी,
बाण असुर अविजित, अविचारी।
चेदि-नरेन्द्र कुटिल शिशुपाला,
दंतचक्र कारूप-भुआला।
आर्य अनार्य अन्य बहु राजा,
जुरेउ पुरी जनु पाप-समाजा।
मिलि सब खलन कंस सन्माना,
सिखये अघ-शीलहिं अघ नाना।
जब लगि रहेउ विवाह-उछाहा,
कंस कलुष-अबुधि अवगाहा।

दोहा :— *दुहितन सँग दीन्ही बिदा, कसहिं मुदित मगेश,*
दीन्हें प्रचुर दहेज सँग, पाप-पूर्ण उपदेश। २०

पहुँचेउ मथुरा कस बहोरी,
राज्य-लालसा उर नहिं थोरी।
रचि कुचक्र पितु बंदी कीन्हा,
शासन-सूत्र हाथ निज लीन्हा।
सेनप, सचिव, राज जन जेते,
यदुवंशी निर्वासे तेते।

दानव असुर यवन अपनाये,
प्रसुर राज-पद तिन सब पाये।
वाहिनि म्लेच्छ नियोजि बढ़ायी,
प्रलय पयोनिधि जनु भयदाई।
राज-भवन नित बढ़ेउ विलासा,
चढ़ेउ राज-कर प्रजा हताशा।
लसहिं राजजन जहँ धनवाना,
हरहिं धान्य धन करि छल नाना।
निर्धन हित न्यायालय नाहीं,
न्यायहु पण्य मधुपुरी माहीं।

दोहा :— कंस धनी, अनुचर धनी, भोगहि भोग विशाल,
क्षुधित, अकिंचन ग्राम जन, विचरत जनु कंकाल। २१

शेष स्वार्थ, परमार्थ विनाशा,
धर्म रहेउ केवल उपहासा।
राज-पुरुष विप्रहिं कहुँ पावहिं,
व्यंग करहिं बहु त्रास दिखावहिं।
नासहिं विष्णु भक्त नर पायी,
भय वश हरिजन बसहिं दुरायी।
शास्त्र-चिंतवन कहुँ नहिं होई,
वेद पढ़हि ऐसहु नहिं कोई।
गुरुकुल जहाँ वेद ध्वनि छायी,
ध्वंस मात्र अब परत लखायी।
पहिले रही जहाँ मख-शाला,
करहिं तहाँ अब शब्द शृगाला।
जहँ हरिमंदिर प्रथम सोहाये,
तहाँ उलूकन वास बनाये।
बाढ़ेउ निशिदिन पाप कलापा,
भयेउ मनुज जीवन अभिशापा।

दोहा :— राज-भक्ति हरि-भक्ति भइ, राजेच्छा जन-धर्म,
राज-वचन श्रुति-ऋषि-गिरा, राजाज्ञा जन-कर्म। २२

सोरठा:—*गुरु जेहि कर यवनेश, असुर ससुर, राक्षस पिता,*
बरनि को सकहि अशेष, पाप-कथा तेहि - कंस कै।

सहि न सकी जब भारत माता,
सुमिरे श्रीहरि चिर जन-त्राता।
भयेउ पयोनिधि शब्द सोहावा,
काँपे असुर, सुरन सुख पावा—
"अवगत मोहि महि-क्लेश अनंता,
खल-पद-दलित धर्म श्रुति संता।
बंदी-भवन मनुजता आजू,
जल थल व्योम व्याप्त पशु-राजू।
हरिहौं वेगि धर्म-महि-भारा,
लेहौं पूर्ण कला अवतारा।
तजहु न धर्म, आत्म-सन्माना,
बिनु घन तिमिर न स्वर्ण विहाना।"
मुदित मातु सुनि स्वर वरदानी,
जनु सरसिज अरुणागम जानी।
उत हरि प्रथमहि अमर पठाये,
यादव गोप देह धरि आये।

दोहा:—*धरि गोपिन वपु श्रुति-ऋचा, भयीं सर्व साकार,*
लीन्ह रोहिणी-गर्भ पुनि, शेष आपु अवतार। २१

सोरठा:—*निज निज थलन विराजि, सकल प्रतीक्षत पंथ प्रभु,*
निवसति तारक-राजि, शशधर-श्री हित जिमि दिवस।

जन्मे जेहि विधि हरि व्रज आयी,
सो प्रसंग सब कहहुँ सुनायी।
अग्रज उग्रसेन वर देवक,
धर्म निरत, हरि भक्त सेवक।
गयेउ स्वर्ग निज सुता विहायी,
नाम देवकी दिव्य सुनाई।

शील सनेह धाम अभिरामा,
भयी विवाह योग्य वर वामा।
लखि कीन्हेउ मन कंस विचारा—
मम प्रतिपक्षी यदुकुल सारा।
उचित विरोध न बहुजन संगा,
लघु पिपीलिकहु वधहिं भुजंगा।
ब्याहि स्वकुल यह भगिनि किशोरी,
यदुजन कछुक सकन मैं फोरी।
सात्यकि, कृतवर्मा अरु उद्धव,
अरि कटि-बद्ध प्रीति नहिं संभव।

दोहा:—पै वसुदेव उदार-मति, रूढ़ न उर प्रतिशोध,
भगिनि नेह-बंधन बँधत, तजिहैं वैर विरोध। २४

अस गुनि पूर्व वैर विसरावा,
अक्रूरहिं खल भवन बोलावा।
मिलेउ मनहुँ खोयी निधि पायी,
बोलेउ कुटिल पूछि कुशलाई—
"यश समस्त तजी नय नीती,
तुमहि एक प्रतिपालत प्रीती।
मोरेहु हृदय प्रतीति पुरानी,
लेन बोलाय हितू निज जानी।"
यदि विधि करि अक्रूर प्रशंसा,
कहि वसुदेवहिं कुल अवतंसा,
निज मंतव्य नरेश जनावा,
प्रमुदित बधु पुलक तन छावा।
छितिपति उर परिवर्तित जानी,
गे वसुदेव-गेह सुख मानी।
सुनि संदेश शौरि मन सोचत,
डसन सर्प फण सतत सँकोचत।

दोहा:—वैर-कुटिलता क्रूरता, जागी मानस माँहि,
उमगेन नृप-गति गुमिरि, निकसेउ मुख तें—'नाहिं'। २५

सुनि भाषी सुफलक-सुत वाणी—
"सुमति तात, कस नीति भुलानी ?
बद्ध-मूल अब कंस-सिंहासन,
बल ते पलटि सकत नहिं शासन।
छल ते प्रथम लहेउ तेहि राजू,
छल ते सकत हमहु करि काजू।
छलिन संग जे छल नहिं करहीं,
दलित परास्त मूढ़ ते मरहीं।
कंसहिं आजु जो हम अपनावहिं,
लहि सान्निध्य प्रतीति बढ़ावहिं,
क्रम क्रम असुरन ते विलगायी,
अंत विनाशि सकत असहायी।
विनवहुँ सकल स्वार्थ भय त्यागी,
वरहु देवकिहिं यदुकुल लागी।"
मर्म वचन जब बभ्रु उचारा,
लज्जित शूर-सुवन स्वीकारा।

दोहा :— *सोचत छल यहि विधि मनुज, एक एक के संग,*
परम छली विधि ताहि छए, अन्यहि रचत प्रसंग। २६

मुदित महीप विवाह रचावा,
यदुकुल सकल निमंत्रि बोलावा।
भेंटत मिलत करत सत्कारा,
जनु सौजन्य आपु साकारा।
अनुहरि श्रुति-विधि कीन्हे राजा,
हर्ष सहित सब मंगल काजा।
लखि नृप-भवन आर्य-आचारा,
सुनि श्रुति मंत्र सुखी पुर सारा।
भयेउ सहित उत्साह विवाहा,
यौतुक अमित दीन्ह नरनाहा।
विदा मुहूर्त लखेउ नृप आवा,

कीन्हेउ स्वसा शौरि अभिनंदन,
हाँकेउ स्वकर अवनिपति स्यंदन।
लै भगिनिहिं जस चलेउ भुआला,
भयी व्योम वाणी विकराला—

दोहा :— *"कंस! जाहि गुनि निज भगिनि, करत आजु सन्मान,*
*उपजहि तेहि के गर्भ ते, हन्ता तव बलवान!"*२७

सुनी कंस भीषण नभवाणी,
कोपेउ निमिष माहिं अभिमानी।
स्यंदन त्यागि गहे कर केशा—
"वधहुँ देवकी मिटहि अँदेसा।
अवहिं उपाटहुँ विटप समूला,
फिरि कहँ कुफल, कहाँ फिरि फूला!"
अस कहि क्रूर कृपाण सँभारा,
कीन्ह देवकी हाहाकारा!
गहि सप्रीति तब भूपति-हाथा,
कह वसुदेव धरणि धरि माथा—
"पातक जदपि नाथ! जग नाना,
अवला-वध सम पाप न आना!
तुम यदुवंश सुवंश-विभूषण,
वधे वाम लागहि अति दूषण।"
सुनि बोलेउ खल द्विगुणित क्रोधा—
"मूर्ख! करसि कत व्यर्थ प्रबोधा!

दोहा :— *वरनत शास्त्र सुकर्म बहु, विविध धर्म-आख्यान,*
*तदपि आत्म-रक्षा सदृश, धर्म कर्म नहिं आन!"*२८

सुनि कुशब्द वसुदेव उदासा,
तजी देवकिहु जीवन आशा।
विलपति वाम पतिहिं लपटानी,
सहसा शौरि युक्ति मन ठानी।

छुवत न पयहु विनय ते दुर्जन,
छल ते विषहु पियावत बुधजन।
भाषेउ कंसहिं—"सुनहु नरेशा!
को अस तुमहिं देय उपदेशा।
आजु निखिल भारत महि माहीं,
शास्त्र-मर्म-विद्, तुम सम नाहीं।
करहु युक्ति कछु विनवत दासा,
बचहि वाम, प्रभु-संकट नाशा।
भयी जो भयद व्योम पथ वाणी,
भगिनी ते न नाथ-हित-हानी।
जीवन-दान देवकिहिं देहू,
उपजहिं जबहिं सुवन तुम लेहू।

दोहा :— *बचिहै यहि विधि नाथ-यश, बचिहैं अवला-प्राण,*
*होइहै निष्फल नभ-गिरा, निष्फल दैव-विधान।"*२६

भावी-वश जनु भूप अभागा,
सुनत वचन कछु सोचन लागा।
त्यागी असि, त्यागे कर केशा,
बोलि अमात्यन दीन्ह निदेशा—
"लै दंपति कारागृह डारहु,
प्रहरी पट्ट दिशि दिशि बैठारहु।
प्रकटहिं गर्भ-चिह्न जब वाला,
देहु सँदेश मोहिं तत्काला।
जन्मतहीं वधिहौं अँगजाता,
छलि न सकत मोहिं आपु विधाता।"
भाषत वचन सगर्व कठोरा,
पठये दंपति कारा ओरा।
भीर अपार जदपि थल माहीं,
रोकि अनर्थ सकेउ कोउ नाहीं।
अभय कस मगधेश सहारे,
गवने गृह विलपत जन सारे।

दोहा :— *व्याप्त भीति यदुजन-हृदय, लाग कंस कुल-काल,*
भागे तजि तजि मधुपुरी, इत उत बिकल बिहाल। २०

गये न सुफलक-सुत प्रिय भाषी,
रहे पुरी नृप-वृत्ति उपासी।
उद्धव, युयुधानहु, कृतवर्मा,
तजेउ न नगर, तजेउ नहिं धर्मा।
गवने शौरि-सदन तत्काला,
व्याकुल लखी रोहिणी बाला।
पीत देह-लतिका कुँभिलाई,
राहु-ग्रस्त जनु इन्दु-जुन्हाई।
गर्भवती वसुदेव-पियारी,
सींचति मही मोचि दृग वारी।
समुझि अनिश्चित कंस स्वभावा,
उद्धव चाहत तियहिं बचावा।
जानि नंद-वसुदेव-मिताई,
दीन्ही गोकुल धाम पठायी।
नंद गोप राखी सन्मानी,
मानी भगिनि सदृश नँदरानी।

दोहा :— *काटति कंत-वियोग दुख, इत रोहिणि बिलखाय,*
उत देवकि वसुदेव दोउ, बंदीगृह असहाय। २१

लागत बंदी-भवन भयावन,
मनहुँ नरक साक्षात अपावन।
कोट विकट चारिहु दिशि घेरे,
भय वश कोउ न आवत नेरे।
परसति व्योम उच्च प्राचीरा,
निरखत धीरहु होत अधीरा।
द्वार वज्रवत् लोह किँवारे,
दिशि दिशि फिरत सजग रखवारे।
निवसत दंपति तजि सब आशा,
व्याप्त दिवस निशि उर नृप-त्रासा।

जब देवकी प्रथम सुत जायेउ,
सुनत सरोष कंस उठि धायेउ।
अनुनय विनय कीन्हि बहु माता,
सुनी न एक कंस रिस-राता।
हिय-धन छीनि जननि ते लीन्हा,
निज कर क्रूर बाल वध कीन्हा।

दोहा :— *निर्दय मुदित निरीह हनि, अविदित विधि-व्यापार,*
जानत व्याघ्र कि तेहि बधिक, दै अज करत प्रहार ! २२
यहि विधि सुत पै सुत बधे, जब नृशंस मथुरेश,
जननि-गर्भ प्रविशे स्वयं, वचन-बद्ध विश्वेश। २३

प्रविशत तनु गुरु जगत-विधाता,
भयी असह्य भार कृश माता।
पीत कान्ति युत देह प्रकाशी,
उषः काल जनु शशि-निशि भासी।
सुमिरि सुमिरि निज शिशुन विनाशा,
विलपति अत्र, न उर उल्लासा।
जानि हरिहु जननी दुख-भारा,
स्वप्न मिस सूचेउ अवतारा।
सोवत निशि निरखेउ महतारी,
वामन दिव्य वेष मनहारी।
धृत चक्रादिक वैष्णव लाञ्छन,
करत सतर्क गर्भ संरक्षण।
बहुरि विलोकेउ आपुहिं माता,
खगपति-पृष्ठ गगन-पथ जाता।
जागि प्रभात जननि बड़भागी,
कहेउ स्वप्न स्वामिहिं अनुरागी।

दोहा :— *पुलकित सुनतहि शूर-सुत, कहत तियहिं सन्मानि—*
"त्रेता ये ही स्वप्न शुभ, देखे दशरथ-रानि। २४

सोरठा:—*गर्भ माहि यहि बार, विष्णु-तेज श्रीराम सम,*
आये जगदाधार, होइहै विफल न नभ-गिरा।"

मुनि पति-वचन हृदय भरि आवा,
आनँद-वारि विलोचन छावा।
बीतेउ क्रम क्रम दोहद त्रासा,
पुष्ट सर्व अवयव तन भासा।
जीर्ण पत्र जनु लता विहायी,
शोभित नव मनोज्ञ पुनि पायी।
चढ़ति दिवस निशि गर्भ दुरावा,
घटा ओट चह चन्द्र छिपावा।
गयेउ वसन्त, ग्रीष्म ऋतु आयी,
विगत ग्रीष्म, वर्षा नियरायी।
मास भाद्रपद, पख अँधियारा,
रोहिणि नखत, दिवस बुधवारा।
तिथि अष्टमी, समय अधराता,
कृष्ण-जन्म जग-मंगल-दाता।
गगन घटा गरजत घिरि आयी,
धरणि बाल रोदन ध्वनि छायी।

दोहा:— *तड़कि तड़कि उत नभ तड़ित, भरेउ अखण्ड प्रकाश,*
इत महितल शिशु शशि वदन, कीन्हेउ निशि-तम नाश। २५

सोरठा:—*छायी ज्योति अपार, धरा गगन एकहि भये,*
भयेउ कृष्ण अवतार, अखिल विश्व उद्धार हित।

देखी दंपति बालक शोभा,
रूप अनूप प्राण मन लोभा।
हृदय-कुमुद शशि-मुख लखि फूला,
कंस नृशंस सुमिरि उर शूला।
जनु मज्जत सुरसरि भव-तरणी,
बोरेउ कोउ सहसा वैतरणी।

जननि अधीर सवेग उसासू,
झरझर झरे विलोचन आँसू।
छिन्न हृदय जनु मौक्तिक हारा,
झरि मुक्ता-फल रहे अपारा।
विलपति,कहति—"विपति पति!टारहु,
करहु युक्ति कछु तनय उबारहु।
छल बल नाथ! अबहिं कछु कीजै,
सुत पहुँचाय अनत कहुँ दीजै।
नाहिंत निश्चय कंस सँहारहि,
होत प्रभात वत्स मम मारहि।"

दोहा:— *धाय धाय पति पद परी, पुनि पुनि तिय अकुलानि,*
निराधार वसुदेव उर, बाढ़ी पल पल ग्लानि। २६

सोरठा:— *सोचत—धिक पुरुषत्व! धिक जन्महु नृप कुल विमल,*
धिक विद्या वर्चस्व! सकत रच्छि नहिं निज सुतहु।

जबहिं सहठ कछु युक्ति विचारत,
दुर्गम दुर्ग देखि हिय हारत।
तेहि पै निशि, घन गरजत घोरा,
दामिनि दमकति शब्द कठोरा।
धीरज-वारिधि सहज गँभीरा,
वाष्प कण्ठ वसुदेव अधीरा।
दंपति सुत विलोकि विलखाहीं,
एकहिं एक लखहिं पछिताहीं।
बिनु अवलंब मातु पितु जाना,
सहसा प्रकट भये भगवाना।
निमिषहि महँ शिशु वेष दुरावा,
रूप चतुर्भुज प्रभु प्रकटावा।
जलधर देह, कमल दल लोचन,
विद्युत वसन, भाल गोरोचन।
कौस्तुभ कंठ, वक्ष वनमाला,
उर श्रीवत्स-इन्दु-द्युति-जाला।

दोहा :— *शिर किरीट, कुण्डल श्रवण, मखसूत्र कटि धाम ,*
शंख, चक्र, वारिज, गदा, चतुर्हस्त अभिराम । २७

निरखि दिव्य वपु आनँददाता ,
विस्मय हर्ष विवश पितु माता ।
दृग कर्षित इन्द्रिय मन प्राणा ,
जनु प्रति रोम करत छवि पाना ।
दंपति सचकित मोहित जानी ,
कही गँभीर मधुर हरि वाणी ।
गिरा वदन विभु वारिज भाषी ,
रदन पंक्ति द्युति युक्त प्रकाशी ।
मानहुँ व्योम-गामिनी गंगा ,
वही धवल प्रभु पट द्युति संगा ।
"त्यागहु भीति !—" कहेउ भगवाना ,
"भय सम मानव-अरि नहिं आना ।
मैं तुम माहिं, तुमहु मोहिं माहीं ,
स्वल्पहु विस्मय-कारण नाहीं ।
एकहि तत्त्व व्याप्त जग सारा ,
नहि कहुँ मैं, तुम, मोर, तुम्हारा ।

दोहा :— *परति निनिधता नयन पथ, सो प्रतिबिंब समान ,*
निज छाया लखि शिशु सभय, नहि वस्यक मतिमान । २८

सोरठा :— *यह समस्त ससार, भीतहि बंदीधाम सम ,*
को तेहि बाँधन हार, खुलि खेलत भव-नाट्य जो ।

पूर्व लहन हित मोहिं सुत वेषा ,
कीन्हेउ तप तुम दोउ अशेषा ।
दीन्हेउँ मैं वर तेहि अनुसारा ,
लीन्हेउँ आजु आय अवतारा ।
जमुना-पार ग्राम अभिरामा ,
गोप-निकेतन गोकुल नामा ।

बसत नंद तहँ सुहृद तुम्हारे,
धर्म-निकेत गुणन-उजियारे।
यशुमति प्रेममयी नँद-नारी,
महि मातृत्व मनहुँ तनु-धारी।
गोकुल बेगि मोहिं लै धावहु,
नंद यशोदा ढिग पहुँचावहु।
मोरि योगमाया गुण-खानी,
यशुदा-गर्भ आजु प्रकटानी।
राखि मोहिं, तेहि यहि थल लावहु,
कंसहिं कन्या जन्म जनावहु।

दोहा:—*संतत मम सानिध्य-प्रिय, शेष धारि नर देह,*
प्रकटे रोहिणि गर्भ ते, प्रथमहि ब्रज नँद गेह। ३९
करि व्यतीत शैशव सुखद, अग्रज साथ सप्रीति,
*मिलिहौ मधुपुर आय पुनि, त्यागहु उर भ्रम भीति।"*४०

सोरठा:—*कारागार किंवार, उघरे सहसा अस कहत,*
श्रीधर विश्वाधार, विहँसे धरि शिशु वपु बहुरि।

चमत्कार वसुदेव विलोका,
नवस्फूर्ति उर, गत भय शोका।
धाय शूर-सुत सुवन उठावा,
लखेउ न जननि-नयन जल छावा।
द्वार पार पल लागत आये,
प्रहरी इत उत सोवत पाये।
सघन तिमिर निरखत कठिनाई,
दमकति दामिनि देति दिखायी।
वारिद विद्युत महि मिलि गरजत,
होत रोर रहि रहि हिय लरजत।
दायें कबहुँ नाग फुफकारत,
बायें सहसा सिंह दहारत।

सन्मुख हहरति जमुन-तरंगा,
विकट प्रवाह धीर मन भंगा।
पै उमंग नव पितु, अँग माहीं,
प्रभु पद दृष्टि, उडत जनु जाहीं।

दोहा :—धँसे सरित धृत शीश सुत, बाढेउ वारि प्रवाह,
हरि पद परसन हेतु जनु, जमुना उरहु उछाह। ४१

बाढेउ जल मुख लगि पल माहीं,
बूडत उबरत पग न थिराहीं।
परसे सरि पद, प्रभु हुंकारा,
उतरेउ वारिहु, लागे पारा।
बढत चले गोकुल नियराना,
लखि नँद सदन हृदय हुलसाना।
प्रविशे यशुमति-मंदिर माहीं,
माया वश कोउ जागेउ नाहीं।
शयित योगमाया तहँ पायी,
राखि सुवन तेहि फिरे उठायी।
जमुन पार पुनि मधुपुर आये,
प्रहरी वैसेहि सोवत पाये।
पठयेउ वृत्त प्रात नृप पाहीं,
जन्मी सुता काल्हि निशि माहीं।
जदपि रहस्य कंस नहिं जाना,
तोप न उर, मन संशय नाना।

दोहा :—तर्क वितर्क अनेक करि, कन्यहि लीन्ह उठाय,
शिला पछारन जस चहेउ, गयी हाथ निपुचाय। ४२

निपुचि उडी, पहुँची आकाशा,
प्रसर मनहुँ अचिरांशु प्रकाशा।
तड़की अंतरिक्ष-पथ घोरा,
गिरत वज्र जनु रोर कठोरा—

"कंस ! व्यर्थ मोहिं चहेउ पछारा,
उपजेउ अनतहिं मारनहारा।
करि न सकत खल ! अब शिशु-हानी,
लखत न मृत्यु शीश मँडरानी।"
सुनि परिताप कंस उर छावा,
व्यर्थ देवकी शिशुन नशावा।
कीन्हे दंपति मुक्त नरेशा,
गये गेह हिय हर्ष अशेषा।
भूपति कुपित भवन निज आवा,
बोलि पूतनहिं वचन सुनावा—
"ग्राम ग्राम, व्रज व्रज नवजाता,
शिशुन खोजि द्रुत करहु निपाता!"

दोहा :— *शोच विवश मथुरेश इत, होत हृदय अति दाह,*
उत गोकुल नँद गोप गृह, उमहेउ हर्ष प्रवाह। ४२

गत-तन्द्रा यशुमति शिशु देखेउ,
अविदित वृत्त तनय निज लेखेउ।
अंब हृदय नहि हर्ष समायी,
नंद मुदित जनु नव निधि पायी।
गोकुल मंगल-तूर्य बजावा,
सुन्दर सुवन महरि उपजावा।
वंदी जन यश गावत धाये,
पढ़त स्वस्त्ययन द्विजगण आये।
धाय धाय नँदराय सुजाना,
सन्माने दै गोधन दाना।
श्रुति विधि जातकर्म आचारा,
कीन्हेउ कुलगुरु हर्ष अपारा।
निर्भय ग्वाल निसान बजावहिं,
तारी दै दै नाचहिं गावहिं।
भयेउ सकल गोकुल मनचीता,
[illegible] मनहुँ [illegible]।

दोहा — *माखन हरदी दूध दधि, घृत जल साथ मिलाय,*
छिरकहिं एकहिं एक सब, गोप ग्वाल हर्षाय। ४४

धाये एक नन्द ढिग आये,
परत चरण गहि महर उठाये।
एक पुलकि गोवत्स सँवारे,
लाये गोधन नंद दुआरे।
एक हँसत मन आपुहि आपा,
विह्वल देह हर्ष हिय व्यापा।
एक गिरत आनँद अधिकाई,
एक अंक भरि लेत उठायी।
गृह गृह वंदनवार बँधाये,
गृह गृह फूलन मंडप छाये।
गृह गृह मोतिन चौक पुरायी,
राख मंगल कलश सजायी।
गृह गृह होम हवन सुर पूजा,
गृह गृह श्रुति ध्वनि गोकुल गूँजा।
बाजत पणव शंख सहनाई,
गृह गृह गोकुल बजति बधाई।

दोहा — *अक्षत रोचन दूब दधि, लै लै कंचन थार,*
यूथ यूथ गोपी चलीं, निरखन नंदकुमार। ४५

प्रकृति अङ्क पालित वर नारी,
तप्त कनक द्युति सहज सँवारी।
अंगराग अरुणाधर-ज्योती,
मंजुल हास समुज्वल मोती।
चल अपांग रुचि खंजन लानी,
वीणा वेणु विनिंदक वाणी।
विजित मलयगिरि पवन-सुवासा,
श्वास समीर सुरभि पटवासा।
पद पंकज आकर्षित अलिगण,
साइ मुखर कल चरण आभरण।

वितरत वदन चंद्र द्युति यामा,
पहुँची प्रमुदित यशुदा-धामा।
अपलक निरखहिं बाल अनूपा,
पियहिं दृगन जनु सुधा स्वरूपा।
बार बार सब देहिं असीसा,
"जियहु महरि-सुत ! कोटि बरीसा।"

दोहा:— *यहि विधि जन्मोत्सव भयेउ, बरसेउ आनँद-मेह,*
सिंचित प्रभु नव प्रीति-जल, सरसत यशुमति गेह। ४६

जो गुण कर्म विहीन, अजाता,
परम तत्व विधि-शिव-अज्ञाता,
क्रीड़ा जासु सृष्टि यह सारी,
रचत सकौतुक देत सँहारी,
कहि कहि वत्स ! लाल ! सुत ! छौना,
दीन्हे तेहि बहु मातु खिलौना।
पलना शयित किलकि प्रभु खेलत,
कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत।
नँद-गृहिणी दुलराय झुलावति,
वदन विलोकति, पुलकति, गावति—
"सोवहु ! सोवहु ! चिर दुख-मोचन !
सोवहु ! सोवहु ! अंबुज-लोचन !
सोवहु ! सोवहु ! वदन-सुधाधर !
सोवहु ! नख-शिख-मृदुल-मनोहर !
आउ री निँदिया ! कान्ह बोलावहि,
काहे न निँदिया ! आय सोवावहि।"

दोहा:— *जागत जो लय काल हू, संसृति सकल सोवाय,*
पलना रही सोवाय तेहि, यशुमति लोरी गाय। ४७

हर्षित सुनत गीत अभिरामा,
मूँदे दृग निज कौतुक-धामा।

अँग फरकाय स्वल्प मुसकाने,
श्याम यशोमति सोवत जाने।
पुनि पुनि माता वदन निहारति,
भाग्य सराहि हर्ष जल ढारति।
ताहि समय आये बलरामा,
रोहिणि-तनय कान्ति हिमधामा।
चपल श्याम-पलना ढिग जायी,
पूछत यशुदहिं कछु मुसकायी—
"को यह, मातु! कहाँ ते आवा?
बाबा यहि केहि हाट बिसावा?
लागत यह अति सुघर सलोना,
लेहौं ऐसहि महूँ खिलौना।"
"तुम्हरेहि खेलन हेतु मँगावा,"
हँसी महरि, हलधर सुख पावा।

दोहा:—*उत्कंठित बलराम उर, झूलेउ पलना साथ,*
लगे झुलावन झूमि झुकि, संकर्षण निज हाथ। ४८

लखि अग्रज गति हरि हर्षाने,
दृग उघारि पुनि पुनि मुसकाने।
मुदित बंधु चह गोद उठावा,
उठे न हरि, बहु रुदन मचावा।
सुनत यशोमति खीझति धायी—
"दीन्हेउ नटखट बाल जगायी।"
"मैं नहिं जानत यह अस रोना,
छुइहौं अब नहिं मातु खिलौना!"
बाल-वचन सुनि विहँसी माई,
हरिहु अंब लहि रहे चुपायी।
आयी तबहिं रोहिणी माता,
नंदहु आनँद-पुलकित गाता।
प्रमुदित दोउ लखि वदन मयंका,
चहत लेन हरि निज निज अंका।

स्वागत शिशु नहिं गोद यशोदा,
छायेउ भवन विनोद प्रमोदा।

दोहा :— *वृद्धि नाश विरहित कहत, जेहि श्रुति शास्त्र पुराण,*
लही वृद्धि तेहि नित्य नव, नन्द सदन भगवान। ४९

उत तनु ललित पूतना धारे,
विचरति फिरति ग्राम व्रज सारे।
जहँ नवजात बाल लखि पावति,
गरलस्तन निज पान करावति।
गोकुल यशुमति स्वागत कीन्हा,
गुनि कुल-बाला आसन दीन्हा।
वाणी पुष्पित कलुषि सुनायी—
"सुवन तुम्हार असीसन आयी।"
माता शयित श्याम दरसाये,
मन ईषत भवपति मुसकाये।
महरि करन कछु काज सिधारी,
मायामय हरि आँखि उघारी।
मुदित पूतना गोद उठावा,
चूमि चन्द्र मुख कण्ठ लगावा।
छलिनि विषस्तन शिशु-मुख दीन्हा,
वज्र शरीर श्याम निज कीन्हा।

दोहा :— *दिग्ध पयोधर दृढ़ गहेउ, सहठ कीन्ह पय पान,*
प्रलपति विलपति पूतना, देत न पै प्रभु जान। ५०

विष-पय सँग कर्षे प्रभु प्राणा,
परी धरणि विरहित गति ज्ञाना।
प्रकृत शरीर मरत निज धारा,
जनु विभीषिका सह आकारा।
भयेउ कोलाहल गोकुल भारी,
[illegible]

विकल विलोकि कलेवर सारे,
हरि किलकत मृत-वक्ष निहारे।
त्रस्त यशोमति शिशु लै भागी,
पुनि पुनि हिय लगाय अनुरागी।
झारेउ शिर गोपुच्छ भँवायी,
कीन्ह स्वस्ति-वाचन नँदरायी।
आरति वनिता वृन्द उतारी,
प्रकुपित देत पूतनहिं गारी।
सुतहिं पियायेउ पय महतारी,
प्रमुदित ग्राम विगत भय भारी।

दोहा :—*सुनत पूतना-अन्त उत, नृप उर भीति अपार,*
जानेउ निश्चय नँद सदन, जन्मेउ मम हतार। ५१

भवन यूथपति भूप बोलाये,
शकट, प्रलन, अघासुर आये।
तृणावर्त, वत्सासुर पापी,
वक, धेनुकहु साधु-सतापी,
मल्ल युगल मुष्टिक, चाणूरा,
केशी, व्योम विकट बहु शूरा।
नृपति पूतना-निधन जनावा,
उर भय सशय प्रकटि सुनावा—
"विधिहु त्नराति-रहस्य दुरावा,
मथुरा कहि गोकुल प्रकटावा।
करहुँ न अरहिं जो अरि अवसाना,
भये प्रौढ़ हरिहैं मम प्राणा।"
सुनत कीन्ह दल-मडल प्रलपन—
"त्यागत प्रभु ! कस दर्प पुरातन ?
शोच उचित अस शिशु हित नाहीं,
लहन निदेश हतहिं पल माहीं।"

दोहा :—*सुनि जल्पन यहि विधि विपुल, कसहिं तोष अपार,*
इच्छत लय-जलनिधि करन, श्वान-पुच्छ गहि पार। ५२

पठिल शकटासुर ब्रज आयी,
शकट रूप गृह रहेउ दुरायी।
सहज शकट यशुदा तेहि जाना,
धरे लाय दधि भाजन नाना।
ढिगहि पालने बाल सोवायी,
आपु करन गृह काज सिधायी।
सहसा क्षुधित भुवनभर जागे,
अँगुठा पान करन प्रभु लागे।
निज निकटहि पुनि शकट निहारी,
समुझेउ असुर-मर्म असुरारी।
मंद मंद पद पद्म उठायी,
गति मायापति सहठ चढ़ायी।
तकि कीन्हेउ पुनि पाद प्रहारा,
गिरेउ शकट, गृह शब्द अपारा।
टूटेउ अक्ष, युगहु बिलगाना,
ढरकेउ दधि, फूटे घट नाना।

दोहा :— *कौतुक ही शकटहिं हतेउ, प्रकटेउ ब्रज नहि भेद,*
पहुँचेउ मथुरा वृत्त जब, मथुरापति उर खेद। ५३

तृणावर्त पुनि भूप पठावा,
चक्रयान वपु ब्रज चढ़ि आवा।
धूलि निखिल गोकुल भरि छायी,
अँधाधुंध नहिं परत लखायी।
उड़त असुर जस नँद गृह धावा,
क्रीडत कृष्णहिं आँगण पावा।
लै सँग बालक व्योम उड़ाना,
बढ़ी श्याम-गरिमा अकुलाना।
हरि खेलाय खल शिला पछारा,
चापि ग्रीव हठि जीव निकारा।
यशुमति सचकित आँगन आयी,
बाल न पलना परेउ लखायी—

"श्याम! श्याम! हा श्याम!" पुकारहिं ;
"को निधनी के धनहिं उबारहिं!"
गृह गृह व्रज बिलखति महतारी,
करुणाहि क्रन्दति जनु तनु धारी।

दोहा :— *खोजत विलपत गोप जन, निरखेउ असुर विशाल,*
मृतक-वक्ष खेलत लखे, दनुज-दलन , नँदलाल। ५४

विस्मित मुदित कहत व्रजवासी—
"कस शिशु वधेउ असुर बल-राशी!"
धाय उठाय सनेह कन्हाई,
देखत सब कहुँ चोट कि आयी?
"दैत्य दुरंत कीन्ह अपघाता,
केहि विधि बचेउ बाल मृदु गाता!
यशुमति! तोहिं न आवति लाजा,
भयेउ सुतहु ते बढ़ि गृह काजा!
जो तोहिं भारू भयेउ कन्हैया,
बेचि देहि व्रज बहुत लेवैया!"
करत व्यंग व्रज जन यहि भाँती,
यशुमति बाल लगावति छाती—
"भये सकल व्रज लोग लबारा,
कहत—'तोहिं नहिं कान्ह पियारा'।
ईश सहाय बचेउ सुत अब की,
भूलि न तजहुँ कबहुँ एकाकी।"

दोहा :— *बाढ़ेउ नित व्रज जन हृदय, हरि हित नेह अशेष,*
व्योम मृगांक विलोकि जिमि, उमहत लहरि जलेश। ५५

नाम करन कर अवसर आवा,
गर्ग गुरुहिं वसुदेव बोलावा।
भुवन-रहस्य सकल समुझायी,
गोकुल नँद गृह दीन्ह पठायी।

राज-पुरोहित लहि मन मोदा,
प्रणमे पद दोउ नंद यशोदा।
डारेउ बहुरि चरण शिशु आनी,
लोचन लुब्ध, शिथिल मुनि-वाणी।
भाषेउ श्रपि धरि धैर्य हठाता—
"जन्मे परब्रह्म साक्षाता।
असुर-विनाशन, जन-हितकारी,
नाम कृष्ण, विष्णुहि अवतारी।
कंस-विनाश जासु कर होई,
शिशु-स्वरूप प्रकटेउ भज सोई।
पूर्व जन्म यशुमति तप कीन्हा,
दूध पियावन हित वर लीन्हा।

दोहा — *बाल-केलि लीलामयी, सकल अलौकिक कर्म,*
पालहु विस्मय भीति तजि, प्रकटहु नहि विभु-मर्म।" ५६

गवने गर्ग गुरु-सुत धामा,
बाढ़े इत हरि गोकुल ग्रामा।
भयेउ अन्नप्राशन मन भावा,
शिशु मुख नंद आपु जुठरावा।
सद्यस्नात वदन छवि छलकी,
तनु द्युति मोरचंद्र जिमि झलकी।
भूषण वसन रुचिर पहिराये,
कटि किंकिणि, गर हार सोहाये।
कंठ बघनखा कठुला राजत,
श्याम शरीर पीत पट भ्राजत।
शोभित शीश लाल चौतनिया,
रुनझुन बजत पाँव पैंजनिया।
मृदुल कपोल, लोल युग लोचन,
भाल डिठौना, कल गोरोचन।
लट लटकी विधु आनन छायी,
पियत मधा जन राह चोरायी।

दोहा :— *मोर-चन्द्रिका मनहरनि, नील नलिन तनु श्याम,*
मेघ मध्य जनु इन्द्रधनु, लसत सहित अभिराम। ५७

कहहिं अटपटी कलबल बतियाँ,
दमकहिं अरुण अधर दुइ दतियाँ।
उदित बालरवि-छवि पै प्राची,
दामिनि दमकि दमकि जनु नाची।
अंगुलि आभा मंजुल छायी,
नख मिस मनहुँ बसेउ विधु आयी।
बंधुक सुमन अरुण रुचि चरणा,
घुटरुन चलत श्याम नँद-अँगना।
इत यशुमति उत महर बोलावत,
दोउ परस्पर होड़ लगावत।
चतुर श्याम पितु मातु रिझावहिं,
बारी बारी दुहुँ दिशि धावहिं।
प्रांगण पार द्वार लगि आयी,
लखि देहरी अटकहिं अकुलायी।
नाँघन चहहिं नाँघि नहिं पावहिं,
गिरहिं धरणि बहु रुदन मचावहिं।

दोहा :— *जेहि बल कीन्हेउ जग निखिल, तीनिहि चरण प्रमाण,*
तेहि बल यशुदा, देहरी, चढ़ि न सकत भगवान। ५८

बाढ़े औरहु कछुक कन्हाई,
लागे कहन यशोदहिं माई।
नंदहिं बाबा, बधुहिं मैया,
लै लै नाम बोलावहिं गैया।
सीखेउ रोटी माखन माँगन,
मिलत देर मचलहिं गिरि आँगन।
लेहि बहुरि बलराम बोलायी,
घेरहिं जननिहिं दूनहु भाई।
यथेन संकर्षण इत सारी,
खईंचत वेणी कृष्ण पछारी।

आये ताहि समय नँदरायी,
हँसत कहत—"भल कीन्ह कन्हाई!
यशुदा कृपण, कृपण-उपजायी,
मोर अभाग ब्याहि घर आयी।
यहि भरि जन्म तात! तरसावा,
कबहुँ न माखन मोहिं खवावा।

दोहा :—*कीन्ह सिखावन तुम उचित, चिरजीवहु दोउ भाय",*
दीन्ह महर अस कहि हरिहि, माखन स्व-कर खवाय। ५६

महरि हृदय नहिं हर्ष समायी,
सुतहिं सुनाय कहति मुसकायी—
"माखन खाये बढ़ति न चोटी,
होति लाल! पय पियतहि मोटी।"
सुनतहि फेंकेउ कर ते माखन,
चोटी गहि लागे पय माँगन—
"देहि अबहिं मोहिं दूध पियायी,
कबहुँ न खैहौं माखन माई।"
पियेउ घूँट दुइ दूध कन्हैया,
कहत—"न बाढ़ी चोटी मैया।"
रोवत सुतहिं मातु बहरावा,
अंक उठाय मयक दिखावा।
निरखत कहत—"मीठ यह माई,
खैहौं चंदा देहि मँगायी।"
मातु विविध पकवान मँगाये,
हठी कान्ह सब फेंकि बहाये।

दोहा :—*उडत चिरैयाँ कान्ह कहँ, दरसायी बहु भात,*
मानत एकहु बाल नहिं, अधिक अधिक बिरुझात— ६०

"लाउ मातु! मैं चंदा लेहौं,
भूख लागि, मैं चंदहि खैहौं।"

ससकि अंक ते मुसकहि खीमहि,
माँगत चंद्र कहाँ ते दीजहि!
मातु मनहि मन युक्ति दृढ़ायी,
जल भरि थार धरेउ मँगवायी।
"आउ रे चंदा! कान्ह बोलावहि,
आउ! लाल तोहि संग खेलावहि।
मधु मेवा पकवान मिठाई,
तोहि खवावहि कुँवर कन्हाई!"
जननी जल-प्रतिबिंब देखावा—
"देखु लाल! चंदा यह आवा!"
गहन चहत जल हाथ चलावत,
पकरत शशधर हाथ न आवत।
"यह तौ मलमलात अकुलायी',
इत पकरहुँ उत जात परायी!"

दोहा :— *कहति यशोमति—"इंदु अति, तुम ते लाल! डेरात,*
जान देहु अब गेह निज, साँचहु यह अकुलात!" ६१

गहत हिमांशु नयन अलसाने,
अंग मोरि फिरि फिरि जमुहाने।
लाय मातु पलना पौढ़ाये,
थपकि थपकि लालन दुलराये।
पुनि कछु कथा कही सुखकारी,
गये सोय हरि देत हुँकारी।
सोयत झझकें जब पर्यंका,
बिकल जननि उपजी उर शंका—
साँझहि ते बालक बिलमाना,
यहु समुझायेउँ कहा न माना।
अतिशय बिलखेउ आजु कन्हाई,
खेलत कोउ कुदीठि लगायी।
लै लै राई नोन उतारति,
कछु पढ़ि पढ़ि तन दोष निवारति।

दोउ कर जोरि शीश लगि लावति,
सजल नयन कुल-देव मनावति—

दोहा :—"मेटहु मोरे बाल के, रोग दोष जंजाल",
बार बार यशुमति कहेउ, सुख सोये नँदलाल। ६२

होत प्रभात जननि पुनि जागी,
सुतहिं जगावति अति अनुरागी—
"विगत निशा, शशधर छवि छीणा,
दुरे नखत, दीपक द्युति-हीना।
मुँदे कुमुद-दृग, कुवलय फूले,
अलि मिलि वायु-दोल हँसि भूले।
पिक गावत, खग बोलत वाणी,
जागहु! जागे सब वन प्राणी।
बाजी वेणु, धेनु वन जाहीं,
बिछुरत वत्स विलोकि रँभाहीं।
प्रांगण दिनमणि किरण प्रकाशी,
जागहु! जागे सब व्रज वासी।
आये द्वार सखा सब खेलन,
जागहु! जागहु! कमल-दलेक्षण!"
'सखा' शब्द सुनतहिं भगवाना,
त्यागेउ विहँसि वदन-परिधाना।

दोहा :—प्रात समय प्रभु मुख लखेउ, प्रमुदित यशुदा नंद,
मथत सिंधु जनु फेन फटि, निकसेउ पूरन चंद। ६३

धोय वदन विधु कीन्ह कलेवा,
खेलन चले संग बलदेवा।
ऊँचे चढ़ि यशुमति गोहरावहि—
"दूरि लाल! जनि खेलन जावहि।"
खेलत सुबल सुदामा साथा,
होड़ा-होड़ी मारत हाथा।

खेलत खेलत बाढ़ी रारी,
हारे श्याम रोष उर भारी।
लखि कह हलधर हरिहिं खिझायी—
"जन्मे बिनु पितु मातु कन्हाई!"
रंग भंग सुनि व्यंग रिसाने,
मातु समीप आय बिलखाने—
"मैया! दाऊ बहुत खिझावा,
कहत—'बबा तोहि हाट बिसावा'।
पूछत सखा—'कहाँ तव ताता'?
सब मिलि कहत तुमहु नहिं माता!

दोहा :— *'नंद यशोदा गोर तनु, तुम कत श्याम शरीर'?*
चुटकी दे पूछत सखा, सिखे देत बलवीर।" ६४

मुसकत श्याम कहत, अति खीझत,
रोष बिलोकि मातु मन रीझत।
"सुनहु कान्ह! बलराम चबाई,
को अस गोकुल तेहि पतियायी?
गोधन सौं सुनु साँच कन्हैया!
मोहन पूत, यशोमति मैया।
कहत कार जो तोहि लबारा,
बिधु ते अधिक बदन उजियारा।"
सुनि बिहँसे हलधर दिशि हेरे,
जेंवन हेतु तबहिं नँद टेरे।
यशुदा प्रमुदित पाँय पखारे,
बैठे नंद संग दोउ बारे।
थोरहिं खात, बहुत लपटावत,
आपु न खात नंद-मुख नावत।
बिहँसत पितु कछु कौर खवाये,
लागि मिरिच लोचन भरि आये।

दोहा :— *रोवत भागे द्वार दिशि, गोद रोहिणी लीन्ह,*
फूँकति पुनि-पुनि शिशु बदन, मधुर कौर फिरि दीन्ह। ६५

एक दिवस मनसुखा सुदामा,
लाये हरिहिं बाँह गहि धामा।
कहेउ यशोदहिं दुहुन सुनायी—
"हम देखेउ हरि माटी खायी।"
कह हरि—"खेल हारि ये रूठे,
लाये दंड दिवावन झूठे।"
यशुमति कीन्ही पुत्र प्रतीती,
खेलन पठये श्याम सप्रीती।
सखन संग खेलत सुखदानी,
निरखति सुतहिं सजग नँदरानी।
सहसा पुनि हरि माटी खायी,
देखत महरि रोष करि धायी।
पकरेउ भुज, लीन्ही कर साँटी,
पुनि पुनि कहति—"निकारहु माटी!
कैसे अब तुम मोहिं झुठैहौ,
खोलहु मुख अब कहाँ दुरैहौ?"

।:—*सुनत श्याम यशुमति बचन, कीन्ह वदन विस्तार,*
विकल मातु शिशु मुख लखेउ, कोटिन विश्व प्रसार। ६६

देखे व्योम असीम अपारा,
देखे अगणित रवि, शशि, तारा।
देखे स्वर्ग, नरक, पाताला,
देखे दनुज, मनुज, सुर, व्याला।
देखे नदि, नद, सर, वन, नाना,
देखे सिंधु, सुमेरु महाना।
कर ले साँटि गिरत नहिं जानी,
मूँदे नयन जननि अकुलानी—
"पाहि! पाहि! मैं पाहि! कन्हाई!
मूँदहु वदन मातु बलि जायी।"
हरि निज माया वेगि दुरायी,
कहत—"नाहिं मैं माटी खायी।

तोहू निशिदिन दोष लगावति,
जब देखहु साँटी लै धावति।"
सुनत बैन मृदु नैन उघारे,
खेलत देखेउ बाल दुआरे।

दोहा:— *कथा सुनायी सब पतिहिं, चकित चित्त नँदरानि,*
कहत महर—"फलिहै सकल, गर्ग कही जो बानि।" ६७

गोपी एक नंद-गृह आयी,
देखे माखन खात कन्हाई।
मन ही मन अभिलाष बढ़ावै,
कबहुँ श्याम मोरे दधि खावै।
गुनि वत्सलता तासु रसेशा,
कीन्ह प्रात उठि भवन प्रवेशा।
प्रमुदित गोपी लखत लुकानी,
पहुँचे हरि जहँ धरी मथानी।
पायी माखन भरी कमोरी,
खान लगे प्रभु चोरी चोरी।
चितवत चहुँ दिशि कहुँ कोउ नाहीं,
लखी खंभ आपनि परिछाहीं।
पूछत, "को तुम ? कवन पठावा-?
अब लगि केतिक माखन खावा ?"
हँसी ठठाय सुनत ब्रजबाला,
भागे भय-विह्वल नँदलाला।

दोहा:— *फैली गोकुल बात जब, चोरत माखन श्याम,*
ब्रज-वनिता घर-घर-कहहिं, कब अइहैं सुख-धाम। ६८

हरिहु भवन प्रति रस बरसावा,
गोप-वधुन सुख-सिंधु नहावा।
सखा सकल सँग लेहिं बोलायी,
शून्य सदन प्रभु पैठहिं धायी।

माखन खाहिं, दूध ढरकावहिं,
दही काढ़ि मुख अंग लगावहिं।
गृह भाजन सब डारहिं फोरी,
देहिं धेनु बछरन कहँ छोरी।
दरस-परस-सुख, बतरस लागी,
सहहिं सकल उत्पात सभागी।
गहि सस्नेह हृदय भरि लेहीं,
छटपटाहिं पै जान न देहीं।
भागहिं हरिहु हाथ झकझोरी,
कंचुकि फारि हार गर तोरी।
खीझहिं गोपी पाछे धावहिं,
उरहन लै यशुमति ढिग आवहिं—

दोहा :—*"उपजायेउ अद्भुत तनय, अरी यशोमति मात!*
को बसिहै नँद-गाँव अब, सहि नित के उत्पात। ६६

दिन प्रति करत दूध-दधि हानी,
कब लगि सहहिं कानि नँद मानी।
सीखेउ चढ़ब सखन के काँधे,
बचत न भाजन छींके बाँधे।
भवन एक हरि हँसत ठठायी,
परत गान गृह अन्य सुनायी।
करत व्यंग गृह तीसर श्यामू,
एकहि क्षण प्रविशत बहु धामू।"
सुनि अनहोनी महरि रिसानी,
मन मुसकाय कही हरि वाणी—
"मैया! ये सब मोहिं बोलावहिं,
मैं भागहुँ गहि कंठ लगावहिं।
तुइ इनके नहिं गुन कछु जानति,
जो ये कहहिं साँच सोइ मानति!"
सुनत वचन गोपिन हँसि दीन्हा,
बाल कृष्ण तन मन हरि लीन्हा।

दोहा :— *कहति यशोमति—"गोपिका, मदमाती इतराहिं,*
काहे चोरहिं श्याम दधि, घर माखन नहिं खाहिं?" ७०

श्याम चरित लखि ब्रज जन रीझहिं,
चोरी सुनि सुनि यशुमति खीझहिं।
गोपी कछुक उरहने आयीं,
गहि हरि हाथ साथ निज लायीं।
"लखहु महरि यहि को उपजावा?
कवन पिता कर पूत कहावा?
चोरी करत मिलेउ घर माहीं,
तनय तुम्हार होय की नाहीं?"
गोपिन-उपालंभ सुनि माता,
उर रिस-ज्वाल, जरे जनु गाता।
ढूँढ़ि कहूँ ते डोरी लायी,
लागी बाँधन पकरि कन्हाई।
दुइ आँगुर नहिं पूरति डोरी,
माँगि माँगि घर-घर ते जोरी।
हरिहु विलोकि अव-चिकनाई,
लीन्ह सकौतुक अत बँधायी।

दोहा :— *यमलार्जुन तरु जहँ अजिर, लै आयी गहि मात,*
ऊखल ते बाँधेउ जबहिं, डोले तरुवर पात। ७१

विटप विलोकत प्रभु पहिचाने,
दोउ कुवेर-सुवन मन जाने।
नल, कूवर कैलास-निवासी,
शिव-प्रसाद पायी धन-राशी।
वार-वधू अप्सरन समेतू,
गवने कानन क्रीड़ा हेतू।
सुरसरि-नीर कीन्ह मद पाना,
धँसे करन सरि मज्जनस्नाना।
मुनि नारद आये तेहि काला,
पहिरे वस्त्र लजानीं बाला।

सकुचे पै नल, कूबर नाहीं,
अचल, विहीन वसन जल माहीं।
कोप भयकर मुनिवर कीन्हा,
शाप कुबेर-सुतन कहँ दीन्हा—
"रहे अचल जल तुम अविचारी,
होहु विटप व्रज-मंडल भारी।

दोहा —*द्वापर युग चौथे चरण, जब श्रीहरि अवतार,*
*बाल कृष्ण निज कर कमल, करिहैं मोक्ष तुम्हार।"*७२

यमलार्जुन ये तरुवर सोई,
डोले गुनि विमुक्ति जनु दोई।
यह रहस्य नहिं यशुमति जाना,
बाँधे कसि ऊखल भगवाना।
कहति—"न अब उरहन मैं सहिहौं,
चोरी साँटी मारि भुलइहौं।
लागहिं अगणित यहि घर गइया,
सेवक गोप असंख्य दुहैया।
चलहिं महर घर सहस मथानी,
सीखी सुत चोरी कै बानी।
कोउ छोरै जनि ढीठ कन्हैया,"
अस कहि गयी काज-हित मैया।
माखन-कण शशि मुख छवि छाजत,
लोचन लोल अश्रु-कण राजत—
उडुगण सहित निशा-मन मोहत,
शशधर स्रवत सुधा जनु सोहत।

दोहा —*त्रास-चपल गोलक विमल, सजल विलोचन छोर,*
वंशी-वेधी मीन जनु, करति वारि झकझोर। ७३

दखि दशा गोपी पछितानी,

"पाँय परहिं हम छोरहु माई !
हिचकिनि रोवत कुँवर कन्हाई।
औरहु घर ते माखन लावहिं,
हम अपने कर हरिहिं खवावहिं।
सुत कुल-दीपक शुचि मणि धामा,
वारिय तेहि पै गोधन ग्रामा।"
सुनि यशुमति औरहु विरुझानी,
भागीं गोपी, महरि रिसानी—
"तनिक तुम्हार कान्ह दधि खावा,
घर-घर गोकुल नाम धरावा।
सही न रंच श्याम-लरिकाई,
अब मोहिं माखन देत मँगाई।
तब मन तनिक न धीरज आना,
अब मोहिं चलीं सिखावन ज्ञाना।"

दोहा :— *छोरे यशुमति श्याम नहिं, भयी दुपहरी बेर,*
गोपिन तब बलभद्र ढिग, जाय सुनायी टेर— ७४

"भोरहि ते तुम्हार लघु भैया,
बाँधेउ ऊखल यशुमति मैया।"
सुनतहि हलधर व्याकुल धाये,
लखत बन्धु लोचन भरि आये।
जननि-समीप कहत कर जोरी—
"देहि मातु ! अब भैयहिं छोरी।
काहे हरिहिं दीन्हि अस त्रासा,
गोरस केहि कर केतिक नासा ?"
उत लीलापति अवसर पायी,
ऊखल यमल विटप अटकायी,
झटकेउ हठि, तरु गिरे विशाला,
व्याप्त थोर चहुँ रोर कराला।
भंजि वृक्ष नल-कूवर तारे,
पाय मोक्ष निज लोक सिधारे।

दौरि परे इत ब्रज नर-नारी,
महर-दुआर भीर भइ भारी।

दोहा:—*निरखेउ यशुमति अजिर-दिशि, दिखे नाहि घनश्याम,*
दिखेउ उलूखल नाहि कहुँ, दिखी नाहि कहुँ दाम। ७५

बिलखी यशुदा बोध बिसारा—
"मैं कस बाँधेउँ प्राण-अधारा!"
रहे घरिक सचकित ब्रजवासी,
शिशु-गति काहु न मानस भासी।
कोउ गगन तकि दृष्टि लगायी,
हेरत विटपन कोउ शिर नायी।
"रही न तनिकहु कतहुँ बयारी,
कस ये गिरे महीरुह भारी!"
लखे द्रुमन-बिच पुनि घनश्यामा,
वैसहि ऊखल, वैसिहि दामा।
त्रस्त, प्रीत, विस्मित नँदरायी,
छोरेउ धाय यशोमति माई।
कहत कान्ह—"मैं गयेउँ डेरायी।
लुकेउँ विकल ऊखल तल जायी!"
सुनि शिशु वचन हँसे नर-नारी,
गवने गृह विस्मय हिय धारी।

दोहा:—*"वज्र देह हरि कै"—कहहिं, जहाँ तहाँ व्रज लोग,*
"नित उठि परति विपत्ति नव, नित्य बचत विधि-योग!" ७६

गोकुल निरखि उपद्रव नाना,
खोजेउ व्रजजन अन्यस्थाना।
वृन्दावन शोभन सुखकारी,
प्रचुर वारि तृण, गो-हितकारी।
कहेउ महर, गोपन मन माना,
गृह-गृह सजन सजाये याना।

चले समोद शब्द चढ़ि गावत,
श्याम चरित इक एक सुनावत।
विरमि कीन्ह वृन्दावन वासा,
विरचे लखि सुपास आवासा।
चन्द्राकृति इक खरिक बनावा,
बाँधे धेनु वत्स सुख छावा।
गहन अरण्य चरहिं नित गाई,
ग्वाल बाल खेलहिं हर्षायी।
बैठहिं सब कदम्ब तरु छाहीं,
वृन्दावन सम बन कहुँ नाहीं।

दोहा:—*परम रम्य यमुना बहति, स्वच्छ, सुशीतल नीर,*
बहत वेणु शृंगी-स्वरित, मद, सुगंध समीर। ७७

लखी विकीर्ण विपिन प्रभु शोभा,
उपजेउ उर गोचारण-लोभा।
चले प्रभात विपिन जब ग्वाला,
चले लागि पाछे नँदलाला।
निरखि यशोमति आतुर धाई—
"कान्ह! कान्ह!"—कहि टेर लगायी।
भागे हरि कहि—"धेनु चरइहौं,
भयेउँ सयान न मातु डेरइहौं।
जाय जमुन-जल पैठि नहइहौं,
भूख लगे मैं वन-फल खइहौं।"
माता विविध भाँति समुझावा,
कहति—"आजु वन हाऊ आवा।"
एकहु जब न सुनी घनश्यामा,
पकरि हाथ सौंपि बलरामा—
"देखत रहेहु, कान्ह मम बारे,
लौटेहु आजु विशेष सकारे।"

दोहा:—*शृंगी फूँकत गोप सब, श्याम बजायी वेणु,*
गो बछरा उछरत चले, चली उड़ति पथ रेणु। ७८

सजल जलद छवि श्याम शरीरा,
शोभित तड़ित-कांति कटि चीरा।
कंध, वक्ष, युग बाहु विशाला,
हृदय पदिक, सर्वाङ्गन माला।
कुंडल युगल लोल अभिरामा,
मंजुल मृदु कपोल छवि धामा।
भव्य ललाट रेख गोरोचन,
ललित चंद्रिका, तरल विलोचन—
कुवलय दल अलि-बाल बँधाये,
चहत उड़न जनु उड़न न पाये।
अरुण अधर दशनन द्युति सोही,
धरे लालमणि मुक्ता पोही।
बोलत बैन सुमन बरसावत,
स्रवत सुधा हँसि वेणु बजावत।
काँधे कामरि लकुटी सोही,
गो चारत हरि विश्व विमोही।

दोहा :— *सखन-संग खेलत कबहुँ, कबहुँ चरावत गाय,*
नाचत कबहुँ कदम्ब-तल, मुरली मधुर बजाय। ७८

खेलत ग्वालन संग कन्हैया,
बगरे विपिन वत्स अरु गैया।
इतनेहि महँ वत्सासुर आयौ,
वत्स-वृंद महँ गयेउ समायौ।
जानि दैत्य-कैतव बनवारी,
पहुँचे क्रम-क्रम तासु पछारी।
सहसा कर खल-पूँछ लगायी,
हतेउ पटकि तरु-मूल कन्हाई।
घहरेउ कानन, जीव डेराने,
चकित सखा, गो-वत्स पराने।
पहुँचे साँझ जबहिं ब्रज माहीं,
कहेउ वृत्त हरि यशुमति पाहीं—

"निकसेउ वन ते जैसेहि हाऊ,
भागे मोहिं छाँड़ि बलदाऊ।
मइया ! दीन्ह न कोउ सहारा,
सुमिरि तोहिं मैं हाऊ मारा।"

दोहा:—*लेति बलैया मातु सुनि, पुनि पुनि हृदय लगाय—*
"बरजेउँ केतिक कान्ह ! मैं, गोचारण जनि जाय।" ८०

नित वन फिरत चरावत धेनू,
संग विपुल व्रज-बालन-सेनू।
एक दिवस सुरभिन तन हेरा,
वेणु बजाय सखन कहँ टेरा।
"घेरि धेनु जमुना-तट लावहु,
भयीं तृषित सब वारि पियावहु।"
चले श्याम जस सखन लेवायी,
बसेउ बकासुर तेहि मग आयी।
चञ्चु अवनि-तल एक लगायी,
अंबर माहिं द्वितीय समायी।
आवत ग्वाल बाल जो आगे,
कहन सभीत श्याम सन लागे—
"धावहु ! निरखहु ! आय कन्हाई !
निवसेउ मार्ग जंतु कछु आयी।
आवत नित हम गैयन संगा,
लखेउ न वन अस कबहुँ विहंगा !"

दोहा:—*पहुँचे हरिहु विहंग ढिग, निरखेउ तनु विस्तार—*
इत धरणी, उत व्योम बिच, विकट गुहा आकार। ८१

निदरत दैत्य बढ़े हरि आगे,
'हा ! हा !'—करत सखा सब भागे—
"तनिकहु शेष न जीवन आशा,
करिहै खग निश्चय हरि ग्रासा।"

मूँदेउ चचु खगहु अघ-खानी,
लीलेउ विभुहिं वाल लघु जानी।
प्रविशे हरिहु उदर वनि आगी,
जरी ज्वलत फैलि तनु लागी।
उगिलेउ आकुल, हरि ललकारा,
पकरि चचु बक फारि पँवारा।
वधेउ पलहि महँ खल नँदलाला,
पतित मही मृत, शब्द कराला।
सुनि स्वर वहुत सखन बलरामू,
"निहति वकासुर आवत श्यामू।"
परी श्रवण तेहि क्षण हरि वाणी—
"घेरि पियावहु गैयन पानी।"

दोहा :—*मिलत सखन प्रमुदित हृदय, धेनु पियावत नीर,*
पुनि पुनि भेंटत भरि भुजन, ग्वाल-वाल बलवीर। ८२

राखीं धेनु सघन तरु छाहीं,
मज्जत मुदित जमुन-जल माहीं।
उत यशुमति इक गोप पठावा,
छाक लिये वृन्दावन आवा।
तोरि तमाल द्रोण निरमाये,
उत्पल-पल्लव शिला विछाये।
व्यजन वनफल संग सजाये,
हास हुलास सखन-सँग खाये।
गवनीं वहुरि चरन वन गैया,
लागे खेलन खेल कन्हैया।
भयी साँझ मधु बाजेउ वेणू,
चलीं रँभात भवन-दिशि धेनू।
ताही समय अघासुर आयी,
हरि-पथ बसेउ वदन फैलायी।
असुर-प्रपंच समुझि विश्वेशा,
कौतुक ही मुख कीन्ह प्रवेशा।

दोहा :—*प्रविशीं सुरभी वत्स सह, ग्वाल वाल, बलराम,*
अघासुरहु मूँदेउ वदन, निरखि पूर्ण निज काम। ८३

मूँदत मुख उपजी अँधियारी,
निशि जनु घिरी बादरी कारी।
सूझत नहिं कछु हाथ पसारे,
"त्राहि! त्राहि!" सब हरिहिं पुकारे—
"कहँ हलधर? कहँ कुँवर कन्हाई?
कहाँ परे हम केहि वश आयी?"
कह हरि विहँसि—"गुहा यह नाहीं,
हम सब परे असुर-मुख माहीं।
धीरज धरहु तो होय उबारा,
तनिक तनिक सब करहु सहारा।"
अस कहि हरि निज देह बढ़ायी,
बढ़त बढ़त बहुतै बढ़ि जायी।
अंधकार, कछु सखन न जाना,
बढ़त भये हरि असुर समाना।
बाढ़ी अघासुरहु विकलाई,
बहुत बढ़े हरि सहि नहिं जायी।

दोहा :—*ब्रह्मरंध्र अघ कर फटेउ, निकसे हरि तेहि द्वार,*
कहत टेरि—"निकसहु सखा, ईश कीन्ह उद्धार!" ८४

मरत असुर बिनसेउ अँधियारा,
चौंधे दृग विलोकि उजियारा।
दैत्य देह लखि सूखे प्राणा,
"बचे आजु साँचहु हम जाना।
धन्य! धन्य! तुम धन्य मुरारी!
अब जानेउँ हम तुम अवतारी।"
कहत विहँसि हरि बात बनायी,
"मारेउँ मैं, तुम भये सहायी।"
प्रमुदित सकल चले ब्रज ओरा,
हरिहिं सराहत नेह न थोरा।

उत ब्रह्मा मन माहिं विचारत,
को यह कृष्ण असुर संहारत?
चहत जहाँ तहँ करत प्रवेशू,
धारत रहत नित्य नव वेषू।
रहेउ सृष्टि-मर्याद मिटायी,
लेहौं शक्ति-थाह व्रज जायी।

दोहा :— *सृजन समय नहि जो सकेउ, नापि कमल निज गेह,*
नापन चाहत आजु सोइ, विश्वाधार सदेह। ८५

कृत-निश्चय चतुरानन आये,
चारत सुरभिन हरि वन पाये।
ग्वाल-बाल वत्सहु सब गाईं,
ब्रह्मलोक लै गये चोरायी।
बिछुरे बालक धेनु हेरानी,
विधि करतूति हृदय हरि जानी।
कीन्हेउ कौतुक द्रुत वनवारी,
विरचे वैसेहि सकल सँवारी।
वैसेहि रूप, वाहि सब रंगा,
वैसिहि-प्रकृति, वाहि बल अंगा।
वैसेहि साज, वाहि सब नामा,
वैसेहि साँझ चले सब ग्रामा।
वैसेहि गोपद धूरि उड़ावत,
वैसेहि सखा बजावत गावत।
वैसेहि सर्व सदन हरि आने,
चकित चतुर्मुख हृदय लजाने।

दोहा :— *क्षण विधि व्रज-क्षण लोकनिज, क्षण आवत, क्षण जाय,*
दुइ दुइ देखत दोउ थल, गोप, वत्स, अरु गाय। ८६

आवत जात वर्ष इक बीता,
भयेउ मनहिं मन विधिहु सभीता।

प्रकटेउ प्रभु ब्रह्मा मन ज्ञाना,
मिटेउ मोह, विनसेउ अभिमाना।
लै सँग बालक, बछरा, गाईं,
आयेउ गोकुल हरि शरणाई।
"धिक! धिक! मोहिं उपजेउ अस मोहा,
कीन्हेउ चौर-कर्म, प्रभु-द्रोहा।
मैं विधि एक लोक निर्माता,
रोम रोम प्रभु बँधे विधाता।
प्राकृत नरहु योग अपनायी,
चमत्कार बहु सकत देखायी।
तुम योगेश, योग साकारा,
योग-शक्ति सिरजत भव सारा।
यह नहिं तनिकहु नाथ बड़ाई,
विरचे कछुक गोप-सुत गाईं।

दोहा :— *संसृति-अणु अणु व्याप्त तुम, प्राण रूप भगवान,*
चीन्हेउँ प्रभुहिं न वेप यहि, छमहु मोर अज्ञान।" ८७

उत ब्रह्मा निज लोक सिधारे,
इत हरि अन्य चरित विस्तारे।
एक दिवस खेलत ब्रज खोरी,
देखी श्याम राधिका भोरी।
जनु कछु क्षीर-सिंधु सुधि आयी,
औचक मोहित भये कन्हाई।
पूछत श्याम—"काह तुव नामा?
को तुव पिता? कवन तुव ग्रामा?
पहिले कतहुँ न परी लखायी,
आजु कहाँ ब्रज खेलन आयी?"
"पितु वृषभानु विदित ब्रज नामा,
बरसाना कछु दूरि न ग्रामा।
राधा मैं, तुम कहँ भल जाना,
चोर! चोर! कहि जग पहिचाना!"

मुदित स्याम यह मधु मुसकायी—
"लीन्हेउँ माइ तुम्हार चोरायी!"

दोहा :—समुझे वचन न राधिका, लखति हरिहि अनिमेष,
बूड़ति उबरति दृष्टि जनु, सुषमा-सिंधु अशेष। ८८

हर्षित हरि भाषेउ पुनि सैनन,
"आयेउ साँझ खरिक सँग गैलन।"
"अइहौं"—कहेउ प्रकट हँसि बाला,
सवनी भवन वियोग विहाला।
"साँझ भयी दोहनी दे मैया!
खरिक जाय दुहिहौं निज गैया।"
बरजति जननि कुँवरि नहिं मानी,
स्याम मूर्ति हिय माहिं समानी।
आतुर पहुँची खरिक किशोरी,
लखे न स्याम विकल मति भोरी।
कबहूँ इत कबहूँ उत डोलति,
लेति उसास, कृष्ण मुख बोलति।
नंद संग देखे हरि आवत,
शीश मोर-पख, मुरलि बजावत।
लीन्ह महर राधहिं पहिचानी,
बोलि स्याम सौंपे हित मानी—

दोहा —"तुम वृषभानु-कुमारिका, खेलहु संग कन्हाय,
रहेउ विलोकत बाल मम, मारहि जनि कोउ गाय। ८६

जब लगि खरिक गनहुँ निज गाईं,
तब लगि लावहु कान्ह खेलायी।"
गये नंद, आयी हरि पाहीं,
कहति राधिका-दै गल बाहीं—
"अब छाँड़हुँ नहिं छयाइ कन्हाई,
सौंपेउ तुमहिं मोहिं नँदरायी।"

नवल गोपाल, नवेली राधा,
उमहेउ नवल सनेह-अगाधा।
नवल पीत पट, नवलहि सारी,
नवल कुंज क्रीड़त बनवारी।
नवल जमुन-जल, नवल तमाला,
नवल पुलिन, नव नव वनमाला।
नवल अरण्य, नवल तरु शाखा,
उपजी हृदय नवल अभिलाषा।
राधा-माधव संग सोहाये,
नवल चंद्र पै नव घन आये।

दोहा :—*बरसत नव रस मेघ नव, भीजे तन मन प्राण,*
मिले कामना काम दोउ, मिले भक्ति भगवान। ६०

नदराय इत ढूँढत आवत,
"राधा! माधव!" कहि गोहरावत।
कहत कान्ह—"बादर, घिरि आवा,
इन मोहिं लै यहि कुञ्ज दुरावा।
मोहिं बचावत आपुहि भीजी,"
सुनत बैन राधा मन रीझी।
महर कुँवरि घर हरि सँग-आनी,
राधा छवि लखि महरि लोभानी।
प्रकटी प्रीति पास बैठारी,
वेणी गुहि, रचि माँग सँवारी।
गोरे भाल बिन्दु-इक कीन्हा,
नील निचोल लाय नव दीन्हा।
तिल, मेवा, चाँवरी, बतासा,
धरे महरि लै राधा पासा।
कहति बहुरि—"खेलहु हरि संगा",
सुनि राधा, मन द्विगुण उमंगा।

:—*खेलति रीझति श्याम सँग, धरति तजति हरि बाँह,*
मनहुँ तड़ित प्रकटति दुरति, सजल घोर घन माँह। ६१

गयी भवन वृषभानु-कुमारी,
गवने गो-चारन वनवारी।
पहिले धेनुक कंस पठावा,
हलधर तेहि पल माहि नसावा।
पुनि प्रलंब आयेउ वन माहीं,
बनेउ सखा कोउ जानेउ नाहीं।
ताहू कहँ वलराम सँहारा,
सुनेउ कंस उर ताप अपारा।
सूझेउ नहिं जब नृपहिं उपायी,
पहुँचे नारद मधुपुर आयी।
कह मुनि—"बसत जमुन-जल व्याला,
काली नाम महा विकराला।
सोवत 'जागत फणि फुफकारत,
सतत प्रतप्त वारि विष झारत।
दूरि दूरि लगि जमुना माहीं,
तेहिं भय जीव जन्तु नहिं जाहीं।

T:— गरल-ज्वाल जरि जात सब, तट तरुवर तृण पात ;
तप्त वात डोलत, लगत, उड़त विहग गिरि जात। ६२

फूलत कमल तहाँ जल माहीं,
व्यापत व्याल गरल तिन नाहीं।
अब लगि जीव न रचेउ विधाता,
सकहि पाय जो दह-जलजाता।
नंद महर ढिग पेठवहु पाती,
माँगहु कमल मिटहि आराती।"
मोद कंस मन सुनि मुनि वाणी,
भयेउ काज सोचत अज्ञानी।
चतुर दूत पुनि भूप बोलायी,
पाती महर समीप पठायी।
उत लखि नृपति दूत नँद-धामा,
सचकित व्रजजन, खरभर मामा।

पाती बाँचत महर डेराना,
कंप शरीर, विकल मन प्राणा।
भयी भीर बड़ि नंद-दुआरे,
सोचत गोप-वृन्द मन मारे।

दोहा :—*लिखेउ नृपति—"दिन तीनि महँ, मिलहि कमल जो नाहि,*
नासहुँ जन गोधन सकल, बचे न कोउ ब्रज माहि।" ६३

करिय कहा अब कवन उपायी,
को भूपहिं समुझावहि जायी।
सकै तोरि जो गहि नभ तारा,
सकै सोखि जो उदधि अपारा,
सकै जो फूँकि सुमेरु उड़ायी,
सकै सोउ नहिं कमलन लायी।
कहत महर—"मोहिं नहिं निज शोचू,
तनिकहु नहिं धन धाम सँकोचू,
हतिहै सुतन कंस अपघाती,
दहकति सोचि सोचि यह छाती।"
सुनि बोले हरि—"कमलन लइहौं,
जनि डरपहु, मैं सबहि बचैहौं।"
बाल-वचन कोउ कान न दीन्हा,
खेलन हेतु गमन हरि कीन्हा।
श्रीदामा-गृह स्याम सिधारे,
लै कंदुक सब सखा हँकारे।

दोहा :—*ब्रज बाहर जमुना-निकट, बाल-मण्डली संग,*
क्रीड़त मारत गेंद सब, ताकि एक इक अंग। ६४

मारत एक लेत इक दाँऊ,
नहिं जानत हरि रचेउ उपाऊ।
सखा अन्य खेलत सुख पावत,
हरि एकहि दिशि गेंद चलावत।

आयेउ जैसेहि जमुन-किनारा,
गेंद श्याम श्रीदामहिं मारा।
गयेउ सखा मुरि अंग बचायी,
परेउ गेंद कालीदह जायी।
रिस श्रीदामा उर अति बाढ़ी,
कहत—"गेंद लावहु हरि काढ़ी!
जानि बूझि तुम गेंद गँवारा,
नहिं आपन-पर कीन्ह विचारा।"
पकरि फेंट पुनि पुनि झकझोरा,
चितये हरि कालीदह ओरा।
झटकि हाथ निज फेंट छोड़ायी,
धाये कालीदह समुहायी।

दोहा:—*धाय बहुरि लौटे सकल, विकल लागि विष झार,*
उत कदम्ब तरु हरि चढ़े, कूदत लागि न बार। ६५

कूदत हरि उछरेउ दह-नीरा,
दिखि न परेउ पुनि श्याम शरीरा।
वही पूर्ववत् जमुना धारा,
मचेउ सखन बिच हाहाकारा।
बिलपत कहत सकल श्रीदामहिं—
"गेंद लागि मारेउ घनश्यामहिं!"
इत यशुमति मन शोच बढ़ावा,
भयेउ विलम्ब कान्ह नहिं आवा।
खोजन चली छींक भइ भारी,
लौटि अजिर दिय दोष निवारी।
चली बहुरि निकसी मार्जारी,
काटेसि राह, विकल महतारी।
नंदहु घर आवत मन मारे,
रोवत देखे श्वान दुआरे।
परसि शीश इक काग उड़ाना,
काँपे महर अशुभ अति माना।

दोहा :— *सदन प्रनिशि यशुदा लखी, दीन दुखी द्युति-हीन ,*
पूछत—"भामिनि ! कान्ह कहँ, काहे वदन मलीन !" ६६

यहि बीचहि सब सदन पुकारा ,
विकल नन्द बहु द्वार गोहारा ।
बिलखत बोलत वाल बिहाला—
"बूड़े कालीदह नँदलाला ।"
"पाहि ! पाहि !" सुनि जननि पुकारा—
"गयेउ कहाँ सुत प्राण-अधारा !"
ब्रजवासी सुनि सुनि उठि धाये ,
विलपत कालिन्दी-तट आये ।
कृष्ण ! कृष्ण ! हा कृष्ण ! पुकारी ,
कातर शोक गोपिका सारी ।
कहत पछार खाय महि माहीं—
"श्याम बिना ब्रज जीवन नाहीं !"
समुझावत जननिहिं बलरामू—
"कीन्ह मातु ! लीला कछु श्यामू ।
सकत बिनासि न कोउ मम भ्राता ,
गयेउ लेन दह-जल जलजाता ।"

दोहा —*इत गोहरावत कृष्ण कहि, व्याकुल गोप-समाज ,*
उत हरि पहुँचे जाय तहँ, बसत जहाँ अहिराज । ६७

देखेउ रहेउ सोय अहिरायी ,
नागिनि करति कत सेवकाई ।
निरखि शिशुहिं मन विस्मय माना ,
पूछति—"को तैं बाल अजाना ?
मृदुल अंग नख शिख छवि छायी ,
को बैरी दह दीन्ह पठायी ?
भागु वेगि बिलमहि अब नाहीं ,
जागत नाग जरै पल माहीं ।"
कहत कान्ह—"मोहि कंस पठावा ,
तव पति निधन हेतु मैं आवा ।

वृथा करहि जनि कंत बड़ाई,
वेगि देहि अहिराज जगायी।
सोवत अनुचित करब प्रहारा,
ताते मैं नहिं आवत मारा।"
सुनत उठी अहि-नारि रिसायी,
"लेहि तुही खल! नाग जगायी।"

दोहा:—व्यंग वचन नागिनि कहे, झपटे कुपित कन्हाय,
चापि पूँछ भूतल दली, उठेउ उरग अकुलाय। ९८

अकस्मात जागेउ भय खायी,
जानेउ आय गयेउ खगरायी।
लखेउ बाल जब सन्मुख ठाढ़ा,
झटकी पूँछ कोपि फण काढ़ा।
फुफकि फुफकि तकि तकि निज घाता,
लागेउ करन नाग आघाता।
उगलेउ विष, उपजी अल ज्वाला,
छुइ न सकेउ पै फणि नँदलाला।
पदतल पूँछ लखी अहिराऊ,
कीन्ह मुक्ति हित कोपि उपाऊ।
घूमि श्याम चरणन सिमिटाना,
लागि न देर देह लपटाना।
जकड़ेउ नख-शिख श्याम शरीरा,
ताने बंधन हरि-तनु पीरा।
विहँसि तियहिं कह नाग सुनायी—
"सकहुँ श्वास महँ विश्व नसायी।"

दोहा:—सुने कृष्ण गर्वित वचन, कीन्हेउ तनु विस्तार,
टूटत अँग, फूटत वदन, निकसी शोणित-धार। ९९

देह-बंध टूटत लखि सारे,
'शरण! शरण!' अहिराज पुकारे।

'शरण' सकत सहि श्रीपति नाहीं,
भये स्वल्प सुनतहि पल माहीं।
वेधि नासिका बल हरि लीन्हा,
नाथि नाग माथे पद दीन्हा।
चढ़े सहस्र फणन पुनि धायी,
उपजेउ प्रभु जानेउ अहिरायी।
कहत करत निज भाग्य बड़ाई—
"दर्शन दीन्ह सदन हरि आयी।"
कोटि कमल लै पन्नग-नारी,
पूजे पद, तोषे वनवारी—
"जाहु, करहु निज लोक निवासा,
अब न तुमहिं खगपति ते त्रासा।"
चरण-चिह्न मस्तक प्रकटाये,
चले नाग निज संग लेवाये।

दोहा :—*नाथे अहि, माथे धरे, कोटि कमल अभिराम,*
नर्तत मुदित फणीन्द्र फण, प्रकटे नटवर श्याम। १००

हरि देखत दौरे ब्रजवासी,
जिमि विधु-उदय उदधि जल-राशी।
गद्गद नद प्रमोद अपारा,
पुलकेउ रोम रोम तनु सारा।
जननि विलोचन वारि बहावत,
"तजि निर्मोहि! मोहि कहँ धावत!"
कहत श्याम—"मैं जमुना तीरा,
खेलत रहेउँ संग बलवीरा।
सहसा मोहि गहेउ कोउ धायी,
फेंकेउ जमुना माहिं भँवायी।
उघरे दृग देखेउँ अहिरायी,
पूछत—'आये कहाँ कन्हाई'?
मैं बोलेउँ—'मोहि कंस पठावा,
कमल लेन तोरे घर आवा'।

कंस नाम सुनि उरग डरायी,
कमल सहित मोहिं गयेउ पठायी।"

दोहा :—*हँसी यशोमति सुनि कथा, हँसे सकल व्रज लोग,*
कहत—"कान्ह! तुव कुंडली, परेउ कूठ कर योग।" १०१

विरह-व्यथा क्षण माँझ भुलानी,
शोक-नदी सुख-सिन्धु समानी।
कही श्याम निज मन अभिलाषा,
कीजै निशि यमुना-तट वासा।
गोप-समाज सुनत हरषाना,
होन प्रबंध लगे विधि नाना।
नंद मुदित कछु गोप बोलाये,
कंस पास लै कमल पठाये।
औरहु दधि माखन उपहारा,
प्रेषे महर अनेक प्रकारा।
लिखी विनीत-प्रीतियुत पाती,
होय प्रसन्न नृपति अघघाती।
रहे गुप्तचर जे व्रज माहीं,
गये धाय मथुरापति पाहीं।
अवनिपतिहिं व्रज-वृत्त सुनाये,
काली नाथि कमल हरि लाये।

दोहा :—*त्रस्त सुनत मथुरेश उर, उपजेउ विषम खँभार,*
नंद दूत पहुँचे तबहि, लिये कमल उपहार। १०२

पेखत पंकज भूप बिहाला,
कमल नाहिं जनु कोटिक व्याला।
नाल समेत भीति उपजावत,
फण पसारि जनु काटन धावत।
कपट-कुशल नृप धीरज धारा,
[illegible]

बाँचत पत्र तोप प्रकटावत,
नंद-सुवन प्रति प्रीति बतावत—
"भयेउ धन्य ब्रज-मंडल आजू,
कृष्ण नाथि अहि कीन्हेउ काजू।
मोरहु सगत बढ़ै नित नामू,
मिले शूर मोहिं हलधर श्यामू।"
सिरोपाव दूतन पहिरायें,
दीन्हि बिदा द्रुत सचिव बोलाये।
कीन्हि मन्त्रणा मथि ठहराया,
असुरन बोलि कुमत्र सुनावा—

दोहा :—*"जमुना-तट कानन सघन, आगी देहु लगाय,*
ब्रजवासी नहि कोउ बचै, सोवत हतहु जराय।" १०३

इत ब्रजजन कालिन्दी-कूला,
हर्ष हुलास भरे, भय भूला।
ऋतु निदाघ शशि उदित अकासा,
व्याप्त व्योम महि विशद प्रकाशा।
ग्वालन लीला रची सँवारी,
बनेउ नाग कोउ, कोउ बनवारी।
औरहु बहु हरि चरित सोहाये,
रचि ब्रजवासिन मोद बढ़ाये।
रास श्याम तेहि राति रचावा,
जनु बैकुंठ उतरि महि आवा।
बाढ़ी निशि सुख निद्रा सोये,
श्रान्ति विषाद भ्रान्ति भय खोये।
इतनेहि महँ भागेउ कोउ जागी,
कहत बरत बन लागी आगी।
जागे भागे सब नर नारी,
लखेउ कराल अनल बन भारी।

दोहा :—*भागि भागि लौटे सकल, बचेउ न कतहुँ निकास,*
दशहु दिशा लागेउ अनल, चढ़ी ज्वाल आकाश। १०४

तरु थररात गिरत महि आयी,
तड़-तड़ फड़-फड़ शब्द सुनायी।
पट-पट होत, बरत बन बाँसा,
चटकन जरत पात कुश काँसा।
लटकन जरि जरि ताल तमाला,
झुलसत बेलि वितान विशाला।
झार झार सब ओर धुँधारा,
दमकन उचटि उचटि अंगारा।
प्रलय काल सम चली बयारी,
झपटति लटपट लपट करारी।
गोप ग्वाल ब्रज-बाल बिहाला,
"पाहि ! पाहि ! राखहु नँदलाला !"
बिलपत यशुदा नंद पुकारी,
"कान्ह ! आजु ब्रज शरण तुम्हारी।"
"मूँदहु लोचन"—कहेउ कन्हाई,
"पल महँ अनल जाल मिटि जायी।"

दोहा :— *ब्रजवासिन मूँदे नयन, कीन्ह अग्नि प्रभु पान,*
सिमिटि समानी ज्वाल मुख, शीतल नीर समान। १०५

"खोलहु लोचन"—कह नँदलाला,
नहिं कहुँ धूम नाहिं कहुँ ज्वाला।
निरखि कहत ब्रजजन हरषायी—
"हमरे सदा सहाय कन्हाई।
बिनु बरसे, छिरके बिनु पानी,
कहहु ज्वाल सब कहाँ बिलानी।
गुनी श्याम नँद-यशुमति छौना,
पेटहि ते जानत कछु टोना।"
बिहँसे हरि, बोलीं ब्रज-नारी,
"सिखवहु हमहिं मंत्र बनवारी।"
बोले कान्ह—"मंत्र तेहि आवै,

उरहन जासु गेह नित आवै,
जननी सुनि सुनि जासु रिसावै।
ऊखल ते जो देह बँधावै,
होत भोर दस साँटी खावै।"

दोहा :— *सुनि रीझीं ब्रज वाम सब, खीझी यशुमति मात,*
प्राची दिशि लाली भयी, छायेउ स्वर्ण-प्रभात। १०६

ब्रजजन सब निज निज गृह आये,
धेनु चरावन श्याम सिधाये।
जमुना तट हरि दीन्ह विहायी,
वृन्दावन पाछे रहि जायी।
बढे जात हरि, दौरहिं गैया,
कहत सखा—"कहँ जात कन्हैया?
चलि न सकत मग हम सब थाके,
लागत पग कुश कटक बाँके।"
बढि आगे इक सरवर पायी,
बैठे श्याम सखन बैठायी।
वारि प्रचुर चहुँ दिशि हरियाई,
लागीं चरन समुख हरि गाई।
इतनेहि महँ कहुँ धूम देखाना,
भीत सखा दावानल जाना।
कहत श्याम—"दावानल नाहीं,
बसत विप्र कछु यहि वन माहीं।

दोहा — *श्रुति-विद् ये द्विज-वर्य सब, दुरे कंस नृप-त्रास,*
यज्ञ होम शुचि धूम यह, महकति रुचिर सुवास।" १०७

कहत मनसुखा—"भली बतायी,
रुचिर सुवास क्षुधा उपजायी।
उदर माहिं जनु लागी आगी,
वन फल खाय न बुझै अभागी।"

कहेउ कान्ह—"नहिं कीजै शोचू,
माँगहु विप्रन तजि सकोचू।"
कहत सखा—"हम मगन नाहीं,
लाज त्यागि जो माँगन जाहीं।"
कह हरि—"जाय लेहु मम नामा,
लज्जा ते न मोहिं कछु कामा।"
बाढी दिन सँग छुधा-पिपासा,
गये सखा कछु विप्रन पासा—
"नंद महर सुत कुँवर कन्हाई,
आये विपिन चरावत गाई।
लागि छुधा प्रभु पास पठाये,
भोजन हेतु यहाँ हम आये।"

दोहा:—*सुनत विप्र रूखे भये, कीन्ह वचन नहिं कान,*
लौटि परे लज्जित सखा, कहत—"भयेउ अपमान।" १०८

रोष भरे सब हरि ढिग आये,
कहत—"खाय हम बहुत अघाये।
आपहु चलि अब भोजन कीजै,
देत विप्र जो भावै लीजै।"
व्यंग वचन सुनि हरि मुसकाहीं,
"जाहु सखा ! द्विज-वनितन पाहीं।"
धर्म तत्त्व वे नीके जानहिं,
समदर्शी कछु भेद न मानहिं।"
क्षुब्ध सखा सब कहत रिसाई—
"आपुहि माँगहु जाय कन्हाई।"
हठ कीन्ही हरि, चले बहोरी,
बोले विप्र वधुन कर जोरी—
"धेनु चरावत हम वन आये,
भोजन माँगन श्याम पठाये।"
सुनतहि उठीं हुलसि व्रजनारी,
तनु पुलकित, दृग आनँद वारी।

दोहा :—*कहहि—"मुरारी ! हरि ! कहाँ, कहाँ श्याम अभिराम ?*
विपिन-विहारी कृष्ण कहँ, वनवारी, घनश्याम ?" १०६

भोजन-पात्र अनेक मँगाये,
व्यंजन विविध सप्रीति सजाये।
विह्वल चलीं श्याम दिशि धायी,
जनु सरिता सागर समुहायी।
दीन्ही द्विजन धाय मग बाधा,
रहीं न, बढ़ीं सनेह अगाधा।
कछु संदेह, कछु तजि तजि देही,
मिलीं जाय घनश्याम सनेही।
कीन्हेउ श्याम सभक्ति प्रणामा—
"धन्य, लहेउँ दर्शन द्विज-वामा।"
भोजन करत सप्रीति कन्हाई,
मनहुँ खवावति यशुमति माई।
अचल भक्ति-वर प्रभु सन माँगी,
लौटीं सदन चरण-अनुरागी।
दरस-वृत्त निज पतिन सुनावा,
उपजेउ विप्रन मन पछितावा—

दोहा :—*"जप तप यज्ञ समाधि बिनु, इनहिं मिले विभु आय,*
भक्ति रहित हम वेद पढ़ि, दीन्हेउ जन्म गँवाय।" ११०

गये गोप गृह गाय चरायी,
वन-गाथा व्रज-वधुन सुनायी।
गोपी कहहिं—"धन्य द्विज-नारी,
तजि सर्वस्व भजहिं वनवारी।
निवसत नित हम संग कन्हाई,
तनहुँ न चरणन भक्ति दृढ़ायी।"
आयेउ मार्गशीर्ष, सुख मानी,
गौरी-पूजा हरि-हित ठानी।
करहिं प्रात जमुना-जल मज्जन,
माँगहिं वर करि गौरी-पूजन—

"जहँ जहँ जाहिं जनमि हम माई !
बढ़ै प्रीति हरि पद सुखदायी।" ~
जानेउ हरि गोपिन व्रत धारे,
गये प्रात प्रभु जमुन किनारे।
लखेउ धरे तट वसन उतारी,
नग्न नीर अवगाहत नारी।

दोहा:—नीर निमज्जत नग्न नित, सब ब्रज-नारि समाज,
चलत प्रथा प्राचीन गहि, रंचहु नहिं उर लाज। १११

आजु देहुँ अनरीति मिटायी,
लोक लाज मैं देहुँ सिखायी।
सोचत मन कछु युक्ति विचारी,
हरे वसन भूपण बनवारी।
चढ़े कदंब विटप प्रभु जायी,
दीन्हे पट भूपण लटकायी।
मणि आभरण समेटि सजाये,
परी किरण दिनपति दमकाये।
नीलांबर पाटांबर सारी,
टाँगी अँगिया विटप सँवारी।
अरुण पीत बहु वर्णन सोहत,
डार डार अंबर मन मोहत।
पायीं जानि न कछु ब्रजनारी,
पल महँ कौतुक रचेउ मुरारी।
करन लगीं जब रविहिं प्रणामा,
उठी दृष्टि देखे घनश्यामा।

दोहा:—पट पल्लव भूपण दुरेउ, परेउ दृष्टि रवि नाहिं,
सुरपति-धनु मानहुँ उयेउ, श्याम नीप तरु माहिं। ११२

हरिहिं विलोकत वाम लजानीं,
गहिरे नीर धँसीं सकुचानीं।

हिम-शीतल कालिन्दी नीरा,
परसत प्राण प्रचण्ड समीरा।
मुख पर्यन्त वारि सब ठाढीं,
काँपत अंग, ग्लानि मन बाढी।
लोचन अवनत जल जनु बोरी,
विनवत ब्रज-वनिता कर जोरी—
"देखहु निज मन श्याम! विचारी,
अनुचित लखन वसन बिनु नारी।
'अंबर देहु' हमार गिरायी,
अधिक कहहिं का, मरत लजायी।"-
कहेउ हरिहु—"जो लागति लाजा,
वस्त्र उतारत नित केहि काजा?
नग्न नीर तुम कीन्ह प्रवेशू,
हमहिं सुनावत अब उपदेशू।

दोहा :— *वारि माहि निवसत वरुण, तिनकै लाज विहाय,*
लोक लाजहु त्यागि तुम, धँसत नग्न जल जाय। ११३

गौरी पूजन वृथा तुम्हारा।
खंडित ध्यान नेम व्रत सारा।"
सकुचीं गोपी सुनत दुखारी,
कहत—"कीन्ह हम चूक मुरारी!
जो कछु होत सोइ गहि लीन्हा,
अनुचित उचित विचार न कीन्हा।
जानहिं हम नहिं शास्त्र-विधाना,
छमहु हमार श्याम! अज्ञाना।
जब लगि रहहि देह महँ प्राणा,
करहि कबहुँ नहि नग्नस्नाना।
देत रहहु नित सीख मुरारी!
सकहिं निदेश तुम्हार न टारी।
वसन देहु अब हमहिं उतारी"—
अस कहि भयीं मौन सुकुमारी।

अचल सकल निज निज गति भूलीं,
जनु जल विपुल कुमुदिनी फूलीं।

दोहा :— प्रमुदित मन घनश्याम तब, फेंके वस्त्र उतारि,
त्यागेउ तरु, पहिरे वसन, गोपिन तजि तजि वारि। ११४

धारे पुनि निज निज आभूषण,
कहहिं—"आजु लागेउ अति दूषण।
जदपि कीन्ह घनश्याम ढिठाई,
तौहू नीकी चलनि बतायी।"
निज निज भवन गयीं व्रज नारी,
आये नंद-सदन वनवारी।
दही मथति राधा तहँ ठाढ़ी,
मनहुँ मदन साँचे धरि काढ़ी।
डोलत तनु, आंदोलित अंचल,
वेणी झूमति इत उत चंचल।
जनु विधु-वदन दुग्ध अनुमानी,
नागिनि पान हेतु अकुलानी।
देखेउ आये कुँवर कन्हाई,
मथति कहूँ कहुँ दृष्टि लगायी।
इतनेहि महँ आयी नँदरानी,
कहति—"कहा राधा बौरानी?

दोहा :— "देखु, मथानी कहँ धरी, कहाँ धरेउ दधि-माट,
कहाँ चलावति हाथ तैं, कीन्हें चित्त उचाट।" ११५

सुनत किशोरी खीझि रिसानी,
आयी हरि ढिग फेंकि मथानी।
"दासी दास बहुत मम धामा,
कबहुँ न करहुँ हाथ निज कामा।
आवहुँ खेलन संग कन्हाई,
महरि मथानी देति गहायी।"

सुनत यशोमति मारन धायी,
भागी कुँवरि भीति दरसायी।
आगे राधा, पाछे मोहन,
गये खरिक देखन गो-दोहन।
तन्हिं लखि यह हरि मुसकायी—
"दुहिहौं नाना निज कर गाई।"
कहति कुँवरि—"मैं हरिहिं सिखावहुँ,
दुहन रीति दुहि धेनु बतावहुँ।"
बछरा मीन्हेउ थनन लगायी,
दोहनी घुटुवन—धरी जमायी।

दोहा —*दुहत आपु गोपाल लखि, पुलकि रँभानी गाय,*
लागे दुहन सनेह हरि, दोहनी धार बजाय। ११६

दुहत दीन्ह राधा तन हेरी,
बिसरी धेनु अनत मति प्रेरी।
इत चितवहिं, उत धार चलावहिं,
लखि लखि स्यामा सुख सुख पावहिं।
हाथ धनु थन, नैन प्रिया तन,
चूकि धार निसरी चद्रानन।
दुग्ध बिन्दु राधा मन मोहत,
धाय कलय इन्दु जनु सोहत।
मगन नेह मिलि ध्यान न रागा,
आयो तेहि छण मग्रा विशाखा।
"राधा!" कहि कहि टेर लगायी,
"चलहु तुरत घर मातु रिसायी।
स्यामहिं रहति सदा तैं घेरे,
ठाढ़ि मनहुँ लिखि धरी चितेरे।
गोप अन्य घर गद दुगायी,
जो तुम हरि न धेनु दुहायी।

दोहा—*"मद दुहैया स्याम यह, दुहहिं जो मोरी गाय,*
मानि पचार नँदराय ए, मैं ही रही रिसाय।" ११७

सखी संग गवनी सुकुमारी,
आये लौटि सदन बनवारी।
पूछेउ महरि कछुक अनखायी—
"राधहिं छाँड़ेउ कहाँ कन्हाई?"
मन विहँसे, मुख प्रकटेउ रोषू—
"सुनु माता! आपन इक दोषू।
जहँ तहँ मोर खेलौना डारति,
मुरली भँवरा कछु न सँभारति।
आजु प्रभात जबहिं घर आयेउँ,
राधहिं मथत दही मैं पायेउँ।
झूठहि लीन्हे हाथ मथानी,
मन महँ निज औरहि तेहि ठानी।
मुरली पै जब दृष्टि लगायी,
मैं जानेउँ चोरी हित आयी।
साँचहु फिरि बंशी लै भागी,
महूँ गयेउँ तेहि पाछे लागी।

दोहा :— *खरिक निकट पनघट जहाँ, रपटि गिरी भहराय,*
बंशी छूटी, मै गही, वह रोयी बिलखाय। ११८

रारि रोय राधा अति कीन्ही,
मोहिं तोहिं बहु गारी दीन्ही।
जात गेह बोली डरपायी—
'मुरली लेहौं श्याम चुरायी।'
कहा करहुँ मैं अब री माई!
मुरली राखहुँ कहाँ लुकायी?
साँझ सबेरे लागी आवन,
चोरी करि करि लागी धावन।
तेहि पै वैर नित्य नव ठानति,
केतनहु कहौं एक नहिं मानति।"
सुनत श्याम बतियाँ रस-बोरी,
रीझि हँसी यशमति मति-भोरी।

कहति हुलसि—"तुम सुनहु मुरारी।
लागति राधा मोहिं पियारी।
वृथा करति घर चोरी आयी,
मैं मुरली इस देहुँ गढ़ायी।"

दोहा:—कहत कान्ह—"जानति नहीं, आजु बतावहुँ तोहि,
बहुत बुरी यह राधिका, तनिक सोहाति न मोहि।" ११६

ताही क्षण नँदराय पधारे,
श्याम गिरा सुनि हँसे सुखारे।
लीन्हेउ लाल अंक बैठायी,
चूमत मुख करि भाग्य बड़ाई।
अवसर लखि बोली नँदरानी—
"सुरपति-पूजा तुमहिं भुलानी।
गाँव दसक भूपति ते पाये,
बड़े भये जग महर कहाये।
जेहि प्रसाद सुत संपति पायी,
सो कुलदेव दीन्ह बिसरायी।"
सुनत नंद पुनि पुनि पछिताने,
यशुमति वचन सत्य सब माने।
उठे कहत—"सब गोप बोलावहुँ,
अबहिं सकल सभार करावहुँ।"
नँद-निदेश व्रज बजी बधाई,
चहुँ दिशि उत्सव-शोभा छायी।

दोहा:—बाँधे तोरण जहँ तहाँ, बने विविध पकवान,
बाजे ढोल मृदङ्ग बहु, घर घर मंगल गान। १२०

नंद-सदन सबते बढ़ि शोभा,
व्यंजन विपुल श्याम मन लोभा।
जबहिं लेन कछु मोहन धावहिं,
बरजति मातु, छुवन नहिं पावहिं—

"जनि आवहु तुम यहाँ कन्हाई!
लखतहि बालक देब रिसायी।"
बैठे आँगन घरिक चुपायी,
पुनि पूछेउ नहिं जाति ढिठाई—
"मैया! मोहिं यह देव देखावहि,
देखहुँ एतिक कैसे खावहि।"
सुनि कर जोरति, दोष मिटावति,
यशुमति शिशु अपराध छमावति।
सहसा सोचेउ हृदय कन्हाई,
सुरपति-पूजा देहुँ मिटायी।
चले सवेग, महर पहँ आयी,
लखेउ विपुल ग्वालन समुदायी।

दोहा:—*नंद तहाँ, उपनंद तहँ, गोप-प्रमुख वृषभानु,*
पूछेउ पितु ढिग बैठि प्रभु, मानहुँ निपट अजानु—११

"सुरपति कवन देव यह होई,
पूजन जासु करत सब कोई?
रहत अदृश्य कि रूप देखावत?
यदि पूजे नर का फल पावत?"
कहत महर—"तुम, सुनहु कन्हाई,
गोपन कर धन सर्वस गाई।
जब महि मेघ वारि बरसावहिं,
बढ़त पात-तृण गैया खावहिं।
इन्द्र देव सब मेघन स्वामी,
दिखहिं नाहिं ये अन्तर्यामी।
करत सुरेन्द्रहि हमहि प्रदाना,
अगणित धेनु वत्स गण नाना।
हम सब करहिं शचीपति पूजा,
जानहिं और देव नहिं दूजा।
सुरपति-कृपा तुमहिं मैं पावा"—
अस कहि नंद शीश महि नावा।

दोहा :— *विहँसे हरि सुनि पितु वचन, लखेउ नवावत शीश—*
"तात ! इन्द्र मेघेश जो, कवन प्रभंजन-ईश ? १२२

केहि के बल पुनि अनल जरावत ?
जलहु कहाँ ते निज बल पावत ?
विरचेउ केहि यह नभ-विस्तारा ?
कवनि शक्ति छिटकावति तारा ?
व्योम भानु शशि केहि प्रकटाये ?
उदय अस्त केहि तिनहिं सिखाये ?
केहि विरचे वन भूमि पहारा ?
केहि कीन्हेउ यह विश्व पसारा ?"
चकित सकल सुनि प्रश्न चुपाने,
बोले प्रभु पुनि, मन मुसकाने—
"सुनहु तात ! इक बात बतावहुँ,
लखेउँ स्वप्न निशि सबहिं सुनावहुँ।
मीठी निंदिया सोयेउँ जबहीं,
आयेउ दिव्य पुरुष कोउ तबहीं।
शख चक्र शोभित भुज चारी,
भाषेउ विहँसि—'सुनहु बनवारी !

दोहा :— *मेघ-वृन्द-पति इन्द्र यह, मैं सुरनाथहु नाथ,*
रवि शशि नभ नक्षत्र सब, मोहि नवावहि माथ। १२३

इन्द्रहिं देत दैत्य जब त्रासा,
आवत* विलपत मोरेहि पासा।
तब लगि चलनि इन्द्र इन्द्राई,
जब लगि मैं तेहि होहुँ सहायी।
इन्द्र विषय-रत, इन्द्रिय-दासू,
अब न करहु व्रत पूजा तासू।
लै भोजन व्यंजन पकवाना,
गोवर्धन गिरि करहु पयाना।
सब मिलि अर्चा मोरि रचावहु,
मोर ध्यान धरि भोग लगावहु।

सवन लसत मैं गिरि प्रकटइहौं,
कर ते लै लै व्यंजन खइहौं।
मुँह माँगे वर व्रजजन पावहिं,
रोग दोष दुख ताप नसावहिं।"
कही कान्ह सब अद्भुत वाणी,
कहत नंद—"यह अकथ कहानी।"

दोहा :— *कहत परस्पर गोप कछु, "हमहिं शचीपति-भीति।"*
कहत अन्य-"हमरे हृदय, केवल कान्ह प्रतीति।" १२४

बाढी व्रजजन उर जिज्ञासा,
बैठे सरकि सरकि हरि पासा।
पूछत—"साँचहु रूप देखइहे,
व्यंजन हमते लै लै खइहै?"
कहव श्याम—"मैं सत्य सुनावहुँ,
प्रकट देव तुम सवहिं देखावहुँ।
यह प्रत्यक्ष खात, मुख भाखत,
साधक साध्य भेद नहिं राखत।
देव न यह मेघेश समाना,
रहत सतत जो छिपा लुकाना।"
समुझाये सब श्याम सप्रीती,
उपजी व्रजजन हृदय प्रतीती।
कहत—"करहु जो कहहिं कन्हाई,
चले श्याम-सँग सकल भलाई।"
पहुँची गेह गेह पुनि चर्चा,
व्रज ते उठी शचीपति-अर्चा।

दोहा —*यान सजे, व्यंजन भरे, पहिरे भूषण चीर,*
गवने हिलि मिलि नारि नर, भयी शैल पै भीर। १२

द्विज वेदज्ञ नंद बोलवाये,
होम यज्ञ जप दान कराये।

व्योम सधूम, सुवास सोहाई,
स्वरित साम मत्रन गिरिरायी।
विष्णु-मूर्ति हरि दिव्य मँगायी,
प्राण-प्रतिष्ठा सविधि करायी।
कहेउ वहुरि—"अव भोजन लावहु,
सुर सन्मुख सव भेट चढावहु।"
लाये भोजन भरि भरि थारा,
वाढे व्यजन मनहुँ पहारा।
परसत सव, परसनि नँदरानी,
परसत महर सॉंझ नियरानी।
दृग उत्सुक, उर व्याप्त प्रमोदा,
भोग लगायेउ नद यशोदा।
जैसेहि महि नँद माथ नवावा,
दिव्य प्रकाश प्रखर गिरि छावा।

दोहा :—*चौंधे लोचन, चित चकित, भये प्रकट भगवान,*
बाहु सहस धरि आपु हरि, लागे व्यजन खान। १२६

वेद ऋचा इत विप्र उचारत,
अतरिक्ष सुर जयति पुकारत।
वरसत पुष्प विपुल महि छायो,
कहत गोपजन—"धन्य कन्हाई।"
नद, महर मन मुदित खवावत,
खात देव आनँद उपजावत।
क्रम क्रम गोप-प्रमुख वहुतेरे,
जुरे समोद सरकि सुर नेरे।
जुरीं सभक्ति सिमिटि सव वामा,
विभुहिं खवावत करत प्रणामा।
कान्ह आपु एकयान उठाये,
कौर घछुक कर कमल खवाये।
विहँसे विभु, विहँसे वनवारी,
सम छवि वेप लखेउ नरनारी।

ललिता राधहि कहति सनेहू—
"उपजत सखि मम मन संदेहू।

दोहा :— हरि साँवर, साँवर सुरहु, नीरज नयन विशाल,
मोर मुकुट सखि! शिर दुहुन, वक्षस्थल वनमाल। १२७

दुहुन श्रवण कुंडल छवि छाजत,
दुहुन देह पट पीत विराजत।
दुहुन आभरण अलकहु सोई,
देव श्याम, सखि! एकहि दोई।"
सुनतहि बोली ढीठ विशाखा—
"श्यामहि सकल स्वाँग रचि राखा।
सुरपति-अर्चन श्याम मिटावा,
देव-व्याज आपुहिं पुजवावा।
आपु खात पुनि आपु खवावत,
धरि दुइ रूप हमहिं भरमावत।
आपु देव पुनि आपु पुजारी,
वंचेउ निश्चय हमहिं मुरारी।
अवहिं जो कपट देहुँ प्रकटायी,
फिरि न हरिहिं कोउ ब्रज पतियायी!"
वरजेउ राधा नयन तरेरी,
भक्ति समेत रही सुर हेरी।

दोहा :— कबहुँ विलोकति विष्णु तन, कबहुँ श्याम छवि-धाम,
रोम रोम पुलकित कुँवरि, पुनि पुनि करति प्रणाम। १२८

सोरठा:— दै दर्शन, सानिध्य, गोधन-वर्धन वर विविध,
ब्रजजन जय-ध्वनि मध्य, गवने श्रीधर धाम निज।

अन्तर्धान भये भगवाना,
गोप जनहु गृह कीन्ह पयाना।
तजि तजि शैल शकट निज साजे,
चढ़ि चढ़ि चले बाद्य बहु बाजे।

बोलत हँसत प्रशासत जाहीं,
श्याम प्रतीति प्रीति मन माहीं।
उत सब वृत्त शचीपति पावा,
अर्चन मम व्रजजन बिसरावा।
कोउ अवतरेउ कृष्ण तहँ आयी,
पूजा निज मोहिं निदरि करायी।
उपजेउ इन्द्र हृदय अति क्रोधा,
चाहत लेन विषम प्रतिशोधा।
आजुहि जो मैं व्रज न बहावहुँ,
वज्री पुनि नहिं विश्व कहावहुँ।
घन सवर्तक तुरत बोलायी,
कहत—"बरसि व्रज देहु बहायी।

दोहा —*वन, धरणी, गोधन, जनन, वृद्ध, युवा, तिय, बाल,*
सकल गोवर्धन शैल सह, लै बोरहु पाताल।" १२६

सुनि निदेश सवर्तक धाये,
प्रलय प्रवर्तक व्रज चढ़ि आये।
नीरद नील कमल कोउ श्यामा,
कोउ मयूर कान्ति अभिरामा।
इन्द्रनील मणि द्युति कोउ धारे,
कोउ कोउ धूम वर्ण कजरारे।
उमड़ि घुमड़ि घेरत घहराते,
घटाटोप रवि ओट छिपाते।
धरणी व्योम सान्द्र अँधियारा,
अंतराल तम-तोम पसारा।
गरज तरज संघट्ट सरोषा,
भैरव भेरी भीषण घोषा।
गये गोप वन धेनु चरावन,
भागे निरखत मेघ भयावन।
पनघट भरत नीर पनिहारी,
भागीं तजि सिर गागर भारी।

दोहा :— *लागे बरसन घन-प्रलय, वही प्रचंड बयारि,*
तड़कि तड़कि तड़की तड़ित, अंबर हृदय विदारि । १३०

होत रोर कोउ सुनै न बूझहि,
अँधाधुध नहिं कहुँ कछु सूझहि ।
गिरी अखंड धार महि घोरा,
जनु ब्रह्मांड-भांड कोउ फोरा ।
भरे ताल, नहिं सलिल समायी,
सरवर भये सरित उतरायी ।
प्रविशी पुनि पथ वीथिन धारा,
ढहे गेह, नहिं रहेउ सहारा ।
बहेउ वारि गो-वत्स बहायी,
सुरभी वहीं रँभाय रँभायी ।
विलपे गोपी गोप विहाला,
पल पल जल-प्रवाह विकराला ।
पग डगमग नहिं थमत थमाये,
बूड़त ब्रज अब कवन बचाये ?
निकसी शत शत कंठ पुकारा—
"कहाँ कान्ह ब्रज-प्राण-अधारा !

दोहा :— *मेघ सुभट, विद्युत धनुष, बूँद बूँद खर बाण,*
अब विलंब नँदलाल कस, निकसत ब्रजजन प्राण !" १३१

कहति मातु इत हरिहिं सुनायी—
"इंद्र अर्चना तुमहिं मिटायी ।
मेघ अमोघ सुरेश पठाये,
बरसि बरसि ब्रज देत बहाये ।
कहँ गोवर्धन देव कन्हाई ?
बूडत ब्रज न उबारत आयी ।
भोजन हेतु दौरि सुर आवा,
भुज सहस्र धरि व्यंजन खावा ।
परी विपति, नहिं देत दिखायी,
सकहु कान्ह ! तौ लेहु बोलायी ।"

हरि गँभीर कह—"विभु न बोलइहीं,
तनिक काज लगि नहिं भटकइहीं।
मैं ही मैया! करहुँ उपायी,
निमिष माहिं जल-क्लेश नसायी।"
अस भाषत पर्वत तन हेरा,
"पाहि! पाहि!" पुनि ब्रजजन टेरा।

दोहा :—*महि ते गहि गिरि वाम कर, लीन्ह समूल उपारि,*
कनिष्ठिका करजाग्र हरि, सहजहि लीन्हेउ धारि। १३२

शैल सुमन सम श्याम उठावा,
छत्र रूप ब्रज ऊपर छावा।
गिरत परत ब्रजजन सब धाये,
आतुर सिमिटि शैल तल आये।
सुरभि, वत्स, गृह-पशु, वनचारी,
आये सकिलि जहाँ गिरिधारी।
सहज शत्रुता सबन बिसारी,
अहि मयूर सँग बसे सुखारी।
मृग मृगेन्द्र मूषक मार्जारी,
रहे हरिहिं अनिमेष निहारी।
बिहँसत बहुरि कहत बनवारी—
"राखेउँ अब लगि गिरिवर धारी।
अब लागत मोहिं कछु कछु भारी!"
विकल सुनत बोली महतारी—
"भैया! सब मिलि होहु सहायी,
गिरि न परै कहुँ बाल कन्हाई।"

दोहा :—*आर्त बैन माता कहे, विहँसे मन भवपाल,*
लकुटी लै लै गिरि परे, नंद सहित सब ग्वाल। १३३

टेकि टेकि लकुटी सब ठाढ़े,
पौरुष प्रकटि उठावत गाढ़े।

निरखत, बिहँसत, कहत कन्हाई—
"मोरी भुजा तनिक सी भाई!
नख ते टरै गिरै गिरि भारी,
रहहु ठाढ़ सब टेक सँभारी।"
सुनि सुनि श्याम बैन सुखदायी,
तमकि तमकि हठि करत सहायी।
यहि विधि सप्त दिवस ब्रजनाथा,
धारेउ गोवर्धन निज हाथा।
देवपतिहु उत कोप चढ़ावा,
आपुहि चढ़ि ब्रज ऊपर आवा।
काँपेउ नभ, बरसेउ सुररायी,
बूँद न तबहुँ शैल तल आयी।
हरि औरहु माया प्रकटायी,
गिरत वारि ब्रज जात सुखायी।

दोहा:— *बरसि चुकेउ जब जल प्रलय, गलेउ इन्द्र अभिमान,*
"तजहु मोह"—ब्रह्मा कहत,—"उपजे ब्रज भगवान।" ३४

कही विधाता जब निज बीती,
उपजी सुरपति-हृदय प्रतीती।
धिक मोहिं मोह-अंध, अभिमानी,
जो हरि सँग हठि समता ठानी।
मैं सुरेश, वे सर्वाधारा,
तिन ते बैर न मोर उबारा।
चतुरानन निज आगे कीन्हे,
चलेउ शचीपति सुर सँग लीन्हे।
तजि सुरपुर वृन्दावन आवा,
परेउ चरण नहिं उठत उठावा—
"अनजानत मैं कीन्हि ढिठाई,
छमहु दयानिधि! मम अधमाई।"
देखि सुरेन्द्र-दैन्य दनुजारी,
दीन्ह तोष, छमि कीन्ह सुखारी।

कहत शक्र—"वर माँगहुँ एकू,
करन चहहुँ मैं प्रभु-अभिषेकू।"

दोहा :—*सुरपति हरि अनुमति लही, ले कर सुरसरि वारि,*
कीन्ह कृष्ण अभिषेक व्रज, लखत गोप नर-नारि। १३५

कहि कहि गो-धन-गोकुलनाथा,
गोविंद नाम दीन्ह सुरनाथा।
विनवत नत-महि सुरन समाजू—
"हम कृतकृत्य दरस लहि आजू।"
प्रभु परितोषि सुरेश पठाये,
मुदित अमरपुर सुरहु सिधाये।
व्रजजन तहँ जे रहे सयाने,
लखि कौतुक मन सकल सकाने।
जाय महर-गृह प्रकटि सनेहू,
कहेउ सुनाय हृदय संदेहू।
जो जो अचरज कीन्ह कन्हाई,
चमत्कार सब कहे सुनाई—
"ये नहिं गोप-तनय बनवारी,
दिव्य पुरुष कोउ ये अवतारी।"
नंदहु सुनि मन मोद बढ़ावा,
गर्ग-कहा सब तिनहिं सुनावा।

दोहा :—*फैलेउ पल महँ वृत्त व्रज, श्याम ब्रह्म अवतार,*
कहत नारि-नर—"धन्य हम, निरखत जगदाधार।" १३६

एक दिवस हरि सखन बोलायी,
कहे सकौतुक वचन सुनायी—
"सुरपति स्वकर तिलक मम कीन्हा,
कहि गोविंद मोहिं गोकुल दीन्हा।
रहेउ कंस अब व्रजपति नाहीं,
लेहुँ राजकर मैं व्रज माहीं।

जात जे मधुपुर लै दधि माता,
लेहु तिनहिं ते प्रथम जकाता।
कालिह सजग रोकहु वन बाटा,
घेरहु सब मिलि जमुना-घाटा।"
सुनि सुनि सखा हृदय हुलसाने,
जाय प्रात वन-विटप लुकाने।
निकसीं गो-रस बेचनहारी,
जब प्रभात वन-पथ ब्रजनारी,
हरि सतर्क कीन्हेउ संकेतू,
कूदे सखा, वाम हत-चेतू।

दोहा :— *व्याप्त भीति गोपिन-हृदय, डोलत तनिक न गात,*
चित्र-लिखी ठाढ़ीं सकल, निकसति मुख नहिं बात। १३७

कहेउ सखन ब्रज -वनितन पाहीं—
"कोऊ ठग तस्कर हम नाहीं।
जानत तुम जब सुरपति आयेउ,
निज कर गोविँद तिलक रचायेउ।
भये कृष्ण अब गोकुलरायी,
चाहत लेन जकात चुकायी।
हम अनुचर, हरि भूप पठाये,
लेन राजकर यहि थल आये।"
सुनि ब्रज-वाम धैर्य उर आनी,
बोलीं श्याम-सखन सन वाणी—
"फिरी ग्राम नहिं कृष्ण-दोहाई,
भये भूप केहि भाँति कन्हाई?
शचीपतिहिं को ब्रज पहिचानत,
हरि बहुरूपिया सब कोउ जानत।
कब केहि तुमहिं बनायेउ अनुचर,
हम कस जानहिं तुम नहिं तस्कर।

दोहा :— *भये भूप जो कान्ह अब, काहे रहे लुकाय?*
होहि प्रकट सन्मुख स्वयं, लेहि जकात चुकाय।" १३८

व्यंग वचन बोलहिं सब ठाढ़ी,
दरस-तृषा गोपिन मन बाढ़ी।
उतरे तरु ते तबहिं मुरारी,
हँसीं नारि बाजीं करतारी—
"सुनत नृपति तुम भये कन्हाई!
कैसे चढ़े पेड़ तुम जाई?
जदपि मृगेन्द्र विदित वनराऊ,
लखेउ न चढ़त विटप तेहि काऊ।
कपि सम सब आचरण तुम्हारे,
तबहुँ नृपति तुम बनत हमारे।
रहे बाल कीन्ही लँगराई,
बाढ़त सीखि लीन्हि बँदराई।
तब चोरी दधि माखन खावा,
अब बढ़ि डाकुन-साज सजावा।
थोरिहु खबरि कंस जो पावै,
बिसरि जाहु सब, बाँधि मँगावै।

दोहा :— *चोरत माखन कालिह लगि, आजु बने तुम राय,*
निशि देखेउ कछु स्वप्न, उठि, प्रात रची ठकुराय।" १२६

बोले हरि—"तुम सकल लबारी,
कहत बैन नहिं बदन सँभारी।
सब मिलि मोहिं लगावत चोरी,
लखत न पै कछु आपनि खोरी।
चोरी ते व्यापार बढ़ावा,
राज-भाग नहिं कबहुँ चुकावा।
आजु लेहुँ जब कसरि निकारी,
देहुँ धरन तब पाँव अगारी।
कहा कंस-भय मोहिं बतावत,
अस नरपति मैं नित्य नसावत।
दूध दही तुम बेचनहारी,
सकहु चीन्हि नहिं मोहिं गँवारी।

मैं त्रय लोक, सूर्य, शशि-स्वामी,
अविदित, अलख, अनादि, अनामी।"
सुनि गोपी बोलीं मुसकायी—
"निज मुख हरि का करहु बड़ाई?

दोहा:— साँचहु हम समुझहि कहा, अविदित,अलख,अनाम,
नंद गोप-सुत कृष्ण तुम, बसत हमारेहि ग्राम। १४०

सुरपति तुमहिं नृपति जो कीन्हा,
चँवर छत्र काहे नहिं दीन्हा?
कहँ सिंहासन धरेउ लुकायी?
काहे फिरत चरावत गाईं?
राज-वसन कहँ धरे उतारी?
काहे ओढ़त कमरी कारी?
काल्हि छाँछ हित ढूँढ़त भाँड़े,
मारग रोकि आजु तुम ठाढ़े!
निदरत नृपहिं हमारे आगे,
फिरत कंस-भय भागे भागे।
जो कछु तुमहिं शक्ति-अभिमाना,
मधुपुर कस नहिं करत पयाना?
सकहु तो मारहु कंसहिं जायी,
देय राजकर हमहुँ चुकायी।"
सुनत कृष्ण कछु रिस दरसायी,
कहत,—"साँच अब देहुँ बतायी।

दोहा:— होहि निरर्थक नहि वचन, समुझहु निज मन माहिं,
कंस-निधन, मधुपुर गवन, आवन पुनि ब्रज नाहिं।" १४१

भाषे मर्म वचन घनश्यामा,
भयीं सुनत व्याकुल ब्रज-वामा।
"बोलहु नहिं अस बैन कन्हाई!
जइहौ कस तुम ब्रज बिसरायी?

हम सब सुत सम तुमहिं खेलावा,
पालि पोसि ब्रज-राज बनावा।
माखन खाहु, चरावहु गाई,
देहु हमहिं सुख मुरलि बजायी।
बतरस हित हम तुमहिं खिझावहिं,
तुम रिस करहु देखि दुख पावहिं।"
अस कहि धरेउ दूध दधि आगे,
"लेहु स्याम! माखन बिनु माँगे।
खेलहु, खाहु, रहहु ब्रज माहीं,
धरेउ काह तेहि मधुपुर माहीं।"
बैन सनेह सुनत मुसकायी,
राज-भाग हरि लीन्ह चुकायी।

दोहा :— *कहहिं गोपिका—"तुम विपिन, आजुहि मिले कन्हाय!*
पूजहु चिर अभिलाष उर, वंशी देहु सुनाय।" १४२

सुनत सखा-भुज निज भुज दीन्हा,
पंकज-पाणि वेणु प्रभु लीन्हा।
परसत अधर मुरलि मधु बाजी,
लटकेउ मुकुट भौंह छवि छाजी।
लोचन चपल, लोल श्रुति कुंडल,
झलकत युग कपोल, मुख-मंडल।
पीत वसन फहरत तनु कैसे?
लहरति उदधि उषा-द्युति जैसे।
चितै चितै प्रभु सैन चलावत,
अँग अँग पुलक-भँवर उपजावत।
तरुण तमाल तरे हरि राजत,
श्यामल कान्ति, मदन द्युति लाजत।
खचित व्योम महि, तरु थहराने,
धेनु वत्स तृण चरन भुलाने।
खग मोहे, मृग-यूथ लोभाने,
भंग-समाधि यती हुलसाने।

दोहा :— *उलटि बहेउ यमुना सलिल, द्रवित बहे पाषाण,*
रुकेउ प्रभंजन लोक त्रय, अटके व्योम विमान। १४३

गोपिन-गति किमि कहहुँ बखानी,
वारि-बूँद जनु सिंधु समानी।
भयीं वाम निमिषहि महँ बौरी,
कीन्हि मनहुँ कछु वेणु ठगौरी।
सस्मित मुख सुख श्याम निहारहिं,
पुलक अंग अँग, पलक न पारहिं।
लटपटाय चरणन लपटानीं,
शिथिल शरीर फुरति नहिं वाणी।
निरखेउ प्रभु गोपी अनुरागी,
रुकेउ वेणु सोवत जनु जागीं।
कहत समीति सुनाय कन्हाई—
"बेचहु दधि अब मधुपुर जायी।"
सुनत शब्द निज दशा निहारी,
द्विविधा विवश वाम सुकुमारी।
कबहुँ शीश दधि-भाजन धारहिं,
हेरहिं हरि तन बहुरि उतारहिं।

दोहा :— *चरण चलत मधुपुर डगर, लागे दृग हरि ओर,*
वेणु रुकेउ, पै मन अबहुँ, बँधेउ राग-रस-डोर। १४४

व्रज दिशि गवने विपिनविहारी,
पहुँची मधुपुर घोष-कुमारी।
वीथिन बरबस चरण चलावत,
छलकत रस, उछरत अँग आवत।
परत चौंकि, कछु तन सुधि होई,
कहत, "मधुर दधि लेहै कोई!"
जात भूलि पुनि दधि पल माहीं,
तजि हरि सूझि परत कछु नाहीं।
भरी मुरलि मन मधु अभिरामा,
'श्याम' कहत विचरत व्रज वामा।

"लेहु स्याम ! कोउ लेहु गोपाला !"
बेचत 'स्याम' फिरत ब्रज-बाला।
भयेउ कोलाहल मधुपुर भारी,
इत उत जुरे चकित नर-नारी।
दही लेन मिस लेहिं बोलायी,
सुनत, 'स्याम' मुख हँसहिं ठठायी।

दोहा :—कंस सुनेउ संवाद सब, आयीं ब्रज ते बाम,
गोरस-भाजन सिर धरे, बेचत मुख ते 'स्याम'। १८५

नृपति विचारत विस्मय मानी,
कस ये बाम स्याम-दीवानी।
वृन्दावन ते वृत्त मँगावा,
आय दूत संवाद सुनावा।
शक्र-समागम, तिलक-कहानी,
कहेउ कृष्ण-ब्रह्मत्व बखानी।
मानन व्रज स्यामहिं अवतारी,
पालन निज निदेश नरनारी।
बहुरि दानकर वृत्त बताना,
जनु नरेश-शिर वज्र गिराना।
करत विचार कंस जन-द्रोही,
भे बलराम कृष्ण विद्रोही।
आशु राजकर माम चुकावहिं,
तीन प्रान मधुपुर चढ़ि आवहिं।
गोपजनहु नट कीन्हि चँडाई,
'कर' निरोध निजु कीन्ह घुमाई।

दोहा :—क्षुब्ध, कुपित यादव-नृपति, लीन्हे असुर बोलाय,
वृषभ, व्योम, अरिष्ट सन, कहत—"जाहु व्रज धाय। १८६

धरहु सकल छल बल चतुराई,
दपहु ग्वाल गनि कछुक उपायी।

मारहु हलधर मोर अराती,
वचहि कृष्ण नहिं कवनिहु भाँती।
अरि निनु वधे लौटि जो आवहि,
मधुपुर पुनि प्रवेश नहिं पावहि।"
यहि विधि प्रलपि प्रकटि नृप रोषा,
दै उपहार बहुरि परितोषा।
चले असुर कंसहिं शिर नायी,
पग पग अहंभाव अधिकायी।
समुझत बालक अवहुँ कन्हाई,
फूँक मारि जनु सकत उड़ायी।
तृणावर्त सुधि जेहि क्षण आवति,
सहसा हृदय भीति उपजावति।
शकट, वत्स, पूतना-निपाता,
शोचि धुकत उर, काँपत गाता।

दोहा :— *विस्मय, मोद, विषाद युत, वृन्दावन नियराय,*
सखन संग आनत लखे, गोविंद गाय चराय। १४७

ग्वाल बाल कोउ सस्वर गावत,
कोउ शृंगी ध्वनि सरस सुनावत।
कोउ थिरकत, कोउ भाव बतावत,
कोउ सुरभि सब जोरि चलावत।
सखन मध्य मोहन छवि छावत,
हटकत गैयन, वेणु बजावत।
नील-कमल-दल-द्युति नँदलाला,
वक्षस्थल सित सरसिज-माला।
कुवलय रक्त अधर युग लोचन,
वारिज-वदन इन्दु-मद-मोचन।
रेखा तिलक ललाट सोहाई,
वही उमहि जनु सुदरताई।
गो-रज मंडित कुंचित केशा,
सुषमा धाम श्याम वपु वेषा।

स्वागत-हित ब्रजजन सब धाये,
यशुमति आतुर हृदय लगाये।

दोहा :— *चूमति शिशु,पूछति जननि, "लाये काह कन्हाय !"*
हँसि हँसि श्रीपति,ओट पट, वन-फल दिये देखाय। १४८

हाथ पसारेउ यशुमति माई,
छीने वन-फल हँसि नँदरायी।
कहत महर, "मोरेहि हित लाये",
खीझी महरि, श्याम मुसकाये।
प्रभु पुनि कामरि ओर निहारा,
यशुदा अंचल ललकि पसारा।
दीन्ही कामरि कान्ह झरायी,
बरसे वन-फल गनि नहिं जायी।
ग्वाल गोप मिलि लूटन लागे,
अवसर पायेउ असुर अभागे।
धरेउ अरिष्टासुर वृष वेषा,
भीर मध्य द्रुत कीन्ह प्रवेशा।
पायेउ जहँ जेहि मारन लागा,
आकुल ग्वाल वृंद सब भागा।
गिरे धरणि खल पद दलि डारे,
सींग उठाय अनेक पछारे।

दोहा :— *विडरि सुरभि भागीं विकल, खूँदि खुरन ब्रज बाल,*
उत्थित आर्त निनाद थल, त्राहि! त्राहि! नँदलाल! १४९

गरजेउ दनुज देखि हरि आये,
रोष-अरुण दृग सींग उठाये।
धायेउ वायु वेग बल भारी,
चढ़े सखा भुज उछरि मुरारी।
प्रभु समीप आयेउ जेहि काला,
झपटि गहे हरि सींग विशाला।

पटकेउ महि झकझोरि भँवायी,
उठन चहेउ शठ उठि नहिं जायी।
सींग उपारि कीन्ह आघाता,
हतेउ दैत्य हरि व्रज-सुख-दाता।
लखि अरिष्ट-वध केशी धावा,
अश्व वेष हरि सन्मुख आवा।
खुरन खनत महि मुख विस्तारी,
लीलन चहत सृष्टि जनु सारी।
रहे अचल हरि, कौतुक कीन्हा,
सहसा स्वकर असुर-मुख दीन्हा।

दोहा :— टूटे रद रसना असुर, भयी ऐंठि पाषाण,
बढ़ेउ हस्त, श्वासा रुकी, परेउ धरणि निष्प्राण। १५०

हतेउ सकौतुक केशी श्यामू,
केशव नाम भयेउ अभिरामू।
लखि व्योमासुर उर भय माना,
निशि वृन्दावन जाय लुकाना।
सुत-बल निरखि नंद आनंदे,
पद-पंकज मुद व्रजजन वंदे।
हर्ष-अश्रु बहु मातु बहाये,
सुरगण व्योम सुमन बरसाये।
सखन बजाये वेणु-विषाणा,
गवने भवन करत गुण गाना।
आये नंद-सदन बनवारी,
आरति प्रमुदित मातु उतारी।
भूषण वसन सप्रीति सँभारति,
हँसि हँसि जननि अंग रज झारति।
लागि जेंवावन पुनि महतारी,
रोहिणि करति सप्रीति बयारी।

दोहा :— उदित व्योम लखि शशि शरद, औचक चले पराय,
"तनिक खरिक लगि जात मैं, ब्यानी धौरी गाय।" १५१

धाय सखिक पहुँचे घनश्यामा,
पाये दुहत धेनु श्रीदामा।
कहेउ, "सखा सब लेहु बोलायी,
वृंदावन खेलहिं निशि जायी।"
जोरे सखा सकल श्रीदामा,
गये जमुन तट सँग बलरामा।
लागे खेलन मिलि सुख देनू,
बालक वृंद बने कछु धेनू।
धेनु-चोर कछु अन्य बनाये,
सखा शेष रक्षक बनि आये।
व्योमासुरहु सुअवसर पायेउ,
बनेउ चोर, मिलि सखन समायेउ।
चोरी-मिस लै बाल उठायी,
गिरि गह्वर राखहि खल जायी।
शिला द्वार धरि पुनि पुनि आवै,
बाल उठाय अन्य लै जावै।

दोहा :— *लीलापति निरखे निखिल, व्योमासुर-व्यापार,*
दैत्य-कध आपहु चढे, आये गह्वर-द्वार। १५२

लाग उतारन जब बनवारी,
उतरे नहिं हरि गरिमा धारी।
सकेउ न सहि भव-धर गरुआई,
गिरेउ असुर मुँह-भर भहरायी।
वधेउ व्योम हरि ग्रीव मरोरी,
इक्षु-दण्ड जिमि जीव निचोरी।
गवने गुहा शिला सरकायी,
धाये सखा रँभाय रँभायी!
लखि हरि ग्वाल-बाल सरलाई,
विहँसि विहँसि खल-कथा सुनायी—
"सखा न होय असुर यह भारी,
आयेउँ गुहा ताहि सहारी।"

द्वार सवन शव दीख महाना,
"राखे आजु बहुरि हरि प्राणा।
उचित न राति रहब वन होई,
निकसहि कहुँ ते और न कोई।"

दोहा :— "चलहु-चलहु !" बोलहिं सखा, कर्षहि कर गहि श्याम,
शिला-खंड गोविन्द बसि, लखत प्रकृति छवि धाम। १५३

शरदागम शोभित मधु यामिनि,
महि अवतरित मनहुँ सुर-कामिनि।
विलसित व्योम विमल विधु आनन,
कुंचित अलक श्याम शशलांछन।
पुलकित कौमुदि अमल दुकूला,
तारक-अवलि विभूषण फूला।
बंधुक-अरुण अधर अभिरामा,
कलिका कुंद दशन द्युति धामा।
कैरव कुंडल श्रवणन धारे,
नवल मल्लिका चिकुर सँवारे,
हंस मुखर नूपुर स्वर गावति,
अलि ध्वनि किंकिणि वाद्य बजावति,
हरि, ढिग शरद शर्वरी आयी,
चित-रंजिनी वृत्ति हुलसायी।
अधर धरी मधु मुरलि कन्हाई,
संसृति सकल समीप बोलायी।

दोहा :— जागेउ जड़ चेतन जगत, त्यागे नीड़ विहंग,
निकसे वनचर तजि विपिन, सँग सँग सिंह कुरंग। १५४

गति आपनि सबहिन बिसरायी,
वंशी-रव पहुँचेउ ब्रज जायी।
जागे नर, जागीं ब्रज-वामू,
पूछत—"रास रचेउ कहँ श्यामू ?"

महि कोऊ, कोउ व्योम निहारा,
"वही उमहि कहँ ते स्वर धारा ?"
लै लै नाम श्याम उत टेरे,
चले दारु-योषित इव प्रेरे।
सकेउ न रहि कोऊ निज धामा,
गवने व्रजजन जहँ घनश्यामा।
सकुच नाहिं, भीतिहु हिय नाहीं,
आये निमिप माहिं हरि पाहीं।
लखे समीप श्याम चहुँ ओरा,
सिंह, व्याघ्र, गज, मृग, पिक, मोरा।
सुनत वेणु-ध्वनि त्यागि उपाधी,
जनु मुनीश सब लागि समाधी।

दोहा :— *ठिठकेउ विधु बँधि वेणु-स्वर, बहेउ व्योम उल्लास,*
याम-हीन यामिनि भयी, रचेउ श्याम महि रास। १५५

हरि-प्रेरित सब व्रज नर-नारी,
धाये एक एक कर धारी।
शोभित सकल मंडलाकारा,
चंचल चरण, चपल दृग-तारा।
राधा-माधव मध्य विराजे,
छवि विलोकि रति मन्मथ लाजे।
दामिनि-द्युति राजहि व्रज-वामा,
नील निचोल नवल अभिरामा।
अँग अँग आभूपण मणि मोती,
किरण समुज्ज्वल जगमग ज्योती।
मेचक केशबंध कमनीया,
विरचित सुमन-राजि रमणीया।
मृगमद-विन्दु इन्दु द्युति साजी,
कर कंकण, कटि किंकिणि बाजी।
बाजे वीणा विविध मृदंगा,
मुरज पखावज एकहि संगा।

दोहा :— *सप्त सुरन मुरली बजी, गाये गोविंद गान,*
सिहरि ससुरस वसुधा सुनति, सृजन-प्रलय-आख्यान। १५६

गोपिन गोविंद-लीला गायी,
स्वर-सुरसरि महि व्योम बहायी।
नर्तत मुद मिलि नटवर संगा,
दमकत वदन ललित भ्रू-भंगा।
अनुहरि ताल चरण चलि जाहीं,
थिरकत अंग, अधर मुसकाहीं।
पटकत पग उपजत उल्लासा,
पद पद बाढ़त लास विलासा।
भुज फेरत, कर भाव बतावत,
वलय मुद्रिका रस बरसावत।
कबरी शिथिल सुमन झरि लागी,
वदन कमल कच अलि-अनुरागी।
लहरत वसन, उड़त उर अंचल,
अनुहरि हरिहिं विलोल दृगंचल।
दरकत कंचुकि, तरकत माला,
प्रकटत आनन श्रम-कण-जाला।

दोहा :— *नील पीतपट, लट मुकुट, कुंडल श्रुति ताटंक,*
अरुझत एकहि एक मिलि, राधा-माधव-अंक। १५७

बहेउ अनवरत रास-प्रवाहा,
वसुधा सुधा-सिंधु अवगाहा।
उमहत-उछरत शशधर ओरा,
सींचत अंबर हर्ष हिलोरा।
अमर-वाम निज निज पति संगा,
वहीं रास-रस विह्वल अंगा।
किन्नर, सिद्ध, नाग, गंधर्वा,
नभ नाचत अनुहरि हरि सर्वा।
उदधि-वीचि, विधु-निशि कर जोरे,
नाचत नखत रास-रस-भोरे।

महि, खग, मृग, तरु, लता, विताना,
नाचत सस्मित विविध विधाना।
नहिं जड़ चेतन कहुँ कोउ बाचा,
हरि-लय-लिप्त विश्व सब नाचा।
विधि-शारदा, इन्द्र-इन्द्राणी,
नाचत विहँसि महेश-भवानी।

दोहा :— *रास-सुधा-सिंचित बहुरि, पाये अंग अनंग,*
नाचति रति पति पाय पुनि, राधा माधव संग। १५८

परमानंद मगन जग जानी,
कीन्हेउ कौतुक सारँगपाणी।
गहे हाथ निज राधा हाथा,
गवने कुंज-भवन ब्रजनाथा।
जमुना-नीर तरंग बढ़ायी,
पुनि पुनि चरण पखारत आयी।
झुकत महीरुह करत प्रणामा,
बरसत सुमन पराग ललामा।
स्वागत-गीत कोकिला गावहिं,
अलि-कुल विरुदावली सुनावहिं।
चंद्र मरीचि रंध्र-मग आयी,
विलसति वदन-कुमुद विकसायी।
श्रम-कण मलय समीर सुखाये,
आसन किसलय लाय बिछाये।
मंजु निकुंज ब्रह्म आसीना,
अंक विराजति प्रकृति प्रवीणा।

दोहा :— *विहँसत हरि हेरत प्रियहि, लास-रसीले नैन,*
अधर मधुर बरसे बहुरि, सुधा-सिक्त मृदु बैन— १५९

"हम दोउ एक, नाहिं कछु भेदा,
कहत सकल निगमागम वेदा।

निवसति यथा क्षीर धवलाई,
यथा हुताशन दाहकताई,
वसत प्रिये! तस तुम मोहिं माहीं, —
तुमहिं विहाय मोरि गति नाहीं।
मैं स्रष्टा, तुम–चिर नव सृष्टी,
मैं संतोष, परम तुम तुष्टी।
मैं दिनपति, तुम दिन उजियारी,
मैं शशि, तुमहु कान्ति मनहारी।
मैं दीपक, तुम शिखा सोहावनि,
मैं जलनिधि, तुम वेला पावनि।
मैं पावक, तुम स्वाहा रूपा,
मैं धनेश, तुम ऋद्धि अनूपा।
मैं जहँ अर्थ तहाँ तुम वाणी,
मैं नय, तुमहिं नीति कह ज्ञानी।

दोहा :— धर्म सत-क्रिया सदृश हम, बोध बुद्धि अनुहारि,
व्याप्त विश्व भरि तत्त्व इक, दिखत पुरुष अरु नारि। १६०

यह मम पूर्ण कला अवतारा,
विविध चरित्र, अमित विस्तारा।
अगणित कर्म, असंख्य निवासा,
ग्राम निगम पुर नगर प्रवासा।
कतहुँ जन्म, कहुँ शैशव यापन,
कतहुँ समर, कहुँ पुर संस्थापन।
कतहुँ संधि, कहुँ रण-गुण-गायन,
कतहुँ विजय, कहुँ समर-पलायन।
कतहुँ वेणु, कहुँ चक्र सुदर्शन,
कतहुँ हर्ष, कहुँ रोष-प्रदर्शन।
कतहुँ प्रणय, कहुँ अनत विवाहा,
कतहुँ हृदय, कहुँ नय-निर्वाहा।
कतहुँ शाक, कहुँ मधु पकवाना,
कतहुँ पदातिक, कहुँ नभ-याना।

कतहुँ दया, कहुँ कर्म नृशंसा,
कतहुँ कुवच, कहुँ सत प्रशंसा।

दोहा :— *जटिल जगत जीवन यथा, जटिल तथा मम कर्म,*
ग्रथित एक गुण चरित सब, समुझहिं ज्ञानी मर्म। १६१

मृदुल भाव मैं व्रज दरसाया,
प्रेम-विटप करि यत्न लगाया।
भक्ति-रूप धरि तुम व्रज आयीं,
नीरधि नेह नयन भरि लायीं।
संसृति-उपवन रहेउ सुखायी,
सींचि नेह-जल देहु बढ़ायी।
जब लगि मैं कुश-काँस उखारहुँ,
खोजि खोजि असुरन संहारहुँ,
तुम व्रज बसहु, करहु रखवारी,
सींचहु प्रेम-विटप दृग-वारी।
उत मैं करहुँ शूल निर्मूला,
फूलहिं प्रेम-वृक्ष इत फूला।
धर्मादिक फल लागहिं चारी,
लहहिं प्रिया जग कृपा तुम्हारी।"
विहँसत हरि बोलत मृदु वाणी,
सुनि सुनि मन राधा बिलखानी।

दोहा :— *चकित विलोकति श्याम तन, त्यागे नैन निमेष,*
भरि भरि रही दुराय उर, जनु छवि उदधि अशेष। १६२

हरिहु प्रबोधी प्रिया बिहाला,
नारद मुनि आये तेहि काला।
नर्तत नटवर रास निहारी,
लखे कुंज पुनि कुंजबिहारी।
निरखी राधहु दोउ थल साथा,
मुग्ध बुद्धि-विभ्रम मुनिनाथा।

पूर्व मोह सुधि मुनि मन आयी,
"पाहि ! पाहि ! प्रभु लेहु बचायी।"
जानि भक्त वर प्रकटी दाया,
भेटे प्रभु समेटि निज माया।
कृष्णस्तुति बहु कीन्हि मुनीशा,
माँगेउ वर पुनि धरि महि शीशा—
"उपजहिं जो प्रभु-उर अभिलाषा,
होय मोहिं तेहि क्षण आभासा।
जब जो मन निज करहु विचारा,
होय प्रकट मम मानस सारा।"

दोहा :— *'एवमस्तु' हरि मुख कहत, उपजेउ मुनि मन ज्ञान,*
मधुपुर दिशि देवर्षि हँसि, सत्वर कीन्ह प्रयाण। १६३

रुकेउ रास सुरत जमुन नहाये,
व्रजजन निज निज सदन सिधाये।
मुनि नारद उत मथुरा जायी,
देखेउ गलित-दर्प नररायी।
शुनत अरिष्ट केशि अरि मारा,
धुनत शीश सुनि व्योम सँहारा।
गनत सुभट जे प्रथम पठाये,
कहत—'गये ते फिरि नहिं आये !'
निरखेउ नारद नृप मनमारे,
हित जनाय मृदु बैन उचारे—
"सुनु महीप ! ये हरि बलरामा,
दोउ वसुदेव-सुवन बलधामा।
नंद संग वसुदेव-मिताई,
रही रोहिणी गोकुल जायी।
जन्मे तहँ हलधर बलवाना,
भेद न कोउ कछु मधुपुर जाना।

दोहा :— *जायेउ कृष्णहिँ देवकी, गोकुल दीन्ह पठाय,*
रचि प्रपंच पुनि नँद-सुता, तुमहि देखायी लाय।" १६४

सुनतहि कंस भयेउ उठि ठाढ़ा,
रोष-समुद्र अंग अँग बाढ़ा।
भरी सभा वसुदेव बोलावा,
भगिनिहु कहँ अपशब्द सुनावा।
कहि कुवाक्य जब खड्ग निकारा,
नारद नृपहिं प्रबोधि सँभारा।
लै एकान्त गये मुनिरायी,
प्रकटि प्रीति पुनि कहेउ बुझायी—
"कहा लाभ अब इनहिं सँहारे?
बिचरत ब्रज दोउ शत्रु तुम्हारे।
करहु युक्ति कछु मधुपुर आवहिं,
मारहु घेरि फिरन नहिं पावहिं।"
सुनत मंत्र नरपति मन माना,
बिहँसे नारद करत प्रयाणा।
पथ मुनि करत मनोरथ जाहीं,
कंस नृशंस बचहि अब नाहीं।

दोहा:— *धावत महि तजि स्वर्ग दिशि, तेज-पुंज आकार,*
बरसावत पथ हरि-चरित, झंकृत वीणा-तार। १६५

इत परिजन निज कंस बोलाये,
राजभवन यदुवंशी आये—
कृतवर्मा, सात्यकि अरु आहुक,
सत्राजित, प्रसेनजित बाहुक।
शतधन्वा आदिक सब शूरा,
नीति-निपुण उद्धव, अक्रूरा।
सोचत मन सब स्वजन समाजू,
सुमिरेउ भूप हमहिं कस आजू।
जब ते भयेउ कंस मथुरेशा,
भये विदेशी हम निज देशा।
आयेउ आजु कवन अस काजा,
कीन्हि जो कृपा बोलायेउ राजा।

बैठे यादव करत विचारा,
आय कंस कीन्हेउ सत्कारा।
वसुदेवहिं समीप बैठायी,
कहत कुटुंबिन कंस सुनायी—

दोहा :— *"मानस सागर सम विमल, यह यदुवंश महान,*
वंश-विभूषण आपु सब, शोभित हंस समान। १६६

नीर-क्षीर बिलगावन जानत,
गुण-अवगुण सबके पहिचानत।
संबंधी वसुदेव हमारे,
रहे सदा मोहिं प्राण-पियारे।
कीन्हेउँ भगिनी संग विवाहा,
सर्व भाँति मैं नेह निबाहा।
त्यागी पै न शौरि कुटिलाई,
कीन्हि नंद सँग गुप्त मिताई।
राज्य हेतु नित प्रति अभिलाखे,
पत्नी-पुत्र नंद-गृह राखे।
अब दोउ सुवन भये विद्रोही,
लेत राज-कर गनत न मोहीं।
रहि वसुदेव हमारेहि पासा,
करत नित्य नव भोग विलासा।
रचत प्रपंच चहत मोहिं मारन,
चहत सकल यदुकुल संहारन।

दोहा :— *प्रकट मोहि सब छल कपट, निमिषहि सकहुँ निवारि,*
करिहौं पै जो तुम कहहु, नीति अनीति विचारि।" १६७

स्वजन समूह सुनत अनखाना,
कहत असत्य यस मन जाना।
रहे चुपाय तदपि भय खायी,
उद्धव कंसहिं कहेउ सुनायी—

"कृपा कीन्हि प्रभु बोलि पठावा,
जागे भाग्य दरस हम पावा।
पूछी हमते नीति अनीती,
महत अनुग्रह कीन्हि प्रतीती।
निवसत पै हम निज निज गेहा,
खात, पियत, पालत नित देहा।
जब ते असुरन प्रभु सन्माना,
नीति-शास्त्र सब हमहिं भुलाना।
ताते हम सब रहे चुपायी,
पूछत प्रभु! नहिं सकत बतायी।
औरहु यह संशय मन माहीं,
नव नीतिहिं हम जानत नाहीं।

दोहा:—*उग्रसेन नृपे राज्य महँ, हम सीखी नय-रीति,*
सुनत चलति मथुरेश ढिग, अब असुरन के नीति। १६८

आर्य-नीति प्रीतिहि आधारा,
असुर नीति आतंक-प्रसारा।
राम सो आर्य नीति भल जानी,
तजेउ राज्य पाली पितु वाणी।
कीन्हीं भरतहु सोइ प्रमाणा,
तजेउ राज्य पूजे पदत्राणा।
असुर नीति अब भारत छायी,
प्रीति, प्रतीति, सुनीति नसायी।
डारत पितु बंदीगृह माहीं,
भोगत राज्य न पुत्र लजाहीं।
नहिं अचरज जो नृप तुम भाखा,
शौरिहु-हृदय राज्य-अभिलाखा।
कीन्ह हस्तगत प्रभु! पितु-राजू,
तब नहिं भयेउ अधर्म अकाजू,
या अनीति चाहत वसुदेवा,
पावहिं राज्य कृष्ण बलदेवा?

दोहा :— *आर्य-नीति अनुसार प्रभु, दोऊ कार्य अधर्म,*
सुनत 'आसुरी नीति महँ, राज्य-हरण शुभ कर्म।" १६९

सुनी अवनि-पति उद्धव वाणी,
वाण समान विषम विष सानी।
उर प्रतिशोध, क्रोध तनु भारी,
समुझि समय शठ कहत सँभारी—
"राजनीति जो उद्धव गायी,
रघुकुल वार्ता कीर्ति सुनाई,
सो नहिं यादव कुल आचारा,
हमरे पृथक नीति व्यवहारा।
ज्येष्ठ नृपति रघुकुल महँ होई,
कायर मूर्ख न देखत कोई।
यदुकुल साहस शौर्य-उपासक,
पूजत ताहि जो रिपु-कुल-नाशक।
अग्रगण्य मानत हम सोई,
कुल-दीपक जो सब विधि होई।
उग्रसेन यद्यपि पितु मोरे,
वयोवृद्ध रहिये कर जोरे,

दोहा :— *तदपि नृपति गुण एक नहि, तेज-हीन तन-क्षीण,*
राजसिंहासन सोह नहि, कायर बुद्धि-विहीन। १७०

धरत न जो मैं निज शिर भारा,
हरत कोउ औरहि अधिकारा।
मगधनाथ सन संगर ठानी,
बैठे उग्रसेन रजधानी।
कीन्हेउँ मैं गिरिव्रज संग्रामा,
भयेउ समुज्ज्वल यदुकुल नामा।
अमरपुरी सम मथुरा सोही,
तबहूँ उद्धव निंदत मोही।
सो मैं सुनी, न रिस उर आनी,
स्वार्थ-निबद्ध निखिल जग जानी।

बैठे उग्रसेन सिंहासन,
चलेउ देश महँ उद्धव-शासन।
नहिं अचरज जो करत प्रशंसा,
मानत तिनहिं वंश अवतंसा।
का अचरज जो निंदत मोहीं,
कहि कलंक कुल, परिजन-द्रोही।

दोहा :— निंदास्तुति नर नित करत, हित-अनहित अनुसार,
उग्रसेन नृप राज्य सँग, गत उद्धव अधिकार।" १७१

बोले सुनि उद्धव अति छोभा—
"नहिं मम उर शासन-हित लोभा।
संतत रहेउँ अवनिपति-अनुचर,
सेवक, सखा, सचिव अरु सहचर।
साँचहु पै जो प्रभु-आरोपा,
भयेउ न यादव-शासन लोपा।
रहे राजजन यदुजन सारे,
कब कहँ कवन समर हम हारे?
निज मुख प्रभु ! निज करत प्रशंसा,
मानत आपुहिं कुल-अवतंसा।
तदपि न कुल कहँ परत लखायी,
दिशि दिशि दिपति असुर-प्रभुताई।
कीन्ह विजित जो प्रभु मगधेशा,
भये मगध-जन कस मथुरेशा?
अनुचित ज्येष्ठ होन जो राजा,
मत्स्य-न्याय-रत चलत समाजा,

दोहा :— सिंहासन सोहत सतत, जो केवल कुल दीप,
उचित कृष्ण बलराम दोउ, चाहत होन महीप।" १७२

सुननहि कंस न रोष सँभारा,
'राजद्रोह' !—कहि कीन्ह पुकारा।

सुनत नृपति-स्वर अनुचर धाये,
असुर यवन बहु दौरत आये।
कुलजन बीच विजाति-प्रवेशा,
लखि यदुजन महँ छायेउ रोषा!
उठि सुफलक-सुत सबहिं सँभारा,
नृपहिं तोषि मृदु वचन उचारा—
"उचित न सेवक-स्वामि-विवादू,
प्रभु-निदेश हम गनत प्रसादू।
देहु निदेश हमहिं जन जानी,
करिहैं पालन सब सुख मानी।"
सुनि वसुदेवहिं भूप निहारा,
वक्र वचन रिस रोकि उचारा—
"जो नहिं तुम्हरे मन कुटिलाई,
सुत दोउ मधुपुर लेहु बोलायी।

दोहा :— *लिखहु पत्रिका जस कहहुँ, अवहि महर नँद नाम,*
लै आवहि मधुपुर तुरत, तनय कृष्ण बलराम।" १७३

विकल सुनत सोचत वसुदेवा—
अइहैं पड़त कृष्ण बलदेवा।
छल-बल सुत मधुपुर बोलवायी,
वधिहैं कंस बाल असहायी।
प्रमुदित भूप गहावत पाती,
गहत लेखनी धरकति छाती।
वधिर शौरि, नयनन तम नीरा,
रुद्ध कंठ, प्रस्वेद शरीरा।
"लिखहु पत्र!"—नृप कहत बहोरी—
"लिखहु, छाँड़ि पाछिल छल चोरी।"
खसी लेखनी, छूटी पाती,
मूर्छित शौरि, हँसेउ अपघाती।
अट्टहास पुनि पुनि नृप कीन्हा,
"आजु राज-द्रोही मैं

कीन्ह भूप उठि पाद-प्रहारा,
हा! हा! करि यदुजनन पुकारा।

दोहा :—सात्यकि, कृतवर्मा सबन, गही हस्त करवाल,
घिरे असुर यवनहु विपुल, भयेउ द्वन्द्व विकराल। १७४

लरत भिरत करि असि-परिचालन,
पहुँचे निकसि भवन निज यदुजन।
समुझि नृशंस कंस कुटिलाई,
रहे जहाँ तहँ सकल दुरायी।
इत वसुदेवहिं देवकि साथा,
बंदी बहुरि कीन्ह नरनाथा।
अक्रूरहिं पुनि कहेउ बोलायी—
"जाहु अबहिं व्रज नँद ढिग धायी।
कहेउ, 'हमहिं यदुराज पठावा,
धनुष-यज्ञ हित तुमहिं बोलावा।
मल्ल-युद्ध, व्यायाम-विधाना,
क्रीडा कौतुक देखन नाना।
जब ते कृष्ण कमल लै आये,
निरखन हेतु नृपति ललचाये।
साथ लेवाय चलहु सुत दोऊ',
'गवनहु,' कहेउ, 'विलम्ब न होऊ।'

दोहा —औरहु रचि अनुसार कहि, देश काल अनुकूल,
लै आवहु वसुदेव-सुत, मेटहु मम उर शूल।" १७५

सुफलक-तनय सुनेउ प्रस्तावा,
सहमेउ उर उपजेउ पछितावा।
प्रीति नृपति-मुख, हृदय कठोरा,
चहत अधर्म करावन घोरा।
खल स्वामी-सेवा-सहवासा,
अहि फण-तल जनु दादुर वासा।

आयी सुधि पुनि हरि-यश केरी,
उपजी हृदय प्रतीति घनेरी।
सुनियत कृष्ण ब्रह्म अवतारा,
प्रकटे हरन धरणि-भय-भारा।
वधहिं जो कंसहिं मधुपुर आयी,
मिलहि मोहिं यश, विश्व भलाई।
करत तर्क कछु कहि नहि आवा,
स्यंदन साजि सारथी लावा।
कंस चतुर नहिं अवसर दीन्हा,
पठवत नेह प्रकट वहु कीन्हा।

दोहा :— सुफलक-सुत बैठाय रथ, कहत कस सिर नाय,
"तुमहि हितैषी एक मम, दुर्दिन भये सहाय।"१७६

सुनि अक्रूर मनहिं मन मारे,
वचन शिष्ट नृप सन कछु भाखे।
व्रज दिशि जैसेहि कीन्ह प्रयाणा,
निज पद-प्रीति दीन्हि भगवाना।
सोचत—नृपति अनुग्रह कीन्हा,
हरि-दर्शन अवसर मोहिं दीन्हा।
लखिहैं लोचन छवि सुखकारी,
भव-पथ-ज्योति, भीति-तम-हारी।
मिलिहैं वन मोहिं धेनु चरावत,
ग्राम सखन सँग गावत आवत।
विचरत व्रज-वीथिन अभिरामू,
मिलिहैं मोहिं कहाँ धौं श्यामू?
धनि यशुदा नँद हृदय लगावत,
जागत सोवत लखि सुख पावत।
धनि धनि गोप वृन्द व्रजवासी,
लखत बाल-लीला सुख-राशी।

दोहा :— धनि व्रज-वन विचरत जहाँ, धनि चारत जे धेनु,
धरत अधर वादत मधुर, धनि सर्वोपरि वेणु। १७७

मन उमंग मग सोचत जाहीं,
जात समय जानेउ कछु नाहीं।
परति मधुपुरी अब न लखायी,
रवि-तनया पाछे रहि जायी।
लगे दिखान ग्राम वन बागा,
भयी साँझ रवि अथवन लागा।
इत श्यामहु वन धेनु चरायी,
पहुँचे खरिक सखन सँग आयी।
पुलकित वत्स पियावत धेनू,
गावत सखा बजावत वेणू।
दुहत धेनु प्रभु गोपन संगा,
उपजत नाद मधुर रस रंगा।
दुहत, लगावत होड कन्हाई,
मृदुलस्पर्श देत पय गाई।
ताहि समय नृप-स्यंदन आवा,
गोप वृन्द सब देखन धावा।

दोहा :— खरिक-द्वार ठाढे हरिहु, अभिनव वारिद श्याम,
इंदु-विनिंदक द्युति वदन, लोचन कमल ललाम। १७८

भुज आजानु महा छवि छायी,
उर मोतिन वर माल सोहायी।
जनु तजि मरकत-कान्ति पहारा,
उतरी उज्ज्वल सुरसरि धारा।
कुडल श्रुति मणि-मंडित झूमत,
झलकत अरुण कपोलन चूमत।
शोभित पीत वसन अति अंगा,
नील शैल जिमि ज्योत्स्ना सगा।
नयन-कौमुदी, आनँद उद्गम,
अधरस्मित जनु हरति विश्व-तम।
भाल विशाल तिलक अथ रेखा,
भुवन-विमोहन प्रभु-वपु, वेखा।

हलधर बहुरि लखे तहँ ठाढ़े,
सुषमा-सिंधु मनहु मथि काढ़े।
कुंद इंदु हिम द्युति उजियारे,
गौर शरीर, नील पट धारे।

दोहा :— *उर भुज नयन विशाल अति, शोभित श्रीपति पास,*
नीलाचल ढिग राज जनु, मेघयुक्त कैलास। १७६

लखि अक्रूर ललकि रथ त्यागा,
पदतल परत विलंब न लागा।
हर्ष प्रकर्ष पुलक उपजावा,
कहेउ नाम, कहि और न आवा।
व्यापी उत्कंठा अँग अंगा,
वहीं नैन-मग जमुना-गंगा।
ध्वजा वज्र पद्मांकित पाणी,
परसेउ शीश प्रीतिवश जानी।
उभय भुजा भरि भक्त उठावा,
हृदय लगाय हरेउ पछितावा।
पूछी क्षेम कुशल कुल केरी,
कंस कुशल पूछी हँसि हेरी।
सुनत प्रश्न जनु सोवत जागा,
भेंटत हलधर उर अनुरागा।
पूछि प्रथम गोकुल-कुशलाई,
कंस कथा आद्यन्त सुनायी।

दोहा :— *सुफलक-सुत मुख वृत्त सुनि, कहत विहँसि घनश्याम,*
"गवनब मधुपुर प्रात हम, निशि निवसहु सँग धाम।" १८०

अस कहि लिये अतिथि प्रिय साथा,
गवने, ग्राम ओर व्रजनाथा।
ग्वालबाल सब विकल विहाला,
सोचत काह कहेउ नँदलाला।

देखि व्यथित बोले व्रजराजू—
"नहिं तनिकहु भय शंका काजू।
यज्ञ-महोत्सव नृपति रचावा,
देखन हित मधुपुर बोलवावा।
चलहु काल्हि सब संग हमारे,
देखहु पुर उत्सव रँग सारे।"
विहँसत श्याम सखन समुझावत,
शंकित सकल भरोस न आवत।
लखत वदन तन नयन चोराये,
यहि विधि नंद-सदन सब आये।
'कंस-दूत'—सुनि महर हेराने,
परिचय देत श्याम मुसकाने।

दोहा :— काँपत कर आसन धरत, अर्घ्य न सकत उठाय,
सहमे नंद सँदेश सुनि, गिरेउ वज्र जनु आय। १८१

यशुमति सहि नहिं सकी प्रहारा,
भयेउ नंद-गृह हाहाकारा।
विनवति अक्रूरहि नँदरानी—
"काहे नृपति निठुरता ठानी?
हरि हलधर मोरे अति बारे,
लखे कबहुँ नहिं मल्ल अखारे।
ये बालक गो-चारत वन वन,
यज्ञ सभा इन सुनी न श्रवणन।
गुरु द्विज कबहुँ न ग्राम जोहारा,
जानहिं काह राज-व्यवहारा!
वरु नृप लेहि धाम धन गाई,
मन-वांछित 'कर' लेहि चुकायी।
सर्वस लेय देय इक श्यामू,
जननी-जीवन, व्रज-सुख, धामू।
बामर वदन विलोकि वितावहुँ,
निशि शिशु अंक लाय सुख पावहुँ।

दोहा :— *एक आस अभिलाष इक, माँगहुँ शीश नवाय—*
"इन आँखिन आँगन लखहुँ, खेलत सदा कन्हाय।" १८२

यहि विधि बिनवति लेति उसासा,
मुख नत, फुरत अधर-पुट नासा।
लखेउ नेह अक्रूर अपारा,
देत तोष मृदु वचन उचारा—
"मातु! यज्ञ देखन ये जाहीं,
तीनहुँ भुवन इन्हहि भय नाहीं।
पूजे चरण सुरेशहु जासू,
सकत कि कस हानि करि तासू?"
हरिहु आप जननी समुझायी,
कहति मातु, सुत हृदय लगायी—
"जेहि मुख कहेउ महर कहँ ताता,
जेहि मुख मोहि कहेउ नित माता,
तेहि मुख आजु कहत तुम जाना,
भयेउ सुमन कँस कुलिश समाना?
रहेउ अत जो यहि विधि मारन,
काहे कीन्ह गोवर्धन धारण?"

दोहा :— *विलपति मातु, न लखि परत, व्यथा-वारिनिधि-कूल,*
ढरकि कपोलन अश्रु-जल, भिजवत देह-दुकूल। १८३

विलपति बैठि यशोमति धामा,
व्यापेउ वृत्त विकल सब ग्रामा।
गोपी गोप कहहिं—"को आवा?
काहे श्यामहि कस बोलावा?"
कोउ कह—"परिक पाय वनवारी,
रथ ते उतरि मोहिनी डारी।
मिले श्याम तेहि जिमि पय पानी,
ब्रज-सुधि-बुधि क्षण माहिं भुलानी।
खोयी वस्तु मनहुँ हरि पायी,
रहत न पल नृप-दूत विहायी।

जइहैं मधुपुर होत प्रभाता,
तजि ब्रजजन गोधन पितु माता।"
कहत कोउ—"मधुपुर का पइहैं,
यशुमति तजि नहिं मथुरा रहिहैं।"
बोलेउ कोउ—"ये आपु विधाता,
इनके कोउ न नात पितु माता।

दोहा :— *जन्महि जब चाहहि जहाँ, त्यागहि पुनि पल माहि,*
नेह नीति जानहि नहीं, बसति दया उर नाहि। १८४

हम हरि-मिले, हमहिं हरि नाहीं,
बसे कमल सम ब्रज-सर माहीं।
चले आजु सहसा नृप पासा,
करि ब्रज श्री-हत, जीव हताशा।"
कोउ कह—"श्याम न लांछन-भागी,
भये हमहिं ब्रज लोग अभागी।
चाहत गोकुल दैव नसावा,
कालहि सुफलक-सुत बनि आवा।
ब्रजवासिन-सर्वस्व कन्हाई"—
कहहिं गोप गोपी विलखायी।
मिलि कछु गवनहिं नंद-दुआरे,
लखि अक्रूर फिरहिं मन मारे।
कछु जन जिनहिं समीप बोलायी,
चलहु संग अस कह नँदरायी,
भये धन्य ते जन ब्रज आजू,
पायेउ मनहुँ भुवन-त्रय राजू।

दोहा :— *भेंट धरत, साजत शकट, राखत शस्त्र दुराय,*
हरि-रक्षा चाहत सकल, माँगत ईश-सहाय। १८५

तेहि निशि ब्रज नहिं सोयेउ कोई,
बरनत चरित रहे सब रोई।

जात भवन निशि अति भय पावहिं,
प्रविशहिं द्वार, लौटि पुनि आवहिं।
जनु प्रति भवन भयेउ भय-डेरा,
उड़त विहग, नहिं लेत बसेरा।
धेनु रँभाहि, वच्छ अकुलाहीं,
राम ! श्याम ! कहि जनु बिलखाहीं।
शुक-सारिकहु जरत विरहागी,
फरफरात, हरि-हरि रट लागी।
जात अकारण दीप बुझायी,
तारक टूटि गिरत महि आयी।
रोवत श्वान निरखि नभ ओरा,
छायी व्रज क्रंदन-ध्वनि घोरा।
उमहेउ शोक-सिंधु जनु आयी,
बहे जात व्रजजन असहायी।

दोहा :— व्योम अरुण साजत रथहि, सुफलक-सुत नँद-द्वार,
आवत दिनपति, जात हरि, करि गोकुल अँधियार। १८६

विरह-अनल नभ लखि साकारा,
भयेउ कोलाहल ग्राम अपारा।
गोकुल-गेह शैल जनु सारे,
गोपी-गोप नदी-नद-नारे।
उमहे महर-द्वार सब आयी,
करुणा सिंधु बहेउ हहरायी।
अश्रु नीर, उच्छ्वास तरंगा,
क्रंदन भँवर, धैर्य-तट भंगा।
डगमग मध्य राज-रथ नैया,
निराधार अक्रूर खेवैया।
बूड़त व्याकुल प्रभुहिं पुकारा,
द्वार कृष्ण तेहि क्षण पगु धारा।
निरखि मातु पद प्रणमत श्यामू,
उठेउ रोय सस्वर व्रज ग्रामू।

हरि ! केशव ! गोविन्द ! पुकारे ,
कहाँ जात घनश्याम हमारे ?

दोहा :— *हिचकिन विलपीं गोपिका, "करहु न कान्ह ! अनाथ ,*
मुरलीधर ! गिरिधर ! रहहु, राजहु ब्रज ब्रजनाथ !" १८७

बंदि सबहिं चहुँ दिशि ब्रजनंदन ,
निवसे बंधु सहित नृप-स्यंदन ।
विरह-वह्नि नहिं सकीं सँभारी ,
झुलसीं लता-मृदुल ब्रज-नारी ।
कौन कंस ? यह कसि कुटिलाई ,
कवनि खबरि ? केहि हाथ पठायी ?
को ब्रज जीवन-मूरि उपारी ?
जात कहाँ, नहिं सुनत गोहारी ?
दशा यशोमति बरनि न जायी ,
गिरति भूमि, उठि कहति कन्हाई !
दौरति बहुरि, गिरति पुनि धरणी ,
टेरति सुत, कलपति नँद-घरनी—
"बिरमहु पल बिछुरत घनश्यामा !
लखहु वत्स ! बिलखत सब ग्रामा ।
एकहु बार न फिरि मोहि हेरा ,
जात कहाँ करि दृगन अँधेरा ?"

दोहा :— *प्रेरे सुफलक-सुत तुरग, मुख फेरेउ घनश्याम ,*
स्यंदन-तल तेहि क्षण गिरी, कोउ विरहिणि ब्रज-बाम । १८८

राधा ! राधा ! कहि बिलखायी ,
त्यागेउ रथ श्रीपति अकुलायी ।
सानुराग भरि हृदय निहारा ,
नयनन उमहि बही जल-धारा ।
सुधा-सिक्त राधा-अँग सारे ,
जागी वदन ज्योति नव धारे ।

भयी न प्राकृत तिय पुनि तैसे,
जल-कण स्वाती सीपी जैसे।
धायी जननि सुवन ढिग आयी,
नत ईषत हरि-नयन लजायी।
अंब-अंक दीन्हीं प्रभु राधा,
लेति यशोमति प्रीति अगाधा।
पुनि पुनि सुता लगावति छाती,
लहेउ सनेह बुझत जनु बाती।
देखि प्रीति पुलकित व्रजवासी,
जनु निशि सहसा उषा प्रकासी।

दोहा :— *चलि स्यंदन व्रजपति लखे, बिलखत व्रज नर-नारि,*
लखे राधिका ढिग बहुरि, पोंछत सब दृग-वारि। १८६
हाँके हय सुफलक-सुवन, गये कृष्ण बलराम,
गयी न व्रज तजि एक ध्वनि, "जय-जय राधेश्याम!" १६०

मथुरा काण्ड

सोरठा:—मुकुट जासु हिमवत, चरण पखारत सिन्धु नित,
जन्मत जहँ भगवंत, प्रणमहुँ भारत मातु सोइ।
जननि-चरण-जलजात, भक्ति सहित बदहुँ बहुरि,
मधुपुर दिशि हरि जात, भार जासु दुःसह हरन।

त्यागत ब्रज ब्रजराज अधीरा,
होत विमुख, बरसे दृग नीरा।
छायेउ दुर्दिन सहसा स्यंदन,
श्यामल नवल शरीर सजल घन।
चंद्रक केश-कलाप ललामा,
सुरपति-चाप उदित अभिरामा।
जल-कण झलकि कपोलन छाये,
पाटल पावस-बिन्दु सोहाये।
विलसत वर वक्षस्थल हारा,
मौक्तिक उज्ज्वल पावस-धारा।

स्यदन-घर्घर गर्जन घोरा,
भ्रान्त मत्त नर्तत पथ मोरा।
रथ-गति दोलित चैशव पासा,
शोभित हलधर तडित-विलासा।
सारथि सुफलक-सुवन प्रभंजन,
वाजि-वेग हरि-वारिद-वाहन।

दोहा —*धावत प्रलय-पयोधि-घृत, दुर्दिन स्यदन-रूप,*
उद्वेलित, घोरन चहत, द्वीप कस यदु-भूप। १

बलरामहु ब्रज विरह दुखारे,
लखत सतृष्ण दृश्य पथ सारे।
चिर परिचित थल जस जस आवत,
सुफलक सुतहिं ललकि दरसावत—
"जम्बू-कुंज मध्य अभिरामा,
लखहु शिला वह नीलम श्यामा।
सजग जननि दृग जहाँ बरायी,
आवत हरि मोहिं अनुसरि धायी।
सुमन विभूषण कबहुँ बनावत,
पाछे कबहुँ विहग लगि धावत।
जम्बू पत्रन कबहुँ बजावत,
अनुहरि भ्रमर कबहुँ कल गावत।
शिला शयित मोहिं कबहुँ निहारी,
चापत चरण विहँसि वनवारी।
'हाऊ ! हाऊ'—कहि डरपायी,
सहसा पुनि गृह जात परायी।

दोहा —*लखहु तात ! वह नीप तरु, मुकुलित नयन विनोद,*
धारि शिखण्डक जासु तल, नर्तत श्याम समोद। २

लखहु बहुरि वह गिरि गोवर्धन,
ब्रजजन धन, गोवत्सन जीवन।

निर्मल नील सलिल जहँ निर्झर,
निर्झर-झंकृत कानन कंदर।
जाहि धारि नख सुमन समाना,
हरेउ श्याम सुरपति-अभिमाना।
चारत सुरभिन जहाँ सुखारी,
विचरत निर्भय विपिन-विहारी।
गर निदान, कटि काछनि काछे,
फिरत लकुटधर गइयन पाछे।
प्रविशत कबहुँ गर्त कान्तारा,
कबहुँक निर्झर वारि-विहारा।
कबहुँ आमलक-गोफन धारत,
होड़ लगाय, भँवाय, पँवारत।
झूलत कबहुँ दोल तरु डारी,
कूकत पुनि पुनि पिक अनुहारी।

दोहा :— *लखहु आम्रतरु श्याम-प्रिय, चढ़ि जेहि धरत लवंग,*
किलकिलात लांगूल गहि, कपत करि करि व्यंग। २

लखहु तालवन पुनि वह ताता!
जहँ मैं धेनुक असुर निपाता।
श्यामल-श्री वनान्त मनहारी,
फल विशाल लघु धन अनुहारी।
वट भाण्डीर लखहु अब आवा,
जहँ प्रलम्ब मैं मारि गिरावा।
लखहु! लखहु! मधुवन नियराना,
चिर नव नंदन विपिन समाना।
जहँ वनराजि प्रसन्न गँभीरा,
सुरभि-भार मृदु-मंद समीरा।
व्योम-विचुंबित तरुवर श्यामा,
शिखरन कुसुमित मणि अभिरामा।
सलिल-झरनि मुखरित निर्झरिणी,
तुहिन-समुज्वल, पथ-श्रम-हरनी।

विहरत स्वेच्छा मृग चहुँ ओरा,
फल-आस्वाद-मुदित खग-शोरा।

दोहा — थलन थलन शोभित लसहु, मंजुल लता-वितान,
स्वनित वितान वितान नित, माधव-मुरली-तान ।" ४

हलधर-गिरा बाल रस पागी,
बाल-सुलभ हरि-दुरन भजन लागी।
उपजेउ सुफलक-सुत मन मोहा,
अँगुसेउ उर सन्देह-प्ररोहा।
जदपि जगन्मोहन-छवि-धामू,
प्राकृत शिशु ये हलधर-श्यामू।
मृदुल कलेवर, मंजुल जल्पन,
आकुल, तजत स्वजन जल लोचन।
कंस वीर-अवतंस, दुरन्ता,
सेवित शूर-मल्ल-सामन्ता।
होय जो मधुपुर शिशुन सँहारा,
कहिहै मोहिं वधिक संसारा।
यहि विधि सोचि रहेउ हरि हेरी,
भयी मंद गति स्यंदन केरी।
जानि दशा हरि कह मुसकायी—
"जमुना पुलिन गये हम आयी!"

दोहा — तजि निद्रा जागेउ मनहुँ, सुनि मृदु गोविँद बैन,
फेरे जमुना-नीर दिशि, भरे शोक-जल नैन। ५

अन्तर्वाहि जमुन-जल श्यामल,
जनु महि द्वेवि मुकुर मणि निर्मल।
अथवा सलिल रूप अपनायी,
जनु वैदूर्य-शैल महिशायी।
नीलस्फटिक मनहुँ कमनीया,
परिणत वारि वेष रमणीया।

पुञ्जित त्रिभुवन पुण्य अनूपा,
शोभित महि जनु सलिल स्वरूपा।
वारि-विमलता रंजति नयनन,
हंस-मुखरता तोषति श्रवणन।
कमल-गंध आमोदित नासा,
परस-सुखद शीतल वातासा।
रसना-सरस, ताप-त्रय-हारी,
सम सर्वेन्द्रिय मन सुखकारी।
लखि अक्रूर हर्ष उर छावा,
स्यंदन जमुन-पुलिन विरमावा।

दोहा:— *अग्रज-सँग रथ राखि हरि, लहि सविनय आदेश,*
मज्जन-हित सुफलक-तनय, कीन्हेउ वारि प्रवेश। ६

परसत वारि विनष्ट विषादा,
अवगाहत अँग अँग आह्लादा।
करि सम्पन्न सविधि सुख-मज्जन,
जपन लगेउ जब ब्रह्म सनातन,
लखेउ वारि कौतुक अभिरामा,
शोभित शेष-वेष बलरामा।
कमल-नाल-द्युति श्वेत अहीशा,
शीश सहस फण, मणि प्रति शीशा।
मजुल नील वसन अँग धारे,
राजत वारि कुण्डली मारे।
कौतुक औरहु लखेउ सशंका,
लसत श्याम संकर्षण-अंका।
चक्रादिक शोभित भुज चारी,
शिर सहस्र फणि-मणि-उजियारी।
मरकत कान्ति शरीर विशाला,
कटि पट पीत, वक्ष बनमाला।

दोहा:— *तड़ित-माल-मण्डित मनहुँ, सजल मेघ नभ माँह,*
उदित मनोरम शक्र-धनु, परी जमुन-जल छाँह। ७

विस्मय सुफलक-सुत मन बाढ़ा,
तजि जल चकित सरित तट ठाढ़ा।
अवलोके स्यदन घनश्यामा,
बधु समीप लखे बलरामा।
विभु-माया-विमुग्ध मति भोरी,
प्रविशेउ व्याकुल वारि बहोरी।
लखे बधु-द्वय पुनि सरि-नीरा,
सोइ विभूषण, वेष, शरीरा।
लखे नाग नर किन्नर देवा,
रुद्र विरंचि करत हरि सेवा।
लखे सकल सनकादिक मुनिजन,
अञ्जलि-बद्ध करत गुण गायन।
पुलकेउ सुफलक-सुवन निहारी,
धायेउ स्यदन दिशि तजि वारी।
गत मन-मोह, प्रीति नव जागी,
पदतल परेउ भक्त अनुरागी।

दोहा :— बरनेउ यमुना-वृत्त सब, निज मन मोह सुनाय,
तोषेउ श्याम सनेह लखि, पुनि पुनि हृदय लगाय। ८

उपजेउ कस-नाश-विश्वासा,
हाँकेउ स्यदन, उर उल्लासा।
मधुपुर दिशि आगे रथ धावा,
सन्मुख मोद विमुख दुख छावा।
गोकुल दिशि व्याकुल बनचारी,
श्यामहिं रहे सशोक निहारी।
रुकेउ करिनि-करि- वारि-विहारा,
रुकेउ सुमन भ्रमरन गुंजारा।
सोइ घनश्याम, सोइ रथ-घर्घर,
नर्तन-विरत शान्त शिखि-तरुवर।
चकित कपोत करत नहिं कूजन,
करत न कुट कुट कुक्कुट कूलन।

हंसहु करत विलोल न नीरा,
स्यंदन लखत विषण्ण, गँभीरा।
बद्ध-विलोचन निरखत मृग-गण,
निरखत सारस उन्नत आनन।

दोहा :— *तरु-शासन निश्चल लसत, अपलक विहग समाज,*
पूछत मानहुँ मौन सब, 'जात कहाँ व्रजराज'? ६

आवत इत विलोकि यदुनंदन,
उमहेउ मधुपुर दिशि अभिनंदन।
भरे विकच अंबुज-आमोदा,
वहत अनिल सरि-सिक्त, समोदा।
प्रणमत अवनत मस्तक तरुगण,
करत सुमन-फल-अर्घ्य समर्पण।
मंगल-कलश ताल-फल राजत,
मार्ग-विटप प्रतिहार विराजत।
श्रेणी-बद्ध व्योम बक छाये,
स्वागत वंदनवार सजाये।
पथ पाँवड़े सस्य मिस पारति,
हास काँस मिस धरणी धारति।
स्वरित वेणु-वन पवन-तरंगा,
वंदी वरनत चरित प्रसंगा।
नर्तत मोर, विहग मधु गावत,
अलि-कुल मंगल-वाद्य बजावत।

दोहा — *जनु प्रथमहि यहि ओर लखि, आवत हरि विश्वेश,*
वनदेवी आपुहि करति, स्वागत धरि बहु वेष। १०

निरखि प्रकृति-शोभा अभिरामा,
बिसरेउ विरह, मुदित घनश्यामा।
रथ सवेग अक्रूर चलावत,
उड़त मनहुँ हय हरि मन भावत।

लहरत ध्वज, फहरत पीताम्बर,
बिथरति आनन अलक मनोहर।
कर निवारि प्रभु केश सँभारत,
आवत बहुरि, बहुरि हरि वारत।
मानत नहिं; मुख-अंबुज छाये,
लुब्ध मधुप नहिं उड़त उड़ाये।
सुफलक-सुत मुरि निरखी शोभा,
आपुहिं मधुप भयेउ मन लोभा।
अरुझेउ उर सुरझेउ पुनि नाहीं,
कीट-भृङ्ग-गति भइ पल माहीं।
रहेउ न रंचहु रथ-पथ-ध्याना,
जात कहाँ काहे नहिं जाना।

दोहा :— *छवि-जलनिधि बूड़े नयन, लै इन्द्रिय मन साथ,*
खोयेउ भव सुफलक-सुवन, पाये हरि भव-नाथ।११

धावत हय उत बिनु परिचालन,
आये दृग-पथ मधुपुर-उपवन।
कोट कँगूरहु परे लखायी,
राजवाद्य-ध्वनि श्रुति-पथ आयी।
जानि मनहुँ निज नाथ अवाई,
स्वागत करति पुरी हर्षायी।
विविध भाँति सजि साज सिँगारा,
आतुर जनु पति-पंथ निहारा।
पुर-प्राकार मनहुँ कटि किंकिणि,
पथ-जन-घोष मनहुँ नूपुर-ध्वनि।
अञ्जलि विपिन-प्रसून ललामा,
अलि-स्वर स्वस्ति-पाठ अभिरामा।
कलश उरोज, ध्वजा जनु अंचल,
सँभरत नाहिं दरस-हित चंचल।
उपवन वसन, भवन आभूषण,
धाम-छत्र जनु वेणी-बंधन।

दोहा :— *नवल नागरी मधुपुरी, शिर-प्रासाद उठाय,*
झाँकति वातायन-दृगन, गये प्राण-पति आय! १२

लखि सन्मुख पुर विरमेउ स्यंदन,
उतरे अग्रज सह यदुनंदन।
व्रज-शकटहु पुनि परे लखायी,
आये गोपन सह नँदरायी।
भेंटे पुत्रन महर सप्रीती,
बिछुरे मनहुँ गये युग बीती!
अवसर लखि सुफलक-सुत ज्ञानी,
बोलेउ नँद सन सविनय वाणी—
"व्रज दिशि जब मोहिं कंस पठावा,
लावन कहेउ, न वास बतावा।
उचित न रिपु-गृह रैनि-निवासा,
उचित न वन एकाकी वासा।
जदपि न कहुँ हरि-रामहिं भीती,
उचित न तदपि तजब नय-नीती।
तुम वसुदेव सखा विख्याता,
वैसहि मानहु मम संग नाता।

दोहा :— *जानि मोहि पितृव्य सम, बहुरि विलोकि सनेह,*
स्वीकारहिं आतिथ्य हरि, निवसहिं निशि मम गेह।" १३

सुनि प्रस्ताव श्याम मुसकाने,
नंद महर सुनि हृदय सकाने।
सुफलक-सुतहि जानि नृप-दासा,
उपजत नहिं नँद मन विश्वासा।
सोचि सहज राजन कुटिलाई,
रूखे वचन कहे नँदरायी—
"सुतन-सहित मोहिं उत्सव-काजा,
पठै सँदेश बोलायेउ राजा।
करहु कृपा अब नृप ढिग जायी,
देहु आगमन मोर जनायी।

आवत जब जब मैं नृप पासा,
उतरत उपवन निरखि सुपासा।
बसि निशि यहि थल काल्हि प्रभाता,
अइहौं रंगभूमि मैं ताता!
इतनहि चहहुँ स्वामि-सतिभाऊ,
रूठै सुतन संग नहिं राऊ।"

दोहा :— *भयेउ विकल सुफलक-तनय, सुनत शिष्ट दृढ़ बैन,*
पठयेउ हरि परितोषि पुर, गवनत छलके नैन। १४

देखि विपिन वट वृक्ष विशाला,
उतरे इत शकटन सँग ग्वाला।
मुदित महीरुह श्याम निहारी,
छाया सघन पंथ-श्रम-हारी।
विटप मनोज्ञ फलन सह कैसे,
पद्मराग युत मरकत जैसे।
अनिल-अकंपित, सहित बरोहा,
समाधिस्थ जनु मुनि कोउ सोहा।
सरुखल शिविर नंद निज डारे,
निवसे सुतन समेत सुखारे।
समय जानि हरि विनय सुनायी—
"देहु निदेश, लखहुँ पुर जायी।"
सुत-मंतव्य न नंदहिं भावा,
मन कुतर्क बहु, उर भय छावा।
चहत कहन, 'नहिं', कहि नहिं जायी,
"लौटेहु बेगि"—कहेउ सकुचायी।

दोहा :— *परिचित मथुरा-वीथि-पथ, पुनि कछु गोप बोलाय,*
पठये हरि-बलराम सँग, सुत-वत्सल नँदराय। १५

शैशव-चपल चले पुर ओरा,
गवनत जनु मृगराज-किशोरा।

सर समीप, उपवन वहि पारा,
लखे विपुल अंबर अंबारा।
वसन वर्ण वहु धोय सुखायी,
रजक अनेकन रहे तहायी।
अटके दृग लखि नृप-पट चीरा,
ठिठके लुब्ध मुग्ध आभीरा।
राज-रजक तहँ मगध-निवासी,
असुर पाप-मति अवगुण-राशी।
लाय मगध ते कंस वसावा,
हठी कुटिल भूपति मन भावा।
वसनन ढिग विलोकि वहु घोषा,
उठेउ दण्ड लै असुर सरोषा।
कहि कहि पुनि पुनि गोप गँवारा,
कीन्हेउ असुर व्यंग बौछारा।

दोहा :— *गोप-वृन्द विक्षुब्ध लखि, वरजेउ हलधर धाय,*
कहे असुर सन हरि वचन, मनहीं मन मुसकाय— १६

"रजक-श्रेष्ठ तुम भूपति-प्रियजन,
देत तुमहिं मैं परिचय आपन।
मथुराधीश कंस मम मामा,
जात निमंत्रण लहि नृप-धामा।
मातुल ललित दुकूल निहारी,
मन अस होत लेहुँ अँग धारी।
राजसभा-उपयुक्त मनोहर,
पहिरावहु चुनि चुनि वर अंबर।
देहैं भूप जो मोहिं उपहारा,
देहौं लौटत अंश तुम्हारा!"
हँसेउ असुर कहि, "तुम जन नीचू,
काहे प्रलाप वोलावत मीचू।
वेंचि दूध दधि घृत तुम माते,
जोरत फिरत नृपन सँग नाते।

सुनहि जो कोउ राजजन वाणी,
होइहँ पल महँ प्राणन हानी।

दोहा :— *छुवत जिनहिं नरपति डरत, कंस वसन ये सोय,*
माँगत तुम आभीर ते, आये कहँ मति खोय?" १७

दर्प विलोकि कुपित बलरामा,
कीन्ह विनोद वहुरि घनश्यामा—
"परिचय यद्यपि निज मैं दीन्हा,
अब लगि नाहिं मोहि तुम चीन्हा।
पितु वसुदेव, देवकी माता,
साँचहु नृप सँग मातुल-नाता।
निवसहुँ नँद-गृह गोकुल ग्रामा,
कृष्ण, कान्ह, हरि बहु मम नामा।"
सुनत नाम खल उठेउ रिसायी,
कहत व्यंग करि—"तुमहि कन्हाई!
डरत तुमहि ते नृपति हमारे!
तुमहि व्योम, केशी, वक मारे!
शूर सकल ये मोर सजाती,
मिले आय भल तुम कुल-घाती!"
यहि विधि जल्पत दण्ड उठायी,
धायेउ असुर हरिहि समुहायी।

दोहा :— *सजग श्याम तत्काल मुरि, गये प्रहार बराय,*
कराघात कीन्हेउ सबल, परेउ शीश महि जाय। १८

रजक असुर-अनुजीवी जेते,
भागे भीत पुरी दिशि तेते।
हाहाकार करत पथ जाता—
"गोप कृष्ण नृप-रजक निपाता!"
वृत्त तड़ित-गति मधुपुर छावा,
इत उत जुरि जन हर्ष जनावा।

"कीन्हि कृष्ण", कोउ कहत, "चढ़ाई,"
कहत कोउ—"मिलि करहु सहायी।"
सुनेउ वृत्त उद्धव कृतवर्मा,
सात्यकि, जे जानत पुर-मर्मा।
लखि अवसर पुरजनन प्रचारी,
कंस-विरोध-वह्नि पुर जारी।
हरि स्वागत हित मार्ग सँवारी,
धाये दरस-तृषित नर नारी।
उत लखि गोप रजक सब भागे,
राखे पट समेटि हरि आगे।

दोहा :— पीत नील सुन्दर वसन, धारे हरि बलराम,
वर्ण वर्ण पहिरे सखन, चुनि चुनि ललित ललाम। १९

लहि वर वसन मुदित आभीरा,
पग पग लसत चलत मुरि चीरा।
करि विनोद हरि सखन रिझावत,
विहँसत राम, गोप सुख पावत।
परेउ दृष्टि प्राकार विशाला,
सुधा-धवल जनु महिधर-माला।
परिखा दुर्गम वृत्ताकारा,
मथुरा सलिल-वलय जनु धारा।
तोरण श्वेत फटिक निर्मायें,
स्वर्ण-द्वार मणि-खचित सोहाये।
निज कर-कमल राम-कर धारी,
प्रविशे प्रमुदित पुर असुरारी।
लखेउ राज-पथ सन्मुख सोहत,
जगमग मणिन विपणि मन मोहत।
महल विशाल शैल अनुहारी,
विविध सभा-गृह, भवन, अटारी।

दोहा :— छादित वर तरु-राजि पथ, सवृत लता-प्रतान,
खग कूजत छाया सघन, पिक गावत कल गान। २०

सुनत पुरी प्रविशे व्रजराजू,
धाये पुरजन तजि सब काजू।
घिरि घिरि दिशि दिशि वे दरस-पियासी,
उमही राजमार्ग जन-राशी।
युवतिन-यूथ गवाक्षन छाये,
पंथ प्रतीक्षत पलक बिछाये।
जैसेहि प्रभु पुर-पथ पगु धारा,
उठेउ गूँजि दिशि दिशि जयकारा।
मंगल रोल भरे सब ओरा,
बरसे सुमन न ओर न छोरा।
मूर्ति मनोहर मृदुल निहारी,
जनु छवि-पाश-बद्ध नर-नारी।
बिसरे देह गेह भव-पाशा,
कंस अनीति, असुर दुख-त्रासा।
मोहे मोहन रँग रस-राते,
मधुकर निकर मनहुँ मधुमाते।

दोहा ।—*जे जहँ अचल अवाक तहँ, अपलक रहे निहारि,*
राखे लिखि जनु चित्रपट, लक्ष लक्ष नर-नारि। २१

उठत चरण हरि-चरणन साथा,
विरमत, लखि विरमे व्रजनाथा।
जेतिक पुर-मग धरत श्याम-दृग,
गिनि जनु तेतिक चलत लोग पग।
करि सर्वस्व व्रजेश अधीना,
भये पौर जनु निज गति हीना।
सहजहि विश्व-विमोहन-हारे,
मुद्रा पुनि जन-रंजनि धारे।
निकसत पथ अरि मित्र उदासी,
रंक राजजन यति संन्यासी,
आनँद-कंद मंद मुसकायी,
चितवत जैसेहि जात बिकायी।

निकसेउ राजमार्ग नृप-माली,
भूलेउ भव विलोकि वनमाली।
पद जनु गड़े, नयन अनुरागे,
शशि-मुख अड़े, हरस-रस पागे।

दोहा :— *लखि प्रति पल कमनीय छवि, पुलकेउ मालाकार,*
पहिराये वनमालि-गर, नृप-हित-निर्मित हार। २२

ताही समय कंस नृप-दासी,
कुब्जा छवि यौवन-रस-रासी,
निकसी लिये नृपति-अनुलेपन,
मृगमद कुंकुम सुरभित चंदन।
निरखि भीर हेरी हरि ओरा,
अटके शशि-मुख नयन चकोरा।
सरिता-टरनि टरी अतुरानी,
उमहि बही, छवि-सिन्धु समानी।
उर-प्रसून शत शत खिलि फूले,
हरि-छवि-दोल प्राण जनु भूले।
कब कर उठेउ, लीन्ह कब चदन,
कीन्हेउ श्यामल अँग कब लेपन,
कीन्हि पत्र-रचना केहि भाँती,
जानी तिय न रूप-रस-माती।
कृपा दृष्टि हरि तेहि दिशि फेरी,
विहँसे लखि त्रियक्र नृप-चेरी।

दोहा :— *चापि तासु पद निज चरण, अँगुरी चिबुक लगाय,*
कौतुक उचकावत भयी, निमिप माँहि ऋजु काय। २३

पुण्यस्पर्श पुलक तनु छावा,
रस-पीयूष वाम अन्हवावा।
आनँद अँग अनवद्य निहारी,
हरि मुसकात, लाज-नत नारी।

पुनि पुनि बंदि चरण सुखदायी,
गवनी तन-मन-कलुष नसायी।
चमत्कार निज नयन निहारा,
इत उत पुरजन वचन उचारा—
"प्राकृत नर न बंधु ये दोऊ,
मनुज रूप धृत सुर ये कोऊ।
आकृति अति गँभीर कल्याणी,
दिव्य हास, गति, वीक्षण, वाणी।
प्रासादिक पावन अनुभावा,
प्रजा-पुण्य जनु तनु धरि आवा।
पय-मुख जबहिं पूतना नासी,
ये ही अघ, वक, वत्स-विनासी।

दोहा :—*तृणावर्त, केशी वधे, व्योमासुर बलवान,*
मृत्यु निमंत्रित कीन्हि नृप, वधिहैं होत विहान।" २४

पूछत कोउ, "काज का आवा,
जो नृप इनहिं निमंत्रि बोलावा?"
कहत कोउ जो जाननहारा—
"धनुष-यज्ञ मिस कंस हँकारा।
शूल समान रहे उर शाली,
करिहैं खल कछु काल्हि कुचाली।"
कोउ कह, "ये सचराचर स्वामी,
जानत जन-मन अन्तर्यामी।
कृत-निश्चय आये पुर माहीं,
वधिहैं कंस कियेहु छल नाहीं।
विचरत मधि पुर सिंह समाना,
प्रति पद नृपहिं समर-आह्वाना।
रजक निपाति नृपति-पट धारा,
विलसत वक्ष महीपति-हारा।
भूप विलेपन भाल सोहावा,
नृप ते यदि पुर स्वागत पावा।

दोहा :— *अनहीं ते मथुराधिपहि, विक्रम-निरहित जानि,*
राज-चिह्न जनु ये सकल, रहे हरिहि सन्मानि।"२५

कहत अन्य पुरजन मतिमाना—
"मानत हम ये विभु भगवाना।
पै जब जब प्रभु नर-तनु आवत,
निज पुरुषार्थ नरहु प्रकटावत।
सहत अधर्म जो बिनु प्रतिकारा,
ईशहु देत न ताहि सहारा।
ताते कहहुँ तजहु कदराई,
कस अनीति न अब सहि जाई।
मगध-माण्डलिक भूप हमारा,
नासे आर्य धर्म आचारा।
धनी असुर, वैभव नृप-धामा,
प्रजा रंक, क्रंदन प्रति ग्रामा।
भयेउ पाप-मय मथुरा-राजू,
कातर रहि हम कीन्ह अकाजू।
लीन्हि दैव-सुधि इनहिं पठावा,
होहु सहाय मिटहि दुख-दावा।"

दोहा :— *यहि विधि नर बतरात पथ, कुपित चढ़त भ्रू-चाप,*
बरसि सुमन पुर-नारि उत, करत मधुर आलाप — २६

इन्द्र-उपेन्द्र कहत ये कोऊ,
नर-नारायण कोउ कह दोऊ।
कोउ कह—"राम-लषण वपु धारा,
धनु-भंजन हित पुनि अवतारा।
निरखन हित नृप-धनुष कठोरा,
लखहु जात ये मख-गृह ओरा।"
कोउ कह—"ये वसुदेव-कुमारा,
छवि-निधि अन्य न अस संसारा।
कंस-त्रास वसुदेव दुराये,
बसि गोकुल नँद-तनय कहाये।

क्रीडत ग्राम गोप-सुत संगा,
जानेउ इन निज जन्म-प्रसंगा।
पितुहिं नृपति बंदी-गृह डारा,
आये सुनत करन उद्धारा।
नील क्षौम शशि-तनु अभिरामा,
रोहिणि-सुवन सोइ बलरामा।

दोहा :— *पीत क्षौम, मणिइन्द्र द्युति, तरल तिरीछे नैन,*
शीर्ष शिखण्डक श्याम सोइ, मदस्मित मधु बैन। २७
मूर्ति मधुर रस-सार दोउ, मदन-मनोहर वेष,
लखहु अशक मृगेन्द्र सम, मख-महि करत प्रवेश।" २८

वचन रसाल कहत पुर-बाला,
पहुँचे उत केशव मख-शाला।
लखेउ धनुष गृह-मध्य विशाला,
जनु प्रसुप्त भुजगेन्द्र कराला।
सुमन-अलकृत सोहत कैसे,
जलधर इन्द्र-धनुष सह जैसे।
भीषण रम्य शरासन घेरे,
फिरत चतुर्दिक असुर घनेरे।
आकृति परुष, वेष विकराला,
अस्त्र-शस्त्र-धृत मानहुँ काला।
पूछेउ तिन-समीप प्रभु जायी—
"धरेउ धनुष केहि हेतु सजायी?"
सुनत खलन गांभीर्य गँवावा,
व्यंग वचन कहि हरिहिं सुनावा—
"निवसत तुम गँवार केहि देशा,
जानत जो न धनुप-उद्देशा?

दोहा :— *विश्व-विदित मथुरेश-धनु, पूजत नित नृप आय,*
लखेउ न अब लगि वीर हम, स्वल्पहु सकें नवाय। २९

शूर-शिरोमणि असुर-समाजू,
तिन महँ अग्रगण्य मगराजू।
सकेउ नवाय न सोउ जव चापू,
करत पोच नर वृथा प्रलापू।
सुनेउ कंस अब गोकुल ग्रामा,
उपजेउ कोउ कृष्ण बलधामा।
गोप-गँवारन महँ यश पावा,
कहत गोवर्धन शैल उठावा।
काल्हि प्रभात रंग-महि आयी,
लखिहै भूपति तासु शुराई।"
सुनि उपहास कुपित पुरवासी,
धायी असुरन-दिशि जन-राशी।
बढे अमर्पी असुरहु तत्क्षण,
लखे श्याम पुर विसव-लक्षण।
धैर्य-सिन्धु हरि अवसर चीन्हा,
सत्वर गमन धनुप दिशि कीन्हा।

दोहा :— *असुर-वृन्द तजि पुरजनन, आवहि जव लगि धाय,*
सुमन-चाप सम वज्र-धनु, सहसा लीन्ह उठाय। ३०

लता सदृश मौर्वी गहि हाथा,
कर्षी अनायास व्रजनाथा।
सहि नहिं सकेउ शक्ति-पति कर्षण,
टूटेउ इक्षु समान शरासन।
वज्र-कठोर रोर पुर व्यापा,
अँग प्रस्वेद, कंस उर काँपा।
वरसे सुमन सुरन मनमाने,
लखि बल-विक्रम असुर सकाने।
पुरजन कीन्ह महत जयकारा,
सोवत असुरन मनहुँ प्रचारा।
पुनि पुनि करि उन्मत्त प्रलापा,
घेरेउ श्यामहिं खलन सतापा।

प्रजाजनहु असुरन पछियावा,
हरि समुझाय तिनहिं बिलगावा।
चाप-खण्ड गहि पुनि दोउ भाई,
हनन लगे असुरन समुहायी।

दोहा :— *रिस-रंजित मुख-श्री ललित, कलित कुटिल भ्रू-चाप,*
अनल रूप खल हेतु जो, हरत भक्त-भव-ताप। २१

असुरहु कीन्ह शस्त्र-बौछारा,
शैल-शिखर जनु पावस-धारा।
तोमर, प्राश, शक्ति बरसायी,
बाण-समूह समर-महि छायी।
राम-श्याम अरि वार बरावत,
शत्रु-समूह धँसत, हठि धावत।
हरि हुकरत हनत धनु-खंडा,
राम मुष्टिकाघात प्रचण्डा।
घोर प्रहार, कुपित हरि हलधर,
उठि नहिं सकत असुर गिरि महि पर।
यम सम खलन बंधु दोउ लागे,
रण महि त्यागि विकल बहु भागे।
घेरेउ पुरजन जान न दीन्हा,
करि करि अंग भंग वध कीन्हा।
राम - श्याम - पुरजन - कोपागी,
जरे शलभ सम असुर अभागी।

दोहा :— *हत-रिपु, परिवृत पौरजन, शोभित भये ब्रजेश,*
मेघ-मुक्त, नखतन सहित, राजत जनु राकेश। २२

लखेउ श्याम हरि चलेउ दिनेशा,
सकुचे सुमिरि नंद-आदेशा।
उपवन दिशि गवने ब्रज-नंदन,
जय ध्वनि करत चले सँग पुरजन।

नेह-उदधि मधुपुर लहराना,
बहे, न काहु धाम-धन-ध्याना।
पुर-प्रवेश-द्वारहु करि पारा,
फिरी न जव जन राशि अपारा,
पुनि पुनि कहि मृदु मंजुल वाणी,
फेरन चहेउ सवहिं सुखदानी।
सुनि जन रुके, बढे नहिं आगे,
निश्चल चरण, नयन सँग लागे।
डगमग मार्गभ्रष्ट जन-नैया,
मध्य धार जनु तजी खेवैया।
लखि हरि जात हृदय अवसादू,
लहत तोप करि करि जय नादू।

दोहा :— *भये प्रकट तेहि थल तबहि, उद्धव अति मतिमान,*
धारे सैनिक वेप सँग, कृतवर्मा, युयुधान। ३३

जाय जनन ढिग कह समुझायी,
कस कुवृत्ति कपट चतुराई—
"धावहिं चढि न रैनि कहुँ दुर्जन,
रच्छहु हरिहिं घेरि पथ उपवन।
हति तुम आजु यज्ञ-गृह असुरन,
दीन्ह महीपहिं समर-निमंत्रण।
धरि पद राज-द्रोह पथ माहीं,
सकत लौटि पाछे कोउ नाहीं।
धरा धाम सुत वित तिय त्यागी,
बुधजन करत यत्न जय लागी।
श्याम-हाथ जय प्रात हमारी,
रहि निशि सजग करहु रखवारी।
सकहिं ससुख हरि हलधर सोयी,
करहु न रव, ढिग जाहु न कोई।"
ओरहु बोध वचन बहु भाखे,
ठाँव ठाँव उद्धव जन राखे।

दोहा :— *व्यूह-बद्ध जन कंस-भय, राखेउ हरिहि दुराय ,*
सम-रिपुराशि लखि जिमि कमल, मुँदि अलि लेत लुकाय ३४

यहि विधि नगर-कथा सब गायी ,
कंस-वृत्त अब कहहुँ सुनायी ।
तजि अक्रूर बंधु दोउ उपवन ,
हाँकेउ राजभवन दिशि स्यंदन ।
उर न शान्ति, पथ सोचत जाहीं—
अघ अब कवन कंस मन माहीं ?
हरि-हलधर वध हित नरनाहा ,
राखेउ रचि प्रपंच धौं काहा ?
निज छल जो खल देहि बतायी ,
लहहुँ पुण्य यश हरिहिं चेतायी ,
यहि विधि सोचत नृप ढिग आवा ,
राम श्याम आगमन जनावा ।
हुलसेउ सुनि उर, पुलकेउ सब तन ,
निकसेउ कंटक मनहुँ पुरातन ।
उठि धायेउ, गहि हृदय लगावा ,
बरबस सँग आसन बैठावा ।

दोहा :— *पुनि पुनि कहि 'पितृव्य मम', दीन्हेउ बहु सन्मान ,*
अवसर लखि भाषी गिरा, सुफलक-सुवन सुजान— ३५

"ग्राम्य बाल वसुदेव-कुमारा ,
अबहुँ अबोध, सुमन-सुकुमारा ।
बिलपे दोउ तजत नँद-नारी ,
आये पथ मोचत दृग वारी ।
चहहु तौ असुर पठै कछु राती ,
आजुहि उपवन देहु निपाती ।"
सुनत वचन सुफलक-सुत केरा ,
जागेउ जनु शठ संशय-प्रेरा ।
लखि अक्रूरहिं तीखे नयनन ,
चाहत करन मनहुँ मन मंथन ।

गवनेउ जब यह उर न उछाहा,
रहेउ प्रकटि अब प्रीति अथाहा।
रिपु सँग रचि कुचक्र कछु घोरा,
चाहत लेन मर्म अब मोरा।
थिर न छिनहु घन-आकृति जैसे,
प्रति पल अन्य मनुज-मन तैसे।

दोहा :— नेही, *विश्वसनीय चिर*, कोउ नहिं संसार,
मित्रहु ते रिपु सम सजग, यह नय-नीतिन-सार। ३६

कीन्हे कंस प्रलाप घनेरे,
पूछे कुशल-प्रश्न बहुतेरे।
बरने विविध देश वन ग्रामा,
लीन्ह न पुनि हरि हलधर नामा।
जब प्रसंग अक्रूर उठावा,
कहि कछु सौम्य नरेश बरावा।
रच्छत भेद मौन जन धारी,
दुर्जन वाक्य-जाल विस्तारी।
उर विष, नेह नयन बरसावत,
अधर हास, मधु बदन बहावत।
लखि लखि सुफलक-सुत मन आवा,
शठ अस अन्य न विधि निर्मावा।
बीछी पूँछ, सर्प मुख माहीं,
नहिं खल अंग जहाँ विष नाहीं।
गये गेह अक्रूर उदासा,
मन अति खिन्न, न पूजी आशा।

दोहा :— इत जब बुद्धि सराहि निज, रहेउ कंस मुसकाय,
पुर हरि स्वागत वृत्त सब, कहेउ गुप्तचर आय। ३७

सुनत सकानेउ शठ संवादू,
तर्क वितर्क करत सविषादू—

दोहा — व्यूह-बद्ध जन कंस-भय, राखेउ हरिहि दुराय,
सम-रिपुशशि लखि जिमि कमल, मुँदि अलि लेत लुकाय ।

यहि विधि नगर-कथा सब गायी,
कंस धृत्त अन कहहुँ सुनायी।
तजि अक्रूर बधु दोउ उपवन,
हाँकेउ राजभवन दिशि स्यदन।
उर न शान्ति, पथ सोचत जाहीं—
अघ अन कवन कंस मन माहीं?
हरि-हलधर वध हित नरनाहा,
राखेउ रचि प्रपच धौं काहा?
निज छल जो खल देहि बतायी,
लहहुँ पुण्य यश हरिहिं चेतायी।
यहि विधि सोचत नृप ढिग आवा,
राम श्याम आगमन जनावा।
हुलसेउ सुनि उर, पुलकेउ सब तन,
निकसेउ कटक मनहुँ पुरातन।
उठि धायेउ, गहि हृदय लगावा,
बरबस सँग आसन बैठावा।

दोहा — पुनि पुनि कहि 'पितृव्य मम', दीन्हेउ बहु सन्मान,
अवसर लखि भाषी गिरा, सुफलक-सुवन सुजान— २५

"ग्राम्य बाल वसुदेव-कुमारा,
अबहुँ अबोध, सुमन-सुकुमारा।
बिलपे दोउ तजत नँद-नारी,
आये पथ मोचत दृग बारी।
चहहु तौ असुर पठै कछु राती,
आजुहि उपवन देहु निपाती।"
सुनत वचन सुफलक-सुत केरा,
जागेउ जनु शठ संशय प्रेरा।
लखि अक्रूरहिं तीखे नयनन,
चाहत करन मनहुँ मन मथन।

गवनेउ जब यह उर न उछाहा,
रहेउ प्रकटि अब प्रीति अथाहा।
रिपु सँग रचि कुचक्र कछु घोरा,
चाहत लेन मर्म अब मोरा।
थिर न छिनहु घन-आकृति जैसे,
प्रति पल अन्य मनुज-मन तैसे।

दोहा :— *नेही, विश्वसनीय चिर, कोउ नहि संसार,*
मित्रहु ते रिपु सम सजग, यह नय-नीतिन-सार। ३६

कीन्हे कंस प्रलाप घनेरे,
पूछे कुशल-प्रश्न बहुतेरे।
बरने विविध देश वन ग्रामा,
लीन्ह न पुनि हरि हलधर नामा।
जब प्रसंग अक्रूर उठावा,
कहि कछु सौम्य नरेश बरावा।
रच्छत भेद मौन जन धारी,
दुर्जन वाक्य-जाल विस्तारी।
उर विष, नेह नयन बरसावत,
अधर हास, मधु वदन बहावत।
लखि लखि सुफलक-सुत मन आवा,
शठ अस अन्य न विधि निर्मावा।
बीछी पूँछ, सर्प मुख माहीं,
नहिं खल अंग जहाँ विष नाहीं।
गये गेह अक्रूर उदासा,
मन अति खिन्न, न पूजी आशा।

दोहा :— *इत जब बुद्धि सराहि निज, रहेउ कंस मुसकाय,*
पुर हरि स्वागत वृत्त सब, कहेउ गुप्तचर आय। ३७

सुनत सकानेउ शठ सवादू,
तर्क वितर्क ——

सुफलक-सुत मोहि सन छल कीन्हा,
मम उर भाव अरिहि कहि दीन्हा।
करि मंत्रणा संग खल लावा,
पुनि मम मर्म लेन ढिग आवा।
शिशु अबोध नहिं ये दोउ भ्राता,
ये नय-निपुण, अनागत-ज्ञाता।
गोकुल ते आये असहायी,
लीन्हेउ प्रविशत पुर अपनायी।
सोचत यहि विधि कंस मनहिं मन,
परेउ धनुष-भंजन-रव श्रवणन।
होय शान्त जब लगि उर-कंपन,
सुनेउ, हतेउ असुरन हरि-पुरजन।
लहेउ वृत्त पुनि, उद्धव-प्रेरे,
रच्छत जन अरि उपवन घेरे।

दोहा :— *सुने उत्तरोत्तर सकल, वज्र-कठोर प्रसंग,*
रोमांचित सस्वेद नृप, रहेउ काँपि प्रत्यंग। २८

चेतनहु शठ अशक्त असहायी,
सक्त न शाठ्य कबहुँ बिसरायी।
निर्बल श्वानहु दशन-विहीना,
धावत काटन वृत्ति-अधीना।
असुर मल्ल मुष्टिक जग नामा,
वैसहि चाणूरहु बल-धामा।
लखी न महि जिन कबहुँ अखारे,
कंस क्रूर निज भवन हँकारे।
कहेउ प्रपंच तिनहिं समुझायी,
रंग-भूमि जेहि हेतु बनायी—
"यह नहिं मल्ल-युद्ध साधारण,
चहहुँ सयुक्ति शत्रु-संहारन।
रिपु-वय, वेष, वश बिसरायी,
समर नियम मर्याद बिहायी,

मानहुँ मज्जत व्योम-सरित जल,
गत-सेंदुर सुर-गज कुंभस्थल।
कंस त्रयोदशि इन्दु निहारा,
ज्योत्स्ना-सुधा-धवल जग सारा।
भयेउ न भूपहिं सोउ सुखदानी,
गयेउ विषण्ण वदन जहँ रानी।
जरासंध-दुहिता सुकुमारी,
विलखत दोउ नरेश निहारी।
करतल वाम कपोलन धारे,
अँसुवन-सिक्त वसन अँग सारे।

दोहा :— *अलक असंयत, क्लान्त तनु, अंग राग-रस-हीन,*
म्लान अधर, आरक्त दृग, विधु-मुख-कान्ति मलीन। ४१
अंतःपुर जहँ निशि दिवस, उमहत नव रस रंग,
शोक-मूक परिचारिका, शुक-सारिका विहंग। ४२

लखि पति धाय रानि पद लागीं,
"करहु न नाथ! अनाथ अभागी!"
तिन महँ 'अस्ति' ज्येष्ठ पटरानी,
बोली विलखि भूप सन वाणी—
"ये शिशु दोउ न शौरि-कुमारा,
ये कोउ देव मनुज-तनु धारा।
मम ताम्बूल-वाहिका चेरी,
आवत पंथ कृष्ण सन हेरी।
भयेउ तासु कछु निमिषहिं माहीं,
आयी लौटि भए नाहीं।
अन्य सेविका
... सोउ पुनि पहुँच.
... हाली ...

मानहुँ मज्जत व्योम-सरित जल,
गत-सेंदुर सुर-गज कुंभस्थल।
कंस त्रयोदशि इन्दु निहारा,
ज्योत्स्ना-सुधा-धवल जग सारा।
भयेउ न भूपहि सोउ सुखदानी,
गयेउ विषण्ण वदन जहँ रानी।
जरासंध-दुहिता सुकुमारी,
बिलखत दोउ नरेश निहारी।
करतल वाम कपोलन धारे,
अँसुवन-सिक्त वसन अँग सारे।

दोहा :— *अलक असंयत, क्लान्त तनु, अंग राग-रस-हीन,*
म्लान अधर, आरक्त दृग, विधु-मुख-कान्ति मलीन। ४१
अंतःपुर जहँ निशि दिवस, उमहत नव रस रंग,
शोक-मूक परिचारिका, शुक-सारिका विहंग। ४२

लखि पति धाय रानि पद लागीं,
"करहु न नाथ! अनाथ अभागी।"
तिन महँ 'अस्ति' ज्येष्ठ पटरानी,
बोली बिलखि भूप सन वाणी—
"ये शिशु दोउ न शौरि-कुमारा,
ये कोउ देव मनुज-तनु धारा।
मम तांबूल-वाहिका चेरी,
आवत पंथ कृष्ण तन हेरी।
भयेउ ताहि कछु निमिषहि माहीं,
आयी लौटि भवन पुनि नाहीं।
अन्य सेविका लखन पठायीं,
गयीं सोउ पुनि बहुरि न आयीं।
तजि दासी मम पितु-गृह केरी,
भवन न एकहु मधुपुर-चेरी।
ये दोउ बाल दिव्य बल-धारी,
सन्मुख सकत कोउ नहिं मारी।

दोहा :— *विनवहुँ प्रभु ! रच्छहु अबहुँ, मम सोहाग, निज प्राण ,*
रातिहि तजि यह दग्ध पुर, गिरिव्रज करहु प्रयाण ।" ४३

उर न जदपि बुधि-बल-विश्वासा ,
बोलेउ कंस सदर्प सहासा—
"मृग नहिं मारि सकत मृगराजू ,
सकत न जन विनाशि जनराजू ।
आयेउँ विरचि चक्र मैं सारा ,
निश्चय प्रात शत्रु संहारा !"
पुनि खल सब गज-मल्ल-प्रसंगा ,
कहेउ तियन प्रति प्रकटि उमंगा ।
रानी अपर 'प्राप्ति' बिलखानी ,
बोली अशुभ भीति-वश बाणी—
"ये दोउ बाल दिव्य बलधारी ,
कैसेहु कोउ सकत नहिं मारी !"
विकल, सकी कहि और न रानी ,
भूपहु मौन भयेउ भय मानी ।
उठी बोलि सहसा इक सारी ,
"कैसेहु कोउ सकत नहिं मारी !"

दोहा :— *खीझेउ खल सुनि विहग-मुख, भयद अमंगल बाणि ,*
गवनेउ शयनागार दिशि, बिलपत तजि दोउ रानि । ४४

जस जस नृप पद धरत अगारी ,
परत सोइ सुनि शब्द पछारी ।
"ये दोउ बाल दिव्य बलधारी ,
कैसेहु कोउ सकत नहिं मारी !"
मानस भ्रान्त, महीपहिं भासा ,
दासिहु मनहुँ करत परिहासा ।
रानिहु जनु शुक-सारिन संगा ,
रहीं बोलि सोइ गिरा सव्यंगा ।
भीतिन चित्रित सुर गंधर्वा ,
गावत यक्ष नाग जनु सर्वा—

"ये दोउ बाल दिव्य बलधारी,
कैसेहु कोउ सकत नहिं मारी!"
पहुँचेउ शयन-गेह अकुलायी,
परेउ तहँहु सोइ शब्द सुनायी।
बैठत, उठत, नींद नहिं आवति,
श्रुति सोइ गिरा त्रास उपजावति।

दोहा :— *झपकी पलक प्रभात कछु, दिखे स्वप्न हरि आय,*
नख शिख रौद्र स्वरूप लखि, जागेउ खल भय खाय। ४५

अँग प्रकम्प भागेउ अकुलायी,
गिरेउ भूमि पर्यंक विहायी।
परेउ दिखाय कतहुँ कोउ नाहीं,
उठेउ सलज्ज खीझ मन माहीं।
प्राची दिशा भयी कछु लाली,
हतेउ तमस-गज रवि बलशाली।
अरुण नखन करि-कुंभ विदारा,
बही छितिज जनु शोणित धारा।
उदित सहस्ररश्मि मनहारी,
गोल प्रवाल-पिण्ड अनुहारी।
भाव न सौम्य कंस उर जागा,
काल-घंटिका सम रवि लागा।
जांघिक नियति बजाय बजायी,
आयु-शेष जनु रही सुनायी।
किरण-राग-परिप्लावित प्राची,
नृप-दृग रक्त-सरित सम नाची।

दोहा :— *खिलेउ कमल, फूलेउ अलिहु, डोली शीतल वात,*
मरणासन्नहिं पै कबहुँ, भयेउ कि मधुर प्रभात! ४६
चलनति जीवन-आस पै, उर उर बसति अशेष,
मज्जन करि लागेउ सजन, रँग-महिं हेतु नरेश। ४७

उत पुरजन-परिवृत ब्रजरायी,
सोय विपिन सुख रैनि वितायी।

वादत वाद्य लोग अनुरागे,
मधुर मद ध्वनि सुनि हरि जागे।
सचकित पुनि व्रजपति कल्याणी,
सुनी प्रगल्भ विप्रजन-वाणी।
तजि सुमेरु प्राची दिशि आयी,
उदित दिनेश भुवन-सुखदायी।
तमस-असुर हति, हरि शशि-शासन,
बसेउ भानु उदयाद्रि-सिँहासन।
उडुगण क्षीण, कुमुद श्री-हीना,
अध उलूक तेज-हत, दीना।
कुवलय-दल कपाट कर-किरणन,
खोलि विमुक्त किये रवि अलि-गण।
मिली अचलि अलि फूलन साथा,
गाय भुलावति कारा-गाथा।

दोहा :— *चक्रवाक युगमहु मिलेउ, भरेउ भुवन नव प्राण,*
कलरव मिस रवि-यश विमल, खगकुल करत बखान। ४८

गिरा गँभीर श्रवण-सुखदायी,
इंगितज्ञ हरि मन अति भायी।
गवने मज्जन-हित प्रभु सस्मित,
लखि उपकरण वारि पुनि चिस्मित।
फटिक-पीठिका पुरजन लायी,
हेम-कलश घट धरे सजायी।
शीतल सुरभित सलिल निहारी,
पुलके जन-वत्सल असुरारी।
सुखस्नान। निशि तन्द्रा नासी,
नीलस्निग्ध कान्ति तन भासी।
तिलक भाल, भुज-वक्ष विलेपन,
अग युगल पट पीत विभूषण।
नित-चर्या निवृत्त व्रजनाथा,
गये महर ढिग अग्रज साथा।

करि प्रणाम नटहिं समुझावा,
गोपन सँग रँग-गेह पठावा।

दोहा :— *शिविर-द्वार प्रकटे बहुरि, जनु रवि उदित द्वितीय,*
प्रणत प्रजाजन मूर्ति लखि, तेज-पुञ्ज, कमनीय। ४६

भाषे आशिष वचन विप्रजन,
भयेउ चतुर्दिक पुष्प प्रवर्षण।
भेरी, शृंग, शंख-रव व्यापे,
जय-ध्वनि तुमुल मही-नभ काँपे।
हर्षित लखि जन-ओज अपारा,
हरि पग रंग-अवनि-पथ धारा।
प्रभु गवनत गवने बलवीरा,
वदन दृप्त, गति उद्धत धीरा।
जन जल निधि जनु उठी हिलोरा,
बही अगाध रंग-महि ओरा।
काल्हि कंस-पद-दलित समाजू,
गवनत आजु मनहुँ मृगराजू!
महत जनहिं सद्गुण उपजावत,
हिमवतहिं सुर-सरित बहावत।
सुने सकल जन कंस प्रसंगा,
रिपु-प्रयाण, पुरजनन उमंगा।

दोहा — *हृदय भीति, मुसकान मुख, गुप्त कवच युत देह,*
परिवृत सेनप आप्तजन, प्रविशेउ नृप रँग-गेह। ५०

भाषेउ प्रतीहार—"नरराजू"!
उठेउ राज-अनुजीवि समाजू।
मंच विशाल हेम निर्मावा,
मणि-मंडित नृप हेतु बनावा।
लहरत भव्य दुकूल-विताना,
विशद गगन-सरि फेन समाना।

पर्यंकिका शुभ्र मनहारी,
निवसेउ नृप वंदन स्वीकारी।
भूप-समीपहिं मंत्रिन आसन,
मंत्रिन ढिगहिं प्रधान राजजन।
सजि सजि निज निज देशन साजा,
राजत विपुल माण्डलिक राजा।
तिन पाछे व्रज, ग्राम, गोप्र-पति,
अंत, रिक्त जन-मंचन-संहति।
सुघटित रँग-महि वृत्ताकारा,
मध्य मल्ल-व्यायाम अखारा।

दोहा :— गंध-सिक्त मृदु मृत्तिका, भ्रमत मल्ल बलवान,
ठोंकि ठोंकि भुज-दण्ड युग, गरजत सिंह समान। ५१

रंग-भूमि लखि नृप अनुरागा,
गर्व प्रसुप्त बहुरि उर जागा।
लखत चतुर्दिक नंदहिं चीन्ही,
भृकुटी कुटिल कंस निज कीन्ही।
रिस लखि भीति महर-मन छायी,
पल पल बढ़ी हृदय-विकलाई।
चितये चहुँ दिशि धीरज खोयी,
दिखेउ न कतहुँ सहायक कोई।
लखे बहुरि मुष्टिक-चाणूरा,
एक ते एक क्रूर नृप-शूरा।
हहरेउ हृदय, भरेउ दृग पानी,
सोचत आजु भयी सुत-हानी।
सुमिरत श्याम-चरित उर आशा,
झलकी वदन विजय-अभिलाषा।
भयी तबहिं हरि-जय-ध्वनि द्वारे,
गरजे मल्लहु तरजि अखारे।

दोहा :— शमित शब्द-संहति सकल, व्यापी गज-चिंग्घार,
अड़ेउ कुवलयापीड पथ, रोकि रंग-गृह-द्वार। ५२

पशु-बल चलति कंस-प्रभुताई,
तासु प्रतीक मनहुँ गजरायी।
चरचि शत्रु-छल हलधर भाखा,
"प्रकट प्रकट, नृप गज पथ राखा।"
लखि करि सन्मुख शैलाकारा,
रुकी निमिप जन-राशि अपारा।
अकस्मात करि गर्जन घोरा,
धाये सात्यकि वारण ओरा।
शत-शत, सहस-सहस पुनि धाये,
लक्ष-लक्ष जन शस्त्र उठाये।
शिलाखण्ड लै कोऊ धावा,
वढे लोग गहि जो जहँ पावा।
गूँजेउ दिशि दिशि शब्द भयंकर,
"मारहु चूर्ण चूर्ण करि कुंजर।
तोरि फोरि रँग-महि धँसि धावहु,
हतहु असुर, खल कंस नसावहु!"

दोहा :— *लखी कान्ति विकराल प्रभु, रोकेउ हस्त उठाय,*
उद्धव-शासित जन-उदधि, थमेउ क्षुब्ध हहराय। ५३

लखत लोग रण-मत्त अधीरा,
बढे आपु गज-दिशि यदुवीरा।
परिकर पीत उठेउ फहरायी,
भाल लता कुंतल छवि छायी।
सहज सौम्य मुख भयेउ कठोरा,
जागेउ रौद्र तेज तनु घोरा।
दमके पुण्डरीक दृग ज्योरे,
लाल सुरंग रोप-रस वोरे।
पट कटि बद्ध, संयमित केशा,
प्रकटेउ नरसिँह वेप व्रजेशा।
ललकारेउ गजपाल सरोपा,
भरेउ भुवन नीरद-निर्घोपा।

जन-राशिहु पुनि गरजि प्रचारा,
'मारु ! काटु !'–ध्वनि भयी अपारा।
सुनि अंकुश करिपाल सँभारा,
तमकि नाग-कुंभस्थल मारा।

दोहा :—*मद-मैरेय-प्रमत्त गज, क्रुद्ध अंकुशाघात,*
झपटेउ चिग्घारत प्रबल, जनु लय-झंझावात। ५४

उठी शुण्ड जनु भुजग भयंकर,
हरिहिं हठात लपेटेउ कुंजर।
जब लगि पदतल सकहि चपायी,
छूटे प्रभु वेष्टन निपुणायी।
उछरे तड़ित-वेग व्रजनाथा,
मुष्टिक वज्र हनी गज-माथा।
छायेउ 'जयति कृष्ण'—रव भारी,
छायी दृग गजेन्द्र अँधियारी।
सतत कौतुकी हरि मुसकायी,
रहे द्विरद-पद-मध्य दुरायी।
अंध, क्रोध-बंधुर गजराजू,
सूँघत, धरन चहत व्रजराजू।
पुनि पुनि ढूँढ़त शुण्ड भँवायी,
मुरत, जात हरि घात बचायी।
जस जस भ्रमि प्रभु करत निवारण,
तस तस खीझि फिरत नृप-वारण।

दोहा :—*गड़गड़ात मदकल भ्रमत, चक्राकार गजेन्द्र,*
मथत सुधा वारिधि फिरत, जनु मंदर शैलेन्द्र। ५५

सहसा झपटि सुपर्ण समाना,
पकरी द्विरद-बाल भगवाना।
चहेउ लपेटन शुण्ड भँवायी,
गही सकौतुक सोउ व्रजरायी।

घूमे कुंजर संग घुमायी,
गिरेउ भूमि हस्तिप असहायी।
मिलेउ न खलहिं पलायन-योगू,
छिन्न-भिन्न अँग मारेउ लोगू।
उत हरि पटकेउ भूमि मतंगा,
बहेउ रक्त-कुंभस्थल भंगा।
मौक्तिक बिखरि नाग-अँग छाये,
शोणित-रंजित अरुण सोहाये।
नभ जनु निशा शारदी तारे,
संध्या-राग-सिक्त अरुणारे।
यद्यपि वारण प्राण विहाला,
उठेउ सरोष तबहुँ विकराला

दोहा :— दुर्निवार, दारुण द्विरद, मयद कुंभ-थल दीर्ण,
प्रलय-जलधि-संघात जनु, गिरिवर शृंग विशीर्ण। ५६

धायेउ सिन्धुर पुनि चिग्घारी,
रहे अचल निज थल असुरारी।
आवत ढिग मत्तेभ दुरंता,
शुण्ड बराय गहेउ हरि दंता।
व्याप्त वीर रस, उछरि अधीरा,
दंत अपर पकरेउ बलवीरा।
अड़े सरोष युगल भट भारे,
झटके हठि गजदंत उपारे।
गरजि अशंक सिंह अनुहारी,
मुष्टिक निष्ठुर हलधर मारी।
केशव-दंताघात प्रचंडा,
गिरेउ भूमि करि जनु गिरि-खंडा।
दीन्हेउ उठन न पुनि भगवाना,
पद-आघात हरे गज प्राणा।
महि-नभ विजय-दुन्दुभी बाजी,
धाये जन रँग-महि दिशि गाजी।

युद्धहु तेहि सँग उतरि अखारा,
मम सँग हलधर बंधु तुम्हारा।
प्रजा-धाम, धन, महि, सुत, दारा,
बल, कौशल भूपति-हित सारा।
ताते शिर धरि नृप-आदेशा,
करहु मल्ल-महि वेगि प्रवेशा।"
अस भाषत हलधरहिं प्रचारा,
जनु निज कालहिं खल ललकारा।

दोहा :— *प्रभु-समीप चाणूरहू, गयेउ ठोंकि भुज-दण्ड,*
देखि हरिहिं निज बल अचल, बोलेउ वचन प्रचण्ड। ६०

"नृप-निदेश कोउ सकत न टारी,
रहेउ काह खल! सोचि विचारी।
भंजि शरासन, हनि गजराजू,
प्रविशेउ रंग मनहुँ मृगराजू।
सुनि जय-जय उपजेउ अभिमाना,
शूर-शून्य शठ! सब जग जाना।
अब विलीन बल, दर्प, घमंडा,
सकुचत उर लखि मम भुजदंडा।
कहत मूढ़ तोहिं विभु अवतारा,
सुनि सोइ मैं रण-हेतु प्रचारा।
यह मथुरा, यह कंस सभालय,
यह वैकुंठ न, क्लीवन-आलय।
शूर समर हित यह महि रंगा,
यहाँ न प्रणय-कलह श्री संगा।
यहाँ न नारद-वीणा-नादा,
यहँ प्रचंड भुजदंड-निनादा।

दोहा :— *भक्तन-अर्पित भोग नहिं, यह मम मुष्टि कराल,*
"विष्णुहु ते नहि भीति मोहि, तैं खल! ग्वल ग्वाल।" ६१

कुलिश-कठोर, महाद्रि-विशाला,
देह कराल, दैत्य-दृग-ज्वाला।
बढ़ेउ कृष्ण-दिशि गरजि प्रचंडा,
उत्थित भुज जनु मद-गज शुंडा।
शीर्ष शिखा लघु उठि अस लागी,
धूम-प्ररोह मनहुँ कोपागी।
धरत धमकि पद धरणि कँपायी,
झपटि हरिहिं गहि लीन्ह उठायी।
चहेउ जबहिं महि देहुँ पछारी,
सहसा गह्यो ग्रीव असुरारी।
भये शिथिल पल महँ अँग सारे,
कूदे व्रजपति उछरि अरारे।
अंतराल भरि सिंह-निनादा,
कांपी रंगभूमि भुज-नादा।
धायेउ दैत्यहु क्रोध असीमा,
भयेउ मल्ल-आयोधन भीमा।

दोहा — *संकर्षण-मुष्टिक भिरे, भये घात-प्रतिघात,*
भयी सभा निस्तब्ध लखि, चकित रुके दृग-पात। ६२

दैत्य प्रमत्त दोउ दुर्धर्षा,
भयेउ अशस्त्र घोर संघर्षा।
उछरहिं, लरहिं, ताकि निज घाता,
पटकहिं, करहिं, कील-आघाता।
जानु-जानु भुज-भुज टकराहीं,
घोर विघट्ट, गुथहिं, हटि जाहीं।
मुष्टि प्रहार वज्र सम करहीं,
कटकटाय चपटहिं हठि लरहीं।
मनहुँ महा अर्णव लय काला,
गरजहिं, बढ़ि टकराहिं कराला।
तुंग तरंग तुमुल संघर्षा,

जस जस भिरत मल्ल हरि संगा,
तस तस होत छीण बल अंगा।
प्राण-शक्ति क्रम क्रम मुरझानी,
भयेउ शिथिल, जानी बल-हानी।

दोहा :— *पाय घात हरि गहि अरिहिं, पटकेउ करि बल पूर,*
अमर वाद्य नभ, भूमि जय, गिरेउ मृतक चाणूर। ६३

राम ताहि चण मुष्टिक मारा,
भरेउ भुवन जय-घोष अपारा।
शल-तोशल आदिक नृप-योधा,
धाये बंधुन ओर सक्रोधा।
घेरन चहेउ हरिहिं अघ-राशी,
भये विक्षुब्ध देखि पुरवासी।
उद्धव औरहु प्रजा प्रचारी,
भिरे लोग असुरन ललकारी।
धाये आपु वीर युयुधाना,
कृतवर्मेहु हठि समर ठाना।
प्रजा राजजन सकल नसाये,
हते असुर सब, जहँ जो पाये।
मारे कृतवर्मा नृप-भ्राता,
सात्यकि मन्त्रिन खोजि निपाता।
हत-मति कंस, दृगन अँधियारा,
मृत मन्त्रिन लै नाम पुकारा।

दोहा :— *करि अस्फुट चीत्कार कछु, बोलेउ विकल विहाल—*
"बधहु घेरि वसुदेव-सुत, बाँधहु नँद, सब ग्वाल!" ६४

कोपे हरि सुनि भूप-प्रलापा,
चढ़ी भृकुटि पुनि जनु यम-चापा।
लखेउ सदर्प नृपहिं व्रजराजू,
जिमि शिखरस्थ मृगहिं मृगराजू।

उछरि, मंच चढ़ि, गहेउ नरेशा,
गहत उरग जिमि झपटि खगेशा।
भागन चहेउ, भागि नहिं पावा,
पकरि चिकुर हरि मंच गिरावा।
खसेउ किरीट, गिरे मणि सारे,
मनहुँ युगान्त झरे नभ तारे।
मृत्यु-भीति साहस उपजावा,
लपकि चहेउ खल खड्ग उठावा।
अट्टहास मधुसूदन कीन्हा,
पटकि मंच ते महितल दीन्हा।
गरजे तरजे मनहुँ मृगेशा,
कूदे नृप ऊपर विश्वेशा।

दोहा :— *हरि-गरिमा ब्रह्माण्ड-गुरु, सकेउ सँभारि न कंस,*
प्राण-विहग पल महँ उड़ेउ, त्यागि शरीर नृशंस। ६५
बाजी सुरपुर दुंदुभी, व्योम विमान अपार,
बरसत इन्द्रादिक अमर, पारिजात मंदार। ६६
नाचीं निर्जर-नारि नभ, जय-निनाद घनघोर,
मुक्त-शिखा नारद मुनिहु, नाचे हर्ष-विभोर। ६७

मोद उदधि जनु नंद नहावा,
रुद्ध कंठ, सुत हृदय लगावा।
गोप लखहिं, पुलकहिं, आनंदहिं,
हरि हलधर पद पंकज वंदहिं।
गिरा-अतीत प्रजाजन हर्षा,
उमहेउ सँग सँग विषम अमर्षा।
कीन्हे असुरन नित्त घात जेते,
हरियर भये आजु जनु तेते।
उठी कराल गरजि जन-राशी,
धायी असुरन रक्त-पियासी।
मुख असंख्य दारुण उद्गारा,
"नासहु असुरन-धन, सुत, दारा!"

सुनि स्वर जन-दिशि श्याम निहारा,
भीषण जनु अतक-परिवारा।
जानत प्रभु जन-रोष सकारण,
वध निरीह पै चहत निवारण।

दोहा :— *लीलापति द्रुत युक्ति रचि, भाषेउ जनन सुनाय—*
"मुक्त करहु सब वृद्ध नृप, बंदीगृह दिशि धाय!" ६८
'बंदीगृह' हरि मुख कहत, 'बंदीगृह' प्रतिरोर,
धाये 'बंदीगृह' कहत, जन लाखन तेहि ओर। ६९

उपजेउ जनु जन-जलनिधि ज्वारा,
हहर, लहर, गुरु गरज अपारा।
उमड, घुमड सघट्टित धावा,
लय जनु पुष्कर घन नभ छावा।
उदित रौद्र रस जन हृद्धामा,
मुख-मुद्रा उद्दम उद्दामा।
भीम भृकुटि, घूर्णित दृग लाला,
जनु उत्थित फण अगणित व्याला।
क्रोध प्रवृद्ध प्रजा प्रलयंकर,
भये उदित जनु द्वादश दिनकर।
गति उद्धत, उद्दीपित, भीषण,
बहे प्रलय जनु सप्त समीरण।
दिग् विदीर्ण, जन-नाद कराला,
रहीं तडकि जनु शिला विशाला।
पहुँचत ढिग जन-पारावारा,
उठेउ काँपि बंदीगृह सारा।

दोहा — *कारा-पति प्रहरी सकल, असुर कस-विश्वस्त,*
धाये नृप-वध सुनि कुपित, अस्त्र-शस्त्र धृत हस्त। ७०

पौरहु सन्मुख लखे अधमतम,
दर्पी, हठी असुर सोइ निर्मम।

घृत जनु परेउ कृशानु ज्वलंता,
कृत-आयुध कर उठे अनंता।
धाये अँधाधुंध जन कैसे,
धावत चक्रवात मरु जैसे।
कंपित क्षिति, अरि-व्यूह दरारा,
भये असंख्य अदम्य प्रहारा।
कुपित प्रजा मानहुँ चामुंडा,
रव भैरव, आघात प्रचंडा।
चूर्ण-विचूर्ण गिरे खल सारे,
तिल तिल मर्दित महि संहारे।
अस्त अचिह्न असुर समुदायी,
जात फेन जिमि लहरि विलायी।
उमहि बहे जन कारा-द्वारा,
अगणित आतुर भये प्रहारा।

दोहा :—*टूटे वज्र किँवार नहि, जन-समुदाय अधीर,*
लगे हनन प्रहरण विविध, कारागृह - प्राचीर। ७१

उत सुनि असुर-नाश संवादू,
कीन्हेउ बंदिन आनँद-नादू।
काटि बंध अन्योन्य सहारे,
धाये कोट-द्वार दिशि सारे।
सुनि जय-घोष करत प्रतिघोषा,
भिरे सोउ प्राचीर सरोषा।
द्विदिशि घात डोलेउ प्राकारा,
भंजित थल थल रोर अपारा।
ढहेउ असुरता अंतिम आश्रय,
शयित संग महि प्रजा-दुःख-भय।
बंदी त्राता मिलन सोहाया,
उर सुख-सिंधु लहरि दृग आया।
उग्रसेन पद हलधर श्यामू,
परसे प्रथमे कहत निज नामू।

ललकि हरिहिं नृप कंठ लगावा,
तुमहि पुत्र चिर त्रास मिटावा।

दोहा :— जननि जनक हरि-मुख लखत, थिर तारक दृग कोप,
सोचत स्वप्न कि सत्य यह, होत न दृष्टि भरोस। ७२

निरखि मोह चिर विरह-प्रजाता,
कहि कहि 'अब!' प्रबोधी माता।
प्रणमत पद वसुदेव, उठावा,
सुनि मुख 'तात'! पुलक तनु छावा।
सुत हिय लाय लहेउ विश्वासू,
हर्ष - प्रकर्ष कपोलन आँसू।
बलरामहु गहि हृदय लगाये,
दृग-जल दोउ सुवन अन्हवाये।
भेंटे पुनि नदहि सन्मानी,
गोपन मिले श्याम सम जानी।
लखि हरि हलधर स्वजन-मिलापा,
पुरजन उरहु प्रीति रस व्यापा।
जय ध्वनि मध्य वृद्ध नृप साथा,
प्रविशे राजभवन यदुनाथा।
मृदु वैनन रानिन समुझायी,
सविधि मृतक अन्त्येष्टि करायी।

दोहा :— परिजन पुरजन बोलि पुनि, ग्रामपतिहु सह नंद,
हेरि वृद्ध नृप-दिशि कहे, वचन सच्चिदानंद। ७३

"मन मम मातुल-मृत्यु सँकोचू,
दीन्हेउँ वृद्ध नृपहिं सुत-शोचू।
कीन्हेउँ सो लखि जन-दुख भारी,
दण्ड्य प्रियहु जो अत्याचारी।
माँगहुँ तदपि क्षमा कर जोरी,
होहिं प्रसन्न विनय सुनि मोरी।

राज्य सँभारि बहुरि निज लेहीं,
मोहिं निदेश योग्य मम देही।
निज सर्वस्व महर मोहिं दीन्हा,
पुत्र-सनेह पालि बड़ कीन्हा।
आयसु देहि नृपति, पितु, माता,
जाहुँ लौटि पुनि ब्रज सुखदाता।
जब तब नृप-अनुशासन पायी,
अइहौं पुर सेवक सम धायी।"
मौन स्याम कहि पावन वाणी,
मुदित नंद, सब सभा सकानी।

दोहा :— *कमल-कोष अलि स्वप्न निशि, देखत स्वर्ण प्रभात,*
तेहि छण मानहुँ सर प्रविशि, करिनि कीन्ह आघात। ७४

प्रजा सुराज्य-स्वप्न-सुख नासा,
हत परिजन पुरजन अभिलाषा।
अवनि नयन वसुदेव करोवत,
उद्धव उग्रसेन-मुख जोवत।
तबहिं वृद्ध नृप धीरज आनी,
भाषी समयोचित शुचि वाणी—
"कहे वचन तुम तात सोहावन,
विनय, विवेक, विरति-युत पावन।
जदपि शोक सुत उर मम भारी,
सुखी राष्ट्र लखि महूँ सुखारी।
परिजन, प्रजा, देव, द्विज, धर्मा,
वेद-पाठ, यज्ञादिक कर्मा,
नासे सकल कंस निज पापा,
मिटेउ अत तिनहिं अभिशापा।
तुम अवतरित लोक-हित लागी,
छमहुँ तुमहिं मैं काह -अभागी।

दोहा :— *तात! तजहु नहि राज्य अब, करहु न जगत अकाज,*
परिजन, पुरजन, प्रजा-सँग, महुँ चहहुँ हरि-राज। ७५

यदुवंशिन महँ रीति पुरानी,
लहत प्रमुत्व जो गुण बल-खानी।
भरतखंड महँ यह यदुवंशा,
रहेउ तात ! नृप-कुल-अवतंसा।
विगत आजु वह वैभव सारा,
भयेउ असुर सम्राट हमारा।
धर्म-प्राण तुम शक्ति-निधाना,
करहु वत्स ! पुनि कुल-उत्थाना।
लखहुँ नयन भरि असुर-विनाशा,
इतनिहि अब मम उर अभिलाषा।"
वार वार नृप विनय सुनायी,
हेरत सब तन, चहत सहायी।
सात्यकि, कृतवर्मा, सब अभिजन,
भूमिप, प्रजा-पंचगण, पुरजन,
मिलि सब उद्धव ओर निहारे,
पुलकित तनु तिन वचन उचारे—

दोहा — *"आजु सफल मम जन्म जग, सन्मुख लखत समाज,*
कंदुक जिमि पद-तल लुठत, जहँ भजमंडल-राज। ७६

अब लगि सुत पितु बंदी करहीं,
परिजन प्राण राज्य हित हरहीं।
नहि अस पाप राजपद लागी,
करहिं न नीच धर्म-पथ त्यागी।
भयेउ आजु आश्चर्य महाना,
प्रकटे राम बहुरि मैं जाना।
जो कछु सुनेउँ लखत सोइ लोचन,
प्रभु अवतरेउ प्रजा-दुख-मोचन।
साँचहि यह अननीश सुनाना,
असुर-राज्य भरि भारत छाना।
थल थल जदपि चतुर्दिक राजा,
स्वामी जरासंध अधिराजा।

धेनु चरावत मोहिं न लाजा,
अइहौं पुरी परत नृप-काजा।
नीति-निपुण उद्धव अति ज्ञानी,
राजनीति कहि विशद बखानी।
सो मैं सकल सुनी धरि ध्याना,
भयेउ असुर-बल-विक्रम-ज्ञाता।
जानत मैं अब कंस नसायी,
सोये साँप जगाये आयी।
घेरि डसहिं जो मधुपुर-वासी,
होय पाप मोहिं रहे उदासी।
प्रथमहि ताते कहेउँ सुनायी,
अइहौं पुर नृप-आयसु पायी।

दोहा :— *महाराज जो करि कृपा, लेहिं मुकुट शिर धारि,*
जन-संरक्षण-भार सब, लेहे दास सँभारि। ७६

साँचहु महत रहेउ यदुवंशा,
जो कछु कीजै थोरि प्रशंसा।
पै रघुवंश - नेह - सद्भावा,
कबहुँ न *यदुवंशिन दरसावा।*
रहेउ शिथिल संतत अनुशासन,
मानत कोउ न ज्ञान-वय-शासन।
सबही निज निज बल-अभिमानी,
सबहि स्वतंत्र, सबहि गुण-खानी।
पाय पिता ते निज अधिकारा,
भये आपु नृप नय-अनुसारा।
छीनेउ पद करि कंस अनीती,
सो मैं लेउँ, कहाँ कै रीती?
जेहि कर जो सो आपन पावै,
वेदस्मृति यह धर्म बतावै।
तात! वृथा का कहहुँ बढ़ायी,
धरे छत्र सिर वंश-भलाई।

दोहा :—*देहुँ वचन, करिहौं सदा, तब लगि वंश-सहाय,*
जब लगि गहि सब धर्म-पथ, वसिहैं नेह दृढ़ाय।" ८०

असं कहि निज कर मुकुट उठायी,
दीन्हेउ वृद्ध नृपहिं पहिरायी।
वदन कीन्ह धरणि धरि माथा,
कहि कहि 'मम प्रभु! यदुकुल-नाथा'!
चकित समाज, हर्ष स्वर भारी,
विह्वल नृपति, बिलोचन वारी।
उठेउ, प्रभुहिं गहि कंठ लगावा—
"पुत्रवंत मैं आजु कहावा।
करिहौं सोइ विरचि तुम राखा,
एकहि बात सुनत मन माखा।
वसिहौ वहुरि ग्राम जो जायी,
सकिहौं क्षण नहिं राज्य चलायी।
नाहिं पूर्व बल तन-मन माहीं,
सधिहै जन-हित मोहिं तें नाहीं।
करहुँ विनय ताते कर जोरी,
पुरवहु यह अभिलाषा मोरी—

दोहा :—*राज-भवन सुत सम बसहु, होहुँ बहुरि सुतवंत,*
बिसरहि भवपथ-भीति-भ्रम, निरखि नित्य भगवंत।" ८१

व्यथित गिरा सुनि हरि नृप केरी,
भाषे वचन नंद दिशि हेरी—
"त्रिभुवन-राज्य देहि जो कोऊ,
लेहौं इनहिं निदरि नहिं सोऊ।
पितु तें बढ़ि ये पिता हमारे,
बढ़े आजु लगि इनहिं सहारे।
करिहौं सोइ देहिं आदेशू,
सकहुँ टारि न सकहुँ निदेशू।
इन अधीन हम, इनहिन चेरे"—
सुनि अवाक सब नँद-दिशि हेरे।

रुद्ध-कंठ नृप महर निहारा,
विलसत नंदहु वचन उचारा—
"भार कान्ह सब मम शिर दीन्हा,
कहि कहि 'पितु' यश-भाजन कीन्हा।
मैं लघु भूमिप, गोप, गँवारा,
जानहुँ काह राज-व्यवहारा।

दोहा :— राजनीति सब मोरि यह, सरवस मोरे श्याम,
चहहुँ, चलहिं हरि लौटि ब्रज, बसहिं सदा मम धाम। ८२

तदपि महूँ निज मन गुनि राखा,
पूजहि मोरि न यह अभिलाखा।
देखी न्याय-बुद्धि हरि केरी,
राज्यहु दीन्ह हस्त-गत फेरी।
पाय सुयश, हरि पिता कहायी,
करि अनीति रहिहौं कहँ जायी?
भयेउँ धन्य करि अब लगि सेवा,
पावैं अब निज सुत वसुदेवा।
राज्य संपदा हरि लौटारी,
देहुँ, लेहिं हरि शौरि सँभारी।
देत श्याम हहरति यह छाती,
सौंपब उचित तबहुँ पर थाती।
कहिहौं लौटि यशोदहिं जायी,
आयेउँ मधुपुर श्याम गँवायी!"
विगलित बाष्प-सलिल नँद-वाणी,
निरखत हरिहिं, बहत दृग पानी।

दोहा :— हृदय लगायेउ धाय हरि, कहेउ सनेह सुभाय,
"रहिहौ आवत-जात पुर, सुत निज बिसरि न जाय।" ८३

वसुदेवहु पुनि धीरज दीन्हा—
"बूड़त वंश राखि तुम लीन्हा।

सुतहिं सखा नहिं, सत्य सनेही,
तुमतें उरिन न धरि शत देही।
मानेहु ऐसिहि सतत मिताई,
सुत दै सखा बिसरि जनि जायी।"
यादव-वृंद दहु धैर्य बँधावा,
उद्धव विविध भाँति समुझावा।
कहेउ भूप पुनि गहि नँद-बाँहीं,
"ऋण गुरु, देन योग्य ढिग नाहीं।
माँगहु पै मम प्रीतिहि लागी,
दै वाँछित कछु होहुँ सभागी।"
आग्रह पुनि पुनि भूपति कीन्हा,
नँद हरि-निरत फेरि मुख लीन्हा।
हृदय लगाय श्याम बलरामा,
बिलखत लौटि परे ब्रजग्रामा।

दोहा :— *भेंटे प्रभु पुनि पुनि सजन, बरसत नयनन नीर,*
बसे श्याम पुर, ब्रज बसी, ब्रजपति-विरहज पीर। ८४

इत कुल-गुरु वसुदेव बोलायी,
सुवन-उपनयन-तिथि ठहरायी।
पठयी मुदित वृद्ध नृप पाती,
न्योते सब संबंधि सजाती।
सुनि सुनि उग्रसेन-उद्धारा,
कंस-निधन, हरि-चरित उदारा,
यथा-काल यदुवंशी राजा,
आगे सह-कुटुम्ब सजि साजा।
आयेउ कुन्तिभोज बल-राशी,
पृथु क्षितिपति आनर्त-निवासी।
वीर हिरण्य दशार्ण-नरेशा,
नीलहु माहिष्मतीपुरेशा।
भगिनि पाँच वसुदेव-दुलारी,
व्याहीं विविध नृपन वर नारी।

केकय नृपति-रानि श्रुतिकीर्ती,
आयी लै सुत संग सप्रीती।

दोहा :— *आयीं श्रुतदेवा बहुरि, श्रुतिश्रवा विख्यात,*
दंतवक्र शिशुपाल दोउ, विश्रुत नृपतिन-मात। ८५

पुनि राजाधिदेवि गुण-खानी,
आयी मालव-महिपति-रानी।
ज्येष्ठ शौरि-भगिनी सुकुमारी,
आयी पृथा न पाण्डु-पियारी।
पाती लै जो दूत पठावा,
दुखद वृत्त तेहि लौटि सुनावा—
निवसत तुहिन-शैल तप लागी,
लहे पाँच सुत पाण्डु सभागी।
यहि विधि परिवृत स्वजन-समाजू,
कीन्ह शौरि सब मंगल-काजू।
गर्ग आपु वेदोक्त सोहावा,
हरि हलधर उपनयन करावा।
जन्मे 'द्विज' कहाय भगवाना,
जन्मे आजुहि जननी जाना।
मणि, सुवर्ण, गोधन-समुदायी,
कीन्ह दान, चिर साध मिटायी।

दोहा :— *दण्ड,कमण्डलु,मौंजि-धृत, मृगछाला युत श्याम,*
कीन्हीं गुरुजन सन विनय, करत सभक्ति प्रणाम — ८६

"प्रेमामृत तुम सब बरसावा,
कीन्हि कृपा, द्विज-पद मैं पावा।
धारेउँ शीश आजु मैं ऋषि-ऋण,
बिनु श्रुति-पाठ न तासु विमोचन।
दीन्हेउ गुरु गायत्री-दाना,
सोउ न सार्थक बिनु श्रुति-ज्ञाना।

उघरे ज्ञान-नयन नहिं जासू,
व्यर्थहि जन्म अवनि-तल तासू।
विनवहुँ ताते सबहिं निहोरी,
द्विजता सफल करहु मिलि मोरी।
गुरु-निकेत ज्ञानार्जन हेतू,
पठवहु कहुँ मोहिं बंधु समेतू।"
सुनत भयेउ अति विकल शौरि-मन,
प्रणत सुवन-शिर झरे अश्रुकण।
व्यथित नृपति, मर्माहत माता,
जनु अनभ्र नभ वज्र-निपाता।

दोहा :—*"काल्हि मिलन, आजुहि विरह, लखे न भल भरि नैन,*
कोटि मनोरथ-लब्ध तुम, भाषत कस अस बैन?" ८७

लखि हरि स्वजन-सनेह अपारा,
गुरु तन कातर नयन निहारा।
पुलकित गर्ग गुनत मन माहीं—
इनते परे ज्ञान कछु नाहीं।
ये विभु, द्रष्टा ऋषि-समुदायी,
पावन श्रुति इनहिन यश गायी।
पै सिखवन हित आश्रम-धर्मा,
करन चहत शिष्योचित कर्मा।
प्रकटन हित आचार्य-बड़ाई,
बसन चहत ये गुरुकुल जायी।
अस विचारि, हरि इच्छहु जानी,
कही गर्ग समयोचित वाणी—
"पुत्रवत सब मनुज सभागे,
चहत सतत सुत आँखिन आगे।
वर्धमान मैं बाल-मयंका,
रहत न जननि उदय-दिक् अंका।

दोहा :—*धृत नर-तनु हरि विश्व-धन, सुत तुम्हरेहि ये नाहिं,*
संकत बद्ध करि को इनहिं, राखए भुजन निज माहिं।" ८८

सुनि राजाधिदेवि हरषायी,
कही शौरि सन गिरा सोहायी—
"मुनि सान्दीपनि काशी-वासी,
योगी, कर्मनिष्ठ, तप-राशी,
व्यास-परशुधर-शिष्य सुजाना,
शास्त्र-शस्त्र-निधि अस नहिं आना।
भयेउ कुपित काशी-नरनाहा,
जानत कोउ न कारण काहा।
सहसा जन्मभूमि निज त्यागी,
बसे अवन्ती शिव-अनुरागी।
उज्जयिनी आश्रम निर्मावा,
नृप-सत्कृत चहुँ दिशि यश छावा।
गुरुकुल भव्य, अनेक शिष्यगण,
पढ़त नृपति-सुत, विप्र अकिंचन।
महाकाल जहँ, जहँ सान्दीपनि,
उज्जयिनी काशिहु तें पावनि।

दोहा :— *पठवहु मम सँग मोह तजि, राम श्याम गुण-धाम,*
रसिहैं जिमि युग अक्ष निमि, रच्छत आठहु याम।" ८६

सुनि गुरु-वचन शौरि-मन तोषा,
भगिनि-गिरा सुनि हृदय भरोसा।
वृद्ध नृपहिं नहिं आत्म-प्रतीती,
उर अति व्याप्त मगधपति-भीती।
निरवधि विरह जानि मन शोचू,
कहि न सकत कछु हृदय सँकोचू।
नृप अन्तर्मय प्रभु मन भासा,
'अइहौं वेगि', दीन्ह आश्वासा।
अन्तर्दाह देवकिहु दीना,
धिक धारब तनु सुवन-विहीना।
वृथा राज, धन, धाम-पसारा,
बिनु शशि-वदन हृदय अँधियारा।

बिलपत दीन्ही अनुमति माता,
शुभ तिथि साधि चले दोउ भ्राता।
लखि सुत गवनत जानि अमङ्गल,
रोकेउ बरबस जननि नयन-जल।

दोहा — कुलदेवन विनवति विकल, रच्छहु यदुकुल-दीप,
रहहु पार्श्व जागत सुवन, सोवत शीर्ष समीप। ६०
सौंपे सुत जनु काढ़ि दृग, भगनिहिं शौरि गँभीर,
गवनत रथ पथ पुरजनन, बरसेउ नयनन नीर। ६१

लहि यादव-कुल-कैरव-चदू,
मन राजाधिदेवि आनदू।
दक्षिण दिशि अवन्ति-रथ धावा,
वर्त्म करील तमालन छावा।
बायें गगा-जमुन-प्रदेशा,
पूरित जन-धन-धान्य अशेषा।
दिशि दाहिन मरुधन्व प्रसारा,
सन्मुख चेदि-राज्य-विस्तारा।
ऋतु हेमन्त, नील आकाशा,
उज्ज्वल दिवस, शीत वातासा।
ऋतु सुख, शक्ति, धान्य, धन-देनी,
पुलकित महि, खग, मृग, तरु, श्रेणी।
शालि विपाक पाण्डु कहुँ धरणी,
कहुँ कपास-छादित सित बरनी।
कहुँ गोधूम-हरित अभिरामा,
द्विदल-सस्य धृत कहुँ कहुँ श्यामा।

दोहा — कहु सन-सुमनन पीत महि, बहु वर्णा रमणीय,
मनहुँ मेदिनी-तल उदित, सुरपति-धनु कमनीय। ६२

विहग-कुलहु महि मातु समाना,
शोभित नवल उष्ण परिधाना।

नाना वर्ण परिच्छद-धारी,
नर्तत तरु-वितान मनहारी।
विमल व्योम, जल-स्राय-सुपासा,
प्रकटत स्वरन प्राण-उल्लासा।
कहुँ पारावत कूक सोहायी,
कहुँ महोरु-कुक्कुट-ध्वनि छायी।
स्वर्णिम वक्ष, पक्ष अति कारे,
विचरत पीलक कतहुँ सुखारे।
गावत कतहुँ हरेवा उपवन,
कूजत भृंगराज कहुँ कुजन।
उड़त विशिख सम शुक बहुरंगा,
थिरकत कतहुँ हरित पतरंगा।
गावत कहुँ खंजन मदमाते,
बोलत कतहुँ लाल रँग-राते।

दोहा:—*गाय मधुर श्यामा रही, महि बहाय स्वर-धार,*
बरसत भारद्वाज नभ, आनँद-पारावार। ६३

थल-थल नव नव प्रकृति-स्वरूपा,
पल-पल धारति वेप अनूपा।
लखत उल्लसित हलधर श्यामू,
मनहर थलन करत विश्रामू।
यहि विधि चर्मण्वति करि पारा,
विदिशा-विभव विलोकि अपारा,
निरखेउ उत्तरविंध्य प्रदेशा,
दुर्गम, निविड़ अरण्य अशेषा।
दीपित दिनकर कतहुँ पहारा,
कहुँ दरि कन्दर चिर अँधियारा।
कहुँ कहुँ नभ-चुम्बन-अभिलाषी,
उन्मुख, प्रांशु शाल तरु-राशी।
कहुँ कहुँ अतल गर्त भय-दाता,
लय जनु विभु वराह-उत्खाता।

शिला-खण्ड कहुँ, कहुँ मणि-आकर,
कहुँ मनोज्ञ गिरि, कतहुँ भयंकर।

दोहा :— करि भोजन विश्राम हरि, लखि नभ उदित मयंक,
लागे हाँकन आपु रथ, प्रविशे गहन अशंक। ६४

नील शैल, वन नील विशाला,
नभहु लसत जनु नील तमाला।
शाखा प्राची दिशा-विभागा,
उदित कलाधर किसलय लागा।
मज्जित रश्मि-धार यदुरायी,
पुलकित स्यन्दन रहे चलायी।
चढ़ी नियामा जस जस प्रति क्षण,
सुप्त ग्राम पुर, जागेउ कानन।
नाना शब्द स्वरन वन छावा,
कहुँ मृदु रव, कहुँ भीम विरावा।
निकसे श्वापद अगणित जाती,
शूकर, शरभ, महिष, मृग-पाँती।
विहरत कानन कुञ्जर-वृन्दा,
पाकर भंजि चरत सानंदा।
लहि शाद्वल शम्बरि-समुदायी,
सचकित शावक रहीं चरायी।

दोहा :— *सहसा गिरि, वन, कन्दरा, व्यापेउ दारुण रोर,*
हरि केहरि-गर्जन सुनेउ, श्रुति-उन्माथी, घोर। ६५

सिहरे त्रस्त सकल वन-प्राणी,
चपल मृगावलि विकल परानी।
विह्वल शम्बरि मुख-तृण त्यागी,
स्रवत फेन शावक लै भागी।
भयेउ पलायित न्यंकु-सँघाता,
खरभर शीर्ण शुष्क वन-पाता।

नाना वर्ण परिच्छद-धारी,
नर्तत तरु-वितान मनहारी।
विमल व्योम, जल-स्वाद-सुपासा,
प्रकटत स्वरन प्राण-उल्लासा।
कहुँ पारावत कूक सोहायी,
कहुँ महोक-कुक्कुट-ध्वनि छायी।
स्वर्णिम वक्ष, पक्ष अति कारे,
विचरत पीलक कतहुँ सुसारे।
गावत कतहुँ हरेवा उपवन,
कूजत भृंगराज कहुँ कुजन।
उड़त विशिख सम शुक बहुरंगा,
थिरकत कतहुँ हरित पतरंगा।
गावत कहुँ खंजन मदमाते,
बोलत कतहुँ लाल रँग-राते।

दोहा:—*गाय मधुर श्यामा रही, महि बहाय स्वर-धार,*
बरसत भारद्वाज नभ, आनँद-पारावार। ६२

थल-थल नव नव प्रकृति-स्वरूपा,
पल-पल धारति वेष अनूपा।
लखत उल्लसित हलधर श्यामू,
मनहर थलन करत विश्रामू।
यहि विधि चर्मण्वति करि पारा,
विदिशा-विभव विलोकि अपारा,
निरखेउ उत्तरविन्ध्य प्रदेशा,
दुर्गम, निबिड़ अरण्य अशेषा।
दीपित दिनकर कतहुँ पहारा,
कहुँ दरि कन्दर चिर अँधियारा।
कहुँ कहुँ नभ-चुम्बन-अभिलाषी,
उन्मुख, प्रांशु शाल तरु-राशी।
कहुँ कहुँ अतल गर्त भय-दाता,
लय जनु विभु वराह-उत्खाता।

शिला-खण्ड कहुँ, कहुँ मणि-आकर,
कहुँ मनोज्ञ गिरि, कतहुँ भयंकर।

दोहा :— *करि भोजन विश्राम हरि, लखि नभ उदित मयंक,*
लागे हाँकन आपु रथ, प्रविशे गहन अशंक। ६४

नील शैल, वन नील विशाला,
नभहु लसत जनु नील तमाला।
शाखा प्राची दिशा-विभागा,
उदित कलाधर किसलय लागा।
मज्जित रश्मि-धार यदुरायी,
पुलकित स्यंदन रहे चलायी।
बढ़ी त्रियामा जस जस प्रति क्षण,
सुप्त ग्राम पुर, जागेउ कानन।
नाना शब्द स्वरन वन छावा,
कहुँ मृदु रव, कहुँ भीम विरावा।
निकसे श्वापद अगणित जाती,
शूकर, शरभ, महिष, मृग-पाँती।
विहरत कानन कुञ्जर-वृन्दा,
पाकर भंजि चरत सानंदा।
लहि शाद्वल शम्बरि-समुदायी,
सचकित शावक रहीं चरायी।

दोहा :— *सहसा गिरि, वन, कंदरा, व्यापेउ दारुण रोर,*
हरि केहरि-गर्जन सुनेउ, श्रुति-उन्माथी, घोर। ६५

सिहरे त्रस्त सकल वन-प्राणी,
चपल मृगावलि विकल परानी।
विह्वल शम्बरि मुख-तृण त्यागी,
स्रवत फेन शावक लै भागी।
भयेउ पलायित न्यंकु-सँघाता,
खरभर शीर्ण शुष्क वन-पाता।

भागे करि-निकरहु चिग्घारी,
मेघाकार स्रवत मद-वारी।
भागत भीत शृगाल हुआने,
घुर्घुरात वाराह पराने।
कीन्ह तरक्ष तीक्ष्ण चीत्कारा,
ध्वनित विपिन, प्रतिध्वनित पहारा।
व्याकुल विटप विहग-समुदायी,
असमय केका-ध्वनि वन छायी।
टिटिभहु तजि निज नीड उडाना,
प्रति पल सिंह-नाद नियराना।

दोहा :— *अकस्मात तुरगहु अडे, खुरत, खूँदि फुफुवात,*
देखेउ वनचर राम कोउ, आवत दुरत सघात। ८६

पुनि सुस्पष्ट लखेउ शार्दूला,
मानहुँ सचल लोध्र द्रुम फूला।
लखे बहुरि भय-ग्रस्त तुरगा,
निकटहिं सारथि-चाप-निषंगा।
निमिषहिं महँ शर धनुष चढावा,
कर्षि कर्ण-पर्यन्त चलावा।
गिरेउ दहारि क्रूर, रिस-राता,
ध्वसि शिला नख-दंष्ट्राघाता।
राखि हरिहिं स्यंदन बलरामा,
आये चलि सत्वर तेहि ठामा।
लखेउ मृगेन्द्र आर्त म्रियमाणा,
कर्षत बाण परेउ निष्प्राणा।
तेहि क्षण वन कोलाहल छावा,
हय-पद-रव पुनि श्रुति-पथ आवा।
मृगया-शब्द-ध्वनित कान्तारा,
लखे पाँच उतरत असवारा।

दोहा :— *बंधु विन्द अनुविन्द दोउ, तनय अवन्ति भुआल,*
रुक्मि विदर्भ-नरेश-सुत, दंतवक्र, शिशुपाल। ८७

भागे करि-निकरहु चिग्घारी,
मेघाकार सबल मद-वारी।
भागत भीत श्रृगाल हुआने,
घुर्घुरात वाराह पराने।
कीन्ह तरच्छ तीक्ष्ण चीत्कारा,
ध्वनित विपिन, प्रतिध्वनित पहारा।
व्याकुल विटप विहग-समुदायी,
असमय केका-ध्वनि वन छायी।
टिटिभहु तजि निज नीड़ उड़ाना,
प्रति पल सिंह-नाद नियराना।

दोहा:— *अकस्मात तुरगहु अड़े, सुरत, सूँदि फुफुनात,*
देखेउ वनचर राम कोउ, आवत दुरत सघात। ८६

पुनि सुस्पष्ट लखेउ शार्दूला,
मानहुँ सचल लोध्र द्रुम फूला।
लखे बहुरि भय-ग्रस्त तुरंगा,
निकटहिं सारथि-चाप-निषंगा।
निमिषहि महँ शर, धनुष चढ़ावा,
कर्षि कर्ण-पर्यन्त चलावा।
गिरेउ दहारि क्रूर, रिस-राता,
ध्वसि शिला नख-दंष्ट्राघाता।
रारि हरिहिं स्यंदन बलरामा,
आये चलि सत्वर तेहि ठामा।
लखेउ मृगेन्द्र आर्त म्रियमाणा,
कर्षत बाण परेउ निष्प्राणा।
तेहि क्षण वन कोलाहल छावा,
हय-पद-रव पुनि श्रुति-पथ आवा।
मृगया-शब्द-ध्वनित कान्तारा,
लखे पाँच उतरत असवारा।

दोहा:— *बंधु विन्द अनुविन्द दोउ, तनय अवन्ति भुआल,*
रुक्मि विदर्भ-नरेश-सुत, दंतवक, शिशुपाल। ८७

मृगयार्थी, सम वय, वपु, वेषा,
मृत मृगपति लखि रोष अशेषा।
रामहिं जानि सिंह-हन्तारा,
कुपित चेदि-पति वचन उचारा—
"को तैं धृष्ट, नराधम व्याधा?
दीन्ही कस नृप-मृगया बाधा?
कीन्ह न खल निज-परहु विचारा,
मम शर-आहत केहरि मारा।"
सुने वचन कटु हलधर मानी,
भाषी क्रुद्ध तीव्रतर वाणी—
"वनचर सिंह व्याघ्र खल! ताके,
भुज विक्रम, उर साहस जाके।
सोवत कंदर सिंह जगायी,
हनत प्रचारि शूर समुहायी।
निकसे निशि तुम, दासहु साथा,
सके न तबहुँ निहति मृगनाथा!

दोहा:—*मैं यात्री, रक्षार्थ निज, वधेउँ एक ही बाण,*
चहहु कुशल तौ जाहु गृह, तजि नृपत्व-अभिमान।" ६८

दंतवक्र सुनि रोष दुरायी,
बोलेउ कपटी सन्मुख आयी—
"बरने सब तुम निज गुण-ग्रामा,
अब लगि कहेउ न कुल निज नामा।"
हलधर जैसेहिं परिचय दीन्हा,
अट्टहास सुनि रुक्मी कीन्हा।
कहि आभीर, घोष, गोपाला,
भाषे पुनि कुशब्द शिशुपाला।
ताही क्षण बढ़ाय निज स्यंदन,
पहुँचे विग्रह-थल यदुनंदन।
सुत अनुविंद विंद पहिचानी,
रोकी रारि अवन्ती-रानी।

दीन्हेउ परिचय कहि कहि नामा,
पूछि कुशल हरि कीन्ह प्रणामा।
विनय शील बहु प्रभु दरसावा,
तजेउ न खलन तबहुँ दुर्भावा।

दोहा :— *मृगया-शिविरन तेहि निशा, निवसे हरि तिन संग,*
बढ़ेउ तिलहु सौहार्द नहिं, उपजे वैर-प्रसंग। ९९
प्रात मुहूर्त सजाय रथ, मालव-महिषी साथ,
मृगया-व्यसनी नृप-सुतन, तजि गवने यदुनाथ। १००

पहुँचे प्रभु उज्जयिनी प्राता,
पुरी पुरारि विश्व-विख्याता।
दूरिहि ते देखेउ प्राकारा,
धवल, विशाल, मण्डलाकारा।
जानि मनहुँ गिरिजा-पति-वासा,
मिस प्राकार बसेउ कैलासा।
पुरी-भृकुटि सम सतत तरंगिणि,
लखी बहुरि सिप्रा सरि पावनि।
सकी न जनु शिव-संग विहायी,
बही जाह्नवी मालव आयी।
तट शोभित वन उपवन नाना,
दोलित वीचि-वात उद्याना।
निरखत, नगर-द्वार करि पारा,
महा विपणि-पथ श्याम निहारा।
रजत, स्वर्ण, मणि, मौक्तिक-ढेरी,
अविचल होत विलोचन हेरी।

दोहा :— *शिव-प्रसाद श्री-सँग बसति, शारद वैर-विहीन,*
मनुजहि नहि, शुक-सारिकहु, शास्त्र-विचार-प्रवीण। १०१

सोरठा :— *उज्जयिनी-यश-धाम, महाकाल-दर्शन करत,*
प्रविशे हलधर श्याम, प्रमुदित मालव-पति सदन।

दीन्हेउ परिचय कहि कहि नामा,
पूछि कुशल हरि कीन्ह प्रणामा।
विनय शील बहु प्रभु दरसावा,
तजेउ न खलन तबहुँ दुर्भावा।

दोहा:— *मृगया-शिविरन तेहि निशा, निवसे हरि तिन संग,*
बढ़ेउ तिलहु सौहार्द नहिं, उपजे बैर-प्रसंग। ९९
प्रात मुहूर्त सजाय रथ, मालव-महिषी साथ,
मृगया-व्यसनी नृप-सुतन, तजि गवने यदुनाथ। १००

पहुँचे प्रभु उज्जयिनी प्राता,
पुरी पुरारि विश्व-विख्याता।
दूरिहि ते देखेउ प्राकारा,
धवल, विशाल, मण्डलाकारा।
जानि मनहुँ गिरिजा-पति-वासा,
मिस प्राकार बसेउ कैलासा।
पुरी-भृकुटि सम सतत तरंगिणि,
लखी बहुरि सिप्रा सरि पावनि।
सकी न जनु शिव-संग विहायी,
बही जाह्नवी मालव आयी।
तट शोभित वन उपवन नाना,
दोलित वीचि-वात उद्याना।
निरखत, नगर-द्वार करि पारा,
महा विपणि-पथ श्याम निहारा।
रजत, स्वर्ण, मणि, मौक्तिक-ढेरी,
अविचल होत विलोचन हेरी।

दोहा:— *शिव-प्रसाद श्री-संग बसति, शारद बैर-विहीन,*
मनुजहि नहि, शुक-सारिकहु, शास्त्र-विचार-प्रवीण। १०१

सोरठा:—*उज्जयिनी-यश-धाम, महाकाल-दर्शन करत,*
प्रविशे हलधर श्याम, प्रमुदित मालव-पति सदन।

लखेउ अवन्ति-पतिहिं यदुरायी,
रुग्ण, वृद्ध अति, शय्या-शायी।
तदपि वच्च तनु भव्य, विराटा,
भुज आजानु, प्रशस्त ललाटा।
वक्ष विशाल, वदन द्युति-खानी,
कहत पूर्व श्री-शौर्य-कहानी।
आदर उर अवलोकत जागा,
प्रणमत पद नयनन अनुरागा।
कहेउ सुनाय वृत्त सब रानी,
लखि हरि-मुख तनु-व्यथा भुलानी।
'वत्स ! तात !' कहि दीन्हि असीसा,
बोलेउ हृदय लगाय महीशा—
"जब ते सुनेउँ कंस-अवसाना,
यदुकुल-तिलक तुमहिं मैं माना।
पूजहिं मम अभिलाष त्रिलोचन,
होहु तात मगपति-मद-मोचन।"

दोहा :— *कहि कहि प्रिय शत अवनि-पति, दीन्ह सुखद आवास,*
तजत कक्ष हरि बाल इक, लखी जाति नृप पास। १०२

कुँवरि मित्रविन्दा वर वामा,
नृप प्रिय सुता, रूप अभिरामा।
कनक-लता तनु-यष्टि सोहायी,
आनन शरद्-इन्दु-छबि छायी।
नयन विशाल भ्रमत लगि श्रवणन,
अंजन-रज्जु-बद्ध जनु खंजन।
चितवति तरल विलोचन जेही,
मज्जति सुधा-उदधि जनु तेही।
परसति पद प्रवाल जहँ वामा,
झरत सहस सरसिज तेहि ठामा।
उडत वसन अँग गवनति कामिनि,
औचक दमकि जाति जनु दामिनि।

लखेउ अवन्ति-पतिहिं यदुरायी,
रुग्ण, वृद्ध अति, शय्या-शायी।
तदपि वक्ष तनु भव्य, विराटा,
भुज आजानु, प्रशस्त ललाटा।
वक्ष विशाल, वदन द्युति-खानी,
कहत पूर्व श्री-शौर्य-कहानी।
आदर उर अवलोकत जागा,
प्रणमत पद नयनन अनुरागा।
कहेउ सुनाय वृत्त सब रानी,
लखि हरि-मुख तनु-व्यथा भुलानी।
'वत्स! तात!' कहि दीन्हि असीसा,
बोलेउ हृदय लगाय महीशा—
"जब ते सुनेउँ कंस-अवसाना,
यदुकुल-तिलक तुमहिं मैं माना।
पूजहिं मम अभिलाष त्रिलोचन,
होहु तात मगपति-मद-मोचन!"

दोहा :— *कहि कहि प्रिय शत अवनि-पति, दीन्ह सुखद आवास,*
तजत कक्ष हरि बाल इक, लखी जाति नृप पास। १०२

कुँवरि मित्रविन्दा वर वामा,
नृप प्रिय सुता, रूप अभिरामा।
कनक-लता तनु-यष्टि सोहायी,
आनन शरद्-इन्दु-छवि छायी।
नयन विशाल भ्रमत लगि श्रवणन,
अंजन-रज्जु-बद्ध जनु खंजन।
चितवति तरल विलोचन जेही,
मज्जति सुधा-उदधि जनु वेही।
परसति पद प्रवाल जहँ वामा,
झरत सहस सरसिज तेहि ठामा।
उड़त वसन अँग गवनति कामिनि,
औचक दमकि जाति जनु दामिनि।

"बार असंख्य हमहिं मगधेशा,
पठये यहि विधि दूत, सँदेशा।
अन्त अवन्ति-शक्ति पहिचानी,
रहेउ चुपाय सतत अभिमानी।
हरि, हलधर-बल, शौर्य अशेषा,
सकत न जीति इनहिं मगधेशा।
सकहिं जो हम श्यामहिं अपनायी,
रहिहै नहिं अवन्ति असहायी"।
मधुपुर जस मैं हरिहिं निहारा,
उपजेउ सहसा हृदय विचारा।
श्याम मित्रविन्दा छवि-खानी,
विरचे विधि सँयोग मन ठानी।

दोहा :— *शिव-गिरिजा, विभुसिन्धुजा, मन्मथ-रति अनुरूप,*
*काञ्चन-मणिहु सँयोग सम, यह सम्बन्ध अनूप।"*१०५

नीति, नेह-युत रानी-वाणी,
सुनी नरेश्वर उर सुख मानी।
विगत ताप, मानस नव चाऊ,
बोलेउ हरि-छवि-मोहित राऊ—
"आये आपु श्याम मम धामा,
प्राङ्गण पारिजात जनु जामा।
सकत समीप जो नर मधु पायी,
सो कि कबहुँ वन खोजन जायी?
पै आने बिनु तनया-भावा,
उचित न करब हरिहिं प्रस्तावा।
औरहु भय इक मम मन माहीं,
करहिं विरोध सुवन कहुँ नाहीं।
जब लगि गुरुकुल श्याम-निवासा,
करहु न उर-गत-भाव प्रकाशा।
होत समावर्तन संस्कारा,
करिहौं यहरि विवाह-विचारा।"

का अचरज खल-दृष्टि बरायी,
राखे सुत नँद-गेह दुरायी।
नारद अखिल आर्ष कुल-टीका,
सकत न कहि ते बात अलीका।
कंस-सभा नृप, प्रजहिं सुनायी,
प्रकटेउ जन्म-वृत्त मुनिरायी।

दोहा :— *समदर्शी, निष्काम हरि, नहिं विभूति ते प्रीति,*
त्यागत कर-गत राज्य जो, सो कि करत अनरीति!"१०८

यहि विधि कहि कहि मंजुल वाणी,
बोधे विविध भाँति सुत रानी।
तबहुँ करत हरि-हलधर-निंदा,
तजी न निज हठ विँद अनुविंदा।
पुनि पुनि खलन सोइ रट लागी,
'गवनहिं गोप अवन्ती त्यागी।'
सकेउ न धैर्य अधिक नृप राखी,
गिरा कठोर वज्र सम भाखी—
"मम जियतहिं तुम कुल-यश-घाती,
बेंचत रिपु-कर पैतृक थाती।
अधम मगधपति-सेवा लागी,
चहत देन निज स्वजनन त्यागी।
वृद्ध अशक्त जदपि मैं आजू,
मोरहिं अबहुँ धाम, धन, राजू।
रखिहौं हरिहिं पुरी अपनायी,
रुचै जो तुमहिं करहु सो जायी।

दोहा :— *प्रिय स्वतंत्रता-क्लेश जेहि, तेहि पै वारहुँ प्राण,*
प्रिय दासत्व-विभूति जेहि, सुतहु सो गरल समान!" १०९

सुनि सुत-पितु-विवाद विकराला,
आयेउ समुझावन शिशुपाला।

सतत पाठ-श्रवण-अभ्यासी,
शुकहु पढ़त श्रुति आश्रम-वासी।
जानि पुण्य तप-महि नियरानी,
त्यागेउ सत्वर स्यंदन रानी।

दोहा :— *अर्घ्य पुष्प, स्वागत-वचन, खग-स्वर, अलि-गुंजार,*
सींसेउ शाखिहु नत फलन, मनहुँ अतिथि-सत्कार। १११

कीन्हेउ आश्रम श्याम प्रवेशा,
नहिं जहँ अनृत, न राग, न द्वेषा।
परी न जहाँ मनोभव-छाया,
जहाँ सकल निर्मल मन काया।
पढ़त जहाँ कोउ वेद, पुराणा,
सीखत कहुँ कोउ यज्ञ-विधाना।
धर्मशास्त्र व्याख्या कहुँ होई,
दर्शनशास्त्र पढ़त कहुँ कोई।
रहेउ सिखाय कतहुँ कोउ योगा,
धनुर्वेद कहुँ सहित प्रयोगा।
कला शास्त्र नहिं अस जग माहीं,
पढ़त जाहि वटु आश्रम नाहीं।
गुरुकुल मध्यस्थल पुनि जायी,
अवलोके कुलपति यदुरायी।
शोभित वट-छाया सान्दीपनि,
मूर्ति जगन्मङ्गल, अति पावनि।

दोहा :— *शैल-अचल, जलनिधि-गहिर, रवि सम तेजोधाम,*
तपस-कोप, विज्ञान-निधि, सत्य-सखा, निष्काम। ११२

मुनि-पत्निहु देखी यदुनाथा,
स्वाहा जनु यज्ञानल साथा।
अवनत मस्तक मुनि-पद रानी,
बंदे पत्नी-सह सुख मानी।

दोहा :— *खेलत मातु विहाय निज, सिंह-शावकन संग,*
मुदित सिंहनी पय पियत, निर्भय शाव कुरंग। ११४

नेह दशहु दिशि आश्रम छावा,
केवल विषयन प्रति रिपु-भावा।
सर्पी सकल, क्रोध सब त्यागा,
केवल शुकन माहिं मुख-रागा।
गर्व न बसत काहु उर माहीं,
त्यागि ताल-तरु मद कहुँ नाहीं।
सरसति नित सर्वत्र मृदुलता,
तजि कुशाग्र नहिं कतहुँ तीक्ष्णता।
प्रणय-सूत्र जुरि चटकत नाहीं,
चटकनि केवल कलियन माहीं।
रहत बुद्धि मन सतत अचंचल,
चंचल वन कदली दल केवल।
ज्ञान-लोभ तजि कतहुँ न लोभा,
पर-दुःखहि लखि उपजत छोभा।
विमल-चरित तरु पशुहु लखाहीं,
तजि हवि-धूम मलिन कछु नाहीं।

दोहा :— *गुरु दयालु, श्रद्धालु बटु, वहाँ विनय, यहँ नेह,*
सान्दीपनि-आश्रम सदा, बरसत आनँद-मेह। ११५

सोरठा :— *गुरुकुल अमल अकास, मधुर कलाधर सम उदित,*
बाढ़े विनहि प्रयास, कृष्णचंद्र लहि नित कला।

ब्रह्मचर्य-नियमन अपनायी,
व्रत अध्ययन मगन यदुरायी।
दुहुँ संध्या रवि अग्नि उपासी,
गुरु-पद वंदि वेद-अभ्यासी।
श्रुति-पुट पियत वचन-पीयूषा,
पुलकित रोम रोम शुश्रूषा।

ईंधन लखि न एक दिन धामू,
मुनि पत्नी वन पठये श्यामू।
गये सुदामहु हरि सँग लागी,
विचरत वन वटु गुरु-अनुरागी।
सईंतत शुष्क काष्ठ चहुँ ओरा,
प्रविशे क्रम क्रम कानन घोरा।
प्रौढ शिशिर, नभ घन नीहारा,
भूतल सर्ज, शाल-विस्तारा।
जम्बू, तिन्दुक, शाक, रसाला,
हरित पत्र शिर छत्र विशाला।
विकसित कुन्द, फलिनि खिलि फूली,
लहि अलि-अवलि लवलि झुकि भूली।
कर्मद-सुरभित दिशा-विभागा,
पाण्डु वर्ण वन लोध्र-परागा।
सलिल स्वल्प सर, सव-खग नाना,
करत कोलाहल विविध विधाना।

दोहा:—*विहरत कारण्डव, वरट, चक्रवाक, मजोर,*
कुशल किलकिला मीन गहि, उडत, न सलिल हिलोर। ११८

रम्य विपिन, खग-स्वर मनहारी,
शिशिर वनानिल श्रम-अपहारी।
काष्ठ यथेष्ट सँजोय सुसारे,
लखे न सघन गगन घन कारे।
जैसेहि धरि शिर ईंधन-भारा,
अभिमुख आश्रम-पथ पगु धारा।
लय-गति वही वायु विकराला,
गरजी अतराल घन-माला।
विद्युत-वेलि फैलि नभ व्यापा,
तड़क कडक भूमडल काँपा।
उपल-वृन्द महि विपुलाकारा,
वरसे शिलासार, दुर्वारा।

गुरु-दक्षिणा-हेतु कर जोरी,
बोले वचन भक्ति-रस बोरी—
"गत-करतल फल विल्व समाना,
तात-प्रतोलित विश्व-विधाना।
जानि अतथ्य अर्थ सब त्यागे,
एक परार्थ नाथ अनुरागे।
वाञ्छा-छायहु छुयेउ न जाही,
वस्तु प्रदेय काह जग ताही?
तदपि छात्र हित शास्त्र-प्रमाणा,
विनु दक्षिणा सफल नहिं ज्ञाना।
हृदय हमारहि हित धरि देवा!
देहु निदेश करहिं कछु सेवा।"

दोहा :—*विनय-मधुर मुनि सुनि वचन, लखि सस्पृह हरि ओर,*
सानुराग भाषी गिरा, सजल अचल दृग-कोर—१२१

"सुदिन, सुतिथि, ते क्षणहु सोहाये,
उदित भाग्य मम जब तुम आये।
साधत योग जो ध्यान न आवा,
विनु प्रयास सोइ लोचन पावा।
बीतेउ जीवन त्रयी पढ़ावत,
समुझी सोउ तुमहिं समुझावत।
गुरु तुम्हार! जग जन लेखे,
जग-गुरु तुमहिं माहिं देखे।
ब्रह्मचर्य आदर्श सिखावन,
आये शिष्य-वेष तुम पावन!
लोकाचार महँ अपनायी,
लीन्हि तुम ते नित सेवकाई
तुम मम तप-फल तात! सदेहा,
अबहुँ कि कछु अभाव मम गेहा?
आर्ष-विधान तदपि सत्कारी,
निज सकल्प कहहुँ [illegible]

वदी अन्य मगधपति-गेहा,
निवसत मानहुँ नरक सदेहा।
लहि वदी शत नृप-कुल-दीपा,
देहै नरवलि मगध महीपा।
प्रजा, अवनिपति, मुनिजन सारे,
लखि लखि संस्कृति-ह्रास दुखारे।

दोहा :— *दिव्य शौर्य, धृति, नीतियुत, तुमहि भरत-महि आस,*
आर्य-राज्य थापहु वहुरि, करि नृशंस अरि-नाश।"१२४

सुनि हरि मुनिवर-गिरा उदारा,
मन प्रमोद, मुख वचन उचारा—
"पर-हित-रत तुम त्याग-स्वरूपा,
गिरा तुम्हारि तुमहि अनुरूपा।
तात-निदेश शीश मैं धारा,
होय पूर्ण अभिलाष तुम्हारा।
विनती तदपि मोरि प्रभु पाहीं,
यहि महँ कछु गुरु-सेवा नाहीं।
करि हम प्रथमहि कंस-सँहारा,
मगधपतिहिं रण हेतु प्रचारा।
करिहै सोउ आक्रमण सत्वर,
होइहै मधुपुर समर भयकर।
हम क्षत्रिय, वह अघ-पथ-गामी,
मम कर्तव्य तासु वध स्वामी।
ताते दै कछु निज सेवकाई,
करहु कृतार्थ हमहिं मुनिरायी।"

दोहा — *लखि सनेह, आग्रह अमित, कहेउ विरत मुनिराज—*
"गुरु-पत्नी ते पूछि दोउ, करहु कहहि जो काज।"१२५

मुदित वधु मुनि-पत्निहिं जायी

श्रवणन एकहि रव विकरारा,
मुग्ध दृगन एकहि आकारा।
दिशि, विदिशा, वसुधा, आकाशा,
विश्व समस्त सलिल-मय भासा।

दोहा :— *हरि-चरणोदक नीरनिधि, विरहज हाहाकार,*
गुनि जनु लय बिनु नहिं मिलन, करत युगान्त-गोहार। १२८

सोरठा :— *तजि स्यंदन जगदीश, सहसा लखि महि पद धरत,*
चिर विरही वारीश, लहरेउ उमहि सहस्र-गुण।

प्रसरित अगणित बाहु-तरंगा,
मणि वैडूर्य विमल जल-अंगा।
शिर महोर्मि, श्रुति रविमणि कुण्डल,
विलसत हृदय हार वडवानल।
पल्लव पारिजात परिधाना,
श्री-शशि-सोदर भूषण नाना।
दण्ड चन्द्रमणि मुक्तन-पोहा,
फेनिल छत्र स्वच्छ शिर सोहा।
दोलत चामर सप्त प्रभंजन,
शैलाकार तिमिङ्गिल वाहन।
रत्न-दीप्त, धृत स्वस्तिक-लाञ्छन,
मण्डल-बद्ध भुजंगम परिजन।
सुता धरित्री, सुत निशिनाथा,
सुरसरि-प्रमुख सरित तिय साथा।
चरण पसारि पलटि लहराना,
प्रविशे सिन्धु-सदन भगवाना।

दोहा :— *जस-जस जलनिधि तल धँसे, सलिल-राशि नीलाभ,*
भानु-विभा-भासित भयौ, अधिक अधिक हरिताभ। १२९

धूमल भयेउ दृश्य पुनि सारा,
रुद्ध अंशुमत-रश्मि प्रसारा।

जे सांयात्रिक भारतवासी,
लौटत लै विदेश-धन-राशी,
करि सहसा आक्रमण भयावन,
हरत आर्य-धन म्लेच्छ उपावन।

दोहा :— दुरि कबहूँ मम कूल-जल, शिशु लै जात चोराय,
देत यंत्रणा भाँति बहु, रासत दास बनाय। १३१

कबहुँ स-बल तट-महि चढ़ि धावत,
लूटि धान्य-धन ग्राम नसावत।
जदपि सुमति मम कूल-निवासी,
अल्प-प्राण वाणिज्य-उपासी।
निवसत मध्यदेश-महि वीरा,
त्यागि अरक्षित मोहिं, मम तीरा।
बढ़ी शक्ति नित म्लेच्छन केरी,
लीन्हेउ पश्चिम-तट अब घेरी।
रहेउँ पुण्य महि परिखा-रूपा,
भयेउँ दस्यु-हित द्वार-स्वरूपा।
मैं सछिद्र अब जिमि हिमवन्ता,
सकहुँ रोकि नहिं म्लेच्छ दुरन्ता।
हिमगिरि-रक्षण हेतु नरेशा,
जब तब करत प्रयत्न विशेषा।
भयेउ न अब लगि नृप मतिमाना,
करत मोहिं जो अभय प्रदाना।

दोहा :— भारत-महि उद्धार-हित, लीन्ह नाथ अवतार,
मोरहु संरक्षण करहु, गुनि मोहि भारत-द्वार। १३२

वरुण-कृपा मैं जानत नाथा,
आये जेहि लगि अग्रज साथा।
दैत्य कराल पंचजन नामा,
बसत मध्य मम करि निज धामा।

दोहा :— प्रिय सखि-दुख मैं दुःखिता, सकी न कहि मुख 'नाहिं',
भयेउ भाग्य-निर्णय विपम, अटल एक पल माहिं।" १३७

व्यथा-कथा कहि व्याकुल विन्दा,
निर्झर नीर नयन-अरविन्दा।
जननी सुता-मनस्थिति जानी,
रहि छण मौन कही शुचि वाणी—
"वचन जो सखी-संग तुम हारा,
पालव पावन धर्म तुम्हारा।
निश्चय विभु नर-तनु यदुरायी,
लाये गुरु-सुत यमपुर जायी।
निस्नेही, निर्मम, निष्कामा,
नहिं विनु भक्ति मिलत घनश्यामा।
हरि प्रति ताराप्रीति तुम्हारी,
रुक्मिणि अलख भक्ति उर धारी।
चक्षुराग अनुराग न साँचा,
नहिं तेहि माहिं सुजन-मन राँचा।
कहिहौं हरिहिं सखी-सन्देशू,
मिलिहैं हरि तेहि मोहिं न अँदेसू।

दोहा :— तुमहु सखी-सम भजि गुणन, सकत पाय यदुनाथ,
शशि एकहि निशि नलिनि दोउ, करत समान सनाथ।" १३८

सोरठा :— पतिहि सुनायेउ जाय, सुता-वृत्त पुनि रानि सव,
ताही छण यदुराय, प्रविशे सामज नृप-सदन।

मिली रानि वात्सल्य-विहाला,
करि स्वागत उल्लसित भुआला।
दम्पति प्रकटि प्रीति सन्माना,
राखे भवन राम भगवाना।
विगत दिवस कछु, हरि-प्रति रानी,
वरनी रुक्मि[illegible]

ललित कपोल न पाटल-रागा,
सुमन-हास्य पत्राधर त्यागा।
दृष्टि सदा आनंद तरंगिणि,
शोण, उराग्नि-वाष्प-निष्यंदिनि।

दोहा :— *अन्तर्गूढ विषाद-घन, छादित हृदयाकाश,*
भयी नष्ट सहसा मनहुँ, प्राणाधिक अभिलाष। १३४

दशा विलोकि विकल अति रानी,
गवनी सुता-सदन बिलखानी।
पूछेउ वृत्त लेत मन थाहा,
बहेउ कुँवरि-दृग सलिल-प्रवाहा।
वृन्त-छिन्न किसलय अनुहारी,
मूर्छित मातु-अङ्क सुकुमारी।
सुता सँभारि अम्ब उर लायी,
जागी नेह-सुधा जनु पायी।
मृदु बैनन जननी समुझावा,
क्रम-क्रम लज्जावरण हटावा।
कही मित्रविन्दा सब गाथा,
जेहि विधि भवन लखे यदुनाथा।
जित-मनसिज हरि-छवि अभिरामा,
बसी अमिट जेहि विधि हृद्धामा।
"मिलिहैं कबहुँ मोहिं बनवारी,
गइउँ विदर्भ साध उर धारी।

दोहा :— *निरखी सखि उत प्राण-प्रिय, रुक्मिणि छवि-गुण-धाम,*
नारद-मुख सुनि हरि-सुयश, जपति दिवसनिशि नाम। १३५

अर्पित हरि-पद तन-मन-प्राणा,
पूजति हरिहि, धरति हरि-ध्याना।
सुनि जन्मे कारा- असुरारी,
तीर्थराज तेहि कहति कुमारी।

महत भक्ति-आश्वास-आयतन,
पूर्णकाम लखि भूप, प्रजाजन।

दोहा:— *क्रस-भीति-परित्यक्त पुर, बहुरेउ स्वजन-समाज,*
मधुपुर सुर-दुर्लभ जुरेउ, ऋद्धि, सिद्धि, सुख-साज। १४०

एक दिवस हरि बंधु बोलायी,
कहेउ, "चलहु ब्रज देखहिं जायी।
गोपी, गोप, वत्स, प्रिय धेनू,
मिलहिं समोद बजावहिं वेणू।
बसि कछु दिन, करि मातु सुखारी,
फिरहिं बुझाय वियोग-दवारी।"
लोचन जल सुनतहि ब्रज-नामा,
"आजुहि चलिय,"—कहत बलरामा।
"चलब प्रात,"—जस कहेउ ब्रजेशा,
कीन्हेउ उद्धव कक्ष प्रवेशा।
लखि अमात्य-मुद्रा गभीरा,
जानेउ मर्म सर्व यदुवीरा।
चितै सचिव तन कह मुसकायी—
"जरासंध जनु कीन्हि चढ़ायी!"
नीति-शास्त्र-निर्मल-मन उद्धव,
प्रमुदित निरखि स्वामि-बुधि-वैभव।

दोहा :— *"प्रभु इंगित-आकार-विद, ज्ञान-भानु-आवास,*
सुमति सर्वतोमुखि करति, अमर-गुरुहु उपहास। १४१

सोरठा:— *सत्य स्वामि अनुमान, आवत सजि धजि मगधपति,*
अरि प्रलयाग्नि समान, रच्छहु विक्रम-वारिनिधि।"
दीन्ह धैर्य धृति-सिन्धु, कहि करिहौं कर्तव्य जो,
कहेउ हेरि पुनि बंधु, "दुर्लभ अब मोहिं ब्रज-दरस।"

उत विशाल बल वाहिनि साथा,
धावत मधुपुर दिशि मगनाथा।

महत भक्ति-आश्वास-आयतन,
पूर्णकाम लखि भूप, प्रजाजन।

दोहा:—कंस-भीति-परित्यक्त पुर, बहुरेउ स्वजन-समाज,
मधुपुर सुर-दुर्लभ जुरेउ, ऋद्धि, सिद्धि, सुख-साज। १४०

एक दिवस हरि बंधु बोलायी,
कहेउ, "चलहु व्रज देखहिं जायी।
गोपी, गोप, वत्स, प्रिय धेनू,
मिलहिं समोद बजावहिं वेणू।
बसि कछु दिन, करि मातु सुखारी,
फिरहिं बुझाय वियोग-दवारी।"
लोचन जल सुनतहि व्रज-नामा,
"आजुहि चलिय,"—कहत बलरामा।
"चलब प्रात,"—जस कहेउ व्रजेशा,
कीन्हेउ उद्धव कक्ष प्रवेशा।
लखि अमात्य-मुद्रा गंभीरा,
जानेउ मर्म सर्व यदुवीरा।
चितै सचिव तन कह मुसकायी—
"जरासंध जनु कीन्हि चढ़ायी!"
नीति-शास्त्र-निर्मल-मन उद्धव,
प्रमुदित निरखि स्वामि-बुधि-वैभव।—

दोहा:—"प्रभु इंगित-आकार-विद, ज्ञान-भानु-आवास,
सुमति सर्वतोमुखि करति, अमर-गुरुहु उपहास। १४१

सोरठा:—सत्य स्वामि अनुमान, आवत सजि घजि मगधपति,
अरि प्रलयाग्नि समान, रच्छहु विक्रम-वारिनिधि।"
दीन्ह धैर्य धृति-सिन्धु, कहि करिहौं कर्तव्य जो,
कहेउ हेरि पुनि बंधु, "दुर्लभ अब मोहिं व्रज-दरस।"

उत विशाल बल वाहिनि साथा,
धावत मधुपुर दिशि मगनाथा।

यह सुवश - यदुवश समाजू,
यहाँ न ग्वाल गोप सुत काजू!"

दोहा — *करत व्यंग तब चेदिपति, लीन्हेउ गोविंद नाम,*
खड्ग-हस्त सुनतहि उठे, सात्यकि सह बलराम। १४३

सैनन बरजि बधु, युयुधाना,
भाषे विहँसि वचन भगवाना—
"शूद्र, वैश्य, द्विज-वर्ण-विचारा,
होत सतत भूपति-दरबारा।
पै निर्णायक क्षत्रिय लागी,
नहिं थल अन्य समर-महि त्यागी।
आयेउ चढि स्वेच्छा मगराजू,
समर प्रसग, उपस्थित आजू।
मैं क्षत्रिय अथवा कछु अन्यहि,
देहौं उत्तर उचित समर महि।"
सुनि बोलेउ सदर्प शिशुपाला—
"नर्तत शठ! शिर काल कराला।
मोहिं न पै तुव प्राणन शोचू,
जन्मत मरत नित्य नर पोचू।
सालत एकहि उर मम शूला,
तुव सँग यदकुल-नाश समूला।

दोहा — *मगधनाथ-बल, वाहिनी, वसुधा, विभव विशाल,*
सकै जीति जो तेहि समर, भयेउ न भुवन भुआल। १४४

बधि तोहि, बाँधि वृद्ध महिरायी,
जइहै मुदित मगध मगरायी।
रखिहै अन्य नृपन सँग कारा,
तजि तृण-पात न जहँ आहारा।
निष्ठुर अनुष्ठान तेहि ठाना,
पशु सम अन्त यज्ञ बलिदाना।

यह सुवंश - यदुवंश समाजू,
यहाँ, न ग्वाल गोप सुत काजू!"

दोहा :— करत व्यंग तब चेदिपति, लीन्हेउ गोविँद नाम,
खड्ग-हस्त सुनतहि उठे, सात्यकि सह बलराम। १४३

सैनन बरजि बंधु, युयुधाना,
भाषे बिहँसि वचन भगवाना—
"शूद्र, वैश्य, द्विज-वर्ण-विचारा,
होत सतत भूपति-दरबारा।
पै निर्णायक क्षत्रिय लागी,
नहिं थल अन्य समर-महि त्यागी।
आयेउ चढ़ि स्वेच्छा मगराजू,
समर प्रसंग उपस्थित आजू।
मैं क्षत्रिय अथवा कछु अन्यहि,
देहौं उत्तर उचित समर महि।"
सुनि बोलेउ सदर्प शिशुपाला—
"नर्तत शठ! शिर काल कराला।
मोहिं न पै तुव प्राणन शोचू,
जन्मत मरत नित्य नर पोचू।
सालत एकहि उर मम शूला,
तुव सँग यदुकुल-नाश समूला।

दोहा :— मगधनाथ-बल, वाहिनी, वसुधा, विभव विशाल,
सकै जीति जो तेहि समर, भयेउ न भुवन भुआल। १४४

वधि तोहि, बाँधि वृद्ध महिरायी,
जइहैं मुदित मगध मगरायी।
रखिहैं अन्य नृपन सँग कारा,
तजि तृण-पात न जहँ आहारा।
निष्ठुर अनुष्ठान तेहि ठाना,
पशु सम अन्त यज्ञ बलिदाना।

हत-मति सभा वचन सुनि सारी,
विगत समर उत्साह, दुखारी।
उर वसुदेव अमंगल-भीती,
जल-दृग वृद्ध नृपति वश प्रीती।
उद्धव विकल, हृदय पछितावा,
मधु-वचन हलधर मन भावा।
विस्मित, चकित, भीत शिशुपाला,
गवनेउ माँगि विदा तत्काला।
प्रविशि शिविर जब कहेउ सँदेशा।
कीन्हेउ अट्टहास मगधेशा,
इत तजि सदन द्वार हरि ठाढ़े,
सँग वलराम पुलकि जनु बाढ़े।
राजपुरोहित तिलक सँवारा,
स्वस्ति वचन द्विज-वृंद उचारा।
जननी गुरुजन आशिष साथा,
जय-ध्वनि मध्य चले यदुनाथा।

दोहा :— *पहुँचि समर-महि कीन्ह प्रभु, पांचजन्य रव घोर,*
कम्पित मही, दिगन्त, नभ, शख निनाद कठोर। १४७

शिविर-द्वार निज मगपति आयी,
लखे चकित लोचन यदुरायी।
मुग्ध विलोकि मनोहर वेपू,
हँसेउ ठठाय वहुरि मगधेशू।
लखि परिजन तन वचन सुनावा—
"को यह नट? रण महि कस आवा!"
विहँसि कहेउ हरि,—"मिलेउ सँदेशू,
बाँधन मोहि चहत मगधेशू।
आयेउँ आपु बँधावन काजा,
सग न वाहिनि स्वजन न राजा।
लखन चहहुँ पोरुप प्रभुताई,
बाँधत नहिं कस देर लगायी?"

तातें कहेउँ नृपहिं समुझायी,
तजहिं तोहिं, पुर बसहिं चुपायी।
तोरेहु उर जो रण-अभिलाषा,
काहे करत निरीह विनाशा?
विमल यश यह चंदन द्रुम सम,
लपटेउ तें बनि विषम भुजंगम।
जो भुज शौर्य पराश्रय त्यागी,
युद्धसि कंस न प्राण निज लागी।
तें, तुव बधु कंस हत्यारा,
दुहुन मगधपति समर प्रचारा।

दोहा:—कीन्ह तुमहिं विद्रोह दोउ, रारि तुम्हारेहि साथ,
वृद्ध नृपति यदुवंश सँग, चहत न रण मगनाथ।" १४५

सुनि कटु वचन कुपित नरनाथा,
कीन्ह शान्त हरि गहि नृप-हाथा।
चेदिपतिहिं यदुनाथ निहारे,
वक्र भृकुटि, दृगदल रतनारे—
"आये करन मोर कुल निश्चय,
दीन्ह सबहिं तुम निज कुल-परिचय।
शृंग अनार्य-ललाट न जामा,
आर्य-भाल नहिं विधु अभिरामा।
बरसत मुख जस मधु, विष-बाणा,
मिलत दुहुन पितु वश प्रमाणा।
तदपि वचन इक सत्य तुम्हारा,
हम दोउ बधु कंस हन्तारा।
हमहिं दोउ जीवन व्रत धारा,
क्रम क्रम आततायि संहारा।
जाहु कहहु निज प्रभुहिं सुनायी,
करिहैं समर हमहिं दोउ भाई।

दोहा:—रहिहैं पुर सेना सकल, यदुजन, वृद्ध भुआल,
मथिहैं मागध-बल-उदधि, नंद गोप के लाल।" १४६

हत-मति सभा वचन सुनि सारी,
विगत समर उत्साह, दुखारी।
उर वसुदेव अमंगल-भीती,
जल-दृग वृद्ध नृपति वश प्रीती।
उद्धव विकल, हृदय पछितावा,
वधु-वचन हलधर मन भावा।
विस्मित, चकित, भीत शिशुपाला,
गवनेउ माँगि विदा तत्काला।
प्रविशि शिविर जब कहेउ सँदेशा।
कीन्हेउ अट्टहास मगधेशा,
इत तजि सदन द्वार हरि ठाढ़े,
सँग बलराम पुलकि जनु बाढ़े।
राजपुरोहित तिलक सँवारा,
स्वस्ति वचन द्विज-वृंद उचारा।
जननी गुरुजन आशिष साथा,
जय-ध्वनि मध्य चले यदुनाथा।

दोहा :— *पहुँचि समर-महि कीन्ह प्रभु, पांचजन्य रव घोर,*
कम्पित मही, दिगन्त, नभ, शङ्ख-निनाद कठोर। १४७

शिविर-द्वार निज मगपति आयी,
लखे चकित लोचन यदुरायी।
मुग्ध बिलोकि मनोहर वेषू,
हँसेउ ठठाय बहुरि मगधेशू।
लखि परिजन तन वचन सुनावा—
"को यह नट ? रण महि कस आवा।"
बिहँसि कहेउ हरि,—"मिलेउ सँदेशू,
बाँधन मोहि चहत मगधेशू।
आयेउँ आपु बँधावन काजा,
संग न वाहिनि स्वजन न राजा।
लखन चहहुँ पौरुष प्रभुताई,
बाँधत नहिं कस देर लगायी ?"

सुनत दप्त मधुसूदन-वाणी,
दृग आरक्त, कुपित अभिमानी।
जैसेहि पुनि हरि ओर निहारा,
वचन सव्यग नरेश उचारा—

दोहा :— "कमल-गर्भ-मृदु देह तुव, वचन वज्र अनुहार,
जानि परत वपि मज भयेउ, तोहि कछु बुद्धि-विकार। १४८

वधि पूतना वृद्ध कोउ नारी,
वक-धेनुक खग-पशु सहारी,
विटप उपारि, शिला शिर धारी,
गर्वित गोप सहज अविचारी।
भरेउ अवहुँ सोइ तुव दृग माहीं,
सन्मुख लखत सैन्य मम नाहीं।
यहाँ न रास-नृत्य सुखकारी,
यह रण-भूमि प्राण-अपहारी।
यहाँ न धेनु लकुट लै चारत,
ये गजेन्द्र पद मर्दि पँवारत।
यहाँ न अभा-रव गोशाला,
समर-वाजि ये, हेष कराला।
यहँ न शकट पद भजि नसाये,
ये मागध रथ रण-हित आये।
यहाँ न गोपी-नूपुर-रुनझुन,
ज्या-निर्घोष यहाँ अति दारुण।

दोहा :— सन्मुख यह यमुना नहीं, जहँ सुख वारि विहार,
शूर-मकर-मय यह भयद, मम बल-पारावार। १४९

सोरठा :—एकहि लहरि विशाल, सकति निमिष महँ बोरि तोहि,
उचित कि मूढ गोपाल, करब विवाद भुआल सँग ?"

सुनि प्रलाप कह हँसि मधुसूदन—
"करत समर चढ़ि काह विकत्थन।

व्यर्थ गोप-नृप-भेद समीक्षा,
पलहि माहिं पुरुषत्व-परीक्षा।
गोप-अवनिपति-कृति कर अन्तर,
प्रकटत कस न समर महि सत्वर ?"
सुनि सेवकन सरोप नरेशा,
"धरहु गोप-सुत"—दीन्ह निदेशा।
चले सुनत घेरन दुइ चारी,
आवत ही हरि हते प्रचारी।
भिरे धाय पुनि बीस-पचासा,
पलहि माहिं हठि हलधर नासा
शत, पुनि सहस, सैन्य पुनि सारी,
घेरेउ उमहि घटा जनु कारी।
ढपे ओट बीर-कुल-भानू,
ढाँपति उड़ि जिमि रेणु कृशानू।

दोहा :— *साँध-शिखर चढ़ि उत लखेउ, उग्रसेन रण ओर,*
दिखे न कहुँ हरि-राम-रथ, उपजेउ सशय घोर। १५०

अशुभ-विशकी सदा सनेहू,
सकेउ न शान्त निवसि नृप गेहू।
हरि-अनुराग विहाल भुआला,
"साजहु सैन्य"—कहेउ तत्काला।
पुलके सुनि उद्धव, युयुधाना,
शौरि-प्रमोद न जाय बखाना।
सत्राजित, प्रसेनजित, चाहुक,
मुदित बीर कृतवर्मा, आहुक।
हर्ष-प्रफुल्ल वृद्ध नररायी,
पहिरत कवच न अग समायी।
बजे भयानक आनक वृन्दा,
सजे शूर उर उर आनदा।
सजी अपार मत्त गज-पाँती,
अश्वारोही. रथी. पदाती।

उघरे पुरी-द्वार, रव घोरा,
बही वाहिनी दच्छिण ओरा।

दोहा :— *दिशि, विदिशा, महि, नभ ध्वनित, गज-चिघार, हय-हेष,*
जय-रव, रथ-रव, शंख-रव, सिंह-निनाद अशेष। १५१

सोरठा:— *उत लखि असुरन-भीर, शस्त्र-पात विकराल अति,*
हरि हलधर रण-धीर, सुमिरे सब दिव्यास्त्र निज।

गगन चीरि मानहुँ सब धाये,
सुमिरत ही हरि-हाथन आये।
वैष्णव अक्षय तूण, शरासन,
तडित-तेज-हत चक्र सुदर्शन।
कौमोदकी गदा विकराला,
जित-रवि-द्युति नंदक करवाला।
लहे दिव्य हल मूसल रामा,
प्रतिहत शत्रु, घोर संग्रामा।
लय कालानल शिखा समाना,
कर्षी सारँग-ज्या भगवाना।
कडके वज्र-सहस जनु संगा,
वधिर वैरि मातंग तुरंगा।
चक्राकृति सारँग कोदण्डा,
उदित मनहुँ मार्तण्ड प्रचण्डा।
भीषण विशिख शरासन छूटे,
अरि-शिर छिन्न, कुंभ गज फूटे।

दोहा :— *भिन्न अश्व अँग, छिन्न ध्वज, हत रथि, ध्वस्त रथाङ्ग,*
छादित बाण दिगन्त नभ, पूरित मही मृताङ्ग। १५२

मागध-वाहिनि-वारिधि सेतू,
भ्रमत चतुर्दिक यदुकुल-केतू।
युद्धत हलधर समर-अमर्षी,
बाहुदण्ड विविधायुध वर्षी।

धावत जेहि दिशि रथ घन-नादी,
भागत भीत त्यागि रण सादी।
व्यथित रथी कर ते धनु डारत,
हींसत वाजि, द्विरद चिग्घारत।
वधे असंख्य असुर संकर्षण,
शोणित सरित बही समराङ्गण।
राजत भूषण जनु तट-रेणू,
चामर हंस, छत्र सित फेनू।
स्यंदन-चक्र भँवर अनुमाना,
वाजि नक्र, गज द्वीप समाना।
भुज भुजंग जनु कमठ कपाला,
केश-समूह मनहुँ शैवाला।

दोहा —*प्रतिपल शोणित नद भयद, भयेउ सिन्धु लहराय,*
तजि आयुध मागध-चमू, कहुँ-कहुँ चली पराय। १५३

सोरठा —*तेहि क्षण मथुरा ओर, रेणु-राशि नभ-पथ उड़ी,*
युद्ध-वाद्य-ध्वनि घोर, सिंहध्वनि श्रुति-पथ परी।

लखि आवति वाहिनि बलशाली,
जनु कल्पान्त प्रलय वाताली,
प्रेरेउ चेदिपतिहिं मगधेशा,
"रोधहु रिपु-पथ"—दीन्ह निदेशा।
लै चतुरंगिणि निज शिशुपाला,
यदु-दल ओर बढ़ेउ तत्काला।
मगधपतिहु निज सैन्य सँभारी,
चलेउ आपु हरि-दिशि रिस भारी।
दूरिहि ते निरखे यदुनंदन,
प्रलय-समुद्यत मनहुँ त्रिलोचन।
अंग प्रसून-मृदुल, मनहारी,
लखे कठोर अयस अनुहारी।
नख शिख संस्कृत छवि अभिरामा,
वज्राधिक कर्कश, भय-धामा।

सुधा-धाम जनु सौम्य हिमांशू,
भयेउ ज्वलंत प्रखर उष्णांशू।

दोहा :— *लागेउ नट, अब सोइ सुभट, व्रण-भूषित अँग अग,*
नासत रथ, रथि, सारथी, तुरग, मत्त मातंग। १५४

सोरठा:—*मूर्तिमत रस वीर, मुग्ध विलोकत मगधपति,*
धायेउ रोप अधीर, लखि पुनि छीजति सैन्य निज।

जात बंधु दिशि देखि सक्रोधा,
रोधेउ रिपु-पथ हलधर योद्धा।
प्रतिहत गति, आरक्त विलोचन,
कीन्हेउ मगधनाथ शर-मोचन।
राम क्षतांग, रक्त-अभिषेका,
कर कोदण्ड, रोप उद्रेका।
प्रेपे विशिख असख्य सपक्षा,
विग्रह वैरि विदारण-दक्षा।
आयुध विविध नरेन्द्र चलाये,
अतरिक्ष हलि काटि गिराये।
रण-दुर्मद, उन्मत्त भुआला,
लीन्हि ज्वलत शक्ति विकराला।
हाथहि माहि तीक्ष्ण शर प्रेरी,
नासी राम शक्ति अरि केरी।
कोपस्फुरित अधर पुनि हलधर,
फेकेउ दिव्य मुसल प्रलयकर।

दोहा :— *ध्वस्त पताका, चूर्ण रथ, हत सारथी तुरग,*
आहत मागध महि पतित, गत मद, समर-उमग। १५५
उत्थित उत्तर ताहि क्षण, विजय-निनाद कराल,
दिसी रौद्र यदुवाहिनी, पछियावति शिशुपाल। १५६

सोरठा:—*जर्जर हरि-शर-जाल, लखि नव बल भागे असुर,*
हलधर-मुसल-विहाल, मगध भुआलहु रण तजेउ।

लज्जित, वीत-प्रभाव मगेशा,
गयेउ विवर्ण त्रस्त निज देशा।
विजय-वाद्य यदु सैन्य बजाये,
लूटे मगध-शिविर मन भाये।
फिरे जीति रिपु हर्ष अपारा,
पुलकित पुरजन नगर सँवारा।
सिक्त वीथि-शत मृगमद चदन,
जयस्तभ मणि काञ्चन तोरण।
केतन विविध विचित्र सोहाये,
सोध-शिखर तिय, पथ नर छाये।
दुदुभि, वीणा, वेणु-निनादा,
ध्वनित नगर श्रुति-मत्रन-नादा।
थल थल लाज प्रसून-प्रवर्षा,
प्रविशे पुरी प्रवीर सहर्षा।
यहि विधि लै सँग सैन्य विशाला,
चढेउ सप्त-दश बार भुआला।

दोहा —*रक्षित निशि-दिन मधुपुरी, माधव-भुज-प्राकार,*
सकेउ प्रवेश न करि असुर, तजेउ समर प्रति बार। १५७

सोरठा.—*पुनि सरोष मगधेश, कीन्ह निमत्रित यवन-पति,*
निज माण्डलिक नरेश, प्रेरे सब सेना सहित।

काल यवन लहि मगपति-पाती,
चलेउ सवाहिनि भुवन अराती।
भारत-नृपहु मगध-सामन्ता,
चले सदल व्रज ओर अनता।
भोम प्राग्ज्योतिपपुर स्वामी,
पौण्ड्रक मगध-दास, अनुगामी,
बली बृहद्बल कोशल-राजा,
मद्र महीप शल्य महराजा,
शकुनि कुटिल गान्धार-कुमारा,
रुक्मी भीष्मक तनय जुझारा।

दंतवक्र कारूप-महीशा,
जयद्रथ सिन्धुदेश-अवनीशा।
शाल्व विमान-वली, विकराला,
काशि-नरेश, चैद्य शिशुपाला।
पाण्ड्य, चोल दक्षिण दिशि-वासी,
शवर नृपति गिरि विन्ध्य-निवासी।

दोहा :— *आर्य, यवन, दानव, असुर, बर्बर नाना जाति,*
चली चमू चहु ओर ते, गज, रथ, वाजि, पदाति। १५८

लख-घन घिरत देखि यदुरायी,
कहे वचन यदुजनन सुनायी—
"आवत उत्तर ते यवनेशा,
म्लेच्छ विपुल सँग, वाजि अशेषा।
वक्षु सरित ते व्रज पर्यन्ता,
नृप सब जरासंध-सामन्ता।
वली पाण्डु कुरुजाङ्गल राजा,
हिमगिरि जाय वसेउ तप-काजा।
पथ प्रशस्त यवनन हित सारा,
कहुँ कोउ तिनहि न रोकनहारा।
अन्य दिशन ते आर्य, विजाती,
चढे कराल असंख्य अराती।
घिरेउ चतुर्दिक मधुपुर आजू,
नहि कोउ सुहृद, न सेना साजू।
सन्मुख समर वश अवसाना,
युक्ति न दुर्ग-शरण तजि आना।

दोहा :— *समतलस्थ मथुरा नगर, नहि गिरि वारि सहाय,*
प्रबल शत्रु शस्त्रास्त्र बल, देहैं दुर्ग ढहाय। १५६

गयेउँ जबहिं मैं गुरु-सुत लावन,
पश्चिम उदधि लखेउँ अति पावन।

तट-महि लगि तहँ द्वीप अशेषा,
स्वप्नहु शक्य न शत्रु-प्रवेशा।
तिन महँ श्रेष्ठ कुशस्थल द्वीपा,
शैल रैवतक रम्य समीपा।
भेटत जहँ गिरि जल सुख मानी,
रास्रहु तहँ यदुकुल-रजधानी।
करहिं जो निज रक्षा हम आजू,
बढ़िहे दिन-दिन धन जन राजू।
करत प्रबल सँग सकल मिताई,
मिलिहैं क्रम क्रम हमहिं सहायी।
पाय सुअवसर, रिपुहिं प्रचारी,
सकिहैं सहजहिं हम संहारी।
देहिं निदेश जो नृप हर्षायी,
करहुँ सुपास आपु मैं जायी।"

दोहा :— *व्यथित जदपि यदुजन सकल, छूटत देखि स्वदेश,*
कुल-संरक्षण-हित-विकल, अनुमति दीन्हि नरेश। १६०

सोरठा:—*सुनि यदुजन-आधार, गये आपु आनर्त हरि,*
विरची भारत-द्वार, उदधि-सुता द्वारावती।
नृप स्वजनन पहुँचाय, फिरे श्याम हलधर सहित,
घेरेउ मधुपुर आय, काल यवन ताही समय।

नगर-द्वार उत यवन प्रचारत,
इत गोविंद मन माहिं विचारत—
मधुपुर तजत न रंच सँकोचू,
छूटत व्रजजन उर अति शोचू।
गयेउँ न कबहुँ, सुधिहु नहिं लीन्ही,
लहि मैं प्रीति व्यथा बहु दीन्ही।
बसिहौं दूरि द्वारका जायी,
तजिहैं तनु व्रजजन बिलखायी।
उद्धव सुहृदहिं श्याम बोलावा,
"जाहु अबहिं व्रज,"—वचन सुनावा।

जानि सुमति सब कहेउ ब्रजेशू,
चलेउ सचिव लै प्रेम-सँदेशू।
बंधुहिं बहुरि कहेउ असुरारी—
"रहि पुर सजग करहु रखवारी।
जब लगि पहुँचि सकै मगधेशा,
आवहिं जब लगि अन्य नरेशा,

दोहा :— *यवनेशहिं निज सैन्य ते, तब लगि मैं बिलगाय,*
नसिहौं शैल अरण्य कहुँ, विकट थलन भरमाय।" १६१

अस कहि तजि निज आयुध स्यंदन,
निकसे नगर-द्वार यदुनंदन।
प्रकटेउ जनु गिरि-गुहा विहायी,
मदगज-दर्प-दलन मृगरायी।
लखेउ यवन, मन तर्क बढ़ावत,
को यह समर निरायुध आवत?
अतसी-सुमन देह-द्युति श्यामा,
शरद सुधांशु वदन अभिरामा।
वनज अक्ष, भुज वक्ष विशाला,
तिलक ललाट, हृदय वनमाला।
चिबुक चारु, गभीर, हठीली,
गति अशंक, उद्धत, गर्वीली।
शिर किरीट, श्रुति कुण्डल-धारी,
कटि कौशेय पीत मनहारी।
लखि यवनेश हृदय अनुमाना,
यहै कृष्ण छवि-शौर्य-निधाना।

दोहा :— *लखि मम विक्रम वाहिनी, रण-जय-आस विहाय,*
दीन भाव दरसाय शठ, चाहत जान पराय। १६२

जानि यवन-मन-गति यदुरायी,
विरमि, हेरि, हँसि चले परायी।

जनु दृग-कंपित यवन अभागी,
चलेउ ससंभ्रम, पाछे लागी।
गहन चहेउ खल गहि नहिं पावा,
इत उत धावत म्लेच्छ बरावा।
जात दूरि हरि श्रम दरसावत,
उपजति आस, कुमति पुनि धावत।
लखि समीप आयेउ यवनेशा,
विहँसत, धावत वहुरि व्रजेशा।
तपन-रोष-परितप्त भुआला,
पछियावत श्रम-खिन्न, बिहाला।
परिचित गिरि वन श्याम सयाने,
यवन भ्रमाय गहन अनजाने,
लता-प्रतानन रहे दुरायी,
खल-वैकल्य लखत मुसकायी।

दोहा :— अकस्मात प्रकटे वहुरि, हरि गिरि-गह्वर-द्वार,
धायेउ म्लेच्छहु क्रोध जरि, बरसत नयन अँगार। १६२

लखि इत उत सचकित भगवाना,
दरसायी भय भीति महाना।
कीन्ह धाय पुनि गुहा प्रवेशा,
भावी-विवश धँसेउ यवनेशा।
द्रुमाभील पथ शिला विशाला,
अन्तराल गाढ़ान्ध कराला।
बढ़त अशंक जात विश्वेशा,
यवनहु विवश रोष आवेशा।
औचक लखे कोउ मुनिरायी,
मगन समाधि विश्व बिसरायी।
कौतुक ही पट पीत उतारी,
दीन्हेउ हरुये मुनि-अँग डारी।
शिला एक पुनि लखी समीपा,
रहे ओट दुरि यदुकुल-दीपा।

तेहि क्षण काल यवन तहँ आवा,
लखि पट पीत रोष तनु छावा।

दोहा:—*पदाघात कीन्हेउ प्रबल, कहत यवन कटु बैन,*
भग्न योग-निद्रा त्वरित, उघरे मुनिवर-नैन। १६४
अग्नि-पुञ्ज प्रकटेउ अमित, तड़ित-सहस्र कराल,
भयेउ भस्म तत्काल खल, जरि योगानल-ज्वाल। १६५

शिला विहाय, मंद मुसकायी,
प्रकटे मुनि समक्ष यदुरायी।
विनय-धाम पद कीन्ह प्रणामा,
जोरि पाणि पूछेउ पुनि नामा।
लखि हरि-तेज, दिव्य जन जानी,
आत्म-कथा मुनिवर्य बखानी—
"उपजेउ त्रेता नृप मान्धाता,
मैं मुचुकुन्द तासु अँगजाता।
सुरपुर जब तारक चढ़ि आवा,
मोहि सहाय हित इन्द्र बोलावा।
निवसत तहँ नारद मुनिरायी,
विष्णु भक्ति मोहिं सविधि सिखायी।
लौटि, सुतहिं दै पैतृक राजू,
आयेउँ यहि कानन तप काजू।
शान्त गुहा लखि कीन्ह निवासा,
लागि समाधि, नष्ट भव-त्रासा।

दोहा:— *को दुर्मति यह आजु मोहि, सहसा दीन्ह जगाय,*
कवन अलौकिक रूप तुम, कहहु सकल समुझाय"। १६६
प्रकटेउ दिव्य स्वरूप निज, केशव आनँद-कंद,
गवनेउ मुनि हिम-शैल दिशि, लहि तप-फल सानंद। १६७

सोरठा:—*यहि विधि दस्यु नसाय, हरि इत मधुपुर दिशि चले,*
उत उद्धव ब्रज आय, श्री-हत वन, खग, मृग लखे।

निर्जन वृन्दावन द्युति-हीना,
सूखे तृण-तरु, जीव मलीना।
अनल-पुञ्ज इव कुञ्ज लखाहीं,
खग-मृग भीत समीप न जाहीं।
देखि न परत चरत कहुँ धेनू,
कतहुँ न बाल बजावत वेणू।
विरह विकल यमुना अति कारी,
हहरति बहति विरह-ज्वर-जारी।
विरहिन कान्ति रेणु, कुश, काँसा,
धार न नाव, न तट कल हासा।
म्लान तमाल न शिखि शिर धारत,
अब नहिं कृष्ण-रूप अनुहारत।
विकसत कमल न सरि सर माहीं,
परति सुनाय मधुप-ध्वनि नाहीं।
मौन पपीहा, नहिं खग-कूजन,
झंकृत कानन झींगुर-झनझन।

दोहा :— *पत्र, कुसुम, फल-हीन तरु, कतहुँ न मधु पिक-राग,*
बहत न मंद समीर वह, उड़त न पुष्प-पराग। १६८

दिन-शशि इव निशिनाथ लखाहीं,
ब्रज जनु करत प्रकाश लजाहीं।
खरिक शून्य, नहिं गोप, न गाईं,
विजन वीथि नहिं पथिक लखायीं।
गोपिन गृह प्रदीप नहिं बारे,
चेतन-हीन भवन ब्रज सारे।
आयेउ उद्धव-रथ नँद-द्वारे,
देखे महर जानु शिर धारे।
श्याम-वियोग विकल अति दीना,
है जनु कल्पवृक्ष विधि छीना।
रथ-घर्घर सुनि आतुर धाये,
पुलकित कहत 'श्याम फिरि आये'!

लखे जबहिं उद्धव ढिग जायी,
हृदय-व्यथा हिय माहिं दुरायी।
रथ ते प्रीति प्रदर्शि उतारा—
"कृपा प्रभूत तात ! पगु धारा।

दोहा :—*सुर-गुरु सम मतिमान प्रभु, सचिव सुवंश सुनाम,*
धन्य आजु व्रज ग्राम यह, धन्य आजु मम धाम।" १६९

आसन अर्घ्य लाय गृह दीन्हा,
बहु विधि पूजन अर्चन कीन्हा।
व्यंजन सरस सप्रेम रचाये,
शय्या मृदुल लाय बैठाये।
आयी सुनत धाय नँदरानी,
लागति औरहिं जाति न जानी।
बिछुरत श्याम नयन भरि आये,
बहत अबहुँ, नहिं थमत थमाये।
सुमिरि सुमिरि उपजति उर पीरा,
बहति नयन-मग, गलत शरीरा।
अस्थि-मात्र अब अंग लखायी,
जनु व्रज-व्यथा देह धरि आयी।
लखि यशुमति उद्धव अनुरागे,
बिसरी नीति, प्रीति-रस पागे।
तजि. शय्या पद-वदन कीन्हा,
कहि हरि-कुशल धैर्य बहु दीन्हा—

दोहा :—*"पठयेउ नेह-सँदेश हरि, 'जब ते बिछुरेउँ माय।*
माखन देत न कोउ मोहि, कोउ न कहत कन्हाय'।" १७०

वचन सुधा-सम सुनि मुसकानी,
जागी जनु सोवत नँदरानी।
पूछति जल-कण नयन दुरायी—
"औरहु कछु मोहि कहेउ कन्हाई?"

कहेउ कान्ह, "सुनु मइया मोरी,
निशि दिन मोहिं आवति सुधि तोरी।
मथुरा-वासिन करि चतुराई,
मोहिं पहरुवा दीन्ह बनायी।
नित प्रति असुर पुरी चढ़ि आवहिं,
शिशु विलोकि मोहिं मारन धावहिं।
जानत नहिं यशुमति जन्मावा,
पय पियाय मोहिं बली बनावा।
सुमिरि तोहिं जब करहुँ लरायी,
निमिष माहिं अरि जात परायी।
तोरिहि कृपा विजय मैं पावहुँ,
आशिष देहि जीति रिपु आवहुँ।

दोहा :— *देश-धर्म-शासक असुर, देहौं जबहि नसाय,*
करिहौं तनिक विलम्ब नहि, अइहौं मइया! धाय। १८१

तब लगि लकुटी कमरी मोरी,
धरेउ सैंति भँवरा चकडोरी।
राखेउ मुरली कतहुँ लुकायी,
लै जनि राधा जाय चुरायी।"
सुनति, हँसति, विलपति महतारी,
सुखी श्याम सुनि आपु सुखारी।
आशिष देति, कहति समुझायी,
कहेउ सँदेश देवकिहिं जायी—
"जदपि कान्ह मम आँखिन-तारा,
हरन चहहुँ नहिं तनय तुम्हारा।
देखेउँ सोचि हृदय निज माहीं,
हरि सबके, एकहि के नाहीं।
बसे जदपि मोहन मम धामा,
मोहेउ बरसि नेह ब्रज ग्रामा।
भवन भवन उत्पात मचावा,
भवन भवन दधि माखन खावा।

भवन भवन जोरेउ हरि नाता,
भवन भवन गोपी हरि-माला।

दोहा :— *ताते मैं विनती करहुँ, मानि मोहि हरि-धाय,*
मोहन मूरति चार इक, कैसेहु देहु दिखाय। १७२

कहेउ बहुरि स्यामहु ते जायी,
आय बदन विधु जाहिं देखायी।
जेतिक चहहिं खाहिं हरि माटी,
अब नहिं कबहुँ छुअहुँ कर साँटी।
मन-माने गृह-भाजन फोरी,
जेतिक चहहिं करहिं हरि चोरी।
अब नहिं ऊखल बँधिहै मइया,
कहिहौं पुनि न चरावन गइया।"
अटपट वचन कहति नँदरानी,
सुनत नंद उद्धव दुख मानी।
देखेउ गोपिन रथ तेहि काला,
सभ्रम दौरि परीं ब्रज-बाला।
वैसहि स्यंदन, वैसेहि चाका,
वैसेहि फहरत ध्वजा पताका।
वैसहि सकल साज रथ जोरे,
वैसेहि स्वेत परत दिखि घोरे।

दोहा :— *निहँसहि एकहि एक कहि, 'आये सखी! कन्हाय!'*
जो जैसी तैसिहि चली, विह्वल नँद-गृह धाय। १७३

पहुँचीं सकल यशोमति-धामा,
लखि उद्धव सहमीं ब्रज-बामा।
पठये सखा, स्याम नहिं आये,
सूखे अधर, दृगन जल छाये।
चितवहिं सकल ठगी-सी ठाढ़ी,
विरह-व्यथा जागी पुनि गाढ़ी।

देखीं उद्धव सब ब्रज-नारी,
व्याकुल जिमि यशुमति महतारी।
कीन्हेउ सादर सबहिं प्रणामा,
कहेउ, "सुखी दोउ हरि बलरामा।"
निरखि शील, सुनि हरि-कुशलाई,
बैठीं सब उद्धव ढिग आयी।
कहहिं—"कवन अस चूक हमारी,
दीन्हेउ जो ब्रजनाथ बिसारी।
घाट, बाट, वीथी, गृह, ब्रज, बन,
रहे साथ निशि-दिन नँदनंदन।

दोहा :—*टेरि टेरि मुरली स्वरन, नवल प्रीति नित कीन्हि,*
कहँ वह रस! कहँ रीति यह! गये न पुनि सुधि लीन्हि!" १७४

हँसि कह उद्धव गोपिन पाहीं—
"हमरेहु स्याम, तुम्हारेहि नाहीं।
एतिक दिवस कीन्ह ब्रज वासा,
बरसेउ आनँद हर्ष हुलासा।
हम यदुजन सब रहे दुखारी,
भये अंध दृग पथ- निहारी।
कीन्ह कंस नित अत्याचारा,
सहे दिवस-निशि असुर-प्रहारा।
लीन्हि हमारि न सुधि तुम ब्रजजन,
रहे मग्न अपनेहि सुख भोगन।
गये काल्हि हरि मधुपुर माहीं,
पाये रहि दुइ दिन घर नाहीं।
आयीं हरिहिं लगावन दोषू,
रहीं प्रकटि हम सब पै रोषू।
तुमहि कहहु कहँ भयी अनीती,
कीन्ही श्याम कवनि अनरीती?

दोहा :—*जेतिक दिन गोकुल बसे, बसहिं जो मधुपुर माहि,*
लोक, शास्त्र दुहुँ दृष्टि ते, अपराधी हरि नाहि!" १७५

सुनि सुनि उद्धव-वचन बिहाला,
रीझि खीझि बोलीं ब्रजबाला—
"यदुजन सँग हरि कर कछु नाता,
को अस कहै सुनै को बाता!
जब लगि स्याम चरायीं गाई,
परे न भाई-बंधु लखायी।
जब अक्रूर क्रूर ब्रज आवा,
कहेउ, 'कंस नँद-सुवन बोलावा'।
गयेउ साथ लै मधुपुर माहीं,
राखेउ हरिहिं गेह कोउ नाहीं।
तरुवर तरे कीन्ह हरि बासा,
आयेउ यादव एक न पासा।
भोर भये गज मल्ल हँकारी,
चाहेउ कंस वधन बनवारी।
भयेउ न सुफलक-सुवन सहायी,
उद्धव गुनिहु न परे लखायी।

दोहा — *यशुमति-आशिष कंस वधि, विजयी भये कन्हाय,*
घर घर ते हरि-बंधु बनि, निकसे यदुजन धाय!" १८६

विहँसत कहहिं वचन तिय भामा,
भय चकित उद्धव मति धामा।
सूझ न उत्तर, हृदय लजायी,
कहत, "कहाँ सीखी चतुराई?
जानेउँ आजु भेद ब्रज-बामा!
चतरस तुम जुरये घनश्यामा।"
सुनि गोपिन पुनि गिरा उचारी—
"बोलहु उद्धव! वचन सँभारी।
नीति-कुशल अति पण्डित, ज्ञानी,
सीखेउ शास्त्र वद तुम मानी।
सो तुम सूध, चतुर ब्रजनारी,
तुमहिं योग्य यह बात तुम्हारी!

लखि ब्रजजन प्रति मोहन-प्रीती,
व्यापी अति तुम्हरे उर भीती।
लेहिं न बहुरि भुरय हम श्यामहिं,
लाये संग न तुम हरि ग्रामहिं।

दोहा :— *झूठ साँच कहि श्याम ते, आये तुम ब्रज धाय,*
औरहु कहिहो झूठ अब, इत ब्रज ते उत जाय। १७७

दया करहु, त्यागहु 'कुटिलाई,
भेद-नीति यह देहु विहायी।
कहेहु हरिहिं संदेश हमारा—
विकल मातु पितु ब्रज वन सारा।
आवहिं बहुरि, बसहिं ब्रज माहीं,
माखन खाहिं बरजिहैं नाहीं।
उरहन यशुदा ढिग नहिं लइहैं,
चोरी अब न उघारि बतइहैं।
गहि अब कबहुँ गेह नहिं लइहैं,
वेणी हरि ते नाहिं गुहइहैं।
चरण महावर नहिं लगवइहैं,
ता ता थे ई अब न नचइहैं।
भूलि न कहिहैं कबहुँ 'कन्हाई',
हाथ जोरि कहिहैं 'ब्रजरायी'।
मधुपुर ते बढ़ि गोकुल-राजू,
वहाँ अशान्ति, यहाँ सुख-साजू।

दोहा :— *बाल-सखा हरि के सुभट, सैन्य हमारी धेनु,*
चलत उड़ति खुर-रेणु पथ, राज-बाद्य वर वेणु। १७८

औरहु कहेउ श्याम ते जायी—
ग्राम बसब जो नाहिं सोहायी,
मधुपुर रहहिं, कबहुँ ब्रज आवहिं,
दर्शन देहिं, हमहु सुख पावहिं।

पूर्व सनेह बिसरि जो जाहीं,
बिसरब उचित नात नव नाहीं।
जस पुरजन तस हम सन व्रजजन,
श्याम भूप, हम दोउ प्रजाजन।
जन-रंजन वर राजन-धर्मा,
प्रजा-प्रपीड़न घोर अधर्मा।
प्रजहि जानि आवहिं इक वारा,
मिलहि दरस, कछु होय सहारा।
तुम उद्धव ! मंत्री हरि केरे,
जात व्यथा नयनन निज हेरे।
लावहु व्रज पुनि हरिहि बुझायी,
हिय-धन बहुरि देखावहु आयी।

दोहा :— *नाहित होइहै व्रज उजरि, हरि बिनु शून्य मसान,*
उर उर हरि-मूरति बसी, प्राणन मुरली-तान।" ९७९

अस कहि व्यथा-विकल व्रजनारी,
सकीं न सहि हरि-विरह-दवारी।
बाष्प कण्ठ, मुख फुरति न वाणी,
उद्धव-चरण विलखि लपटानीं—
"आनहु व्रज अब वेगि कन्हाई,
बूड़त व्रज तुम लेहु बचायी।
इन्द्र-कोप ते श्याम उबारा,
श्याम-कोप तुम होहु सहारा।"
लखि करुणा उद्धव अकुलाने,
ज्ञान, ध्यान, श्रुति, शास्त्र भुलाने।
गये समुझि समुझाय न पावा,
धैर्य देत निज धैर्य गँवावा।
आये पोंछन व्रजजन-आँसू,
झलकेउ दृग जल, उष्ण उसासू।
बहे आपु दुख-पारावारा,
अतल, अकूल, अगम्य, अपारा।

दोहा :— *गयीं गोपिका गेह निज, रटत रटत घनश्याम ,*
उद्धव काटी जागि निशि, जपत जपत हरि-नाम । १८०

शय्या त्यागि कछुक भिनुसारे ,
मज्जन हित सरि ओर सिधारे ।
पहुँचे जमुन तीर जस उद्धव ,
परेउ श्रवण-पथ मधुर वेणु-रव ।
औचक चंद्र ज्योति निज पायी ,
जल, थल, व्योम ज्योत्स्ना छायी ।
शीतल, मंद, सुगंध समीरण ,
सहसा डोलि वहेउ वन कुजन ।
तरुन प्रसून खिले हुलसायी ,
भूली भ्रवलि अलिहु कल गायी ।
कुहकी कोकिल, नाचे शिखिगण ,
व्याप्त विहग-ध्वनि लता वितानन ।
विस्मित उद्धव चहुँ दिशि हेरा ,
जागेउ वन जनु वंशी-प्रेरा ।
वंशीवट दिशि जबहिं निहारा ,
छटा विलोकि पुलक तनु सारा ।

दोहा :— *मोर मुकुट, पट पीत धृत, वनमाला अभिराम ,*
वादत वंशी धरि अधर, कोटि काम, छवि श्याम । १८१

पद्तल लखी बहुरि कोउ वामा ,
धरि सुमनाञ्जलि करति प्रणामा ।
लोचन चकित विलोकत शोभा ,
भक्ति-प्रवाह हृदय, मन लोभा ।
भयेउ अदृश्य दृश्य पल माहीं ,
नहिं हरि कतहुँ, वाम कहुँ नाहीं ।
परी न पुनि कहुँ वेणु सुनायी ,
वन तरु बहुरि गये मुरझायी ।
नहिं कहुँ कोकिल, नहिं कहुँ मोरा ,
नहिं कहुँ खग-रव, नहिं अलि-शोरा ।

भयेउ प्रभा-विरहित पुनि शशधर,
प्रकटेउ प्राची दिशा दिवाकर।
उद्धव सत्वर सरित नहायी,
आये विस्मित नँद-गृह धायी।
यशुमति पार्श्व युवति सोइ देखी,
विह्वल उद्धव भये विसेखी।

दोहा :— *"श्याम-सखी राधा यहै," कहेउ महरि मुसकाय,*
"हरत मधुपुरहु जाहि हरि, मुरली लेति चोराय।" १८२

गवनी राधा सुनत लजानी,
यशुमति प्रीति पुनीत बखानी।
"राधा-माधव"—कहि कहि माता,
सकुचति, आवति मुख नहि बाता।
आये नँद, औरहु सकुचानी,
रही चुपाय बिलखि नँदरानी।
तेहि क्षण उद्धव अवसर पायी,
नंदहिं सादर विनय सुनायी—
"असुर त्रास छायेउ पुर माहीं,
आयसु देहु, जाउँ हरि पाहीं।
कृष्ण अनादि, अरूप, अकारण,
नारायण, अच्युत, जग-तारण,
व्यापक ब्रह्म सदा सब पाहीं,
विरह-प्रसंग तहाँ कछु नाहीं।
अस मन गुनि हरि-पद सुखदायी,
सुमिरहु दोउ नित शोक विहायी।"

दोहा :— *कहि-कहि भक्ति-प्रसंग बहु, विविध ज्ञान-आख्यान,*
व्रजजन वंदि, प्रबोधि सब, उद्धव कीन्ह प्रयाण। १८३

उत दुर्मति यवनेश नसायी,
पहुँचे पुनि मधुपुर यदुरायी।

यवनन सुनेउ निधन यवनेशा,
गवने अमित त्रस्त निज देशा।
आये बहु यदुपति-शरनाई,
राखे पूर्व वैर बिसरायी।
शिविर, शस्त्र, धन, धान्य घनेरे,
लहे प्रजाजन यवनन केरे।
हरि-प्रेरित बहु पुर नर नारी,
वसे जाय आनर्त सुखारी।
इतनेहिं महँ उद्धव चलि आये,
व्रज-दुख-दुखी, विश्व बिसराये।
कहत व्यथा व्रज छलकत लोचन,
दुखी आपु सुनि सुनि दुख-मोचन।
वशीवट-प्रसग जब आवा,
विकल सचिव, हरि वचन सुनावा—

दोहा.— *"एकहि मैं अरु राधिका, द्वैत-भाव भव-भ्रान्ति,*
व्रजजन समुझि रहस्य यह, लहिहैं पुनि सुख-शांति।" १८४

अस कहि हरि सुहृदहिं समुझायी,
दीन्हेउ द्वारावती पठायी।
परे तबहिं रण-वाद्य सुनायी,
मगध-वाहिनी पुर चढि आयी।
कहेउ हलधरहिं हरि मुसकायी—
"चलहु सग मम पुरी विहायी।
मगधपति हारि सप्त-दश बारा,
आयेउ अन्तिम करन प्रहारा।
बचेउ न भारतवर्ष नरेशा,
लायेउ जेहि न सग मगधेशा।
ये महीप नहिं शत्रु हमारे,
येहू मगध त्रस्त, रण हारे।
होइहै भिरे समर अति भारी,
पइहैं कछु न इनहिं हम मारी।

तातें तात ! कहहुँ समुझायी,
आजु तजे रण भूरि भलाई।
बसि द्वारावति, शक्ति बढ़ायी,
करिहैं रण पुनि अवसर पायी।
लहि मगपतिहिं कतहुँ एकाकी,
लेहैं करि हमहू निज जी की।"
अस कहि गहि संकर्षण-हाथा,
पुर बाहर निकसे यदुनाथा।
आगे हरि, पाछे बलरामा,
अमज खिन्न, शान्त घनश्यामा।
असुर शिविर जैसेहि नियराने,
सैनिक इत उत देखि सकाने।
नृपतिन सुनेउ राम हरि आये,
शिविर-द्वार निज निज सब धाये।
'धावहु, धरहु'—कहत शिशुपाला,
बढ़ेउ संग लै कछुक भुआला।

दोहा :— मगधनाथ बरजेउ सबहि, बरनि यवन-पति नाश,
"घेरहु अरिहिं ससैन्य सब, मिलहि न कतहुँ निकास।" १८६

सुनत चले दोउ बंधु परायी,
चले ससैन्य नृपति पछियायी।
प्रेरत पल पल सकल महीशा,
धायेउ आपहु मगध-अधीशा।
लखि रिपु-रोष श्याम मुसकाहीं,
विरमि करत रण बहुरि पराहीं।
जात दूरि करि अरि-मद-भंगा,
तन-द्युति मिलति छितिज-रँग संगा।
फहरत पट पावत रिपु भासा,
धावत बहुरि, धारि उर आशा।
निरखि समीप महीप-समाजू,
होत अदृश्य बहुरि यदुराजू।

लखत अमर उत नभ हरि-करनी,
पुलकित परसि चरण इत धरणी।
छुअत मृदुल हरि-पद-जलजाता,
कंटक होत कुसुम, कुश पाता।

दोहा :— *होत सुगम कान्तार गिरि, सर सरि विरहित वारि,*
मेघ शीश छाया करत, श्रम-हर बहति बयारि। १६०

सोरठा:— *सामज धाय नगेश, चढ़े प्रवर्षण गिरि-शिखर,*
ठाढ़े घेरि नरेश, शैल-मूल सब सैन्य सह।

राजत शिला-खण्ड सुख-धामा,
राजत पार्श्व बंधु बलरामा।
पर-दिगाङ्गना भाल सोहावा,
उदित तिलक सम शशि मनभावा।
दमके शिर-किरीट, श्रुति-कुण्डल,
झलझल दल कपोल, मुख मण्डल।
मणि-द्युति-मण्डित मेचक केशा,
सुर-धनु-भूषित जनु घन-वेषा।
पिक मधु रव मुखरित गिरि कानन,
पुलकेउ दिव्य प्रभा प्रभु-आनन।
विस्मृत हरि रण, रिपु-समुदायी,
लखत व्योम महि सुन्दरताई।
परमानंद प्रकट अँग अंगा,
आत्म-मग्न हरि शान्ति अभंगा।
परत न श्रुति मगपति-दुर्वादा,
उत्तर देत शैल-प्रतिनादा।

दोहा :— *पल पल बढ़ी निशीथ पै, उतरे नहि यदुराय,*
गिरि चहुँ दिशि मगपति कुपित, दीन्हेउ अनल लगाय। १६१

सोरठा:— *बढ़ी ज्वाल उद्दाम, प्रेरेउ अनुजहि हलि विहँसि,*
गवने साग्रज श्याम, द्वारावति निज योग-बल।
जरेउ ज्वलित गिरि-देश, जरे जानि दोउ अरि अनल,
गये मुदित निज देश, मूढ़ मगेश, नरेश सब।

रक्त-पात नहिं मम उद्देशा,
उचित न वधव निरीह नरेशा।

दोहा :— *तातें सम्मति तात ! मम, निष्फल अब संग्राम,*
गवनहिं जो आनर्त हम, जइहैं रिपु निज धाम। १८५

जात हमहिं लखि पुरी विहायी,
जइहैं रिपुहु हमहिं पछियायी।
वचिहैं क्षति ते पुर यहि भाँती,
फिरिहैं निज निज देश अराती।"
नीति-युक्त यद्यपि हरि-वाणी,
सुनत अधीर राम अति मानी।
चितै बंधु तन कहेउ सक्षोभा—
"भाषत हरि! कस वचन अशोभा।
युद्ध सनातन क्षत्रिय-धर्मा,
समर-पलायन कायर-कर्मा।
तजहिं समर-महि हम जो आजू,
होहिं कलंकित शूर-समाजू।
विमल वंश यदु सुयश-विनाशा,
परिजन, पुरजन, राष्ट्र हताशा।
नगर नगर प्रति होहि हँसायी,
गये कृष्ण बलराम परायी।

दोहा :— *नासि कीर्ति कुल, लहि अयश, धारत जे जग प्राण,*
अधम श्वान सम ते मनुज, जीवित मृतक समान। १८६

सबल संग जो वैर बिसायी,
निवसत उदासीन गृह जायी,
सो समीप जनु पावक जारी,
सोवत अभिमुख प्रबल बयारी।
वैर जदपि सम रवि शशि साथा,
ग्रसत सतर्क राहु दिननाथा।

ग्रसत हिमांशु न लावत देरी,
सो महिमा सब प्रदिमा केरी।
औरहु प्रकट चंद्र-मृदुताई,
धारत मृगहिं अंक अपनायी।
तबहुँ न ताहि प्रशंसत सज्जन,
निंदत जगत कहत 'मृग-लाञ्छन'।
निठुर सिंह मृग-यूथ नसावत,
कहत मृगेश विश्व यश गावत।
रौंदत सब पद-तल लखि छारा,
सबहिं बचाय चलत अंगारा।

दोहा.—*नासि शत्रु, पद शीश धरि, करत शूर जब हास,*
पाय सुगम अवलम्ब तव, चढ़ति कीर्ति आकाश।" १८७

सुनि बिहँसे हरि पुनि समुझावा—
"हलधर-सुयश भुवन भरि छावा।
जानत रिपुहु शौर्य-बल-गाथा,
हारेउ रण पुनि पुनि मगनाथा।
क्षत-विक्षत मगधेश-शरीरा,
हरियर व्रण, आजहु उर पीरा।
सकहु नसाय नृपन पल माहीं,
सकहु सैन्य बधि संशय नाहीं,
उचित न तदपि सदा संग्रामा,
युद्ध, निरर्थक गर्हित कामा।
केवल बल श्वापद-व्यवहारा,
बुद्धि-युक्त मानव-आचारा।
बुद्धि-साध्य जब लगि नृप-कर्मा,
गहव युद्ध-पथ घोर अधर्मा।
बरनी मुनिन चतुर्विधि नीती,
उचित न एक दण्ड पै प्रीती।

दोहा.—*सोइ नृपति जो, तेज-युत, देत तदपि नहिं ताप,*
लरत जे भूपति नित्य उठि, ते वसुधा-अभिशाप। १८८

तातें तात ! कहहुँ समुझायी,
आजु तजे रण भूरि भलाई।
बसि द्वारावति, शक्ति बढ़ायी,
करिहैं रण पुनि अवसर पायी।
लहि मगपतिहिं कतहुँ एकाकी,
लेहैं करि हमहू निज जी की।"
अस कहि गहि संकर्षण-हाथा,
पुर बाहर निकसे यदुनाथा।
आगे हरि, पाछे बलरामा,
अग्रज-खिन्न, शान्त घनश्यामा।
असुर शिविर जैसेहि नियराने,
सैनिक इत उत देखि सकाने।
नृपतिन सुनेउ राम हरि आये,
शिविर-द्वार निज निज सब धाये।
'धावहु, धरहु'—कहत शिशुपाला,
बढेउ संग लै कछुक भुआला।

दोहा :— *मगधनाथ बरजेउ सबहि, बरनि यवन-पति नाश,*
"घेरहु अरिहि ससैन्य सब, मिलहिं न कतहुँ निकास।" १८६

सुनत चले दोउ बंधु परायी,
चले ससैन्य नृपति पछियायी।
प्रेरत पल पल सकल महीशा,
धायेउ आपहु मगध-अधीशा।
लखि रिपु-रोष श्याम मुसकाहीं,
विरमि करत रण बहुरि पराहीं।
उड़त दूरि करि अरि-पद-भंगा,
तन-द्युति मिलति छितिज-रँग संगा।
फहरत पट पावत रिपु भासा,
धावत बहुरि धारि उर आशा।
निरखि समीप महीप-समाजू,
होत अदृश्य बहुरि यदुराजू।

लखत अमर उत नभ हरि-करनी,
पुलकित परसि चरण इत धरणी।
छुअत मृदुल हरि-पद-जलजाता,
कंटक होत कुसुम, कुश पाता।

दोहा :— *होत सुगम कान्तार गिरि, सर सरि विरहित वारि,*
मेघ शीश छाया करत, श्रम-हर बहति बयारि। १९०

सोरठा:— *सामज धाय व्रजेश, चढ़े प्रवर्षण गिरि-शिखर,*
ठाढ़े घेरि नरेश, शैल-मूल सब सैन्य सह।

राजत शिला-खण्ड सुख-धामा,
राजत पार्श्व बंधु बलरामा।
पर-दिगाङ्गना भाल सोहावा,
उदित तिलक सम शशि मनभावा।
दमके शिर-किरीट, श्रुति-कुण्डल,
झलझल दल कपोल, मुख मण्डल।
मणि-द्युति-मण्डित मेचक केशा,
सुर-धनु-भूषित जनु घन-वेषा।
पिक मधु रव मुखरित गिरि कानन,
पुलकेउ दिव्य प्रभा प्रभु-आनन।
विस्मृत हरि रण, रिपु-समुदायी,
लखत व्योम महि सुन्दरताई।
परमानंद प्रकट अँग अंगा,
आत्म-मग्न हरि शान्ति अभंगा।
परत न श्रुति, मगपति-दुर्वादा,
उत्तर देत शैल-प्रतिनादा।

दोहा :— *पल पल बढ़ी निशीथ पै, उतरे नहिं यदुराय,*
गिरि चहुँ दिशि मगपति कुपित, दीन्हेउ अनल लगाय। १९१

सोरठा:— *बढ़ी ज्वाल उद्दाम, प्रेरेउ अनुजहि हलि विहँसि,*
गवने सामज श्याम, द्वारावति निज योग-बल।
जरेउ ज्वलित गिरि-देश, जरे जानि दोउ अरि अनल,
गये मुदित निज देश, मूढ़ मगेश, नरेश सब।

द्वारका काण्ड

सोरठाः—बसेउ वारिनिधि कोड़, रुकगात-भयभीत जो,
बंदहुँ सोइ रणछोड़, इष्टदेव आनर्त-जन।
सिन्धु-सुता अभिराम, असुर-त्रस्त-यदुजन-शरण,
बंदहुँ शुचि हरि-धाम, रमा-रूप द्वारावती।

बसे समुद यदुजन, यदुरायी,
असुर-अभेद्य पुरी मन भायी।
गहिर रसातल, भीमाकारा,
परिखा आपु पयोधि अपारा।
शैल-सलिल-अनुसरि प्राकारा,
सहज अगम्य, चक्र-आकारा।
श्रान्त मनहुँ भव-भार उठायी,
परिखा-मार्ग शेष महि आयी,

वप्र-स्वरूप धारि बल-धामा;
रच्छत हरि-पुर, लहत विरामा!
योजन-त्रय रैवतक पहारा,
योजन-त्रय वाहिनि-विस्तारा।
शत-शत सैन्य-व्यूह प्रति योजन,
व्यूह-व्यूह द्वारस्थ वीरगण।
द्वार-द्वार आयुध प्रलयकर,
अय कणप, चक्राश्म भयकर।

दोहा :— *धारि शक्ति, तोमर, परिघ, शूल, धनुष, करवाल,*
अष्ट प्रहर रहि भट सजग, रच्छत दुर्ग विशाल। १

जन-दृग-उत्सव, अरि-मद-गजनि,
माया-विरचित, हरि-मन-रजनि,
दुर्ग-समावृत पुरी-प्रसारा,
करति कला जहँ प्रकृति-सिँगारा।
सितमणि-रचित भवन, प्रासाद
सुधा, नयन आह्लाद
भूमि व्योम आलोक
वसत सुखी निशि कोक
हेतु गृह सौध सोहा
मणिन निर्म
न-रश्मि सम
निशि सुखद
हित बहु रम्यर
विपुल हर्म्
कण
शशि-चि

धूप-कपूर-धूम नभ जनु घन,
नर्तत शाखिन भ्रान्त शिखीगण।
मणिगण पण्य अगण्य विपणि पथ,
जन-समर्द, गजेन्द्र, वाजि, रथ।
किसलय, कोरक, लता, प्रताना,
फल-विनम्र तरुवर उद्याना।
बरसत यन्त्र-निबद्ध-कलश रस,
उपवन व्याप्त दिवस-निशि पावस।
कुक्कुट, किलकिल, चक्र, चरट वर,
खगगण्-कलकल-कलित सरोवर।
सागर-जलकण-सिक्त प्रभंजन,
वहत प्रबल श्रम-आतप-गंजन।
लहरत जलधि, बढ़त, घटि आवत,
दोल झुलाय पुरी जनु गावत।
गिरि-गौरव, सागर-गहराई,
द्वारावति सहजहि दोउ पायी।

दोहा :— *माया-निर्मित द्वारका, वसुधा विभव विशाल,*
मणि मुक्तन खेलत जहाँ, पथ-वीथिन पुर-बाल। ३
व्योम-विचुम्बित नृप-भवन, राजत ध्वज अभिराम,
फहरत, प्रेरत भानु-रथ, लहत अरुण विश्राम। ४

मगध-आक्रमण-त्रास बिसारी,
निवसति माथुर प्रजा सुखारी।
वारिधि-रच्छित यदुजन निर्भय,
यदुजन-रच्छित उदधि वीत-भय।
असुर, यवन जल-दस्यु अनेकन,
नासे क्रम क्रम हति, मधुसूदन।
विरहित म्लेच्छ वारिनिधि-द्वीपन,
बसे साहसिक जाय आर्यजन।
सागर-पथ प्रशस्त पुनि पायी,
प्रमुदित सांयानिक-समुदायी।

वप्र-स्वरूप धारि वल-धामा,
रच्छत हरि-पुर, लहत विरामा।
योजन-त्रय रैवतक पहारा,
योजन-त्रय वाहिनि-विस्तारा।
शत-शत सैन्य व्यूह प्रति योजन,
व्यूह-व्यूह द्वारस्थ वीरगण।
द्वार द्वार आयुध प्रलयकर,
अय कणप, चक्रारम भयकर।

दोहा — *धारि शक्ति, तोमर, परिघ, शूल, धनुष, करवाल,*
अष्ट प्रहर रहि भट सजग, रच्छत दुर्ग विशाल। १

जन स्वग-उत्सव, अरि-मद गर्जनि,
माया विरचित, हरि-मन रजनि,
दुर्ग-समावृत पुरी प्रसारा,
करति कला जहँ प्रकृति सिँगारा।
सितमणि रचित भवन, प्रासादा,
धवलित सुधा, नयन आह्लादा।
प्रसरत भूमि व्योम आलोका,
दिन-भ्रम बसत सुखी निशि कोका।
शिशिर हेतु गृह सौध सोहाये,
दिनमणि-कान्त मणिन निर्माये।
दिवस अंशुमत-रश्मि समायी,
वितरति ऊष्मा निशि सुखदायी।
ऋतु निदाघ हित बहु रम्यस्थल,
सलिल-यन्त्र-युत विपुल हर्म्यतल।
चन्द्रकान्त मणि निर्मित कण कण,
वितरत शैत्य द्रवत शशि किरणन।

दोहा — *भवन भवन मणि स्वर्णमय, कुड्यस्तम्भ कपाट,*
जाल, अर्गला, दहली, वलभी, वीथी, वाट। २

धूप-कपूर-धूम नभ जनु घन,
नर्तत शाखिन भ्रान्त शिखीगण।
मणिगण पण्य अगण्य विपणि पथ,
जन-समर्द, गजेन्द्र, वाजि, रथ।
किसलय, कोरक, लता, प्रताना,
फल-विनम्र तरुवर उद्याना।
बरसत यंत्र-निबद्ध-कलश रस,
उपवन व्याप्त दिवस-निशि पावस।
कुक्कुट, किलकिल, चक्र, वरट वर,
सचखग-कलकल-कलित सरोवर।
सागर-जलकण-सिक्त प्रभंजन,
वहत प्रबल श्रम-आतप-गंजन।
लहरत जलधि, बढ़त, घटि आवत,
दोल झुलाय पुरी जनु गावत।
गिरि-गौरव, सागर-गहराई,
द्वारावति सहजहिं दोउ पायी।

दोहा :— *माया-निर्मित द्वारका, वसुधा विभव विशाल,*
मणि मुकन खेलत जहाँ, पथ-वीथिन पुर-बाल। ३
व्योम-विचुम्बित नृप-भवन, राजत ध्वज अभिराम,
फहरत, प्रेरत भानु-रथ, लहत अरुण विश्राम। ४

मगध-आक्रमण-त्रास बिसारी,
निवसति माथुर प्रजा सुखारी।
वारिधि-रक्षित यदुजन निर्भय,
यदुजन-रक्षित उदधि वीत-भय।
असुर, यवन जल-दस्यु अनेकन,
नासे क्रम क्रम हलि, मधुसूदन।
चिरहित म्लेच्छ वारिनिधि-द्वीपन,
बसे साहसिक जाय आर्यजन।
सागर-पथ प्रशस्त पुनि पायी,
प्रमुदित सांयात्रिक-समुदायी।

भारत-पोत अनेक विधाना,
लागे करन विदेश प्रयाणा।
हरि-भुज-रक्षित वणिक प्रवासी,
लावत रौप्य, स्वर्ण, मणि-राशी।
जलनिधि-पश्चिम-तट-जन सारे,
भये अभय, श्री-सुवन, सुखारे।

दोहा :— *उदधि पार व्यापार हित, पुरी द्वारका द्वार,*
रत्नाकर ते बढ़ि भयी, मणि-रतन-भंडार। ५

उग्रसेन-उर आनँद भारी,
प्रभु-प्रसाद पाये फल चारी।
सकल सम्पदा सुरपुर केरी,
हरि-बल आय भयी नृप-चेरी।
स्वर्ग न लहत भोग जो सुरगण,
भोगत बसि द्वारावति यदुजन।
यदुकुल-गौरव-विभव सोहावा,
भुवन चतुर्दश नारद गावा।
ब्रह्मलोक पहुँची यश-गाथा,
निवसत जहँ रैवत नरनाथा।
सुता रेवती तासु कुँवारी,
अनवद्यांगि रूप-उजियारी।
लहि धाता-सम्मति, आदेशा,
आयेउ द्वारावती नरेशा।
ब्याही नृपति सुता बलरामहिं,
हलधर मुदित पाय वर वामहिं।

दोहा :— *उग्रसेन प्रमुदित हृदय, उत्सव सजेउ महान,*
शौरिहु धेनु सुवर्ण मणि, दीन्हे विप्रन दान। ६

एक दिवस प्रिय उद्धव साथा,
सुखासीन उपवन यदुनाथा।

उन्मुख अस्ताचल दिशि भानू,
ज्वलित जलधि-जल मनहुँ कृशानू।
ताहि समय इक द्विज शुभ वेषा,
प्रविशेउ उपवन श्रान्त विशेषा।
वसन धूलि-कण, गौर शरीरा,
मुख सतेज, पद-प्रगति अधीरा।
लखि समीप प्रभु आसन त्यागी,
प्रणमे साधु-सुजन-अनुरागी।
अभिनंदत पूछी कुशलाई,
भाषि 'स्वस्ति' द्विज विनय सुनायी—
"नाथ ! विदर्भ देश मम वासू,
नृप भीष्मक यश-शौर्य-निवासू।
रुक्मि भूप-सुत दारुण जनु फणि,
सुता भुवन-भामिनि-मणि रुक्मिणि।

दोहा :— *कुमुद देह, पूर्णेन्दु मुख, कर पद उषा-विलास,*
वेणि श्रेणि अलि, मधु अधर, शरद् चंद्रिका हास। ७

सोरठा :— *नाथ विमल यश गान, सुनि नारद-मुख पितु-भवन,*
धरति दिवस निशि ध्यान, अर्पित तन मन प्रभु-चरण।

दर्पी रुक्मि कुमति, कुल-पांशू,
सखा असाधु, मगधपति-दासू।
भगिनि-मनोरथ सुनि वरियायी,
सुहृद चैद्य सँग रची सगाई।
सुत-हठ हारि सकेउ नहिं राजा,
साजे सब विवाह हित साजा।
रुक्मिणिहू भीषण प्रण ठाना,
वरहुँ हरिहिं, नतु त्यागहुँ प्राणा।
निश्चित दिवस तृतीय विवाहू,
हाथ द्वारकानाथ निबाहू।
उत शठ-हठ, इत भक्त-प्राण-प्रण,
अशरण-शरण तुमहि कह मुनिजन।

प्रणत-पाल प्रभु ! विरुद तुम्हारा,
करहु धाय निज जन-उद्धारा।
सुरपति-गर्व खर्वि खगरायी,
हरि अमृत जिमि महिमा पायी,

दोहा :— *तिमि दलि नृप-मण्डल सकल, सहित चैद्य मगनाथ ,*
हरि रुक्मिणि वसुधा-सुधा, सुयश लहहु यदुनाथ !" ८

विप्र वचन सुनि हरि मन आयी,
गिरा जो मालव-रानि सुनायी।
हास-सुमन पत्राधर फूला,
मन अनुकूल, वचन प्रतिकूला—
"नृप-सुत मैं न सुनहु द्विजदेवा!
भरहुँ उदर नित करि पर-सेवा।
राज-त्रास मम शैशव बीता,
अजहुँ बसहुँ जल मगपति-भीता।
ग्रन्थि सनेह संग मम जोरी,
पति-सुख चहति कुँवरि अति भोरी।
उदासीन जे धन नहिं गेहा,
निर्मम, पुत्र कलत्र न नेहा,
सबल संग हठि ठानत रारी,
आत्म-तोष जे नित्य सुखारी,
चरित अचिन्त्य सदा जिन केरे,
तिन सँग प्रीति क्लेस घनेरे।

दोहा :— *वश-विभव-सम्पन्न वर, त्यागि चैद्य शिशुपाल ,*
करति उचित नहि नृप-सुता, देति मोहि वरमाल !" ९

सोरठा—*"प्रभु कौतुक-आवास"—बोलेउ विहँसि सुबुद्धि द्विज ,*
"कीन्ह नाथ परिहास, भयेउ पूर्ण अब काज मम।

प्रकटा प्रभु जो निज लघुताई,
सो सब नारद पहिलेहि गायी।

निर्मम नाथ न यहि संदेहू,
साँचहु उदासीन, विनु गेहू।
अप्रिय तुमहिं राज-पद स्वामी!
तबहुँ लोक-त्रय पद-अनुगामी।
सोउ नाथ! नहिं नूतन गाथा,
गहि यह नीति भये सुरनाथा।
करत शचीपति नित सेवकाई,
तबहुँ आपु वासव लघु भाई।
कहेउ जो करत उदर यहँ पोषण,
सोउ नाथ! नहिं अभिनव दूषण।
सागर प्रिय ससुरारि तुम्हारी,
युग युग ते तहँ बसत सुखारी।
युद्ध त्यागि वारिधि दिशि पाँयन,
का अचरज जो कीन्ह पलायन!

दोहा :— *अनुचित एकहि बात प्रभु! बसत आपु जेहि गेह,*
तासु सुता रुक्मिणि-रमा, दुखित अनत धरि देह। १०

ताते करि मम वचन प्रतीती,
करहु सफल प्रभु! रुक्मिणि-प्रीती।
भीष्मक-उर मगधपति-भय भारी,
माँगे देहिं न राजकुमारी।
एकहि भाँति नाथ! उद्धारा,
हरहु कुँवरि करि पुर पैठारा।"
उद्धव मुग्ध सुनत द्विजवाणी,
कहेउ विप्र सन सारँगपाणी—
"अब मैं समुझि भेद सब पावा,
कौतुक नारद चहत रचावा।
जीवन्मुक्त जदपि मुनिरायी,
रचत समर कहुँ, कतहुँ सगाई।
यह सर्वोत्तम रचेउ प्रसंगा,
समर विवाह दोउ इक संगा!

सकल को नारद खेल विगारी,
परिहौं वेगि विदर्भ-कुमारी।

दोहा :— *करहु विप्र द्वारावती, आजु रात्रि सुख वास,*
होत प्रभात विदर्भ-दिशि, हम सब करव प्रवास।" ११

अस कहि सेवक-वृन्द बोलायी,
विप्रहिं वास दीन्ह सुखदायी।
पुनि भूपति सन मंत्र दृढ़ावा,
वृत्त सकल यदुजनन सुनावा।
सुनि कह हलधर समर विशारद—
"नहिं हित-चिन्तक जस मुनि नारद।
तजि रण कीन्ह अयश हम अर्जन,
भये हास्य-आस्पद जग यदुजन।
निज गौरव, कुल-कीर्ति नसायी,
आय वारिनिधि रहे दुरायी।
अवसर उचित मुनीश विचारा,
कुँवरि संग कुल-यश-उद्धारा।
कुण्डिनपुर विदर्भ-रजधानी,
जुरिहैं नृपति, सैन्य, सेनानी।
मथुरा-विजय-मत्त मगनाथा,
अइहैं स-बल चेदिपति साथा।

दोहा :— *भंजि विवाह, प्रचारि अरि, गंजि मगधपति-मान,*
रंजि जनेश-कुमारि हम, लहिहैं सुयश महान।" १२

राम-गिरा सात्यकि मन भायी,
हर्ष न यदुजन-हृदय समायी।
प्रमुदित उद्धव वचन सुनावा—
"यदुकुल-उदय समय पुनि आवा।
परम अनुग्रह केशव कीन्हा,
लाय निवास हमहिं यहँ दीन्हा।

गिरि-जल-परिवृत पुरी हमारी,
सहजहि सकत रच्छि तेहि नारी।
एकहि संशय मम मन माहीं,
बिसरि न कहुँ हम अरि निज जाहीं।
जेहि भय यदुजन तजेउ स्वदेशा,
जियत सो अवहुँ अधम मगधेशा।
अजहुँ नृपति बहु आर्य-वंश के,
निवसत वंदी-भवन मगध के।
कीन्हे बिनु समूल रिपु-नासा,
गरल शान्ति-सुख, भोग-विलासा।

दोहा :— *तातें मम मत हरि कुँवरि, निदरि चैद्य मगधेश,*
असुर-त्रस्त धरणिहिं बहुरि, देहु मुक्ति-सन्देश। १३
वह्नि-शिखा नव जिमि लहत, होत अरणि-संघर्ष,
लहहि हरिहु वैदर्भि करि, शस्त्र-धर्ष सामर्ष।"१४

लखि व्याकुल निज कुल रण हेतू,
कहे वचन मृदु शान्ति-निकेतू—
"समरांगण-प्रिय अग्रज मानी,
उद्धव नीति-परायण, ज्ञानी।
सहमत दोउ कार्य जेहि माहीं,
उचित सतत सो संशय नाहीं।
तदपि अजेय अवहुँ मगधेशा,
सुहृद, सैन्य, सामन्त अशेषा।
अकस्मात इत उत हम पायी,
सकत समर-महि ताहि हरायी।
पै बिनु लहे अन्य नृप संगा,
संभव नहिं मागध-बल भंगा।
विदलित भगिनि-मनोरथ पदतल,
व्याहत चैद्यहिं ताहि रुक्मि खल।
तातें लोक-नीति अनुसारा,
हरण रुक्मिणी धर्म हमारा,

दोहा :— *पै जो मागध, चेदिजन, करहिं न पथ-अवरोध,*
फिरहिं हमहु आनर्त दिशि, बिनु रण वर विरोध।" १५

निश्चित गुनि विदर्भ समामा,
दीन्हेउ हरिहिं न उत्तर रामा।
नृपति-निदेश पाय पुनि प्राता,
चले वाजि, गज, रथ-सघाता।
शमित अब्धि-ध्वनि, भरि गिरि कंदर,
उत्थित पटह-निनाद भयंकर।
शैल-उपल गज ओट दुराने,
नांघि विटप ध्वज नभ फहराने।
मेघपुष्प, सुग्रीव, बलाहक,
शैब्य वाजि वर हरि-रथ-वाहक।
हाँकत दारुक मनहुँ उड़ाहीं,
करत पार गिरि, नद, नदि जाहीं।
पहुँचे कुण्डिनपुर हरि आगे,
सुनि रिपु नृप जनु सोवत जागे।
'होहि विघ्न,'—कहि प्रकटहिं शंका,
व्याप्त शिविर प्रति हरि-आतंका।

दोहा :— *मुदित हृदय भीष्मक नृपति, कीन्हेउ स्वागत धाय,*
लब्ध सुधा छवि मुग्ध जन, रहे पुण्य बरसाय। १६

नूतन राजभवन नृप लायी,
दीन्हेउ हरिहिं वास सुखदायी।
क्रम क्रम वृत्त सकल प्रभु पावा,
मगपति सहित चैद्य जिमि आवा।
वाहिनि वीर रथ्य रथ संगा,
वाजि-वृन्द, रणधीर मतंगा।
बधु-वर्ग, बहु अन्य महीशा,
भौम, शाल्व, पौण्ड्रक अवनीशा।
दंतवक्र, जयद्रथ, मद्रेशा,
विंद, अनुविंद, कलिङ्ग नरेशा।

दुर्योधनहु सुनत तिन साथा,
चिंतित कछु निज मन यदुनाथा।
पाण्डु-निधन पुनि परेउ सुनायी,
पृथा ससुत जिमि गजपुर आयी।
वसत अंध धृतराष्ट्र सिँहासन,
दुर्योधनहि करत महि-शासन।
धन, यौवन, प्रभुता, अविवेकू,
जुरे सकल, नहि अंकुश एकू।

दोहा :—*भीष्म-भुजन-बल आजु लगि, भरतवंश स्वाधीन,*
भेद-दक्ष मगधेन्द्र अब, चाहत करन अधीन। १७

एकछत्र भारत महि राजू,
भोगेउ भरतवंश नरराजू।
करि अधीन अब कुरुजन-जनपद,
चहत मगधपति सार्वभौम-पद।
दुर्योधनहु स्वार्थ निज लागी,
जात जरासँध-शरण अभागी।
पाय मगधपति-शक्ति-सहारा,
हरन चहत पाण्डव-अधिकारा।
कुन्ती-सुत निज बधु विचारी,
तर्क वितर्क मग्न असुरारी।
द्वारावती-सैन्य सह तेहि क्षण,
पहुँचे कुण्डिनपुर सब यदुजन।
रामहिं हरि सब कथा सुनायी,
लीन्हे सुफलक-सुवन बोलायी।
कहि, "लावहु पाण्डव-कुशलाता",
पठये गजपुर दिशि जन-त्राता।

दोहा :—*गवने इत अक्रूर, उत, रुक्मिणि गौरि निकेत,*
गवनी पूजन हित विपिन, माता सखिन समेत। १८
बाजत मंगल-वाद्य बहु, मर्दल, शंख, मृदंग,
विविधायुध सनद्ध भट, अँग रक्षक बहु संग। १९

कलित-वसन-भूषण, गज-गामिनि,
मंगल-गीत-मुखर द्विज-भामिनि।
मागध, बंदी, सूत अनेकन,
पढ़त प्रशस्ति, करत अभिनंदन।
विरत-महोत्सव राजकुमारी,
गवनति श्याम-मूर्ति उर धारी।
सुमिरत पद पद प्रभु-गुण-ग्रामा,
प्रविशी विधुधर-सुन्दरि-धामा।
करि भव-सहित भवानी-मज्जन,
धूप, दीप, मालाक्षत-अर्पण,
रुचिराम्बर भूषण पहिरायी,
सजल नयन वर विनय सुनायी—
"दम्पति तुमहि पुराण विश्व के,
प्रणयिन-उर जानत दोउ नीके।
दया-निकेत, जगत-पितु-माता,
होहु मनोवांछित वर-दाता।"

दोहा :— *विनवति इत ईश्वरि-शिवहि, रुक्मिणि धरि पद माथ,*
उत सुनि उपवन आगमन, जुरे प्रजा, नरनाथ। २०

सोरठा:— *अग्रज सह यदुनाथ, शोभित राज-समाज-मणि,*
शस्त्र-सुसज्जित साथ, अगणित यादव वीरगण।

सखिन सहित करि कुल-आचारा,
मंदिर-द्वार कुँवरि पगु धारा।
कौमुदि जनु नभ महि छिटकायी,
तारक-युक्त पूर्णिमा आयी।
सद्यस्नात अंग उजियारे,
शुभ्र वसन, मणि भूषण धारे।
घन-जल-पूत मही जनु सोहति,
कास-सुमन-संयुत मन मोहति।
अभिनव पल्लव पद मनहारी,
हस्त अरुण अंबुज-रुचि-धारी।

कुडमल कुन्द राग द्युति दशना,
मध्य मृगेश, हंस-स्वर रशना।
अलक अवलि अलि श्याम सोहायी,
छहरि ललाट अर्ध-विधु छायी।
मंद समीरण-विलुलित अंचल,
मनहुँ मनोभव-केतन चंचल।

दोहा :—*शैलसुता-गृह-द्वार जनु, सहसा उदित मयंक,*
बद्ध-विलोचन मुग्ध जन, पुरजन, राजा रंक। २१

गति मानस-वन-कमल-विहारी,
मंजुल मद मराल अनुहारी।
मृदु मंजीर-निनद श्रुति-उत्सव,
वीक्षण जनु शर तीक्ष्ण मनोभव।
हरि-दर्शन उत्कंठित वामा,
उठे नृपन दिशि दृग अभिरामा।
प्रकटित सद्यः तूण, ज्वलंता,
बरसे मनसिज-बाण अनंता।
गत-गांभीर्य, भ्रान्त नरनाथा,
खसे हस्त-आयुध धृति साथा।
नष्ट ज्ञान, निश्चेष्ट शरीरा,
विस्मृत आत्म महिप रणधीरा।
लखत नृपति शत नयनन जानी,
हरि-अनुरक्त कुमारि लजानी।
उत्तरीय निज विकल सँभारी,
भाल अलक कर वाम निवारी,

दोहा :—*लखे मृगाक्षी सन्मुखहि, पुरीकाक्ष यदुवीर,*
वदन क्षपापति, वक्ष वर, जलधर-स्वच्छ शरीर। २२

रस शशि-रश्मि-प्ररोह प्रजाता,
सिंचित मनहुँ वाम वर गाता।

विगत दिवस-निशि विरहज तापा,
आनँद परम रोम प्रति व्यापा।
देखे कुँवरि बहुरि यदु-पुगव,
आवत मद मनहुँ कण्ठीरव।
लखत चित्रवत राज-समाजू,
गवने सुमुखि-पार्श्व यदुराजू।
युग-युग परिचित लोचन चारी,
मिले अभिन्न निजत्व विसारी।
पुरजन मुग्ध निरखि वर जोरी,
बिसरे निमिप-पात, मति भोरी।
लहि सकर्षण-इगित तेहि क्षण,
लायेउ हरि ढिग दारुक स्यदन।
हस्त प्रशस्त भक्त-वर-दाता,
बढेउ कुँवरि दिशि त्रिभुवन-त्राता।

दोहा.—*पुलक-जाल, प्रस्वेद-जल, ललित बालमणि-हाथ,*
गहेउ मृदुस्मित-मुग्ध-मुख, मुकुलित-दृग यदुनाथ। २३

सोरठा—*स्यदन कुँवरि चढाय, पाचजन्य-रव भरि भुवन,*
जनु नृप सुप्त जगाय, गवने जन-जय-मध्य हरि।
गवने रामहु सग, गवनी यादव वाहिनी,
चैध स्वप्न-सुख भग, कहत मगेशहि आर्त स्वर—

"अछत आपु, महि-रत्न भुआला,
हरि नृप-सुता जात गोपाला।
करत शख-ध्वनि सर्वाहि प्रचारी,
धिक आयुध! धिक शक्ति हमारी!
जाहिं जो गृह बिनु तिय उद्धारे,
हँसिहैं प्रजा, भूप रिपु सारे।"
सुहृद वचन सुनि सजग मगेशा,
'धरहु धाय खल', दीन्ह निदेशा।
कहि कहि, "विरमु गोप! आभीरा"!
धाये स-दल नृपति रणधीरा।

पहुँचे हरि समीप पछियायी,
बरसे आयुध, इषु भरि लायी।
फेरेउ मुख यदु-कलहु प्रचण्डा,
कर्पित ज्या गरजे कोदण्डा।
कुपित हरिहु, हलधर, युयुधाना,
प्रेरे निशित प्रज्वलित बाणा।

दोहा :— *परिपंथी-नृप-चक्र पै, बरसे भल्ल अथोर,*
अर्धचंद्र, नालीक, क्षुर, शृंग, शिलीमुख घोर। २४

हत पदाति, विदलित मातंगा,
भिन्न पंक्ति रथ, छिन्न तुरंगा।
खण्डित मस्तक, भग्न कपाला,
दिशि दिशि कीर्ण शिरोरुह-जाला।
शकलित कर्ण, कण्ठ, वक्षस्थल,
पातित हस्त, जानु, जघनस्थल।
भ्रष्ट मुकुट, कुण्डल, तनुत्राणा,
हस्तावाप, विभूषण नाना।
दीर्णित पट्टिश, प्रास, चर्म, असि,
पातित छत्र, पताका चहुँ दिशि।
विस्मृत जय-स्वर, वीरालापा,
वारित बंदी-सूत-प्रलापा।
कुण्ठित पणव-पटह-झंकारा,
हय-हेषा, कुंजर-चिग्घारा।
छिन्न-भिन्न मागध चतुरंगा,
त्रस्त नृपति क्षत-विक्षत अंगा।

दोहा :— *समर-मही शोणित-नदी, प्रचलित विपुल कबंध,*
उड़त गृद्ध, जंबुक फिरत, कंपित मज्जा-गंध। २५

सोरठा.—*मागध-मुख्य भुआल, धिक्कारत इक एक कहँ,*
दारुण व्रणन-बिहाल, गलित-गर्व रण-महि तजी।

रुक्मिणि मुदित विलोकति श्यामू,
धृत जनु कार्तिकेय वपु कामू।
भृकुटि-भंग मुग्धानन भ्राजत,
अलि उद्भ्रान्त कमल जनु राजत।
प्रलपत उत हत-तेज भुआला,
इक रुक्मिहि अति कुपित, कराला।
वरजेउ जनकहु खल नहिं माना,
खड्ग उठाय महा प्रण ठाना—
"सकहुँ उधारि भगिनि जो नाहीं,
धरहुँ न पद पुनि पितु-पुर माहीं।
जइहैं जहँ जहँ खल गोपाला,
गहिहौं प्रविशि व्योम पाताला।"
अस कहि रथ बढ़ाय रिस राता,
धायेउ हठी, मूढ़, मद-माता।
"विरमु चोर! आभीर!"—पुकारत,
जनु गोमायु मृगेन्द्र प्रचारत।

दोहा :—*लखि श्रमज आकुल कुँवरि, पत्राधर परिम्लान,*
कपित तनु, आहत-मरुत, वल्ली कल्प समान। २६
लखति कबहुँ निज प्राण-धन, कबहुँक वधु अधीर,
आवत जस जस पास रथ, उमहत नयनन नीर। २७

क्रम-क्रम पहुँचि निकट हरि-स्यंदन,
कहे रुक्मि दुर्वचन अनेकन—
"को तैं शठ? को तोहिं जन्मावा?
कहँ खल! शैशव-काल वितावा?
वश, शील, यश, वैभव-हीना,
शाठ्य-निरत, मर्याद-विहीना।
मायहि केवल महिमा तोरी,
लाज न हरत कुँवरि बरजोरी।
कीन्ह विमल मम कुल-अपमाना,
जात कहाँ सकुशल लै प्राणा?

सकत न चलि माया मम संगा,
करत अबहिं शर-ज्वाल पतंगा।"
औरहु कहत अवाच्य घनेरे,
धरि धनु रुक्मि प्रखर शर प्रेरे।
तकि तकि शर-प्रवाह बरसावा,
विद्ध बाहु हरि शोणित-स्रावा।

दोहा — *अश्रु भरे रुक्मिणि-नयन, भये सरोष अँगार,*
इक कर पोंछति हरि-रुधिर, इक लोचन-जल-धार। २८
ज्वलित-हुताशन-मूर्ति हरि, प्रेषे शिततम बाण,
हत हय सारथि, महि पतित, धनु,अंगुलि-तनु-त्राण। २९

सोरठा — *धायेउ रोष अशेष, खड्ग-हस्त खल त्यागि रथ,*
गहे झपटि हरि केश, हरी ढाल-करवाल दोउ।

लै सोइ खड्ग जबहिं निज हाथा,
चहेउ वधन रुक्मिहिं यदुनाथा,
हरि चरणारविन्द गहि धायी,
विलपत रुक्मिणि विनय सुनायी—
"देवदेव तुम, यह अज्ञानी,
विभु-सामर्थ्य सकेउ नहिं जानी।
माँगहुँ अग्रज-प्राणन-दाना,
भुवन-शरण्य छमहु भगवाना।"
अस कहि परी चरण तल दीना,
दारु नारि जनु तनु-विहीना।
गद्‌गद गिरा, कण्ठ-अवरोधा,
दृग जल, उष्ण श्वास, गत बोधा।
अँग-प्रकम्प, चल वेणि-कलापा,
नख-शिख वाम महा भय व्यापा।
करुणहि आपु मनहुँ धृत काया,
क्रन्दति, याचति गहि पद दाया।

दोहा :— *द्रवित दयानिधि, वध-विरत, बाँधेउ रथ आराति ,*
काढे कुवचन सल तबहु, रहि कहि, 'गोप! कुजाति'। ३०
"जानत मोहि भल तुवभगिनि",-भाषेउ विहसत श्याम ,
"पूछत तेहि नहि मूढ ! कस, वश, नाम, मम धाम !" ३१

सोरठा—*सरस कृष्ण-परिहास, मौन मूढ रुक्मिहु सुनत ,*
झलकेउ ईषत हास, सलज, सजल, रुक्मिणि-दृगन ।

कीन्ह भोजकट हरि विश्रामा ,
अनुजहिं धाय मिले बलरामा।
आयी यादव सेनहु सारी ,
मोद अपार, विजय-ध्वनि भारी।
यदु-भट एकहिं एक बखानी ,
कहत सुनत निज शौर्य-कहानी।
विहँसत बरनत शत्रु-पलायन ,
भागे विरथ भूप जिमि पाँयन।
जित अरि रामहु रोष-विहीना ,
उर सकरुण लखि रुक्मिहिं दीना।
हरिहिं बुझाय बधु-अनुरागी ,
कीन्ह मुक्त नृप सुवन अभागी।
हठी रुक्मि लज्जित मन माहीं,
गयेउ बहुरि कुण्डिनपुर नाहीं।
सहज शत्रु निज कृष्णहिं मानी ,
बसेउ भोजकट करि रजधानी।

दोहा :— *चली बहुरि यदु-वाहिनी, करि भोजन विश्राम ,*
प्रियहिं दिखावत दृश्य पथ, हाँकेउ निज रथ श्याम। ३२

मंजुल रुक्मिणि, मंजुल मोहन ,
मंजुलतम रुक्मिणि-मनमोहन।
मंजुल महि, मंजुल आकाशा ,
मंजुल विश्व वसन्त-विलासा।

जीवित, जाग्रत, खग-रव-मुखरित,
वन मंजुल लहि तरु मन-वाछित।
वन-तनु तरुण, भरित नव प्राणन,
तरुहु मंजु लहि अभिनव पर्णन।
तरु-शिर-छत्र, मृदुल, मनभावन,
पर्णहु मंजुल लहि नव सुमनन।
पर्ण-आभरण, कान्ति-निकेतन,
सुमनहु मंजुल लहि मधु नूतन।
सुमन-सुधा, मधुकर-आकर्षण,
मधुहु मंजु लहि नूतन रज-कण।
मधु-सौहार्द-समृद्ध, समुज्ज्वल,
रजहु मंजु लहि नूतन परिमल।

दोहा :— *लहि परिमल दक्षिण अनिल, शीतल, मलयज, मद,*
विहरि भुवन कण-कण भरत, नवस्फूर्ति सानंद। ३३

गत नीहार, वारिधर, दामिनि,
दिन सुखोष्ण, सुख-शीतल यामिनि।
कान्ति हरितमणि मही विहायी,
स्वर्णिम शस्य-विपाक सोहायी।
पर्ण अशोक विलोचन-मोहन,
वन-श्री-चरण-अलक्तक शोभन।
शाल समुन्नत, हरित चिरंतन,
शोभित लब्ध पिङ्ग लघु सुमनन।
पुष्पित सुरभि-भवन संतानक,
काञ्चन-कान्ति, समुज्ज्वल चंपक।
विकसित विपिन बकुल मधुरासव,
झंकृत अलि-कुल पान-महोत्सव।
फुल्ल पलाश लाल वन-माला,
जग ज्वलत जनु मनसिज-ज्वाला।
मुकुलित विपिन छाय सहकारा,
सुरभि-प्रभाव भुवन सविकारा।

दोहा :— *कुसुमित मधु-निधि माधवी, कुसुमाकर-शृङ्गार,*
पुलकित लहि अँग-सँग अनिल, अलि-चुम्बन-गुआर। ३४
मही सुमन, सरि सर सुमन, शून्यहु सुरभि प्रसार,
चलेउ सुमनशर मित सुमन, मनहुँ छाय संसार। ३५

नव उत्कंठा विह्वल प्राणी,
स्वरित विपिन विहगहु बहु वाणी।
गावत मधुर मंद ध्वनि खंजन,
'पिउ! पिउ!' रटत पपीहा वन वन।
पर्ण-निकुंज पुत्रप्रिय हूकत,
भरि स्वर हृदय-हूक जनु फूँकत।
हेमकार निज 'ठुक, ठुक'-माता,
प्रकटत उर मनसिज-आघाता।
विहरत व्रतति-पुञ्ज अति चंचल,
गावत भृंगरोल नीलोज्ज्वल।
बिन्दुरेखकहु कुञ्जन गावत,
छादन छहरि सुछवि दरसावत।
सघन पर्ण-पुट दुरि तन्वंगिनि,
भरति हृदय मधु राग सुभाषिणि।
बरसत दहियर प्राण उमंगा,
सावित महि, गिरि, नभ स्वर-गंगा।

दोहा :— *कूजति, क्रीड़ति मंजरिन, कोकिल अलि-कुल-संग,*
वादत जनु जय-दुन्दुभी, विजयी भुवन अनंग। ३६

धृत कहुँ परिणय-हित नव चीरा,
खोजत चातक प्रियहिं अधीरा।
कतहुँ पंच दश मिलि इक संगा,
जुरे स्वयंवर हेतु भोजंगा।
गाय गाय सब प्रिया रिझावत,
गावत अधिक वधू सोइ पावत!
नाद-होड़ जनु फिरि फिरि होई,
सब निज कहत, सुनत नहिं कोई

नीलकंठ बँधि मनसिज-पाशा,
प्रेयसि-संग उड़त आकाशा।
रीझि रिझावत उड़ि विधि नाना,
स्वरित प्रणय-आदान-प्रदाना।
शुक-ढिग शुकिहु मनोभव-भोरी।
प्रकटति छवि बहु विधि अँग मोरी।
शुकहु रीझि शुकि-शिर सोहरायी,
प्रकटत मुद पुट चंचु मिलायी।

दोहा:—*मृगहु शृङ्ग-सोहराय मृगि, रहेउ पुलक उपजाय;*
कुसुम-चषक मधु प्रेयसिहि, मधुपहु रहेउ पियाय। ३७

सोरठाः—*लहन हेतु पुनि अग, करि सकाम हरि-रुक्मिणिहि,*
व्यापेउ मनहुँ अनग, आकुल करि अणु अणु भुवन।
लीलापति मुसकात, सलज कुँवरि लखि काम-कृति,
जानेउ समय न जात, पहुँचेउ रथ द्वारावती।

सुनत उग्र नृप नेह-निकेतू,
सचिव, स्वजन, वसुदेव समेतू,
परिवृत पौर-प्रमुख-समुदायी,
मिलेउ हरिहिं पुर बाहर आयी।
बन्दि नृपति-पितु-पद यदुनाथा,
प्रविशे पुर वैदर्भी साथा।
लखि जन त्रिभुवन-तिय-मणि रुक्मिणि,
सुषमा-अवुधि, कान्ति-तरंगिणि,
पुलकत कहत एक इक पाहीं—
"यह इन्दिरा, अन्य कोउ नाहीं।
प्रकटी पूर्व हरिहिं मथि जलनिधि,
लही आजु पुनि मथि रण-वारिधि।"
करत मधुर आलाप नगर-जन,
पहुँचेउ राज-द्वार हरि-स्यंदन।
मुदित देवकी वधू विलोकी,
अनँद-अश्रु सकति नहिं रोकी।

दोहा :— शोधि धरी शुभ गर्ग मुनि, कीन्हे परिणय-कृत्य ,
सुसरित पुण्या यदुपुरी, मंगल-गायन-नृत्य । ३८
लोक-रीति श्रुति-विधि यथा, करि साक्षी हविवाह ,
प्रणयिनि माया सँग भयेउ, मायानाथ-विवाह । ३९

सोरठा.—हर्ष-उदधि भरपूर, सुख-निमग्न आनर्त इत ,
प्रभु-प्रेरित अक्रूर, पहुँचे उत कौरव-पुरी ।

पुरी हस्तिना सुरसरि-रम्या ,
लिखित व्योम-पथ मंदिर-हर्म्या ।
भरतवंश - नृपगण - सन्मानी ,
युग-युग भरतखण्ड-रजधानी ।
आर्यजाति - इतिवृत्त - आयतन ,
मुदित बभ्रु लखि पुरी पुरातन ।
करत पाण्डुसुत-भवन प्रवेशू ,
भये व्यथित लखि पृथा-कुवेषू ।
असमय गत-धव, दव जनु जारी ,
चीन्हि परति नहिं शूर-कुमारी ।
आनन म्लान, लता तनु क्षीणा ,
शीश शिरोरुह-सुमन-विहीना ।
वसन श्वेत, भूषण अँग नाहीं ,
अचल कपोल पाणितल माहीं ।
दिवस-उदित मानहुँ शशिलेखा ,
गत द्युति, शेष रही कछु रेखा ।

दोहा —पितृलोक-गत प्राणपति, मनोकामना जानि ,
लखि बालक पाण्डव सकल, भयी न सती सयानि । ४०

बभ्रु विलोकत व्याकुल धायी ,
मिली विलोचन वारि बहायी ।
पूछि निखिल यदुकुल-कुशलाता ,
कहति, "दीन्ह दुख मोहि विधाता ।

सुत मम बाल, काल कठिनाई,
पति सुरपुर, नहि कोउ सहायी।
नृपति सुतन-वश, नेत्र-विहीना,
नीति - अनीति - विवेकहु - हीना।
द्वेषत सब मम वत्स सुयोधन,
चहत अनाथ राज्य-हित नासन।
सहहुँ सुतन सह नित नव त्रासा,
वृक-वन करहुँ मृगी जिमि वासा।"
विलपति कुन्ती व्यथा घनेरी,
करि सुधि पितु-कुल, परिजन केरी।
अक्रूरहु कुल-वृत्त सुनावा,
कंस-त्रास जिमि कृष्ण नसावा।

दोहा :— *बरने मगपति-आक्रमण, काल यवन-अवसान,*
कीन्हेउ हरि जिमि लै स्वजन, द्वारावती प्रयाण। ४१

"करुणा-धाम, विश्व-सुखकारी,
सकत कि श्रीहरि स्वजन विसारी।"
अस कहि प्रभु-प्रेषित उपहारा,
दीन्हेउ मणि सुवर्ण भंडारा।
तेहि क्षण पाँचहु पाण्डव आये,
सुर-अग्रज, वर वेष सोहाये।
ज्येष्ठ युधिष्ठिर शान्त, गँभीरा,
भीम द्वितीय बलिष्ठ शरीरा।
अर्जुन श्याम-कान्ति छवि छायी,
बल-सौष्ठव-सँयोग सुघराई।
सुतनु नकुल सहदेवहु भ्राता,
बुधि-बल-खानि, माद्रि-अँगजाता।
तेज-पुञ्ज सब पाण्डु-कुमारा,
बभ्रु-हृदय लखि मोद अपारा।
प्रणत पाँचहू हृदय लगायी,
कहि मृदु वचन प्रीति उपजायी।

दोहा :— *निरखि प्रणय हिलमिलि सकल, पूछत गोविँद-नाथ ,*
कहत नकुल—"केहि विधि धरेउ, गोवर्धन हरि हाथ ?" ४२

गर्व-गिरा सुनि भीम उचारी—
"सकत महूँ लघु गिरि कर धारी।"
भाषेउ अर्जुन, "शर बल सारा ,
सकहुँ ढहाय सुमेरु पहारा।"
कहेउ युधिष्ठिर, "तुम अभिमानी ,
श्रीहरि-कथा सुनी नहिं जानी।
धरि कर गिरि हरि गोप बचाये ,
देत गरजि तुम गिरिहि ढहाये।"
विहँसे सुनि अक्रूर सुवाणी ,
सुत-प्राणा कुन्तिहु मुसकानी।
नत-मस्तक अति पार्थ लजाने ,
समुझि चूक निज मन पछिताने।
लखि अग्रज-अनुशासित भ्राता ,
विनयी, शिष्ट, जननि-सुख-दाता ,
आशिष दीन्हि पुलकि अक्रूरा—
"होहु वधु सब हरि सम शूरा।"

दोहा :— *बहु विधि पृथा प्रबोधि, पुनि, लै यदुपति-सन्देश ,*
कीन्हेउ श्वफलक-सुत सुमति, भूपति-भवन प्रवेश। ४३

कहि कुल, जनक, जननि, निज नामा ,
कीन्हेउ सादर नृपहिं प्रणामा।
प्रकटि मोद, करि कृष्ण-बड़ाई ,
कीन्ही धृतराष्ट्रहु पहुनाई।
भाषेउ बभ्रु बोधि कुरुनाथा—
"पठयेउ यह सँदेश यदुनाथा।
महितल जदपि विपुल नृप-वंशा ,
भरतकुलहि नृप-कुल-अवतंसा।
पाय विमल कुल-नृपन-सहारा ,
भयेउ भुवन श्रुति-धर्म प्रचारा।

वशहु तेहि ते गौरव पावा,
श्रुति-पथ भारत-धर्म कहावा।
भरतवंश-पोषित, सन्मानी,
भयी भारती संस्कृत वाणी।
उपजे सार्वभौम नृप नाना,
लहेउ भूमि भारत अभिधाना।

दोहा :— *अङ्कित तिल तिल भूमितल, भरत-वश शुचि नाम,*
गइहैं जन कल्पान्त लगि, कुल महिमा, गुण ग्राम। ४४

भयेउ प्रबल अब असुर-समाजू,
काल-रात्रि आर्यन हित आजू।
तवहुँ पाण्डु निज भुज-बल-वैभव,
रच्छी कुल-महिमा, यश, गौरव।
भीष्म पितामह, विदुर-सहारे,
बसे तुमहु स्वाधीन, सुखारे।
जदपि असुर-आतंक अशेषा,
सकेउ न करि कुरु-राज्य प्रवेशा।
अब मगपति गहि पथ अपावन,
वधु ते वधु चहत विलगावन।
पाण्डु-सुतन दुर्योधन माहीं,
चहत सनेह जरासंध नाहीं।
मगपति-नीति विदित संसारा,
करत भ्रष्ट पथ तरुण कुमारा।
ताते कुमति-प्रभाव नरायी,
वसहु वश सौहार्द दृढ़ायी।

दोहा :— *पितु-सनेह-प्रश्रय-रहित, पाँचहु पाण्डव वाल,*
सुतन सहित सम भाव गहि, पालहु सचन भुआल।" ४५

सुनत अंध नृप कपट पसारा,
सुमिरत पाण्डु दृगन जल धारा—

"कुल-प्रदीप पाण्डव उजियारे,
सुवन-शतहु ते अधिक पियारे।
आजु महीतल द्रोण समाना,
धनुर्वेद-निष्णात न आना।
कुँवरन-शिक्षा हित सन्मानी,
राखे द्रोण लाय रजधानी।
अस्त्र-ज्ञान लहि तिन ते सारा,
भये शूर सब पाण्डु-कुमारा।
दीन्ह द्रोण गुरु जो कछु शिक्षण,
होइहै सत्वर तासु प्रदर्शन।
रहहु कृपा करि पुर दिन चारी,
लेहु सकल निज नयन निहारी।
लहि चेदीश-विवाह निमंत्रण,
गवनेउ कुण्डिनपुर दुर्योधन।

दोहा :— *फिरतहि सुरसरि-तीर करि, रगभूमि निर्माण,*
करिहैं प्रकटित द्रोण गुरु, कुँवरन-आयुध-ज्ञान।" ४६
अक्षर पै अक्षर झरे, गयेउ कहत नृप अंध,
कहेउ न एकहु शब्द पै, जरासंध-संबंध। ४७

सोरठा:— *विहँसे मन अक्रूर, लखत नृपहि, सोचत हृदय—*
यह मुख-मृदु, उर-क्रूर, कोप-गुप्त क्षुर तीक्ष्ण सम।

लोभी, लोलुप, दया-विहीना,
दुर्बल मानस, साहस-हीना।
पर-नयनन जग देखन हारा,
दृढ़-निश्चय-खल-जन-खिलवारा।
बहु-श्रुत तदपि विवेक न जागा,
स्वल्पाशय, जन्मान्ध, अभागा।
करत जात लखि नृपति प्रलापा,
करुणा-भाव बभ्रु-मन व्यापा।
आग्रह बहुरि कीन्ह नरनाहू,
वसि अवलोकहु बाल-उछाहू।

[illegible] जानत [illegible] [illegible]जू,
चहत युधिष्ठिर निज युवराजू।
पै करि सुतहिं सर्वराकारा,
क्रम-क्रम हरन चहत अधिकारा।

हा :—*स्वार्थ-हेतु मगधेश-सँग, कीन्हि सुयोधन प्रीति,*
लागी करन प्रवेश अब, कुरुकुल असुरन-नीति।" ५१

ोरठाः—*भीमहि सुरसरि-धार, विष दै जिमि बोरेउ खलन,*
कथा सहित विस्तार, सजल दृगन बरनी विदुर।

विदुर-नेह लखि बभ्रु सुखारी,
मिलेउ पृथा-पाण्डव-हितकारी।
बहु विधि प्रीति प्रतीति दृढ़ायी,
आयेउ कुन्ती-गृह हर्षायी।
लौटेउ दुर्योधन तेहि काला,
अँग अँग यदुजन-त्राण बिहाला।
गृहँ गृह गजपुर गूँजी गाथा,
रुक्मिणि-हरण कीन्ह यदुनाथा।
करि रणमहि मगपति-मद-गंजन,
लही कुँवरि सह जय यदुनंदन।
हर्ष उत्तरापथ भरि व्यापा,
इत उत करति प्रजा आलापा—
"नासी हरि जस यवन-उपाधी,
नसिहैं निश्चय असुरन-व्याधी।"
भीति अध भूपति उर छायी,
कातर नीति सुतहिं समुझायी—

दोहा :—*"मगधनाथ यदुनाथ महँ, बाढ़ी भीषण रारि,*
उचित बसव निष्पक्ष अब, सम-बल दोउ निचारि।" ५२

सोरठाः—*उत आचार्य सुजान, द्रोण पाय समतल मही,*
महारंग निर्माण, कीन्ह जाह्नवी रम्य तट।

विदुर-भवन पुनि कीन्ह प्रयाणा,
मिलेउ धाय हरि-भक्त सुजाना।
जदपि महीप-अनुज, प्रिय सहचर,
विनय-विनम्र, प्रजाजन-अनुचर।
विग्रह-संधि-कुशल, व्यवहारी,
अकुटिल-बुद्धि, धर्म-पथ-चारी।
लोक-संग्रही, विषय-उदासा,
नृपति-अमात्य, संतजन-दासा।
पाण्डव-हितू, पृथा-अवलंबन,
चीन्हेउ बभ्रुहु भेंटत सज्जन।
हृदय-दुराव, सँकोच विहायी,
कहेउ आगमन-ध्येय बुझायी—
कुण्डिनपुर मग-महिपति साथा,
लखेउ सुयोधन जिमि यदुनाथा,
पाण्डु-निधन सुनि पाण्डव हेतू,
भये विकल जिमि यदुकुल-केतू।

दोहा :— *सुनि विदुरहु कुरुकुल-कथा, कही समस्त बखानि,*
करत सुयोधन निशि-दिवस, जेहि विधि पाण्डव-हानि —५०

"हम महँ अग्रजात धृतराष्ट्रहि,
जन्म-अंध, नहिं सके राज्य लहि।
जन-मत, धर्मशास्त्र-अनुसारा,
पैतृक छत्र पाण्डु शिर धारा।
लहेउ न जो धृतराष्ट्र सिंहासन,
लहि कस सकत सुयोधन शासन?
पाण्डु दिवगत तजि सुत बालक,
भे धृतराष्ट्र निरीक्षक, पालक।
निदरि लोक-मत, परि सुत-प्रीती,
करत नित्य धृतराष्ट्र, अनीती।
बसन सिंहासन, छत्र धरावत,
करत सोइ जो सुत समुझावत।

सकल जानपद पौर-समाजू,
चहत युधिष्ठिर निज युवराजू।
पै करि सुतहिं सर्वराकारा,
क्रम-क्रम हरन चहत अधिकारा।

दोहा :— *स्वार्थ-हेतु मगधेश-सँग, कीन्हि सुयोधन प्रीति,*
लागी करन प्रवेश अन, कुरुकुल असुरन-नीति।" ५१

सोरठा:—*भीमहि सुरसरि-धार, विष दै जिमि बोरेउ खलन,*
कथा सहित विस्तार, सजल दृगन वरनी विदुर।

विदुर-नेह लखि बभ्रु सुखारी,
मिलेउ पृथा-पाण्डव-हितकारी।
बहु विधि प्रीति प्रतीति दृढ़ायी,
आयेउ कुन्ती-गृह हर्षायी।
लौटेउ दुर्योधन तेहि काला,
अँग अँग यदुजन-बाण विहाला।
गृह गृह गजपुर गूँजी गाथा,
रुक्मिणि-हरण कीन्ह यदुनाथा।
करि रणमहि मगपति-मद-गंजन,
लही कुँवरि सह जय यदुनंदन।
हर्ष उत्तरापथ भरि व्यापा,
इत उत करति प्रजा आलापा—
"नासी हरि जस यवन-उपाधी,
नसिहैं निश्चय असुरन-व्याधी।"
भीति अध भूपति उर छायी,
कातर नीति सुतहिं समुझायी—

दोहा :— *"मगधनाथ यदुनाथ महँ, बाढी भीषण रारि,*
उचित बसब निष्पक्ष अब, सम-बल दोउ विचारि।" ५२

सोरठा:—*उत आचार्य सुजान, द्रोण पाय समतल मही,*
महारंग निर्माण, कीन्ह जाह्नवी रम्य तट।

निर्मित क्रीड़ा-मही महाना,
गत वल्मीक, पंक, पाषाणा।
मृगमद-मलयज - जल - परिसिंचित,
तोरण - ध्वजा - पताक - अलंकृत।
प्रेक्षागारहु रम्य, विशाला,
हेम-विनिर्मित मंचन-माला।
मध्य राजकुल-मंच सोहाये,
शशिमणि-खचित, स्वर्ण-निर्माये।
नियमित कनक-शृंखला चारी,
रत्न-दण्ड चित्रित, मनहारी।
नर्तत तिन पै क्षौम-विताना,
भूषित मुक्ता-गुल्मन नाना।
प्रहर तृतीय काज सव त्यागी,
जुरी प्रजा विक्रम-अनुरागी।
जुरीं अपरिमित पुरजन-नारी,
कुल-ललनहु कुन्ती, गान्धारी।

दोहा:—*शोभित कौरव कुल-वधू, मंच-माल महि रंग,*
उषा, शारदा, श्री, शची, मनहुँ मेरु गिरि-शृंग। ५३

सोरठा:—*विदुर पितामह कंध, अंध नृपहु धृत हस्त निज,*
पूछत रंग-प्रवंध, प्रविशेउ सुफलक-सुत सहित।
शिष्यन सह वर वेष, प्रविशे द्रोणाचार्य पुनि,
शुभ्र वसन, सित केश, लसत श्वेत उपवीत उर।

चंदन श्वेत ललाट विशाला,
श्वेत सुमन वक्षस्थल माला।
औचक जनु रँग व्योम प्रदेशा,
प्रकटेउ परिवृत रश्मि दिनेशा।
मंगल वाद्य वजे सव संगा,
सजग सभा, उत्साह अभंगा।

कीन्हेउ विधिवत द्विजन स्वस्त्ययन,
उर्वी व्योम स्वरित श्रुति-शब्दन।"
गुरु-निदेश लहि तबहिं शिष्य-गण,
निज निज कौशल कीन्ह प्रदर्शन।
कोउ प्रास-धर, कोउ शूल-धर,
कोउ पट्टिश-धर, कोउ धनुर्धर।
अश्वारोहण करि कोउ धावा,
धावत लक्ष्य भेद दरसावा।
खड्ग-युद्ध कोउ कीन्ह भयावन,
कोउ कोउ मल्ल-युद्ध मन-भावन।

दोहा :— *आरोहण, लंघन, तरण, लुत, सुरंग-उपभेद,*
दरसाये दुर्गाक्रमण, यंत्र तंत्र बहु भेद। ५४

सोरठा — *धृत कर गदा कराल, लखत हस दृग एक इक,*
भये प्रकट तेहि काल, भीम सुयोधन रंग-महि।

युगल किशोर, वीर-रस-बंधुर,
मनहुँ प्रमत्त वन्य नव सिन्धुर।
वीर-नाद करि, गदा भँवायी,
निमिषहि माहिं भिरे समुहायी।
शब्दित रँग-महि गदा-प्रहारा,
तड़ित ताल-तरु मनहुँ विदारा।
करत घात, प्रतिघात बरावत,
विफल प्रयत्न रोष दरसावत।
रण-दुर्मद बल कौशल करहीं,
जनु विभु-हिरण्याक्ष पुनि लरहीं।
दाँव-घात, सब योग-कुयोगू,
लखत अवाक स्वजन, पुर-लोगू।
सहसा विस्मृत रँगमहि-नियमन,
उठेउ कुटिल उद्धत दुश्शासन।
पुनि पुनि करत बधु-जय-नादा,
कहे धृष्ट भीमहिं दुर्वादा।

दोहा :— *क्षुभित निखिल गजपुर-प्रजा, छायेउ रोष अपार ,*
गूँजी चहुँ दिशि भीम-जय, कँपेउ प्रेक्षागार । ५५
भंग रंग-महि होत लखि, द्रोण रणस्थल आय ,
कीन्हे पुरजन शान्त पुनि, प्रतिभट दोउ बिलगाय । ५६

प्रिय शिष्यहिं आचार्य निहारा ,
पार्थ प्रदर्शन-महि पगु धारा ।
वदन ओज, सर्वाङ्ग सुलक्षण ,
भुज विशाल कर्कश ज्या-घर्षण ।
रक्षित वर्म सुवर्ण शरीरा ,
बाण-प्रपूर्ण पृष्ठ तूणीरा ।
करतल विलसत धनुष महाना ,
सुदृढ़ अँगुरियन अंगुलि-त्राणा ।
जनु रवि-विद्युत-सुरधनु-द्योतित ,
संध्या-राग-युक्त घन शोभित ।
मूर्त वीर रस रंग विलोकी ,
सकी न सभा मुग्ध मुद रोकी ।
भयी हर्ष-ध्वनि विविध प्रकारा ,
भाषे पुरजन वचन उदारा—
"गुरु-प्रिय शिष्य, श्रेष्ठ धनुमाना ,
वीर न कुँवर पार्थ सम आना ।"

दोहा :— *रंग-अवनि अर्जुन निरखि, सुनि पुरजन-आलाप ,*
हर्ष-अश्रु-सिंचित हृदय, कुन्ती विरहित ताप । ५७

सोरठा :— *विदुरहि कहत सुनाय, मुद-मुख दुख-उर अंध नृप—*
"पार्थ सुवन जन्माय, कीन्ह अलङ्कृत कुल- पृथा ।"

भयेउ मंद जस जन-रव, जय-जय ,
दरसाये दिव्यास्त्र धनंजय ।
धारि अस्त्र आग्नेय शरासन ,
प्रकटेउ पार्थ प्रचण्ड हुताशन ।

पुनि वरुणास्त्र हस्त निज लीन्हा,
अनल प्रशान्त सलिल-वल कीन्हा।
बहुरि अस्त्र पर्जन्य-प्रभावा,
अन्तरित्त घन-पुञ्जन छावा।
प्रकटि अस्त्र वायव्य प्रभञ्जन,
नासे बहुरि निमिष महँ घन-गण।
भौम अस्त्र-बल महि प्रकटायी,
पार्वतास्त्र पर्वत-समुदायी।
अन्तर्धान-अस्त्र संधाना,
भये पार्थ पल अन्तर्धाना।
प्रकटेउ पल महँ सूक्ष्म स्वरूपा,
बहुरि विशाल शैल अनुरूपा।

दोहा :— *पल महि पै, पल व्योम-पथ, पल स्यंदन दिसराहि,*
पल समीप, पल दूरि अति, पुनि अदृश्य पल माहि। ५८

चकित, विमुग्ध विलोकेउ पुरजन,
औरहु बहु शस्त्रास्त्र-प्रदर्शन।
भेदे अर्जुन लक्ष्य अपारा,
बीज सूक्ष्मतम, घट सुकुमारा।
अशनि-पिण्ड-सम अन्य कठोरा,
हनि शर, भेदि, छेदि, तकि, तोरा।
अस्थिर लक्ष्यहु विविध प्रकारा,
भेदे भ्रमत चक्र-आकारा।
लखत हस्तलाघव जन सारे,
मुद-विह्वल जय-शब्द पुकारे।
गूँजेउ सहसा प्रेक्षागारा,
जनु गिरि फोरि बही सरि-धारा।
पर-यश-असहन-शील सुयोधन,
कोपेउ सुनत प्रजा-जय-शब्दन।
लोल किरीट, कम्प सब अंगन,
अरुण विलोचन, स्वेद कपोलन।

दोहा :— *रंग-द्वार ताही समय, उपजेउ रोर प्रचण्ड,*
गरजे सहसा व्योम जनु, लय-घन घुमड़ि घमण्ड। ५६

सोरठा:— *कर्षत जनु निज ओर, लक्ष लक्ष पुरजन-नयन,*
शब्दित बाहु कठोर, भये कर्ण रँगमहि प्रकट।

दर्पित पद-गति सिंह समाना,
वज्र वक्ष, युग बाहु महाना।
शैल-विशाल शरीर सोहावा,
विंध्याचलहि मनहुँ चलि आवा।
सहज कवच, सहजहि श्रुति-कुण्डल,
रवि-आभा रवि-सुत मुख-मण्डल।
करि आचार्य द्रोण पद-वदन,
कृपाचार्य, गुरुजन अभिवादन,
विहँसि सुयोधन दिशि अभिमानी,
कही प्रचारि पार्थ सन बाणी—
"कौशल कछु तुम रँग दरसाये,
जय-ध्वनि-फूलि न अंग समाये।
प्रकटि अबहि सोइ कौशल सारा,
चहत हरन मैं गर्व तुम्हारा।
देहिं जो गुरु करि कृपा निदेशू,
प्रकटहुँ निज शर-बल सविशेषू।"

दोहा :— *अस कहि द्रोणाचार्य दिशि, लसि अनुशासन पाय,*
सोइ अस्त्र-कौशल सकल, कर्णहु दीन्ह दिखाय। ६०

चकित, समुत्सुक, अपलक लोचन,
पुलक-जाल अँग लसत सुयोधन।
लहि अरि-शौर्य-पयोनिधि-तारण,
लघु उर सकेउ न करि मुद धारण।
जदपि शील, कुल, नामहु अविदित,
मिलेउ धाय जनु युग-युग-परिचित।

तृषित कि पूछत कबहुँ जलोद्गम,
पियत ताल, सरि, कूप मानि सम।
भेटेउ कर्णहिं हृदय - लगायी,
कही गिरा संवृति, बिसरायी—
"अग्रज सदृश मिले तुम आजू,
रहहु संग, भोगहु कुरु-राजू!"
सुने सुयोधन-शब्द वृकोदर,
भयी भंग भ्रू, वदन भयंकर।
नयन अँगार : अरिहिं जनु जारी,
फुरत अधर कटु गिरा उचारी—

दोहा :— *"कब, केहि ते, केहि भाँति तुम, पायेउ कुरु-कुल-राज,*
अछत पाँच हम आजु जो, करत दान तजि लाज!" ६१

सोरठा :—*सुनत पार्थ दिशि क्रुद्ध, बढ़ेउ कर्ण भीमहि निदरि—*
"करहु संग मम युद्ध, रंचहु जो बल-दर्प उर!"
बिहँसि रिपुहि समुहाय, निमिषहि महँ अर्जुन बढ़े,
बिलसी उर निरुपाय, लखि रण-महि दोउ सुत पृथा।

सायुध धार्तराष्ट्र शत योधा,
जुरे कर्ण-पाछे करि क्रोधा।
पाण्डु-सुतहु लखि रिपु रण-माते,
उठे त्यागि आसन रिस-राते।
कर्णार्जुन जस धनु टकारा,
कृपाचार्य रण-महि पगु धारा।
पूछेउ कर्णहिं करत प्रशंसा—
"को तुम तात! जन्म केहि वंशा?
नियम द्वन्द्व-रण कर प्रख्याता,
करत समर सम-कुल-संजाता।
अर्जुन जन्म भरत-कुल लीन्हा,
शोभित कवन वंश तुम कीन्हा?"
सुनि निस्तब्ध रंग-महि सारी,
व्याकुल कर्ण, विलोचन वारी।

लज्जित, आनन-द्युति कुँभिलानी,
नत शिर, रुद्ध कण्ठ, गत वाणी।

दोहा :— लखी पृथा निज सुत-दशा, त्यागत जनु तनु प्राण,
कहि न सकी,'यह मम सुवन', सहि न सकी अपमान। ९

सोरठा.—गिरी धरणि अकुलाय, धाय सँभारेउ कुल-तियन,
उठी चेत पुनि पाय, जनु शर-आहत, भीत मृगि।

उत प्रभुता-प्रमत्त दुर्योधन,
कीन्ह हठी अन्यहि आयोजन।
वैरी वीर पाण्डु-सुत जानी,
कर्णहिं मन तिन ते बढ़ि मानी,
करन हेतु तेहि निज अनुकूला,
भाषी गिरा अनर्थन-मूला—
"कृपाचार्य जो वचन उचारे,
समुझत मर्म तासु हम सारे।
पाण्डव-पक्षपात धरि निज मन,
पार्थ-प्राण गुरु चहत बचावन।
पै दै सुहृदहिं नृप-पद यहि थल,
करत प्रकट मैं अबहिं कपट,छल।
सुनहु राजजन! प्रजा! महीशा!
ये अब अंग देश अवनीशा।
करहिं पार्थ रण नृप सँग आयी,
सकत न अब आचार्य बचायी!"

दोहा — अस कहि पुनि पुनि लाय उर, प्रकटि प्रीति-अतिरेक,
कीन्ह सुयोधन रंग-महि, सविधि कर्ण-अभिषेक। ६२

सोरठा—बरसत शोणित नैन, उठे भीम गहि कर गदा,
तेहि क्षण आतुर बैन, 'कर्ण! कर्ण!' श्रुति-पथ परे

द्वार-देश जन दृष्टि फिरायी,
वृद्ध मूर्ति इक रँग दिशि आयी।

पालक कर्ण लकुटि[1] कर धारे,
जीर्ण देह, प्रस्वेद पनारे,
अधिरथ नाम, सारथी वेषा,
'कर्ण! कर्ण!'—कहि कीन्ह प्रवेशा।
लखि, अभिषेक-सिक्त धरि शीशा,
वंदे चरण कर्ण अवनीशा।
सुत-पितु नात दुहुन महँ जानी,
हँसे सव्यंग भीम अभिमानी।
हेरत कर्णहिं कहेउ पुकारी—
"वश वृत्ति अब प्रकट तुम्हारी।
सूत-सुवन तुम सारथि-नंदन,
उचित न शस्त्र-ग्रहण तजि तोदन[1]
हाँकहु रथ रण राज्य विसारी,
सोह न सूत नृपति-सुत रारी।"

दोहा:—वढेउ सुनत सधानि शर, कर्णहु कोप अपार,
बढे भीम दिशि हस्त-असि, शत धृतराष्ट्र-कुमार। ६४
वढे शौर्य-गर्वाढ्य सव, पाँचहु पाण्डव वीर,
निदरत शिशति-गुण अग्नि, शस्त्र-उद्यम, अधीर। ६५

सोरठा:—सहसा दोउ विच धाय, छीने शिष्यन-शस्त्र गुरु,
पुनि नृप अनुमति पाय, सत्वर कीन्ह समाप्त रँग।

लखे बभ्रु कुरु-राज्य-प्रमुख जन,
तजि रँग जात खिन्न निज भवनन।
आकुल शान्तनु-सुत गंभीरा,
संजय-वदन व्यक्त उर पीरा।
सोमदत्त, वाह्लीक दुखारी,
दुर्मन द्रोण, विदुर दृग वारी।
अध भूपतिहु चिन्तित देखा,
रचित भाल जनु भावी-रेखा।
देखेउ वहुरि जात दुर्योधन,
जोरे कर्ण-पाणि कर आपन।

मूर्तिमंत पाण्डव-विद्वेषा,
जनु घृत पाय प्रवृद्ध विशेषा।
दोउ दुरशील, न संयम रेचा,
जनु दारुण कछु रचत प्रपंचा।
सशय सुफलक-सुत मन व्यापा,
पाण्डव-अहित सोचि उर काँपा।

दोहा :— *लखी पृथा पुनि गृह प्रविशि, जनु बूडति मँझधार,*
विरमे गजपुर बभ्रु तजि, निज पुर गमन-विचार। ६६

सोरठा:—*अर्जुन गत कछु काल, देन हेतु गुरु-दक्षिणा,*
जीति द्रुपद पाञ्चाल, बाँधि समर सौंपेउ गुरुहिं।

कुरु-राज्यहि सम प्रबल, विशाला,
संस्कृति-धाम देश पाञ्चाला।
जदपि जाति दोउ भरत-प्रजाता,
क्रम क्रम शिथिल परस्पर नाता।
सींव सन्निकट, नित संघर्षा,
सकत न सहि इक-एक प्रकर्षा।
पाय धनंजय-जय संवादू,
दिशि दिशि कौरव-पुर आह्लादू।
स्वेच्छा नगर सजायेउ पुरजन,
कीन्हेउ हुलसि पार्थ-अभिनन्दन।
हाट, बाट, वीथी, चौराहन,
करत विचार जुरत जहँ बहुजन—
जदपि वयस्क भये ये पाण्डव,
अतुलित शौर्य, शील, गुण-वैभव।
सौंपत राज्य अंध पै नाहीं,
निवसत कछुक पाप मन माहीं।

दोहा :— *यहि विधि दिन-प्रति पुर बढेउ, जस जस जन-अपवाद,*
व्यापेउ दुर्योधन-हृदय, तस तस रोप-विपाद। ६७
कर्ण संग सोचत अघी, नित्य कुचक्र नवीन,
बरजत सुत पै अंध नृप, निर्बल साहस-हीन। ६८

सहसा पुर जनु दैव-पठावा,
शकुनि सुयोधन—मातुल आवा।
सँग चार्वाक अनीश्वर-वादी,
परिव्राजक, श्रुति-पथ-प्रतिवादी।
आनँद-भोग-वाद व्याख्याता,
मगध-महीपति-गुरु प्रख्याता।
सहजहिं विषयासक्त सुयोधन,
प्रमुदित पाय तर्क-अनुमोदन।
चार्वाकहिं निज गुरु करि माना,
दै धन रत्न कीन्ह सन्माना।
लहि श्रुति-विश्रुत यश प्रवेशा,
उर चार्वाक हर्ष सविशेषा।
कणिकहिं शिष्य श्रेष्ठ निज जानी,
गयेउ राखि कुरुकुल-रजधानी।
दुर्मति दुर्योधन मन भावा,
दै अमात्य पद नेह दृढावा।

दोहा — *पर-मर्मान्वेषण-कुशल, छिद्र-प्रहारन हार,*
कीन्हेउ धृतराष्ट्र-हृदय, कुटिल कणिक अधिकार। ६६

सोरठा —*शकुनी-कणिक-कुमन, कर्ण सुयोधन पाय दोउ,*
लाक्षा-गृह षड्यन, रचेउ पाण्डु-सुत-दाह हित।

राजभवन-वल्लभ इक दुर्जन,
दुष्कृति-जीवी, नाम पुरोचन।
ताहि सुयोधन भवन बोलावा,
छल प्रपंच सब कहि समुझावा—
"वेगि वारणावत तुम धावहु,
जतु-गृह तहाँ गोप्य निर्मावहु।
काष्ठ, सर्जरस, सन सम सारे,
द्रव्य अनल-उद्दीपन हारे,
करि संचित, रचि भवन विशाला,

देहु मृत्तिका पुनि अस थापी,
कैसहु चतुर सकै नहिं भाँपी।
कुन्ती जब निज सुतन समेतू,
आवहिं निवसन लाह-निकेतू,
करि सत्कार, प्रतीति दृढ़ायी,
जारेउ सोवत अनल लगायी।"

दोहा:—*पठै वारणावत शठहिं, बहु धन-स्वप्न दिखाय,*
लै दुश्शासन संग निज, आयेउ पितु ढिग धाय। ७०

पाण्डु-सुतन उत्कर्ष कहानी,
साश्रु-नयन खल बिलखि बखानी।
गहि पितु-पद पुनि कीन्ह निवेदन—
"करहु तात! पाण्डव-निर्वासन।
रहहिं वारणावत जो जायी,
लेहौं मैं सब काज बनायी।
तात-प्रसाद सचिव नव सारे,
वाहिनि, कोषहु हाथ हमारे।
भीष्म पितामह सतत विरागी,
सम कौरव-पाण्डव तिन लागी।
अश्वत्थामा मम दल माहीं,
सुत तजि सकत द्रोण गुरु नाहीं।
विदुरहिं पाण्डव-पृथा-सहायी,
बसिहैं सोउ असहाय चुपायी।
स्वल्पस्मृति सब प्रजा पौरगण,
देत बिसारि पलहिं महँ प्रियजन।

दोहा:—*भावी नृप पाण्डव समुझि, करत आजु सन्मान,*
काल्हि प्रमुख जन द्रव्य लै, करिहैं मम गुण गान।" ७१

सोरठा:—*दुश्शासनहु विशेष, कीन्हीं पुनि पितु सन विनय,*
लोभी, सभय नरेश, भयेउ मौन द्विविधा-विकल।

कर्ण-शकुनि-प्रेषित तेहि काला,
आयेउ नृप ढिग कणिक कराला।
अंध असशय छल नहिं जाना,
कीन्हेउ सरल भाव सन्माना।
जानि हितू पुनि नृपति अभागी,
कहि सब वृत्त मत्रणा माँगी।
कणिकहु निज उर हर्ष दुरायी,
बोलेउ कपट-भीति दरसायी—
"कृपा कीन्हि जो प्रकटि प्रतीती,
पूछत मम मत नाथ ! सप्रीती।
इतनिहि विनय करहुँ प्रभु पाहीं,
जानहि मर्म कोउ यह नाहीं।
करत शास्त्र जो नीति बखाना,
बरनत जेहि सब वेद पुराणा,
जाहि प्रशसि लहत द्विज भोजन,
गहि तेहि मूढहि करत आचरण!

दोहा:—*ताहि प्रशसत बुधजनहु, सर्व काल, सब ठौर,*
पै जेहि जीवन आचरत, नाथ! नीति सो और। ७२

वनिता, भोजन, गृह, गज, स्यदन,
वसन, विभूषण, माला, चदन,
जीवन-सार इनहिं कर भोगा,
मगल प्राप्ति, अनर्थ वियोगा।
राज्य श्रेष्ठ सुख-भोग-प्रदाता,
महि पै सोइ स्वर्ग साक्षाता।
तेहि कर लाभ, वृद्धि, रखवारी,
राजनीति इतनेहि महँ सारी।
निदरि सकल सामाजिक बधन,
साधत सतत स्वार्थ विज्ञ जन।
बधन सब समष्टि-हित लागी,

कहि जन्मान्धहिं प्राप्य न राजू,
हरेउ नाथ-अधिकार समाजू।
साधेउ स्वार्थ शास्त्र करि साखी,
प्रभु-हित-हानि ध्यान नहिं राखी।

दोहा :— *अकस्मात स्वामिहि मिलेउ, पुनि निज पैतृक राज,*
निष्कंटक भोगब सुकृत, तजब अनर्थ, अकाज। ७३

दैहिक दोष जो प्रभु-पथ बाधा,
कीन्हेउ सुवन कवन अपराधा?
का अनीति जो सुत शत आजू,
तजन चहत नहिं करगत राजू?
जानत भल ते राज्य बिहायी,
होइहैं विभव-हीन असहायी।
पारतन्त्र्य परि क्लेश महाना,
पराधीन नित भोजन-पाना।
जिमि दिनकर-शोषित सरि-बारी,
बिनसत क्रम क्रम मीन दुखारी,
तिमि पाण्डव-अपहृत अधिकारा,
जइहैं छीजि नाथ-परिवारा।
तातें मानिन-वृत्ति उपासी,
दृढवहु सपति शत्रु विनासी।
मनुज-बुद्धि-गत साधन जेते,
करत स्वार्थ-हित बुध जन तेते।

दोहा — *जो गिरि-माला, जलनिधिहु, रोधत पथ समुहाय,*
पुरुष मनस्वी हठि तिनहिं, देत ढहाय, सुखाय। ७४

सोरठा—*उद्बधन, विष, दाह, उचित नीति सामादि सम,*
करि उपाय नरनाह! रिपु विहीन भोगहु मही।"

प्रलपेउ जस जस खल वाचाला,
भयेउ विमोहित वृद्ध भुआला।

दारुण विष-द्रुम अंध न चीन्हा,
चदन द्रुम-भ्रम आश्रय लीन्हा।
सचिव-सुतन परितोषि पठावा,
युधिष्ठिरहिं नृप भवन बोलावा।
पूछि मातु-अनुजन-कुशलाई,
नयनन नेह नीर छलकायी,
शिर प्रेमोष्ण फेरि निज पाणी,
भाषी माखन-मृदु नृप वाणी—
"तात! ज्येष्ठ तुम पाण्डु-कुमारा,
कुरुकुल-धन, जन, राज्य तुम्हारा।
जानि धरोहरि मही तुम्हारी,
कीन्ही मैं अब लगि रखवारी।
अब समर्थ तुम शास्त्र-शस्त्र-वित,
सकल नृपोचित गुणन-अलंकृत।

दोहा :—*लेहु सँभारि जो राज्य निज, महँ पाय अवकाश,*
वय चतुर्थ मुनि-वृत्ति गहि, जाय करहुँ वनवास। ७५

एकहि बाधा यहि महँ सम्भव,
करहिं न कहुँ मम सुवन उपद्रव।
पाय सुयोधन कर्ण-कुसगति,
होत जात दूषित-मति दिन प्रति।
परत काज नित तुम्हरेहु सगा,
उपजत नित नव कलह-प्रसगा।
अनुज जननि सह पुरी विहायी,
बसहु जो कछुक दिवस कहुँ जायी,
होइहै मन्द सुयोधन द्वेषा,
मिलिहै मोहि सुयोग विशेषा।
कर्ण कुटिल ते तेहि विलगायी,
लेहौं काहू विधि समुझायी।
नगर वारणावत मन-भावन,
[illegible] क्षेत्र अति पावन।

रुचहि तो मम निदेश शिर धारी,
निवसहु तहँ कछु काल सुखारी।

दोहा :—शूल सकल निर्मूलि मैं, करिहौं पथ परिशोध,
लहिहौ सत्वर पितृ-पद, गत-विद्वेष-विरोध ।" ७६

सोरठा:—धर्म - अंश - संजात, धर्ममूर्ति पाण्डव प्रथम,
कहि,'जो आयसु तात'!—परसि चरण गवनेउ भवन।

कुन्तिहिं जब सब वृत्त सुनावा,
चकित जननि, मुख वचन न आवा।
दारुण भीम-हृदय सन्देहू,
कहेउ "न उचित तजब निज गेहू"।
बभ्रुहु चिन्तित सुनि संवादू,
कहेउ प्रकटि निज हृदय-विषादू—
"रचि कछु भीषण चक्र सुयोधन,
चहत समातु तुमहिं निर्मूलन।
लागत मोहिं सब नृप-व्यवहारा,
नेह-हीन, छल-कपट-पसारा।
रूढ़न हित निज आत्मज-शासन,
करत तुम्हार नगर-निष्कासन।
तुम अधिकार-विहीन, अनाथा,
साधन सकल सुयोधन-हाथा।
शत्रु सबल, तुम निर्बल आजू,
दण्डनीति गहि सरै न काजू।

दोहा :— भेद सकत नहिं डारि तुम, दै न सकत कछु दान,
ताते सामहिं आजु गहि, लेहु रच्छि निज प्राण। ७७

प्रकटहु शील विनय सविशेषा,
धरहु शीश निज नृपति-निदेशा।
बनि अनजान, मोद प्रकटायी,
बसहु वारणावत सब जायी।

आकृति ते दरसाय प्रतीती,
रहेउ ससंशय, सजग, सभीती।
मह्ँ वेगि द्वारावति जायी,
कहिहौं हरिहिं दशा समुझायी।
अइहैं सुनतहि संशय नाहीं,
बनिहै बिगरी निमिषहि माहीं।"
तर्क-युक्त अक्रूर-सुवाणी,
कुन्ती-पाण्डव हृदय समानी।
विदुर-पितामह-गृह पुनि जायी,
कथा वरनि सब पृथा सुनायी।
सम्मति गमन हेतु दोउ दीन्ही,
आज्ञा कुन्ती शिर धरि लीन्ही।

दोहा :— *द्वारावति दिशि कीन्ह उत, सुफलक-सुवन प्रयाण,*
सुतन सहित त्यागेउ नगर, कुन्तिहु धरि हरि-ध्यान। ७८

नगर वारणावत जब आयी,
स्वागत कीन्ह पुरोचन धायी।
आसन, शय्या, भोजन, पाना,
दिये पुरोचन वाहन नाना।
मिले आय पुरजन सस्नेहू,
बसे पाण्डु-सुत लाक्षा-गेहू।
उत गजपुरी विदुर मतिमाना,
शत्रु-कुचक्र युक्ति कर जाना।
अनुचर निज विश्वस्त पठावा,
गुप्त वारणावत चलि आवा।
पाण्डु-सुतन सन अवसर पायी,
रिपु-छल सकल कहेउ समुझायी।
कहि जननिहिं सब सुतन प्रसंगा,
खनी गेह इक गुप्त सुरंगा।
सोवत राति पुरोचन पायी,
[illegible]

दोहा :— *कढि सुरग ते पाण्डु-सुत, गवने सुरसरि-पार ,*
ज्वाला-वलयित लाह-गृह, भयेउ सकल जरि छार । ७९

सोरठा:— *अरि जब चक्र अगण्य, रचत पृथा-सुत-नाश हित ,*
शौरि-भगिनि उत अन्य, भयी अभागिनि पति-रहित ।

गवनत स्वर्ग अवन्ति-महीपा ,
बुझेउ मनहुँ मालव-कुल-दीपा ।
जरासंध निज अवसर पायी ,
लीन्हे विंद अनुविंद अपनायी ।
लहेउ अवन्तिहु असुर प्रवेशा ,
उपजे कंस-कुशासन-क्लेशा ।
लीन विषय-सुख विंद नरनाहू ,
लहि मागध बल गनत न काहू ।
चहत विभव निज नव दरसावा ,
भगिनि-स्वयंवर भव्य रचावा ।
अवसर उचित ताहि मन जानी ,
सुमिरेउ हरिहिं अवन्ती-रानी ।
गये स्वयंवर हरि तत्काला ,
मेली हुलसि कुँवरि वर माला ।
खल-मण्डली क्षुब्ध, लखि, सारी ,
बल ते लहन चही वर नारी ।

दोहा :— *मर्दि विन्द अनुविन्द मद, रिपु-नृप सकल, हराय ,*
वरी मित्रविन्दा कुँवरि, द्वारावति हरि लाय । ८०
सन्मानी रुक्मिणि सखी, भगिनि सहोदर मानि ,
बढेउ नेह शत-गुण अधिक, पूर्व वृत्त सब जानि । ८१

सोरठा:— *यहि विधि बसि सुख गेह, हेरत जब हरि प्रभु-पथ ,*
जामेउ द्रुम सन्देह, अकस्मात यदुवंश महँ ।

यदुवंशी सत्राजित नामा ,
सूर्य-भक्त, यश-पौरुष-धामा ।

करि प्रभास तप, रविहिं रिझायी,
वर मणि दिव्य स्यमंतक पायी।
दिनमणि सम मणि-ज्योति अपारा,
दिन प्रति देति स्वर्ण अठ भारा।
रत्न हस्त जस, यादव लीन्हा,
मोह प्रवेश हृदय हठि कीन्हा।
अनुहरि पात्र विभव फलदायी,
नवत महत लहि, लघु बौराथी।
सोचत सत्राजित क्षुद्राशय—
यह मणि द्रव्य-निकेतन अक्षय।
द्रव्य-मूल जीवन-सुख सारे,
धर्माचरणहु द्रव्य सहारे।
द्रव्यहि शक्ति-प्रभाव-प्रदायक,
शक्तिमत सोइ यदुकुल-नायक।

दोहा :— *सत्राजितहिं समस्त जग, लागेउ नूतन, आन,*
आशा-अनुरंजित नयन, मानस स्वर्ण-विहान। ८१

द्वारावति प्रभास-तजि आवा,
घर घर रत्न-प्रभाव सुनावा।
गवनेउ पुनि अहमिति उर भारी,
यदुजन-सभा कण्ठ मणि धारी।
द्युति-कर्पित लखतहि भगवाना,
मणि-गुण निमिष माहिं पहिचाना।
सादर सत्राजितहिं सुनायी,
भाषेउ सहज भाव यदुरायी—
"लक्षण कछु विशिष्ट मणि माहीं,
जानत जेहि तुम अन लगि नाहीं।
रहत रत्न यह जब जेहि देशा,
राज-प्रजा-कल्याण अशेषा।
बारेक आय अनत जो जायी,
प्रविशत देश ईति भयदायी।

प्रसरत आधि व्याधि विकराला,
बरसत घन न, परत दुष्काला।

दोहा :— *मणि तुम्हारि, पै अब निहित, यहि महँ जन-कल्याण,*
छल बल ते जो कोउ हरै, होय अनर्थ महान। ८३

मणि-रक्षा तुम ते नहिं होई,
सौंपहु नृपहिं प्रजा-हित सोई।
मणि ते मिलत जो कंचन भारा,
राखहु तेहि पै निज अधिकारा।
तप-उपलब्धहु दुर्जन-बल-धन,
भयद, अशुभ जिमि चिता हुताशन।
सुरसरि सम जग-क्षेम प्रसूती,
सदा परार्थहि सुजन-विभूती।
तुम उदार-मन, तपी, विरागी,
करहु काज यह जन-हित लागी।
प्रजा सुखहि हित मम प्रस्तावा,
धरहु न मन संशय, दुर्भावा।"
क्षुभित सुनत सत्राजित वचनन,
गवनेउ सभा त्यागि अति दुर्मन।
भाषी इत उत गिरा अशोभा,
बसेउ कृष्ण-उर मम मणि-लोभा।

दोहा :— *सकेउ समुझि सामान्य कब, असामान्य-व्यवहार,*
आरोपत गर्हित सतत, तेहि निज मनोविकार। ८४

सत्राजित प्रसेनजित भ्राता,
बन्धुन-प्रीति - पुरी प्रख्याता।
जनु विधि वाम बुद्धि हरि लीन्ही,
मणि अनुजहिं सत्राजित दीन्ही।
धारि प्रसेनहु गर्व समेतू,
गवनेउ कानन मृगया-हेतू।

अनुधावत मृग चपल विशेषा,
कीन्हेउ विजन अरण्य प्रवेशा।
शुष्क कण्ठ अति तृषा-अधीरा,
श्रान्त शरीर, गयेउ सरि-तीरा।
अवनत वदन पियत जब वारी,
झपटेउ सहसा सिंह दहारी।
हति प्रसेन कीन्हेउ रव घोरा,
लै मणि चलेउ गहन वन ओरा।
ताही क्षण जनु नियति-बोलाये,
जाम्बवंत तेहि थल चलि आये।

दोहा :—*बधि कण्ठीरव, रत्न लै, धँसे गुहा निज धाय,*
रोहिणि सुता सुकण्ठ मणि, पहिरायी हर्षाय। ८५

सोरठा :—*उत प्रसेनजित गेह, लौटेउ नहि, बीते दिवस,*
भयेउ प्रबल सन्देह, हरि-विरुद्ध यादव-हृदय।

सत्राजित मानस भय छाया,
प्रकट दोष नहिं हरिहिं लगावा।
कही सगोत्रन सन विष वाणी,
आप्त जनन प्रति तिनहु बखानी।
क्रम क्रम व्याप्त पुरी अपवादा,
मणि-हित हरि प्रसेन अवसादा।
हाट, बाट, वीथी, आपानक,
भवन भवन परिवाद भयानक।
कूप, सरित-तट, चैत्यन माहीं,
नहिं थल जन-प्रवाद जहँ नाहीं।
करति न जहँ रवि रश्मि प्रवेशा,
लहत न जहाँ वायु विनिवेशा,
अमरराज-चक्षु जहँ निष्फल,
कुण्ठित अन्तक-प्रगतिहु जेहि थल,
प्रविशत संशय तहँहु कठोरा,

दोहा :— *वट बीजहु-ते अति प्रबल, संशय-मूल समान ,*
निमिषहिं माहिं प्ररोह बढ़ि, पादप होत महान । ८६

दासी · दासन नगर-कहानी ,
राजभवन सब आय बखानी ।
सुनि सुनि मिथ्यावाद भयंकर ,
क्षुभित मातु-पितु, भूपति, हलधर ।
रोष अपार स्वजन मन माहीं ,
सकुचत कहत हरिहिं कोउ नाहीं ।
रुक्मिणि सहि न सकी अपवादू ,
कहेउ प्रभुहिं सब प्रकटि विषादू ।
लखि अपवाद-भीरु अति वामा ,
भाषी मधुर गिरा घनश्यामा—
"पक्षपात तजि लखहु विचारी ,
कहत अनृत नहिं पुर-नर-नारी ।
शैशव में नवनीत चोरावा ,
नित दधि-दूध लूटि बन खावा ।
भये वयस्क तुमहिं हरि लाये ,
परेउ स्वभाव, न छुटत छुटाये ।"

दोहा :— *विहँसी सुनि भीष्मक-सुता, प्रभु-मुख प्रभु-इतिहास ,*
हरेउ प्रिया उर शोक हरि, करत मधुर परिहास । ८७

पौर-प्रमुख, सत्राजित साथा ,
गवने बन प्रभात यदुनाथा ।
सरिता-तट प्रसेन शव पावा ,
मृत शार्दूलहु सबहिं दिखावा ।
चरण चिह्न पुनि ऋक्षराज के ,
गुहा-द्वार लगि हरि अवलोके ।
कानन गहन, गुहा अनजानी ,
विरमे द्वार पौर भय मानी ।
प्रविशे श्रीहरि सहज निराकुल ,
दुर्गम मार्ग शङ्कु द्रुम-सङ्कुल ।

सूझ न कछु घन तिमिर प्रसारा,
मुद्रित दृग मानहुँ तम भारा।
चरणहिं ते करि मार्ग-निरूपण,
गवनत हरि गहि तृण, तरु-शाखन।
सहसा भयेउ प्रकाश अपारा,
भव्य भवन हरि गुहा निहारा।

दोहा :—*अवलोकेउ श्रीहरि बहुरि, इन्द्रनील मणि द्वार,*
उत्कीर्णित कलधौत-लिपि, राम-कथा कर सार। ८८

पूर्व जन्म निज जीवन-गाथा,
बाँची रोमांचित यदुनाथा।
पढ़ि सीता-अपवाद अपावन,
त्यागन बहुरि अरण्य भयावन,
सस्मित मुख लीला-पुरुषोत्तम,
प्रविशे सन्मुख भवन ससम्भ्रम।
लखत विपुल ऐश्वर्य-पसारा,
अमरोचित सब साज सँभारा,
अवलोकी प्राङ्गण घनश्यामा,
तरुतल रमा-मूर्ति कोउ वामा।
एकाकिनि जनु जनक-कुमारी,
रही जोहि पति-पथ सुकुमारी।
रत्न स्यमतक कण्ठ विलोका,
वदन-प्रभा-हत मणि-आलोका।
उठी वाम सुनि हरि-पद-चापा,
भयेउ रोर सहसा गृह काँपा।

दोहा —*भवन अपरिचित लखि पुरुष, जाम्बवत बलवान,*
गरजि तरजि हरि दिशि बढ़े, शिला उपाटि महान। ८९

लखत ऋक्षराजहिं हरि आना,

दिवस अष्ट-विंशति अविरामा,
भयेउ गुहा भीषण संग्रामा।
उपल, महीरुह, नाना प्रहरण,
प्रेरे ऋक्षराज अति भीषण।
करि कौशल हरि सकल बराये,
मुष्टिक-युद्ध ऋक्षपति धाये।
वज्र-सदृश दुर्वार प्रहारा,
अनायास यदुनाथ निवारा।
विगलित गर्व सहठ तब योद्धा,
उछरि गहे हरि-पद सक्रोधा।
उठत न चरण, प्रयत्न महाना,
लज्जित भक्त, द्रवित भगवाना।
दीन्हे राम-रूप धरि दर्शन,
पुलकित परेउ चीन्हि पति चरणन।

दोहा :—*माँगि क्षमा दीन्ही सुता, दिव्य स्यमंतक साथ,*
लब्ध-रत्न-द्वय मन मुदित, तजी गुहा यदुनाथ। ६०

रत पुरवासी कंदर-द्वारा,
विरमे परखत पथ परसवारा।
अत सशंक, सभीति, दुखारे,
लौटे द्वारावति मन मारे।
सुनि यदुपति-वियोग-संवाद,
शोक राज-गृह, पुरी विषाद।
सोचत, पुर प्रवाद-प्रिय जानी,
तजेउ इमहिं श्रीहरि यश-मानी।
यदुपति-दर्शन-विरहित प्रति क्षण,
भयेउ असह्य, भ्रान्त मति पुरजन।
सत्राजितहिं दोष कछु देहीं,
कछु निज शीश पाप सन लेहीं—
हमहिं सकल मर्याद-विहीना,
भाषेउ निज मुख मणि-कौलीना।

भये सकल मतिमंद, अभागी,
हती सुरभि हम पगतरि लागी।

दोहा :— पूर्व पुण्य-बल-प्राप्त हरि, चारु चरित, निष्पाप,
खोये मति-चापल्य वश, रहेउ शेष परिताप। ६१

यहि विधि दग्ध विरह-दव-ज्वाला,
दिन प्रति पुरजन विकल, बिहाला।
सुमिरत हरिहिं धारि हिय ध्याना,
बहु उपवास, नियम, व्रत, दाना।
करत महामाया-आराधन,
नित्य छमावत, अघ, अपराधन।
आये सहसा पुरी मुरारी,
कण्ठ स्यमंतक, सँग वर नारी।
हर्ष-पयोधि मग्न पुरवासी,
लीन्हे धाय घेरि सुखराशी।
मुदित विलोकत आनँदकंदा,
जय-स्वर-मुखरित पुर आनँदा।
प्रतिक्रिया लखि उर उर माहीं,
प्रेमस्निग्ध प्रभुहु मुसकाहीं।
लखि सुयोग पुनि सभा बोलायी,
गुहा-वृत्त सब कहेउ सुनायी।

दोहा :— मणि सत्राजित-कण्ठ जब, पहिरायी जगदीश,
निंदक पद-वंदक भयेउ, लागेउ महि नत शीश। ६२

सतत मार्ग-भ्रष्ट सब प्राणी,
हतमति होत चूक पहिचानी।
जब लगि पुनि न इष्ट पथ पावत,
फिरत त्रास प्रति पद उपजावत।
सोचत सत्राजित दुख दीना—
निंद्य जन्म मम संयम-हीना।

सद्गुण-भूषण श्याम सत्यधन,
पर-हित व्यसन, धर्म-हित जीवन।
अस नर-रत्न उपल हित त्यागा,
तजि सुरतरु किंशुक अनुरागा।
सकहुँ न जो पुनि स्वामि रिझायी,
मुयेउ न मम उर जरनि बुझायी।
सुता सत्यभामा गुण-धामा,
करहिं जो ताहि ग्रहण घनश्यामा,
यौतुक-रूप मणिहिं दै साथा,
होहुँ बहुरि कृतकृत्य, सनाथा।

दोहा :— *अस मन गुनि, मंतव्य निज, प्रभुहि सुनायेउ जाय;*
स्वीकारी श्रीपति सुता, दीन्ही मणि लौटाय। ६३
द्वय विवाह यहि विधि भये, बहुरि पुरी आह्लाद,
लौटे तेहि क्षण बभ्रु लै, पाण्डु-सुवन-सम्वाद। ६४

कहेउ वृत्त सुफलक-सुत सारा,
सुनि सुनि शोकाकुल परिवारा।
तत्क्षण आर्त-बंधु यदुनाथा,
गवने गजपुर हलधर साथा।
इत बभ्रुहु निज गृह पगु धारी,
सुनी स्यमंतक-गाथा सारी।
सुनेउ सत्यभामा-हरि-परिणय,
निमिषहि माहिं भयेउ जनु मति-लय।
चहत वियाहन वामहिं आपू,
लहि संवाद विषम उर तापू।
भूलेउ भक्ति सुनीति लुब्ध मन,
भूलेउ नयन थंगना-आनन।
सोचन, कीन्हि कृष्ण कुटिलाई,
पठै अनत मोहिं तिय अपनायी।
श्रेष्ठ वस्तु जो लखत जाहि थल,
हरत अशंक सतत करि कछु छल।

दोहा :— *कृतवर्मा निज मित्र-गृह, आये आतुर धाय,*
कृष्ण-कुटिलता, छल सकल, कहेउ सरोष सुनाय। ६५

बोलेउ विहँसि चतुर कृतवर्मा—
"विदित मोहिं सब यदुकुल मर्मा।
तुम, सात्यकि, हरि, हलधर सारे,
उपजे वृष्णि-वंश उजियारे।
राजपाट, धन, धाम तुम्हारा,
केवल सेवा 'स्वत्व हमारा।
नामहिं-मात्र उग्र अब राजा,
हरिहि यथार्थ आजु यदुराजा।
सकल भोज-अंधक-कुल-यदुजन,
करत सोइ जो कहत वृष्णि जन।
जन्मेउँ भोज-वंश मैं हीना,
उचित बसब ऐश्वर्य-विहीना।
आजु रोष तुम्हरे मन माहीं,
तजि पै सकत हरिहिं तुम नाहीं।
देहै मूढ़हिं तुमहिं सहायी,
खोजहु मित्र अनत कहुँ जायी।"

दोहा :— *मर्म वचन अक्रूर सुनि, तजी न निज उर आस,*
सुहृद-भाव पुनि पुनि प्रकटि, उपजायेउ विश्वास। ६६

कृतवर्मा तब मन्त्र दृढ़ावा,
शतधन्वहि निज भवन बोलावा।
बरनि रत्न-गुण ताहि लोभायी,
कहेउ कुचक्र चक्र समुझायी—
"मनुज सकल जग एक समाना,
करति दिव्य वस्तुहि यश दाना।
दिव्य शस्त्र लहि हरि-बलरामा,
भये आजु यदुकुल यश धामा।
सकहु स्यमंतक जो तुम पायी,
बढ़िहै वंश कीर्ति प्रभुताई।

गये सुदूर देश हरि-रामा,
मणि आजहु सत्राजित-धामा।
अवसर अस न बहुरि तुम पावहु,
हति सत्राजित मणि अपनावहु।"
मणि-गुण सुनत लुब्ध मन-काया,
व्यापी शतधन्वा-उर माया।

दोहा :— *अर्ध रात्रि अन्तक सदृश, सत्राजित-गृह जाय,*
हरी स्यमंतक पाप-मति, वधि सोवत असहाय। ६७
प्रात सत्यभामा सुनेउ, जैसेहि पितु-वध घोर,
स्यंदन साजि सरोष उर, गवनी गजपुर ओर। ६८

इत तन लगि साग्रज पुर आयी,
प्रविशे विदुर-सदन यदुरायी।
मूर्ति-विभव मुनि-ध्यान-अगोचर,
भयेउ भक्त-दृग-अंचल गोचर।
उर कंदलित दरस आनंदा,
देह पुलक, दृग अंबु अमंदा।
पाय दरस बरसे जनु कोये,
लोचन-सलिल कमल पद धोये।
झरे बहुरि विनयस्तुति फूला,
लहि वर भक्त हरिहु अनुकूला।
जानेउ लखतहि यदुकुल-दीपा,
विलसत उर विज्ञान-प्रदीपा।
उर-भावुकता मानस-नियमित,
मानस हृदय-भावना-स्रावित।
राग-विराग-विवाद निसारी,
निजाधीन मन विश्व-विहारी।

दोहा :— *जन-मन-प्राङ्गण कल्पतरु, श्याम सच्चिदानन्द,*
दीन्हेउ पुनि पुनि अंक भरि, भक्तहि मोदानन्द। ६९

बसे सुखासन लगि यदुनाथा,
वरनी विदुर लाक्षागृह-गाथा।

जेहि विधि पाण्डव जननी-संगा,
प्रविशे विपिन पार करि गंगा।
पथ जिमि मिले व्यास ऋषिरायी,
आश्रम लाय कीन्हि पहुनाई।
पुरी एकचक्रा द्विज-गेहा,
राखेउ जस मुनीश सस्नेहा।
"वसत समातु अबहुँ तहँ भ्राता,
जब तब देत मोहिं कुशलाता।
मैं अरु व्यास ऋषीश्वर दोई,
जान रहस्य, अन्य नहिं कोई।
इत गजपुर मृत पाण्डव जानी,
समुझि प्रपंच प्रजा पछितानी।
प्रकट शोच धृतराष्ट्र जनावा,
करि अंत्येष्टि हृदय सुख पावा।

दोहा :— *सुखी सुयोधन सम कवन, यहि वसुधा-तल आज,*
जानि नष्ट पथ-शूल सब, प्रकट भयेउ कुरुराज। १००
इत खल भोगत राज्य-सुख, उत सब पाण्डु-कुमार,
भिक्षा करि पोषत उदर, अस विचित्र संसार!" १०१

विदुर सजल दृग वरनत गाथा,
भाषी धैर्य-गिरा यदुनाथा—
"पितुहु ते बढ़ि तुम उपकारी,
रच्छे पाण्डव संकट टारी।
लोभाक्रुष्ट हृदय दुर्योधन,
सफल न कुटिल भोगि थिर पद धन।
जब जब लघुमति सीमा त्यागी,
होत महत आसन अनुरागी,
तब तब घटत अनर्थ अनेकन,
पावत क्लेश नित्य नव सज्जन।
निनसत दुर्जन अंत अभागी,
सतत सुजन अमर यश-भागी।

धैर्यहि जग श्री सौख्य-प्रदाता,
तजहिं धैर्य नहिं पाण्डव भ्राता।
यापि सधीर समय प्रतिकूला,
प्रकटहिं लहि अवसर अनुकूला।

दोहा — *पृथा, पाण्डु-सुत पास मम, पठवहु यह सन्देश —*
'अइहैं सत्वर शुभ दिवस, मोहि संशय नहिं लेश'।"१०२

भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, समीपा,
चहत जान जब यदुकुल दीपा,
सहसा रुकेउ द्वार इक स्यंदन,
लखी सत्यभामा यदुनंदन।
अधरस्फुरण, प्रकम्प शरीरा,
नयन विशाल स-ज्वाल, सनीरा।
तजि आतुर रथ, लै पितु नामा,
लिपटी पति-पद विलपत वामा।
सुनि सत्राजित वध दोउ भ्राता,
नख-शिख रोष तरंगित गाता।
पालि तबहुँ प्रभु शिष्टाचारा,
भीष्म, द्रोण, नृप-गृह पगु धारा।
शान्तनु-तनय तोपि यदुनंदन,
गवने द्वारावति दिशि तत्क्षण।
उत शतधन्वा सुनि आगमनू,
गयेउ भीत कृतवर्मा-भवनू।

दोहा — *कृतवर्महु उर व्याप्त भय, गुनि हरि-रोष कराल,*
कहे शील बधुत्व तजि, निठुर वचन तत्काल — १०३
"बभ्रु-कहे तुम कीन्ह सब, करिहैं सोइ सहाय,
नित मोहि पै यदुपति-कृपा, महूँ भक्त यदुराय।" १०४

वचन शुष्क सुनि खल उर काँपा,
गयेउ बभ्रु ढिग मन परितापा।

सुफलक-सुतहु सुअवसर जानी,
भाषी तर्क-युक्त मधु वाणी—
"लखहु सोचि आपुहि मन माहीं,
हरि ते रच्छि सकत कोउ नाहीं।
जस सरि पूर बहत घहरायी,
मूढ़हि धँसि बूड़त असहायी।
चहहु जो आजु बचावन प्राणा,
करहु अनत तजि पुरी प्रयाणा।
जेहि पै होय परम विश्वासा,
जाहु राखि निज मणि तेहि पासा।
राखे संग न सकहु दुरायी,
मणि हित देहौ प्राण गँवायी।"
सुनत हताश कुमति निरुपायी,
दै बभ्रुहिं मणि चलेउ परायी।

दोहा:—पहुँचे *हलधर कृष्ण दोउ, द्वारावति तेहि काल,*
भागत शतधन्वहि सुनेउ, औरहु रोष कराल। १०५

शतधन्वा वर वाजि सवारा,
धावत नाँघत सरित पहारा।
स्यदन पछियावत हरि रामा,
छूटत जात रम्य वन ग्रामा।
विकल निखिल आनर्त विहायी,
चलेउ पूर्व दिशि वधिक परायी।
उज्जयिनी, विदिशा, कालिञ्जर,
प्रविशे अनुधावत हरि हलधर।
प्रतिष्ठान, काशिहु पुनि त्यागी,
भागेउ मिथिला ओर अभागी।
सहसा गिरेउ अश्व निष्प्राणा,
हरि-स्यदन-घर्घर नियराना।
मति-विभ्रम कछु सुनत न बूझत,
धावत इत उत पथ न सूझत।

रथ अग्रजहिं राखि भगवाना,
आपहु पायँन कीन्ह प्रयाणा।

दोहा :— *सकेउ भागि नहि खल विकल, हतेउ केश गहि घाय,*
लही न पै मणि तासु ढिग, विहँसे मन यदुराय। १०६

सोरठा:—*बंधुहि सहज स्वभाव, आय सुनायेउ वृत्त जब,*
अविश्वास, दुर्भाव, उपजेउ सहसा राम-उर।

अनुजहिं संशय-नयन निहारी,
गिरा रुक्ष बलराम उचारी—
"प्रिय वयस्य मम मिथिला-नाथा,
बसिहौं कछुक दिनन तिन साथा।"
अस कहि, त्यागि हरिहिं सविषादा,
प्रविशे हलि मिथिला-प्रासादा।
कीन्हेउ स्वागत धाय विदेहू,
राखेउ गेह पूजि सस्नेहू।
गजपुर वृत्त सुयोधन पायी,
आयेउ जनकपुरी हर्षायी।
प्रकटि राम-पद भक्ति अशेषा,
सीखेउ गदा-युद्ध सविशेषा।
प्रेमाङ्कुर रामहु-मन जामा,
उपजेउ पक्षपात इद्धामा।
सहज शिष्य-गुरु-नात दृढ़ायी,
गवनेउ गेह मुदित कुरुरायी।

दोहा :— *हरिहु पहुँचि उत जब पुरी, दीन्हेउ मणि-संवाद,*
उपजायेउ द्वारावती, खलन बहुरि अपवाद। १०७

जानि उपाय-निपुण मधुसूदन,
पावत शान्ति न विकल बभ्रु-मन।
तीर्थाटन मिस लै मणि भागे,
पुरी अनर्थ होन नित लागे।

मणि-विहीन आनर्त दुखारी,
बरसे मेघ न बूँदहु वारी।
परत न एक ओस-कण प्राता,
तृण-विहीन महि, तरु बिनु पाता।
सरि, सर, वापी वारि-विहीना,
छिनसेउ गोधन साधन-हीना।
परेउ देश दारुण दुष्काला,
दिशि दिशि अन्न-अभाव कराला।
प्रजा क्षुधार्त, विकल पुर ग्रामा,
क्रन्दन घोर व्याप्त प्रति धामा।
बढ़े विपुल तस्कर, बटमारा,
नष्ट निखिल जीवन-व्यापारा।

दोहा :— क्रय-विक्रय विरहित निगम, कहुँ न यज्ञ, जप, दान,
मनुज सचल कंकाल जनु, महितल मनहुँ मसान। १०८

विकल विचारत हरि मन माहीं—
अब न पुरी मणि, बभ्रुहु नाहीं।
शतधन्वा ते मणि इन पायी,
दुरे दूरि कहुँ मम भय जायी।
अस गुनि मन हरि दूत पठाये,
काशी तिन सुफलक-सुत पाये।
सादर द्वारावती बोलायी,
राखेउ हरि सनेह प्रकटायी।
आवत पुर मणि बरसेउ वारी,
बहुरि निखिल आनर्त सुखारी।
भयेउ हरिहु मन दृढ़ विश्वासा,
रत्न अजहुँ सुफलक-सुत पासा।
तदपि सभय पुनि जाहि न भागी,
कहेउ न कछु हरि जन-अनुरागी।
अक्रूरहु निश्चिन्त सुखारी,
समुझेउ हरि मणि-कथा विसारी।

दोहा :— *एक दिवस यादव-सभा, बभ्रुहि लखि यदुराय,*
चर्चेउ मणि निज अग्र ये, राखत वसन दुराय। १०६

हेरत बभ्रुहि हरि मति-धीरा,
भाषी गिरा वदन गम्भीरा—
"शतधन्वा जब पुर, यह त्यागी,
भागेउ मम भयभीत अभागी।
गयेउ तुमहि दै मणि हत्यारा,
लही न मैं जब तेहि सहारा।
कलुषित जन मन पुनि मम ओरा,
भये अग्रजहु विमन, कठोरा।
खिन्न तजेउ मोहि मारगहि माहीं,
आये अबहुँ बहुरि गृह नाहीं।
बढ़ेउ पुरी अनुदिन अपवादू,
भयेउ शान्त नहिं अबहुँ विवादू।
तुमहु निसारि प्रजा-कल्याणा,
लै मणि कीन्ह विदेश प्रयाणा।
सक्ट अगणित मणि उपजाये,
फिरत तदपि तुम ताहि दुराये।

दोहा :— *अजहुँ तुम्हारेहि पास मणि, यहि क्षण, यहि थल माहिं,*
प्रकटे बिनु तेहि तजि सभा, उचित गमन गृह नाहिं। ११०

विस्मित सभा, बभ्रु-उर काँपा,
व्याप्त भीति, लज्जा, अनुतापा।
मन नयनन तम-पारावारा,
भयेउ शून्य सहसा संसारा।
शिथिल शरीर न सके सँभारी,
गिरे बभ्रु पद 'पाहि' पुकारी।
लखतहि प्रणत चरण निज गुरुजन,
सकुचे विनय-मूर्ति यदुनन्दन।
कहि, 'पितृव्य!' 'तात!' उर लाये,
अभय वचन भगवान सुनाये।

लहि सज्ञा, मणि सन्मुख राखी,
गिरा दीन सुफलक-सुत भाखी—
"कीन्हेउ घोर कर्म मैं अधमति,
सभव नहिं यहि जीवन निष्कृति।
समुचित दण्ड प्रभुहु नहिं दीन्हा,
गुनि पितृव्य क्षमा मोहिं कीन्हा।

दोहा :—*नष्ट आत्म-विश्वास मम, उर असह्य अघ-भार,*
उचित मृतक-वत् गृह बसहुँ, जानि जन्म निस्सार। १११

अस कहि सभा-भवन मणि त्यागी,
गवने गृह अक्रूर विरागी।
गवने अनुधावत यदुरायी,
मणि सप्रीति साग्रह लौटायी।
बभ्रुहु ध्यान-अध्ययन-लीना,
बसे भवन भव-भोग-विहीना।
लहत स्यमतक ते जो कंचन,
करत दान नित, बसत अकिंचन।
नियमित क्रम क्रम मन-गति सारी,
निर्विकार पुनि बभ्रु सुखारी।
उत सुनि वृत्त जनकपुर सारा,
रामहु द्वारावति पगु धारा।
हरि-उर पूर्व नेह अवलोकी,
बसे गेह बलराम विशोकी।
गत अशान्ति, सशय, दुर्भावा,
सुख सौहार्द पुरी पुनि छावा।

दोहा :—*श्रीहरि तबहिं सुलक्षणा, वरी माद्रि वर नारि,*
पुनि भद्रा केकय-सुता, सत्या अवध-कुमारि। ११२
धारि बहुरि प्रद्युम्न वपु, शकर वर अनुसार,
हरि-रुक्मिणि पितु-मातु लहि, भयेउ मदन साकार। ११३

सोरठा—*उपजे साम्ब कुमार, बहुरि जाम्बवति गर्भ ते,*
पुरी उछाह अपार, मज्जित सुख-सरि राज-गृह।

ताहि काल पाञ्चाल-अधीश्वर,
द्रुपद रचेउ निज सुता स्वयंवर।
कृष्णा त्रिभुवन-सुन्दरि नारी,
यश-सुरभित भारत महि सारी।
यदुजन द्रुपद-निमंत्रण पावा,
हर्ष हुलास निखिल कुल छावा।
तरुण द्रौपदी-छवि अभिलाषे,
वृद्ध जन्ममहि-दरस पियासे।
तरुण वृद्ध अस को कुल माहीं,
उत्सव-प्रियता जेहि उर नाहीं?
लखि उछाह, लै संग समाजू,
गवने मध्यदेश यदुराजू।
जैसेहि करि कालिन्दी पारा,
प्रभु पाञ्चाल-भूमि पगु धारा,
लखे पथ स्वागत हित निर्मित,
उपवन, सदन, विहार अपरिमित।

दोहा—*लहत नित्य आतिथ्य नव, स्वजनन सह यदुवीर,*
नियराने काम्पिल्यपुर, पुण्य जाह्नवी तीर। ११४

सोरठा—*सुनि हरि आवन-वृत्त, धाय मिले प्रमुदित द्रुपद,*
मुग्ध देह, दृग, चित्त, भयेउ भक्त लखतहि नृपति।

सेवा-भाव-विनम्र महीपा,
पूजि शास्त्र विधि यदुकुल-दीपा,
नूतन अतिथि-नगर मन-भावन,
लाय दीन्ह सुख-वास सोहावन।
अवलोकेउ यदुजन समारा,
निर्मित नव परिखा, प्राकारा।

फटिक सौध, व्योमग अट्टालक,
मणिमय कुट्टिम, हाटक जालक।
दिशि दिशि रत्नस्तंभ विशाला,
दोलित सित स्रग्दाम प्रवाला।
चित्र-विचित्र पताका केतन,
भूपित वंदनवार निकेतन।
अशन-शयन-सुविधा विधि नाना,
रम्य विहार-भूमि, उद्याना।
गायन, नृत्य, चतुर्दिक कौतुक,
जन संमर्द, लसत दृग उत्सुक।

दोहा :— *सिञ्चित पंथ सुरभित सलिल, धावत रथ, गज, वाजि,*
व्याप्त विपुल कल्लोल पुर, रहे वाद्य बहु बाजि। ११५

रचित स्वयंवर-महि पुर-पासा,
रत्न-खचित जनु ज्योत्स्ना-हासा।
मंच उच्च मानहुँ गिरि-शृंगा,
मनहर आसन नाना रंगा।
मंचन सँग सोपान सोहाये,
रुचिर छदन छादित मन भाये।
सुरसरि-शीकर-शीतल, मंदा,
डोलत सतत अनिल सानंदा।
चंदन, अगरु, धूप, घनसारा,
सुमन-सुवासित रँग-थल सारा।
मध्य भाग वेदी निर्मायी,
दिव्य शरासन धरेउ सजायी।
धनुष समीपहि यंत्र महाना,
फिरत अहर्निश चक्र समाना।
कृत्रिम मत्स्य सोह तेहि ऊपर,
भ्रमत यंत्र-गति-साथ निरंतर।

दोहा :— *परी प्रलय-जलनिधि-भँवर, निरालंब जनु मीन,*
चक्रवारि-प्रेरित सतत, घूमति निज गति-हीन। ११६

समारोह लखि हर्ष अपारा,
निवसे यदुजन पुर पलवारा।
दिवस पष्ठ-दश भयेउ स्वयंवर,
प्रविशे रंग असंख्य नारि नर।
निवसि सिंहासन स्वजनन साथा,
निरखेउ समारंभ यदुनाथा।
आसमुद्र भारत महि माहीं,
नहिं अस शूर जो रंग-थल नाहीं।
वर्ण-विभेद-विचार विहायी,
जुरेउ विशाल आर्य-समुदायी।
सकल नियत निज थल आसीना,
नहिं रंग मनुज जो आसन-हीना।
गूँजी वंदीजन' वर वाणी,
गावत शौर्य अतीत कहानी।
राजपुरोहित हवन करावा,
श्रुति-उचार स्वस्ति-स्वर छावा।

दोहा.— *थमे वाद्य सहसा सकल, जन-कोलाहल शान्त,*
रंग-भूमि गवनी कुँवरि, धरति चरण मृदु, कान्त। ११७

अँग पंकज-किंजल्क-सुवासा,
मलय समीर मनहुँ निःश्वासा।
देह कान्ति इन्दीवर श्यामा,
दशनोज्वल सुरेन्दु अभिरामा।
नयन अधीर, मधुर आलोकित,
नीलस्निग्ध अलक अति कुञ्चित।
अधर विम्ब विद्रुम द्युति भासा,
मंजु कपोल, कण्ठ, श्रुति, नासा।
अरुण सहस्रपत्र पद राजत,
मंद मंद मणि नूपुर वाजत।
कर युग मंजुल मृदुल मृणाला,
अंगुलि ललित कलित जयमाला।

मनहुँ विमोहन हित जग सारा,
बहुरि मोहिनी वपु विभु धारा।
प्रविशति रँग पाञ्चाल-कुमारी,
लख लख दृग अचल निहारी।

दोहा :— *सम्मोहन मुनि-मानसहु, सुषमहि साङ्ग निहारि,*
उन्मुख, उत्कण्ठित, चकित, दत्तचित्त नर नारि। ११८

हरि इक अविकल, विगत-विकारा,
समारम्भ सम भाव निहारा।
रँग-महि निखिल लखत यदुराजू,
रसे नयन जहँ द्विजन-समाजू।
लखे पाँच जन विप्रन माहीं,
लखे कतहुँ जस महितल नाहीं।
आकृति अवलोकत अनुमाने,
पाण्डव पाँच श्याम पहिचाने।
मुदित हृदय हलधरहिं दिखायी,
भाषी मंद गिरा यदुरायी—
"ये नृप-सुत द्विज-वेष बनाये,
क्षात्र-तेज नहिं दुरत दुराये।
भस्मावृत पावक सम ताता!
लागत मोहिं ये पाण्डव-भ्राता।
अवसर जानि चहत अब प्रकटन,
करिहैं ये ही मत्स्य-विभेदन।"

दोहा :— *स्वजनन बहुरि निदेश हरि, दीन्हेउ पाय सुयोग—*
"करै न यादव शूर कोउ, मत्स्य-भेद उद्योग।" ११९

ताही क्षण पाञ्चाल-कुमारा,
धृष्टद्युम्न उठि वचन उचारा—
"सुनहु आर्य-जन! प्रजा! नरेश!
यह मम स्वसा दिव्य वपु वेषा।

कृष्णा यज्ञानल सञ्जाता,
कन्या-रत्न भुवन-विख्याता।
सुलक्षणा, शुभ परिणय कांक्षिणि,
वरिहै ताहि जो शूर शिरोमणि।
शौर्य-निकष यह धनु, ये बाणा,
मत्स्य-युक्त वह यत्र महाना।
ग्रहणहु कठिन कठोर शरासन,
औरहु कठिन बाण अध्यासन।
मत्स्य सचल, अति कठिन निरीक्षण,
कौशल-सीमा लक्ष्य विभेदन।
कर्म अमानुष संशय नाहीं,
पै भरोस दृढ़ मम मन माहीं—

दोहा :— *आर्य-मही वीरप्रसू, प्रकटत नित नररत्न,*
लहिहै यश सँग कोउ कुँवरि, आजहु सिद्ध-प्रयत्न।" १२०

दुस्साहस-वर्जक वर वाणी,
रूप-विमुग्ध भूपन अवमानी।
धावत मधुप गंध-मधु-भूला,
लखत प्रसून, गनत नहिं शूला।
उठे त्यागि आसन नरनाथा,
सुत, पितु, बंधु, मित्र इक साथा।
सकल नेह संबंध विसारी,
बढ़े प्रलपि कर शस्त्र सँभारी।
दमके शिर किरीट, उर हारा,
भुज केयूर, रंग उजियारा।
मनसिज-जव बहु धाय महीपा,
पहुँचे तमकन चाप समीपा।
शकुनि अग्रसर, गर्व अशेषा,
झपटि गहेउ कार्मुक सावेशा।
चपेउ ऊँसेहि धनुष हठाता,
लागेउ भीषण ज्या आघाता।

दोहा :— *गिरेउ अवनितल, खसि गिरे, कनक मुकुट, मणिहार ,*
अट्टहास गूँजेउ सभा, लज्जित सुबल-कुमार । १२१

तजेउ न तबहुँ नृपन अविवेका ,
धनु दिशि बढ़े एक पै एका ।
रुक्मि, जयद्रथ, अश्वत्थामा ,
पौण्ड्रक, काशिराज बलधामा ,
विंद, भगदत्त, शल्य मद्रेशा ,
चेदिनाथ, कारूष-नरेशा ,
औरहु विपुल वीर धनुधारी ,
सके न मौर्वि-निघात सँभारी ।
विफल-प्रयत्न सकल शिर नायी ,
लौटे मंचन दर्प गँवायी ।
सहसा उठे कर्ण धनुमाना ,
भयेउ कोलाहल सभा महाना—
'सारथि ! सूत !'—शब्द रँग छाये ,
निदरि कर्ण रव धनु ढिग आये ।
सहजहि जस उठाय ज्या तानी ,
वदन विवर्ण कुँवरि बिलखानी ।

दोहा :— *धरेउ शरासन बाण जस, कृष्णा कीन्हि पुकार—*
"वरिहौं मैं न अनार्य-सुत, सूत-सुवन, रथकार !" १२२
सुनत कर्ण कटु हास्य करि, त्यागेउ धनुप सक्रोध ,
बसेउ निजासन, उर भरी, विषम ज्वाल प्रतिशोध । १२३

सुहृद-दशा लखि क्षुब्ध सुयोधन ,
जाय उठायेउ सुदृढ़ शरासन ।
कर्षत शिञ्जिनि महितल आवा ,
अट्टहास पुनि रँग-थल छावा ।
अस्थिर द्रुपद, हतप्रभ राजा ,
उठेउ तबहिं कोउ विप्र-समाजा ।

लखि छवि दिव्य मुग्ध रँग-शाला,
मुग्ध कुँवरि, चंचल कर माला।
उत अग्रजहिं कहेउ भगवाना—
"यह अर्जुन कौन्तेय, न आना।
द्युति कुरुविन्द, मूर्त कन्दर्पा,
वक्षस्कंध वृहत, मुख दर्पा।
भुज प्रचण्ड गज-शुण्ड प्रमाणा,
गवनत धनु दिशि सिंह समाना।
लखहु सुमन सम धनुष उठावा,
लखहु कपि ज्या वाण चढ़ावा।"

दोहा:—*भाषे इत श्रीहरि वचन, तजेउ पार्थ उत बाण,*
छिन्न मत्स्य निपतित मही, हर्ष-निनाद महान। १९४

जय-शब्दन गूँजेउ रँग सारा,
सुमन-वृष्टि चहुँ ओर अपारा।
मुदित विप्र मृग-चर्म उछारे,
विजय-वाद्य बाजे रँग द्वारे।
मागध सूत प्रशस्ति उचारी,
विह्वल मुद-अतिरेक कुमारी।
मनोराग-अरुणित मुख रोचन,
पुलक कपोल, प्रफुल्ल विलोचन।
मधुरस्मित बिम्बाधर भासुर,
रशना क्वणित, रणित पद नूपुर।
आनँद-निर्भर बाल मराली,
गवनी प्रिय समीप पाञ्चाली।
उन्मुख कुँवरि, पटाञ्चल चंचल,
तरल कर्णिका, अलक, दृगंचल।
उठे हस्त कंकण-मणि दमकी,
भासित रंग विज्जु जनु चमकी।

दोहा.—*परिणय-प्रणय-प्रतीक वर, शीर्षार्चन जयमाल,*
अर्पी आनँद-कण्टकित, अर्जुन-वक्ष विशाल। १९५

लखि सन्निकट द्रौपदी-शोभा,
प्रबल विशेष जनेशन-क्षोभा।
लही न निज निज बल पाञ्चाली,
चहत करन मिलि सकल कुचाली।
जैसेहि द्रुपद-सुता लै संगा,
निकसे अर्जुन तजि महि रंगा।
बढ़ी लालसा उर अनिवारा,
पार्थहिं रण-हित नृपन प्रचारा।
धर्म-शील पाञ्चाल भुआला,
युद्ध-प्रसंग विलोकि विहाला।
नम्र-मौलि समुझायेउ निज प्रण—
"उचित न नीति-नियम-अतिवर्तन।"
बोलेउ सुनि अविनीत सुयोधन—
"दबहु विप्र-सँग शठ पाञ्चालन।
ये ही सब मर्याद बिसारी,
बरत भिक्षुकहिं राजकुमारी।"

दोहा :— *सुनत दर्प कुरुपति-वचन, कुपित सकल पाञ्चाल,*
विफल विलोकि विनम्रता, बोलेउ क्षुब्ध भुआल— १२६

"गुनि मन अतिथि, तुमहिं सन्मानी,
भाषी मैं नत-मस्तक वाणी।
धृष्ट, वक्रमति, तुम अति मानी,
मृदुता मम कातरता जानी।
कहहुँ सत्य, नहिं करत विकत्थन,
गनत तृणहिवत् मैं सब कुरुजन।
सबल वंश मम स्वबल-भरोसे,
नहिं कुरुजन सम हम पर-पोसे।
कहत द्विजन तुम भिक्षुक आजू,
चलत द्रोण द्विज बल कुरुराजू।
करि अश्वत्थामा पद-पूजन,
बसत अभय जगतीतल कुरुजन।

कृपाचार्य द्विज अन्य भिखारी,
जियत जासु तुम चरण पखारी।
वीर एक तुम कुल उपजावा,
जीतन जो मोहिं मम पुर आवा।

दोहा :—जारेउ तुम तेहि लाह-गृह, बाँधव जननी साथ,
जानत जग जेहि भाँति तुम, भये आजु कुरुनाथ।" १२७
विहँसे अर्जुन सुनि वचन, विहँसे सुनि भगवान,
क्रुद्ध सुयोधन कर्ण-सँग, समर हेतु समुहान। १२८

लखेउ धनंजय कर्ण रणोद्यत,
बढ़त सदर्प द्रुपद दिशि उद्धत।
लखे बहोरि विपुल पाञ्चाला,
बढ़त युद्ध-सन्नद्ध कराला।
समर विलोकि पार्थ समुपस्थित,
द्रुपदहिं कही गिरा वीरोचित—
"जेहि क्षण राजकुँवरि रँग-शाला,
पहिरायी मम गर वर माला,
ताहि क्षणहिं तेहि रक्षण-भारा,
पतिस्वरूप मैं निज शिर धारा।
होहु विरत रण लै पाञ्चालन,
लगहु स्वधर्म करत मैं पालन।"
अस कहि द्रुपदहिं पाछे डारी,
भाषेउ कर्णहिं पार्थ प्रचारी—
"अवसर तुम न रंग-महि पावा,
औरहु अधिक गर्व उर छावा।

दोहा :—चाहत करन तुम्हार मैं, दर्प आजु सब चूर्ण,
शौर्य-निकष मोहिं मानि निज, प्रकटहु शर-बलपूर्ण।" १२९
सुननहि प्रेरेउ तीक्ष्ण शर, कर्ण शौर्य-सर्वस्व,
प्रकटेउ बीचहिं काटि तेहि, पार्थहु निज सर्वस्व। १३०

सोरठा:—लखेउ ताहि रण भीम, अनुजहि एकाकी निरखि,
नृप-मण्डली असीम, आवति घेरति चतुर्दिक।

झपटि भीम इक विटप उपारा,
रण-महि प्रविशि नृपन ललकारा।
धाये लखि क्रोधित बहु योद्धा,
लागेउ होन रोध-प्रतिरोधा।
जहाँ पूर्व श्रुति-मंत्रोच्चारण,
गावत जहाँ बंदिजन, चारण,
परिणय-साज विप्र जहँ साजत,
मंगल वाद्य रहे जहँ बाजत,
युद्ध-वाद्य-स्वर तहँ, महि काँपी,
'मारु काटु' ध्वनि दिशि दिशि व्यापी।
पाय सुयोग भीम रण रोपा,
कीन्ह आपु अन्तक जनु कोपा।
रोष वृकोदर भीषण ज्वाला,
झुलसे समर-मही महिपाला।
एक शल्य मद्रेश विहायी,
चले विकल नरराज परायी।

दोहा:—अविदित मातुल नात निज, लरे मद्रपति वीर,
आहत भीमाघात ते, भागे अन्त अधीर। १३१

सोरठा:—उत उद्धत राधेय, दीर्ण-देह अर्जुन-शरन,
गुनि मन द्विजहि अजेय, पूछेउ विस्मय-युक्त स्वर—

"को तुम सर्व पराक्रम-समुदय?
दिव्य हस्तलाघव, बल अक्षय।
की तुम विष्णुहि कायावाना,
जन्मे विप्र-रूप भगवाना?
शक्रहि तौ नहिं महि तनु-धारी?
अथवा प्रकट आपु त्रिपुरारी?

की तुम अस्त्रवेद साकारा ?
फिरत सिखावत रण-व्यापारा।
सकल मनुज नहिं करि रण मम सँग,
क्षत-विक्षत मम लखहु अग अँग।"
विहँसि धनंजय वचन उचारे,
"गयेउ न गर्व जदपि तुम हारे।
मैं द्विज भिक्षुक, सुर कोउ नाहीं,
युद्धहु जब लगि बल तनु माहीं।
रण-महि नहिं प्रलाप कर कामा,
जो अति विकल जाहु निज धामा।"

दोहा :— *सुनि लज्जित प्रतिपक्षि-पद, कीन्हेउ कर्ण प्रणाम,*
"ब्रह्मतेज उत्कृष्ट जग,"—कहि त्यागेउ संग्राम। १३२

रिपु निज रण भीमार्जुन जीते,
भये प्रजा-पाञ्चाल-पिरीते।
द्विज-वृन्दहु मानोन्नत शीशा,
पूछत वश, देत आसीसा।
भीत पाण्डु-सुत भेद न प्रकटहिं,
तजी कुँवरि-सँग सत्वर रँग-महि।
दुहिता-वत्सल द्रुपद सुजाना,
अवलोके द्विज करत प्रयाणा।
व्याकुल लखि अभद्र व्यवहारा,
धृष्टद्युम्न सन वचन उचारा—
"नाम-निवासहु बिना बताये,
लखहु जात द्विज सुता लेवाये।
यथा अलौकिक इन कर विक्रम,
तैसेहि असामान्य यह गति-क्रम।
हम प्रण-बद्ध उचित नहिं रोधा,
पै रहि गुप्त लगावहु शोधा।"

दोहा :— *पितु-निदेश त इत चलउ, धृष्टद्युम्न जेहि काल,*
अग्रज-सँग गवने हरिहु, पाण्डव-प्रेम-बिहाल। १३३

सरि-तट इक घटकार निकेतू,
निवसति कुन्ती सुतन समेतू।
जात प्रात सुत भिक्षा लागी,
लौटत मध्य दिवस नित माँगी।
होत दिनान्त आजु नहिं आये,
व्यथित पृथा, केहि कहँ बिलमाये?
नगर स्वयंवर-साज-समाजा,
जुरिहैं रँग-अवनि नर राजा।
लेहि न कहुँ सुत चीन्हि सुयोधन,
रचै न पुनि कछु चक्र पाप-मन।
तर्क-वितर्क मग्न जब माता,
सुनेउ भीम-स्वर श्रुति-सुख-दाता।
"भिक्षा श्रेष्ठ मातु ! हम पायी,
आशिष देहु, विलोकहु आयी।
अविदित रँग-वृत्तान्त, समर-जय,
समुझि न सकी मातु सुत-आशय।

दोहा :— *भवनहि ते दीन्हेउ पृथा, प्रमुदित मन आदेश—*
"लेहु बाँटि तुम मिलि सकल, लही जो वस्तु विशेष !" १३४

त्यागि कुटी जस बाहर आयी,
परसे द्रुपद-सुता पग धायी।
हुलसी विदित-वृत्त सब माता,
वधुहिं असीसति पुलकित गाता।
अपलक दृग लावण्य विलोकति,
हर्ष-अश्रु हिय लाय विमोचति।
कहत नकुल जस जस रण-गाथा,
फेरति पार्थ-भीम-शिर हाथा।
सहसा निज निदेश मन आनी,
लज्जित जननि, विषम उर ग्लानी—
रवि ! शशि ! शंभु ! शिवा ! तुम साखी,
कबहुँ न अनृत गिरा मैं भाखी।

कहे आजु अनदेखे वचना,
रानी विरचि काह विधि रचना?
सकल निदेश सुवन नहिं टारी,
बाँटि जाय नहिं राजकुमारी।

दोहा.— *समुझि अब अन्तर्व्यथा, पुत्रहु सकल अधीर,*
प्रविशे ताही क्षण भवन, सकर्षण, यदुवीर। १३५

कहि वसुदेव-सुवन निज नामा,
कीन्ह पृथा पदपद्म प्रणामा।
वदे बहुरि युधिष्ठिर, भीमा,
भेंटे पार्थ सनेह असीमा।
परिचय पाय माद्रि-सुत हर्षे,
ललकि राम-माधव-पद परसे।
अवलोकत हरि-रूप सभागे,
भाव विभिन्न हृदय प्रति जागे।
लखे पृथा प्रभु त्रिभुवन-त्राणा,
धर्महि मूर्त धर्म-सुत जाना।
भीम विलोके हरि अनुकूला,
जनु सकल्प मूर्त भव-मूला।
पार्थहिं शौर्य-स्रोत प्रभु लागे,
छवि-निधि निरखि नकुल अनुरागे।
लखेउ हरिहिं सहदेव सुजाना,
जनु साकार ज्ञान विज्ञाना।

दोहा :— *ध्यावत निशि दिन जाहि सब, लहि तहि सहसा गेह,*
मुद-बाहुल्य-प्रफुल्ल दृग, पुलक-अलंकृत देह। १३६

करत दरस उपजेउ अनुरागा,
सेवा रस पाण्डव-उर जागा।
लखे हरिहु सब बन्धु गुणागर,
शौर्य, सुबुद्धि, धैर्य, धृति-सागर।

चीन्हे प्रीति-पात्र, उर लाये,
दै सर्वस्व मिलत अपनाये।
पल्लव-आसन नकुल विछावा,
लखतहि पृथा-हृदय भरि आवा।
सुमिरि दशा उद्वेग अथाहा,
बहेउ अंब-दृग अंबु-प्रवाहा।
परितोषेउ हरि कहि मृदु वाणी—
"धैर्य-खानि तुम मातु! सयानी।
सुत-हित करत जो मिलि पितु अंबा,
कीन्ह सकल तुम बिनु अवलंबा।
आजु तुम्हारेहि पुण्य सहारे,
भये सुवन त्रिभुवन उजियारे।

दोहा :—*त्यागहु सब-उर शोक भय, बीत - विघ्न - अपकर्ष,*
यश-शशि जीवन-नभ उदित, अनुदिन नव उत्कर्ष।" १३७

अस कहि बसन विभूषण नाना,
दीन्हे प्रकटि प्रीति भगवाना।
जैसेहि लै पाञ्चाल-कुमारी,
कुन्ती मातु कुटीर सिधारी,
धर्म-सुवन यदुपतिहि सुनावा,
जेहि विधि कुरुजन-कृत दुख पावा,
पुरी एकचक्रा जस त्यागी,
आये यहाँ स्वयंवर लागी।
"दरस तुम्हार आजु प्रभु! पाये,
बीते कुदिन, सुदिन फिरि आये।
व्यास-कृपा हरि-महिमा थोरी,
जानहुँ, जदपि बुद्धि भव-भोरी।
सुमिरि नाथ-यश, जपि नित नामा,
यापी हम दुर्दैव-त्रियामा।
लहि सानिध्य-मात्र यदुराजू!
गनत सफल हम जीवन आजू।

दोहा :— *अब ते अनुचर दास हम, स्वामी तुम भगवान।*
रुचै करहु निर्माण प्रभु। रुचै करहु अवसान।" १३८

बल विक्रम सँग विनय विलोकी,
कही विहँसि हरि गिरा विशोकी—
"मत्स्य-भेद सब मंगल-मूला,
सुखद भविष्य, नष्ट पथ-शूला।
जानहु यह विधि-निर्मित काजू,
लहिहौ वेगिहि पैतृक राजू।
अमित पराक्रम द्रुपद-नरेशा,
वसुधा, वाहिनि, विभव अशेषा।
धृष्टद्युम्न योद्धा बलशाली,
अनुज शिखण्डी पटु सेनानी।
कुँवरि तिहुन-प्रिय प्राण समाना,
करिहैं शीघ्रहि अनुसंधाना।
पावत शोध न जब लगि राजा,
पूर्ण न जब लगि परिणय-काजा,
जब लगि लहत राज्य तुम नाहीं,
बसिहौ तब लगि यहि पुर माहीं।"

दोहा :— *तोषि पाण्डु-सुत भाँति बहु, कुन्ती-पद शिर नाय,*
लौटे साग्रज निज शिविर, प्रमुदित मन यदुराय। १३९

सोरठा:—*निरखे आवत जात, धृष्टद्युम्न हरि राम दोउ,*
मोद न हृदय समात, लब्ध-सूत्र लौटेउ भवन।

प्रात पितुहिं संवाद सुनावा,
मृत जनु द्रुपद प्राण पुनि पावा।
आये हरि समीप तत्काला,
भाषे सविनय वचन भुआला—
"तुम सर्वज्ञ कहत मुनि सारे,
भव-प्रपंच सब जानन हारे।

को यह नाथ ! महा धनुधारी,
गयेउ सुता लै प्राण-पियारी ?
साँचहु जो कोउ द्विज-कुल-भूषण,
तौ शास्त्रोक्त-विवाह - अदूषण।
जो कोउ क्षत्रिय नृपति-कुमारा,
विप्र-वेष केहि कारण धारा ?
तुम जन-वत्सल, मृदुल स्वभाऊ,
त्यागहु मोहिं जन जानि दुराऊ।
नाथ ! सुमन-सम सुता सोहायी,
अनजानत मैं कहाँ चढायी ?"

दोहा :— *कह हरि-"भेदेउ लक्ष्य जेहि, जीतेउ नृप-सन्दोह,*
जानहु निश्चय ताहि तुम, कोउ नृप-वंश-प्ररोह। १४०
अनलहु कुसमय लखि बसत, करि आवृत तनु छार,
पाय अनिल-बल पुनि सुदिन, प्रकटत बनि अगार।" १४१

विगत-विषाद सुनत नरनाहू,
पूछेउ हृदय नवीन उछाहू—
"नाम-यश प्रभु ! कहहु बुझायी,
कवनि विपति, कस बसत दुरायी ?
जासु नाथ ! तुम सखा, सनेही,
सकत कि त्रासि विश्व कोउ तेही ?
तुम्हरी कृपा महँ यदुनाथा !
सकत समर करि कालहु साथा।"
पूर्णकाम सुनतहिं यदुरायी,
नृपहिं प्रशंसि कहेउ मुसकायी—
"सत्यसंध तुम अति बलधारी,
सहज न पै कुरुजन-सँग रारी।
ये पाण्डव जतु-भवन विहायी,
दुर्योधन-भय बसत दुरायी।
अब लगि फिरे समातु अनाथा,
आजु तुम्हहिं लहि भये सनाथा।

दोहा :— *निमिषहि महँ सधानि शर, कीन्ह मत्स्य जेहि भेद,*
द्रोण-शिष्य प्रिय पार्थ सोइ, जनु सदेह धनुवेद।" १४२

सुनि श्रुति-अमृत गिरा नरेशा,
दीन्हेउ तत्क्षण सुतहिं निदेशा—
लै रथ श्रेष्ठ तात 'तुम धावहु,
सत्वर भवन पाण्डु-सुत लावहु।
करि सादर सप्रीति अभिनन्दन,
बहुरि सुनायउ मोर निवेदन—
'यह पाञ्चाल देश मम सारा,
सुता सहित अब भयेउ तुम्हारा।
महूँ दास सुत-पौत्र-समेतू,
बसहु ससुर अब राज-निकेतू।
तुम नरपति-सुत, मैं नरनाहा,
उचित बंश-विधि पालि विवाहा।
अब नहिं गुप्त वास कर काजू,
होहु प्रकट, माँगहु निज राजू।
गहहिं नीति-पथ जो नहिं कुरुजन,
लेहु स्वत्व निज चढ़ि समराङ्गण।'

दोहा :— *यहहु कहेउ, बसि गेह मम, निरखत पथ यदुराय,*
मातु सहित धारहु चरण, शोच-सँकोच विहाय।" १४३

गवनेउ धृष्टद्युम्न तत्काला,
लायउ निज गृह हरिहिं भुआला।
करि बहु विधि केशव-सेवकाई,
पूर्व कथा अवनीश सुनायी।
अर्जुन जस गुरु द्रोण पठाये,
पुर पाञ्चाल समर हित आये—
"युद्ध कठोर जदपि मैं कीन्हा,
रण-महि मोहि पार्थ गहि लीन्हा।
मुग्ध निरखि मैं शौर्य अपारा,
कीन्हेउँ सुता-विवाह-विचारा।

सुनेउँ वृत्त पुनि लाह-निकेतू,
जरे पाण्डु-सुत मातु समेतू।
उपजेउ उर जो विषम विषादू,
नासेउ आजुहि सुनि सवादू।
जियत पार्थ ! पुनि मम जामाता !
दव-विदग्ध वन वृष्टि-निपाता।"

दोहा — *प्रकटत परमानन्द इत, जब हरि प्रति नरनाथ,*
धृष्टद्युम्न प्रविशे पृथा, पाण्डव, भगिनी साथ। १४४

सोरठा — *लखि सन्मुख पाञ्चाल, मूर्तिमत सकल्प निज,*
प्रीति प्रफुल्ल, विहाल, मिलेउ हर्ष-निर्भर हृदय।

भेंटीं दोउ भरत-कुल-शाखा,
भयीं अभिन्न, निजत्व न राखा।
हर्ष-प्रवाह, उमग तरगा,
मनहुँ रहीं मिलि यमुना-गङ्गा।
मिले सरस्वति-सम यदुराजू,
भयेउ द्रुपद गृह तीरथराजू।
जनु पावित्र्य-प्रकर्ष वोलाये,
व्यास मुनीश ताहि क्षण आये।
भानु प्रभा मुख विधु-मधुराई,
नयनन विश्व-शान्ति जनु छायी।
गहे धाय पद पाण्डव, राजा,
परसे चरण मुदित यदुराजा।
मुनिहु मिले भरि उर भगवाना,
रहेउ न निमिष भुवन, निज भाना।
भेंटत पुनि पुनि प्रीति अथोरी,
चिर-परिचित जनु मिले चकोरी।

दोहा — *दिये सुखासन नृप मुदित, निवसे सब सानन्द,*
भये उदित जनु एक सँग, हस्त नखत, रवि, चन्द। १४५

लै सहर्ष जब कुन्ती सासू,
गवनी द्रुपद-सुता रनिवासू।
करत ऋषीश्वर व्यास-प्रशंसा,
कहे वचन यदुकुल-अवतंसा—
"उदित विशेष भाग्य मम आजू,-
लहेउँ तुम्हार दरस मुनिराजू!
केवल तुम्हरेहि नाथ! तपोवल,
रचित आर्यन-संस्कृति महि-तल।
सरित सनातन मलिन निहारी,
बुधि-बल कीन्ह विमल तुम वारी।
पूर्व ज्ञान तुम करि सब संचय,
रोपेउ आर्यधर्म-तरु अक्षय।
मूढ़न ज्ञान-नयन तुम दीन्हे,
ज्ञानी जन अति-ज्ञानी कीन्हे।
भारत महि नव युग-निर्माता,
विश्व-भूति तुम प्राण-प्रदाता।

दोहा :— *तुम्हरेहि तप-बल, ज्ञान-बल, नसिहैं असुर समूल,*
रहिहैं चिर सुरभित, नवल, विमल नाथ-यश फूल। १४६
सस्मित वेदव्यास मुनि, भाषेउ हरिहि निहारि—
"कवनि चूक मम जो रहे, प्रभु! माया विस्तारि। १४७

लेत रहत तुम महि अवतारा,
मैं यश गायक नाथ! तुम्हारा।
पूर्व चरित मैं अब लगि गाये,
गइहौं अब नव चरित सोहाये।
कार्य तुम्हार कठिन यहि वारा,
भयेउ जटिल जीवन-व्यापारा।
बधे पूर्व जे जन-रिपु नाथा!
शैल-विशाल देह, दश माथा।
अब तनु क्षुद्र, प्रपंच पसारा,
एकहि शीश कुबुद्धि-पहारा।

वढेउ वहुरि सोइ असुर-समाजू,
चीन्हेउ तिनहिं कठिन पै आजू।
जीती वहुरि मही तिन सारी,
राज्य-संग दुर्नीति प्रसारी।
कुसमय भयेउ नाथ ! संघर्षा,
नष्ट आर्य-जीवन-आदर्शा।

दोहा — आर्यहु वर्तत जिमि असुर, आयेउ दारुण काल,
भव-वादी चार्वाक द्विज, असुर-वृत्ति शिशुपाल। १४८

जीवन अब प्रभु ! बुद्धि-अधीना,
विकृत बुद्धि भावना-हीना।
तर्क वितर्क-प्रवाह अनल्पा,
शब्द-विलास विपुल, कृति स्वल्पा।
होत कर्म-पथ क्लेश अशेषा,
सहत को त्याग भाव विनु क्लेशा?
करत त्याग नहिं श्रद्धा हीना,
श्रद्धा-भाव न बुद्धि अधीना।
हृदय-हीन नर श्रद्धा नासी,
जियन चहत मति मात्र उपासी।
रहित शृंखला सकल समाजू,
जीवन विना व्यवस्था आजू।
निष्ठा नष्ट, विलीन नियंत्रण
वाद-विवाद-श्रान्त अति जन-मन।
विरहित त्याग भाव, वलिदाना,
क्रम क्रम जीवन-स्रोत सुखाना।

दोहा — *बुद्धि - भावना - संतुलन, आर्यधर्म - आधार,*
नष्ट भावना आजु प्रभु ! शेष बुद्धि-व्यभिचार। १४९

चंचल मानस, थिर न विचारा,
मन क्षण क्षण अन्य प्रकारा।

आत्मघात-पथ जनु चौरायी,
ध्येय-विहीन रहे नर धायी।
अनुचित ज्ञानोपासन नाहीं,
श्रद्धा-बिनु न सार तेहि माहीं।
श्रद्धा-योग लहत जब ज्ञाना,
सकत तबहिं करि नर-कल्याणा।
सृजन-शक्ति ताही महँ होई,
प्रकटत प्रति पल जीवन सोई।
बुद्धि-जीवि इम मुनि जग माहीं,
सकत ज्ञान है, श्रद्धा नाहीं।
तेहि हित प्रभु! अवतार तुम्हारा,
तुम कृति, भक्ति, ज्ञान साकारा।
जेहि तुम मिलत, करत जहँ वासा,
भरत उछाह, आस, विश्वासा।

दोहा :— *लखि-सुनि प्रभु! तुम्हरेहि चरित,उठे सुप्त उर जागि,*
लोभ, मोह, भय, दीनता, रहे महीतल त्यागि। १५०
निरखि सच्चिदानन्द छवि, होत द्रवित उर आप,
महँ आजु कृतकृत्य प्रभु! विरहित अघ, भव-ताप।" १५१

यहि विधि द्रुपद-गेह करि वासू,
सुखी श्याम लहि मुनि-सहवासू।
कृष्णाद्वय सँग सँग गृह पायी,
हर्ष न भूपहु-हृदय समायी।
नित नूतन संवाद प्रसंगा,
सुनत पाण्डु-सुत सहित उमंगा।
परिणय-दिन समीप जब आवा,
भूपहिं व्यास मुनीश बोलावा।
कृष्णा-पाण्डव-कथा पुरानी,
जन्म-जन्म पर्यन्त, बखानी।
सुनि नृप कीन्हेउ सहित उछाहू,
पाँचहु सँग निज सुता विवाहू।

हेम, रत्न, रथ, बाजि अशेषा,
दीन्हे यौतुक-रूप नरेशा।
हर्षित कुन्ती, पूजी वाणी,
वधू क्लेश-हारिणि सन्मानी।

दोहा — सौंपि हरिहि पाण्डव सकल, गवने इत - मुनिराज,
लहि गजपुर उत वृत्त जनु, वज्राहत कुरुराज। १५२

शकुनी दुश्शासन लै संगा,
गवनेउ पितु समीप मन भंगा।
सुनि अवसन्न अधम, अँग कम्पित,
कहत, "महाभय भयेउ उपस्थित!
पाण्डु-सुतन सह दुरितहु मोरा,
प्रकटित भुवन अयश भरि घोरा।
आहत आशीविष सम पाण्डव,
डसिहैं सुत करि समर पराभव।"
विकल पितुहिं लखि मूढ़ सुयोधन,
कीन्ही राजनीति बहु वर्णन।
छल प्रपंच पुनि विपुल बखाना,
एकहु यत्न न नृप-मन माना।
निज मत, सुत-मत नष्ट प्रतीती,
सुमिरे विदुर, भीष्म, वश भीती।
द्रोणहु, कर्णहु भवन बोलायी,
पूछी सम्मति वृत्त सुनायी।

दोहा — जीवित पाण्डव मातु-सह, सुनतहि नेह-अधीर,
पुलकित तनु शान्तनु-सुवन, नयनन आनँद-नीर। १५३

भाषे वचन वश-अनुरागी—
"सम पाण्डव कौरव मम लागी।
पालन चहहु धर्म जो आजू,
...

पै दुर्योधन आजु नरेशा,
अर्थ-वासना हृदय अशेषा।
विषयासक्त, विभव मति पागी,
जियन न चहत राज पद त्यागी।
राखहु राज्य तासु हित आधा,
लहहिं पाण्डु-सुत अर्ध अबाधा।
चहत तात ! जो कुल-कल्याणा,
तजि यह आजु उपाय न आना।
चिर कुरुकुल-रिपु ये पाञ्चाला,
कबहुँ न बंधु-भाव इन पाला।
लहि सबधी पाण्डव योद्धा,
चाहत करन वैर-प्रतिशोधा।

दोहा :— *अवसर-दर्शी, भेद-पटु, मानी ये पाञ्चाल,*
कण्टक ते कण्टक चहत, काढन द्रुपद भुआल। १५४
तदपि हृदय मम तोष सुनि, पाण्डव कुन्ती साथ,
निवसत पाञ्चाल-पुर, शान्ति-मूर्ति यदुनाथ।"१५५

सुनत विदुर गुरु द्रोण मुदित मन,
कीन्हेउ भीष्म-कथन अनुमोदन।
कर्णहिं लागि गिरा जनु शूला,
भाषे वचन तीक्ष्ण प्रतिकूला—
"भये वृद्ध अति शान्तनु-नन्दन,
का अचरज अप्रिय रण-प्राङ्गण।
प्रवचन-वीर विदुर विख्याता,
रहेउ न कबहुँ समर ते नाता।
जदपि नाथ-धन धारत प्राणा,
कुरु पाण्डव दोउ गनत समाना।
दोषी इनहिं कहहुँ कस ताता?
ये दोउ राजवश-सजाता।
पै लखि द्रोण कहत सोइ वाणी,
उपजति उर रिस, सशय, ग्लानी।

जासु आश्रितहु अरि-अनुरागी,
विनसत हत-श्री स्वामि अभागी।

दोहा :— *गहेउ शस्त्र कर द्रोण पै, गयेउ न वश-प्रभाव,*
नमत उदित आदित्य नित, यह द्विज जाति स्वभाव। १५६

मम मत कातर सम्मति त्यागी,
होहु पराक्रम-पथ अनुरागी।
करत जो विक्रम-समय विषादा,
होत अवश्य तासु अवसादा।
भोगत सतत मही सो ताता!
करत जो चढ़ि रण शत्रु-निपाता।
द्वारावति यदु-वाहिनि, आजू,
दै न सहाय सकत यदुराजू।
अबहिं द्रुपद-पुर पै चढ़ि धायी,
सहजहि हम रिपु सकत नसायी।
रिपु उपेक्ष्य ये पाण्डव नाहीं,
होइहैं बद्धमूल क्षण माहीं।
करत अरिहिं जो अवसर-दाना,
निश्चय अत तासु अवसाना।
स्वल्पहु अनल वायु-बल पायी,
देत सकल कान्तार जरायी।

दोहा :— *मानहु सम्मति तात! मम, राखहु मम शिर भार,*
एकाकी मैं सैन्य लै, करिहौं अरि-संहार।" १५७

कुपित द्रोण सुनि, वचन उचारा—
"कथन तुम्हार कुलहि अनुसारा।
दाख कि कबहुँ नीम तरु लागा?
कबहुँ कि गरल-वमन अहि त्यागा?
विश्व-विदित यह विप्र-स्वभावा,
राखत सर्व काल सम भावा।

उदितहि रवि नहिं हम अभिनदत,
हम आदित्य काल तिहुँ वदत।
सत्यव्रती हम सत्य सुनावत,
सुत-सुतहिं मुँह-देखी गावत।
होइहैं जब रण-काल उपस्थित,
तुम ते पूर्व निधन मम निश्चित।
जियत द्रोण जब लगि ससारा,
रखिहैं को तुव शिर रण-भारा।
पाण्डु-सुवन दुर्योधन माहीं,
चाहत बंधु-भाव तुम नाहीं।

दोहा :— *कुरुजन-द्वेषी नृप द्रुपद, तुमहिं पाण्डु सुत-डाह,*
तुम दोउ निज निज द्वेष वश, चाहत पर गृह-दाह। १५८

जब लगि मिलत न पाण्डव कुरुजन,
यहि कुल तबहीं लगि तुव पूजन।
तुम दूषित-मति, कलुष-निकेतू,
नासत सुरतरु इन्धन हेतू।
चहत द्रुपद-पुर पै तुम धावा,
पै कस वृत्त एक बिसरावा ?
निवसत आजु द्रुपद-रजधानी,
वीरोत्तम अर्जुन धनु-पाणी।
बीते नहिं बहु दिन तुम हारे,
भागे रण तजि गर्व निसारे।"
कुपित कर्ण प्रतिभाषी वाणी—
"तजेउ अर्जुनहिं मैं द्विज जानी।
जो समुहात मोहिं निज वेषा,
नामहि-मात्र रहत महि शेषा।"
निरखि करत पुनि कर्ण प्रलापा,
रोष अपार भीष्म उर व्यापा।

दोहा :— *पिशुन, कलहजीवी जबहि, कहउ ताहि गाङ्गेय,*
कोप प्रकम्पित तजि समिति, गवनेउ गृह राधेय। १५९

दोहा :— *विदुर, द्रोण, शान्तनु-तनय, लखि पाण्डव-अनुकूल,*
काल समुझि प्रतिकूल निज, झरे अध मुख फूल— १६०

"विदुर ! द्रुपदपुर यहि छण धावहु,
सादर पाण्डु-सुतन लै आवहु।
लावहु कुन्ती द्रुपद-कुमारी,
सुनहुँ सुधा-स्वर, होहुँ सुखारी।
सविनय कहेउ द्रुपद सन जायी,
'भयेउँ धन्य सम्बन्धी पायी।'
कृष्णहिं विनय सुनाय बहोरी,
लावहु सँग हरि हलधर जोरी।"
धाये विदुर सुनत तत्काला,
पहुँचे प्रमुदित पुर पाञ्चाला।
सुनत सँदेश सबन सुख पावा,
विदा साज सब द्रुपद सजावा।
दीन्ह विपुल नृप धन-भण्डारा,
भेंटत मिलत सनेह अपारा।
यदुजन हू हलधर सँग सारे,
तीर्थन भ्रमत स्वदेश सिधारे।

दोहा :— *इत हरि लै सँग द्रौपदी, कुन्ती, पाण्डु-कुमार,*
कीन्ह हस्तिनापुर पहुँचि, अर्ध राज्य स्वीकार। १६१

भयेउ अंत जब राज्य-विभाजन,
तबहुँ न तजी कुटिलता कुरुजन।
सुरसरि-सिञ्चित श्रेष्ठ प्रदेशा,
राखि सुतन हित अध नरेशा,
दीन्ह पाण्डवन यमुना-अञ्चल,
यज्ञानल-अपूत वन्यस्थल।
कुपित भीमसेनहिं समुझायी,
खाण्डवप्रस्थ गयें यदुरायी।
यमुना-तट लहि थल मनभावा,
[illegible] नय पर [illegible]।

करि वेदोक्त कृत्य पुनि सारा,
मुनिन युधिष्ठिर तिलक सँवारा।
कुन्ती आग्रह लखि यदुनाथा,
नियसे नव पुर पाण्डव साथा।
जदपि प्रकट निरपेक्ष जनार्दन,
निरखत सजग धर्म-सुत-शासन।

दोहा :— *भृत्य-विनेता, धर्म-मति, प्रत्युपकर्ता, धीर,*
उत्साही, जन-भक्त नृप, लखि पुलकित यदुवीर। १६२

हरि पाण्डव सनेह नित बाढ़ा,
अर्जुन सँग सौहार्द प्रगाढ़ा।
सम-वय सम-द्युति पार्थ जनार्दन,
दिव्य शरीर नयन-मन-नंदन।
नर नारायण चिर अनुरागा,
प्रबल दुहुन उर दिन प्रति जागा।
शयन, पान, भोजन नित साथा,
पलहु न पृथक पार्थ यदुनाथा।
विचरत एक दिवस दोउ वीरा,
प्रविशे यमुना-गहन गँभीरा।
घन तरु कुंज लता सताना,
सहसा लखेउ प्रकाश महाना।
निरखी तेजपुंज अति नारी,
तप-निमग्न तरुणी सुकुमारी।
मस्तक जटा कलाप ललामा,
रक्तोत्पल जनु अलि अभिरामा।

दोहा :— *मुञ्ज मेखला सूक्ष्म कटि, कृश शरीर तप-भार,*
भानु प्रभा आपुहि मनहुँ, तपति विपिन साकार। १६३

जनु शशि-कला आपु सल्लीना,
अग्नि-शिखा जनु धूम-विहीना।

अथवा लहि विविक्त थल शोभित,
वनदेवी आपुहि ध्यानस्थित।
विपिन निकुञ्ज व्रतति तरु सारे,
तापसि तेज पुञ्ज उजियारे।
लखि इक गुल्म तमाल समीपा,
भये ओट विहँसत यदु-दीपा।
कर्षित मनहुँ योषिता-छवि-गुण,
पहुँचे निमिष माहिं ढिग अर्जुन।
लखि आश्रम आयेउ अभ्यागत,
कीन्हेउ तापसि अर्जुन स्वागत।
लहि फल-मूल विपुल सत्कारा,
अर्जुन सविनय वचन उचारा—
"वन निर्जन, श्वापद चहुँ ओरा,
को तुम शुभे! करत तप घोरा।

दोहा :— *सिद्धि-सुता गंधर्वजा, विद्याधर कुल नारि,*
यक्ष, नाग, मुनि-अंगना, अथवा अमर-कुमारि?" १६४

सुनत विकम्पित अधर प्रवाला,
कीर्ण वदन रद किरणन-जाला।
महि संलग्न नयन, नत माथा,
वरनी दिव्य वाम निज गाथा—
"त्रिभुवन जीवन-ज्योति-प्रदाता,
भानु सहस्र-रश्मि मम ताता।
राखेउ पितु कालिन्दी नामा,
बीतेउ शैशव मम सुरधामा।
असुर अजेय भौम तेहि काला,
चढ़ेउ अमरपुर पै विकराला।
शक्रहु सके न सलहिं हरायी,
हरी जो श्रेष्ठ वस्तु जहँ पायी।
कुण्डल-हीन अदिति कहँ कीन्हा,
वरुण-छत्र, मणि मंदर लीन्हा।

अविवाहित बहु देव कुमारी,
बरबस हरीं भौम अविचारी।

दोहा :— *देव, नाग, गंधर्व, नर, जाति न महितल माँहि,*
कन्या जासु कुमारि लखि, हरी भौम खल नाहिं। १६५

प्राग्ज्योतिषपुर शठ रजधानी,
कन्यापुरी बसी अघ-खानी।
सुमन-मृदुल, मंजुल, सुकुमारी,
बंदिनि तहाँ असंख्य कुमारी।
असुर-वासना-विष-तनु कलुषित,
पै मन अविजित अजहुँ अदूषित।
सकत न सुर कोउ करि उद्धारा,
बढ़त जात नित अत्याचारा।
खल-भय निखिल देव-समुदायी,
राखत इत उत सुता दुरायी।
पितु-मुख सुनी बहुरि मैं गाथा,
धरेउ कृष्ण-वपु हरि भवनाथा।
लोक-शरण्य, सदय, शूरोत्तम,
वे ही निखिल म्लेच्छ-कुल-क्षय-क्षम।
सुनि प्रभु-पद करि आत्म-समर्पण,
कहेउँ पितहिं अभिवाञ्छित आपन।

दोहा :— *पितु आदेशहि ते यहाँ, निवसि धरहुँ हरि-ध्यान,*
आजु पूर्ण संकल्प मम, भये प्रकट भगवान।"१६६

चकित पार्थ सुनि भाषी वाणी—
"भयेउ तुमहिं कछु भ्रम कल्याणी।
पाण्डु-सुवन मैं अर्जुन नामा,
मैं नहिं वासुदेव घनश्यामा।"
सुनि आदित्य-सुता मुख भास्वर,
उदित हास्य-रेखा अरुणाधर।

भ्रू-लतिका सहसा लीलाञ्चित,
भाषत वचन तरल दृग किञ्चित—
"श्यामल तुम श्यामल मधुसूदन,
पै लखि तुमहिं न विभ्रम मम मन।
कहेउ वेष पितु मोहिं बुझायी,
पुण्डरीक लोचन यदुरायी।
भृगु-पद-लाञ्छन विशद वक्ष वर,
गर कौस्तुभ मणि, कटि पीताम्बर।
मैं नहिं वचन असत्य उचारा,
हरि निश्चय आश्रम पगु धारा।

दोहा :— *चलत कहेउ पितु मोहिं दै, तुलसि-माल अभिराम,*
'होइहै यह मणि माल जब, अइहैं आश्रम श्याम।' १६७
प्रविशे आश्रम तुम जबहि, प्रविशे हरि तेहि काल,
ताहि क्षणहि सहसा भयी, तुलसि-माल मणि-माल। १६८

गोपी-धृत दधि-चोर समाना,
तजेउ तमाल-गुल्म भगवाना।
निरखी मधुर मूर्ति रवि-नंदिनि,
मन-निर्वाण, नयन आनंदिनि।
आत्म-विस्मरण क्षण अनुरागी,
पार्श्व-विलोकि विकल जनु जागी।
तिर्यक् कञ्चुक परावृत आनन,
सस्पृह नयन, लाज अवगुण्ठन।
पुनि कर्तव्य भाव उर आनी,
अञ्जलि भरे प्रसून सयानी।
चही करन हरि-दिशि बढि पूजा,
धरेउ एक पद बढेउ न दूजा।
बिखरे सुमन प्रकम्पित वामा,
गहेउ हस्त सस्मित घनश्यामा।
विलसित श्याम-वक्ष वर कामिनि,
घन उत्सग मनहुँ सौदामिनि।

दोहा :— *सूर्य-सुता पायेउ पतिहि, सफल याग, तप, त्याग,*
लाज विलोचन, स्वेद अँग, रोम-रोम अनुराग। १६६

सोरठा:—*कालिन्दी - यदुराय, मिलन पुलकि अर्जुन लखेउ,*
स्यंदन दोउ बैठाय, लौटे पुर प्रमुदित हृदय।
इन्द्रप्रस्थ भगवान, पाण्डु-सुवन सुस्थित निरखि,
कीन्ह स्वपुर प्रस्थान, कालिन्दी सह लहि विदा।

सुखी पाण्डु आत्मज लहि राजू,
मिलि सब करत प्रजा-हित काजू।
यश ऐश्वर्य दिवस-निशि बाढ़ा,
सुनि कुरुजन उर द्वेष प्रगाढ़ा।
बोलि कर्ण, शकुनी, दुश्शासन,
करत कुमंत्र नित्य दुर्योधन।
बान्धव पाँच बीच इक नारी,
सोचत तेहि लगि संभव रारी।
इन्द्रप्रस्थ निज दूत पठायी,
लखत सतर्क योग श्रुरायी।
भेद सकल नारद मुनि पावा,
धर्मराज ढिग जाय सुनावा।
पाण्डव सुनत अवधि निर्धारी,
कृष्णा रहहि जासु जब नारी।
नियम व्यतिक्रम जेहि ते होई,
द्वादश वर्ष वसहि वन सोई।

दोहा :— *उत द्वारावति ब्याहि हरि, कालिन्दी सविधान,*
भौमासुर संहार हित, चाहेउ करन प्रयाण। १७०

गरुडाकृति निज दिव्य विमाना,
सुमिरेउ प्रिय-दर्शन भगवाना।
प्रकटेउ तत्क्षण महा विशाला,
भूषित मौक्तिक, रत्न, प्रवाला।

स्वर्ण, रौप्य, मणि-आसन नाना
सुख शयनाशन-गृह, उद्याना।
रम्य यान पट ऋतु सुखकारी,
नृप-प्रासाद मनहुँ नभचारी।
गरुड़स्थित गवनत यदुराई,
सुनत सत्यभामा उठि धाई।
मुग्ध विमान लखत मनहारी,
'लेहु संग' हठि गिरा उचारी।
रण-प्रसंग रसिकेश सुनावा,
विहँसत चहत तियहिं डरपावा।
सुनत विलोचन अरुण विशाला,
औरहु लुब्ध अभय यदुवाला।

दोहा :— *अटल वाम हठ जानि मन, लीन्हेउ सँग भगवान,*
भौमासुर पुर दिशि चलेउ, हरि-मन-यंत्रित यान। १७?

उत्थित गरुड़ व्योम अस भासा,
जनु द्वादश आदित्य प्रकाशा।
पक्षद्वय जनु घन लयकारी,
जव-उद्वेलित वारिधि वारी।
विचलित दिग्द्विपेन्द्र भय माना,
शंकित प्रलय काल नियराना।
लखेउ ससंभ्रम प्रिया श्याम-तन,
मुकुलित विस्मय हर्ष विलोचन।
शीतल पवन पुलक उपजावा,
रोप सत्यभामा विसरावा।
फुल्ल कमल-केसर द्युति वामा,
हास विलास सुमन अभिरामा।
विकसित विशदस्मित मुख सरसिज,
रही रिझाय मनहुँ रति मनसिज।
निवसि समीप हरिहु अनुरागे,

दोहा :— "लखहु यान-जव वारिनिधि, शैल विपिन समुदाय,
भूमण्डल मानहुँ सकल, रहेउ धाय अकुलाय। १७१

लखहु प्रिया! पुनि पुरी-प्रसारा,
दमकत जलधि हेम-प्राकारा।
वाडव-अनल भेदि जनु वारी,
उत्थित, दशहु दिशा उजियारी।
पुरी दृश्य धूमल अब सारा,
दिखत अबहुँ रैवतक पहारा।
धृत वनराजि वसन अभिरामा,
यदुजन प्रहरी आठहु यामा।
जलधि-तरंग कन्दरा सस्वर,
जनु जल-शैल 'सजग' प्रश्नोत्तर।
रहेउ सोउ अब दृश्य न शेषा,
लखहु रम्य आनर्त प्रदेशा।
प्रिय मोहिं परम प्रान्त मनभावन,
पायेउ जहँ आश्रय हम यदुजन।
अवलोकहु वह विन्ध्य लखायी,
गिरि-श्रेणी विस्तीर्ण सोहायी।

दोहा :— भारत महि-कटि इन्द्रमणि, मनहुँ मेखला श्याम,
लता कुंज मय मन्जु यह, शाश्वत वनश्री-धाम। १७२

भयेउ विष्णुपद परसि निरन्तर,
विष्णु सहस्र-शीर्ष जनु गिरिवर।
विविध धातु नीलाङ्ग अलङ्कृत,
उर शत-शत निर्झर-रव झंकृत।
लखहु बहुरि कछु दक्षिण ओरा,
होत शैल-पदतल जल-टोरा।
मुखरित मधु अगण्य जनु अलिगण,
रही गाय रेवा शिव-गुण गण।
तरल स्वभाव सरित जग सारी,
प्रकृति-चक्र, बहु-पथ-सचारी।

रेवहि इक सत्पथ निर्वाहा,
सम, अकुटिल आद्यन्त प्रवाहा।
यदि पितु-पद गहि, जित-पथ-बाधा,
मिलति जाय पति जलधि अगाधा।
विजयस्मारक प्रति पद छाये,
तीर्थस्थल सोइ पुण्य सोहाये।

दोहा .— *सुरसरि-जल मज्जन किये, विनसत जीवन-पाप,*
रेवा सुमिरन मात्र ते, नष्ट कलुष, त्रय ताप। १७४

सन्मुख यह उज्जयिनी पावनि,
निवसत जहँ मुनीश सान्दीपनि।
अग्रज सँग जहँ करि मैं वासा,
कीन्हेउँ शास्त्र शस्त्र अभ्यासा।
विंद अनुविंद जहँ समर हरायी,
हरी मित्रविन्दा पुनि जायी।
महाकाल मन्दिर जहँ राजत,
जहँ त्रिकाल त्रिपुरारि विराजत।
मालव चर्मण्वतिहु विहायी,
गये दशार्ण देश हम आयी।
विन्ध्य शैल-परिवृत शुचि धरणी,
वहति दशार्ण सरित मन-हरनी।
पावन, ताप हरण अवगाहन,
अर्जुन सुमन-सुगंधित तटवन।
नर्तत जहँ समोद शिखि मदकल,
मत्त स्वर्णमृग-युक्त वनस्थल।

दोहा — *सुषमा निधि महि खण्ड यह, वली हिरण्य भुआल,*
लखहु बहुरि कारूप जहँ, दंतवक्र महिपाल। १७५

उत्तर बहुरि विहाय त्रिवेणी,
[illegible] चारिउ [illegible] देवी

लखहु प्रिया ! वह पौण्ड्र प्रदेशा,
वासुदेव जहँ कोउ नरेशा।
सकल चिह्न मम धारनहारा,
आपुहिं कहत विष्णु-अवतारा।"
हँसी सत्यभामा सुनि वाणी,
मगध-मही आगे नियरानी।
प्रियहिं दिखाय कहेउ विश्वेशा—
"असुर-त्रस्त यह प्राच्य प्रदेशा।
अवलोकहु ! वह जन-धन-खानी,
मनहर जरासंध रजधानी।
पञ्च शैल-परिवृत अभिरामा,
पुञ्जित सुषमा गिरिव्रज नामा।
प्राची नारिकेल वन-माला।
ब्रह्मपुत्र नद-बाह कराला।"

दोहा :— *प्रियहिं दिखायेउ हरि बहुरि, भौमपुरी - प्राकार,*
रच्छत जाहि सतर्क नित, पावक, पवन, पहार। १७६

यान प्रधान द्वार जब आवा,
पाञ्चजन्य हरि शंख बजावा।
करि कौमोदकि गदा-प्रहारा,
नासेउ सुदृढ़ पुरी प्राकारा।
सुमिरत चक्र सुदर्शन धावा,
पावक पवन प्रभाव मिटावा।
लखि उत्पात भौम अति मानी,
पठयेउ रण हित सुर सेनानी।
हरि तेहि सहसुत सप्त निपाता,
चढ़ेउ भौम तब रण-मद-माता।
शुण्ड-खड्ग-धृत सँग गज-यूथा,
अगणित अश्व, पदाति-वरूथा।
धूलि नभस्तल जनु लय काला,
बरसी तकि विमान शर-ज्वाला।

प्रिया-धैर्य लखि हरि मुसकायी,
प्रेरे दीप्तायुध समुदायी।

दोहा :— *निरखि दग्ध निज सैन्य दल, गज बढाय हरि ओर,*
भौम समर-दुर्मद सरुष, तजेउ शूल अति घोर। १७७
अरि-आयुध करि छिन्न पथ, तजेउ चक्र जगदीश,
कुण्डल मुकुट किरीट युत, गिरेउ मही कटि शीश। १७८

सुनि पति-निधन भौम-पटरानी,
आयी श्याम-शरण बिलखानी।
सहित अमात्य, पुरोहित, पुरजन,
कीन्ह सविधि श्रीपति-अभिनंदन।
दीन वचन कहि सुत पद डारा,
अभय वचन भगवान उचारा।
भौम-पुरी पुनि प्रिया समेतू,
प्रविशे प्रमुदित कृपा-निकेतू।
विजित असुर पद-रज शिर धारत,
बरसि सुमन जन जयति उचारत।
वरुण-छत्र, सुरपति मणि मदर,
अदिति मातु श्रुति-कुण्डल सुन्दर
सौंपे प्रभुहिं रानि सब लायी,
कन्यापुर पुनि गयी लिवायी।
जहँ शत-सोरह-सहस कुमारी,
हरि बंदिनि सकल निहारी।

दोहा :— *रूप-राशि पै द्युति-रहित, कलुषित पै निष्पाप,*
जातरूप रज-ध्वस्त जनु, जग-जीवन अभिशाप। १७९

सुनि श्रीपति-मुख मुक्ति-सँदेशू,
भयेउ प्रथम उर मोद अशेषू।
लखि गोविन्द भौम-मद-मोचन
[illegible]रोज लोल अलि-लोचन।

दुख सुख बहुरि साथ मन व्यापे,
संशय त्रास युक्त उर काँपे।
बद्धाञ्जलि, नत लोचन छलके,
ढरकि कपोल सलिल-कण झलके।
विकल सकल पूछहिं प्रभु पाहीं—
"कहहु नाथ! अब हम कहँ जाहीं?
नष्ट शील, दूषित पर पापू,
अपनिहि दृष्टि पतित हम आपू।
पतित-पावनहु तुम भगवाना,
सकत न करि जो शरण प्रदाना,
तौ प्रभु! भुवन चतुर्दश माहीं,
ठौर अभागिनि हित कहुँ नाहीं।

दोहा:—*पर-गृह-वासहि दोष ते, राखी सीय न राम,*
बरबस दूषित नारि हित, नाथ! कहाँ तब ठाम? १८०

विश्रुत कुल हम सकल प्रजाता,
रखिहैं पै न गेह पितु-माता।
अपयश-पङ्क-निमग्न अभागी,
गति न जगत कहुँ प्रभु-पद त्यागी।
दुरित-संहरण सुयश तुम्हारा,
अघ लघु, नाथ-प्रभाव अपारा।
गुनि अनाथ अपनावहु नाथा!
दासी जानि लेहु निज साथा।
गृह-चर्या, रानिन सेवकाई,
करिहैं वश गर्व विसरायी।"
अस भाषत विह्वल वर नारी,
सींचे चरण विलोचन-वारी।
दशा विलोकि द्रवित यदुरायी,
हेरे प्रियहिं हृदय सकुचायी।
विकल नारि दुख नाहिं विशेषा,
विनवति पतिहिं 'निवारहु क्लेशा'

दोहा :— *लीलापति, कल्याण-मति, अपयश-सुयश-अतीत ,*
कृपा-कटाक्षहिं मात्र तें, कीन्हीं वाम पुनीत । १८१

गज रथ धन जो असुरन दीन्हा ,
प्रेषित उग्रसेन ढिग कीन्हा ।
कन्यहु सकल विप्रजन साथा ,
पठयीं द्वारावति यदुनाथा ।
करि निष्कंटक पूर्व प्रदेशू ,
भौम-सुतहिं पुनि दै पितु देशू ,
तजी भौम-नगरी यदुनंदन ,
चले यान चढ़ि अमर-निकेतन ।
निरखत ग्राम नगर पथ नाना ,
धायेउ उत्तर-पश्चिम याना ।
मगध, मध्यदेशहु करि पारा ,
हरिद्वार श्रीहरि पगु धारा ।
जहँ हिमगिरि ते गंगा आवति ,
दरस परस प्राणन पुलकावति ।
विसरत भव मज्जन जहँ कीन्हे ,
आगे बढ़त स्वर्ग जन चीन्हे ।

दोहा :— *जहँ ते गिरि, जल, वायु, नभ, होत और के और ,*
पल-पल पथ नवता मिलति, पद-पद पावन ठौर । १८२

आयेउ हृषीकेश हरि-याना ,
प्रियहिं दिखाय कहेउ भगवाना—
"कुब्जाम्रक वह लखहु सोहावा ,
तपि मुनि रैभ्य मोक्ष जहँ पावा ।
पुनि ऋषि-शैल लखहु मन-भावन ,
तपे जहाँ रघुकुल-मणि लक्ष्मण ।
सन्मुख वह शुचि देवप्रयागा ,
कीन्हे मुनिजन जहँ तप यागा ।
पूर्व अलकनंदा वह आवति ,

भेंटत दोउ पुनि भुजा पसारी,
गंगा नाम होत अघहारी।
जहाँ देवशर्मा द्विजरायी,
तपि पाये, त्रेता रघुरायी।
कीन्ह जहाँ तप आपु विधाता,
अब लगि ब्रह्मकुण्ड विख्याता।

दोहा :— *सूर्यकुण्ड, शिव-तीर्थ जहँ, निरखत पातक भाग,*
सत्य-शान्ति-सुषमा-सदन, पावन देवप्रयाग। १८३

अब श्रीतीर्थ लखहु मनहारी,
भव्य प्रदेश नयन-सुखकारी।
सिद्धि-धाम शुचि क्षेत्र सोहावा,
करि तप जहँ कुबेर पद पावा।
शुम्भ निशुम्भ जहाँ संहारी,
दीन्हे शीश कालिका डारी।
अवलोकहु अब रुद्रप्रयागा,
परम पवित्र, शिवहिं प्रिय लागा।
जहँ मंदाकिनि नदि मनभावनि,
मिलति अलकनंदा महँ पावनि।
पूजि आशुतोषहिं मुनि नारद,
भये जहाँ संगीत-विशारद।
कल्पेश्वर पुनि निरखहु सुन्दर,
लहेउ कल्पतरु जहाँ पुरंदर।
लखहु बहुरि जहँ धवली गंगा,
मिलति अलकनंदा सरि संगा।

दोहा :— *पावन विष्णु-प्रयाग यह, अस प्रिय मोहिं निदोंष,*
अमल स्वर्ग-दर्पण सदृश, आगे दिव्य प्रदेश। १८४

हिमगिरि उन्नत भाल उठाये,
परसत नभ जनु होड लगाये।

मेघ चहत परसन गिरि-शृंगन,
तरुगण चहत छुवन चढ़ि मेघन।
धाय ससीम असीमित ओरा,
छुवन चहत जनु गौरव-छोरा।
कछुक दूरि अलकापुरि सोही,
बहति अलकनंदा मन मोही।
सन्मुख पुण्य शिखर कैलासा,
जहाँ सतत शिव-शिवा निवासा।
बदरी धाम समीप विराजा,
सकल तीर्थराजन-अधिराजा।
जहँ विभु नर-नारायण वेषा,
रहि अदृश्य तप करत अशेषा।
वधि वृत्रासुर जहाँ सुरेशा,
कीन्हेउ तप, छूटे अघ क्लेशा।

दोहा :—*युग-युग जहँ भारत-सुतन, सोचे स्वर्ण-विचार,*
तपि तपि सन्तति हेतु जहँ, रचेउ शक्ति-आगार। १८५

अब अदृश्य सोउ महि कमनीया,
लखहु गंधमादन रमणीया।
तपत जहाँ सब वालखिल्य मुनि,
अहोरात्र सुनि परति वेद ध्वनि।
करत सिद्धगण ब्रह्म-विचारा,
किन्नर कानन निरत विहारा।
शिखर-शिखर हिम घनगण छाये,
रक्त पीत बहु वर्ण सोहाये।
गिरि-आलिङ्गित नदि-नद सुन्दर,
गह्वर, गर्त, विपुल हिम-कन्दर।
दिव्य महीरुह चहुँ दिशि छाये,
सन्तानक, मंदार सोहाये।
पाटल, कुटज, अशोक अनेका,
पुष्पित रम्य एक ते एका।

स्वर्ग कुसुम बहु अन्य मनोरम,
दिव्य सुवास युक्त सब स्वर्णिम।

दोहा — *स्वर्ण-वर्ण तरु फूल फल, स्वर्ण-विहग प्रति डार,*
स्वर्ण-कमल सरि सर विपुल, स्वर्ण-भ्रमर गुंजार। १८६

रहेउ न अब घन लोकहु शेषा,
दशहु दिशा हिम-राशि अशेषा।
उडि विमान आयेउ गिरि मन्दर,
भयेउ दृश्य औरहु शुचि सुन्दर।
तुङ्ग महीधर दृग दुर्वारा,
हिम सम्भव असंख्य नदि नारा।
निर्झर बहत होत रव घोरा,
ढहत शैल करि शब्द कठोरा।
हिमहु पार करि बढ़ेउ विमाना,
सिद्ध-मार्ग देखहु नियराना।
करत न दिनपति जहँ प्रकाशा,
उदित न शशिहु जहाँ आकाशा।
कीन्हेउ जिन महितल तप भारी,
ते नक्षत्रलोक अधिकारी।
जूझत शूर धर्म-संग्रामा,
नखत रूप आवत यहि धामा।

दोहा — *रवि शशधर सम देह धरि, राजत सुरपुर पास,*
आत्म-ज्योति जगमग सतत, सुर पथ करत प्रकाश।" १८७

जैसेहि बढ़ेउ गरुड पथ गाजी,
सुर दुंदुभी अताडित बाजी।
भौम आक्रमण मन अनुमानी,
भागे विकल अमर भय मानी।
हरिहि सिद्ध पथ पवन विलोका,
धायेउ लै सवाद विशोका।

जव-कम्पित सुरतरु, मन्दारा,
हरिचंदन-सुरभित पथ सारा।
लहत वृत्त गत चिन्ता शोका,
उमहेउ मोद-उदधि सुर-लोका।
दिव्य वाद्य स्वागत-स्वर बाजे,
वसन आभरण सुरगण साजे।
हर्ष-विह्वला सुरपुर-नारी,
उर हरि-दरस-कुतूहल भारी।
शृंगारित अँग स्वर्ग-विलासिनि,
चलीं पतिन-सँग ज्योत्स्ना-हासिनि।

दोहा :— *गंधर्विनि, विद्याधरी, किन्नरि चढी विमान,*
मुख-द्युति-अमृत-धौत पथ, मुखरित नभ कल गान। १८८

लखे सत्यभामा सब आवत,
यान सहस्र अर्क जनु धावत।
प्रकटे सुर सब, व्याप्त दिगन्तर,
हरि-जय-शब्द प्रकम्पित अम्बर।
सुरपति सह वसु, लोकपालगण,
रुद्र, साध्य, आदित्य, मरुद्गण,
विश्वेदेवा, अश्विनि, ग्रहगण,
शशि, देवर्षि, यज्ञ, हवि, श्रुतिगण,
मूर्त, दैन्य-व्यंजक कृत अञ्जलि,
प्रणत पराग पद्म पद जनु अलि।
भौम-निधन सुनि आनँद-विह्वल,
वरसे मुकुल कल्पतरु अविरल।
नभ-सरि अर्घ्य, अमर-तरु हारा,
दिव्याक्षत, सुगंध, घनसारा,
अर्चित प्रिया सहित विश्वेशा,
सुरपति सँग पुर कीन्ह प्रवेशा।

दोहा :— *परिवृत नभ-सुरसरि-पुलिन, रत्नोज्ज्वल अभिराम,*
आमोदित नंदन विपिन, काम-भूमि सुर-धाम। १८९

लहि त्रिदशन-सेवा-सत्कारा,
मणि-गिरि हरि इन्द्रहिं लौटारा।
दै जलपतिहिं छत्र यदुनाथा,
निवसे ससुख शचीपति साथा।
श्रीपति-रानि वल्लभा जानी,
शक्र सत्यभामहु सन्मानी।
रूप-राशि हरि-प्रिया निहारी,
प्रकटी प्रीति सकल सुर-नारी।
कीन्ह न एक शची सत्कारा,
लखि लावण्य द्वेष उर धारा।
कहि मानुषी क्षणिक-छवि-जीवन,
गर्वित गुनि अक्षय निज यौवन।
बहु श्रृङ्गार-सँभार पसारति,
वेणी सुरतरु-सुमन सँवारति।
रोष सत्यभामा उर माहीं,
हरि-भय कहति शचिहिं कछु नाहीं।

दोहा :— *एक दिवस सुर-मातु गृह, गवने जब यदुनाथ,*
गयी सत्यभामहु विमन, खिन्न-हृदय पति साथ। १६०

कहि जननी हरि पद शिर नावा,
भोम-निधन संवाद सुनावा।
सुधा-स्रावि पहिराये कुण्डल,
चमकेउ हृष्ट अदिति-मुखमण्डल।
लखी सत्यभामा सुर-माता,
जदपि आदिजा अभिनव गाता।
नेह-मयी लखि श्रद्धा जागी,
वंदे पद-सरसिज अनुरागी।
अदितिहु लखी रूपवति वामा,
जनु लावण्य-लता अभिरामा।
गुनि पुनि अचिर-यौवना नारी,
आशिर्वचन कहे सुखकारी—

"देति पुत्रि ! मैं यौवन अक्षय,
मम प्रसाद नहिं तोहिं जरा-भय।
कबहुँ न म्लान रूप-श्री-फूला,
सतत कान्त प्रीत, अनुकूला।"

दोहा :— *अमृत प्राप्त अयत्न जनु, आनंदित मुनि बाल,*
सुमिरि शचिहि मुसकान मुख, विकसित नयन विशाल। १६१

जानि प्रिया-रुचि पुनि यदुनंदन,
गवने प्रमुदित नंदन-कानन।
चिर तारुण्य-वसंत विभूषित,
विहरत जहँ सुर-युग्म उल्लसित।
किन्नरि जहँ रस-धार बहावति,
शिखि सँग नाचि भ्रमर सँग गावति।
जहँ अप्सरा-अलक सँग विहरत,
चूमि कपोल अनिल सुख-सिहरत।
जहाँ विमल जल कमल-पसारा,
करत श्वेत करि-करिनि विहारा।
अमर-विहार-भूमि अभिरामा,
जहँ प्रति सुमन सतनु जनु कामा।
पूजि समस्त अमर अभिलाषा,
षटऋतु करत सतत जहँ वासा।
विपिन विभक्त ऋतुन अनुसारा,
कतहुँ ग्रीष्म, कहुँ पावस धारा।

दोहा :— *कतहु शालिमय ऋतु शिशिर, हिममय कहुँ हेमन्त,*
कहुँ ज्योत्सना-विहसित शरद, पुष्पित कतहुँ वसन्त। १६२
मृदुल वायुमण्डल सकल, सुखद, सरस, अनुकूल,
कतहुँ न विषधर जीव कोउ, कहुँ न फूल सँग शूल। १६३

आनँद-मुकुलित लोचन आनन,
भ्रमति सत्यभामा सुर-कानन।

विस्मित, विहसित, पुलकित, विलसित,
ललित दुकूल अनिल-आलोलित !
लीलापति लखि छवि मुसकायी,
गिरा सकौतुक प्रियहिं सुनायी—
"भ्रू तुव सुमुखि ! लता कमनीया,
अधरहि मधु प्रवाल रमणीया।
नंदन विपिन प्रिया ! तुव आनन,
तरु-समुदाय-मात्र यह कानन !"
सुनि विरचित कटाक्ष श्रवणोत्पल,
आगे बढ़ी विलासिनि विह्वल।
सहसा सुरतरु नारि निहारा,
मनोकामना जनु साकारा।
ताम्र-वर्ण मृदु मञ्जु प्रवाला,
दिव्य सुवास, हेम जनु छाला।

दोहा :— *लखि लोचन तरु-छवि भरी, भरेउ लोभ अँग-अंग,*
बोली वाम विमुग्ध मन, करति भृकुटि वर भंग— १६४

"करत सतत तुम सुर-उपकारा,
सुर न करत कछु प्रत्युपकारा।
मुख विनयस्तुति नित्य सुनावत,
शब्दहु गाय सोइ दोहरावत।
कहि कहि गोविंद ! हरे ! मुरारे !
घेरत घर नित हाथ पसारे।
तुमहु न कबहुँ परीक्षा लेहू,
शिक्षा उचित इनहिं नहिं देहू।
प्रिय मोहिं अति यह तरु मनभावन,
लै निज प्राङ्गण चहहुँ लगावन।
प्रिय यह मोर करहु यदुनाथा !
विटप उपाटि चलहु लै साथा !
सींचहु जो सेवक सुरराजू,
होइहै मुदित निरखि प्रभु-काजू।

जो कृतघ्न करिहै अपमाना,
पइहे उचित दण्ड मघवाना।"

दोहा :— *प्रिया-तर्क सुनि हरि हँसे, कहत, "तजहु उर-छोभ,*
तुम कुल-भूषण अंगना, सोहत तुमहिं न लोभ। १६५

माँगत सुतनु ! हीनता मोरी,
कीन्हे हरण कहहि जग चोरी।
निर्जर स्वार्थ-निरत जग जाना,
लोभ सुरेश सुमेरु समाना।
गुनि निर्बल मैं देत सहारा,
चहहुँ न रंचहु प्रत्युपकारा।"
भाषी यदुपति गिरा गँभीरा,
औरहु सुनि सुनि नारि अधीरा।
रंजित रोष निरखि तिय-आनन,
कहे विनोद वचन यदुनंदन—
"देहौं जो नहिं कुहठ विहायी,
होइहै तुम्हरिहि जगत हँसायी।
सत्राजित-मणि-लोभ सुमिरि मन,
करिहैं जग-जन व्यंग अशोभन—
'खोये-मणि हित तिन यश प्राणा,
लोभिनि दुहितहु पितुहि समाना।

दोहा :— *सकी स्वभाव न त्यागि निज, अमर-निकेतहु नारि,*
नंदनवन ते कल्पतरु, लायी सहठ उपारि'।" १६६

पितु-अपकीर्ति सुनत रिस भारी,
बोली कम्पित नख-शिख नारी—
"लोभी पितु-यश मम सारा,
वृष्णि कुलहि निर्लोभ तुम्हारा!
शतधन्वहिं अक्रूर उभारा,
सोइ साँचहु मम पितु हत्यारा।

लोभ-दण्ड तुम ताहि न दीन्हा,
मणि लौटाय पुरस्कृत कीन्हा।
बसत कपट उर जदपि महाना,
शब्द-कुशल नहिं तुम सम आना।
वचत कहि कहि 'प्राण-पियारी',
मानत हृदय तुच्छ मोहिं नारी।
नित्य विवाह मङ्गलाचारा,
एकहु सँग नहिं हृदय तुम्हारा।
स्वेच्छाचारी, अंकुश हीना,
आत्म-निरत तुम नेह विहीना।-

दोहा — *पालित भोजन वस्त्र ते, लालित वाक्य-विलास,*
हेम-पुत्रिका सम सकल, करत भवन हम वास"! १९७
मान-वचन सुनि हरि विहँसि, वन-पालकन बोलाय,
कहेउ, "लिये मैं जात तरु, देहों वगि पठाय'। १९८

गवने तरु-समीप असुरारी,
पारिजात हठि लीन्ह उपारी।
राखेउ तेहि जस लाय विमाना,
विहँसी प्रिया, हँसे भगवाना।
उत रक्षक सुरपति ढिग जायी,
विपिन-वृत्त सब कहेउ सुनायी।
विकल शची उर कोप अपारा,
कहि कटु वाक्य पतिहिं धिक्कारा।
लखि नहिं करत प्रभाव प्रलापा,
भरेउ भवन करि घोर विलापा।
प्रणय-भृत्य व्यापेउ अविचारा,
शक्र धृतायुध विपिन सिधारा।
गवनत हरि लखि कहेउ पुकारी—
"जात कहाँ सुरतरुहिं उपारी ?"
उत्तर जन न वृष्णिपति दीन्हा,
शस्त्राघात शचीपति कीन्हा।

दोहा :— *विफले शक्र-शस्त्रास्त्र करि, धारे हरि धनु-बाण ,*
निमिषहि महँ नंदन भयेउ, संगर-मही महान । १९९

करि जब निज दिव्यास्त्र प्रहारा ,
पायेउ निर्जर-पति नहिं पारा ,
प्रेरेउ क्षुब्ध वज्र विकराला ,
कम्प त्रिलोक मनहुँ लय काला ।
अचल चक्रधर कौतुक कीन्हा ,
आवत वज्र विहँसि गहि लीन्हा ।
ध्वस्त-शक्ति अमरेश लजाना ,
इत कर चक्र गहेउ भगवाना ।
चाहेउ जैसेहि करन प्रहारा ,
"पाहि ! पाहि !" सुरनाथ पुकारा ।
कही सत्यभामा हँसि वाणी—
"उचित न दीन वचन रण ठानी ।
दारुण शची-हृदय अभिमाना ,
गनति न काहुहिं आपु समाना ।
स्वामी तासु तुमहु सुरराजू ,
भाषत 'पाहि' न कस उर लाजू ?

दोहा :— *कीन्ह गर्व मिलतहि शची, जानि तुमहि सुरनाह ,*
ताही कर प्रतिकार यह, मोहि न सुरतरु-चाह । २००

कायर-पत्नी आपुहिं जानी ,
करिहै अब न गर्व इन्द्राणी ।
अमर-नारि तेहि मृत्युहु नाहीं ,
जरिहै चिर ईर्ष्यानल माहीं !"
विकल सुरेश दुःख सुनि घोरा—
'कहत देवि ! कस वचन कठोरा ?
मैं सुरेश, हरि त्रिभुवन-स्वामी ,
अविदित, अलख, अनादि, अनामी ।
धरि नर-रूप करत सुर-काजू ,
त्रातहि त्राहि कहत कत लाजू ?

दाया करहु तुमहु अब देवी।
जानि मोहि हरि-पद-रज-सेवी।
समर-मही मैं सुरतरु हारा,
तेहि पै अब न - शची-अधिकारा।"
आग्रह अमित अमरपति कीन्हा,
दै हरि वज्र कल्पतरु लीन्हा।

दोहा :— *सुर-समाज जुरि कीन्ह पुनि, पद-वन्दन, सन्मान,*
दिशि दश भरि सुरतरु-सुरभि, उड़ेउ व्योम हरि-यान। २०१

द्वारावति श्रीहरि जब आये,
लखन अमरतरु पुरजन धाये।
परति जासु अँग तरुवर-छाया,
अमर-स्वरूप दिखति नर-काया।
बहुरि सत्यभामा-गृह लायी,
रोपेउ पारिजात यदुरायी।
गूँथति कुसुमन केश-कलापू,
गनति धन्य रानिन महँ आपू।
ब्याहीं ताहि समय असुरारी,
भौमासुर-हृत सकल कुमारी।
पुनि प्रद्युम्न भोजकट जायी,
हरी रुक्मि-कन्या वरियायी।
गत कछु दिवस सुयोधन राजा,
साजे दुहिता-परिणय साजा।
जाम्बवती-सुत साम्ब सुजाना,
कीन्हेउ सुनि गजपुरी प्रयाणा।

दोहा :— *सप्तपदी अवसर पहुँचि, करि मण्डप पैठार,*
हरी लक्ष्मणा हरि-सुवा, कुरुपुर हाहाकार। २०२

कुपित गुरुजनहु घेरि कुमारा,
गहि रण-महि कारागृह डारा।

लहि द्वारावति वृत्त जनार्दन,
गुनि मन हलधर शिष्य सुयोधन,
पठयेउ गजपुर दिशि यदुनाथा,
रामहिं सात्यकि उद्धव साथा।
गुरु-आगमन सुनत कुरुरायी,
धाय सभक्ति कीन्हि पहुनाई।
भेंटे भीष्म विदुर सब कुरुजन,
द्रोण, कर्ण, कृप आदि मुदित मन।
जुरी सभा लखि, अनुसरि नीती,
भाषी उद्धव गिरा सप्रीती—
"यदुजन-कुरुजन-नेह, मिताई,
जग-विश्रुत युग-युग चलि आयी।
निर्मल दोउ सोमकुल-शाखा,
शाश्वत बंधु भाव हम राखा।

दोहा:—पारणय-बंधन-बद्ध दोउ, रहे सदा शुचि वंश,
जन्मे नृप, सेनप, सचिव, भरतखण्ड - अवतंस। २०३

साम्ब कृष्ण भगवान-कुमारा,
उग्रसेन नृप प्राण पियारा।
कुरुजन बेहि वंदी-गृह डारी,
कीन्ह निखिल यदुवंश दुखारी।
सोचि भयेउ भ्रम-वश यह काजू,
कीन्ह न रोष हृदय यदुराजू।
पठयेउ हमहिं, कही यह बाणी,
'त्यागब उचित न प्रीति पुरानी।
यहि विवाह अनुचित कछु नाहीं,
बढ़िहै नेह वंश दोउ माहीं'।"
सुनि सरोष भाषेउ दुश्शासन—
"भये तुल्य-कुल कब ते यदुजन?
यादव कन्या कुरुजन लीन्हीं,
कबहुँ सुता निज हम नहिं दीन्हीं।

वचन सँभारि न कृष्ण उचारा,
वैभव साथ बढेउ अविचारा।

दोहा:— *सुनि निर्बल कुरुवंश मन, कीन्ह कृष्ण अपमान,*
चहत मुकुट-पद पादुका, काल-चक्र बलवान।"२०४

सुनि दुश्शासन-शब्द कराला,
कहे वचन हलि लोचन ज्वाला—
"कालचक्र हू ते बलवाना,
चक्र सुदर्शन सब जग जाना!
तिमि हल मुसलहु विक्रम-धामा,
समर वैरि-दल-गर्व-विरामा।
मुकुट पादुका भेदहु यहि क्षण।
करत प्रकट मैं, निरखहिं कुरुजन!"
अस कहि हल कराल हलि धारा,
गये धाय जहँ पुर-प्राकारा।
हल-मुख राखि दुर्ग दृढ़ मूला,
कर्षी पुरी मनहुँ लघु फूला!
डगमग डोलेउ गजपुर सारा,
'पाहि! पाहि!' कुरुवंश-पुकारा।
करि लक्ष्मणा साम्ब दोउ आगे,
आये शरण वंश-मद त्यागे।

दोहा:— *रचि विवाह पूजे सदन, राम-चरण-जलजात,*
आमन्त्रित आये सकल, गजपुर पाण्डव भ्रात।२०५

सोरठा:—*लखि समाज विवाह, पाण्डु-सुवन करि बहु विनय,*
इन्द्रप्रस्थ सोत्साह, लाये यदुजन राम सह।

तहाँ भीम हलधरहिं रिझायी,
सीखेउ गदा युद्ध मन लायी।
अपनायेउ पार्थहिं युयुधाना,
लहेउ विविध दिव्यास्त्रन नाना।

बसत समुद सब प्रीति अपरिमित,
सहसा भयेउ कुयोग उपस्थित।
एक दिवस सरि मज्जन हेतू,
गवने हलधर स्वजन समेतू।
भीम, नकुल, सहदेवहु संगा,
करत केलि मिलि जमुन-तरंगा।
सुखासीन इत निज प्रासादू,
सुनेउ धनंजय आर्त-निनादू।
द्वार कारुणिक जाय निहारा,
द्विज दरिद्र इक करत गोहारा—
"हरी धेनु मम घँसि गृह चोरन,
जात लिये कोउ करत न रक्षण।

दोहा :— लेत नृपति षष्ठांश जो, रक्षत नहिं धन प्राण,
साक्षी वेदस्मृति सकल, अघी न तेहि सम आन।" २०६

सुनतहिं अर्जुन 'अभय' उचारी,
दृष्टि शस्त्र हित इत उत डारी।
सहसा करि सुधि-व्याकुल देहा,
बिसरे शस्त्र द्रौपदी-गेहा।
तहँ एकान्त युधिष्ठिर-वासू,
नियमित द्रुपद-सुता-सहवासू।
प्रविशत भवन नियम-उल्लंघन,
द्वादश वर्ष देश निर्वासन।
नाहित गो द्विज दोउ अपकारा,
नष्ट धर्म, अपकीर्ति अपारा।
गुनि गुरु धर्म, नगण्य शरीरा,
कृत-निश्चय गवने मति-धीरा।
प्रविशे अग्रज-आयसु पायी,
लौटे लहि आयुध-समुदायी।
सादर द्विजहिं संग बैठावा,
स्यंदन इंगित मार्ग चलावा।

दोहा :— पुर बाहर पहुँचत गहे, सइजाहि तस्कर-वृन्द,
दै द्विज धेनु, असीस लहि, लौटे गृह सानंद। २०७

उत करि वन लगि वारि-विहारा,
लौटे हलधर, पाण्डु-कुमारा।
जैसेहि अर्जुन वृत्त सुनावा,
हतमति सकल, शोक गृह छावा।
दृढ़ निश्चयी पार्थ मन जानी,
सुत-वत्सला पृथा बिलखानी।
धर्म-सुवन पायेउ संवादू,
कहेउ पार्थ सन प्रकटि विषादू—
"मम अपराध तात ! तुम कीन्हा,
मैं तेहि ताहि समय छमि दीन्हा।
गो, द्विज, प्रजा-कार्य तुम साधी,
मानत बस आपुहि अपराधी ?"
सुनि यह चकित पार्थ मनिमाना—
"भाषत कस अस धर्म-निधाना !
वचन-बद्ध हम पाँचहु भाई,
उचित न धर्म साथ चतुराई।"

दोहा :— भये निरुत्तर धर्मसुत, व्याकुल सात्यकि, राम,
सज्जित पार्थ प्रवास हित, कीन्हेउ सबहिं प्रणाम। २०८

विरह विकल तजि परिजन पुरजन,
कीन्ह ताहि दिन पार्थ पर्यटन।
धैर्य सबहिं हलि सात्यकि दीन्हा,
रहि दिन चारि गवन गृह कीन्हा।
द्वारावति स्वजनन ढिग जायी।
पार्थ-पर्यटन कहेउ सुनायी।
विह्वल सुनि यदुकुल-अवतंसा,
उर अधीर, मुख शब्द प्रशंसा—
"पालत धर्म क्लेश सहि नाना,
करिहैं धर्म अंत कल्याणा

देखेउँ खोजि भुवन त्रय माहीं,
पार्थ समान पुरुप कहुँ नाहीं।
धर्म-प्राण ओरहु सब भ्राता,
वसुधा-भूषण, सज्जन-त्राता।
नसिहैं ये ही असुर-कुराजू,
भरिहैं भुवन शान्ति सुख साजू।"

दोहा :—*कहत वचन रोमाञ्च तनु, लोचन नेहज नीर,*
सोचि सुहृद सत्वर मिलन, धरेउ धैर्य यदुवीर। २०६

एक दिवस नृप सभा सोहायो,
विद्यमान यदुजन यदुरायो।
पौण्ड्रक-दूत द्वारका आवा,
हरिहिं स्वामि-सन्देश सुनावा—
"पौण्ड्र-नरेश विष्णु अवतारा,
निज इच्छा महितल तनु धारा!
शंख चक्र पद्माङ्कित वेषा
पठयेउ मोहिं यह देन सँदेशा—
'त्यागहु कृष्ण! दिव्य मम लाञ्छन,
विभु-अनुकरण उचित नहिं मनुजन।
त्यागहु वासुदेव निज नामा,
भजहु जानि मोहिं जग-विश्रामा।
मास अवधि मम आयसु मानी,
अइहौ जो न शरण अज्ञानी,
करि मैं द्वारावती चढ़ायी,
देहौं यदुकुल निखिल नसायी,"

दोहा :—*हँसी सभा, हलधर हँसे, सुनि अपूर्व सन्देश,*
प्रतिभाषत कौतुक-मुदित, हँसे आपु परमेश— २१०

"मम वसुदेव पिता यश-धामा,
ताते वासुदेव मम नामा।

चाहेउ सकत न तेहि मैं त्यागी,
गयेउ नाम मम पाछे लागी!
अन्य चक्र आदिक जे लाञ्छन,
करि निमिषहिं महँ सकत विसर्जन।
जाय वेगि पौण्ड्रक-रजधानी,
तजिहौं तहँहि तीर्थ तेहि मानी।"
अस कहि बिदा दूत कहँ दीन्ही,
भूपहु सभा विसर्जित कीन्हीं।
गत कछु दिन सुमिरेउ हरियाना,
गरुड़-ध्वजाङ्कित प्रकट विमाना।
पौण्ड्रक-पुरी पहुँचि श्रीरंगा,
काशी-चमू लखी चतुरंगा।
काशी-नृपति पौण्ड्र-पति साथी,
आयेउ लै पदाति, हय, हाथी।

दोहा :—*अरि-वाहिनि दोउ मिलि बढ़ीं, मनहुँ सिन्धु घहराय,*
आवत पौण्ड्रक पुनि लखेउ, समर-मही यदुराय। ११

धारे वैसहि धनुष विशाला,
वैसहि कौस्तुभ मणि, वनमाला।
चूडाभरण शीश सोइ सुन्दर,
वैसहि कटि-प्रदेश पीताम्बर।
गरुड़-ध्वजाङ्कित रथ आसीना,
हँसे विष्णु लखि विष्णु नवीना!
प्रथमहि अस्त्र प्रदीप्त पँवारी,
हरि समराग्नि सैन्य सब जारी।
बहुरि पौण्ड्र-नृपतिहि समुहाया,
भाषे विहँसि वचन यदुरायी—
"कीन्हि कृपा प्रभु! दूत पठावा,
मिलेउ सँदेश सुनत मन भावा।
आयेउँ धावत पालि निदेशू,
लोचन सफल भये लखि वेषू!

अब प्रभु-आदेशहि अनुसारा,
तजत सकल निज शासन-भारा।"

दोहा :—अस कहि त्यागी हरि गदा, मेटेउ नट-पाखंड,
सबै चिह्न, पुनि चक्र तजि, काटि किये दुइ खंड। २१२

काशीपतिहिं बहुरि संहारा,
वाराणसि शिर छिन्न पँवारा।
चीन्हि शीश पुर-प्रजा सुखारी,
मुदित—'हृदेव हरि अत्याचारी!"
पै पितु सम नृप-सुत अघखानी,
हठ शठ कृष्ण-निधन हित ठानी।
करि भीषण अभिचार विधाना,
अनुष्ठान हरि ऊपर ठाना।
गये स्वपुर उत हरि सुखराशी,
इत खल दक्षिण अग्नि उपासी।
प्रकटी कृत्या अति विकराला,
केश लाल, मुख पावक-ज्वाला।
जिह्वा लोल, नयन अंगारा,
'कृष्ण! कृष्ण!'—दारुण उद्‌गारा।
महि, नभ, वन, गिरि, सिंधु कँपायी,
प्रमथन-परिवृत हरि-पुर आयी।

दोहा :—आगत निरखि दवाग्नि जिमि, जीव जन्तु वन केर,
भागे पुरजन भीत तिमि, करि करि यदुपति-टेर। २१३

खेलत चौसर उद्धव साथा,
लखि उत्पात चकित यदुनाथा,
जानी पुनि कराल अति कृत्या,
अनुष्ठान-जाता, शिव भृत्या।
सुमिरि चक्र भाषेउ यदुरायी—
'पावक-ग्रास मिटावहु जायी।'

प्रकटेउ चक्र सहस मुख जासू,
कोटि अर्क सम प्रखर प्रकाशू।
महा अनल जनु प्रलयंकारी,
व्याप्त व्योम, महि, सागर-वारी।
हतप्रभ कृत्या चली परायी,
वाराणसि प्रमथन सह आयी।
प्रतिहत, नृपति-सुतहिं संहारी,
कीन्हें छार ऋत्विजहु जारी।
आवत चक्र निरखि भय मानी,
निहत-तेज मख-कुण्ड समानी।

दोहा:—*भयेउ परावृत चक्र पुनि, भये सुखी पुर-लोग,*
पुनि वैसेहि द्वारावती, नित नूतन सुख भोग। २१४

भयेउ प्रबल महितल तेहि काला,
बाण असुर बलि-सुत बिकराला।
पूजि पुरारि बाण वर पावा,
भुज सहस्र बल युग भुज छावा।
शिव-संरक्षित, सुषमा-खानी,
शोणितपुरी तासु रजधानी।
तनया उषा सुतनु, सुकुमारी,
पितु-प्रिय, शिव-शैलजा-दुलारी।
कृष्ण-पौत्र अनिरुद्ध कुमारा,
लखि सपने निज तन मन वारा।
सखी चित्रलेखा इक तासू,
मायाविनि, अबाध गति जासू।
करि निशि द्वारावति पैठारा,
अंतःपुर ते हरेउ कुमारा।
सहित कुंवर पर्यंङ्क उठायी,
उषा-भवन दीन्हेउ पहुँचायी।

दोहा:—*सुनेउ वृत्त जब बाण नृप, प्रविशि सुता-आगार,*
डारेउ बंदीगृह कुपित, गहि अनिरुद्ध कुमार। २१५

उत नारद मुनीश-मुख गाथा,
सुनि सरोष यदुजन, यदुनाथा,
लै वाहिनि चतुरंगिणि घोरा,
घेरी बाण-पुरी चहुँ ओरा।
पुर-रक्षण-प्रण-बद्ध पुरारी,
कीन्हेउ हरि सँग संगर भारी।
वैष्णव रौद्र अस्त्र विकराला,
चले ज्वलन्त मनहुँ लय काला।
प्रेरेउ जब जृम्भक यदुरायी,
सोये गिरिजापति जँभुआयी।
जैसेहि असुर बधन हरि लागे,
चक्र-प्रकाश-चकित शिव जागे।
'रच्छहु भक्तहिं'—शम्भु पुकारा,
विहँसि चक्र निज हरि लौटारा।
हरिहू कीन्ह विनय हर केरी,
हरि-हर मिलत रहे सुर हेरी।

दोहा :—*प्रणत बाण अनिरुद्ध सँग, कीन्हेउ सुता विवाह,*
लौटे सब द्वारावती, यदुजन सहित उछाह। ११६

तीर्थ तीर्थ उत करत प्रवासू,
पहुँचे अर्जुन क्षेत्र प्रभासू।
लहि संवाद देवकी-नन्दन।
कीन्हेउ धाय सुहृद-अभिनंदन।
परसत चरण पार्थ सुख माना,
पुनि पुनि अंक भरेउ भगवाना।
लाय रैवतक दीन्ह निवासा,
कीन्हेउ आपु सखा सग वासा।
बरनत यात्रा तीर्थस्थाना,
कानन, शैल, नदी नद नाना,
श्रमित पार्थ लोचन अलसाने,

सुनी प्रात बंदीजन-बाणी,
जागे अर्जुन रैनि सिरानी।
उपरत दृग जगवंदन जोये,
पूछत मृदु स्वर—"निशि सुख सोये?"

दोहा :—*भाषेउ विहँसत पार्थ, "जय, आपुहि प्रभु अनुकूल,*
होत विश्व नंदन विपिन, शूल सकल मृदु फूल।" २१७

स्यंदन बहुरि सुहृद बैठायी,
चले लिवाय पुरी यदुरायी।
सागर-तट गिरि-मार्ग सोहाये,
यदुजन कानन कुञ्ज सजाये।
लखेउ पार्थ प्राकार-पकाशा,
स्वागत-दीप करत जनु हासा।
तरु रस बरसत चरण पखारत,
कोकिल पूछत छेम पुकारत।
उदधि-वीचि-स्वर वाद्य बजावति,
स्वागत हेतु पुरी जनु आवति।
मिले धाय प्रमुदित यदुवंशी,
कीन्ह पार्थ-आतिथ्य प्रशंसी।
उग्रसेन कीन्हेउ सन्माना,
सुवन समान शौरि मन जाना।
पार्थहु वंदि निखिल यदुवृन्दू,
प्रविशे श्याम-सदन सानन्दू।

दोहा —*विस्मित हरि-प्रासाद लखि, अंत-पुर विस्तार,*
सौध हर्म्य अगिणत जहाँ, कला कौल आगार। २१८

चित्र विचित्र लता-गृह नाना,
क्रीडा-पर्वत विविध विधाना।
विपुल शिखर-गृह, भवन विहारा,
श्रेणी-मार्ग, गवाक्ष अपारा।

इन्द्रनील मणि वलभि अप्रतिम,
रत्न विटंक, वेदिका, कुट्टिम।
आसन मरकत मणि-मय झलमल,
शयन शरद-शशि-हास समुज्ज्वल,
कलित मल्लिका कुसुम मालिका,
दामिनि-द्युति-हर रत्न-दीपिका।
मौक्तिक युत कौशेय विताना,
अगरु-धूम शुचि मेघ समाना।
भीतिन चित्रित खग मनहारी,
उड़न चहत जनु पंख पसारी!
चित्रित सुमन सुवास परागा,
गुञ्जत भ्रान्त भ्रमर अनुरागा!

दोहा:—*सुरतरु-सौरभ-परिमिलित, पवन प्रवाहित मंद,*
प्रविशत जालक-रंध्र पथ, निशि शशि-कर सानंद। २१९

बसि हरि-भवन पार्थ सुख पावा,
दीर्घ प्रवास-क्लेस बिसरावा।
लीलापति तहँ पार्थ निहारे,
निवसत माया-विग्रह धारे।
जात जबहिं अर्जुन जेहि धामा,
निरखत तहँ तहँ हरि घनश्यामा।
सुखासीन कहुँ रुक्मिणि पासा,
करत सरस हरि हास विलासा।
कतहुँ सत्यभामा कृत माना,
गहि पद विनय करत भगवाना।
वारि-विहार कतहुँ रस-रंगा,
खेलत चौसर काहू संगा।
आत्मज पौत्र अंक कहुँ लीन्हे,
कतहुँ होम पूजा चित दीन्हे।
कतहुँ सुनत इतिहास पुराणा,
कहुँ विप्रन मणि काञ्चन दाना।

दोहा:—पुत्र-पौत्र-परिणय कतहुँ, मुदित मंगलाचार,
सचिवन सँग आसीन कहुँ, विग्रह-संधि-विचार। २२०

राग-विराग, परिग्रह-त्यागा,
द्वन्द्व-अतीत-हरिहिं सम लागा।
गत-आसक्ति तदपि उत्साहू,
करि कर्तव्य गनत बड़ लाहू।
धारत भुवन-भार हरि तैसे,
वहुत वलय नर कर निज जैसे।
मानस धर्म, कोप यम वासा,
कृपा धनद, भुज रुद्र निवासा,
वदन हिमांशु, प्रताप हुताशन,
गिरा शारदा, लक्ष्मी नयनन,
बुद्धि गजानन, छवि रतिनाथा,
तन थल वायु, तेज दिननाथा।
सर्व देवमय कृष्ण स्वरूपा,
वसत भुवनतल विभु-प्रतिरूपा।
सुखी पार्थ लहि सँग जनार्दन,
भयेउ प्रसाद देश-निर्वासन।

दोहा:—यदुजन जिमि निवसत सुखी, हरिहिं स्वजन निज जानि,
माया-मोहित अर्जुनहु, बसे सखा उर मानि। २२१

उत्सव-प्रिय सब यादव लोगू,
जल, थल, शैल करत मिलि भोगू।
एक दिवस रैवतक पहारा,
गवने यदुजन करन विहारा।
विहरत सँग अर्जुन घनश्यामा,
लखी शैल-शोभा अभिरामा।
पुष्पित अद्रि-शिखर मनहारी,
लिपटीं फूलि लता सुकुमारी।
स्वर्ण-वर्ण कुसुमित सिंधुवारा,
तोमर हस्त मदन जनु धारा।

कुरुवक मनहुँ मनोभव-बाणा,
विकसित भेदि हृदय, मन, प्राणा।
पूँछ पसारि नाच वर मोरा,
करत शिखिनि सँग मिलि कर शोरा।
तरु तरु कुहक कोकिला कारी,
'पीव' ! पपीहा उठत पुकारी।

दोहा :—सनि सर्वाङ्ग प्रसून-रज, छकि कीन्हे मधु पान,
सुमन सुमन प्रति गिरि विपिन, मत्त मधुप कल गान। २२१

यहि विधि भ्रमत पार्थ हरि-संगा,
निरखत क्रीडा कौतुक रंगा।
महसा भयी नयन-पथ-गामिनि,
कोउ लावण्य-मयी यदु-भामिनि।
शशधर आनन आनँददाता,
मनहर कमल-मृदुल सब गाता।
मधुरस्मित अरुणाधर उज्ज्वल,
किसलय मञ्जुल मनहुँ सुमन-दल।
अरुणोत्पल पद शोभाशाली,
गवनति पथ वितरति जनु लाली!
चकित धनंजय रूप निहारा,
हरिहिं हेरि मन करत विचारा—
हरि-सौष्ठ, हरि-वदन-लुनाई,
हरि-छवि जनु नारी तनु आयी।
शोभा जदपि सोइ मनहारी,
गोरोचन-द्युति तिय सुकुमारी।

दोहा :—ताही छण पार्थहि निरखि, भयी मुग्ध वर वाम,
आलक्षित युग उर प्रणय, विहँसे मन घनश्याम। २२२

गवनी लज्जित तिय छवि-धामा,
व्यथित पार्थ, मन-प्राण सकामा।

निरखी सखा-दशा यदुरायी
चितये मौन मर्म मुसकायी।
आकुल फाल्गुन हृदय लजाने,
क्षोभ-संयमित मन पछिताने—
कीन्हेउ मैं संयम अभ्यासा,
तीर्थ तीर्थ पर्यटन, प्रयासा।
व्रत नियमहु करि नष्ट न लोभा,
लखत नारि-छवि क्षण महँ शोभा।
समुझी मम गति अन्तर्यामी,
धिक्! धिक्! मोहिं काम-पथ-गामी।
सुहृद-मनोगति यदुपति जानी,
कही विनोद-विमिश्रित वाणी—
"भगिनि सुभद्रा यह प्रिय मोरी,
मृग-शिशु सदृश चपल, मति भोरी।

दोहा :—*मातु, पिता, यदुजन, नृपति, पुरजन-प्राण पियारि,*
तजहु सखा परिताप उर, सुदरि अजहुँ कुँवारि। २२४

संकर्षण प्रिय शिष्य सुयोधन,
चहत भगिनि हठि ताहि विवाहन।
विरहित सयम, सहज पापमति,
मम मत अनुजा योग्य न कुरुपति।
उपजेउ तुम्हरे उर अनुरागा,
निश्चय भाग्य कुँवरि कर जागा।
भयो तुमहिं लखि सोउ सविकारा,
विधि जनु आपु सुयोग सँवारा।
सहसा तुम दोउ लखि अनुकूला,
मोर मनोरथ-तरु जनु फूला।"
सुनि हरि वचन पार्थ सुख पावा—
मोहिं नाथ! सब विधि अपनावा।
आयसु जो अब लहहुँ तुम्हारी,
याचहुँ पितु ढिग जाय कुमारी।"

कहेउ विहँसि हरि, "यदुकुल माहीं,
मोर्ग मिलत कबहुँ कछु नाहीं।

दोहा :—जेतिक शिर तेतिक मतहु, करिहैं वचन न कान,
चहत वरन तौ करि हरण, करहु स्वपुर प्रस्थान !" २२५

विस्मित पार्थ सुनत प्रस्तावा,
"कस अधर्म प्रभु ! चहत करावा !
जानि स्वजन, बहु प्रकटि सनेहू,
राखेउ यदुजन मोहिं निज गेहू।
करि विश्वास-घात तिन साथा,
सकत न लहि मैं सुरत यदुनाथा !
यदुजन प्रभुहिं सुहृद मम जानी,
कहिहैं गिरा व्यंग-विष-सानी।
चढ़हि जो वधु-द्वेष माहिं लागी,
होइहौं जग मैं अपयश-भागी।"
विहँसे हरि लखि शुचि सकोचू,
भाषे वचन हरत उर शोचू—
"बसत सतत मैं यदुजन माहीं,
व्यंग-भीति मोहिं तनिकिहु नाहीं।
मत मम देश काल अनुसारा,
गहे न स्वल्पहु अहित तुम्हारा।

दोहा :—धर्म-विमुख, गर्वित, कुमति, दुर्योधन नरनाह,
करिहैं हठि अग्रज तदपि, तेहि सँग भगिनि विवाह। २२६

वरहि सुपति भगिनी सुकुमारी,
यह मम धर्म सकहुँ नहिं टारी।
इष्ट मित्र परिचित मम जेते,
लखे विचारि सकल मैं तेते।
तिन महँ तुमहिं श्रेष्ठ वर मानी,
ब्याहन चहहुँ भगिनि कल्याणी।

हरण, स्वयंवर, कन्या-दाना—
प्रचलित तीनहु आजु विधाना।
सब कर हित, अधर्म नहिं होई,
दीन्ह तुमहिं मैं सम्मति सोई।
मम अनुजा, मोरहि अनुशासन,
व्यर्थ कुतर्क करत कत निज मन ?
दादुर रटत सरोवर रहहीं,
तबहुँ तृषात धेनु जल पियहीं।
देहैं तुमहिं जो यदुजन दोषू,
लेहौं मैं सँभारि सब रोषू।

दोहा —*दीपक तेलहि ते दिपत, तिल ते सरत न काज,*
युक्तिहि सकत बताय मैं," कहि बिहँसे यदुराज। २२७

सुनत धनंजय दूत बोलावा,
इन्द्रप्रस्थ संदेश पठावा।
आयेउ उत्तर—"श्याम-निदेशा,
पालहु सतत त्यागि अँदेशा।
आयसु लहि अर्जुन अनुरागे,
हरण सुअवसर खोजन लागे।
एक दिवस वसुदेव कुमारी,
क्रीडा हित रैवतक सिधारी।
समाचार जब यदुपति पावा,
स्यन्दन निज सजि साज मँगावा।
भेंटि सनेह पार्थ बैठारे,
मायापति मृदु वचन उचारे—
"सहित सुभद्रा गृह निज जायी,
पाञ्चालिहिं "अस कहेउ बुझायी—
'प्रिय भगिनी यह केशव केरी,
सेवा हेतु पठायी चेरी।

दोहा :—*जानि सपत्नी याहि जनि, मानत निज अपमान,*
द्रुपद-सुता-पद पार्थ-हिय, ले न सकति तिय आन' ।' २२८

हरिहिं सप्रीति पार्थ शिर नायी,
गवने रथ वर वाजि चलायी।
स्यंदन काञ्चन जटित विशाला,
मुखरित मञ्जुल किंकिण-माला।
आयुध-युक्त मनोजव धावा,
शैल रैवतक सत्वर आवा।
उत यदुनंदिनि किये सिंगारा,
सखिन सहित वन करति विहारा।
कबहुँ रुचिर चंद्रक कर धारी,
नाचति बाल शिखी अनुहारी।
कबहुँ सखिन-परिवृत सोत्साहा,
रचति फलिनि-सहकार-विवाहा।
कबहुँ पपीहा पाछे धावति,
'पिउ !' पुकारि वन शोर मचावति।
सहसा लखि रथ ठिठकी बाला,
उठे पार्थ दिशि नयन विशाला।

दोहा :—*उतरे पार्थहु थामि रथ, झलकी नयनन चाह,*
बैठायी स्यंदन पुलकि, अनुरागिनि गहि बाँह। २२८

द्विविधा-विह्वल इत सुकुमारी,
उठीं विलखि उत सखी पुकारी।
आवहिं जब लगि रक्षक वृन्दा,
नाँधेउ शैल युग्म सानंदा।
कर मींजत रक्षक मनमारे,
सभा-द्वार सब जाय पुकारे।
सभापाल करि रोष अपारा,
कहेउ—'बजावहु नगर नगारा।
बाजेउ दारुण संकट-डंका,
गूँजी द्वारावती सशंका।
सुनेउ जहाँ जेहि भैरव रोरा,
चलेउ सवेग सभा-गृह ओरा।

यादव विपुल वंश कुल करे,
धाये चकित पटह-स्वर-प्रेरे।
रुग्णहु यदुजन नहिं पुर माहीं,
आयउ सभा भवन जो नाहीं।

दोहा :—*चिन्तित निज निज आसनन, बैठे जस सब आय,*
कही धनंजय-कृति सकल, सभापाल समुझाय। २३०

उठी पुकारि सभा 'धिक्कारा!'
'गहहु'! 'बधहु!' ध्वनि भयी अपारा।
कीन्ह कुपित महि पद-आघाता,
क्रोध कराल प्रकम्पित गाता।
तमके बदन, नयन अंगारे,
फरके भुज, शस्त्रास्त्र उघारे।
एक ते एक अधिक सब उद्धत,
प्रलय-काल जनु भयेउ समुद्यत।
सिंह-निनाद सभा गृह गाजा,
रव दारुण, बाजे रण-बाजा।
सहसा हलधर हरिहिं निहारा—
बदन प्रशान्त, मौन अविकारा।
परम धनंजय-सुहृद विचारी,
लखि निश्चेष्ट हृदय रिस भारी।
भरी सभा अनुजहिं ललकारा—
"केशव! आजु मौन कस धारा?

दोहा :—*भयेउ न यदुकुल आजु लगि, अस अनर्थ अपकार,*
कीन्हेउ जस यह गेह बसि, अर्जुन सखा तुम्हार। २३१

लहि यदुकुल-बल पांडव आजू,
भये सबल, पायेउ निज राजू।
बंधु जानि हम दीन्ह सहारा,
पठये नित नूतन उपहारा।

प्रीति प्रतीति सतत हम पाली,
प्रविशि भवन तिन कीन्हि कुचाली।
रोष न तबहुँ कृष्ण मन माहीं।
बैठे मौन, कहत कछु नाहीं।
अब लगि हम यदुशासन केरी,
कन्या कबहुँ काहु नहिं हेरी।
सक्त न रक्षि जो निज धन दारा,
जात समाज रसातल सारा।
जगत न रंच तासु सन्माना,
पद पद अध पतन अपमाना।
भयउ अनर्थ आजु कुल माहीं,
केशव तबहुँ कहत कछु नाहीं।

दोहा :— भारत कम्पित अंग अँग, हलधर रोष अधीर,
चितयी यदुपति दिशि सभा बाल हरि मति धीर—२१२

"सभा भवन मोहिं शान्त निहारी,
रोष पूज्य अग्रज उर भारी।
बोलेहु बिनु जन एतिक खारी,
बोले होय दशा का मारी।
तात निदेश सतहुँ सन्मानी,
कहिहौं उचित परत जो जानी।
जस यह कुन्ती सुत मम भ्राता,
सोइ तासु सँग अग्रज नाता।
तबहुँ सर्व धनंजय दोषू,
मढ़त जात मम शिरहिं सरोषू।
कान्हेउ जो अर्जुन अपराधा,
बाँटब उचित ताहि करि आधा।"
सुनि हरि-वचन प्रेम-रस-साने,
हँसी सभा, हलधर मुसकाने।
शान्त रोष, उपजउ सद्भावा,
... धीर... ।

दोहा:—*पूछेउ हरि तब यदुजनन,—"केती राजकुमारि,*
प्रति वत्सर यदुजन हरत, धर्म-अधर्म बिसारि ! २३३

करत नृपति को भारत वासू,
हरी न यदुजन कन्या जासू ?
भीष्मक-तनय रुक्मि नरनाहू,
रुचत न जेहि यदु विवाहू।
भगिनी, सुता दोउ हरि लाया,
कीन्ह विपुल हम तासु भलाई,
भरत-कुलहु सँग करि बरजोरी,
हरी सुयोधन-सुता बहोरी।
कीन्हेउ जब कुरुवंश-विरोधू,
उपजेउ अग्रज-उर अति क्रोधू।
हल-बल धर्षि पुरी-प्राकारा,
लागे बोरन सुरसरि-धारा
व्याकुल कुरुजन 'पाहि' पुकारी,
दीन्ही साम्बहिं ब्याहि कुमारी।
अर्जुन जन्म ताहि कुल लीन्हा,
हरि कन्या कस अनुचित कीन्हा ?

दोहा:— *यदुजन-कृत कन्या-हरण, संतत पुण्य-कलाप,*
करत अन्य जो कर्म सोइ, होत निमिष महँ पाप ! २३४

रुचेउ मोहिं नहिं यह अविचारा,
तातें सभा मौन मैं धारा।
औरहु हृदय दुःख यह लागा,
पात्र कुपात्र भाव हम त्यागा।
रूप, शील, कुल, गुण-आगारा,
कहाँ पार्थ सम अन्य कुमारा ?
पराक्रमी, उत्साही, धीरा,
सुकृती, सुमति, यशस्वि, गँभीरा।
महाबाहु, दिव्यास्त्र प्रहारी,
कहँ अस अन्य भुवन धनुधारी ?

गहि विवेक देखहु मन माहीं,
योग्य सुभद्रा अस वर नाहीं।
जो हम करत सोइ तेहि कीन्हा,
हरि कन्या बल-परिचय दीन्हा।
कुल-घालक' अर्जुन मन जानी,
ब्याहब उचित कुंवरि सन्मानी।

दोहा — हमरे बल पाण्डव बली, हम पाण्डव-बल पाय,
लहि अवसर मगधेश्वरहि, सकिहैं सहज हराय। २३५

सुनि हरि-वचन सबहिं संतोषू,
बलरामहु त्यागेउ उर रोषू।
चितै अनुज-तन पुनि संकर्षण,
की-हेउ वचनामृत तहँ वर्षण—
पार्थहिं व्यर्थ दीन्ह मैं दोषू,
तजहु तुमहु सब निज निज रोषू।
सुनि केशव-मुख मित्र-बड़ाई,
एकहि बातहुँ समुझि मैं पायी।
सखा, सुपात्र, सुनीति विचारी,
निज रथ हरि अर्जुन बैठारी,
दीन्ह पठाय सुभद्रा-संगा,
नहिं कहुँ हरण, न समर-प्रसंगा!
शैशव ते मैं श्यामहिं जानत,
बिनु उत्पात निरस जग मानत।
रचि प्रसंग आपुहिं उरझावहिं,
आगि लगाय बुझावन धावहिं।

दोहा — चित्रकार जिमि चित्र रचि, निरखि लहत आनंद,
तिमि अपनेहि सुख हेतु हरि, करत रहत जग-द्वंद।" २३६

सिक्त सनेह-सुधा बल-वाणी,
सुनत विबुध सभा हर्षानी।

सबहिं मगध-अधिपति-सुधि आयी,
लौटत गृह मुख पार्थ बड़ाई।
बजे राजगृह मंगल बाजा,
साजे भूपति यौतुक-साजा।
सहस स्वर्ण रथ सैन्धव घोरे,
सारथि चतुर साजि सब जोरे।
साजे बहुरि मत्त गजराजा,
झूमत चलत मनहुँ गिरिराजा।
दस सहस्र वर माथुर गाई,
सकल स्वर्ण सींगन मढ़वायी।
वसन, विभूषण, धान्य अपारा,
बहु मणि, रत्न, हेम-भण्डारा।
रामहिं सौंपि कहेउ मगधराया—
"आवहु इन्द्रप्रस्थ पहुँचाया।"

दोहा :— हर्षित हलधर हठि बहुरि, लीन्ह अनुज निज साथ,
यौतुक संपति लै अमित, गमन कीन्ह यदुनाथ। ३२७

चले सवेग, सैन्य बहु संगा,
जाति मनहुँ सागर दिशि गंगा।
इन्द्रप्रस्थ पहुँचे जब जायी,
कीन्ह धर्म-सुत स्वागत धायी।
भीर अपार महीपति द्वारे,
यौतुक पुरजन लखत सुखारे।
भयेउ विवाह, नगर उत्साहा,
निरखि कुमार-छवि हर्ष-प्रवाहा।
पाय वधू यदुवंश-प्रजाता,
पुलकित लखि सुख कुन्ती माता।
निरखि स्वरूप, सुशील, सुजानी,
भगिनिहिं सम मानी पाञ्चाली।
प्रमुदित पार्थ सुभद्रहिं पायी,
जनु हरि-प्रीति देह धरि आयी।

नवल नात लहि यदुकुल साथा,
शत गुण सुखी धर्म नरनाथा।

दोहा — हर्षित निवसे वर्ष भरि, इन्द्रप्रस्थ यदुनाथ,
एहु वन नित्य विहार नव, सुखद धनंजय साथ। २३८

तबहिं अग्नि-आग्रह अनुसारा,
हरि अर्जुन खाण्डव वन जारा।
धनु गाण्डीव, निषंगहु अक्षय,
स्यंदन कपि ध्वज लहेउ धनंजय।
बसत असुर मय तेहि वन माहीं,
शिल्पी जेहि समान जग नाहीं।
दहरत अनल करत वन ग्रासा,
पहुँचेउ जबहिं असुर गृह पासा,
भागेउ आकुल सुधि बुधि त्यागी,
भीषण आगी पाछे लागी।
धाये हरिहु निधन मन ठानी,
सम्मुख चक्र सुदर्शन तानी।
मृत्यु विलोकि उभय दिशि आयी,
परेउ पार्थ-पद भय अकुलायी।
शरणागतहिं रच्छि विश्वेशा,
लाय पुरा पुनि दीन्ह निदेशा—

दोहा —"धर्म नृपति हित अस करहु, सभा भवन निर्माण,
सकै न रचि पुनि जग निखिल, जस शिल्पी कोउ आन।
उपद्रुत मय मैनाक गिरि, सुनतहि गवनेउ धाय,
आरंभी अद्भुत सभा, मणि स्फटिक बहु लाय। २४०
भयेउ जन्म अभिमन्यु कर, उर उर हर्ष महान,
जातकर्म निज हाथ करि, फिरे स्वपुर भगवान। २४१

पूजा काण्ड

सोरठा — कंस - काल - भौमारि बाणासुर - रण - मद - दलन,
जित-सुरपति-त्रिपुरारि बंदहुँ यदुपति चक्रधर।
कारा द्वार उघारि, रच्यउ राज-समाज जेहि,
बंदहुँ हरि मगधारि, धर्मसुवन-मन भीम-भुज।

दोहा — विष द्रुम खल, चंदन सुजन, आर्तिहरण हरि नाम,
भरहि आस विश्वास नव, भरतखण्ड प्रात धाम। १

कृत प्रभात शुचि मंगल काजू,
देत द्विजन गोधन यदुराजू।
रात्रि महार्णव मग्न दिवाकर,
शीतल-सलिल-निवास-मद-कर,
उत्थित भेदि पयोधि-तरंगा,
सुरतरु-पल्लव-पाटल रंगा।

ताहि समय प्राञ्जलि प्रतिहारी,
प्रणमत प्रभु-पद गिरा उचारी—
'देव ! कोउ द्विज मगध-निवासी,
द्वारस्थित दर्शन अभिलाषी।
आशय विशद, सुमूर्ति, सवेषा,
लायेउ कछु निगूढ़ सन्देशा।"
सुनतहि दै आयसु जगवन्दन,
कीन्हे अनुचर-वृन्द विसर्जन।
प्रविशत विप्रहिं बहुरि बिलोका—
गति शंकित, मुख अंकित शोका।

दोहा:— भाषी हरि स्वागत गिरा, दीन्ह बिहँसि अवधान।
हृष्ट-हृष्ट लहि प्रभु दरस, बोलेउ द्विज मतिमान— १

"गिरिव्रज नाथ! मगध-रजधानी,
दुर्गास्थित शिव-मठ यश-खानी।
वंश क्रमागत तासु पुजारा,
पशुपति सेवक मैं अनुरागी।
तहँ आजु महिपाल छियासी,
जरासंध-निर्जित, कारावासी।
जो शिव, सुशरण, सर्व शुभंकर,
सर्व-बंध-मोचन, विश्वंभर,
धर्म रूप जो सर्व भूत-पति,
नर बलि देन चहत तेहि मगधपति।
भवन तासु पावन, उजियारा,
आजु भयद कारा अँधियारा।
भोगि यातना तहँ अशेषा,
निवसत बंदी आर्य नरेशा।
बलि पशु मानि सकल व्यवहारा,
रज्जु-निबद्ध, पात आहारा।

दोहा:— असह वेदना निशि दिवस, प्राण-मात्र अवशेष,
पठयेउ मोहि प्रभु पास तिन, दीन्हेउ यह सन्देश— २

मृतक-कल्प हम पुण्यहीन जन,
प्रणत नाथ-पद, करत निवेदन।
मनुज-अगोगति मनुजहि हाथा,
अब लगि अस न सुनी यदुनाथा!
जस गहि रण-महि कारा डारी,
कीन्हि मगध-अवनाश हमारा।
अरि निज सगर शूर नसावत,
प्राण-दण्ड अपराधिहु पावत।
यज्ञ पशुहु हित श्रुति-संरक्षण,
मृत्यु यन्त्रणहि लहत कछुक क्षण।
पै इक मगपति-इच्छा त्यागी,
नहि श्रुति, नीति रीति हम लागी।
कारा कल्पनातीत हमारा,
अन्तर्बाह्य सान्द्र अंधियारा।
उर चिर बरत व्यथानल भारी,
नयनन सतत वेदना-वारी।

दोहा :— *निशि दिन निद्रा-जागरण, ऋतु सब एक समान,*
होत वेदना-मात्र तें, तन निज प्राणन भान। ४

मनुज विधाता दोउन-विस्मृत,
हम इक नाथ-नाम बल जीवित।
सुनेउ रैवतक गुरु निवासा,
हरि कहार बल विक्रम-राशा।
आर्त-आर्त स्वर परतहि श्रवणन,
धावत लाँघत शैल सिंधुरन।
खगपति-जव, लय-वारिद गर्जन,
तीक्ष्ण नखांकुर चक्र सुदर्शन।
विद्युत झपटनि, वज्राघाता,
आततायि-अन्तक, जन त्राता -
अस प्रभु-कीर्ति निखिल महि व्यापी,
काँपत कृष्ण-नाम सुनि पापी।

विरुद तुम्हार ! असुर-मद-गंजन,
दलित, दीन, निज जन-भय-भंजन।
सुमिरहु हमहिं नहिं नाथ ! बिसारहु,
बूड़त जन गहि हाथउ बारहु।

दोहा :— नाथ-नाम रसना रमत, मानस निशि दिन ध्यान,
सुनन चहत पद-चापश्रुति, विरमे कहँ भगवान !" ५

सुनि सदेश विह्वल भव मोचन,
भूषित करुणा-वारि विलोचन।
विप्रहिं दै परितोष पठावा,
स्यंदन साजि सारथी लावा।
सहचर उद्धव सात्यकि साथा,
गवने सभा-भवन यदुनाथा।
रथ मंगल-मय मूर्ति निहारी,
पथ वीथिन जन-जय-ध्वनि भारी।
सभा ससंभ्रम उठेउ समाजा,
पौर, अमात्य स्वजन, महराजा।
गुरुजन-पदवंदन प्रभु कीन्हा,
उग्रसेन अर्धासन दीन्हा।
समासीन शोभित यदुराजू,
सुरगण मध्य मनहुँ सुरराजू।
मंगल वाद्य सहित श्रुति मंत्रन,
राज-काज आरंभेउ द्विजजन।

दोहा :— भ्रमत विश्व ताही समय, नारद अमर मुनीश।
प्रकटे सहसा यदु सभा, धाय मिले जगदीश। ६

प्रणत देवि ऋषि पद यदुराजू,
भरेउ सप्रीति भुजन मुनिराजू।
भेंटत श्याम हिं साइ मुनीशा,
जनु उदयाद्रि उदित रजनीशा।

हेम-रत्न-आसन बैठाया,
पूजेउ सविधि मुनिहि यदुरायी।
मुनिवर-हस्त कमण्डलु पावन,
पूर्ण तीर्थ-जल कलुष-नसावन।
प्रेम पुलकि मुनि करतल धारा,
सींचेउ हरि-मस्तक शुचि वारी।
भाषेउ प्रभु—"लहि दरशन आजू,
नष्ट निखिल मम अघ मुनिराजू!
ज्ञान-प्राण तुम प्रेम सदेहा,
युग युग ते मम सुहृद, सनेहा।
जदपि तुमहिं नहिं राग न द्वेषा,
सहत निरंतर जग-हित क्लेशा।

दोहा :— करत कृपा मुनिनाथ! तुम, आवत जब मम पास,
मानत असुरन-नाश हित, मैं तेहि पूर्वाभास!" ७

विहँसे सुनि मुनि गिरा उचारी—
"अकथ कथा सब नाथ! तुम्हारी।
धरणी-भार उतारन-कारण,
धारत मनुज तनु तुम जग-तारण!
भवातीत तुम आजु समाया,
सपितु, समातु सभ्रात, सजाया
आत्मज, पौत्र प्रपौत्र, सजाती,
राज्य, प्रजा, बल, सुहृद, अराती।
निवसत महि माया विस्तारे,
मार्ग प्रवृत्ति मनहुँ वपु धारे।
ध्यान अगम्य कहति श्रुति जोई,
चर्म-चक्षु देखत जग सोई।
निरखि विश्व आचरण तुम्हारा,
सीखत धर्म, लोक-आचारा।
आपुहि स्वेच्छा असुर नसावत,
औरन सतत निमित्त बनावत।

दोहा :— *घिरति सघन रजनी जबहिं, व्यापि मही मझारा,*
बिनु शशि सकत कि नासि तम, प्रयुतन नखत-प्रकाश ! ८

घरि बहु पूर्व समय अवतारा,
असुर-वृन्द जो प्रभु सहारा।
भासत जरासंध तिन आगे,
हिमगिरि-पार्श्व सहा जिमि लागे।
कहाँ हिरण्यकशिपु दशशीशा !
कहँ मगधेश, चेदि-अवनीशा !
विचि संघ इन शक्ति बढ़ायी,
भये धर्म घातक दुखदायी।
संघ-शीश मगधेश भुवाला,
भुज युग दंतवक्र शिशुपाला।
शाल्व व्योमचर उदर समाना,
अंग विभिन्न अन्य नृप नाना।
हते मगध-महीपति तिन माहीं,
मस्तक-रहित जियहिं तनु नाहीं।
नासहु सत्वर अब तेहि स्वामी,
बहु दिन जियेउ पाप-पथगामी।

दोहा — *आतुरता प्रभु ! मम छमहु, धर्मराज ढिग जाय,*
राजसूय क्रतु हेतु सब, आयेउँ मैं समझाय।" ९

सुनि मुनि-वचन हँसे भगवाना,
"नारद सम नारद, नहिं आना !"
दूत धर्मसुत तेहि छण आवा—
'इन्द्रप्रस्थ नृप हरिहिं बोलावा'।
मुनि तन लखत पढ़त पुनि पाती,
आनँद-पुलकित अश्रु-भराती।
गगन-मार्ग गवने मुनिरायी,
हेरे यदुजन दिशि यदुरायी।
कह उद्धव, मुनि उचित विचारा,
यहि विधि सहजहिं अरि-संहारा।

सोइ नृप राजसूय अधिकारी,
नृपति जासु सब आज्ञाकारी।
भोगत सो पद मगपति आजू,
नत मस्तक सब राज-समाजू।
बिनु तेहि हते समर-महि माहीं,
धर्म सुवन-मख संभव नाहीं।

दोहा:— *शक्तिमंत सब पाण्डु सुत, तेहि पै आपु सहाय,*
मम मत, मख-मिस हम सब त, रिपु निज आजु नसाय।" १०

सुमिन सुनत भाषेउ संकर्षण—
"भावत बाह पाण्डु सुत गुण-गण!
यदुवंशिन-अरि मगध नरेशा,
तजेउ तासु भय हम निज देशा।
प्रबल आजु हम पुनि सब भ्राता,
सकत स्वबल निज नासि अराता।
करहिं जो भरतवश यह काजू,
होइहैं सोइ भारत-अधिराजू।
उचित पाण्डु पुत्रन पै प्रीता,
उचित न निज कुल संग अनीता।
अति प्रिय कुन्ती सुत मोहि सारे,
सहजहि यदुजन अधिक पियारे।
सकत सोइ मगधेश नसायी,
करहिं जासु हरि आपु सहायी।
मम मत प्रथम उचित कुल-सेवा",
अस कहि मौन भये बलदेवा।

दोहा:— *प्रमुदित कृतवर्मा सुनत, भाषे उठि सोइ बैन,*
स्वजन संकुचित दृष्टि लखि, नत शिर पंकज-नैन। ११

निरखे यदुवंशिन यदुवीरा,
हृदय [illegible] वदन [illegible]गा।

शोच-निमग्न कहत कछु नाहीं,
व्यापी भीति स्वजन मन माहीं।
प्राञ्जलि सात्यकि गिरा उचारी—
"छमहु जो कछु प्रभु! चूक हमारी।"
बलरामहु मृदु वचन सुनावा—
"एतिक क्लेश तात! कस पावा!
सूझेउ मोहिं सोइ मैं भाखा,
करिहौं सोइ जो कान्ह रचि राखा।
प्रेम-पयोनिधि व्यथा बहाया,
पावन वचन कहे यदुरायी—
"एकहि नीति तत्व मैं जाना—
हेतु समष्टि व्यक्ति-बलिदाना।
स्वजनहि बसत जासु मन माहीं,
सधत धर्म-हित तेहिं ते नाहीं।

दोहा:— *चहत करन यदुवंश जो, असुर-शक्ति अवसान,*
आर्यन-संस्कृति-अभ्युदय, पूर्ण धर्म-उत्थान, १२

आत्म-समृद्धि-यत्न तौ त्यागी,
होहु भरतकुल-हित अनुरागी।
युग युग भारतवंश-महराजा,
भये चक्रवर्ती अधिराजा।
धर्मराज-पद नावत माथा,
लजिहैं कोउ न आर्य नरनाथा।
त्यागि मोह सोचहु मन माहीं,
यह यदुवंश-अवस्थिति नाहीं।
मिलिहै हमहिं न रूढ़ि-सहारा,
केवल बल न चलत अधिकारा।
जहँ औदार्य शौर्य सँग निवसत,
विजय विभूति बसहिं तहँ शाश्वत।
परिग्रह-ग्रहि-गृहीत क्षुद्र जन,
सकत कि साधि महत आयोजन?

उर जो कछु उदार अभिलाषा,
उचित तजब साम्राज्य-पिपासा।

दोहा — बृहत् आर्य-हित माहि जो, कहि स्वहित हम लीन,
भारत-महि ते निमिष महँ, होइहैं असुर विलीन।" १३

यहि विधि बोधि स्वजन भगवाना,
कीन्ह युधिष्ठिर-पुरी प्रयाणा।
तजि आनर्त, नाँघि सौवीरा,
मरुथल पार कीन्ह यदुवीरा।
कालिन्दी-तट नेह-विहाला,
आय मिलेउ हरि धर्म भुआला।
मिले पञ्च पाण्डव भगवाना,
भेंटे जनु पञ्चेन्द्रिय प्राणा।
अभिनंदन-स्वर, श्रुति-ध्वनि साथा,
चलेउ लिवाय हरिहिं नरनाथा।
यमुना ते नृप-गृह पर्यन्ता,
स्वागत साज समाज अनन्ता।
भूषित वीथी, चत्वर, आपण,
छादित पथ वितान, ध्वज, तोरण।
नृप-सम हरि-अनुरक्त प्रजाजन,
प्रति पद सुमन-प्रवर्षण पूजन।

दोहा — प्रविशि राजप्रासाद प्रभु, लही पृथा-आसीस,
भेंटि सुभद्रा द्रौपदिहि, मोद-मगन जगदीश। १४

कृतस्नान, भोजन विश्रामा,
सुख-आसीन निरखि सुख-धामा,
सादर धर्म-सुवन ढिग जायी,
हिय अभिलाषा हरिहिं सुनायी—
"नाथ! सभागृह देखन लागी,
आये पुर नारद अनुरागी।

अविदित-गति सहसा मुनिराऊ,
कीन्हेउ राजसूय प्रस्ताऊ।
तब ते अनुज, अमात्य, आप्तजन,
करत निरंतर सत्र-चिन्तवन।
दिन प्रति बढ़ति जाति अभिलाषा,
मोहिं न नाथ ! निज बल विश्वासा।
निरखि स्वजन हठ निज बढ़ाई,
पाती द्वारावती पठायी।
कोउ स्वार्थवश, कोउ वश भीती,
मोहि प्रशंसत काउ वश प्रीती।

दोहा :— जानत तुम सब नाथ ! मम, बसुधा, काहिनि कोष,
अन्तर्यामी प्रति प्रकट सकल युधिष्ठिर-दोष। १५

राजसूय अधिकारी सोई,
सार्वभौम जो भारत होई,
मिलत जाहि चहुँ दिशि सन्माना,
विभव जासु अमरेश समाना,
चारिउ वर्ण सुखी जेहि राजू,
विगत ताप त्रय मनुज समाजू।
मोहिं भरोस नाथ ! निज नाहीं,
संशय सहस उदित मन माहीं।
प्रभु सब भांति मोर हितकारी,
विमल विवेक, बुद्धि बलधारी।
मद, मत्सर, ममतादिक त्यागी,
संतन नाथ ! सत्य अनुरागी।
कबहुँ न मानस व्याप्त विकारा,
सदा एकरस हृदय तुम्हारा,
मंगल-मूल नाथ-उपदेशू,
शब्द शब्द जग-क्षेम सदेशू।

दोहा :— यदि तनु तुम सार्थक करत, वाणी वेद पुराण,
देहु सोइ उपदेश मोहिं, होय भुवन-कल्याण।" १६

भरित अनन्य भक्ति नृप-वाणी,
भाषे हरिहु वचन सुख मानी—
"पूर्व समय यहि भारत देशा,
सार्वभौम बहु भये नरेशा।
त्यागि राजकर नृप मान्धाता,
भये चक्रवर्ती विख्याता।
अनुसरि तिनहिं, रिझाय समाजू,
लहेउ भगीरथ यद अधिराजू।
तप-बल कार्तवीर्य सोइ पावा,
धन-बल ताहि मरुत अपनावा।
पूर्व पुरुष पुनि भरत तुम्हारा,
भुज-बल जीति भुवन यह सारा,
भयेउ राजराजेश्वर नामी,
एकछत्र नृप, वसुधा-स्वामी।
एक एक गुण-बल ये महिपति,
भये छत्रपति भारत-अधिपति।

दोहा:— *जन-मत, तप, धन, बाहुबल, तुम चारिउ गुण-गेह,*
भीमार्जुन माद्री-तनय, जनु दिक्पाल सदेह। १७

चारिउ अनुज जाय दिशि चारी,
करिहैं स्ववश मही यह सारी।
होइहै सफल असशय यागा,
एकहि कार्य कठिन मोहिं लागा।
जरासंध जग आजु प्रतापी,
गर्वित, मत्त, धर्म सतापी।
सकल आर्य-कुल समर पछारी,
भोगत एकछत्र महि सारी।
सुहृद अभिन्न तासु शिशुपाला,
शिष्य-सदृश कारूप भुआला।
सदा सहायक शाल्व कुचाली,

मम सर्वंधी विदर्भ-अधीशा,
अन्यहु बहु यादव अवनीशा,
भीति-ग्रस्त मगपति-अनुयायी,
सतत समर-महि तासु सहायी।

दोहा :— *हमहु आक्रमण-ग्रस्त नित, अंत तासु भय मानि,*
बसे स्वजन सह वारिनिधि, जन्म-मही निज त्यागि। १८

मगपति सकल त्यक्त मर्यादा,
चहत समूल धर्म अवसादा।
समर-मही बहु नृप संहारे,
गहि रण अन्य बंदि-गृह डारे।
नर-बलिदान-ठान शठ ठानी,
पशु-सम हनन चहत अभिमानी।
अद्यावधि अवनीश छियासी,
राखे करि बंदी अघराशी।
लहत चतुर्दश अन्य भुआला,
करिहैं खल नरमेध कराला।
भारत-महि करि धर्म विकासा,
क्रम-क्रम ऋषिन पशुत्व विनासा।
करुणा आर्य-धर्म-आधारा,
मानव-सम पशु सँग व्यवहारा।
ताहि नसाय चहत मगनाथा,
वृत्ति पाशविक मनुजहु साथा।

दोहा :— *भीषण यह संस्कृति-पतन, सकहि जो रोकि नरेश,*
गइहे शाश्वत तासु यश, दया-धाम यह देश" १९।

चिन्तित सुनि अति धर्मन रेशा।
कहेउ अजेय जानि मगधेशा—
"जरासंध जय अस बलवाना,
तजेउ समर आपुहि भगवाना,

सकत ताहि तव को संहारी ?
स्वप्नहिं मख-अभिलाप हमारी।"
भाषे सुनि हरि वचन सप्रीती—
"उचित न तात ! धरब उर भीती।
रचे विरंचि पाप जग नाना,
भीति समान न गर्हित आना।
भीति सकल अघ-अवगुण-मूला,
प्रकृति आपु कातर-प्रतिकूला।
छमत ईश बहु अघ नर माहीं,
छमत कबहुँ कायरता नाहीं !
काल असीम, बिपुल यह महितल,
भीरुहिं सुयश न कबहुँ काहु थल।

दोहा :—*निश्चित मृत्यु मुहूर्त जो, सकत ताहि को टारि ?*
जो नहि निश्चित, जानि को, कब केहि जइहै मारि ? २०

दुहु विधि व्यर्थ मृत्यु हित शोचू,
धरत भीति उर मनुजहि पोचू।
तेज, नीति, धृति-युत नररायी,
कालहु सकत सयुक्ति हरायी।
दल बल विपुल मगधपति पासा,
वाहिनि-युद्ध न मोहिं जय आशा।
वैयक्तिक विक्रम हम सगा,
भीम-पराक्रम नहिं अरि अगा।
पार्थ समान न सो धनुधारी,
निश्चित तासु युग्म-रण हारी।
जदपि नीति विद् मगध नरेशा,
दोप तासु अभिमान अशेषा।
युग्म-युद्ध-आह्वान हमारा
करिहै हठि मदान्ध स्वीकारा।
सहज [illegible] विधि मेटि उपाधी

दोहा :—*भीमार्जुन जो देहु मोहि, तजि भय, भ्रम, सन्देह ,*
मगध-महीपति मैं हतहुँ, मगध - महीपति - गेह ।" २१

सुनि भाषीं नृप गिरा सोहायी—
"माँगत केहिते का यदुरायी !
पाण्डु-सुतन तन, मन, धन, प्राणा ,
अर्पित पाद पद्म भगवाना ।
जियन चहत हम गोविंद साथा ,
मृत्यु पियारि विना यदुनाथा ।
भुक्ति मुक्ति मम तुमही स्वामी !
जानहु सो सब अन्तर्यामी ।"
अस कहि नृप दोउ अनुज बोलायी ,
हरि-मतव्य कहेउ समुझायी ।
पुलकित सुनत सुमत दोउ वीरा ,
फुरत भुजा जनु समर-अधीरा ।
सौंपेउ हरिहिं धर्मसुत अनुजन ,
बंधु-सनेह बहेउ भरि नयनन ।
प्रीति सराहि, बोधि हरि राजा ,
साजे गिरिव्रज-यात्रा साजा ।

दोहा :—*वसन उपकरण लहि सकल, वेष स्नातक धारि ,*
गवने मगध-प्रदेश दिशि, पाण्डु-सुवन, असुरारि । २२

त्यागत कुरुजाङ्गल, पाञ्चाला ,
प्रविशे कोशल देश विशाला ।
सरयू, शोण, जाह्नवी पारा ,
निरखेउ प्राच्य प्रदेश प्रसारा ।
गिरिव्रज-पुरी बहुरि नियरानी ,
धन-जन-खानि, मगध-रजधानी ।
ऋषि, बराह, चैत्यक, वैहारा ,
वृषभ, पंच गिरि जनु प्राकारा ।
करत सार्थ मिलि 'गिरिव्रज' नामा ,
निर्भय नगर शौर्य-श्री-धामा ।

लखत शैल-कटिमहि मनमोहन,
कीन्हेउ श्याम शिखिर आरोहण।
लता, कुञ्ज, मञ्जरि-मय कानन,
गुञ्जत भृंग, मंजु खग-कूजन।
फुल्ल विपुल अंबुज-रज-रंजित,
शोभा-सींव सरोवर सुरभित।

दोहा :— *निरखे पुनि नृप प्रमदवन, रम्य विपिन, आराम,*
शैल-गर्भ-उत्कीर्ण बहु, क्रीड़ा गृह अभिराम। २३

शैल-लग्न पुनि नगर विलोका,
महि अवतरित मनहुँ सुरलोका।
गोपुर खगपति-पंख समाना,
राजभवन जनु हिमगिरि आना।
छद्म वेष भीमार्जुन साथा,
परिखा पार कीन्हि यदुनाथा।
पुरी प्रधान द्वार पुनि जायी,
लखे विपुल रक्षक-समुदायी।
जानि सजग प्रहरी रण-घोरा,
खोजय सधि फिरे चहुँ ओरा।
सहसा चैत्य वृक्ष हरि चीन्हा,
करि तेहि लक्ष्य गमन द्रुत कीन्हा।
लखे धरे तहँ तीनि नगारा,
बाजत सुनत शब्द पुर सारा।
प्रात नित्य धरि चंदन, माला,
पूजत सविधि मगध-भूपाला।

दोहा :— *गुनि विश्रुत ये सोइ पटह, श्रीहरि-इंगित पाय,*
निमिषहि महँ निश्शब्द सब, दीन्हे पार्थ नसाय। २४

लगि प्राचीर चैत्य-तरु जामा,
अखेउ निरखि भीम बलधामा।

मयेउ विशाल विवर प्राकारा,
कीन्ह पाय पथ पुर पैठारा।
लोध्र, बकुल तरु-अवलि निहारी,
बसि तल यापेउ काल मुरारी।
ताही समय ओट गिरि-सानू,
अथयेउ सहसा पश्चिम भानू।
शरद पूर्णिमा विधु आकाशा,
उदित विशद भरि भुवन प्रकाशा।
लखि अवसर उपनगर विहायी,
गये राजपथ-भीर समायी।
दीप्त प्रदीप इन्दु-द्युति-हारी,
जगमग रत्न दिवस उजियारी।
राजित मद गजराज राज पथ,
जन-संकुल-कल्लोल, बाजि, रथ।

दोहा :— *लसत उल्लिखित व्योम गृह, निशि विलास रस रँग,*
पहुँचे नृप-प्रासाद ढिग, पाण्डु-सुवन, श्रीरंग। २७

करि मन्दिर गोपुर-अधिरोहण,
उतरे लीनहु नृपगृह-प्राङ्गण।
करत सुमन-तरु-वीथिन पारा,
सहसा नृप समक्ष पगु धारा।
पूछेउ चकि नृप रोष अशेषा—
"को तुम? कस अस कीन्ह प्रवेशा?"
सस्मित प्रतिभाषेउ असुरारी—
"प्रकट वेष ते जाति हमारी।"
सुनि नृप नखशिख तिनहिं निहारा,
आरम-ग्रीव हँसी वचन उचारा—
"उच्च शरीर, तेज मुख धारे,
वक्ष विशाल, नयन रतनारे।
भुज प्रत्यंचा चिन्ह सोहावे,
तुम क्षत्रिय द्विज-वेष बनाये।

दुरनुष्ठित-मन, दण्डनीय जन,
आये सन्मुख बिनु अनुशासन।

दोहा:—*नासी नृप मर्याद तुम, करि यहि भाँति प्रवेश,*
कुशल न अब भाषे अनृत, कहहु काह उद्देश?" २६

दीन्हेउ उत्तर हरि मतिमाना—
"सत्य तुम्हार नृपति अनुमाना।
ये दोउ वीर भरतकुल-जाता,
अर्जुन भीम नाम विख्याता।
कृष्ण नाम मम, तुम सन नाता,
मातुल मम तुम्हार जामाता।
वैर हमार विदित जग माहीं,
आयेउँ रण-याचन तुम पाहीं।"
मर्मस्पर्शि गिरा हरि केरी,
सुनी अवनिपति नयन तरेरी।
बोलेउ पुनि सगर्व मगराजा—
"रंचहु कृष्ण! न तुव उर लाजा।
समर त्यागि, आनर्त परायी,
बसेउ वारिनिधि जाय दुरायी।
बहुरि विदर्भ हरी पर नारी,
भागेउ आपु बधु रण डारी।

दोहा:—*माया-रत अभ्यस्त शठ, कपटी कायर साथ,*
करत न रण वीरामणी, भारतमहि-अधिनाथ।" २७

मन मुसकाने सुनि श्रीरंगा,
कहे वचन मृदु मिश्रित व्यंगा—
"मम हित जो कछु सुमति तुम्हारी,
पहिलेहि ते निज हृदय विचारी,
लायेउँ सँग भट रण-अनुरागी,
इन नहिं कबहुँ समर-महि त्यागी।

विश्रुत वंशज, माया-हीना,
दोउ तुमहिं सम समर-प्रवीणा।
मोहिं भरोसा युद्धत इन साथा,
लजिहै नहिं भारत-अधिनाथा।"
सुनत वचन नृप उर रिस छायी,
लखेउ पार्थ दिशि भृकुटि चढ़ायी।
अभय धनंजय वचन सुनावा—
"तुम नृप ! पाप-पथ अपनावा।
करि बंदी पशुवत् नृप नाना,
करन चहत तुम नर-बलिदाना।

दोहा :—*करहु मुक्त महिपाल सब, जाहिं सुखी निज धाम,*
नाहित याचत मैं समर, करहु युग्म संग्राम।" २८

सुनि मगधेश न उत्तर दीन्हा,
पूछेउ भीमहिं सम बल चीन्हा—
"कहहु काह उद्देश तुम्हारा ?
केहि कारण गिरिव्रज पगु धारा ?"
भाषेउ भीम, "मोहिं अभिमाना,
भुवन न मम समान बलवाना।
सोई गर्व तुम्हरे मन माहीं,
युद्ध विहाय अन्य गति नाहीं !
समर हेतु आयेउँ मगधेशा !
नहिं परमार्थ मोर उद्देशा।"
सुनत सदप वृकोदर वाणी,
कहेउ मदान्ध सहज अभिमानी—
"कपटी, कुटिल, कृष्ण हतभागा,
बंधु तुम्हार मूढ़ मोहिं लागा।
शूर-प्रकृति तुम मोहिं अति भाये,
क्षत्रोचित शुचि वचन सुनाये।

दोहा :—*अतिथि रूप इन संग तुम, वसहु निशा मम धाम,*
जाहु प्रात यम-सद्म पुनि, करि मो सँग संग्राम।" २९

अस कहि अतिथि भवन दै वासू,
गर्वित गयेउ नृपति रनिवासू।
इत मगपति-अघ बरनि अपारा,
भीमहिं हरि भरि रैनि उभारा।
कृत प्रभात समरोचित वेषा,
आयेउ भीम समीप नरेशा।
सुनि निशि-वृत्त नगर उत्तेजन,
जुरे मल्ल-महि विपुल पौर जन,
वीर भुजायुध बाघ-प्रचारे,
उतरे द्रुत दुर्दान्त अखारे।
कर्कश वक्ष बाहु शैलोपम,
कुशल मल्ल दोउ सम-बल-विक्रम।
चढ़ी भृकुटि करतहिं अभिवादन,
भिरे धाय मद-शोण विलोचन।
लागे लरन युगल ललकारी,
उत्थित ताल-बाहु-रव भारी।

दोहा:— *जानु-मुष्टि-संघट्ट ते, बाढ़ेउ भैरव रौर,*
फूटत शिला विशाल जनु गिरत वज्र जनु घोर। ३०

कपि गहत दोउ एकहिं एका,
करत घात-प्रतिघात अनेका।
भरि युग बाहु बहुरि बिलगाहीं,
'उरोहस्त' डारहिं महि माहीं।
पाणि-पाणि अँग-अंगन मारी,
झपटत, सिमिटत, हटत पछारी।
गरजत घोर मनहुँ पंचानन,
छिटकत दृग-अंगार अग्नि-कण।
युद्धत मनहुँ उद्भ्र मतंगा,
शोणित स्रवत दीर्ण अँग अंगा।
दोउ असहिष्णु, जयेच्छा गाढ़ी,

कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा प्राता,
प्रारंभेउ युग रण प्रख्याता।
दिवस चतुर्दश बिनु विश्रामा,
भयेउ महा भीषण संग्रामा।

दोहा :— *निशा चतुर्दशि भीम लखि, कछुक श्रान्त मगराय,*
झपटि प्रभंजन-वेगि गहि, लीन्हेउ शत्रु उठाय। २१

विकल बार शत अघर भँवायी,
पटकेउ महि बल सकल लगायी।
जानु-प्रहार मेरु करि घोरा,
मर्दि अस्थि-पंजर अरि तोरा।
गहि दोउ चरण, चीरि करि खण्डा,
कीन्हेउ गर्जन भीम प्रचण्डा।
अंग सकल मृत-शोणित लाला,
व्याप्त रौद्र रस बदन कराला।
भीमहिं नरसिंह-वेष निहारी,
भागे पुरजन 'पाहि'! पुकारी।
मगधनाथ-शव हरि उठवाया,
सादर राजद्वार रखवाया।
व्याप्त नगर कोलाहल भारी,
आशा भीति विवश नरनारी।
हतमति त्रस्त सचिव सब परिजन,
छायेउ घोर राजगृह क्रन्दन।

दोहा :— *मगध महीपति जेष्ठ सुत, सहदेवहि लै साथ,*
सकल नृपोचित मृत-क्रिया, करवायी यदुनाथ। २२

रानिन पुनि प्रबोधि भगवाना,
कीन्हेउ कारा-भवन प्रयाणा।
बंदिन-द्वार भयी हरि-जय-ध्वनि,
परेउ श्रवण पद-चाप बहुरि पुनि।

निशा-विषाद-स्वप्न जनु नासा,
निमिषहि माहिं छिन्न सब पाशा।
थमेउ दृगन दुख-अश्रु-विमोचन,
बही मोद-मदाकिनि लोचन।
परे पद्म पद तनु सुधि नाहीं,
लाये हरि नृप-मंदिर माहीं।
क्षौरस्नान सप्रीति करायी,
कीन्हेउ सँग भोजन यदुराई।
"आयेउ इन्द्रप्रस्थ मख काजा,
दै निदेश पठये गृह राजा।
बद्ध नेह-बंधन नररायी,
गवने मनहुँ जन्म नव पायी।

दोहा :— *रोपि मगध पुनि धर्म-तरु, करि सहदेव नरेश,*
भीमार्जुन सह हरि जबहि, चलन लगे कुरु देश— ३१

मुदित-हृदय सहदेव सोहावा,
पैतृक स्यंदन साजि मँगावा।
बाल अरुण सम कान्ति मनोहर,
चक्र युगल जनु पूर्ण कलाधर।
किंकिणि मानहुँ तारक-माला,
शक्रचाप-द्युति ध्वजा विशाला।
घोष गँभीर मनहुँ घन-गर्जन,
कीन्हेउ सौंपत हरिहिं निवेदन—
"नाथ ! विष्णु कर यहि शुचि स्यंदन,
यहि चढ़ि कीन्हे रण जगवंदन।
त्रेता बहुरि शचीपति लीन्हा,
मम प्रपितामहिं तिन पुनि दीन्हा।"
विहँसे सुवन कथा असुरारी,
प्रीति विलोकि लीन्ह स्वीकारी।
पाण्डु-सुवन सह बसि यदुनंदन,
हाँकेउ आपुहि वैष्णव स्यंदन।

दोहा :— *इन्द्रप्रस्थ पहुँचे जयी, सुनेउ वृत्त अवनीश,*
भेंटत पुनि-पुनि तनु पुलकि, भीमहिं देत असीस। ३४

धर्म सुतहिं हरि स्यदन दीन्हा,
किये यत्न बहु नृप नहिं लीन्हा।
भीमहिं देन चहेउ यदुनदन,
सुनतहि सविनय कीन्ह निवेदन—
"नाथ! सदा मैं पद अनुगामी,
हतेउ मगधपति आपुहि स्वामी।
मैं निमित्त, यश मिलेउ उदारा,
रथ पर नाथ! न मम अधिकारा।"
लखि औदार्य श्याम सुख पावा,
विजय-प्रतीक मानि अपनावा।
शुभ-मुहूर्त पुनि भूप सभागी,
पठये अनुज दिग्विजय लागी।
उत्तर दिशि आमेरु धनंजय,
जीते आर्य म्लेच्छ नृप दुर्जय।
पूर्वहि हरि जित प्राच्य प्रदेशा,
जीतेउ सहजहि भीम अशेषा।

दोहा :— *दक्षिण पश्चिम दोउ दिशा, जीती माद्रि कुमार,*
अम्बुधि-रशना वसुमती, धर्म-सुवन जयकार। ३५

लब्ध-मनोरथ यहि विधि राजा,
आरंभे सब अध्वर-काजा।
व्यासहि पुरी सशिष्य बोलाया,
समारंभ तिन सविधि रचावा।
ब्रह्मावरण आपु मुनि लीन्हा,
गायक साम सुसामहिं कीन्हा।
याज्ञवल्क्य अध्वर्यु बनायी,
होता धौम्य पैल मुनिरायी।
किये होत्रगात्र बहु मुनि-जन,
रची यज्ञ-महिं करि सुर-पूजन।

निर्मायेउ मण्डप सुविशाला,
गूँजी श्रुति-मंत्रन मखशाला।
तब लगि उत नृप दूत पठाये,
चारिउ वर्ण निमंत्रि बोलाये।
नगर ग्राम नहिं भारत माहीं,
आयेउ अतिथि जहाँ वे नाहीं।

दोहा :—*सागर ते गिरि मेरु लगि, प्रजा-पच, नरनाह,*
जुरे धर्मसुत यज्ञ हित, अश्रुत-पूर्व उछाह। २६

महि-दुर्लभ सब लहे निवासा,
जहँ निशि दिवस सौख्य-श्री-वासा।
ऋद्धि सिद्धि सुरलोक बिसारी,
आयीं इन्द्रप्रस्थ जनु सारी।
सहित सुयोधन सब कुरु लोगू,
पावन याग दीन्ह निज योगू।
कौरव पाण्डव दोउ परिवारा,
इष्टि-कार्य कीन्हेव मिलि सारा।
धर्मसुतहु अनुराग बढ़ावा,
दीन्हेउ जाहि कार्य जो भावा।
भोजन-पान प्रबन्ध अपारा,
दुश्शासन सोत्साह सँभारा।
विप्र-वृन्द सेवा सत्कारा,
अश्वत्थामा निज शिर धारा।
नृपतिन स्वागत सुविधा सारी,
लही सचिव संजय सुविचारी।

दोहा :— *सौंपिउ सविनय नृप कृपहि, हेम-रत्न-भण्डार,*
विदुर विवेकी शीश सब, धरेउ आय-व्यय-भार। २७

सोरठा :—*भाषे वचन उदार, प्रतिनिधि करि निज कुरुपतिहि—*
"स्वीकारहु उपहार करद-नरेन्द्र-प्रदत्त तुम!"

भीष्म द्रोण ढिग गवनेउ राजा,
सौंपेउ सर्व-निरीक्षक काजा।
कमलनयन ढिग जाय बहोरी,
बोलेउ धर्म-सुवन कर जोरी—
"आपहु निज अभिरुचि अनुसारा,
रुचहि जो उचित धरहु शिर भारा।"
भाषेउ सुनतहि जगन्निवासा—
"कहहुँ तात! निज उर अभिलाषा।
आयें मखि-हित अगणित ज्ञानी,
ऋषि, मुनि, साधु योगि, यति, ध्यानी,
बहु वेदज्ञ, नियम-व्रत-धारी,
मर्मनिष्ठ, त्यागी, आचारी।
करि नित तिनके पद-प्रक्षालन,
चहत अनन्त पुण्य मैं अर्जन।
जो प्रसन्न मोहिं पै नरराजू!
देहु कृपा करि मोहिं यह काजू।

दोहा:—चकित अवनिपति सुनि वचन, कहत अकथ गति जानि,
"करहु चहहु जो नाथ! तुम, यथा आपुहि मानि।" ३८

मख-शोभा किमि कहहुँ बखानी,
भारत पुनि न यज्ञ अस जानी।
भरतखण्ड राज्यैक्य अखण्डा,
आर्य-शक्ति-मार्तण्ड प्रचण्डा—
भये न प्रकट कबहुँ पुनि तैसे,
लखे न बहुरि देश दिन वैसे!
आर्य सुसंस्कृति, धर्म अनूपा,
प्रकटे यज्ञ मनहुँ धरि रूपा।
व्योम विमानन अमर विराजत,
मनुज समाज महीतल राजत।
अमरन ते वढ़ि मनुज-समाजू,
ज्ञान, शक्ति, स्वातंत्र्य, स्वराजू।

करि पट् वैश्वानर आवाहन,
दीन्ही आहुति मुनिन समन्त्रन।
पूर्ण यज्ञ पूर्णाहुति साथा,
परसे गुरुजन-पद नरनाथा।

दोहा :— *दीन्ह धान्य, धन, धेनु, मणि, द्विजन यथेच्छित दान,*
तृप्ति मही नर, नभ अमर, व्याप्त विश्व यश-गान। ३९

बहुरि द्विजेश नरेश समाजा,
मण्डप अन्तर्वेदि विराजा।
उठि उठि नृपन भाषि निज नामा,
धर्म-आत्मजहिं कीन्ह प्रणामा।
करि जय-जय-ध्वनि, दै उपहारा,
निज अधिराज कीन्ह स्वीकारा।
निरखि अखण्ड राष्ट्र-अभिसृष्टी,
कीन्हि सुरन नभ सुमनन-वृष्टी।
बहुरि नीति-नय-प्रश्न अनेकन,
पूछे नृपन, बखाने मुनिजन।
शोभित मनहुँ मेरु गिरि-शृंगन,
करत उदात्त अमर संभाषण।
तबहिं पितामह अवसर जानी,
भाषी धर्म-सुवन सन वाणी—
"भये भरत-कुल भूप अनेका,
विभव-वरिष्ठ एक तें एका।

दोहा :— *सुकृती नहिं तुम सम भयेउ, अस नहिं जुरेउ समाज,*
नृप, महर्षि, राजर्षि सब, सभा उपस्थित आज। ४०

पूजे बिनु यह अतिथि-समाजू,
होत न तात! पूर्ण क्रतु काजू।
मित्र स्नातक, गुरु हितकारी,
[illegible] नृप [illegible]।

इन सब यहि समाज पगु धारा,
करहु तुमहु समुचित सत्कारा।
इनहु माहि सर्वोत्तम जोई,
योग्य अग्रपूजा जन सोई।
वीर-समाज मध्य जो वीरा,
त्यागी, धर्मनिष्ठ मतिधीरा,
संयमशील न जेहि सम आना,
धरत परार्थहि जो जग प्राणा,
लोक-मान्यता दिशि दिशि जासू,
पूजा प्रथम करहु तुम तासू।'
सुनि समाज-मत जानन काजा,
लखेउ सदस्यन दिशि महाराजा।

दोहा :— *सहसा हेरी सब सभा, श्रीहरि दिशि सोत्साह,*
पुरुषोत्तम पूजन चहत, द्विज, मुनीश, नरनाह। ४।

लखि सहदेव मगध-महिपाला,
उठेउ सभा हरि नेह-विहाला।
अल्प वयस्क तदपि मति खानी,
हरिहि प्रशंसि कही शुचि वाणी—
"श्रीहरि अछत भुवन त्रय माहीं,
मम मत अग्र-पूज्य कोउ नाहीं।
ये प्रभु पूर्ण ब्रह्म अवतारी,
निवसत महि जन-हित तनु धारी।
इन कर कछुक अंश सुर पावत,
वंदनीय भरि विश्व कहावत।
यज्ञ-याग सब इनहिं देही,
आहुति, मंत्र, हुताशन येही।
शुद्ध बुद्ध ये विश्वाधारा,
इनते भिन्न न कछु संसारा।
पूजत श्रीपति-पद जलजाता,
नित्य शचीपति, शंभु, विधाता।

दोहा :— *इनते परे न कर्म कछु, नहिं कछु ज्ञान, न ध्यान,*
तीनहु लोकन, काल त्रय, अग्र-पूज्य भगवान।"

गिरा विशद सहदेव उचारी,
मुदित सभा सब 'साधु' पुकारी।
पाय व्यास ऋषि भीष्म निदेशा,
पूजन हरिहिं उठेउ राजेशा।
अन्त.प्रीत पुलक तनु प्रकटित,
हर्ष-वाष्प-जल लोचन स्रावित।
लखति सभा नृप श्रीपति पूजत,
जनु शत जन्म पाप परिमार्जित।
मही महिप, मुनिजन अनुरागे,
जय-ध्वनि करत भक्ति-रस-पागे।
सुरन दुन्दुभी व्योम बजायी,
बरसे सुमन सभा-महि छायी।
हरि चरणोदक धरि निज शीशा,
पावन अमर, महीश, मुनीशा।
नत-पद सभा प्रमोद प्रकर्षा,
एक चेदिपति हृदय अमर्षा।

दोहा :— *हरि-पूजन, जयध्वनि, सुयश, सकेउ न सहि शिशुपाल।*
भृकुटि-भंग-भीषण वदन, बोलेउ वचन कराल— ४३

"सुनहु! सभासद! सर्व समाजू!
कीन्ह अधर्म धर्म-सुत आजू।
अबहुँ बाल सहदेव कुमारा,
जानत धर्म न कुल-आचारा।
मानि पयोमुख-वचन प्रमाणा,
कीन्ह महीश सभा-अपमाना।
यहि थल आजु उपस्थित मुनिजन,
अगणित विद्याव्रती, ज्ञानिजन।
आजीवन वद वेदाभ्यासी,

योगी, जीवन्मुक्त, विरागी,
धारे देह परार्थहि लागो।
जिन चरणन रज धारत शीशा,
यम, अमरेश, जलेश, धनेशा।
व्यास सहित इन सबहिं बिहायी,
पूजि कृष्ण मर्याद मिटायी।

दोहा :— *विरहित आश्रम, वर्ण कुल- धर्म-पतित, गोपाल,*
स्वेच्छाचारी कृष्ण यह, सिहन मध्य शृगाल।" ४४

सुनत चेदिपति-वचन कठोरा,
व्यापेउ रोप, कोलाहल घोरा।
लोचन लाल, बाहु बहु तमके,
निकसि कोप ते आयुध चमके।
हरि-अवमान अधीर भुआला,
धाये क्रोधित जहँ शिशुपाला।
निरखि चतुर्भुज उठि कर जोरे,
सौम्य वचन कहि नृपति निहोरे।
विरमे सहसा सुनि हरि-वाणी,
बसे प्रशान्त वचन सन्मानी।
लखि प्रभाव खल-उर रिस-ज्वाला,
भयी भभकि औरहु विकराला।
धर्म नृपहिं पुनि सरुष निहारी,
गिरा कुटिल चेदीश उचारी—
"जानि तुमहिं धर्मज्ञ, सुजाना,
बनि हम करद अधीश्वर माना।

दोहा : — *तुम जानत यहि कृष्ण-बल, भये राज-अधिराज,*
पूजत राज-समाज तेहि, उपजी हृदय न लाज। ४५

शोभित यहि थल नृपति अशेषा,
विद्यमान द्रुम, मद्र नरेशा।

चलति चमू रज भानु छिपायी,
कीर्ति उत्तरापथ भरि छायी।
भीष्मक सभा-भवन आसीना,
भूप सर्व-प्रिय, समर-प्रवीणा।
अन्य परशुधर जनु जग आजू,
निखिल दक्षिणापथ अधिराजू।
शोभित एकलव्य, दुर्योधन,
मध्यदेश अवनीश अनेकन।
इन सब विश्रुत नृपन विहायी,
पूजत कृष्णहिं लाज न आयी।
वयोवृद्ध नहिं भीष्म समाना,
द्रुपद समान हितैषि न आना।
गुरु कोउ मही द्रोण सम नाहीं,
शूर न कर्ण-सदृश जग माहीं।

दोहा :— *ऋत्विज, राजा, वृद्ध, गुरु, शूर कृष्ण यह नाहिं,*
समर त्यागि भागउ विकल, लुकेउ सलिल-निधि माहिं।" ५६

सुनि उठि ऋत्विज-प्रतिनिधि रूपा,
कहे व्यास ऋषि वचन अनूपा—
"श्रीहरि संग नाम मम लीन्हा,
उचित न चेदि-अवनिपति कीन्हा।
राजत जहँ हरि तहँ मम पूजा,
यहि ते अधिक न पातक दूजा।
इष्टदेव ये मम भगवाना,
इन हित मोर योग, तप, ध्याना।"
अस कहि हरि ढिग व्यास मुनीशा,
जाय धरी पदरज निज शीशा।
लखि कृष्णद्वय प्रेम-सम्मिलन;
कीन्ही जय-ध्वनि हर्षित मुनिजन।
पुनि भीष्मक, द्रुम, शल्य नरेशन,
[illegible]

द्रोणहु कहेउ बिहँसि हरि हेरी,
"बालक-बुद्धि चेदिपति केरी।

दोहा :— *कीन्ह गुरुत्व बखान मम, राखेउ उर नहिं ध्यान,*
पाँच सात जग शिष्य मम, ये जग-गुरु भगवान!" ४७

भीष्महु कहेउ चेदिपति पाहीं—
"यह मगधेश सभा-मह नाहीं,
करि तुम जहाँ हास उपहासा,
कीन्ह स्वजाति स्वधर्म विनाशा।
निवसे आर्य-सभा तुम आजू,
तजे विवेक सरहि नहिं काजू।
पूजा-हित लै नाम अनेकन,
चहत सभा भ्रम-भेद प्रसारन।
सिखये पाठ मगधपति जेते,
करत प्रयुक्त रहत तुम तेते,
विदित न तुमहिं मगधपति साथा,
नासी असुर-नीति यदुनाथा।
अब वह असुर-संघ कहुँ नाहीं,
जन्मेउ आर्य-संघ महि माहीं।
रंचहु हृदय न मम विद्वेषा,
हितकर देहुँ तुमहिं उपदेशा—

दोहा :— *नव भारत, नव तंत्र महँ, चहहु जो सकुशल वास,*
आर्य-शील-संयम गहहु, तजि विरोध, उपहास। ४८

शिशु सहदेव, न तो कछु हानी,
कही गँभीर सत्य शुचि वाणी।
बाल, वयस्क, वृद्ध, नृप, दासू,
सघन हस्त सम दीप-प्रकाशू।
अद्वितीय यदुपति श्रुति-ज्ञाना,
अस तत्त्वज्ञ जगत नहिं आना।

योगी तपी, नियम-व्रत-धारी,
जीवन्मुक्त तदपि आचारी।
जदपि सर्वतोजयी, शान्त-मन,
कहँ अस शौर्य शान्ति-सम्मेलन ?
हरि पुरुषोत्तम, विभु, भगवाना,
प्रति निश्श्वास विश्व कल्याणा।
पूजनीय ये त्रिभुवन माहीं,
इनते श्रेष्ठ कतहुँ कछु नाहीं।
सो सब जानि कृष्ण द्वैपायन,
कीन्हेउ हरि-यश श्रीमुख गायन।

दोहा — *शुचि वेदव्यासहु वचन, जो नहि तुमहि प्रमाण,*
निश्चय तुम्हरे हेतु कछु, रचि राखेउ भगवान।" ४६

लागी खलहिं न प्रिय हित-वाणी,
पुनि विष-वचन कहे अभिमानी—
"भीष्म तुम्हार बुद्धि-बल, ज्ञाना,
आजुहि सभा माहिं मैं जाना।
सतत सुखापेक्षि पर केरे,
यावज्जीवन तुम पर चेरे।
निज गौरव उर कबहुँ न व्यापा,
करत परस्तुति जीवन यापा।
का अचरज जो लाज विहायी,
गोप-कीर्ति तुम गाय सुनायी।
व्यर्थ धर्म अभिमान तुम्हारा,
व्यर्थहि ब्रह्मचर्य व्रत धारा।
पौरुष-विरहित कथन तुम्हारा,
पौरुष-हीन सर्व व्यवहारा।
गति मति आजु तुम्हारि निहारी,
उपजत संशय उर मम भारी।

दोहा — *रचि प्रपंच वंचेउ जगत, मिथ्या धर्म-घमण्ड,*

सुने वृकोदर वचन कराला,
सहमहि रक्त दृगन रिस ज्वाला।
भाल विशाल सजग सब रेखा,
भयी वक्र भ्रू चक्र विसेखा।
भीषण ओष्ठ विखण्डित दशनन,
झपटे भीम करत गुरु गर्जन।
धाय भीष्म गहि कीन्ह निवारण—
"वत्स! सभा यह, नहिं समराङ्गण!"
लखि, करि अट्टहास विकराला,
बोलेउ पुनि अशंक शिशुपाला—
"काह भीम! मोहिं आँखि दिखावत,
केहि तुम गरजि तरजि डरपावत।
करि छल जरासंध संहारी,
शौर्य-गर्व बाढ़ेउ उर भारी।
बधेउ न तुम मगपति रण रंगा,
जानत मैं सब कपट-प्रसंगा।

दोहा :—*विप्र पुरी-प्राकार करि, बनि द्विज कीन्ह प्रवेश।*
हत्यारे तुम, वीर नहिं, हतेउ गुप्त मगधेश।५१

यहू माहिं नहिं भीम-बड़ाई,
सब पापिष्ठ कृष्ण-अधमाई।
कहत भीष्म जेहि विभु-अवतारा,
तेहि सम जग न अन्य हत्यारा।
नारी-हत्या कर्म कठोरा,
कहत ताहि श्रुति पातक घोरा।
कीन्हे हरण पूतना-प्राणा,
तदपि न वीर कृष्ण सम आना।
को अस आर्य आजु यहि देशा,
देत धेनु-वत्सहिं जो क्लेशा।
वत्सहिं जदपि अधम संहारा।
तबहूँ कृष्ण धर्म-अवतारा।

निखिल नीति-नय-बन्धन तोरी,
कीन्ही ब्रज यहि घर-घर चोरी।
नाचेउ गोपिन सँग बनि नारी,
सबहूँ कृष्ण विष्णु अवतारी !

दोहा :—सहि न सकहुँ यहि ते अधिक, छल, अनीति, अविचार,
अबहि निपातत मैं लखहु, चोर, जार, हत्यार।" ५२

अस कहि काढ़ि तीक्ष्ण करवाला,
धायेउ श्रीहरि दिशि शिशुपाला।
लखतहि उठी सभा सक्रोधा,
धाये शस्त्र-सुसज्जित योद्धा।
पाण्डव, द्रोण, भीष्म, मद्रेशा,
भीष्मक, द्रुपद, विराट नरेशा,
संकर्षण सह यादव वीरा,
घेरेउ चैद्यहि रोष-अधीरा।
छायेउ भीषण सभा खँभारा,
समुझायेउ हरि, बहुरि निवारा।
भया सभा जब शान्त गँभीरा,
भाषा धीर गिरा यदुवीरा—
'कहे चैद्य दुर्वचन अनेकन,
सुन सकल मैं, रोष न मम मन।
करत जबहिं कोउ मम उपहासू,
परखत मैं निज यम-अभ्यासू !

दोहा :— साधु-सुजन-निंदा तदपि, सहि न सकहुँ पल एक,
कहे पितामहि चेदिपति, वचन अवाच्य अनेक। ५३

करि अनार्य संगति नित वासा,
बुद्धि विवेक सकल खल नासा।
सद्गुण-अवगुण, धर्म-अधर्मा,
पाप-पुण्य सत्कर्म-कुकर्मा,

सकत न अन्तर शठ पहिचानी,
गत-विवेक पशुवत् यह प्राणी।
पितु हित भीष्म जन्म सुख त्यागा,
सो पाखण्ड अधम कहँ लागा!
ब्रह्मचर्य पुंस्पत्व-अभावा!
स्वजन-प्रेम दासत्व कहावा!
गुण-ग्राहकता पर-गुण-गायन!
नाश-निवारण समर-पलायन!
सुकृत सकल यहि पार लखाहीं,
कहे कुवाच्य वचेउ कछु नाहीं।
कबहुँ शान्त नहिं द्वेष कराला,
गही सभा माँहि खच करवाला।

दोहा:— *तजी सकल मर्याद यहि, विलग छोडु महिपाल!*
नाचत लखहु कराल वह, काल शीश शिशुपाल!" ५४

अस भाखत हरि चक्र पँवारा,
उपजेउ अकस्मात उजियारा।
ज्योति पल्लवित महि आकाशा,
चौंधे दृग, दिशि दशहु प्रकाशा।
तड़को तड़ित मनहुँ कहुँ घोरा,
गिरेउ सभा जनु वज्र कठोरा।
निमिष न कहुँ कछु काहु लखाना,
भागे भीत अवनिपति नाना।
लखेउ रहे तहँ जे धरि धीरा—
कबहुँ चैद्य शिर, कतहुँ शरीरा!
कौतुक और भयेउ तेहि काला,
प्रकटी चैद्य-देह तजि ज्वाला।
टूटत व्योम मध्य जिमि तारा,
होत विलीन असीम मँझारा,
तैसेहि ज्योति आपु प्रकटानी,
आपुहि हरि-पद परसि समानी।

दोहा:— *विजय-दुन्दुभी नभ बजी, मही नृपन-जयनाद,*
कीन्ही विनयस्तुति मुनिन, भरेउ भुवन आह्लाद। ५५

निखिल सभा महँ तीनि भुआला,
रुचेउ न जिनहिं निधन शिशुपाला।
दन्तवक्र कारूप-नरेशा,
माया कुशल शाल्व असुरेशा।
तीसर दुर्योधन कुरुरायी,
जेहि असह्य पाण्डव-प्रभुताई।
तीनहु मन हरि-पाण्डव-भीती,
द्वेष-विदग्ध हृदय, मुख प्रीती।
यज्ञ-विधान भयउ इत शेषा,
अवभृथ-मज्जन कीन्ह नरेशा।
उत लै दन्तवक्र निज साथा,
गवनेउ शाल्व जहाँ कुरुनाथा।
कीन्हेउ दुर्योधन सत्कारा,
वचन शल्व असुरेश उचारा—
"अब अभिन्न ये पाण्डव यदुजन,
संग सुख-भोग, संग रण, शासन।

दोहा:— *अरि तुम्हार ये पाण्डु-सुत, मम अराति यदुराय,*
सकत दुहुन मैं नासि जो, कुरुजन करहि सहाय। ५६

समर-नीति, अति कृष्ण प्रवीणा,
कीन्हेउ राजचक्र बल क्षीणा।
भौम, पौण्ड्रकहिं पृथक नसायी।
पृथकहि हतेउ मगधपति जायी।
वैसेहि बधेहु आजु शिशुपाला,
नृपन-काल यह व्याल कराला।
पृथकहि पुनि निज अवसर पायी,
हनिहै तुमहिं मोहि असहायी।
रक्षण एकहि भाँति हमारा,

कर्ण, शकुनि, तुम सत कुरु भाई,
करहु जो रण माँह मोरि सुहायी,
पाण्डव सहित कृष्ण मैं नासी,
आजुहि देहुँ उपाधि निवासो।"
मत सुनतहि कुरुपति मन भावा,
पितु ढिग जाय प्रपंच सुनावा—

दोहा :— "जारि जिनहि जतु गेह हम, चहेउ समूल विनाश,
भये तात! सोइ पाण्डु-सुत, श्राजु समृद्ध-निवास। ५७

भुज-बल लहि साम्राज्य विशाला,
भये चक्रवर्ती महिपाला।
भरतखण्ड निवसत नृप जेते,
करद सकल आये मख तेते।
यह उपकार-महण मोहिं राजा,
सौंपेउ विभव दिखावन काजा।
भीर अपार युधिष्ठिर-द्वारे,
लागे हेम-रत्न . अंबारे।
वसन वर्ण बहु पद्म-विनिर्मित,
मृदुलस्पर्श, मनोहर, चित्रित,
नृपति उत्तरापथ दे लाये,
लहे पाण्डु-पुत्रन मन भाये।
विविध जाति वर वाजि सोहाये,
परसत वायु-वेग जे धाये,
लाये पश्चिम ते शक भूपा,
संग अमित उपहार अनूपा।

दोहा :— दीन्हे पुनि भगदत्त नृप, पूर्व दिशा-अधिराज,
आसन, स्यदन, असि, कवच, सहस श्वेत गजराज। ५८

जे महीन्द्र दक्षिण दिशि फेरे,
लाये मणि-माणिक्य घनेरे।

कालागरु शुचि मलयज चंदन,
दीन्हे द्रव्य सुगन्ध अनेकन।
लायेउ विपुल अवनिपति सिंहल,
मौक्तिक, मणि वैदूर्य समुज्ज्वल।
मध्यदेश-वासी सामान्ता,
दिये दिव्य उपहार अनंता।
हिमगिरि ते सागर लगि सारी,
उपजति वस्तु जो जहँ मनहारी।
बहुरि मनुज निज कर कुशलाई,
जो जो वस्तु जहाँ निर्माई—
मिलीं समस्त नृपहिं उपहारा,
भरेउ पाण्डु-पुत्रन भण्डारा।
विभव लखेउँ जो स्वप्नहु माहीं,
लखेउँ सकल निज अरि-गृह माहीं।

दोहा :—परसे जस जस इन करन, वे मणि रत्न अपार,
वृश्चिक-दंशन सम भये, मोहि सकल उपहार। ५।

रिपु-उत्कर्ष सहत जे अविकल,
तिन सम अधम जीव नहिं महितल।
तिनते कुलहिं न सुख सन्माना,
धारत अरि-हर्षहिं हित प्राणा!
लज्जा ग्लानि हृदय मम घोरा,
सहि न सकत अरि-सुख मन मोरा।
निश्चय महूँ तात! दृढ़ ठाना—
हतिहौं रिपु नतु तजिहौं प्राणा।
दैवयोग मोहिं मिले सहायी,
कीर्ति विमल जिन कै जग छायी।
जल-थल-वायु-चली असुरेशा,
शाल्व-शौर्य जानत सब देशा।
दन्तवक्र वैसहि जग-नामी,
प्रबल विशाल वाहिनी-स्वामी।

करिहैं दोउ सहाय महीशा,
देहु तात ! अनुमति आसीसा।"

दोहा :— *सुनत बुद्धि-हत अंध नृप, पठये विदुर बोलाय,*
शास्त्र-मन्त्रणा, पुत्र-हठ, कही विकल समुझाय। ६०

सहमे विदुर वृत्त सुनि सारा,
नृपहिं प्रबोधत वचन उचारा—
"तात ! पाण्डु-सुत राज्य अखण्डा,
सैन्य, सुहृद, सामन्त प्रचण्डा।
सकत समर को पार्थ हरायी ?
भीमहिं सकत कवन समुहायी ?
हरि-सँग सकत कवन करि संगर,
जीति न जिनहिं सके शिवशंकर ?
धारत मन प्रतिकूल विचारा,
नष्ट सुकृत अघ होत अपारा।
बन्धु विरोध, असुर-सँग प्रीती,
नहिं अस जगत अधर्म अनीती।
सुनतहिं भीष्म विषम सवादू,
तजिहैं तुमहिं सरुप सविषादू।
जइहैं द्रोण पितामह-साथा,
होइहैं इन बिनु वश अनाथा।

दोहा :— *हमहूँ सकत नहि रहि तहाँ, जहाँ कृष्ण-विद्वेष",*
अस कहि गवने गृह विदुर, व्याकुल त्यागि नरेश। ६१

पितुहिं प्रभावित, भीत निहारी,
गिरा परुष कुरु नाथ उचारी—
"कहेउँ तुम्हाय तात ! शत बारी,
सुजग भीम यह अनुज तुम्हारा।
राखत सतत तुमहिं वश अपने,
भजत तुमहु तेहि लागत सपने।

पाये बिनु शठ-मत, अनुमोदन,
रुचत तुमहिं नहिं शयनहु, भोजन।
यह अति कुटिल, स्वामि-हित-द्रोही,
बसत गेह मम, निंदित मोही।
अनय अधिक अब सहिहौं नाहीं,
देहौं रहन न गजपुर माहीं।
सुत सरोष लखि भीत नृपति मन,
शकुनी कर्ण बोलाये तत्क्षण।
कहउ कर्ण सुनि सकल प्रसंगा—
"उचित समर नहिं यदुजन संगा।

दोहा :— वैर उचित नहि कृष्ण सँग, उचित न असुरन प्रीति,
सकत समर-महि पाण्डुसुत, एकाकिहि मैं जीति।" ३२

भयेउ सुयोधन सुनत हताशा,
अवनत शीश, उष्ण निःश्वासा।
शकुनि विलोकि धैर्य बहु दीन्हा,
विकट प्रपंच प्रकट पुनि कीन्हा।
"लखि लखि पाण्डव विभव विशाला।
भोरेउ उर क्रोधानल ज्वाला।
जेहि क्षण मम पितु सुबल महीशा,
कीन्ह युधिष्ठिर पद नत शीशा।
उपजेहु क्षोभ जो मम मन माहीं,
बिनु प्रतिशोध सकत मिटि नाहीं।
जानत महूँ कर्ण धनुधारी,
सहजहिं सकत शत्रु-संहारी।
पै मोहिं अप्रिय जस रिपु-शासन,
तैसेहि रक्तपात, जन-नाशन।
युक्ति श्रेष्ठ मैं हृदय विचारी,
रक्तपात बिनु विजय हमारी।

दोहा :— एकहि साधन अस जगत, द्यूत कहावत सोय,
अरि-सर्वस्व निरस्त्र-रण, पल महँ आपन होय। ६२

द्यूत-अपरिचित यहि जग माहीं,
नृप कोउ धर्मराज सम नाहीं।
वैसेहि द्यूत ज्ञान-आगारा,
मोहिं मम कोउ न कहुँ ससारा।
संगर-महि जस कर्ण भयकर,
मैं तस द्यूत-समर प्रलयंकर।
इतनिहि तुम सब करहु सहायी,
लेहू द्यूत हित नृपहिं बोलायी।
राखहु शेष शीश मम भारा,
हरिहौं राज्य, विभव, धन, दारा।
सुनत वचन शठ आनद पागे,
मिलि सब युक्ति विचारन लागे।
पुनि कह शकुनि, 'युधिष्ठिर राऊ,
धर्म-भीरु, अति सरल स्वभाऊ।
महाराज जो देहिं निदेशा,
अइहैं तेहि धरि शीश नरेशा।"

दोहा — कीन्ह रतन निश्चय जबहि, जाहि स्वपुर यदुराय,
धर्मसुतहि धृतराष्ट्र तब, गजपुर लेहि बोलाय। ६७

पाण्डु सुवन मिलि अंध नरेशा,
गवनेउ प्रकटि प्रीति सविशेषा।
गयने गजपुर सँग सब कुरुजन,
पाछे रहे शकुनि दुर्योधन।
शाल्व समोर सुबल-सुत आवा,
कुरुकुल-मन कहि तेहि समुझावा।
बोलेउ सुनत तुरत असुरेशा,
"गहे काल कर कुरुजन केशा!"
दै शकुनिहिं असुरेश विदाई,
भापेउ दंतवक्र ढिग आयी—
"कीन्ह मूढ़ कुरुराज हवारा,
वनहुँ समर-महि मोहिं जय-आशा।

पाण्डव-सुतन प्रति कृष्ण-सनेहू,
बसिहैं कछु दिन पाण्डव-गेहू।
तब लगि हम दोउ सैन्य सजावहिं,
द्वारावति सवेग चढ़ि धावहिं।

दोहा :— *सकिहैं जब लगि लौटि पुर, दोउ हलधर यदुराय,*
तब लगि बधि यदुवंश हम, देहैं नगर नसाय।" ६५

कुरुपति ढिग उत शकुनि सिधारा,
कहे सुनाय शाल्व-उद्गारा।
सुनि असुरेश अमंगल वाणी,
टारी हँसि कुरुपति अभिमानी।
बोलेउ मातुल सन मुसकायी—
"मय-सभागृह देखहिं जायी।"
विहँसेउ शकुनिहु वचन उचारा—
"वेगि सभागृह होय तुम्हारा।"
चढ़े मनोरथ शकुनि सुयोधन,
गवने सभा-भवन अवलोकन।
ताहि समय हरि अनुजन साथा,
आयेउ सभा धर्म नरनाथा।
संग सुभद्रा द्रुपद-कुमारी,
कुन्ती मातु, अन्य कुल नारी।
दुर्योधनहिं निहारि नरेशा,
कीन्हेउ आदर-मान विशेषा।

दोहा :— *शिल्पकला साकार जनु, रचित मयासुर गेह,*
लखत फिरत कुरुपति चकित, गति विरहित मति देह। ६६

विविध वर्ण मणि-रत्न लगायी,
प्रकटी असुर कला-कुशलाई।
लखि संध्या-लोहित मणि-कुट्टिम,
होत ज्वलंत हुताशन-विभ्रम।

शुभ्र अश्म जनु इन्दु-जुन्हाई,
करस्पर्श बिनु जानि न जायी।
माया . मय गृह-रचना सारो,
भयेउ सुयोधन-मन भ्रम भारी।
मरकत-मण्डित, नव-असि-श्यामा,
कुट्टिम, सभा-भवन अभिरामा।
गुनि मन ताहि सुयोधन वारी,
धरे चरण निज वसन सँभारी।
समुझन भ्रान्ति लखेउ चहुँ ओरा,
निरखि विपुल जन उर दुख घोरा।
लज्जित चलेउ कछुक पग आगे,
लखेउ न सन्मुख सलिल अभागे।

दोहा :— *निर्मित सर शुभ्रस्फटिक, जल दल नलिनि निगूढ़,*
मय-माया-मोहित पैसउ, जानि ताहि थल मूढ़। ६७

गिरेउ, भयेउ स्वर, उछरेउ नीरा,
उठेउ सिक्त-तन-वसन, अधीरा।
निरखि निकटवर्ती नर नारी,
सहज हास्य नहिं सके सँभारी—
हँसे भीम, विहँसी पाञ्चाली,
कुरुपति-हृदय शूल जनु साली।
लखत खिन्न मन धर्म भुआला,
आयेउ बंधु-समीप विहाला।
प्रकटि प्रीति पूछी कुशलाई,
दीन्हे अभिनव वसन मँगायी।
करि उपचार विविध विधि तोषा,
तजेउ न तबहुँ सुयोधन रोषा।
निरखत तबहिं सभा-आगारा,
आयेउ तेहि थल सुबल कुमारा।
लखि कुरुनाथ क्षुब्ध-मन-भगा,
गवनेउ सत्वर है निज संगा।

दोहा :— *गये दोउ उत गजपुरी, भरि उर द्वेष अथाह,*
इत द्रौपदि, भीमहि कहेउ, विमन धर्म नरनाह— ६८

"प्रकटी तुम सुवृत्ति नहिं आजू,
गवनेउ गेह क्षुब्ध कुरुराजू।"
कहेउ भीम सुनि सरल स्वभाऊ—
"उर मम तात! न रंच कुभाऊ।
हँसे समस्त दास, सब दासी,
शकुनिहु सकेउ रोकि नहिं हाँसी।
हँसब गिरत लखि मनुज स्वभाऊ,
गिरहि रंक अथवा कोउ राऊ।
होत न जो कुरुपति अति मानी,
आपहु हँसत चूक निज जानी।"
भीम-वचन सुनि विहँसे यदुपति,
कीन्हेउ गमन विहँसि गृह नरपति।
करि निज वदन बहुरि गम्भीरा,
भाषेउ पाञ्चालिहि यदुवीरा—
"कीन्हेउ तुमहु सुयोधन-दोषा,
गयेउ निहारत तुमहिं सरोषा!"

दोहा :— *विहँसि द्रुपद-तनया कहेउ, "का करिहै कुरुराय,*
जब लगि रक्षक मोर हरि, चक्रपाणि यदुराय?" ६९

करि पाण्डव-पुर बहु दिन वासा,
प्रकटी प्रभु प्रयाण-अभिलाषा।
जाय पृथा-पद वंदन कीन्हा,
भेंटि सुभद्रहिं धीरज दीन्हा।
कृष्णा-भवन मिलन पुनि धाये,
बिछुरत सखी नयन भरि आये।
राजपुरोहित धौम्य मुनीशा,
वंदन कीन्ह धरणि धरि शीशा।
पूजि देव द्विज हलधर साथा,
निकसे पुरी त्यागि यदुनाथा।

मागध स्यंदन नृपति मँगावा,
सादर साग्रज हरिहिं चढ़ावा।
विरह-अधीर, सनेह-विहाला,
चढ़ेउ आपु रथ धर्म भुआला।
लै सारथि ते स्वकर अभीपू,
हाँके अश्व आपु अवनीशू।

दोहा:—*लीन्ह धनंजय कर चँवर, गुनि आपन बड़ भाग,*
भीमादिक रथ साथ चलि, प्रकटेउ उर-अनुराग। ७०

जाय दूरि कछु, गहि कर यदुपति,
रथ ते सहठ उतारे नरपति।
भूप, भीम-पद परसि सोहाये,
पार्थहिं प्रीति पुलकि हिय लाये।
कीन्हेउ माद्री-सुवन प्रणामा,
मिले, सप्रेम- सबहिं बलरामा।
गवनेउ स्यंदन, रेणु उड़ानी,
प्रणयी पाण्डव-नयनन पानी।
हरिहु पाण्डु-पुत्रन लगि ललके,
जल-कण पंकज-लोचन झलके।
जब लगि पाण्डव दृग-पथ आये,
लखत साश्रु हरि दृष्टि लगाये।
विहँसे हलधर गिरा उचारी—
"स्वजन, पुरी-सुधि कान्ह विसारी।
परत पृथा-सुत अन न लखायी,
निवसहु द्वारावति समुहायी!"

दोहा:—*हँसि पोंछे दृग-कोर हरि, सुनि अग्रज मधु व्यंग,*
चढे दोउ आनर्त दिशि, वरनत विविध प्रसंग। ७१

उत द्वारावति शाल्व भुआला,
चढ़ेउ वाहिनी लै विकराला।

संग सबल कारूप-नरेशा,
दलेउ दुहुन आनर्त प्रदेशा।
शिविर असंख्य घेरि पुर डारे,
रुद्ध प्रवेश वीथि पथ सारे।
सैनिक, स्यंदन, वाजि अपारा,
बधिर दिशा गजराज-चिघारा।
उपपुर नासि कीन्ह सब निर्जन,
उजरि गये सुन्दर वन-उपवन।
पुर ऊपर पुनि रोपि विमाना,
बरसे प्रहरण शिला महाना।
आयुध विविध वृष्टि अति घोरा,
ढहे विशाल गेह चहुँ ओरा।
वज्रपात-भीषण विस्फोटा,
इत उत भग्न भयेउ दृढ़ कोटा।

दोहा :— *धूलि-धूम्र धरणी सकल, नभ दीप्तायुध ज्वाल,*
सर्वनाश शंकित पुरी, 'हरि! हरि!' रटति बिहाल। ७२

लखि सात्यकि, कृतवर्मा वीरा,
गद, प्रद्युम्न, साम्ब रण-धीरा,
उद्धव, चारुदेष्ण, अक्रूरा,
निकसे वश अष्ट-दश शूरा।
समर प्रवृत्त भयी दोउ वाहिनि,
व्याप्त प्रलय-घनघोर भीम ध्वनि।
विविधायुध संघट्ट विभीषण,
युद्धत पुनि जनु दैत्य विबुधगण।
साम्ब शत्रु-सेनप संहारा,
दंतवक्र रण हेतु प्रचारा।
उत उद्दम प्रद्युम्न करत रण,
भ्रमत समर जनु आपु जनार्दन।
नासी विपुल सैन्य चतुरंगा,
जर्जर शरन शाल्व-प्रत्यंगा।

सन्मुख समर मरण निज जाना,
गगन मार्ग चढ़ि यान उड़ाना।

दोहा :— *आवत कबहुँ दृष्टि पथ, कबहुँ अदृश्य विमान,*
कबहुँ रैवतक गिरि-शिखर, कबहुँ उदधि लहरान। ७३

विकल शत्रु-माया सब यदुजन,
तजेउ न पै हरि-सुत शर वर्षण।
जहँ लखात असुरेश-विमाना,
बरसत तकि पावस झरि बाणा।
इषु, क्षुर, अर्धचन्द्र शर प्रेरे,
स्वर्णपुङ्ख, मुसलौह घनेरे।
शिव-वर जदपि असेध्य विमाता,
विद्ध असुर-अँग, विह्वल प्राणा।
सचिव सुमान ताहि क्षण तासू,
मायिन माहिं ख्याति जग जासू,
रुक्मिणि-सुत पाछे खल जायी,
गदाघात कीन्हेउ महि-शायी।
मूर्च्छित गिरेउ वीर इत जेहि क्षण,
परी शंख-ध्वनि यदुजन-श्रवणन।
पाञ्चजन्य-रव दिशि दश व्यापा,
हर्षित स्वजन, शत्रु-दल काँपा।

दोहा :— *आवत ही हरि अग्रजहिं, पुर-रक्षार्थ पठाय,*
मथत समर-सागर बढ़े, रिपु-दल-बल विचलाय। ७४

हरि-आगमन क्षुब्ध असुरेशा,
बरसे तकि रथ शस्त्र अशेषा।
शिलाखण्ड अगणित लै डारे,
तरु उपारि नभ-मार्ग पँवारे।
लखि आवत निज दिशि अरि-प्रहरण,
नामे अन्तराल यदुनंदन।

गदा विशाल बहुरि लै हाथा,
ताकि असुर त्यागी यदुनाथा।
भयेउ तिरोहित शाल्व सुरारी,
गिरी सशब्द गदा महि भारी।
प्रकट असुर पुनि शर खर बरसत,
विकल बाजि, दारुक क्षत-विक्षत।
लखि विनसत निज सारथि, स्यदन,
सुमरी वैष्णव गदा जनार्दन।
कोमोदकी दिव्य कर लीन्ही,
लक्षित यान त्यागि प्रभु दीन्ही—

दोहा:—*नभ अमोघ गवनी गदा, लागी घोर विमान,*
गिरेउ यान वारिधि-सलिल, साँझ दिनेश समान। ७५

सोरठा:—*तजी न महि संग्राम, तरहुँ शाल्व माया-बली,*
मचेउ समर अविराम, दिवारात्रि द्वारावती।

इन्द्रप्रस्थ इत पाण्डव पासा,
आये विदुर विवर्ण, हताशा।
धर्मसुतहिं सन्देश सुनावा—
"द्यूत हेतु धृतराष्ट्र बोलावा।"
शत्रु-प्रपंच भीम पहिचानी,
कही बुझाय अग्रजहिं वाणी—
"नासे द्यूत सुखी गृह नाना,
यहि सम तात! अनर्थ न आना।
उपजत बाढ़त वैर अनंता,
द्यूत समीप जात नहिं संता।"
चिन्तित धर्मसुतहिं अवलोका,
पूछेउ विदुरहिं पार्थ सशोका—
"सुजन-शिरोमणि तुम यहि देशू,
लाये कस अस निंद्य सँदेशू?
सुनत प्रश्न अति. विदुर अधीरा,

दोहा :— *भाषेउ लज्जित धर्म-मति, "मोहिं धृतराष्ट्र नरेश,*
इन्द्रप्रस्थ पठयेउ सहठ, लै यह पाप सँदेश। ७६

परवश भयेउँ महूँ अघ-भागी,
छमहु तात! मोहिं जानि अभागी।
कुरुजन-अन्न रुधिर तनु माहीं,
भाखि न सकेउँ अन्त मुख 'नाहीं'।
तदपि तात! यह दृढ़ मत मोरा—
धरहु न पद तुम गजपुर ओरा।"
सुनत धर्मसुत भयेउ गँभीरा,
पूछेउ बहुरि प्रश्न मति धीरा—
"सहजहिं मोहिं पितृव्य बोलावा,
अथवा द्यूत-निदेश पठावा?"
विकल अनुज, नृप-आशय जाना,
विकल विदुर, असमंजस प्राणा।
समुझी सकल वंश-हित-हानी,
सकेउ न तनहुँ अनृत कहि वाणी—
"तात! सहज नहिं नृप-सन्देशा,
दीन्हेउ द्यूत हेतु आदेशा।"

दोहा :— *भाषेउ निश्चय युक्त स्वर, सुनतहिं धर्म नरेश—*
"पितु-अग्रज वे पूज्य मम, सकहुँ न टारि निदेश। ७७

जस तजि धर्म-अधर्म-विचारा,
नृप-निदेश तुम निज शिर धारा।
वद्ध महूँ तैसेहि नय-बंधन,
सपनेहु करि न सकहुँ उल्लंघन।
जतु-गृह नृप मोहिं दीन्ह पठायी,
गयेउँ सदर्प आँच नहिं आयी।
भयेउ अंत सब विधि कल्याणा,
करिहैं मंगल पुनि भगवाना।"
अस कहि कुल-निय, अनुजन साथा,
गजपुर गयेउ धर्म नरनाथा।

पृथा, सुभद्रा, द्रुपद-कुमारी,
अंतःपुर गवनीं सब नारी।
भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा,
सबहिं पाण्डु-सुत कीन्ह प्रणामा।
बहुरि जाय धृतराष्ट्र समीपा,
वंदे चरण भरत-कुल-दीपा।

दोहा:—*सकेउ न कहि कछु धर्म-सुत, उठेउ बोलि कुरुराज—*
"जुरी सभा सब द्यूत हित, जोहत पथ समाज।" ७८

गहि धृतराष्ट्र धर्मसुत-बाहीं,
लायेउ द्यूत-सभागृह माहीं।
राजत बाल-वृद्ध बहु कुरुजन,
सम्बंधी, सामन्त, सुहृद्गण।
उठे लखत सब कुन्ती-नंदन,
कीन्हेउ सुबल-सुवन अभिनंदन।
नियतासन पाण्डव बैठायी,
बोलेउ कुटिल शकुनि मुसकायी—
"भूरि विभव तुम भारत-नाथा,
समता मोरि न स्वामी साथा।
प्रतिनिधि मोहिं निज कीन्ह सुयोधन,
खेलत मानि नृपति-अनुशासन।
विजय पराजय कुरुजन सारी,
लेहैं मोरि शीश निज धारी।
यहहु कीन्ह नृप नियम-विधाना,
आयसु बिनु न खेल अवसाना।"

दोहा:—*अनुमोदेउ परिचालि शिर, अघ बद्ध सुत-पाश,*
मापेउ सविनय धर्म-सुत, "मोहिं न द्यूत अभ्यास। ७९

तदपि तात! आदेश तुम्हारा,
सेवक सदा शीश निज धारा।

पितु ते यदि प्रभु ! पिता हमारे,
राजपाट, धन, धाम तुम्हारे।
मोरि सुयोधन दोउ जय-हारी,
लाभ-हानि सब नाथ ! तुम्हारी।
ताते सब विहाय उर-ग्लानी,
खेलत प्रभु-निदेश सन्मानी।"
विदुर हताश सुनत उद्गारा,
भीष्म द्रोण उर भीति अपारा।
शत धृतराष्ट्र-सुवन मुसकाये,
कपट अक्ष कर शकुनि उठाये।
रत्न अलभ्य विनिर्मित माला,
लै गय राखेउ धर्म भुआला।
झलकेउ लोभ सुयोधन-नयनन,
फेंके पाँसा शकुनि अभय-मन।

दोहा.— *उमहेउ आनँद-ज्वार जनु, कौरव - पारावार,*
हार उठायेउ कर शकुनि, करि निज विजय पुकार। ८०

धरी धर्म नृप पुनि मणि-राशी,
जीतेउ शकुनि कपट-अभ्यासी।
हारे गज, रथ, वाजि नरेशा,
पल-पल बढ़ेउ द्यूत-आवेशा।
निरखि अनर्थ होत अति घोरा,
विदुर बद्ध-कर अन्ध निहोरा—
"तात ! द्यूत वेदस्मृति वर्जित,
सतत साधु-सत-जन निंदित।
धर्म-सुवन धन धाम गँवावा,
राज्य निखिल अब दाँव लगावा।
उचित न हरन अरिहु कर सर्वस,
करत अनर्थ नाथ ! मम सुत-वश।
सोहति 'अति' नहिं कवनेउ ठाऊँ,
रोकहु खेल, भये बहु दाऊँ।"

द्रोण पितामहु बहु समुझावा,
रहेउ मौन नृप सुवन-पढ़ावा।

दोहा :— *पाँसा फेंके पुनि शकुनि, हारे धर्म-भुआल,*
पुलकित कुरुपति, बंधुजन, नाचत हर्ष-विहाल। ८१

लखत नृपहिं कर अक्ष उछारी,
व्यंग गिरा हँसि शकुनि उचारी—
"रहे न तुम महिपति, नरनाहा,
सकत लगाय दाँव अब काहा ?"
सुनि जनु ग्रहगण-ग्रस्त भुआला,
हेरेउ अनुजन दिशि तत्काला।
व्याकुल भीष्म, द्रोण मन माखा,
दाँव भूप सहदेवहिं राखा।
हारि बहुरि नृप नकुल लगाये,
पलहिं माहिं दोउ बंधु गँवाये।"
वक्र वचन लखि शकुनी भाखे—
"दाँव समोद माद्रि-सुत राखे।
अर्जुन-भीम सहोदर भ्राता,
सकुचत धरत तिनहिं तुम ताता !"
सुनि सरोप नृप वचन उचारा—
"नेहहु तुमहिं न सह्य हमारा।

दोहा :— *मोरे अनुज समान सब, घाटि बाढ़ि कोउ नाहिं,*
अस कहि अर्जुन दाँव धरि, खोयेउ निमिषहि माहिं।" ८२

भीमहिं पुनि अवनीश गँवावा,
अंत आपु धरि दाँव लगावा।
परे बहुरि विपरीतहिं पाँसा,
प्रकटेउ कुरुजन उर उल्लासा।
लखेउ न तिन दिशि धर्म महीपा,
गयेउ शान्त पितृव्य समीपा।

गहि पद सविनय वचन उचारा—
"निज सर्वस्व तात ! मैं हारा।
रहेउ न शेष स्वत्व अब पासा,
देहु निदेश करहि सोइ दासा।"
सुनि कटु वचन सुबल-सुत भाखा—
"अबहूँ इन दुराय कछु राखा।
गये जदपि सब अनुजन हारी,
बची अबहुँ पाञ्चाल-कुमारी।"
सुनि कह धर्मपुत्र कर जोरी—
"छमहु ! तात मम विस्मृति, खोरी।"

दोहा :— *मौन अंध लखि धर्म-सुत, धरी दाँव कुल-बाल,*
विकल पितामह, द्रोण, कृप, बदन स्वेदकण-जाल। ८३

बिलखत विदुर कहेउ नृप पाहीं—
"अबहूँ तात ! भाखहु मुख 'नाहीं'।
मौन अखण्ड अंध मुनि साधी,
निर्विकल्प जनु लागि समाधी।
बही विदुर-नयनन जल-धारा,
कुपित भीष्म पुनि पुनि धिक्कारा।
फेंके सुबल-सुवन जब पाँसा,
सकेउ न रोकि अंध उल्लासा।
पुनि पुनि पूछत सुतन कुचाली,
"गये जीति का हम पाञ्चाली !"
जयी शकुनि सुनि वचन उचारे,
"द्रुपद-कुमारि पाण्डु-सुत हारे।"
अट्टहास सुनि कीन्ह सुयोधन,
बोलेउ वचन विलोकि विदुर तन—
"मम निदेश अन्तःपुर धावहु,
सभा मध्य पाञ्चाली लावहु !"

दोहा :— *मर्यादा अतिक्रान्त राउ, भाषे वचन अशंक,*
सुनि स्त्राश्रु पाण्डव-नयन, व्याप्त सभा आतंक। ८४

गिरा असाधु विदुर अवमानी,
सारथि बोलि कही खल वाणी—
"पाण्डव-भीति विदुर-उर भारी,
आज्ञा पालत डरत हमारी।
वश मम ये सब पाण्डव आजू,
करि न सकत कछु काहु अकाजू।
लावहु सभा द्रौपदी दासी,
अति प्रिय मोहिं तासु मधु हाँसी!"
गवनत सारथि विदुर निहारा,
चहे वदन दारुण उद्गारा—
"भयी प्रतीति आजु मन मोरे,
नाचत काल शीश शठ! तोरे।
दत्त-चित्त परधन, परदारा,
पामर तोहि सम को ससारा।
उपजे निखिल भरत-कुल-घाती,
गुनि भविष्य फाटति यह छाती।

दोहा :— *निष्फल कबहुँ न होत खल, कुल-कान्ता अपमान,*
उमहत तिनके अश्रु सँग, प्रलय-पयोधि महान। ८५

सोरठा:—*छेड़त हठि मृगराज, क्षुद्र मृगन सम शक्तितुव,*
गिरन चहति शिर गाज, शासत तोहि- न वृद्धजन।"

सुनत सुयोधन क्षुब्ध अशेषा,
कीन्ह ताहि क्षण सूत प्रवेशा।
आतुर तेहि सब सभा निहारी,
सचिन्त सारथि गिरा उचारी—
"आयी रानि सभा गृह नाहीं,
पूछेउ प्रश्न धर्म नृप पाहीं—
'हारे प्रथम मोहिं या आपू',
पुनि पुनि पूछहिं करहिं विलापू।"
सुनतहि प्रश्न धर्म नृप काँपा,
कलकल विपुल सभा गृह व्यापा।

उत कुरुपति अमर्ष-उद्दीपित,
भाषे भीषण वचन पाप-चित—
"लावहु सभा नारि बरजोरी।"
सुनि बोलेउ सारथि कर जोरी—
"रजस्वला पाञ्चाल-कुमारी,
लाये सभा नाथ! अघ भारी।"

दोहा:— *कहेउ कुपित-कुरुपति सुनत, "खल! तोरेहु उर भीति,*
दासी अब यह द्रौपदी, कहाँ धर्म! कहँ नीति!" ८६

भाषेउ बहुरि बोलि दुश्शासन—
"करहु तात! उर-शल्य प्रमार्जन।
गवनहु मम अनुशासन पाली,
लावहु कर्षि केश पाञ्चाली।"
उठेउ सुनत शठ पाप निवासू,
गयेउ नियति-मोहित रनिवासू।
लखी म्लान पाञ्चाली द्वारे,
कुन्तल मुक्त, वसन इक धारे।
स्रावित व्यथा बाष्प शशि आनन,
भयी सभीत निरखि दुश्शासन।
चहेउ गहन कर खल विकराला,
भागी गृह दिशि बाल विहाला।
सकी न करि रनिवास प्रवेशा,
गहे भपटि दुश्शासन केशा।
घर्षत कच कुलपांसु, कुचाली,
चलेउ सभा दिशि लै पाञ्चाली।

दोहा:— *विषम-विषाद विवर्ण मुख, दृग दुर्दिन-जल धार,*
शरद पूर्णिमा शशि-कला, मनहुँ ग्रस्त नीहार। ८७

पग पग द्रुपद-सुता बिलखानी,
"करत काह पामर अज्ञानी।

लसत न रजस्वला मैं नारी,
परस निषिद्ध, अग इक सारी।
जाहुँ आजु जो गुरुजन आगे,
लागहि पातक सबहि अभागे।"
व्यंग वचन दुश्शासन भाखा—
"धरत दाँव कस ध्यान न राखा?
द्यूत-विजित दासी तैं आजू,
दासिन काह लाज ते काजू?"
यहि विधि कहत कुवाच्य अपारा,
गहे केश धृतराष्ट्र-कुमारा,
त्यक्त मान मर्यादा सारी,
लायेउ कर्षि सभा-गृह नारी।
कीन्हेउ गुरुजन हाहाकारा,
अवनत शीश सभा-गृह सारा।

दोहा:— *लज्जा-विधुरित द्रौपदी, कुन्तल वदन विलोल,*
कण्ठ-बाष्प-कुण्ठित रुदन, तारक कातर लोल—८८

"हा! हा! हठी! कुलाधम! पापी!
काहे लाज हरत सन्तापी?
गुरुजन सकल सभा-गृह माहीं,
करत सहाय धाय कस नाहीं?
शोक विकल मैं भूली बामा,
प्रविशत सभा न कीन्ह प्रणामा।
छमहिं सो गुरुजन अब मम खोरी,
करहुँ प्रणाम सबहि कर जोरी।
पूछहुँ प्रश्न बहुरि मैं सोई,
उत्तर देहु धैर्य मोहिं होई।
हारे प्रथम मोहिं जो स्वामी,
मैं दासी कुरुपति-अनुगामी।
पै जो पहिलेहि आपुहिं हारा,
नष्ट मोहिं हारन अधिकारा।

भयी कवन विधि मैं पर-चेरी ?
करत न न्याय रहे का हेरी ?

दोहा :— *भीष्म, विदुर, कृप, द्रोण, नृप, सबहिं धर्म-अभिमान ,*
बैठे कस अब मौन गहि, कहाँ शास्त्र-श्रुति-ज्ञान ?" ८६

व्याकुल भीष्म, न शीश उठावा,
मोचत दृग जल वचन सुनावा—
"अघ असंख्य देखेउँ जग माहीं,
यहि ते अधिक दीख अघ नाहीं।
व्यर्थ मोहिं कस ईश जियावा,
वधू-मान मम लखत नसावा।
नष्ट आजु मम मति-गति, ज्ञाना,
उत्तर काह देहुँ नहिं जाना।
मति धृतराष्ट्र ईश हरि लीन्ही,
भद्रे ! तिनहि दशा यह कीन्ही।
दीन्हेउ द्यूत हेतु आदेशा,
सके टारि नहिं धर्म नरेशा।
आपुहिं प्रथम गये नृप हारी,
धरेउ दाँव तोहिं पुत्रि ! पछारी।
भयेउ आपु जब भूपति दासा,
रहेउ न स्वल्प स्वत्व तेहि पासा।

दोहा :— *पति-पत्नी सबध पै, अविनाशी सब काल ,*
सकेउँ न करि निर्णय उचित, ताते मौन विहाल। ६०

सकट तोहि पै जदपि अपारा,
तबहुँ पुत्रि ! तोहि धर्म पियारा।
ताते धर्म-प्रश्न तैं कीन्हा,
मैं हत-बुद्धि पथ नहिं चीन्हा।
धर्म-निष्ठ यहि कुरुकुल माहीं,
धर्म नरेश सदृश कोउ नाहीं।

इनके कहे चलत कल्याणी !
होइहँ कबहुँ तोरि नहिं हानी !"
सुनि त्रिलपति तिय पतिहिं निहारा,
लज्जित भूप, न वचन उचारा।
क्रुद्ध मदान्ध अधीर सुयोधन,
भाषे अधम वचन पुनि भीषण—
"कहहिं युधिष्ठिर सभा पुकारी,
अब नहिं द्रुपद-सुता मम नारी।
पाञ्चालिहु सब कुरुजन आगे,
कहहि न ये मम स्वामि अभागे।

दोहा :— *करिहौं तौ मैं द्रौपदिहि, निमिष माहि स्वाधीन,*
नाहित लखिहै यह सभा, कृष्णा वसन-विहीन। ६१

दीन आजु ये पाण्डु-कुमारा,
बैठे मनहुँ धर्म-अवतारा।
वैसेहि दीन बदन यह नारी,
करुणहि मनहुँ आपु तनुधारी।
इन्द्रप्रस्थ मोहिं गृह निज पायी,
कीन्हि सबन मिलि मोरि हँसायी।
आजु शील-शालिनि यह बाला,
कुल-तिय-शील न धहि दिन पाला।
गिरत मोहिं लखि कीन्ही हाँसी,
विधि-वश आजु भयी मम दासी।
एकहि विधि दासी निर्वाहा,
सतत करब स्वामि-मन-चाहा।
देहुँ निदेश याहि क्षण यहि थल—
बसहि वसन तजि मम जघनस्थल !"
अस कहि अट्टहास करि भारी,
जघन जघन्य मदान्ध उघारी।

दोहा :— *कहे गरजि अनुजहि बहुरि, वचन अधम, अघ-मूल—*
भरी सभा बरबस हरहु, पाण्डव-नारि दुकूल !" ६२

चेष्टा कलुषित लखी वृकोदर,
भभकी तन रोषाग्नि भयंकर।
जिमि दावाग्नि जरत द्रुम भारी,
फूटति छिद्रन लपट करारी,
प्रकटी रोम रोम तिमि ज्वाला,
विकृत आकृति, भृकुटि कराला।
चहत मनहुँ कुरुनाथहिं लीलन,
उत्थित हाथ कीन्ह प्रण भीषण—
"कुत्सित इंगित करि अविचारी,
लखि कुल-तिय खल जाँघ उघारी।
भंजहु जो न सोइ उरु तोरा,
नरक निवास लहहुँ चिर घोरा।
होत न बद्ध धर्म-नय-बंधन,
करत अवहिं यहि थल उरु भंजन।
बोलेउ सुनि कुरुराज सहासा—
"तजु दुर्बुद्धि ! मुक्ति-अभिलाषा।

दोहा :— *मरणावधि शठ ! कण्ठ तव, परेउ दासता-पाश,*
प्रलपि व्यर्थ कत मूढ़ ! निज, करवावत उपहास।" ६३

अस कहि कीन्ह बहुरि अनुशासन,
गहेउ दुकूल धाय दुश्शासन।
अम्बर स्रस्त हठात सँभारी,
लखेउ चतुर्दिक 'पाहि !' पुकारी—
"वंश विमल मोहिं विधि उपजावा,
विश्रुत विश्व पितुहु मैं पावा।
आयी ब्याहि भरत-कुल माहीं,
सुयश जासु सुनि सुरहु सिहाहीं।
पतिहु पाकशासन सम पाये,
चक्रवर्ति जग जीति कहाये।
करत न आजु कोउ संरक्षण !
बैठे सकल अचल नत-आनन !

कहाँ वृकोदर-दर्प असीवा ?
कहाँ आजु अर्जुन-गाण्डीवा ?
कहाँ विदुर नय-नीति-बखाना ?
कहाँ पितामह-शौर्य महाना ?

दोहा :— *अछत पाँच पति सब स्वजन, जाति हाय ! मम लाज,*
विरमु ! विरमु ! पापिष्ठ पै, बचे अबहुँ यदुराज !" ६४

कर्षी पुनि दुश्शासन सारी,
"कृष्ण ! कृष्ण !" द्रौपदी -पुकारी—
दीनबन्धु ! जगदीश्वर ! स्वामी !
गोपी-वल्लभ ! जन-अनुगामी !
माधव ! मधुसूदन ! दुखहारी !
सकत को तुम बिनु अब उद्धारी ?
रमानाथ ! ब्रजनाथ ! उबारहु !
बूडति नाव नाथ ! अब तारहु !"
कर्षत इत दुश्शासन सारी,
लरत शाल्व सँग उत असुरारी।
बर्धित संगर-रोष अपारा,
दुहुँ दिशि दारुण शस्त्र-प्रहारा।
महाशक्ति इक असुर उठायी,
भीषण हरि दिशि ताकि चलायी।
मानहुँ उल्का-पिण्ड विशाला,
धायी व्योम-मार्ग विकराला।

दोहा :— *रोकहि जब लगि ताहि हरि, परी भनक यह कान,*
"छूटत अम्बर देह ते, हरि ! हरि ! हरि ! भगवान !!" ९५

बिसरेउ समर, विकल भगवाना,
गजपुर हृदय दीन्ह धरि ध्याना।
लागि बाहुतल शक्ति महाना,
गिरत शार्ङ्ग धनु हरि नहिं जाना !

चेष्टा कलुषित लखी वृकोदर,
भभकी तन रोषाग्नि भयंकर।
जिमि दावाग्नि जरत द्रुम भारी,
फूटति छिद्रन लपट करारी,
प्रकटी रोम रोम तिमि ज्वाला,
विकृत आकृति, भृकुटि कराला।
चहत मनहुँ कुरुनाथहिं लीलन,
उत्थित हाथ कीन्ह प्रण भीषण—
"कुत्सित इंगित करि अविचारी,
लखि कुल-तिय खल जाँघ उघारी।
भंजहु जो न सोइ उरु तोरा,
नरक निवास लहहुँ चिर घोरा।
होत न बद्ध धर्म-नय-बंधन,
करत अबहिं यहि थल उरु भंजन।
बोलेउ सुनि कुरुराज सहासा—
"तजु दुर्बुद्धि ! मुक्ति-अभिलाषा।

दोहा:— *मरणावधि शठ ! कण्ठ तव, परेउ दासता-पाश,*
प्रलपि व्यर्थ कत मूढ़ ! निज, करवावत उपहास।" ६३

अस कहि कीन्ह बहुरि अनुशासन,
गहेउ दुकूल धाय दुश्शासन।
अम्बर स्रस्त हठात सँभारी,
लखेउ चतुर्दिक 'पाहि !' पुकारी—
"वंश विमल मोहिं विधि उपजावा,
विश्रुत विश्व पितुहु मैं पावा।
आयी ब्याहि भरत-कुल माहीं,
सुयश जासु सुनि सुरहु सिहाहीं।
पतिहु पाकशासन सम पाये,
चक्रवर्ति जग जीति कहाये।
करत न आजु कोउ संरक्षण!
बैठे सकल अचल नत-आनन!

दोहा :—"खल-भुज-भंजन-रक्त बिनु, बँधिहौं नहि ये बार,
जेहि पति सखी आजु मम, सोइ प्रण-राखनहार!" ६७

इत कृष्णा प्रण कीन्ह कठोरा,
भयेउ भूप-गृह उत रव घोरा।
अग्निहोत्र हित निर्मित शाला,
प्रविशेउ सहसा धाय शृगाला।
करत अशुभ स्वर अति भयकारी,
पादप उठेउ उलूक पुकारी।
औरहु विहग अमंगल मूला,
बोले विपुल शब्द प्रतिकूला।
कम्पित सुनत अंध नृप-गाता,
चहत करन अब काह विधाता!
असन-चमत्कृति सुनि आतंका,
उपजी उर निज कुल-क्षय-शंका।
बोलेउ धरि सब सुत-शिर खोरी—
"कहँ द्रौपदी वधू प्रिय मोरी?"
कृष्णा निकट बोलि सन्मानी,
प्रकटि सनेह कही नृप वाणी—

दोहा :—"धर्मरता मम वधुन महँ, तोहि ते बढ़ि नहि आन,
पुनि प्रसन्न मोहि माँगु अब, मन-वाञ्छित वरदान।" ६८

सचकित सुनत गिरा नृप केरी,
बोली वाम पतिन तन हेरी—
"साँचहु जो प्रसन्न तुम ताता!
पुनि जो मम अनुकूल विधाता,
तौ ये धर्म-तनय दुख-दीना,
तजि दासत्व होहिं स्वाधीना।"
"एवमस्तु"—धृतराष्ट्र सुनावा,
"माँगु पुत्रि! औरहु मन भावा।"
द्रुपद-सुता सुनि गिरा उचारी—

कीन्ह सुरन नभ हाहाकारा,
भयेउ सभा महि हृत जयकारा।
कर्षत हठि दुश्शासन चीरा,
बढ़ेउ बसन लखि चकित अधीरा,
कर्षत जस जस रिस करि भारी,
तस तस बढ़ति द्रौपदी-सारी!
'गोविंद! केशव!!' करति पुकारा,
बाढ़ेउ बसन, लाग अंबारा।
आनँद अश्रु विदुर दृग छये,
पुलकित भीष्म, द्रोण हर्षाये।
शिथिल बाहु शठ कर्षत हारा,
बाढ़ेउ बसन, न वार न पारा।

दोहा — *सभा माहि उमड़ेउ मनहुँ, अम्बर पारावार,*
बूड़ी नख शिख द्रौपदी, "हरि! हरि!"—भरी पुकार। ६६

त्यागि बसन दुश्शासन जायी,
बसेउ निजासन शीश नवायी।
विस्मय दुर्योधन उर व्यापा,
क्रुद्ध वृकोदर, अँग अँग काँपा।
फुरत ओष्ठ, लोचन रतनारे,
भाषे वचन ज्वलत अँगारे—
"पुनि मैं करत सुनाय सबहिं प्रण,
करिहौं युद्ध दुश्शासन भंजन।
उर विदारि, हरि पामर प्राणा,
करहुँ न उष्ण रक्त जो पाना,
होय निखिल मम सुकृत विनाशा।
पावहुँ पितृ लोक नहिं बासा।"
प्रकटि बसन निधि ते तेहि काला,
बरद्यो मनहुँ आपु विकराला,
द्रुपद कुमारि केश छिटकायी,
कीन्ह महाप्रण सबहिं सुनायी—

यश-बलाबल मैं जग जाना,
मित्र-अमित्र सबहिं पहिचाना।
तुम धर्मज्ञ, पार्थ मतिमाना,
योद्धा भीम समान न आना।
बंधु-प्रेम, श्रद्धा, सद्भाषा,
माद्री-सुतन माहिं मैं पाषा।
मम दिशि तुम सब बंधु विलोकी,
छमि सुत मम मोहिं करहु विशोकी।
वृद्ध, अंध, जर्जर तनु सारा,
तुम कुल-भूषण होहु सहारा।"
द्रवित धर्म-सुत दैन्य निहारी,
देत तोष बरसे दृग वारी।
करि पुनि गुरु-जन-चरण प्रणामा,
गवने पाण्डु-सुवन यश-धामा।

दोहा:- *अनुज द्रौपदी साथ इत, तजी सभा नरनाथ,*
परुष गिरा धृतराष्ट्र सन, भाषी उत कुरुनाथ— १०१

"सुत-हिय-घातक पितु जग माहीं,
त्रिभुवन तुम समान कोउ नाहीं।
भवन बोलाय, छीनि अरि सर्वस,
दै दासत्व कीन्ह हम निज वश।
कुवचन कहे तिनहिं हम नाना,
कीन्ह घोर नारी-अपमाना।
'छमिहैं पाण्डव'—जासु विचारा,
तेहि सम मूढ़ न यहि संसारा।
करि आहत त्यागत जो व्याला,
नाचत तेहि शिर प्रति पल काला।
जानहु तुम मोहिं मृतक समाना,
पितु-करतूति · सुवन-अवसाना।"
कीन्ह सुयोधन करुण विलापा,
लखि पुनि मोह अंध-मन व्यापा।

रथारूढ़, आयुध कर-धारे,
होहिं बहुरि स्वाधीन सुसारे।"
"औरहु माँगु" कहेउ जब राऊ,
बोली विहँसि, न जात स्वभाऊ—
"मोहिं न तात! माँगन-अभ्यासा,
माँगेउँ रहे स्वामि जब दासा।

दोहा :— *अब सायुध सुरराज सम, स्वामी मम स्वाधीन,*
सकत मोहि दे जीति जग, अब न द्रौपदी दीन!" ६६

इङ्गित वचन भीम उर लागे,
सोवत मनहुँ वृकोदर जागे।
सुमिरि पलहिं महँ निज प्रण घोरा,
लखेउ सरोप सुयोधन ओरा—
"गयेउ मोर दासत्व नसायी,
सँभरु मदान्ध! मृत्यु चलि आयी!"
धाये जनु उत्थित-फण व्याला,
दिग्दीर्णित गर्जन विकराला।
सहसा धाय धर्म नरनाथा,
कहि अनुचित वरजेउ गहि हाथा।
सुनेउ भीम-स्वर अंध भुआला,
सुमिरि-सुमिरि प्रण प्राण विहाला।
सत्य-असत्य विवेक बिसारे,
कपट वचन अवनीश उचारे—
"धर्म-सुवन तुम धर्मस्वरूपा,
धैर्य तुम्हार तुमहिं अनुरूपा।

दोहा :— *लौटारत धन राज्य मैं, देत तुमहि आसीस,*
बढ़हिं नित्य ऐश्वर्य यश, क्षेम-करहि जगदीश। १००

तुमहिं द्यूत-हित गजपुर प्रेरी,
लीन्हि परीक्षा मैं सब केरी।

वंश-बलायंल मैं जय जाना,
मित्र-अमित्र सबहिं पहिचाना।
तुम धर्मज्ञ, पार्थ मतिमाना,
योद्धा भीम समान न आना।
बंधु-प्रेम, श्रद्धा, सद्भाषा,
माद्री-सुतन माहिं मैं पाषा।
मम दिशि तुम सब बंधु बिलोकी,
छमि सुत मम मोहिं करहु विशोकी।
वृद्ध, अंध, जर्जर तनु सारा,
तुम कुल-भूषण होहु सहारा।"
द्रवित धर्म-सुत दैन्य निहारी,
देत तोप बरसे दृग वारी।
करि पुनि गुरु-जन-चरण प्रणामा,
गवने पाण्डु-सुवन यश-धामा।

दोहाः- *अनुज द्रौपदी साथ इत, तजी सभा नरनाथ,*
परुष गिरा धृतराष्ट्र सन, भाषी उत कुरुनाथ— १०१

"सुत-हिय-घातक पितु जग माहीं,
त्रिभुवन तुम समान कोउ नाहीं।
भवन बोलाय, छीनि अरि सर्बस,
दै दासत्व कीन्ह हम निज वश।
कुवचन कहे तिनहिं हम नाना,
कीन्ह घोर नारी-अपमाना।
'छमिहैं पाण्डव'—जासु विचारा,
तेहि सम मूढ़ न यहि संसारा।
करि आहत त्यागत जो व्याला,
नाचत तेहि शिर प्रति पल काला।
जानहु तुम मोहिं मृतक समाना,
पितु-करतूति सुवन-अवसाना।"
कीन्ह सुयोधन करुण विलाप,
लखि पुनि मोह अंध-मन व्यापा।

कहत—"चूक कीन्हीं मैं भारी,
कहहु कवन विधि जाय सँभारी!"

दोहा:—*शकुनि कुमति छण मौन गहि बोलेउ "एकहि भाँत,*
द्वादश वत्सर पाण्डु-सुत, जाय करहिं वनवास। १०२

वत्सर एक बहुरि अज्ञाता,
निवसहिं कहुँ दुराय सब भ्राता।
प्रकटहिं जो तेहि वत्सर माहीं,
द्वादश वर्ष बहुरि वन जाहीं।
बोलि सभागृह धर्म नरेशा,
बहुरि द्यूत-हित देहु निदेशा।"
सुनि कुमंत्र गुरु-जन मन क्रोधा,
अंध सदन तजि बहुरि प्रबोधा।
जानि असाध्य गमन गृह कीन्हा,
नृप इत बोलि धर्म-सुत लीन्हा।
प्रविशि युधिष्ठिर पद शिर नावा,
"कस पुनि दासहिं तात बोलावा?"
"खेलहु बहुरि"—अवनिपति भाखा,
कहेउ सुबल-सुत शेष जो राखा।
वन, अज्ञात-वास प्रस्ताऊ,
कहेउ शकुनि, अनुमोदेउ राऊ।

दोहा:—*भाषेउ भीम सरोष सुनि, 'काहे यह परिहास?*
कहहु प्रकट तजि छल-कपट, देन चहत वनवास!" १०३

सुनि अर्जुन भीमहिं समुझावा—
"कस तुम तात! धैर्य बिसरावा।
अनुचर हम सब अग्रज केरे,
वे आचरत धर्म-नय-प्रेरे।
धारे धैर्य अजहुँ मन माहीं,
होइहै तात! अमंगल नाहीं।"

उत आतुर कुरुपतिहिं निहारी,
धृष्ट शकुनि पुनि गिरा उचारी—
"नृपति-निदेश मान्य जो नाहीं,
कहहु हमहु निज निज गृह जाहीं।"
"जानत तुम सब"—कहेउ भुआला,
"मोहिं निदेश मान्य सब काला।"
सुनत शकुनि पुनि अक्ष पँवारे,
वैसेहि बहुरि युधिष्ठिर हारे।
शान्ति अखण्ड सभा-गृह छायी,
हर्ष-विषाद प्रकटि नहिं जायी।

दोहा:—बोलेउ दुश्शासन विहँसि, "हम कस मौन उदास ?
भारत-महि कुरुजन लही, पाण्डु-सुवन वनवास!" १०४

अस कहि वल्कल-वसन मँगायी,
राखे पाण्डु-सुवन ढिग लायी।
लखतहि धर्मराज स्वीकारे,
अंग-विभूषण-वसन उतारे।
धृत सानुज वल्कल-मृगछाला,
परसे नृप-पद धर्म भुआला।
द्रुपद-सुता लखि गवनति संगा,
कीन्ह नीच दुश्शासन व्यंगा—
"मूढ़न सौंपि सुता सुकुमारी,
कीन्हि अनीति द्रुपद नृप भारी।
ये पाण्डव पुरुषत्व-विहीना,
क्षात्र-धर्म-परित्यक्त, मलीना।
हृष्ट-पुष्ट सब जदपि लखाहीं,
धर्म-मृगेश, सत्व तनु नाहीं!
पति वन इन सँग, करि सेवकाई,
देहैं कृष्णा जन्म गँवायी।

दोहा:—*धर्माश्रिता विप-वृक्ष यह, मधुर फलित पाञ्चालि,
सकति भोगि हम सँग विभव, पतिभाव प्रतिपालि!"* १०५

दोहा :—*नयन तरेरे भाम सुनि, "त्यागु नीच ! उपहास,*
घूत-विटप फल मृत्यु फल, करिहै कुरुकुल-नाश ! १०७

कुकृति, कुवाच्य सकल खल तोरे,
रहिहैं अमिट हृदय-पट मोर।
बिनु तव छवज किये प्रक्षालन,
सम मम लागि गेह, गिरि, कानन।"
अस कहि भीम बढ़े जब आगे,
हँसत अध-सुत पाछे लागे।
अनुहरि सकल वृकोदर-पद-गति,
नाचत, गावत, बिहँसत दुर्मति।
सुनि कलकल अश्लील धनंजय,
कही गँभीर गिरा कृत-निश्चय—
"विमल भरत-कुल जन्म तुम्हारा,
तजब न उचित सुजन-व्यवहारा।
अचिर तुम्हार हास-परिहासा,
फिरिहैं हमहु, करहु विश्वासा।
वहाँ तब न राज्य लौटारो,
बचिहैं कुरु-कुल केवल नारी।

दोहा :—*होय हिमाचल बरु सचल, निर्जल पारावार,*
कृष्ण-कृपा ते प्रण विफल,होइहै नाहि हमार!" १०८

जानि पाण्डु-सुत गवनत कानन,
धाये मिलन विकल सब गुरुजन।
बदन विवर्ण, हृदय दुख दाहा,
कण्ठ रुद्ध, दृग वारि प्रवाहा।
लखि वदत पद धरि महि सीसा,
दीन्हि मनहि मन सबन असीसा—
कहेउ विदुर—"विनवहुँ मैं ताता!
कानन योग्य न कुन्ती माता।
पालहु पैतिक वत्स! सनेहू,
मातहि राखि जाहु मम गेहू।" .

कहेउ धर्मसुत—"कुरुकुल माहीं,
तुम सम तात ! हितू मम नाहीं।
सहज कथन आदेश तुम्हारा,
दीन वचन कस आजु उचारा ?"
विदुरहिं लै पुनि नृप निज संगा,
कहेउ जाय सब पृथहिं प्रसंगा।

दोहा:—*आर्तनाद व्यापेउ भवन, कुन्ती जनु निष्प्राण,*
निकसत नैनन नीर, मुख, 'कृष्ण ! कृष्ण ! भगवान !'" १०८

सोरठा:—*विदुरहिं सौंपि विहाल, पृथा, सुभद्रा, कुल सकल,*
काम्यक वन तत्काल, गवनेउ नृप सानुज, सतिय।

उत द्वारावति शाल्व सुरारी,
गरजेउ गिरत शार्ङ्ग धनु भारी—
"आपुहिं मन अजेय तैं मानी,
भयेउ कृष्ण ! दिन प्रति अभिमानी।
करि छल कंस, काल सहारे,
वैसेहि चैद्य, मगधपति मारे।
आजुहि मिलेउ समर समुहायी,
बचत अबहि जो भागि न जायी !"
करत प्रलाप विपुल यहि भाँती,
कीन्हेउ केहरि-नाद अराती।
करत अनवरत शर बौछारा,
प्रकटेउ पौरुष असुर अपारा।
लखि बोलेउ दारुक अनुरागी—
'करत विलम्ब नाथ केहि लागी ?"
सुनि हरि धरेउ दिव्य धनु बाणा,
काटेउ सत्वर अरि-शिरत्राणा।

दोहा:—*शोभित हरि उदयाद्रि धनु, पक्ष हाथ जस लीन्ह,*
सहस-रश्मि सम शर निज, त्यागि असुर तकि दीन्ह। १०९

मस्तक छिन्न किरीट-अलङ्कृत,
गिरेउ शरीर मही जनु महिभृत।
पुनि कारूष-पतिहिं प्रभु मारा,
अनुज विदूरथ तासु सँहारा।
असुर-सैन्य जनु जय जल राशी,
मथि यदुवंशिन सकल बिनासी।
जित-अराति प्रविशे पुर माहीं,
शोभा पूर्व लखी कहुँ नाहीं।
भग्न भवन, उजरे उद्याना,
निर्जन हाट-बाट, पथ नाना।
शाल्व-विमान पुरी सब नासी,
आश्रय विरहित नगर-निवासी।
गवने प्रति गृह कृपा-निकेतू,
दीन्ह धान्य-धन धैर्य समेतू।
आरंभेउ जस पुर-निर्माणा,
पाण्डव वृत्त लहेउ भगवाना।

दोहा - दूतन-मुख वनवास सुनि, छण नहिं कीन्ह विलम्ब,
पाण्डु-पुत्रन भेंटन चले, पाण्डु-सुवन-अवलम्ब। ११०

दिवा-रात्रि प्रभु करत प्रवासू,
पहुँचे घन जहँ पाण्डव-वासू।
क्रीड़त इत उत धावत मृगगण,
मंजुल खग-रव-मुखरित कानन।
होम-धूम तरु-शाखन छावा,
विपिन प्रशान्त श्याम-मन भावा।
मुनि मण्डली मध्य यदुराजा,
लखेउ बहोरि युधिष्ठिर राजा।
शोभित अनुज चतुर्दिक चारी,
फल धर्मादि मनहुँ तनु धारी।
द्रुपद-सुता जनु भक्ति सोहायी,
शास्त्र चिन्तवन श्रुति-ध्वनि छायी।

वल्कल वसन, अंग मृगछाला,
सतनु सुकृत जनु धर्म मुआला।
रथ-घर्घर सुनतहि पहिचाना,
उठेउ कहत—"आये भगवाना।

दोहा :— उठे मुनिहु सुनतहि वचन, विह्वल परमानंद,
मथत सिन्धु सहसा लहेउ, जनु अमृत सुरवृन्द। ११३

भेंटि पाण्डु-सुत मुनि-पद परसे,
आशिष शब्द चहूँ दिशि बरसे।
मानि सफल आजीवन तप-श्रम,
गवने मुनिजन निज निज आश्रम।
सरि-जल विमल कीन्ह हरि मज्जन,
सुखासीन पुनि लहि दर्भासन।
दिये वृकोदर वन-फल आनी,
लखि पाञ्चाल सुता बिलखानी।
'तुम सर्वस्व हमहिं प्रभु! दीन्हा,
रंकन भारत-अधिपति कीन्हा।
हम करि आजु कुटी पहुनाई,
रहे वन्य फल तुमहिं खवायी।
रचि जिमि सुन्दर सुमनन-माला,
पहिरावत गज-गर गजपाला,
पै चापल्य-दोष वश वारण,
भंजत स्वकर, करत नहिं धारण,

दोहा :— प्रभु-प्रदत्त साम्राज्य तिमि, धर्मराज महराज,
कीन्ह तिरस्कृत, राज्य सँग, गयी भरतकुल-लाज। ११२
सकत तुमहु करि नाथ! का, लिखित ललाट जो क्लेश,
भ्रमत अकेन्न वृषभ-गति, यदपि सखा धनेश।" ११३

विकल प्रबोधी प्रभु पाञ्चाली—
"अइहैं पुनि दिन वैभवशाली।"

सुनि उमहेउ जनु उर दुख-सागर,
बहेउ बाष्प-जल नयनन झरझर—
"केहि विधि धैर्य धरहु यदुरायी!
दशा-विपर्यय सहि नहिं जायी!
सुधा-श्वेत शय्या निशि सोयी,
मंगल गीतन जागत जोई,
कुश-शय्या सोइ सोय भुआला,
उठत अशुभ सुनि शब्द शृगाला।
नित जो बहु द्विज अतिथि जेंवायी,
करत सरस भोजन फलदायी,
वन-फल खाय सो धारत प्राणा,
छीजति कायहु यशहि समाना!
धरे जे चरण पीठ मणि-मण्डित,
राज-शीश स्रज-रज जे रंजित,

दोहा :— *कुशकण्टक-क्षत-रक्त ते, रंजित अब पद सोय,*
धीर धरहुँ केहि भाँति हरि! उठत आपु हिय रोय! ११४

चंदन-चर्चित अँग जिन केरे,
रथ चढ़ि चलत, रहत जन घेरे,
सोइ भीम वनचर अनुहारी,
धूसर धूलि आजु पदचारी!
जीति उत्तरापथ जेहि सारा,
कीन्ह नृपहिं धन, सुयश अपारा,
सोइ अर्जुन अस भाग्य-विधाना,
देत लाय वल्कल-परिधाना!
कोमल अंग नकुल सहदेवा,
सेवक सहस करत नित सेवा,
महि कठोर सोवत अब सोई,
कीर्ण केश जनु वन-गज दोई!
क्षितिपति-धमहि विभव-क्षय कारण,
कीन्हे शान्ति तबहुँ हिय धारण।

विप्र-वृत्ति जो अस प्रिय लागी,
देत न क्षात्र धर्म कस त्यागी?

दोहा :—करत प्रवाहित नहि सरित, काहे, ये धनु-बाण?
शोभा-हित धारष इनहि, क्षात्र धर्म-अपमान!" ११५

सुनि तिय-वाणी भीम विहाला,
बरसी अनल शैल जनु ज्वाला—
"हृत ऐश्वर्य, राज श्री नासी,
अरि आनंदित, हम वन-वासी।
पै न दहति उर तस महि-हानी,
जस अवनीश वृत्ति-कृत-ग्लानी।
दिन प्रति दैन्य नृपहिं प्रिय लागा,
कीन्हेउ धर्मज पौरुष-त्यागा।
धृत यति वेष भ्रमत नित वन-वन,
चहत त्रयोदश वर्ष बितावन।
जानत अवधि-अंत कुरुरायी,
जइहै चरणन राज्य चढ़ायी।
विभव-हेतु कुरुपति, मत मोरा,
सकत सकल करि पातक घोरा।
शिशुपन ते जेहि करि सतापा,
प्रति नव वर्ष किये नव पापा,

दोहा :—कीन्ह मोर जेहि दै गरल, सुरसरि-सलिल-प्रवाह,
मातु सहित जतु गेह जेहि, रचेउ निखिल कुल-दाह, ११६

कपट-द्यूत जेहि लीन्हेउ राजू,
हरी सभा कुल-ललना-लाजू,
देहै सोइ राज्य लौटारी—
सोचत, बुद्धि जासु विधि मारी!
औरहु कहहुँ स्वमत यदुनाथा!
देहि जो सहज राज्य कुरुनाथा.

कीन्हे तेहि अपमान बिसारी,
नासहिं धर्म, अकीर्ति हमारी।
धिक भुजबल! धिक शौर्य हमारा!
पर-प्रसाद-भोजिहिं धिक्कारा!
श्वापद जदपि तदपि मृगराऊ,
दर्पयुक्त, नहिं तजत स्वभाऊ।
भखत इभ करि कुम्भ विदारण,
भूलिहु लखत न पर-हत वारण।
तैसेहि तेजयुक्त नरराजू,
पर-प्रदत्त भोगत नहिं राजू।

दोहा :—*जूझत मानी मान हित, धन-वसुधा हित नाहिं,*
अमर सुयश, त्रिभुवन-विभव, बिनसत निमिषहिं माहिं। ११६

तजत मानिजन तृणवत प्राणा,
तजत न तेन, आत्म-सम्माना।
वारिद बसत दूरि नभ माहीं,
मृगपति पहुँच तहाँ लगि नाहीं,
तबहुँ सुनत घन-गर्जन घोरा,
करत कटाक्ष गरजि तेहि ओरा!
तेजस्विन वर सहज अमर्षा,
सहत न कबहुँ शत्रु-उत्कर्षा।
हरि धन-संपति, करि छल नाना,
कुरुजन कीन्ह सभा अपमाना।
एकहि जगत तासु प्रतिकारा,
सहित सहाय शत्रु-संहारा।
द्रुपद-सुता दृग-वारि बहायी,
दारुण अग्नि हृदय सुलगायी।
रण-हत पति-शव पै कुरु-नारी,
करिहैं आर्तनाद जब भारी,

दोहा :—*तबहिं तिनहि लोचन-सलिल, यह हिय-अनल बुझाय,*
बिनु कुरुवंश-विनाश मोहिं, जीवन शून्य लखाय! ११८

दोहा :— होहुँ वृद्ध, भुज-बल घटहि, जर्जर होय शरीर,
होइहै तबहुँ न क्षीण उर, बैर-शोध बिनु पीर।" ११६

जाया, अनुज-वचन सुनि रिस-मय,
नृप सविषाद, व्याप्त उर अनुशय।
निखिल कुटुम्ब अधीर विलोका,
हरेउ मृदुल वचनन हरि शोका।
ताहि समय मुनि दिव्य विलोचन,
आये व्यास दीन-दुख-मोचन।
हर्ष धरत पद आश्रम व्यापा,
प्रणति, असीस, मिलन, आलापा।
ध्यान-धीर मुनि नृपहि निहारी,
भाषे वचन आर्द्र दृग-वारी—
"दोइ वृत्त विधि-विरच अशोभन,
क्षुब्ध होत सुनि जिनहिं मुनिहु मन—
छल-बल-अर्जित दुर्जन-वैभव,
सत्य-धर्म-प्रिय सुजन-पराभव,
चकित तात ! मैं लखि तव त्यागा,
द्वापर कहँ अस विभव विरागा!

दोहा :— जब लगि वसुधा-तल बसहि, धर्मवान मतिमान,
तब लगि पाण्डव-यश विमल, करिहैं सज्जन गान।" १२०

सुनि भविष्य-दर्शी यदुरायी,
गिरा नीतियुत मुनिहिं सुनायी—
"मंगल तासु सदा मुनिनाथा!
वरद तुम्हार जासु शिर हाथा।
'हरि सर्वस्व कीन्ह निर्वासन,
कपट-कुशल यह कुमति सुयोधन।
विदित ताहि यहि जग वढ़ि सेवा,
तेहि वश सकल मनुज मुनि देवा।

भीष्म द्रोण सम यहि जग माहीं,
योद्धा तात ! अन्य कोउ नाहीं।
परशुराम विंशति-इक बारा,
क्षत्रिय रहित कीन्ह जग सारा।
सके सोउ नहि भीष्म हरायी,
जिन वश मृत्यु चिरव-भयदायी।

दोहा :— अस्त्र-शस्त्र-ज्ञाता जगत, द्रोण सदृश को आन ?
बरसत रण शर-जाल द्विज, लागत काल समान। २१

कर्ण महारथि रण-उन्मादा,
सदा चहत पाण्डव अवसादा।
दीनहु बल कुरुपति बलधामा,
देहै राज्य न बिनु संग्रामा।
पाण्डु-सुतन अस कहाँ सहारा ?
जइहैं कस रण-वारिधि पारा ?
तुमहि अनन्य-शरण मुनिनायक !
होहु अनाथन नाथ ! सहायक।"
विहँसे सुनत व्यास मुनिराई—
"चहत देन प्रभु मोहि बड़ाई।
नाहित करत नाथ भ्र-क्षेपण,
होत निखिल भवबंध विमोक्षण।
मानि तथापि नाथ-आदेशा,
देहौं पार्थहि मैं उपदेशा।
पूर्व समय वृत्रासुर-त्रासा,
जाय सकल सुर सुरपति-पासा,

दोहा :— दीन्हें इन्द्रहि मिलि सबन, निज निज अस्त्र विशेष,
लब्ध दिव्य आयुध सकल, भये अजेय सुरेश। २२

ये अर्जुन नर ऋषि अवतारी,
जन्मे नाथ-साथ वपु धारी।

सहजहिं करि तप, सुरन रिझायी,
सकल दिव्य आयुध-निधि पायी।
मंत्र प्रतिस्मृति प्रभु ! मम पाहीं,
जपत जाहि तप विघ्न नसाहीं।
करत तपश्चर्या कछु काला,
प्रीत इन्द्र आदिक दिक्पाला,
प्रकटि सकल देहैं वरदाना,
अस्त्र, शस्त्र, आयुध विधि नाना।
देहैं आपु कृपानिधि शंकर,
अस्त्र पाशुपत विश्व-क्षयंकर।"
अस कहि लै पार्थहिं निज साथा,
गवने थल विविक्त मुनिनाथा।
शिष्य-भाव अर्जुन दरसावा,
मंत्र प्रतिस्मृति मुनि ते पावा।

दोहा :— *भानु-तेज जिमि बिम्ब तजि, करत सरोज विकास।*
निर्गत मुनि-मुख मंत्र तिमि, पार्थ मोह-तम नास। १२३

भेटि सबहिं, हरि-आयसु पायी,
त्यागेउ जस आश्रम मुनिरायी।
धृत-व्रत सखा धनंजय जानी,
कही धर्म-सुत सन हरि वाणी।
"पार्थहिं देहु निदेश नरेशा!
तप हित हिमगिरि करहिं प्रवेशा।
वीर, धीर, गुण-ज्ञान-निधाना,
सबहिं पार्थ प्रिय प्राण समाना।
इनहिं पै भावी रण भारा,
निर्भर निखिल वंश उद्धारा।
ताते मन बल हृदय दृढ़ायी,
आयसु देहु मोह बिसरायी।"
[illegible] प्रेम नयनन नीरा

सहित द्रुपद-तनया सब भ्राता,
विकल विलोकि धनंजय जाता।

दोहा :— *हवन, स्वस्त्ययन, पाठ करि, धरे हस्त धनु बाण,*
भेंटि सबहिं, आसीष लहि, कीन्हेउ पार्थ प्रयाण। १२४

व्याप्त शोक काम्यक वन भारी,
जीव, जन्तु, वनदेव दुखारी।
भोजन-पान कीन्ह नहिं काहू,
उर अर्जुन-विरहानल दाहू।
सखा शौर्य-गाथा कहि नाना,
कीन्हि व्यतीत राति भगवाना।
कहेउ प्रात नृपतिहिं यदुरायी—
"बिनु अर्जुन यह बन दुखदायी।
जब लगि पार्थ करत तप-साधन,
तुम सब जाय करहु तीर्थाटन।
लखि नित नूतन सरित, पहारा,
विपिन, ग्राम, पुर, चैत्य, विहारा,
सकिहौ अनुज-विरह बिसरायी,
कटिहैं कुदिन कछुक दुखदायी।
भारत सम महि पुण्य न आना,
उपजे युग-युग पुरुष महाना।

दोहा :— *कीन्ह सूर, ज्ञानी, तपिन, जहँ जहँ जन-कल्याण,*
भये सोइ थल यश-सदन, पावन तीर्थ-स्थान। १२५

करि दर्शन, सुनि शुचि आख्याना,
पावत नवस्फूर्ति मन प्राणा।
मानस क्षुद्र वृत्ति क्षण त्यागी,
होत असीम विश्व अनुरागी।
तजहु न नृप ! यह स्वर्ण सँयोगू,
तीर्थन काटहु बंधु-वियोगू।"

धर्म-मूल यदुनंदन वाणी,
सुनत धर्मसुत-हृदय समानी।
कीन्हेउ पाण्डु-सुवन तीर्थाटन,
पहुँचे उत गजपुरी जनार्दन।
पाण्डव-कुशल सँदेश सुनावा,
कुन्ती विदुरहिं धैर्य बँधावा।
बहुरि सकल पाञ्चालि-कुमारा,
स्वसा-सुवन अभिमन्यु पियारा।
सहित सुभद्रा संग लिवायी,
लौटे द्वारावति यदुरायी।

दोहा:— *प्रद्युम्नहि सौंपे सकल, पाण्डव-सुत यदुनाथ,*
दिव्यायुध-ज्ञाता भये, रहि नित यदुजन साथ। १२६

भ्रमि हरि द्वारावती निहारी,
निर्मित पुनि वैसिहि मनहारी।
शाल्व-विमान-ध्वस पुर-अंशा,
यथा पूर्व लखि कीन्हि प्रशंसा।
वैभव-पूर्ण बहुरि पुर सारा,
पथ-वीथिन सोइ भीर अपारा।
रथ मणि-मण्डित इत उत धावत,
मद-जल मत्त द्विरद बरसावत।
लक्ष-लक्ष प्रासाद नभोत्थित,
हेम-खचित जनु मेरु महीभृत।
पुष्पित बहु उपवन आरामा,
विहग-भृङ्ग-नादित अभिरामा।
बैसेहि प्रमुदित पुर नर-नारी,
उत्सव-प्रिय, वन-शैल-विहारी।
पर-सुख-सुखी सतत यदुनाथा,
बसे ससुख पुर स्वजनन साथा।

दोहा:— *क्रूर कंस-हत सुत छहहु, जननिहि पुनि दरसाय,*
कीन्ह देवकिहि हरि सुखी, चिर उर-दाह बुझाय। १२७

उत अर्जुन कीन्हेउ तप भारी,
अस्त्र पाशुपत दीन्ह पुरारी।
दीन्ह दण्ड यम, पाश जलेशा,
प्रस्वापन निज अस्त्र धनेशा।
अस्त्र ब्रह्मशिर त्रिभुवन ख्याता,
दीन्हेउ दारुण आपु विधाता।
नेह विशेष सुरेश दिखावा,
स्यंदन प्रेषि स्वलोक बोलावा।
दै अर्धासन, करि सन्माना,
सिखये दिव्य अस्त्र विधि नाना।
राखेउ सुरपति साग्रह पासा,
वर्ष पाँच तहँ पार्थ निवासा।
पूर्व दिशा इत पाण्डव जायी,
देखेउ सकल तीर्थ-समुदायी।
लखत उदधि-तट-देश प्रदेशा,
गवनेउ दक्षिण धर्म नरेशा।

दोहा :— *दक्षिण-तीर्थ विलोकि पुनि, हिय हरि दर्शन आस,*
पहुँचे पाञ्चाली सहित, पाण्डव तीर्थ प्रभास। १२८

पाण्डव-आवन सुनि यदुनाथा,
धाये आतुर यदुजन साथा।
विरह विकल भेंटत अनुरागे,
सुख-पीयूष मनहुँ सब पागे।
मिलीं सुभद्रा द्रुपद - कुमारी,
भेंटीं आय अन्य यदु-नारी।
लखे बहुरि निज सुत पाञ्चाली—
सकल विशालकाय, बलशाली।
अभिमन्युहिं भरि हृदय लगावा,
औरस सुवन मनहुँ पुनि पावा।
विधि अगणित करि प्रणयाचारा,
प्रकटी यदुजन प्रीति अपारा।

धर्म नृपहु यदु-वृन्द विलोका,
जानि स्वजन निसेउ उर शोका।
अगणित यदुजन जनु नभ तारा,
अमरोपम विक्रम आकारा।

दोहा :— *नृपति हर्ष-निर्भर हृदय, भाषेउ हरिहि सप्रीति—*
"जासु सहाय समाज यह, ताहि नाथ ! कस भीति !" १२९

सुनि सात्यकि नृप-गिरा उदारा,
हेरत हरि दिशि वचन उचारा—
"निरखि नाथ ! धर्मात्मज दीना,
राका-रहित मनहुँ शशि छीणा,
विपिन-वास, वल्कल-परिधाना,
होत हृदय उद्वेग महाना।
बद्ध धर्म-सुत निज प्रण माहीं,
कीन्हि प्रतिज्ञा यदुजन नाहीं।
मम मत हम गजपुर चढ़ि धावहिं,
अघी निखिल कुरुवंश नसावहिं।
पालहिं प्रजा कुँवर कोउ आजू,
बीते अवधि धर्म-सुत राजू।
अब समर्थ अभिमन्यु कुमारा,
धारि सकत निज शिर सब भारा।
जाहिं न नाथ ! समर महि माहीं,
जाय अन्य गुरुजन कोउ नाहीं।

दोहा :— *देहु साथ प्रद्युम्न मम, गद अरु साम्ब कुमार,*
कर्ण-द्रोण सह करि सकत, मैं कुरुकुल-संहार।" १३०

उत्तर दीन्ह विहँसि यदुवीरा—
"तुम, कुँवरहु सब अति रणधीरा।
राखेउ पै नहिं तुम मन ध्याना,
पाण्डव-हृदय आत्म-सम्माना।

यदुजन-विजित राज्य, धन, वैभव,
करिहैं ग्रहण न मानी पाण्डव।
औरहु तुम यह दीन्ह बिसारी—
नहिं अभिमन्यु राज्य-अधिकारी।
धर्मराज कर ज्येष्ठ कुमारा,
कृष्णा जाहि गर्भ निज धारा,
सो प्रतिविन्ध्य राज्य-श्री-स्वामी,
तासु सुभद्रा-सुत अनुगामी।
पाण्डु-सुतन महँ जस अति प्रीती,
तिनके सुतन गही सोइ रीती।
पाण्डव पैतृक-गुण अनुशासन,
शिशुहू हमहिं सकल दै शिक्षण।

दोहा :— *जब लगि धर्म नरेश ये, बद्ध प्रतिज्ञा माहि,*
तब लगि कोउ पाण्डव-शिशुहु, महि-अभिलाषी नाहि।" १३

लज्जा-रज सात्यकि मुख म्लाना,
बोलेउ धर्म नरेश सुजाना—
"शेष आजु जग इतनहि मम धन,
मोर सहायक यदुपति, यदुजन।
पौरुष-योग्य समय पहिचानी,
देहैं आयसु हरि नय-खानी।
लखेउँ सुरोपम स्वजन समाजू,
मानत धन्य भाग्य निज आजू।"
यहि विधि बसि कछु दिवस प्रभासू,
पाण्डु-सुतन पुनि कीन्ह प्रवासू।
रैवाखण्ड, विन्ध्य करि पारा,
बहुरि उत्तरापथ पगु धारा।
गिरि सुमेरु पुनि देखेउ जायी,
मिले धनंजय भ्रावन आयी।
लब्ध-अस्त्र-यश-मान, सुरारी,
सुरपति स्यंदन गयेउ उतारी।

दोहा :—एकादश वत्सर विगत, भ्रमत शैल कैलास,
लौटि बहुरि काम्यक विपिन, कीन्हेउ ससुख निवास। १३२

ताहि समय मुनिवर दुर्वासा,
भ्रमत महीतल चहत निवासा।
जटाजूट जनु पावक-ज्वाला,
कुटिल भृकुटि, आनन विकराला।
हाट, बाट, पथ, सभा, समाजू,
कहत फिरत दिशि दिशि मुनिराजू—
"देहि निवास मोहिं गृह सोई,
धैर्य-निधान जो यहि जग होई।
लघु अपराध होत मोहिं रोषू,
देत शाप मैं, छमत न दोषू।"
जो कोउ सुनत होत मन त्रासा,
नृपि वासार्थि मिलत नहिं वासा।
द्वारावति मुनीश जब आये,
सुनत वृत्त यदुपति मुसकाये।
जाय कहेउ करि विनय प्रणामा—
"पावन करहु नाथ ! मम धामा।"

दोहा:—"अन्य मुनन सम नाहि मैं, आजुहि दत चेताय—"
अस कहि पुनि पुनि शाप-भय, दरसायेउ मुनिराय। १३३
हरिहु कीन्हि पुनि पुनि विनय, दीन्ह लाय गृह वास,
दुर्वासहु लागे सबहि, देन अहर्निश त्रास। १३४

कबहुँ भोजन करहिं अपारा,
थकहिं बनावत राज-सुआरा।
कबहुँ अमित व्यञ्जन बनवावहिं,
निराहार पुनि दिवस बितावहिं।
कबहुँ जाहिं तजि भवन परायी,
खोजत विकल फिरहिं यदुरायी।
कबहूँ रोदन सदन मचावहिं,
गहि पद हरि विनवहिं, समुझावहिं।

कबहुँक अट्टहास करि भारी,
करहिं नृत्य-गायन दै तारी।
वसन, उपकरण कबहुँ नसावहिं,
कबहुँ राजगृह अनल लगावहिं।
एक दिवस निज कच जरायी,
व्याकुल कहेउ हरिहिं मुनिरायी—
"छुधा उदर मम लागी भारी,
अबहिं खवावहु खीर मुरारी!"

दोहा:—*पायस-पूरित पात्र प्रभु, लाय धरेउ मुनि पास,*
खाय तनक कछु, लखि हरिहिं, कहेउ मुनीश सहास— १२५

"पायस यह उच्छिष्ट उठायी,
लेहु तन सर्वाङ्ग लगायी।"
सुनि हरि तनिक विलंब न कीन्हा,
पायस पोति अंग निज लीन्हा।
दैवयोग रुक्मिणि तहँ ठाढ़ी,
कौतुक लखत हँसी हिय गाढ़ी।
लखि हरि तन जैसेहि मुसकानी,
धाय मुनीश गही हरि-रानी।
पोती पायस, विह्वल बाला,
गये कर्षि लै जहँ रथ-शाला।
"हा! हा!" करि धाये बहु परिजन,
बरजे सेवक यदुपति सैनन।
जोरि रुक्मिणिहिं स्यंदन साथा,
लाये पुरी-मध्य मुनिनाथा।
प्रेरत कर्हि करि वेत्र प्रहारा,
जुरी राजपथ भीर अपारा।

दोहा:—*धावत रथ पाछे हरिहु, पायस नख-शिख गात,*
बरजत जो कोउ मुनिवरहि, तेहि हरि बरजत जात। १२६

चलत न स्यंदन रानि चलावा,
लखि विनीत हरि वचन सुनावा—

जोरहु स्यंदन मोहिं मुनिरायी !
लेहैं दोउ हम रथहिं चलायी !"
सुनि मधुसूदन-गिरा गतस्मय,
व्याप्त अपार मुनिहु उर विस्मय।
प्रीति-युक्त तजि सत्वर स्यंदन,
विह्वल भरे भुजन यदुनंदन—
"लखे तात ! मैं नर, मुनि, देवा,
तीनहु भुवन लही बहु सेवा,
कीन्ह न अस कोउ मोर निवाहू,
धैर्य-अवधि अस लखेउँ न काहू।
गर्व-रहित अस विश्व न आना,
प्रमुदित देत तुमहिं वरदाना—
चिर रण-जयी सुयश-उजियारे,
मृत्यहु होय अधीन तुम्हारे।

दोहा :— *लेपी जहँ जहँ तात ! तुम, पायस आजु शरीर,*
होहि वज्रवत अंग सब, रहित रोग, श्रम, पीर।" १२८

बहुरि क्षमा रुक्मिणि सन माँगी,
दीन्हे वर मुनिवर अनुरागी।
उग्र स्वभाव त्यागि दुर्वासा,
कीन्ह दिवस कछु और निवासा।
गमन-समय पुनि करत बड़ाई,
पूछेउ प्रश्न हरिहिं मुनिरायी—
"त्रिकालज्ञ तुम त्रिभुवन-ज्ञाता,
करत न कारण बिनु कछु ताता !
पायस तुम सर्वाङ्ग लगायी,
एक चरण-तल दीन्ह बरायी।
भये कुलिश सम दृढ़ सर्वस्थल,
आयुध-भेद्य रहेउ पै पदतल।"
भाषे वचन विहँसि भगवाना—
"जन्म साथ मुनि ! मृत्यु-विधाना।

मर्त्य रूप मैं महि अवतारी,
नहिं अमरत्व कृष्ण अधिकारी।

दोहा :— *होय विफल नहि भव-नियम, वृथा न आशिष जाय,*
ताते मैं मुनिनाथ! निज, पदतल दीन्ह बिहाय। १३८

सुनत वचन मन मोद महाना,
माँगि बिदा मुनि कीन्ह प्रयाणा।
गत कछु दिवस सहस दस शिष्यन,
लै पहुँचे मुनि काम्यक कानन।
प्रकटेउ धर्म नृपति अनुरागा,
क्षुधा त्रस्त मुनि भोजन माँगा।
सुरसरि-वारि निमज्जन हेतू,
गवने शिष्यन पार्थ समेतू।
इत पाञ्चाली पतिन जेंवायी,
तजेउ पाकगृह भोजन पायी।
रिक्त पात्र, सीथहु नहिं शेपा,
लखि कंपित मन धर्म नरेशा।
विश्व-विदित मुनि-रोष महाना,
सुमिरे द्रुपद-सुता भगवाना—
"सभा-भवन जस मोहिं उबारा,
करहु नाथ! तस पुनि उद्धारा।"

दोहा —*कुटी द्वार ठाढ़ी विकल, उड़न चहत जनु प्राण,*
रथ घर्घर श्रवणन परेउ, आय गये भगवान। १३६

परसे जस प्रभु भूपति-चरणा,
मुनिवर-वृत्त द्रौपदी बरना।
श्रम दरसाय कहेउ घनश्यामा—
"कीन्ह मार्ग नहिं मैं विश्रामा।
देहि सखी! कछु मोहिं खवायी,
मुनि-हित पाक करहि पुनि जायी।"

सुनि पाञ्चाल-सुता बिलखानी—
"तुमहु लजावत मोहिं सुख-दानी।
सबहिं खवाय कीन्ह मैं भोजन,
रिक्त पात्र, नहिं भवन अन्न-कण।"
भाषेउ सुनत श्याम मुसकायी—
"पात्र मोहिं दरसावहु लायी।"
सुनत खीझि तिय लायी भाजन,
खोजत हरि इक लहेउ शाक-कण।
ललकि उठाय ताहि मुख राखा,
"तोषहु विश्वरूप!" प्रभु भाखा।

दोहा :—*कहेउ भीम सन पुनि विहँसि, "लावहु मुनहि बोलाय,*
दश सहस्र शिष्यन सहित, भोजन पावहिं आय।" १४०

उत मुनिजन करि सुरसरि-मज्जन,
तजि जल धरेउ मही जस चरणन,
लागेउ उदर अजीर्ण कराला,
पूछत एकहिं एक विहाला—
"अब लगि हम न फलहु इक खावा,
उदर अजीर्ण कहाँ से आवा?"
भाषेउ गुरुहिं, "छमहु अपराधा,
उपजी नाथ! उदर कछु बाधा।"
विकल आपु बोले दुर्वासा—
"साँचहु हम नृप-भोजन नासा।
मोरेहु उदर अजीर्ण अकारण,
जनु आकण्ठ कीन्ह मैं भोजन।
कणहु न सकत महूँ अब खायी,
कहिहौं काह पाण्डवन जायी?
ये हरि-भक्त पाण्डु-सुत सारे,
बसत सतत हरि-शरण-सहारे।

दोहा :—*अम्बरीष राजर्षि कर, जब ते लखेउँ प्रभाव,*
हरि-भक्तन ते मैं करत, अब न कबहुँ दुर्भाव। १४१

यहि महँ पुनि अपराध हमारा,
करिहै रोष नरेश अपारा।
सूमत पकरि मोहि नपायी,
जाहि यहाँ ते अबहि परायी!"
अस कहि भागे मुनि भय भारी,
भागी भीत मण्डली सारी।
पार्थ प्रतीक्षत पथ तरु-छाया,
लखेउ पलायित विप्र-निकाया।
भीमहु आय दीख तेहि काला—
भागत मुनिजन जनु मृगमाला।
चकित बंधु दोउ रहे पुकारी,
लखेउ न भूलिहु मुनिन पछारी।
अंत हताश नृपति ढिग जायी,
सकल पलायन-कथा सुनायी।
विकल सुनत सोचत नरनाहा—
कीन्ह रोष मुनि कारण काहा?

दोहा :—*मुनि सस्मित हरि-द्रौपदी, बहुरि मुनिहि बिसराय,*
बिछुरे पार्थहि हरि ललकि, लीन्हेउ हृदय लगाय। १४२

शस्त्र-प्राप्ति, सुरपुर-पहुनाई,
सुनी सखा-मुख हरि हर्षायी।
तबहि सास्र दृग द्रुपद-कुमारी,
हरिहि निवेदित गिरा उचारी—
"पूर्ण नाथ! यद्यपि वनवासू,
उर नहिं लेशहु हर्ष-हुलासू।
द्वादश वर्षहु ते मोहि भारी,
यह अज्ञातवास भयकारी।
जेहि जो पाय टोह कहुँ कुरुजन,
पुनि सोइ द्वादश वर्ष विजन वन।
भारत महितल थल कहँ नाथा!
जहँ न ज्ञात भारत-अधिनाथा?

हम दीनन के तुमहिं सहारा,
कवनिहु भाँति लगावहु पारा।"
विकल आपु सुनि कह भगवाना—
"धर्म नृपहिं तुम अजहुँ न जाना—

दोहा.—*सत्य मती ये धर्म-सुत, करिहैं निभृत निवास,*
सकिहौं पाय न वर्ष भरि, महँ लेश आभास।" १४३

क्लेशस्खलित विश्वपति वाणी,
सुनि चिर दुःखिनि तिय बिलखानी।
हेरति हरिहिं, लखति पुनि पति तन,
झूलत संशय-शोक-दोल मन।
सिक्त कपोल नयन जलधारा,
दीन्ह धैर्य हरि शोक निवारा।
नवस्फूर्ति भरि, हृदय दृढ़ायी,
गवने द्वारावति यदुरायी।
पाण्डु-सुतन मिलि कीन्ह विचारा,
तजि वन, पुर विराट पगु धारा।
नाम नवीन, नवीनहि वेषा,
कीन्ह अवनिपति-भवन प्रवेशा।
सकेउ न मत्स्य-नाथ पहिचानी,
करि सेवक राखे सन्मानी।
नृप-अन्तःपुर द्रुपद-कुमारी,
दासी वृत्ति जाय स्वीकारी।

दोहा:—*यहि विधि इत मत्स्येश-गृह, लहे पाण्डुसुत वास,*
उत भक्तन हित कीन्ह हरि, मिथिला पुरी प्रवास। १४४

मिथिला-पति अरु द्विज श्रुतदेवा,
दोउ हरि-भक्त चहत पद-सेवा।
कीन्ही हठ दोउन सस्नेहा—
"करहु निवास नाथ! मम गेहा।"

सखि हरि दोउन भक्ति अनूपा,
बसे दुहुन गृह धरि दुइ रूपा।
अरि धूप, दीपक, स्रज चंदन,
कीन्हेउ भूप सविधि, प्रभु-पूजन।
तोय, तुलसि-दल ते करि सेवा,
तोषे श्रीपति द्विज श्रुतदेवा।
राजभवन बहु षटरस व्यंजन,
शाक-पात द्विज रंक निकेतन।
नृप-गृह हंस-तूल पर्यङ्का,
द्विज-गृह दर्भासन महि-अंका।
निवसे प्रभु दोउ मानि समाना,
लखत भाव, नहिं भव भगवाना।

दोहा:—*हरि-दर्शन हित नित जुरति, पुरजन-भीर अगार,*
मिथिला लागि मानहुँ भयेउ, बहुरि राम अवतार। १४५

सोरठा:—*निज-निज गृह पिलमाय, राखेउ सामह विप्र, नृप,*
जनकपुरी यदुराय, निवसे बहु दिन भक्ति-वश।

दिवस एक तहँ नारद आयी,
'प्रकटे पाण्डव"—कहेउ सुनायी।
"पाण्डु-सुवन भरि वत्सर कुरुजन,
खोजेउ देश, विदेश, तीर्थ, वन।
विफल-यत्न उपजेउ उर निश्चय—
भये पाण्डु-सुत नष्ट असंशय।
गत मन शल्य, निखिल बल साथा,
चढ़ेउ विराट नगर कुरुनाथा।
निवसत तहँ पाण्डव बलधामा,
छद्म वेष धृत छद्महि नामा।
जीते अर्जुन रण सब कुरुजन,
द्रोण, कर्ण, कृप, शान्तनु-नन्दन,
मत्स्य-नृपहिं वर्षान्त धनंजय,
दीन्ह प्रकटि निज भ्रातन परिचय।

प्रमुदित चहेउ मत्स्य नरनाहू,
सुता-संग अभिमन्यु-विवाहू।

दोहा :— *निवसि यहाँ मिथिलापुरी, करत नाथ ! तुम काह,*
आयेउ उत मत्स्येश-पुर, समरस्मर - उत्साह !"१४६

कीन्हेउ विहँसि मुनीश प्रयाणा,
लौटे द्वारावति भगवाना।
पाण्डव-दूत तहाँ हरि केरी,
रहे बाट नित आतुर. हेरी।
सँग यदुजन, पाण्डव सुत सारे,
मत्स्य-पुरी यदुनाथ सिधारे।
पुलकित मिलत, विलोचन-वर्षा,
मनुज-मनोरथ ते बढ़ि हर्षा।
जनु नव जन्म पाण्डु-सुत पावा,
नयनन नीर हरिहिं अन्हवावा।
मुदित मत्स्य-पति हरि-पद वंदत,
वदित आजु जनु सुकृत जन्म शत।
आयेउ सात्मज द्रुपद महीशा,
पुनि सहदेव मगध अवनीशा।
काशिराज नव नृपति उदारा,
धृष्टकेतु शिशुपाल-कुमारा।

दोहा :— *विद्यमान अवनीन्द्र बहु, व्याप्त अपूर्व उछाह,*
कुँवरि उत्तरा सँग भयेउ, अर्जुन-सुवन विवाह। १४७

दिवस द्वितीय विराट निमन्त्रित,
भये सभा सब नृप एकत्रित।
एकहि चिन्ता व्याप्त सबन मन—
लहिहैं किमि पाण्डव निज महि-धन।
जदपि सकल नय-नीति-उपासी,

बंधु-विरोध सोचि हिय सकुचत,
हरि दिशि लखत, न निज मत प्रकटत।
द्विविधा विकल विलोकि समाजू,
कीन्हेउ भंग मौन यदुराजू—
"जुरे विवाह हेतु हम यहि थल,
पूर्ण सो भयेउ कार्य शुभ सकुशल।
दै वर वधुहिं असीस सनेहा,
उचित जाहिं हम निज निज गेहा।
पै ये धर्मराज मतिमाना,
साधु-वृत्ति, गुण-शील-निधाना।

दोहाः—*नृप-कुल जिनहिं वरिष्ठ गुनि, मानेउ हम सर्वेश,*
आजु कपट-हृत-राज्य-श्री, निष्कासित निज देश। १४८

शैशव ते कुरुजन इन संगा,
राखेउ वैर बढ़ाय अभंगा।
पुनि पुनि मैं निज हृदय विचारा,
कीन्ह कि कछु अघ पाण्डु-कुमारा?
सूझत अघ एकहिं मोहिं भारी—
ये नृप-सुवन राज्य-अधिकारी।
नृप-सुत जदपि सुयोधन नाहीं,
प्रबल राज्य-लिप्सा मन माहीं।
शूरवीर ये पाण्ड मानी,
करि न सकत अरि बल ते हानी।
ताते नित्य नवीन कुमन्त्रा,
विष, जतु-गेह द्यूत-षड्यंत्रा।
पाण्डव-नेही बहु नरनाहा,
लखत अनीति होत उर दाहा।
रहल चुपाय तदपि गुनि निज मन,
उचित न बंधु-वैर-उद्दीपन।

दोहाः—*भीमार्जुन, माद्री-सुवन, उरहु अमर्ष अपार,*
पै अग्रज-वर्जित सहेउ, अब लगि सब अपकार। १४९

दारुण तिय अपमानज क्रोधा,
चहत लेन भीषण प्रतिशोधा।
धर्म-सुवन पै सकल बिसारे,
आजहु क्षमा भाव उर धारे।
कहत—'जो पैतृक राज्य विशाला,
पालेउ जाहि पाण्डु महिपाला,
राखहि निज हित सब कुरुरायी,
भोगहि वैर भाव बिसरायी।
लहेउ बाहु-बल हम जो राजू,
देहि सो फेरि हमहि कुरुराजू,
असामान्य यह पाण्डव-त्यागा,
बंधु-सनेह, शान्ति-अनुरागा।
मम मत लै गजपुरी सँदेशा,
पठवहि पाण्डव दूत विशेषा।
करि निश्चय इतनहि यह आजू,
गवनहि निज निज पुर नरराजू।

दोहा :— *आन नृपति धृतराष्ट्र-मत, दुर्योधन - उद्गार,*
करिहैं हम पुनि मिलि सकल, निग्रह - संधि-विचार।" १५०

जब लगि करत रहे हरि भाषण,
निरखत वदन विकल संकर्षण।
शान्ति-वचन सुनि उर अनुरागे,
आपहु कहन सभा सन लागे—
पाण्डु-सुवन ये, कुरुजन सोऊ,
सम-संबंधी हमरे दोऊ।
उचित न बंधु-बंधु बिच रारी,
लेहु सकल मिलि दुहुन सँभारी।
पठवहु अस कोउ दूत सुजाना,
करव जासु दोउ कुल सन्माना।
कुरुजन वृद्धन-ढिग शिर नायी,
[illegible]-वि[illegible]य सना[illegible] जायी।

कहि मृदु वचन करहु निज काजू,
जो कछु मिलहिं लेहु सोइ आजू।"
सुने वचन ये जस युयुधाना,
लागे उर विषाक्त जनु बाणा।

दोहा :— *प्रकटी रिस निज व्यंग मिस, "देहिं न अरि जो भीख,*
तौ पुगव पाण्डव वसहिं, गाह संकर्षण-सीख।" १५१

उर आवेश चम्र सुनि व्यंगा,
निसरेउ रामहिं समय प्रसंगा—
"सात्यकि सहजहिं कलह-परायण,
करत सतत पाण्डव-गुण-गायन।
अस्त-अदत्त धर्म नरनायी,
दिये राज्य, तिय, अनुज गँवायी।
आपुहिं राखि दाँव पुनि हारा,
कीन्ह तबहुँ कुरुजन उपहारा।
काटे सबन दासता बंधन,
दीन्हेउ फेरि समस्त राज्य-धन।
तबहुँ न तजेउ व्यसन नरराजू,
खोयेउ खेलि बहुरि धन राजू।
स्वेच्छा इन निज सर्वस हारा,
गवने कानन प्रण-अनुसारा।
देत न धर्म-नृपहिं कस दोषा?
करत सुयोधन-प्रति कत रोषा?

दोहा — *लहे धर्म-सुत क्लेश जो, सकल द्यूत-परिणाम,*
त्यागहु धर्म-प्रलाप सब, लेहु न रण कर नाम।" १५२

खिन्न श्याम सुनि वचन अशोभा,
प्रकटेउ उत सात्यकि उर क्षोभा—
'महावीर यद्यपि बलरामा,
समर-धीर, बल-विक्रम-धामा,

दीन्ह विचित्र स्वभाव विधाता,
मानत विश्व-सार निज गाता!
समुझत मोहि विरंचि बनायी,
व्यर्थ विशाल सृष्टि निर्मायी!
सकल गुणन पै मम अधिकारा,
अन्य जीव केवल महि-भारा!
गनत आपु महँ जो गुण भूषण,
लागत अन्य माहिं सोइ दूषण।
सहज मिताशय, जानत नाहीं—
हलधर-यश केवल कुल माहीं।
इनते अधिक गुणन-उजियारे,
तिलक त्रिलोकी पाण्डव सारे।

दोहा :—नाहि आत्म-संभाविनहि, करत विश्व-यश-गान,
शौर्य, धर्म, धृति, सत्य-बल, इन जीते भगवान। १५२

हलधर व्यर्थ बजावत गालहिं,
द्यूत-व्यसन नहिं धर्म भुआलहिं।
पिता सदृश धृतराष्ट्र नरेशा,
दीन्हेउ द्यूत हेतु आदेशा।
खेलन हेतु विवश नृप कीन्हा,
हरि धन-धाम, वास वन दीन्हा।
तबहूँ हलधर धर्म विहायी,
करत सुयोधन शिष्य बड़ाई।
बरने बहु कुरुजन उपकारा,
कस पाञ्चाली वृत्त बिसारा?
सुजन कवन धृतराष्ट्र समाना,
बधुहिं द्यूत जीतत सुख माना।
को दुश्शासन सम उपकारी,
लायेउ सभा कर्षि कुल-नारी!
को धर्मज्ञ भीष्म सम आना—

दोहा :— कुरुपति हलधर-शिष्य सम, को जग शील निधान,
सभा उघारी जौंघ जेहि, करि उपकार महान। १५४

जिनके लखत कृपा करि भारी,
कर्षी दुश्शासन तिय-सारी,
ते कुरु-वृद्ध अन्न-धन-दासा,
तिन्हते व्यर्थ नीति-नय-आशा।
पठये दूत सरै नहिं काजू,
रण तजि अन्य, उपाय न आजू।
करत जो एक बार कुटिलाई,
क्षमत सुजन तेहि रोष विहाई।
पद पद करत अहित जो प्राणी,
क्षमत ताहि केवल अज्ञानी।
दण्ड-साध्य जे खल जग माहीं,
पठवहु व्यर्थ दूत तिन पाहीं।
मृदुता ते कातरता मानत,
गुनि निर्बल औरहु हठ ठानत।
उचित न तहाँ साम-उपचारा,
औषधि एक समूल सँहारा।

दोहा :— जोरहु यहि थल, यहि छनहि, सैन्य, सुहृद सामन्त,
कुरु-कुल पूर्णाहुति बिना, करहु न रण कहुँ अन्त।' १५५

सोरठा— कहे वचन युयुधान, बहेउ सभा महि वीर-रस,
रोषावेष महान, अनुमोदेउ उठि उठि नृपन।

स्वकुल विवाद विलोकि सशोका,
वृद्ध द्रुपद दिशि हरि अवलोका।
बोलेउ लखि पाञ्चाल भुआला,
दुहिता-दुःख-दग्ध उर ज्वाला—
"सात्यकि-गिरा मोहिं प्रिय लागी,
मिलति न प्रभुता, महि मुँह-माँगी।

मैं. पुनि कृष्णा-कशाकर्षण,
सकत कि करि यहि जन्म विस्मरण ?
बिनु अरि-रक्त प्रसाधित धरणी,
सकत कि भूलि सुयोधन-करनी ?
सधि असंभव कुरुकुल संगा,
बहिहै शीघ्रहि शोणित-गंगा।
आजुहि यहि थल सैन्य सजायी,
मित्र नृपति सब लेहु बोलायी।
दूत हेतु पै हरि-प्रस्तावा,
समुचित सोउ मोरे मन भावा।

दोहा :— *तुरत मित्र नृप सैन्य सह, जब लगि यहि थल आय,*
दूत प्रीति-सन्देश ले, गजपुर देहु पठाय। १५६

कैसहु होय रोष उर भीषण,
तजत न सत्पथ कबहुँ शिष्ट जन।
रण-प्रसंग लखि दुइ दल माहीं,
करत न्याय-निर्णय जग नाहीं।
अधिहु जो शान्ति-वृत्ति दरसावत,
यह जग अध तासु गुण गावत।
"शान्ति ! शान्ति !" सब करत पुकारा,
धर्महु ते बढ़ि प्राण पियारा।
संबोधहु कछु याहि प्रकारा,
विरहित सत्व, विवेक, विचारा।
यद्यपि क्षुद्र, अहंकृति भारी,
जियत शान्ति-प्रियता विस्तारी।
प्रेरित स्वार्थ आचरण सारा,
मुद्रा मनहुँ धर्म अवतारा !
कलह-परायण स्वजन बतायी,
होत तटस्थ शान्ति-गुण गायी।

[दोह]ा :— *सकहि न नर अस पाय मिस, सकहि न जग दै दोष,*
करहु संधि-चर्चा प्रकट, रण पै राखि भरोस। १५७

सामहि मात्र न संधि-संदेशा,
भेदहु कर तेहि महँ विनिवेशा।
दूत-गिरा सुनि अपने जिय की,
लगिहैं द्रोण पितामहिं नीकी।
करिहैं विदुरहु दुहुन सहायी,
होइहैं कुपित कर्ण, कुरुरायी।
कहिहैं काहुहि कोउ दुर्वादू,
मचिहैं रिपु-गृह कलह-विवादू।
लेहैं जो कुरुपति समुझायी,
रहिहै तबहुँ कछुक कटुताई।
गत-सौहार्द फिरत पुनि नाहीं,
बसिहैं रोष द्रोण-उर माहीं।
ह्वइहैं भीष्महु हृदय उदासा,
करिहैं रण नहिं पूर्ण प्रयासा।
हित हमार अरि-ऐक्य नसाये,
दिखत लाभ बहु दूत पठाये।

दोहा:—*करिहैं वाद-विवाद उत, जब लगि ये कुरु लोग,*
*होइहै पूर्ण हमार इत, समर हेतु उद्योग।"*१५८

वृद्ध द्रुपद नृप-नीति-सयाने,
वचन सत्य उर जाय समाने।
सन्मुख लखि समराग्नि प्रज्वलित,
कही गिरा श्रीहरि कछु चिन्तित—
"वर्ष त्रयोदश लगि दुर्योधन,
की-हेतु नित्य समर-आयोजन।
सकेउँ रोकि नहिं गति-विधि तासू,
रोकत तुम्हरहु मैं न प्रयासू।
पै न रणेच्छा मम मन माहीं,
चहत संधि मैं समर नाहीं।
स्वल्पहु संधि-प्राप्त-अधिकारा,
करत सतत निज-पर उपकारा।

रण-उपलब्ध निखिल जग-राजू,
करत विजेतहु केर अकाजू।
पै हित-हानिहु ते यदि धर्मा,
उचित न भय-वश तजब स्वकर्मा।"

दोहा—अस कहि नृप द्रुपदहि सकल, सौंपि पाण्डुसुत-काज,
स्वजनन सँग द्वारावती, गमन कीन्ह यदुराज। १५९

इत निज कुलगुरु दूत बनाई,
दीन्हेउ गजपुर द्रुपद पठायो।
नृपति विराटहु दूत हँकारे,
चहुँ दिशि लै रण-वृत्त सिधारे।
पाण्डव-समर-निमन्त्रण पायी,
लगेउ जुरन नृपन्न-समुदायी।
उपप्लव्य महितल अति विस्तृत,
समतल, योग्य निवेश, परिष्कृत।
दीन्हें सबहिं वास मत्स्येशा,
सोहे चहुँ दिशि शिविर अशेषा।
उड़ी पताका नभ बहु बरनी,
छादित बाजि, द्विरद, रथ धरणी।
बोलि धनंजय धर्म नरेशा,
"गवनहु हरि-पुर"—दीन्ह निदेशा।
"राम-विरोध-विमन यदुनाथा,
लावहु तात! विनय करि साथा।

दोहा :—करेहु युक्ति कछु, राखि तुम, उभयस्थिति निज ध्यान,
यदुकुल बढ़ाइ विरोध नहि, मिलहि मोहि भगवान्।" १६०

सोरठा—अग्रज-आज्ञा पाय, कीन्हेउ पार्थ प्रयाण इत,
सुयोधनहु कुरुराय, गवनेउ हरिपुर ताहि दिन।

गीता काण्ड

रठा—नमहुँ पार्थ-यदुनाथ, नर-नारायण रूप दोउ,
उन्मत संतत साथ, शस्त्र-शास्त्र-महि प्राण-हित।
विमुख निरखि कुरुराय अर्जुन निज अभिमुख निरखि।
भयउ जो भक्त सहाय, हरिहैं पुनि जन-क्लेश सोइ।

इन्द्र-सदन-द्युति जित निज धामा,
सुख-निद्रा निमग्न घनश्यामा।
जोवत वदन पार्थ कुरुनाथा,
प्रार्थी आजु दोउ इक साथा।
नियति आपु जनु प्रेरि पठाये,
लेन कर्म फल निज निज आये।
फाल्गुन शान्त, विकल कुरुरायी,
लाक्षा-गृह, द्यूत न सकत भुलायो।
द्रुपद-नन्दिनी करुणा-क्रन्दन,
लखि हरि-मुख गूँजत जनु श्रवणन।

कहि—'माधव ! मोहन ! दुखहारी,
रही अजहुँ जनु हरिहिं पुकारी।
वाम-बसन जस जिनु आधन्ता,
कुरुपति उर तस ताप अनन्ता।
उघरे सहसा कमल विलोचन,
लखेउ सखहिं पदतल भवमोचन।

दोहा :—*शयन-शीर्ष निरखेउ बहुरि, कुरु अवनीशहि श्याम,*
हरव मृदुस्मित दाह उर, प्राञ्जलि कीन्ह प्रणाम। १

बोलेउ लब्ध धैर्य दुर्योधन—
"आयेउँ लै रण लागि निमंत्रण।
यहि गृह-कलह माहिं यदुराई,
करहु सबाहिनि मोरि सहायी।
स्वजन जदपि हम दोउ तुम्हारे,
पहुँचेउँ पूर्व तात ! मैं द्वारे।
प्रार्थी प्रथम जो आवत पासा,
पूजत सुजन तासु अभिलाषा।
सुजन न तुम सम त्रिभुवन माहीं,
करहु हताश तात ! मोहि नाहीं।
चिर उद्धत, अविनीत सुयोधन,
भयेउ नम्र जनु शील आयतन।
कहेउ विहँसि मन मायानाथा—
"आये प्रथम आपु कुरुनाथा!
पै मैं प्रथम धनंजय देखे,
सम तुम दोउ अतिथि मम लेखे।

दोहा :—*तुम अग्रज, यह शिशु सदृश, अर्जुन अनुज तुम्हार,*
देत ताहि ते मैं प्रथम, तहि याचन अधिकार।" २

करत बहुरि जनु भक्त-परीक्षण,
भाषेउ अच्युत चितै पार्थ तन—

"गोप-सैन्य नारायणि नामा,
आनत, तुम मम विक्रम-धामा।
समर अन्तकहु-उर भयकारी,
रहिहै एक पक्ष सोइ सारी।
सैन्य-हीन मैं शस्त्र विहायी,
करिहौं पक्ष द्वितीय सहायी।
कहहु धनंजय! प्रश्न हृदय गुनि,
चहत निरायुध मोहिं कि वाहिनि!"
चकित सुनत हरि-वचन सुयोधन,
झलकेउ वाहिनि-लोभ विलोचन।
प्रतिपच्छिहिं हेरत उर धरकनि,
प्रविशी श्रुति-पथ पार्थ सुधा ध्वनि—
"सदा स्वामि-सांनिध्य उपासी,
भक्त न नाथ! विभव अभिलाषी।

दोहा :— *नारायण-रत पाण्डु-सुत, नारायणि-रत नाहिं,*
रहेउ काह अब लहि तुमहिं, महन योग्य जग माहिं!" ३

लीन्हे पार्थ निरस्त्र जनार्दन,
सस्मित हरि, विस्मित दुर्योधन।
लहि चतुरंगिणि चमू विशाला,
हिय अविवेकी हर्ष-विहाला।
पुलकित हलधर-मन्दिर जायी,
हरि-बंधुहिं हरि-कथा सुनायी।
सुनि संकर्षण बदन उदासा,
त्यागी कुरुजन-जीवन आशा।
विनती कुमति कीन्हि करजोरी—
"करहु सहाय नाथ! तुम मोरी।
करिहैं अब न समर यदुरायी,
सकत नाथ! मोहिं सहज जितायी।"
सुनत कुमत उर रोष अपारा,

"विभव-भूति पूजक, अविचारी,
वैर-वह्नि तुम निज कुल जारी।

दोहा — भयेउ तुमहि संतोष नहि, गृह-सौहार्द नसाय,
चहत सोइ भीषण अनल, यदुकुल देन लगाय।

प्रिय महि तुमहि, न बंधु पियारे,
हरि मोहन मम आँखिन तारे।
काह चराचर त्रिभुवन माहीं,
तजि जेहि सकहुँ कान्ह हित नाहीं।
महा मोह कुरुनाथ! तुम्हारा,
बंधु विमुख मम चहत सहारा।
सायुध होहिं कि आयुध हीना,
विजय सदा मम श्याम-अधीना।
हतेउ जबहि हरि यवनन-नाथा,
आयुध कवन गहेउ निज हाथा?
मगध महीपति हरि संहारा,
आयुध कवन हाथ निज धारा?
यहि रण भीम पार्थ बलवाना,
अस्त्र शस्त्र हरि-हाथ महाना।
होइहैं दारुण रण हरि-प्रेरे,
यथा बाण सारँग-धनु केरे।

दोहा — चहत निरायुध आपु रहि, रन तिनहिं यश श्याम,
लहि बाहन फूल फिरत, तुम कुबुधि अघ धाम।" ५

एम स्वभाव समुझि संकर्षण,
त्यागेउ सदन सुयोधन तत्क्षण।
कृतवर्मा निकेत पुनि आयी,
विनती कुरपति सोइ सुनायी।
बोलेउ चतुर भोजकुल नायक—
"समुझहु मोहि निज सुहृद, सहायक।

पै जाने बिनु हरि-मन काहा,
दै नहिं वचन सकहुँ कुरुनाहा!
मैं न रंच पाण्डव-अनुरागी,
सकहुँ न पै यदुनाथहिं त्यागी।"
यहि विधि सब कुल-नायक-भवनन,
याचत फिरेउ सहाय सुयोधन।
कहुँ हरि प्रीति, मानि कहुँ पार्थी,
कहुँ दोउ निरखि भ्रान्त कुरुरायी।
तर्क-वितर्क करत विधि नाना,
कीन्हेउ हतमति स्वपुर प्रयाणा।

दोहा :— *इत यदुकुल-नायक सकल, हरि-मत जानन काज,*
लखेउ जाय हरि-गृह विपुल, यादव युवक समाज। ६
रण-निदेश माँगत तरुण, मौनस्थित यदुराय,
उकसावत सात्यकि सबहिं, रहे राम समुझाय— ७

"मम मति कबहुँ न हरि-मन भायी,
दिन प्रति पाण्डव-प्रीति बढ़ायी।
मानि जो मत हरि लेत हमारा,
करतिउँ मैं मगधपति-संहारा।
जीतत हमहिं चतुर्दिक देशा,
वशवर्ती सब होत नरेशा।
राजसूय मख हमहिं रचावत,
यदुजन चक्रवर्ति-पद पावत।
कीन्ह हमहिं असुरन-सहारा,
आर्य-संघ-नेतृत्व हमारा।
छीनि ताहि हम ते हरि लीन्हा,
पाण्डव-हाथ प्रीति-वश दीन्हा।
धर्मराज यश यहहि कमावा,
दाँव राखि साम्राज्य गँवावा।
अब तेहि चहत लेन करि रारी,
बहिहैं आर्य-रुधिर-सरि भारी।

दोहा :— बूँदहु यादव-रक्त मैं, चहत गिरहि रण नाहिं,
रोपेउ जिन यह युद्ध-तरु, तेइ मृत्यु-फल खाहिं!" ८

सुनि हलि-वचन कहेउ यदुनाथा—
"बरनी व्यर्थ पुरातन गाथा।
नहिं साम्राज्य-योग्य जो पाण्डव,
औरहु तौ अयोग्य हम यादव।
तुच्छ स्यमंतक मणि हम पायी,
कलह निखिल यादव कुल छायी।
लोभहिं केहि न वास हिय दीन्हा?
केहि सन्देह न केहि पै कीन्हा?
कहत सत्य मैं, तुम सब साखी,
जन-हित सके न हम मणि राखी।
बल ते सकत राज्य हम पायी,
बिनु संयम नहिं सकत चलायी।
विस्तृत भरतखण्ड महि-शासन,
चलि कि सकत कहुँ बिनु अनुशासन?
प्रिय न पाण्डु-सुत, प्रिय मोहि त्यागा,
प्रिय मोहि शील, धर्म-अनुरागा।

दोहा :— सत्य बुद्धि, करुणा हृदय, नय दृग, सेवा हाथ,
धर्म-सुवन सम कहँ भुवन, धर्म-मूर्ति नरनाथ? ९

तात-निदेश तदपि सन्मानी,
निवसहिं यदुजन निज रजधानी।
उचित समर नहिं समरहि हेतू,
धर्म-रहित रण पाप-निकेतू।
धर्मराज मम श्रद्धा-भाजन,
भरिहैं भुवन सौख्य लहि शासन।
श्रद्धा आस जासु हिय नाहीं,
धरहि न चरण सो यहि रण माहीं।"
सुनत सहठ हलधर प्रतिभाषा,
"मम उर रंच न श्रद्धा आशा।

यदु युवक्न यह आज्ञा मोरा,
विनवहुँ सब गुरुजन कर जोरी,
जूझहिं-छीजहिं पाण्डव-कुरुजन,
जाय न रण ढिग एकहु यदुजन।"
कह युयुधान—"अटल प्रण मोरा,
करिहौं रण पाण्डव हित-घोरा।"

दोहा :— भाषेउ कृत—"मैं कुरुपतिहिं, वचन दीन्ह निज आज,
लेहौं-कुरुजन पक्ष जो, रोकहिं नहिं यदुराज।" १०

कहेउ विहँसि हरि धीर-शीर्ष-मणि—
"गवनहु लै सँग मम सब वाहिनि।"
अन्य काहु नहिं वचन उचारा,
हलि-आदेश सबन शिर धारा।
भयेउ तबहुँ नहिं रामहिं तोषा,
प्रकटेउ सात्यकि प्रति उर रोषा।
कहेउ दृगाग्नि कणहिं जनु जारी—
"अविदित नहिं मोहि कुमति तुम्हारी।
सात्यकि प्रति हिय द्वेष अथाहा,
लागेउ ताते प्रिय कुरुनाहा;
मिलत योग द्वारावति नाहीं
चहत निपातन तेहि रण माहीं।
लखि यह विषम बंधु विद्वेषा,
होत अशेष धैर्य मम शेषा!
सत्य कहत हरि यदुजन माहीं,
रचहु संयम शासन नाहीं।"

दोहा :— सुनेउ न एकहु बल-वचन, कृतवर्मा युयुधान,
त्यागि सभा सत्वर दुहुन, रण हित कीन्ह प्रयाण। ११

प्रतिकृति सकपण ट्र भारी,
कीन्ह शान्त हरि शोक निवारी।

करहु पर्यटन पुनि समुझावा,
हरि-मंतव्य राम-मन भावा।
तीर्थन हलधर कीन्ह प्रयाणा,
गवने अर्जुन सँग भगवाना।
पथ प्रसन्न यदुनाथ निहारी,
व्यथित पार्थ शुचि गिरा उचारी—
"लखि यदुकुल हम लागि विवादू,
होत नाथ! मम उर अवसादू।"
हँसि कह हरि— यदुवंश हमारा,
गुण निधि, अवगुण-पारावारा।
शौर्य शील पै अति उद्दण्डा,
दान-शील पै लोभ प्रचण्डा।
सत्य-शील पै भोग-विलासी,
धर्म-शील पै मद्य-उपासी।

दोहा — *वैभव पै संस्कृति-रहित, पठन तदपि अज्ञान,*
भरे सकल कुल-गर्व ते, तदपि अनैक्य महान।" १२

सुनि निर्लग्न वचन हरि केरे,
अर्जुन चकित सखा दिशि हेरे।
यहि विधि करत विविध आलापा,
गवनत दोउ, न पथ श्रम व्यापा।
विषय अनेक सरस गम्भीरा,
थकत न पूछि पार्थ मति-धीरा।
समुझावत, श्रुति शास्त्र-निधाना,
क्रम क्रम उपलव्य नियराना।
नृपन-निवेशन महितल छावा,
युद्ध वाद्य-स्वर श्रुति-पथ आवा।
सुनि सोत्साह सुअवसर जानी
भाषी प्राञ्जलि अर्जुन वाणी—
"चिर संचित इक मम अभिलाषा,
पूजहु आजु जानि निज दासा

करहु कृपा मोहिं पै जगवंदन,
हाँकहु समर-मही मम स्यंदन।"

दोहा:— भाषेउ यदुनंदन विहँसि, "तजहु सकुच निज तात।
ज्वलित हुताशन-सारथी, होन आहुती वात।" १३

सोरठा:—अर्जुन अंग उमंग, 'एवमस्तु' हरि-मुख सुनत,
सखा सहित श्रीरंग, प्रविशे धर्मात्मज-शिविर।

जुरे समर-सज्जित नरराजा,
उठेउ समाज लखत यदुराजा।
बद्धांजलि स्वागत स्वीकारी,
दृष्टि सभा-महिं यदुपति डारी—
कुल पाञ्चाल चतुर्दिक छावा,
द्रुपद-समुद्र उमहि जनु आवा।
शोभित धृष्टद्युम्न रणधारा,
सैनप चतुर शिखण्डी वीरा।
सत्यजितहु सुर-दल-आकारा,
अन्य विपुल पाञ्चाल-कुमारा।
शोभित पुत्र-प्रपौत्र घनेरे,
क्षत्रदेव आदिक नृप नेरे।
शोभित अमित द्रुपद-सामन्ता,
युधामन्यु, रण-जयी जयन्ता।
सोह -उत्तमौजा बलवाना,
रथिगण-अग्रगण्य, धनुमाना।

दोहा:— शोभित सभा विराट नृप, बल-विक्रम-आगार,
शोभित उत्तर, शंख दोउ, पितु सँग राजकुमार। १४

शोभित करे वीर-रस-प्रेरे—
कुँवर पाँच, केकेय-नृप केरे।
चेकितान तिन माहिं अमर्षी,
महारथी, दारुण-शर-वर्षी।

शोभित वृद्ध महिप रुचिमाना,
अश्वमेध जेहि कीन्ह महाना।
शोभित वार्द्धक्षेमि अवनीशा,
यादव कुन्तिभोज कुन्तीशा।
शोभित वाराणसी-भुआला—
सेनाबिन्दु समर-विकराला।
शोभित मनहुँ शौर्य साकारा—
धृष्टकेतु शिशुपाल-कुमारा।
शोभित सहदेवहु मगधेशा,
सँग सेनप सामन्त अशेषा।
शोभित श्रेणिमान महिपाला,
अगणित क्षत्रिय म्लेच्छ भुआला।

दोहा.—नृप चित्रायुध, सत्यधृत, चन्द्रसेन, वसुदान,
शोभित भीमहु, माद्रिसुत, शूर-श्रेष्ठ युयुधान। १५

सोरठा:—धर्म महीप समीप, राजत द्रौपदि-पुत सकल,
सौभद्रहु कुल-दीप, कार्तिकेय जनु सुर-सभा।

शिविर ताहि क्षण लिये सँदेशा—
कीन्हेउ कौरव-सचिव प्रवेशा।
सुत-सुवन संजय मतिमाना,
सुर गुरुसम नय-नीति-निधाना।
प्रीति धर्मनंदन प्रकटायी,
पूछी वंश-क्षेम-कुशलाई।
सविनय संजय वचन सुनावा—
"द्विज जो संजय-राज पठावा।
नेह, नात, नय तिन बिसरायी,
पुनि पुनि समर-भीति दरसायी।
विकल बोलि मोहि वृद्ध भुआला,
पठयेउ दै सँदेश तत्काला।
द्रुपद, विराट, देवकी-नंदन—
परम नरेश भवन अभिनंदन।

पूछन— अछत आपु यदुनाथा,
परी श्रवण मम कस रण-गाथा ?

दोहा :—पाण्डव धर्म-धुरीण सब, धैर्य-निधान, उदार,
सत्य-शान्ति-व्रत धर्मसुत, अनासक्ति साकार। १६

करत सो आजु हीन कस कर्मा ?
त्यागत धर्म-पुत्र कस धर्मा ?
जुरे दोउ दिशि विपुल भुआला,
जरन चहनि युद्धानल ज्वाला।
निश्चित विजय पराजय नाहीं,
निश्चित जन-क्षय यहि रण माहीं।'
ताते विनती नृपति सुनायी—
विग्रह-वार्ता देहु विहायी।
अब लगि सदा निदेश हमारा,
धर्म, भुआल शीश निज धारा।
अजहुँ मोहिं गुनि अघ, अभागी,
करहिं अभय मम सुत मम लागी।
दशा मोरि मोरेहि गृह माहीं,
जानत जगत, गोप्य कछु नाहीं।
वश नहिं मम दुश्शील सुयोधन,
चहत कुलहु निज संग विनाशन।

दोहा :— धर्म-सुनहि ते मैं सपुत, मोहि असहाय विचारि,
काल गाल ते कुल निखिल, अबहुँ लेहु उबारि,।, १७

सुनत अंध पितृव्य-सँदेशा,
द्विविधा-हत-धृति धर्म नरेशा।
अनुनय दिशि नृप लखेउ सशोका,
सस्मित अर्जुन-वदन विलोका।
क्षुब्ध अन्य बंधुहु अवलोके।
जरत रोष-वश गात भीम के।

गुनत परिस्थिति नृप मन माहीं,
चहुँ दिशि लखत, कहत कछु नाहीं।
नृपति-धर्मसंकट पहिचानी,
संजय चतुर कही पुनि बाणी—
"रहेउ अंत जो युद्धहि कर्मा,
सहे कष्ट पन कस धरि धर्मा?
रहेउ ध्येय जो वंश-विनाशा,
बने विराट-भवन कस दासा?
जेहि दिन मानन कुरुजन कीन्हा,
करि रण राज्य न कस तब लीन्हा?

दोहा:— करि भिक्षाटन वरु सुजन, धारत तन निज प्राण,
करत न पार्थिव-विभव हित, आनन रक्तस्नान!" १८

धर्म-नृपति सुनि, धीरज धारी,
लखि सचिवहिं शुचि गिरा उचारी—
"वैभव महि नहिं, त्रिभुवन-राजू,
जो कछु निखिल विश्व सुख-साजू,
ब्रह्म-पदहु निज धर्म बिसारी,
सपनेहु मैं न सकहुँ स्वीकारी।
प्रिय नहिं कछु जस धर्म पियारा,
चहत शान्ति तें मैं अधिकारा।
मिलहि सशान्ति मोहिं जो थोरा,
मिलहि अधिक करि कर्म कठोरा,
करिहौं स्वल्प स-सुख स्वीकारा,
उर न तात! मम लोभ पसारा।
पै जो सुनी आजु मैं बाणी,
उपजेउ मन संशय, उर ग्लानी।
निश्चय नृपति कीन्ह मन माहीं,
रंचहु देन चहत मोहिं नाहीं।

दोहा:— रहेउँ मौन सोचत हृदय, उचित युद्ध या भीख,
विद्यमान भगवान यहँ, देहि उचित मोहि सीख। १९

हरि से अधिक नयानय-ज्ञाना,
संसृति माहिं आजु नहिं ताता!
तिन समक्ष दोउ पक्ष समाना,
चहत क्षेम, नहिं क्षय भगवाना।
भार समस्त धरत तिन शीशा,
देहिं निदेश मोहिं जगदीशा।"
सुनि यह हरहिं प्रशमत संजय—
"नासहु नाथ! मोह, भय, संशय।"
लखि कौशल निहँसे यदुवीरा,
कहत बचन पुनि वदन गँभीरा—
'दूत-धर्म संजय शिर धारा,
धर्माधर्म विवेक विसारा।
बसेउ स्वामि हित अस मन माहीं,
राखेउ ज्ञान, ध्यान कछु नाहीं।
कहहु कवन श्रुति माहिं निदेशा,
केहि ऋषि कहाँ दीन्ह उपदेशा,

दोहा —*धर्म-शास्त्र कहँ जो कहत, शान्ति अहिंसा काज,*
भिक्षाटन क्षत्रिय करहिं, प्रतिपक्षिन दे राज। २०

दारुण, क्रूर जदपि रण-कर्मा,
शास्त्र विहित सोइ क्षत्रिय-धर्मा।
करि तप पावत गति जो मुनिजन,
लहत धर्म-रण सोइ शूरगण।
कर्महिं माँहिं निहित भव-मर्मा,
नहिं स्वधर्म ते बढ़ सद्धर्मा।
रवि करि धर्म उअत आकाशा,
लहत निखिल यह लोक प्रकाशा।
धर्म-प्रभाव अनल-उत्तापू,
वहत प्रभंजन कर्म-प्रतापू।
करत स्वधर्म व्योम घन छावत,
बरसत तृपित जगत सरसावत।

इन्द्र, कुबेर, वरुण, यमराजू,
करत निरालस निज निज काजू।
कर्महिं सृजन-बीज, आधारा,
चलत कर्म-बल यह संसारा,

दोहा :— *कर्म करत सोई जियत, अकर्मण्य निष्प्राण,*
लहत कि कबहुँ कर्म बिनु, मुनिहु मोक्ष-निर्वाण ? ८५

जन-संरक्षण क्षत्रिय-धर्मा,
दस्यु-दमन पाण्डव कुल-धर्मा।
देत तिनहिं संजय उपदेशू—
सौंपहिं दस्यु-हाथ निज देशू ?
अघ-बल लहि शासन कुरु लोगू,
करहिं नित्य नव वैभव भोगू।
पाण्डव-पुत्र निज धर्म बिहायी,
माँगत भीख भ्रमहिं जग जायी !
यह नहिं धर्म, धर्म-अभिशापू,
संजय साधु सिखावत पापू !"
सुनि हरि-वचन सचिव सकुचाना
कहि—'धिक् दौत्य'—हृदय पछताना।
लखत प्रभुहिं, पद प्रीति अगाधा,
सकत न कहि—नहिं मम अपराधा।
निरखि दशा हरि कह मुसकायी—
'देहु सँदेश नृपहिं यह जायी—

दोहा :— *चहत पाण्डुसुत रक्षा मैं नहिं जन-नाश अनर्थ,*
वेगि वृद्ध नृप-धाम मैं, अइहौं बनि मध्यस्थ !" ८६

गजपुर संजय गये सुखारे,
निज-निज शिविरन नृपहु सिधारे।
लहि एकाकी हरिहिं नरेशा,
प्रकटेउ हृदय सयमित क्लेशा—

"गजपुर गमन नाथ ! मन कीन्हा,
बूड़त मोहिं उबारि जनु लीन्हा।
वृद्ध नृपहिं समुझाय बुझायी,
देहु वाहु विधि संधि करायी।
संतत जदपि धर्म पथ-गामी,
मंद भाग्य को मम सम स्वामी ?
मातु, भ्रात, पत्नी, सुत मारे,
मोरहि छीनि छत्र-वित्त, दुलारे।
यहन अधर्म नाथ ! महि-त्यागा,
भीषण युद्ध-मार्ग मोहिं लागा।
शान्ति-यत्न निष्फल जो होई,
सकिहि रोकि समर नहिं कोई।

दोहा:—श्वान-रारि नृप-युद्ध मोहिं, लागत एक समान,
मही-खण्ड हित नृप लरत, मास-खण्ड हित श्वान ! १२

करत श्वान हू शान्ति-प्रयासू,
पूँछ नवाय चहत इक मासू।
निष्फल-यत्न दशन दरशावत,
रोष करत, भूँकत, चढ़ि धावत।
बली छीनि बल-विरहित मासा,
खात सगर्व प्रकटि उल्लासा।
सोइ सब श्वान-वृत्ति नृप माहीं,
नर-वर्चस्व दिखत कहुँ नाहीं।"
विहँसे सुनत मोह-मद-भंजन,
"उचित तात ! नहिं आत्मप्रवंचन,
श्वानन नाहिं नयानय-ज्ञाना,
भखत निज-पर मानि समाना।
चहत हरन नहिं हम कुरुराजू,
निज स्वत्वहि माँगत तुम आजू।
गहि जब श्वान-कुवृत्ति अराती,
हरि सर्वस ग्रासत दिन राती.

दोहा:—रहत शान्त जे नर नयहु, करि वर्चस्व बखान,
वंचक, श्वानहु ते पतित, रहित आत्म-अभिमान। २४

समर बगावन हित मैं सारे,
करिहौं यत्न अमर्ष बिसारे।
फलहिं जो यह कृत्य हमारा,
मिलहिं जो रण बिनु स्वत्व तुम्हारा।'
पुण्य मोहि, कुरुजन-कल्याणा,
प्रजा-नृपन-गृह मंगल नाना।
हुलसत पै न तात! मन मोरा,
कुरुपति हठी, वैर उर घोरा।
भीष्माधिक आपुहिं भट मानत,
अर्जुन ते बढ़ि कर्णहिं जानत।
गुनि निज जय निश्चित रण-प्रांगण,
चहत युद्ध, नहिं संधि सुयोधन।
ताते वीर-वृत्ति अपनायी,
हिय-द्विविधा अब देहु विहायी।
जोरि वाजि, गज, सैनिक, स्यंदन,
करहु पूर्ण निज रण आयोजन।"

दोहा:—यहि विधि बोधि युधिष्ठिरहिं, कहेउ बोलि युयुधान—
"राखहु साजि सशस्त्र रथ, करब प्रात प्रस्थान।" २५

नखत रेवती, कार्तिक मासू,
कीन्हेउ मैत्र मुहूर्त प्रवासू।
दारुक प्रात शिविर रथ लावा,
सात्यकि सहित हरिहिं बैठावा।
मेरु-शिखर सम शोभित स्यंदन,
राजत सुरपति सम यदुनंदन।
जुरे विदा हित जन, अवनीशा।
पढ़त वेद द्विज, देत असीसा।
सहमा सरसिज सुरभि सोहायी,
भरति मही-नभ तेहि थल छायी।

शिविर आर यदुनाथ निहारा,
मिलपति द्रुपद-सुता पग धारा।
कुन्तल मुक्त [illegible] धूर ढाला—
कुरु-कुल-काल-व्याल विकराला!
बाली हरिहि बिलोकि, बिहाला,
दृग-जल बहेउ वदन घनि ज्वाला—

दोहा:—"करत लगहि अरि-संग जब, सधि आपु त्रिश्वेश,
दुश्शासन-कंपित अभो! बिसरहि नहि ये केश। २६

चहत न रण जो धर्म भुआला,
भीमहु मौन गही यहि काला,
भया जो पार्थहिं शान्ति पियारी,
धृत्ति जो मोइ माद्रि-सुत धारी,
चाह न तुमहिं शान्ति यदुरायी,
करिहैं मम सब स्वजन सहायी।
यद्यपि वृद्ध द्रुपद महाराजा,
क्रुद्ध, युद्ध करिहैं मम काजा।
महारथी मम भ्राता सारे,
होइहैं शान्त न बिनु अरि मारे।
पाँचहु पुत्र मोर अब योद्धा,
लैहैं युद्ध मातु-प्रतिशोधा।
शौर्य-राशि अभिमन्यु हमारा,
रण कटि-बद्ध, चहत प्रतिकारा।
सबहि करौं रोकि समर गति ताकी,
सकल नास अरि-कुल एकाकी।

दोहा:—जब लगि दुश्शासन जियत जयत अधम कुरुराज,
तब लगि वसुधा-पृष्ठ नहि, [illegible] अहिंसा काज।" २७

भाषे कृष्णा वचन अँगारे,

साधुवाद मुनि द्विजजन दीन्हा,
सिंह-निनाद शूरगण कीन्हा।
बोध-भरी हरि दृष्टि उठायी,
द्रुपद-सुता हिय-दाह मिटायी।
जय-आवेश, रोष-रव छावा,
दारुक स्यंदन तबहिं चलावा।
चक्र क्रान्त मेदिनी काँपी,
गति-ध्वनि अंतराल भरि व्यापी।
गवनत हरि यदु मंगल-मूला,
बोलत उड़े विहग अनुकूला।
दिशा प्रशान्त, विमल आकाशा।
शीतल मंद बहेउ वातासा,
पथ दुहुँ ओर अपार जुरे जन,
बरसत सुमन, करत जय निःस्वन।

दोहा—सम्मानित प्रति पुर निगम, ग्राम-ग्राम घनश्याम,
बिरमि वृकस्थल कान्ह निशि, सात्यकि सह विश्राम। ९८

उत गजपुर हरि करत प्रयाणा,
अशकुन भये भयंकर नाना।
निज दूतत्व-वृत्त सब जेहि क्षण,
बरनत संचय नृपति निकेतन,
करि शत-शत तरुवर उत्पाटन,
सहसा भीषण बहेउ प्रभंजन।
नभ अनभ्र अंभोधर गर्जन,
तड़ित तड़क, दारुण जल-वर्षण।
धुन्ध अपार, दिशि जानि न जाहीं,
व्याप्त निशा-तम बासर माहीं।
भूमि प्रकम्प, पुरी आतंका,
विकल वृद्ध नृप, उर भय शंका।
वृत्त बहोरि गुप्तचर लाये—
"साँझ वृकस्थल यदुपति आये।"

सुनत अंध विस्तारी माया,
कहत वचन रोमाञ्चित काया

दोहा :—"पूज्य मोर यदुराज ये, करन चहहुँ सत्कार,
करहु वृकस्थल ग्राम लगि, अबहिं मार्ग-संस्कार। २६

मलयज चंदन वर्त्म सिंचायी,
ध्वजा-पताकन देहु सजायी।
रचहु निवास सुखद प्रति ग्रामा,
पठवहु भोग वस्तु अभिरामा—
पेय सुवासित, षट् रस व्यंजन,
वसन, विभूषण, मणि-मय आसन।
पुरिहु सजावहु स्वागत हेतू,
आपण, रथ्या, पंथ, निकेतू।
करहिं सुवन शत मम अगवानी,
लावहिं भवन अतिथि सन्मानी।
कृष्ण समर्थ प्रभाव अनंता,
कहत कोउ-कोउ ये भगवंता!
प्रबल पाण्डुसुत इनहिं सहारे,
कबहुँ न कृष्ण-वचन तिन टारे।
आवत आजु सदन यदुरायी,"
होहिं प्रसन्न करहु सोइ जायी।

दोहा :—भीष्म द्रोण विहँसे सुनत, अघ नृपति-उद्गार,
कहत विदुर—'विभु साथ नहीं, उचित तात! व्यापार।" ३०

रचहु तुमहिं न प्रभु-पद-प्रीति,
विस्तारत व्यर्थहि नृप-नीती।
यहि ते अधिक काह अज्ञाना—
चहत लोभावन तुम भगवाना!

प्रिय अति हरिहिं हृदय सरलाई,
होत विरक्त लखत चतुराई।
करहु विचार त्यागि छल माया,
आवत शान्ति हेतु यदुराया।
एकहि विधि श्रीहरि-सरनागा—
पावहिं पाण्डव निज अधिकारा।
यहि ते अधिक धर्म नहिं दूजा,
यहि ते बढ़ि नहिं यदुपति-पूजा।
मनत न जो यह हृदय विचारा,
विफल सकल सत्कार प्रसारा।

दोहा:—*अहिदिन करहि प्रयत्न कोउ त्रिभुवन विभव दिखाय,*
धर्म, धर्मसुत त कबहुँ, सकत न हरि बिलगाय।" ११

बोलेउ सुनतहि सुदिन सुयोधन—
"आँजुहि इन भाषी जो मम मन।
पार्थ सांथ यदुनाथ मिताई,
सक्त न दुहुन कोउ बिलगाई।
संधि शान्ति नहिं मोर विचारा,
व्यर्थ प्रबध, साज, सत्कारा।
चहत देन कृष्णहिं तुम जो धन,
होइहैं वश तेहि बल बहु नृपगण।
पाण्डु-तनय-मातुल मद्रेशा,
रण हित चलेउ पाय सन्देशा।
करि पथ पै स्वागत सेवकाई,
लीन्ह मद्रपति मैं अपनाई।
होइहैं नहिं यदुपति वश माहीं,
नामघ उचित धान्य धन नाहीं।
जानि एक पाण्डव यदुराजू,
जइहौं नहिं मैं स्वागत-काजू।"

दोहा:—*भाषेउ सुरसरि-सुत सुनत, "धारहु उर कुछु लाज,*
तुमहि भवन सामानि निज, पजिनि दीह यदुराज।" १२

सुनतहि समद सुयोधन भाखा,
वचन कृतघ्न लाज तजि भाखा—
यदुपति-कीर्ति विदुर बहु गायी,
हृदय-थाह पै मैं सब पायी।
यहि दूतत्व-सफलता लागी,
करन हेतु मोहिं निज अनुरागी,
तटस्थता प्रकटित निज कान्हा,
चाहिनि कुटिल कृष्ण मोहिं दीन्हाँ।
उघरेउ सो रहस्य सब आजू,
आवत पाण्डव हित यदुराजू।
पै दृढ़ निश्चय मम मन माहीं,
तजि जय-मृत्यु अन्य गति नाहीं।
चहत जो गुरुजन मम तन त्राणा,
सोचहिं जय-उपाय विधि नाना।
युक्ति एक मैं हृदय विचारी,
जेहि ते सहजहि विजय हमारी—

दोहा:—*करिहौं बंदी यदुपतिहि, बसिहैं जब मम गेह,*
तिन बिनु निश्चय शत्रु-क्षय, विरहित असु जिमि देह। ३३

कोपित उठे पितामह ताता—
"कीन्ह न कस मोहिं बधिर विधाता।
हृदय-क्षुद्रता निज प्रकटायी,
हरि-हिय-थाह कहत मैं पायी!
यह कुल-काल, बुद्धि विधि-प्रेरी,
वंश-विनाश न अब कछु देरी।
लहि चरणोदक जासु मुनीशा,
धारत पुण्य चरनि निज शीशा,
सोइ हरि अतिथि-रूप गृह पायी,
करन चहत पामर अधमाई।
आततायि यह पातक-राशी,

डर जो राजन ! वंश-भलाई,
विष सम यह सुत देहु बिहाई।"
अस कहि विदुर द्रोण लै साथा,
गवने भीष्म त्यागि नरनाथा।

दोहा :—समुझायेउ पितु भाँति बहु, सुना न जब कुरुराज,
पठये नृपति अन्य सुत, यदुपति स्वागत-काज। ३४

विगत निशीथ वृकस्थल ग्रामा,
जागे उत प्रभात घनश्यामा।
अनुचर-निकर अपार निहारे,
लागे भोग्य वस्तु अँवारे।
सुनि नरेश धृतराष्ट्र-पठाये।
शिष्ट शब्द कहि प्रभु लौटाये।
पथ सर्वत्र सोइ सत्कारा,
बढ़े करत हरि अस्वीकारा।
जैसेहि कौरव-पुर नियराना,
जनु जन-उदधि उमहि लहराना।
सुषमा, शील, शौर्य, यश-कर्षित,
आवनि चली पुरिहि जनु प्रमुदित।
पाण्डव-प्रेमी जानि प्रजाजन,
हुलसेउ विभव-विरक्त हरिहु मन।
तजि इक कुरुपति, कुलजन सारे,
भेंटे प्रभुहिं आय पुर-द्वारे।

दोहा :—द्रोण, कर्ण, द्रौणी, विदुर, कृप, शान्तनु-सुत साथ,
सुमन-वृष्टि, जय-ध्वनि सहित, प्रविशे पुर यदुनाथ। ३५

राजद्वार जब स्यंदन आवा,
वृद्ध नृपति-पद हरि शिर नावा।
दै उपहार महार्घ अनेकन,
नृपहु कीन्ह बहु नेह प्रदर्शन।

अर्घ्य-पाद्य-जल-कलश विहाया,
फेरे सविनय, सब यदुराई।
'निवसहु गृह', नृप आग्रह कीन्हा,
उत्तर समुचित यदुपति दीन्हा।
पाण्डु-सुवन-कुल-क्षेम सुनायी,
पूछी वंश प्रजा कुशलाई।
करि संभाषण, हास-प्रहासा,
गये विदुर-गृह कुन्ती पासा।
परसे पितृ-स्वसा पद यदुपति,
करुणाहि पाण्डव-माता साकृति।
हरि-मुख लखति जननि अकुलानी,
बाष्प-वारि-विशृंखल वाणी।

दोहा—*सुतन-कुशल पूछी विकल, कुन्ती शत-शत बार,*
करत वधू-सुधि घति बही, जनु वनि दृग-जल-धार। ३६

शोधि पृथा, लै सात्यकि साथा,
गये सुयोधन-गृह यदुनाथा।
नव गृह वृहत पर्वताकारा,
कला-विहीन, विलास अपारा।
कतेउ असितमणि-मण्डित आसन,
शोभित सानुज समद सुयोधन।
शकुनि, कर्ण, प्रिय जन आसीना,
गायन - वाद्य - हास्य - रस - लीना।
उठेउ समाज लखत यदुराजू,
स्वागत आपु कीन्ह कुरुराजू।
करि बहु मिथ्या प्रणय-प्रदर्शन,
भोजन हेतु दीन्ह आमंत्रण।
कीन्ह न जब यदुपति स्वीकारा,
वचन सुयोधन परुष उचारा—
"सम्बन्धी तुम तात ! हमारे,
उभय-पक्ष सम पितर पियारे।

दोहा—कीन्हउ पच दुरजन कहाँ यदुपति अपकार ?
लखहु जो नहि मम करत, यदुपति अंगीकार।" ३७

सुनि वच धृग दीन्ह यदुरायो,
उत्तर नीति-युक्त मुसकायो—
"दुष्कर दूत-कर्म कुरुनाहा!
होत न बिनु विरति निर्वाहा।
प्रिय कार्य बिनु दूसन राती,
करत ग्रहण नहिं पूजा-गीता।"
सुनि दुलारत हृदय नहिं तोषू
पूछत बहुरि, एक मुख रोषू—
'विदित माहिं तुम नीति-निधाना,
हेतु न आत दहत म जाना।'"
हरसि प्रिय मग रहहिं नहि भावा,
प्रभु राद अप्रिय सत्य सुनावा—
'कच जो शिर वचन मम नाहीं।
सुनहु कहहुँ जो मम मन माहीं,
परि विपत्ति अथवा वश प्रीती—
खात पराग सुजन जग-रीती।

दोहा—मोहि सग प्रीति तुम्हारि नहि विपति ग्रस्त मैं नाहि,
केहि कारण भोजन करहुँ, कम निवसहुँ गृह माहि। ३८

यदु-नाग तुम कुल ते छीना,
दे वल्कल पठये वन दीना।
लोभिहिं प्रीति काहु ते नाहीं,
स्वार्थहि इक निवसत मन माहीं।
कूप हस्तछूत जलकण जैसे,
सधृत-आशय लोभिहु तैसे।
अघ अर्जित धन विभव तुम्हारा,
कुत्सित नर, दूषित सत्कारा।
दूषित अन्न खलन कर खायी,
सकत न सुरहु प्रभाव बरायी।

छमहु मोहिं,"—भाषेउ यदुवीरा,
सुनि कौरव-पति क्षुब्ध, अधीरा।
लखि सर्वाङ्ग तासु रिस-आगी,
त्यागेउ गेह विदा हरि माँगी।
तजि शान्तनु-सुवनहु-पहुनाई,
भोजन कीन्ह विदुर-गृह जायी।

दोहा :— *तृप्त पाय निज भक्त-गृह, सरल स्वच्छ आहार,*
शयन समय प्रकटे विदुर, हरिहि हृदय-उद्गार—३९

"प्रभु दर्शन मोहिं मङ्गलदायक,
पावन भवन कीन्ह यदुनायक।
तदपि आजु कुरु-पुरी पधारे,
ध्येय जो नाथ ! हृदय निज धारे,
होइहै पूर्ण न सो यदुराजू !
गजपुर जुरेउ असाधु समाजू।
सुताधीन धृतराष्ट्र कुटिल मन,
उद्धत, इन्द्रिय-निरत सुयोधन।
आपु मान-प्रिय पर-अपमानी,
क्रूर, कृतघ्न, हठी, अभिमानी।
भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा,
कर्ण, जयद्रथ सकल सकामा।
पाप-वृत्ति सब, कुरुपति-दासा,
राखहु नाथ ! न तिन ते आशा।
जात द्रोण कछु कबहुँ रिसायी,
देत भीष्म कटु शब्द सुनायी—

दोहा :— *इतनिहि इनहि स्वतन्त्रता, दै राखी कुरराय,*
सहत सोउ धरि आस उर,—करिहैं समर सहाय। ४०

ये हू प्रीति नीति दोउ त्यागी,
करिहैं अंत समर तेहि लागी।

कर्ण पाण्डुसुत-द्वेष पयोनिधि,
देहि होन न संधि काहु विधि।
अग्रज सम कुरुपति तेहि मानत,
लोक-त्रयैक धनुर्धर जानत।
सँग विशाल वाहिनि अब लायी,
भये भुआलहु विपुल सहायी।
ये नरनाहहु दुर्मति सारे,
बढ़े पूर्व मगधेश सहारे।
आपु, पाण्डु-सुत दोउन संगा,
खोजत नित सब वैर-प्रसंगा।
एक न अस सुनिहै जो नीती,
करहि न कोउ अनर्थ मोहि भीती।
ताते नाथ! कहहुँ कर जोरी,
जाहु न सभा विनय सुनि मोरी।

दोहा :— *शान्ति-यत्न निष्फल सकल, निश्चित तहँ अपमान,*
लौटि जाहु पाण्डव-शिविर, होत प्रात भगवान!" ४१

सुनि भाषेउ धृति धर्म निधाना,
"हितू न तुम सम महि मम आना।
तदपि तात! निज काज अकाजू,
करि नहि सक्त विरत मोहि आजू।
जानत मैं कुरुपति अधमाई,
जानत भीष्म द्रोण असहायी।
जानत छद्मत भाव कर्ण के,
जानत नृपतिन शाठ्यहु नीके।
पै यहि सब समाज महँ ताता,
एक न अस नहि जेहि सँग नाता!
समर-समुद्यत, रक्त-पियासी,
दिशि दोउ जुरी आर्यजन राशी।
सकहि निवारि महा क्षय जोई,
पुण्यश्लोक न तेहि सम कोई।

करन हेतु चहु जन कल्याणा,
सहिहौं सब अविनय, अपमाना।

दोहा :— *करिहै कोउ अयुक्त जो, मरिहै सात्यकि-हाथ,*
जानहु नहि असहाय मोहिं",—कहि विहँसे यदुनाथ। ४२

यहि विधि पुनि पुनि तोषि भक्त-मन,
सोये सुख निर्द्वन्द्व जनार्दन।
सुनि प्रभात वैतालिक-वाणी,
जागे यदुपति, निशा सिरानी।
बाजत वाद्य मनोहर नाना,
शय्या प्रमन तजी भगवाना।
कृत-सम्पन्न प्रात शुचि मज्जन,
हवन द्विजोचित सन्ध्योपासन,
सुन्दर वसन-विभूषण धारे,
देव द्विजन हरि दान सुखारे।
कृतवर्मा शकुनिहिं लै साथा,
आयेउ ताहि समय कुरुनाथा।
बोलेउ हठि-पितु-प्रेषित अनमन,
प्रकट विनम्र, सव्यग सुयोधन—
"जोहत सुरपति-पथ जिमि सुरगण,
प्रभु-पथ रहे हेरि तिमि कुरुजन।"

दोहा :— *सुनि विहँसे हरि, गेह तजि, निकसे जैसेहि द्वार,*
निरखी तहँ जन-राशि महँ, यदुजन-भीर अपार। ४३

वाहिनि जो कुरुराजहिं दीन्ही,
लीन्हे शूर तासु हरि चीन्ही।
हेरि तिनहिं, पुनि हरिहिं सममी,
चितयेउ सात्यकि-दिशि कृतवर्मा।
समुझि रहस्य हरिहु मुसकाये—

स्यदन निज निवसे यदुबीरा,
वाजी किंकिणि, वाजि अधीरा।
बैठारे विदुरहु हरि साथा,
निज रथ बसे शकुनि कुरुनाथा।
यदुजन, कृतवर्मा, युयुधाना,
विविध यान चढ़ि कीन्ह प्रयाणा।
उड़ेउ गरुड़-ध्वज रथ-गति संगा,
प्रमुदित सुहृद, शत्रु-मन भंगा।
स्वस्ति-गिरा द्विजवृन्द उचारी,
बरसत सुमन, शंख-ध्वनि भारी।

दोहा :— *सभा-भवन-द्वारहु जुरेउ, प्रजा-पयोधि अपार,*
करत जनार्दन-जय सहित, धर्मराज-जयकार। ४४

भरित भक्ति-रस शान्तनु-नंदन,
धाय कीन्ह यदुपति-अभिनंदन।
रथ अवतरित सोह यदुराजू,
जनु उदयाद्रि-त्यक्त द्विजराजू।
अभिमुख सुरसरि-सुत यदुनाथा,
जनु सँग उदित शुक्र शशिनाथा।
प्रविशत सभा निरखि घनश्यामा,
उठे नृपति शत करत प्रणामा।
वृद्ध भूप-पद प्रभु शिर नायी,
लखीं दिशा दश दृष्टि उठायी।
निरखे नारदादि नभ मुनिजन,
मुदित पितामहिं कहेउ जनार्दन—
"विग्रह-संधि-विमर्श हमारा,
सुनन हेतु मुनिजन पगु धारा।"
सुनत भीष्म रत्नासन आनी,
बैठारे ऋषि-मुनि सन्मानी।

दोहा :— *उच्चासन सोहे सभा, बहुरि आपु यदुराज,*
तस कार्तस्वर मध्य जनु, जटित नीलमणि राज। ४५

अभिनव वारिद-सुन्दर श्यामा,
दामिनि पीत वसन अभिरामा।
हृदय हार मौक्तिक जल-धारा,
चातक नृप-समाज जनु सारा।
गर्जन गिरा. धीर गम्भीरा,
वृद्ध नृपहिं लखि कह यदुवीरा—
"विश्रुत भरत-वंश तुम भूपण,
वय-विज्ञान-वृद्ध, गत-दूपण।
विग्रह-शमन मोर उद्देशू,
लायेउँ सभा शान्ति-सन्देशू।
मिलहिं वहुरि दोउ कुरुजन पाण्डव,
भोगहिं वद्ध-नेह महि वैभव,
वचहिं भयावह वीर-विनाशा,
यह मम आस, यहहि अभिलापा।
यहहि धर्म, यह नीति उदारा,
रुकहि काहु विधि नर-संहारा।

दोहा :—*शौर्य, दान, विद्या, विनय, सत्य, धर्म-व्यवहार,*
भरतखण्ड दिशि दिशि विदित, भरतवंश-आचार। ४६

अछत आपु निर्मल कुल माहीं,
होय अनीति उचित यह नाहीं।
प्रकटि तुमहिं, पुनि कबहुँ दुरायी,
तनय तुम्हार करत कुटिलाई।
करि निमित्त तिन तुमहिं नरेशा!
हरेउ धर्मसुत-धन, जन, देशा।
सहेउ सोउ तिन धर्म विचारी,
गवने वन निदेश शिर धारी।
वर्ष त्रयोदश सहि दुख नाना,
कीन्ह पूर्ण प्रण, वैर न माना।
करत विनय, माँगत अब राजू,
दिये क्षेम, नहिं दिये अकाजू।

रण-घन घुमड़ि देश-नभ छाये,
गर्जत राज-प्रजहिं डरपाये।
शोणित धरणि चहत बरसावन,
चहत शान्ति, सुख, शौर्य नसावन।

दोहा :— *सर्वनाश रोकहु नृपति! सुत निज लेहु सँभारि,*
सकल मृत्यु-मुख ते तुमहिं, शूर-समाज उबारि। ४७

छल-बल जीति मही यह सारी,
प्रभुता निज असुरन विस्तारी।
आर्य-धर्म-आचार विनासी,
थापी असुर-नीति अघ-राशी।
कछुक मोह-वश, कछु वश भीती,
कीन्हि नृपन असुरन सँग प्रीती।
आर्य-जनहु तजि आर्याचारा,
सीखे हीन असुर-व्यवहारा।
बजेउ अबाध मगधपति-डंका,
छायेउ काल यवन आतंका।
बचे दोइ कुल भारत माहीं,
नत जिन कीन्ह शीश निज नाहीं।
शान्तनुसुवन-बाहु-बल पायी,
लीन्ह भरत कुल मान बचायी।
यदुकुल कस धर्म निज त्यागा,
भयेउ मगधपति-दास अभागा।

दोहा :— *कृतवर्मा, सात्यकि तदपि, उद्धव बुधि-बल पाय,*
कुल-गौरव स्वातंत्र्य कर, राखेउ दीप जराय। ४८

लहि मधुपुर पुनि इनहिं सहायी,
नासेउँ कंस त्रास मैं आयी।
बार अष्ट-दश मगध नरेशा,
चढेउ सदल-बल माथुर देशा।

जन्म-मही निज यदुजन त्यागी,
भये न तदपि असुर-अनुरागी।
सुनि यवनेश्वर काल-विनाशा,
बहुरि प्रबल भौमासुर नाशा,
जनु सहसा संजीवनि पायी,
नवस्फूर्ति भरि भारत छायी।
किये व्यास ऋषि यत्न अपारा,
भयेउ बहुरि श्रुति-धर्म प्रचारा।
जागेउ उर-उर असुर-विरोधा,
पुर-पुर ग्राम-ग्राम प्रतिरोधा।
तबहिं भरत-कुल कीन्हि सहायी,
बधेउ भीम मगधेशहिं जायी।

दोहा :— *भरतवंश-वैशिष्ट्य हम, यदुवंशिन स्वीकारि,*
दीन्ह तुमहिं सम्राट-पद, हृदय राष्ट्र-हित धारि। ४६

पुनि राज्यैक्य राष्ट्र निज पावा,
नूतन ओज आर्य-तनु छावा।
धर्म नरेशहिं दै सन्माना,
प्रतिनिधि-मात्रहि हम निज माना।
रचेउ भाल हम तिनके टीका,
जाग्रत भारतराष्ट्र-प्रतीका।
अभिनव भारत-जन्म-प्रदाता,
नहिं केवल ये पाण्डव-भ्राता।
आर्य नृपति, ऋषि, प्रजा समाजू,
जन्मेउ सबन यत्न नव राजू।
धर्म नृपहु तें बढि जन-त्राता,
व्यास मुनीश राष्ट्र-निर्माता।
नवल राष्ट्र-रचहु कर भारा,
रहेउ न पाण्डुसुतन-शिर सारा।
पाण्डव-कौरव-शिविरन आजू,
जुरेउ जो रण हित वीर-समाजू।

दोहा :— *ते नरेन्द्र, सेनप, सुभट, आर्य-राष्ट्र दृढ ढाल,*
पटवहु सबहि न मृत्यु-मुख, चेतहु अजहुँ भुआल। ५०

विरचि राष्ट्र नव, नासि अराती,
भरत कुलहिं सौंपी हम थाती।
नायक आपु वश तेहि केरे,
गुरुजन चलत तुम्हारेहि प्रेरे।
लहि पद तात ! कीन्ह तुम काहा ?
कवन भाँति दायित्व निबाहा ?
धर्मनृपहिं लखि आज्ञाकारी,
रचि प्रपंच निज नगर हँकारी,
राष्ट्र समस्त आस अभिलाषा,
कीन्ह खेलाय द्यूत तुम नाशा।
प्रजा जनेशन करि अधिराजू,
सौंपेउ धर्म नृपहिं जो राजू,
हरेउ सकल तुम द्यूत खेलायी।
सौंपत सुतहि लाज नहिं आयी,
कीन्ह न पात्र-अपात्र-विचारा,
राष्ट्र-भविष्य भयेउ खिलवारा।

दोहा :— *आर्यजाति-कल्याण हित, पायेउ जो साम्राज्य,*
सौंपेउ पुत्रहि ताहि तुम, जनु निज पैतृक राज्य। ५१

तुम परमार्थ, राष्ट्र-हित नासा,
सधिहै स्वार्थ यहहु नहिं आशा।
अनल भवन निज आपु प्रजारा,
जारन चहत धधकि कुल सारा।
रहे मार्ग अब दोइ भुआला !
एक शान्तिमय, अन्य कराला।
गहे संधि-पथ कुल-कल्याणा,
स्वार्थ साथ परमार्थ महाना।
पैतृक राज्य पुत्र हित लेहू,
राज्य नवीन धर्मजहिं देहू।

करि दल दोउ आजु वश माहीं,
होहु भयेउ जस नृप जग नाहीं।
अर्जुन-कर्ण, भीम-दुर्योधन,
करिहैं मिलि तुम्हार सरक्षण।
करिहौं महूँ सदा सेवकाई,
उग्रसेन सम पद शिर नायी।

दोहा :— *अन्य मार्ग—भीषण समर, राज्य-नाश, सुत-घात,*
बिनवत पुनि पुनि तात! मैं, करहु न आत्म-विघात!" ५२

सोरठा:—*सुने अध नरनाथ, दृढ, उदात्त यदुपति-वचन,*
व्यापे उर इक साथ, हरि-भय, सुत-भय, युद्ध-भय।

बोलेउ खल दौर्बल्य बखानी,
निश्छलतहि जनु बोली वाणी—
"कहहुँ काह ?—मैं परम अभागी,
सहे जो क्लेश नाथ! मम लागी।
सत्य सकल मम पाप-कलापा,
मोहिं सुत-प्रेम भयेउ अभिशापा।
चर्म चक्षु मोहिं विधि नहिं दीन्हे,
प्रज्ञा चक्षु पुत्र हरि लीन्हे।
मैं असमर्थ, बुद्धि बल-हीना,
भाँति सर्व निज सुतन अधीना।
शैशव ते अब लगि दुर्योधन,
किये न कबहुँ वचन मम पालन।
एकहि नाथ! मोर अपराधा,
यहि सुत पै मम प्रीति अगाधा!
जानत महूँ भये सग्रामा,
जइहै उजरि नाथ! मम धामा।

दोहा :— *बिनवहुँ पुनि पुनि पाण्डु-सुत, पुनहु मम समुझाय,*
कल कौरव रण-वहि ते, यदुपति! लेहु बचाय!" ५३

रहे मौन हरि सुनि नृप-वाणी,
मानस-व्यथा भीष्म पहिचानी।
दुर्योधनहिं कहेउ समुझायी—
"देहु दुराग्रह वत्स ! विहायी।
व्यर्थ धरे भ्रम तुम मन माहीं,
पक्षपात श्रीहरि हिय नाहीं।
धरि तनु धर्म हेतु हरि आये,
तोपि शिष्ट नित दुष्ट नसाये।
कंस, काल, भौमासुर मारे,
पौण्ड्रक, काशि-नरेश सँहारे।
नासे मगधनाथ, शिशुपाला,
शाल्व असुर, कारूप भुआला।
रक्षक जदपि शम्भु भगवाना,
रण-महि हरेउ बाण-अभिमाना।
भजहिं जहाँ जन जेहि जेहि आसा,
शेष न एक कृष्ण हठि नासा !

दोहा:— *ध्वंसि असुर-साम्राज्य हरि, कीन्ह धर्म-उत्थान,*
कीन्ह तासु रक्षार्थ पुनि, राष्ट्र सुदृढ़ निर्माण। ५४

धर्म-सुवन जब भवन बोलायी,
हरी धरणि तुम द्यूत खेलायी,
दली न केवल पाण्डव-आशा,
दली साथ तुम हरि-अभिलाषा।
तजत मनस्वी धन, जन, राजू,
तजि नहिं सक्त प्राण प्रिय काजू।
धर्महिं तुमहिं वरु धर्म नरेशा,
कीन्ह हरण तुम केवल देशा,
क्षमिहैं तुमहिं न यदुकुल-केतू,
करत नष्ट तुम जीवन-हेतू !
आये भवन आपु भव-त्राता,
तजहु न तुम यह अवसर ताता !

अतल कबहुँ जिमि भरि नहिं आयी,
तृष्णहु तिमि नहिं कबहुँ बुझायी।
तजि तृष्णा हरि-मत स्वीकारी,
करहु मोहिं, पितु, भजहिं सुखारी।"

दोहा :— *यहिविधि तेहि शान्तनु-सुवन, कही विविध हित-बाणि,*
सुनी सकल अनखाय खल, बसेउ मौन अवमानि। ५५

कृपाचार्य, द्रोणहु समुझावा,
व्यास ऋषिहु उपदेश सुनावा।
कान न एक सुयोधन कीन्हा,
मूक मनहुँ विषधर डसि लीन्हा।
गुरुजन लज्जित क्षुब्ध चुपाने,
हर्षित कर्ण शकुनि मुसकाने।
हरिहु सुयोधन सभा निहारा,
जनु मद आपु बसेउ साकारा।
पुनि निस्तब्ध सभा लखि सारी,
दूत धर्म निज हृदय विचारी,
ध्यान मान-अवमान न राखा,
वचन आपु कुरुनाथहिं भाखा—
"धरेउ स्वजन मिलि तुम पै भारा,
उर तुम्हरे अविचार-पहारा।
घोर पाप-पथ तुम अपनावा,
गहि कामार्थ धर्म बिसरावा।

दोहा :— *गरल, लाह-गृह, द्यूत तजि, कीन्ह कवन उद्योग?*
छल ते पर-महि तुम लही, बल ते चाहत भोग! ५६

हृदय अथाह मोह अभिमाना,
देही राज्य न मैं भल जाना।
किये समर भीषण जन-नाशा,
बसे मौन गहि, सत्य विनाशा।

करहुँ विनय अन्तिम सब पाहीं,
याचहुँ तुच्छ कहहु नहिं 'नाहीं'।
भोगहु निखिल राज्य, धन, धामा,
पावहिं पाण्डव पाँचहि ग्रामा।
देहु तिनहिं माकन्दि, वृकस्थल,
पुरी वारणावती, अविस्थल।
पंचम ग्राम देहु कोउ एकू,
त्रिनवहुँ तजहु न तात ! विवेकू।
स्वजन विकल मुख लखत तुम्हारा,
शान्ति ! शान्ति ! द्विज प्रजा पुकारा।
सुनिहौ जो न अजहुँ मम वाणी,
चलिहै युग-युग यहहि कहानी—

दोहा :— *"जन्मेउ द्वापर भरत-कुल, दुर्योधन नरपाश,*
कीन्हेउ जेहि विद्वेष-वश, निखिल वीर-कुल नाश !" ५७

सुने जनार्दन-वचन सुयोधन,
आनन अनल-ज्वाल, अरुणेक्षण।
हेरत हरिहिं क्रुद्ध कुरुनाहा,
बहेउ वदन - उन्माद-प्रवाहा—
"तुम प्रगल्भ, आडंबर भारी,
माया विपुल सभा विस्तारी।
आये लेन अर्घ तुम राजू,
भय उपजाय कीन्ह चह काजू।
अचल मोहिं लखि दंभ विहायी,
पलटि वृत्ति अन्यहि अपनायी।
चहत ग्राम अब राज्य बिसारी,
मँगिहौ पल महँ महल अटारी।
नासत निज यश तुम यदि माँगी,
वणिक-वृत्ति नहिं मोहिं सुहावी।
किये प्रलाप लाभ कछु नाहीं,
सुनहु कहहुँ जो मम मन माहीं—

दोहा :— *खने सूचिका-अग्र पै, आवत जो महि-लेश,*
देहौं सोउ न बिनु समर, कहाँ ग्राम ! कहँ देश !" ५८

अस कहि शकुनि कर्ण लै साथा,
गवनेउ त्यागि सभा कुरुनाथा।
गये अनुज सब पाछे लागी।
लागे रचन कुचक्र अभागी,
कृतवर्मा, युयुधानहु धाये।
निरखत गति-विधि दृष्टि लगाये।
इत कुरु-गुरुजन निरखि बिहाला,
यदुपति-वदन भृकुटि विकराला।
वंश-नाश-सूचक, भयकारी,
जनु नभ उदित केतु लयकारी।
परी बहुरि हरि-वाणी श्रवणन,
"शासत खलहिं न कस तुम गुरुजन!
त्याज्य व्यक्ति कुल-हित-अवरोधी,
त्याज्य कुलहु जो ग्राम-विरोधी।
ग्रामहु त्याज्य राष्ट्र-हित-नासी,
त्याज्य सुयोधन सर्व-विनासी!

दोहा :— *तजहु वेगि जग-शत्रु यह, मार्ग अन्य अब नाहि,*
नाहित करिहौ तुम सकल, शयन समरमहि माहि !" ५९

सहसा सात्यकि ताही काला,
प्रविशे सभा, वेप विकराला।
दृग अँगार, अँग रोष-तरंगा,
भाषत वचन क्रूर भ्रू-भंगा—
"शान्ति विचारत इत तुम गुरुजन,
उत मदान्ध उद्धत दुर्योधन,
प्रीति, नीति-बंधन सब तोरी,
बाँधन चहत हरिहिं बरजोरी!
घेरि सभागृह सुरजन लीन्हा,
हरि-बल अबहुँ खलन नहिं चीन्हा।

बँधति कि उपलन पाचस-गंगा,
बँधत कि ततु मृणाल मतंगा ?
मैं, कृतवर्मा, यदुजन सारे,
आये सभा शस्त्र निज धारे।
देहिं जो आयसु मोहिं यदुरायी,
विग्रह निमिषहि माहिं नसायी।

दोहा :— *कुरु-पाण्डव-सगर करहुँ, शेष यहीं मैं आज,*
प्रभु-प्रताप यदुजन अजय, कहा धनजय काज !" ६०

बंधन-वृत्त सुनेउ यदुनंदन,
भासित प्रथम मृदुस्मित आनन।
अट्टहास पुनि कीन्हेउ घोरा,
जनु गिरि दीर्ण, चतुर्दिक रोरा।
हरि दायें अर्जुन प्रकटाने,
धनु गाण्डीव श्रवण लगि ताने।
हल-मूसल-भूषित दिशि वामा,
प्रकटे प्रलय-मूर्ति बलरामा।
पृष्ठ भीम, कर गदा महाना,
सन्मुख क्रुद्ध वीर युयुधाना।
निरखि चमत्कृति कम्पित कुरुजन,
जय-ध्वनि कीन्हि मुदित मन मुनिजन।
दृश्य अशेष, शेष आतंका,
तजि आसन हरि उठे अशंका।
जात सभा तजि लखि यदुनाथा,
भये द्रोण, शान्तनु-सुत साथा।

दोहा :— *विरमि द्वार चहुँ दिशि लखेउ, पूछत जनु हरि धीर—*
रोधहि मम गति अस कवन, अरि-समूह महँ वीर ! ६१

चलेउ मद गति द्वार जनार्दन,
जनु गज-निकर निदरि पंचानन।

श्रीहरि-तेज-अनल अरि झुलसे,
अचल यथा-थल चित्र-लिखे-से।
गुरुजन-वृन्द वंदि यदुरायी,
निवसे विदुर संग रथ जायी।
दीन्ह वृद्ध द्विज पुलकि असीसा,
पथ दुहुँ दिशि नत पुरजन-शीशा।
सहसा रथ-घर्घर स्वर संगा,
उत्थित जन-जयनाद अभंगा।
लज्जित कुरुपति मींजत हाथा,
गवने मथि कुरुदल यदुनाथा।
विदुर-द्वार स्यंदन विरमावा,
पृथहिं सभा-सवाद सुनावा।
बंधन-वृत्त सुनत छत्राणी,
बोली सरुष कृष्ण सन वाणी—

दोहा:—*"एकहि मम सन्देश अब, कहेउ सुतन हरि जाय,*
'नासहु सत्वर शत्रु निज, क्षात्र वृत्ति अपनाय। ६२

मुनिजन-वृत्ति देहु सुत! त्यागी,
करि रण होहु राज्य-यश-भागी।
सुवन शूर तुम सम उपजायी,
धारति तन परान्न मैं खायी।
महि, धन, विभव, सुयश जब नासा,
कवन हेतु जीवन-अभिलाषा?
गिरतहु शूर समर-महि माहीं,
गिरत अरिहिं लै, छाँड़त नाहीं।
हस्त सिंह-विषधर-मुख डारी,
लेत शूर हठि दाँत उपारी।
तजब प्राण बरु यत्नहि माहीं,
साहस तजत मानिजन नाहीं।
उचित भभकि क्षण जाव बुझायी,
उचित जियब नहिं चिर धुँधुआयी,

केशव ! सुत मम तेज-निधाना,
भीमार्जुन दोउ अनल समाना।

दोहा :—*विनवति मैं बनि तात ! तुम, वेगि युगान्त बयारि,*
देहु घोर, श्वापद-प्रचुर, कौरव-कानन जारि !" ६३

सुनत वचन शुचि शूर-सुता के,
हर्ष प्रवाह हृदय हरि पुलके—
"वीर-वंश यदुवंश प्रजाता,
जाया वीर, वीरसुत-माता।
वीरोचित तुम वचन उचारा,
तुम्हरेहि योग्य सँदेश तुम्हारा।
कहिहौं सुतन निदेश सुनायी,"
अस कहि पद वंदे यदुरायी।
गवने विदा पृथा सन माँगी,
लखे द्वार गुरुजन अनुरागी।
लखे पितामह द्रोण दुखारे,
विदुरहु हर्ष-शून्य, मन मारे।
लक्ष्य-अलक्ष्य फिरत यदुनन्दन,
गुनि जल-विन्दु पितामह-नयनन।
द्रवित हरिहु दीन्हेउ परितोषा,
कहि कहि—"तात ! तुम्हार न दोषा।

दोहा :—*कीन्हेउँ मैं जो धर्म मम, करहु तुमहु निज धर्म,*
रहेउ न शेष विमर्श अब, शेष शूरजन-कर्म।" ६४

सोरठा—*अस कहि निवसे यान, बहउ पवन अनुकूल पुनि,*
उपलव्य भगवान, गवने भरि रज अरि-पुरी।

सुनि प्रभु-आवन पाण्डव धाये,
अग्नु सकल नृपति चलि आये।
जुरी सभा, हरि वरनी गाथा,
क्रोध-दग्ध सेनप, नरनाथा।

हरि-वधन-प्रपंच सुनि सारा,
धर्म-सुतहु उर रोष अपारा।
व्याप्त वृकोदर हृदय अमर्षा,
वदन प्रदीप्त वीर रस वर्षा—
"मिलेउ आजु अवसर जेहि लागी,
काटी निशा सहस मैं जागी।
मङ्गल-दिवस घरिहु शुभ आयी,
सजहु सैन्य, कत देर लगायी ?
रचहु अबहिं रण-यज्ञ महाना,
यज्ञाचार्य आपु भगवाना।
धर्मात्मज दीक्षित, मखकारी,
व्रत-धारिणि पाञ्चाल-कुमारी।

दोहा :— *ऋत्विज पाण्डव, नृप अतिथि, रण-महि यज्ञस्थान,*
बलि-पशु कौरव कुल निखिल, फल जय-कीर्ति महान।" ६५

सुनि प्रमुदित हरि दीन्ह निदेशा—
"सजहु ध्वजिनि अब धर्म नरेशा!
सत्य शान्ति महँ जहँ सघर्षा,
चहत सन्तजन सत्य-प्रकर्षा।
जो अघ वधे अवध्यहिं होई,
वध्य वधे बिनु लागत सोई!
आततायि धृतराष्ट्र-कुमारा,
हरहु निपाति महा महि-भारा।
उपसव्य पाञ्चाल कुमारी,
राखहु सहित अन्य कुलनारी।
तजि अशक्त जन, दासी, दासा,
कुरुक्षेत्र दिशि करहु प्रवासा।"
सुनि हरि वचन कोलाहल भारी,
"सजहु! सजहु!"—सब कहत पुकारी।
सजति सैन्य, प्रति शिविर उछाहू,
-जय-ध्वनि महत, सजत नरनाहू।

दोहा :— *सजत चिग्घरत मत्त गज, वाजि सजत हिहनाहिं,*
सजत पत्ति, जय-स्वर रहेउ, छाय भूमि नभ माहिं। ६६

वाजि अगण्य कलँगि शिर धारे,
विविध आभरण साजि सँवारे।
चुनि चुनि, उत्तम सिंधुज घोरे,
रथ प्रति चारि-चारि लै जोरे।
धरे शस्त्र प्रहरण विधि नाना,
गदा, शूल, पट्टिश धनु-बाणा।
सारथि रथी युक्त रथ धाये,
सचल नगर जनु रण-हित आये।
कीन्ह प्रमद गज-वृन्द सिँगारा,
झूमत जनु गतिमंत पहारा।
कंकट-संवृत, आयुध धारे,
सज्जित सुभट बद्ध-कटि सारे।
निकसेउ तजि निवेश चतुरंगा,
तट विध्वंसि बही जनु गंगा।
गरजेउ जुरत पयोधि भयानक—
बाजे भेरि, शंख, पणवानक।

दोहा :— *कृत सुर-पूजन, स्वस्त्ययन, मंगल विविध विधान,*
वंदि धर्मसुत हरि-चरण, रण-हित कीन्ह पयाण। ६७

चले वीर भट वार न पारा;
नमित भूमि चतुरंगिणि-भारा
तजि वाहिनि कछु कहुँ न लखायी,
भीत क्षितिज जनु गयेउ परायी।
दिगंतराल द्विपन ढकि लीन्हा,
व्योम विलीन जात नहिं चीन्हा।
वाजि - निकर - खुर - रज - परिधूसर,
प्रत्यावर्तित हत-प्रभ रवि-कर।
गज-घंटा-निनाद, चिग्घारा,
किंकिणि-क्वाण, भेरि-भाङ्कारा।

स्यदन निःस्वन, हयगण-हेषा,
वधिर भुवन-त्रय शब्द अशेषा।
अविश्रान्त यहि विधि दल धावा,
रणमहि कुरुक्षेत्र सब आवा।
शिविर अपार धर्म नृप डारे,
शोभित महि जनु चुइ नभ तारे।

दोहा:— *शंख-नाद, जय-नाद ते, भरेउ समस्त दिगंत,*
व्याप्त समर-रस-मत्त स्वर, कुरुपति-पुर पर्यन्त। ६८

सोरठा —*कौरव-सैन्य अपार, साजी सुनत सुयोधनहु,*
गज, रथ, अश्व-प्रसार, गजपुर ते रणभूमि लगि।

एकादश अक्षौहिणि साथा,
पहुँचेउ कुरुक्षेत्र कुरुनाथा।
पुनि एकादश भट सन्मानी,
कीन्हे नृप नियुक्त सेनानी—
भीष्म, द्रोण गुरु, अश्वत्थामा,
कृप, वाह्लीक, कर्ण, कृतवर्मा,
जयद्रथ, भूरिश्रवा, मद्रेशा,
सुदक्षिणहु काम्बोज-नरेशा।
भीष्महिं कहेउ बहुरि कुरुनाथा,
बद्धाञ्जलि, नत-चरणन माथा—
''शूर-शिरोमणि तुम कुरुनायक,
होहु नाथ! मम दल-अधिनायक।
तुम सम अन्य न रण-विधि-ज्ञाता,
रच्छहु समर सैन्य मम ताता!
सन्मानत सब तुमहिं शूर जन,
तुम्हरेहि बल मम रण-आयोजन।

दोहा:— *कार्तिकेय सम तात! तुम, संगर-महीं अजेय,*
तजिहैं अरि जय-आस सुनि, अधिनायक गाङ्गेय।" ६९

सुनि कह शान्तनु-सुत ऋत-भाषी,
"मैं नहिं वत्स ! समर-अभिलाषी।
अन्न तुम्हार दिनन बहु खावा,
करि रण मैं ऋण चहत चुकावा।
करिहौं सोउ निज यश अनुसारा,
हतिहौं नित दस सहस जुझारा।
पै निश्चय दृढ़ मम मन माहीं,
वधिहौं स्वकर पाण्डु-सुत नाहीं।
अधिनायक-पद चहत जो दीन्हा,
कर्णहिं कस तुम नायक कीन्हा?
नायक जे तुम अन्य बनाये,
अतिरथि, महारथी मोहिं भाये।
सोहत नाहिं कर्ण तिन माहीं,
अर्धरथी वे बढ़ि यह नाहीं!
परशुराम-शापित, कुल-हीना,
आत्म-प्रशंसक, पिशुन प्रवीणा।

दोहा :—*प्रविशत ही यह रण-मही, मरिहै अर्जुन-हाथ,*
सूत-सुवन सँग मैं समर, करिहौं नहि कुरुनाथ!" ७०

विकल कर्ण सुनि दारुण वचनन,
श्वास सवेग, विपाटल आनन।
लोचन क्रोध-धूम्र अरुणारे,
अधर विकम्पित, वचन उचारे—
"जानेउँ आजुहि मैं तुम वञ्चक,
कुरुदल निवसि शत्रु हित-चिन्तक।
ऋण जो चहत चुकावन करि रण—
भे अवध्य पाण्डव केहि कारण?
भीमार्जुन जो देत बराये,
रण तुम वधन मामभृग आये!
समर-समय रचि वैर-प्रसंगा,
दल-उत्साह कीन्ह तुम भंगा।

संख्या, शस्त्र, शूरता माहीं,
हम सम प्रबल शत्रु-दल नाहीं।
पै अराति सब यदुपति-शासित,
बद्ध-कक्ष कुरुवंश-नाश-हित।

दोहा :—*नेह-नात विस्मृत सकल, जुझिहैं सहित उमंग,*
अरि-जय-इच्छुक पै सुभट, प्रकट-गुप्त हम संग। ७१

अस जे द्रोही अरि-गुण-गायक,
शान्तनु-सुवनहि तिनके नायक।
रण-जय जो कुरुपतिहिं पियारी,
देहिं स्वदल ते इनहिं निकारी।
पै गुनि गुरुजन जो अनुरागी,
सकत पितामहिं नृप नहिं त्यागी,
तौ मैं ही रण-मही विहायी,
बसिहौं शान्त भवन निज जायी।
रहिहैं जब लगि ये अधिनायक,
धरिहौं मैं न धनुप निज सायक।
भीष्म-अनंतर दृढ़ प्रण मोरा,
वधिहौं अर्जुन करि रण घोरा।"
सुनि प्रण भीष्म कीन्ह उपहासा—
"बढ़ी क्षुद्र उर बड़ि अभिलाषा।
प्रण-मिस जात धरणि रण त्यागी,
जियहु कछुक दिन और अभागी।

दोहा :—*लेहु काल कछु और करि, निज मुख निज गुण-गान,*
अंत धनजय-हाथ ते, गलित-गर्व अवसान।" ७२

सुनि राधा-सुत रोष-अधीरा,
समुझाये कुरुपति दोउ वीरा।
सहि नहिं सकेउ कर्ण अपमाना,
प्रण दोहराय कीन्ह प्रस्थाना।

विकल सुयोधन निरखि अमंगल,
मानस खिन्न, हतप्रभ, विह्वल।
चितयेउ गुरु तन नयनन वारी,
धैर्य-गिरा आचार्य उचारी—
"वचन सत्य शान्तनु-सुत भाखा,
पाण्डव-नेह दुराय न राखा।
पै साथहि इन कीन्हेउ यह प्रण,
हति हैं वीर सहस दश नित रण।
शूर परशुधर सम नहिं कोऊ,
सके जीति रण इनहिं न सोऊ।
ताते तजि उर संशय ग्लानी,
करहु पितामहिं दल सेनानी।"

दोहा :— *जागेउ दुर्योधन-हृदय, सुनि गुरु वचन विवेक,*
अधिनायक-पद मन मुदित, कीन्ह भीष्म अभिषेक। ७३

सोरठा :— *भयेउ भीष्म-जय-नाद, युद्ध-बाद्य बाजे सकल,*
पहुँचेउ सब संवाद, पल लागत पाण्डव-शिविर।

सोच युधिष्ठिर मन सुनि छावा,
हृदय क्षोभ यदुपतिहिं सुनावा—
"समर-मही करि सन्मुख गुरुजन,
कीन्हि कुटिलता बहुरि सुयोधन।
दारुण राज्य-प्राप्ति-पथ माहीं,
गुरुजन शव मोहिं नाथ[1] लखाहीं।
हतहिं पितामहिं हम जो अभागे,
करिहैं द्रोण-कृपहिं शठ आगे।
अथवा ये अपराजित गुरुजन,
वधिहैं समर-मही मम अनुजन।
निहत-भ्रात एकहु रण माहीं,
सकिहौं धारि प्राण मैं नाहीं।"
सुने नरेश-वचन यदुरायी,
व्यक्त शब्द प्रति उर-कदराई।

क्रोधित सहसा सारँगपाणी,
अरुण दृगोत्पल भाषत वाणी—

दोहा :— *"उपलव्य मत्स्येश-पुर, शान्ति-सनेह विहाय,*
कुरुक्षेत्र सजि सैन्य हम, आये रण हित धाय ७४

समर समय तुम ज्ञान बखानत,
मनहुँ सनेह तुमहि इक जानत।
कहहुँ सुनाय तुमहिं निज भीती,
अर्जुन-हृदय पितामह-प्रीती।
तजि अर्जुन उपजेउ कोउ नाहीं,
जीति जो सकहि भीष्म रण माहीं।
बरनि सनेह-नात, बनि विह्वल,
करहु धनजय-हृदय न दुर्बल।"
माँगी क्षमा सुनत नृप-नन्दन,
लीन्हे बोलि बंधु सब, नृप-गण।
यदुपति-सम्मति पुनि सन्मानी,
किये नियुक्त सात सेनानी।
द्रुपद, शिखण्डि, विराट नरेशा,
धृष्टद्युम्न, सात्यकि, मगधेशा,
धृष्टकेतु शिशुपाल-कुमारा,
धरेउ शीश अक्षौहिणि-भारा।

दोहा :— *पाण्डव-दल पाञ्चाल लखि, युद्ध-निष्ठ, बल-धाम,*
अधिनायक हित लीन्ह हरि, धृष्टद्युम्न कर नाम। ७५

सोरठा:— *आनँद-उदधि अपार, उमहेउ राज-समाज सुनि,*
द्रुपदात्मज जयकार, भयेउ पाण्डु-आत्मज-शिविर।

धृष्टद्युम्न-मति-गति पुनि जानी,
कही धनंजय सन हरि वाणी—
"सर्व-निरीक्षण हित अधिनायक,
चहत तात! निज तुमहिं सहायक।"

कह अर्जुन—"धरिहौं शिर भारा,
देहि जो हरि मोहि आपु सहारा।"
सुनत द्रुपद हँसि गिरा उचारी—
"कवन शिविर यहि अस अधिकारी,
समुझत जो बिनु श्याम-सहायी,
क्षणहु सकत निज काज चलायी।
कोउ पद लेहि, लहहि यश सारा,
मोरे मत सब हरि-शिर भारा।
प्रेरक शक्ति एक यदुनन्दन,
देह मात्र हम, प्राण जनार्दन।
रहि कहुँ निभृत, कतहुँ प्रकटायी,
करिहैं श्रीहरि सैनन सहायी।

दोहा:—*अरि-वाहिनि हम ते महत, बढ़ि सब साज-समाज,*
पै अरि निर्बल, हम सबल, हमरे सँग यदुराज!" ७६

कहे वचन प्रिय नृप पाञ्चाला,
मुद-विह्वल सुनि धर्म भुआला।
लखि हरि-हस्त सबल निज शीशा,
मुदित पत्ति, सेनप, अवनीशा।
उर-उर समरोत्साह अपारा,
शिविर शिविर हरि-जय-जयकारा।
लखे वृष्णिपति आवत तेहि क्षण,
तेजपुञ्ज जनु व्यास तपोधन।
धाय कीन्ह केशव पद-वंदन,
प्रणत समस्त नृपति, नृप-नन्दन।
बसि आसन्न भाषेउ मुनिनाथा—
"रण अनिवार्य भयेउ यदुनाथा!
पै अभिलाष एक उर माहीं,
आयेउँ तेहि प्रकटन प्रभु पाहीं।
अविदित तुमहिं न धर्म-प्रदीपा,
सूर्यग्रहण-तिथि-दिवस समीपा।

दोहा :— *कुरुक्षेत्र यहि धर्म-महि, महए समय यदुराज।*
जुरत संत, सुकृती, यती, अगणित प्रजा-समाज। ७७

अस कछु यत्न करहु भगवाना!
बाधहि समर न धर्म-विधाना।
आर्य-युद्ध-विधि जग विख्याता,
सतत तटस्थन अभय-प्रदाता।
तजी नीति लहि असुरन राजू,
होत समर नित प्रजा-अकाजू।
आर्यन सोइ कुपथ अपनावा,
जन-हित समर-मही बिसरावा।
जन-रक्षहि हित जन्म तुम्हारा,
देहु प्रजहिं प्रभु! बहुरि सहारा।"
सुनि जन-वत्सल मुनिवर वचनन,
निर्भर आनँद-रस यदुनंदन—
"सदा सुपथ-दर्शक मुनि-नायक!
भये आजु पुनि मोर सहायक।
युद्धहु माहि धर्म-व्यवहारा,
यह प्राचीन आर्य-आचारा।

दोहा :— *प्रतिपालत निज सुहृद सँग, बटमारहु सौजन्य,*
तजत न जे जन शील निज, अरिहु सँग ते धन्य। ७८

उभय पक्ष यहि समर आर्यजन,
उचित करहिं सौजन्य-प्रदर्शन।
बाँधहिं वैर-ग्रन्थि उर नाहीं,
युद्धहि बद्ध-नियम दिन माहीं।
सध्या समय समर-अवसाना,
पुनि सोइ भ्रातृ-भाव, सन्माना।
भिरहिं परस्पर सुभटहि सम-बल,
समर-मही नहिं करहिं कपट-छल।
"सावधान"! कहि करहिं प्रहारा,
होय न जित-निरस्त्र-सहारा।

कुञ्जर, वाजि जे आयुध लावत,
शिल्पिहु जे शस्त्रास्त्र बनावत,
सारथि जे न शस्त्र कर धारें,
रणमहि वाद्य-बजावन हारें,
महिव्यूह औरहु जन जेते,
पावहिं अभय-दान सब तेते।

दोहा :— *धर्म-युद्ध-व्यवहार यह, शास्त्र-विहित, विख्यात ,*
अन्यहि कछु मन्तव्य मम, सूर्य-ग्रहण हित तात । ७६

ग्रहण-मोक्ष जब लगि नहिं होई,
जब लगि क्षेत्र रहहिं मुनि कोई,
तब लगि दोउ दल युद्ध विहायी,
बसहिं नेह-विश्वास दृढ़ायी।
जन, सैनिक, सेनानी, राजा,
करहिं सकल मिलि मंगल काजा।
पाण्डव धर्म-धुरीण, उदारा,
करत सहर्ष सुमत स्वीकारा।
लेहिं जो मानि सुयोधन ताता!
रणहु तो शान्ति-सदृश सुखदाता।
कुरुराजहिं समुझाय-बुझायी,
करहु-काज यह मुनिवर ! जायी।"
सुनि कृतकृत्य मुनीश सुजाना,
कीन्ह पितामह-शिविर प्रयाणा,
हर्षित भीष्महु सुनि सुविचारा,
हर्षहिं प्रशंसि सुमत स्वीकारा।

दोहा :— *चाहेउ करन विरोध जब, कुरुपति, सुबल-कुमार ,*
सरितसुत कीन्ह प्रयुक्त निज, अधिनायक-अधिकार । ८०

कृत-निश्चय लखि शान्तनु-नन्दन,
भयेउ मौन मन मारि सुयोधन।

शिविर-शिविर प्रति प्रविशी गाथा,
सैनिक मुदित, चकित नरनाथा।
कहि—"हरि धन्य! धन्य मुनिरायी!"
दीन्हे निज निज शस्त्र विहायी।
समर-पशुहु गज-बाजि सुखारी,
उतरे साज-भार, अंबारी।
उपसव्य, गजपुर तजि सारी,
आयीं पाण्डव-कुरुकुल-नारी।
तियन प्रथम मिलि नेह बढ़ावा,
उपजेउ दोउ शिविरन सद्भावा।
मिलीं बहुरि कुन्ती-गान्धारी,
भानुमती पाञ्चाल-कुमारी।
परिहरि बैर-निष्ठ दुर्योधन,
आये हरिहिं मिलन सब कुरुजन।

दोहा :— *मिले धर्मनृप वृद्धनृप, धृष्टद्युम्न गाङ्गेय,*
कृतवर्मा सात्यकि मिले, मिले पार्थ राधेय। ८९

हास-हुलास समर-महि छावा,
विचरत ससुख जहाँ जेहि भावा।
क्रम-क्रम तेहि थल आवन लागे,
यात्रिन-वृन्द धर्म-अनुरागे।
वधि क्षत्रिय-कुल निखिल परशुधर,
भरे जे पञ्च, रक्त ते सरवर,
ते स्यमन्तपञ्चक विख्याता,
भये तीर्थ शुचि पुण्य-प्रदाता।
ग्रहण-समय तहँ मज्जन लागी,
उमहे गेह-नेह जन त्यागी।
भारत-भूमि प्रान्त प्रति केरे,
जुरे मुमुक्षु, पुण्य-कृति-प्रेरे।
रज-कण मही, व्योम जिमि तारा,
तिमि अगण्य जन-राशि अपारा।

दोहा :—*मिलेउ विशाल समाज यह, वाहिनि-द्वय सँग आय,*
कुरुक्षेत्र जनु मिलि बहे, सप्त सिन्धु हहराय। ८२

उत द्वारावति रक्षण लागी,
प्रद्युम्नहिं अनिरुद्धहि त्यागी,
धर्मक्षेत्र यदुवंशिहु सारे,
नाना वाहन साजि सिधारे।
विजित-मनोजव वाजि सोहाये,
स्यन्दन अमर-यान जनु धाये।
वारिद मनहुँ द्विरद पथ जाता,
यक्ष अंग-रक्षक साक्षाता।
दिव्य साज सब, दिव्य आभरण,
धरणि मनहुँ अवतीर्ण अमरगण।
पहुँचि धर्म-महि बिनु विश्रामा,
उतरे निरखि कुञ्ज अभिरामा।
पुण्य क्षेत्र बहु लखत ताहि क्षण,
स्वजनन आय मिले सकर्षण।
यदुजन आवत यदुपति जाना,
प्रमुदित धाय कीन्ह सन्माना।

दोहा :—*धर्म नृपहु अनुजन सहित, जाय मिलेउ यदुवृन्द,*
लाय शिविर निज, वास दै, प्रकटेउ हृदयानंद। ८३

सोरठा—*सुने तबहि भगवान—'आवत ब्रजजन'—शब्द ये,*
विस्मृत रथ, पद त्राण, धाये विकल सुपर्ण-पति।

मथुरा-पथ हेरत यदुनंदन,
निरखे शकटन आवत ब्रजजन।
सुन्दर इन्दु-वदन नरनारी,
गोप-मूर्ति सब, परम सुखारी।
वंशीधर-गिरिधर-यश गावत,
जय-ध्वनि करत गोपजन आवत।

मधुर कण्ठ, पुनि हरि-जयकारा,
सुनत जुरी पथ भीर अपारा।
चकित लखत जन गोप-समाजू,
चकित विलोकि आपु व्रजराजू।
तजे जे व्रजजन जीवन-हीना,
दग्ध वियोग-वह्नि, दुख-दीना,
तजीं निराश्रय जे व्रजनारी,
तरु-विच्छिन्न लता अनुहारी,
सन्मुख ते सब स्वस्थ, सुखारे,
जनु आनंद देह बहु धारे।

दोहा.— *लखतहि यशुदा-नँद-शकट, धाये पंकजनैन,*
गहे पदाम्बुज 'कान्ह' कहि, निकसे और न बैन। ८४

तजेउ नंद रथ, पुलकेउ गाता,
सकी विलोकि न श्यामहिं माता।
नामहिं सुनि विह्वल महतारी,
बुझी ज्योति दृग स्रवहेउ वारी।
हरि जस ललकि भुजन भरि लीन्हा,
परस पुरातन सुत निज चीन्हा।
शमि विरहज चिर उष्ण नयन-जल,
आनँद-अश्रु बहे हिम-शीतल।
सुरसरि जल निदाघ जनु दाहा,
बहेउ हिमालय-सलिल प्रवाहा।
लहि दृग शक्ति विलोकेउ माता,
मूर्ति अक निज प्राण-प्रदाता।
चिबुक हस्त विधु वदन विलोकति,
सिक्त कपोल सलिल दृग मोचति।
फेरति मस्तक कर महतारी,
विह्वल श्रीहरि विश्व विसारी।

दोहा :— *लखेउ मातु-सुत-सम्मिलन, जिन तेहि क्षण, तेहि ठौर,*
ब्रह्मानद निमग्न ते, भये और के और। ८५

शकट अन्य वृषभानु निहारी,
मिले धाय उर आनँद भारी।
लखी समीपहि श्याम सनेही,
राधा, भक्ति धरे जनु देही।
आनन इन्दीवर अम्लाना,
प्रभु पद-दत्त दृष्टि सह प्राणा।
शान्ति मूर्ति, पावन अवलोकनि,
सावित्रिहि जनु भव-तम मोचनि।
राग, रोष, मद, मोह-अबाधा,
साध्वि, अतीत गुणत्रय राधा।
लखि सच्चिदानद निज सन्मुख,
हरि तन्मय, उत्कण्ठित, उन्मुख।
राधा-माधव मिलन अनूपा,
हरि राधा, राधा हरि-रूपा।
बिनसेउ काया-माया भाना,
भेंटे मुक्त-जीव भगवाना।

दोहा — *ललिता स्वर ताही समय, प्रविशेउ श्रुति अभिराम—*
"भये भूप, अब तौ तजहु, ठग विद्या घनश्याम!" ८६

गिरा ललित सुनि श्रीहरि हेरे,
ठाढे गोप-गोपिजन घेरे।
जीवन धन-सानिध्य सुखारे,
समाधिस्थ जनु नयन उघारे।
पियत वदन छवि अमिय विलोचन,
मानत निमि-निपात जनु वचन।
भेंटत इष्टदेव तन पुलके,
अगरपर्श हर्ष दृग छलके।
विकसे हरि-नयनहु अभिरामा—
सार्थक 'पुरीकान्त' प्रभु नामा।
भरे बहुरि गिरिधर-मुख फूला,
बतरस हरे विरह चिर शूला।

ललितहिं मिलत कहत सुखराशी—
"दिखहु न सखि ! तुम मोहिं ठगी सी !"
कहेउ विशाखा सुनि मुसकायी—
"ठगेउ हमहिं सो अन्य कन्हाई।

दोहा :— वह न चक्र-प्रिय, युद्ध-प्रिय, नहिं वयरक, यदुनाथ,
वह वंशी-प्रिय, रास-प्रिय, बालकृष्ण, ब्रजनाथ।" ८७

सुनि हरि हँसे, हँसे सब ब्रजजन,
भयेउ तबहिं बलराम-आगमन।
पुनि सोइ मिलन, सोइ उल्लासा,
बरसेउ बहुरि हास-परिहासा।
वसुदेवहु पायेउ सवादू,
आये धाय हृदय आह्लादू।
नद सुहृद हठि कण्ठ लगावा,
यशुदहिं भेंटि परम सुख पावा।
गोपी गोप यथोचित वदे,
कुशल-प्रश्न करि सुनि आनदे।
सविनय नदहिं कह वसुदेवा—
"चाहहुँ करन सखा ! कछु सेवा।
कुरुक्षेत्र-महिं जब लगि वासा,
करहु आय मम सग निवासा।"
सुनि आनद नद प्रकटायी,
शूर-सुतहिं वर विनय सुनायी—

दोहा —"मैं सेवक, अवनीश प्रभु, चाहहुँ कृपा-प्रसाद,
स्वीकारहुँ आतिथ्य जो, मिटहि लोक-मर्याद।" ८८

नद स्वभाव, आत्म-सम्माना,
अन्तर्यामी हरि सब जाना।
पितु सन वचन विनीत उचारा—
"बसहिं तात निज रुचि अनुसारा।

देहु निदेश मोहिं पै देवा!
बसि सँग करहुँ दिवस कछु सेवा।
रच्छत पलक अक्ष जेहि भाँती,
रच्छेउ मोहिं तात दिन राती।
जो कछु त्याग सो इन निर्मावा,
होत समर्थ काल दिखरावा।
लहेउँ योग बहु वत्सर माहीं,
खोवन आजु चहहुँ सोउ नाहीं।"
हुलसे व्रजजन सुनि मनचीती,
वसुदेवहु पुलकित लखि प्रीती।
सघन महीरुह-पुञ्ज निहारी,
दीन्हे शिविर नंद निज डारी।

दोहा :— *तजि पाण्डव-शिविरन विभव, स्वजन-नेह-सन्मान,*
व्रजजन सह तरु-तल बसे, जन-वत्सल भगवान। ८६

निवसत नँद सँग आनँद-धामा,
भयेउ पुण्य-प्रद पावन ठामा।
नृपन-शिविर सब शून्य लखाहीं,
भीर अपार नंद-थल माहीं।
आवत जन हरि-दर्शन काजा,
जुरत अनत यती, मुनि, राजा।
भये सुयश-भाजन व्रजवासी,
थकति न नित्य निरखि जनराशी।
व्रजजन-भाव-भक्ति, हरि-ध्याना,
निशि दिन हरि-कीर्तन, गुण-गाना,
योगिहु हृदय विलोकि सिहाहीं—
ये हरि माहिं, हरिहु इन माहीं।
आवत व्यासहु शिष्यन साथा,
अनुजन सहित धर्म नरनाथा।
विदुर, द्रोण शान्तनु-सुत संगा,
सुनत श्याम-शिशु-चरित प्रसंगा।

दोहा :—*कुन्ती द्रौपदि, देवकी, रुक्मिणि सन हरि रानि,*
यशुदा, राधा, गोपिकन, मिलत नित्य सुख मानि । ९०

ससुख सबन कछु काल बितावा,
आयी अमा, ग्रहण दिन आवा ।
निर्जल, निराहार-व्रत धारी,
सुमिरत हरिहिं सकल नर नारी ।
ग्रहण-मुक्त रवि उदित अकासा,
लहेउ भुवन पुनि पूर्व प्रकाशा ।
करि स्यमन्तपंचक शुचि मज्जन,
लागे देन दान जन, नृपगण ।
धान्य धेनु जो ब्रजजन संगा,
चले देन सब भरे उमगा ।
प्रविशे शिविरन जस ब्रजवासी,
लखी अनंत रत्न-मणि-राशी ।
एकहिं एक दिखावहिं धायी,
पूछहिं—"चकित कहाँ ते आयी !"
यशुमति लोचन हरि दिशि फेरे,
हरि विहँसे, राधा तन हेरे ।

दोहा :—*कहति अम्ब—"अब कान्ह ! नहिं, उपजावहु सन्देह,*
जानत ब्रज हरि-राधिका, एक प्राण, दुइ देह !" ९१

समुझि कीन्ह कौतुक हरि-राधा,
ब्रजजन उर आनंद अगाधा ।
रत्न-राशि लै लै सब धाये,
चकित बहुरि जस बाहर आये ।
हेम-विमण्डित-शृङ्ग, सवत्सन,
ठाढ़ीं माथुर सुरभि सहस्रन ।
व्यापेउ विस्मय, हर्ष, कोलाहल,
दीन्ह दान नँद आनँद-विह्वल ।
भरि-भरि अञ्जलि मणि-समुदाई,
[illegible] यी ।

याचक अस न पुण्यमहि माहीं,
लहेउ मनोवाञ्छित जेहि नाहीं।
चहुँ दिशि नँद-दान-यश-गाना,
सुनि-सुनि राज-समाज लजाना।
मुदित युधिष्ठिर नँद ढिग आयी,
कीन्हि वदन निज दान बड़ाई।

दोहा :— *"श्रीहरि-महिमा यह सकल", कहेउ नंद मतिमान,*
"निज माया-बल कीन्ह जिन, घोष धनेश-समान।" ६२

दिवस एक यदु-पाण्डव-नारी,
देवकि, रुक्मिणि, द्रुपद कुमारी,
आयीं नंद-शिविर हर्षानीं,
यशुमति प्रकटि प्रीति सन्मानीं।
जुरीं सकल गोपिहु अभिरामा,
हरि-चर्चा-निमग्न वर वामा।
जेहि जेहि जहँ रच्छेउ व्रजरायी,
रहीं वृत्त निज नारि-सुनायी।
शिशु-लीला बरनी नँदरानी,
वहेउ देवकी-नयनन पानी।
कहति—"यथार्थ तुमहि हरि-माता,
निरखे बाल-चरित सुखदाता।"
शुचि पछितानि देखि सखि केरी,
नंद-घरनि राधा दिशि हेरी।
कहति—"बाल लीला सुखदायी,
सकति राधिका तुमहिं दिखायी!"

दोहा :— *बोली सुनि विह्वल जननि, राधहि हृदय लगाय—*
"शेष यहहि उर साघ मम, सकहु तो देहु मिटाय।" ६३

पाण्डव-शिविरन गवनीं रानी,
भाषी पथ पाञ्चाली बाणी—

"यह त्रैलोक्य-सुन्दरी राधा,
चरित अचिन्त्य, स्वभाव अगाधा।"
कहे वचन सुनि भीष्मक-नंदिनि—
"मानत हरि राधहिं जग-वंदनि।
हरि व्रज तजत नियम-व्रत साधे,
बाल मुकुन्द इष्ट आराधे।
इन कीन्हे निज बश यदुरायी,
चहहिं जहाँ जब लेहिं बोलायी।
प्रविशत श्रुति-पुट राधा-नामा,
होत विमन सहसा घनश्यामा।
पावत जब तब हम हरि-दर्शन,
बसत सतत इन सँग मनमोहन।"
सुनत बिहँसि बोली पाञ्चाली—
"जानहुँ हरि-स्वभाव मैं आली!

दोहा :— *खसत चीर जब कीन्ह मैं, 'गोपी-वल्लभ'-ध्यान,*
बढ़ेउ वसन तत्काल मम, सुनी विनय भगवान!" ६४

उत प्रति शिविर वृत्त यह छावा,
रचत गोप हरि-चरित सोहावा।
नियत समय सब काज विहायी,
जुरेउ विशाल मनुज-समुदायी।
राज, प्रजा, सैनिक, सेनानी,
जुरे साधु, मुनि, तापस, ध्यानी।
पाण्डव, कुरुजन, यदुजन सारे,
रानिन सह नँद-शिविर सिधारे।
उग्रसेन नृप, परिजन साथा,
निवसे आय आपु यदुनाथा।
लीला-थल राधा पगु धारा,
निम्न-मुखी सत-वचन उचारा—
"आजीवन मानस, वच, कर्मन,
[illegible] ने मैं [illegible]

केवल हरि-मय जो मम प्राणा,
प्रकटहिं इष्ट देव भगवाना।"

दोहा :— *चकित लखेउ जन मंच पै, इत शोभित यदुराज,*
प्रकटे यशुमति-अंक उत, शिशु-स्वरूप ' ब्रजराज। ९५

बरसे सुमन मुदित नर-नारी,
"राधा-माधव"—जय-ध्वनि भारी।
व्योम विमुग्ध अमर अनुरागी,
मही विमुग्ध मुनीश विरागी।
हर्ष-उदधि उमहेउ सब ओरा,
बहेउ भक्ति-रस, भुवन विभोरा।
शिथिल जननि वात्सल्य बहेउ तनु,
लहेउ वियोगिनि-धेनु वत्स जनु।
दीन्ह अंक शिशु जस नँदघरनी,
स्रवत पयोधर विह्वल जननी।
लहि ब्रजजनहु हरिहिं साक्षाता,
रचेउ जन्म-उत्सव सुखदाता।
यहि विधि जुरति नित्य जनराशी,
नित नव चरित रचत ब्रजवासी।
लखत हरिहु, सोचत मन माहीं—
मैं कृतकार्य प्रिया सम नाहीं।

दोहा :— *सकेउँ न मैं उन्मूलि खल, स मुख समर कराल,*
पै राधा मम प्रेम-तरु, सींचि कीह सुविशाल। ९६

यहि विधि सप्त दिवस लखि चरितन,
लौटे निज-निज भवन यात्रिजन।
तीनिहि पावन क्षेत्र कुचाली,
हरि-यश-वृद्धि हृदय जिन साली—
दुर्योधन, दुश्शासन पापी,
सुबल-सुवन शकुनी सतापी।

लखि निज दलहु कृष्ण-गुण-गायन,
कहेउ शकुनि सन क्रुद्ध सुयोधन—
"कुटिल कृष्ण निज सुयश पसारी,
भरी भीति मम वाहिनि भारी।
निराकरण बिनु सरहि न काजू,
पठवत्र उचित दूत कोउ आजू,
करि अपमानित जो मम अरि गण,
देहि सदर्प समर-आमंत्रण।
सुवन उलूक प्रगल्भ तुम्हारा,
सकत अभय करि काज हमारा।"

दोहा :— *सुनि, बोलाय निज सुत शकुनि, कुवचन विपुल सिखाय,*
मार्गशीर्ष दशमी सुदी, दीन्हेउ प्रात पठाय। ६७

उत नँद-थल यदुनाथ ताहि क्षण,
रहे बिदा करि नेही ब्रजजन।
विकल न कोउ, न कोउ अधीरा,
प्रकट न विरह-जनित कहुँ पीरा।
सिद्धहि तजत सिद्धजन जैसे,
चले प्रभुहिं मिलि यदुजन तैसे।
गवने अगणित जन-अघ धोयी,
गवने भक्ति-बीज उर बोयी।
भारत प्रान्त-प्रान्त सोइ जामा,
हरि-मय भयी भूमि अभिरामा।
ताही समय धनजय आयी,
दूत-आगमन कथा सुनायी।
ब्रजजन-भक्ति भरे श्रीरंगा,
विहँसे सुनतहि समर-प्रसंगा।
गवने सँग अवधान अशेषा,
प्रविशे धर्मनरेश-निवेशा।

दोहा :— *जाय सभाथल हरि लखी, नृप-सेनानिन-भीर,*
लखेउ सुयोधन-दूत पुनि, भार-सँदेश अधीर। ६८

भयेउ उलूक सभा महि ठाढ़ा,
हरि दिशि चितै वचन मुख काढ़ा—
"जानत नाथ! दूत सोइ कहहीं,
जो सँदेश निज प्रभु सन लहहीं।
ताते जो कछु कहहुँ कठोरा,
छमहु दूत गुनि, दोष न मोरा।
वाणी जो कुरुनाथ कहायी,
शब्दहु कहिहौं सोइ दोहराई।
कहेउ जो यदुपति हेतु नरेशा,
कहत सोइ मैं प्रथम सँदेशा—
'कृष्ण! तुमहि गृह-विग्रह-मूला,
मम कुल सौम्य विपिन तुम शूला।
समर-मही तुम शस्त्र विहायी,
वृत्ति वर्षवर कस अपनायी?
पंढ वेष, पडहि व्यवहारा,
इन्द्रजाल बल एक तुम्हारा।

दोहा :— *इन्द्रजाल लखि होत नहिं, विकल शस्त्र-धृत शूर,*
करिहौं रण-महि काल्हि मैं, छल तुम्हार सब चूर।' ६६

धर्म नृपति हित कुरुपति भाखा—
'अब रण कस विलम्ब करि राखा?
शस्त्र स्वच्छ करि पूजे सारे,
रण हित मित्र नरेश हँकारे।
चढ़े गरजि केहरि अनुहारी,
जम्बुक-वृत्ति आजु कस धारी?
गवने यात्रि धर्म-महि त्यागी,
रिक्त विशाल क्षेत्र रण लागी।
पठवत ताते युद्ध-निमन्त्रण,
होत प्रात करिहौं रण भीषण।
बरनत नित तुम कृति मम नाना—
जतु-गृह, गरल, नारि-अपमाना।

विलपत सहि अपमान न योद्धा,
यदि रण करत वैर-प्रतिशोधा।
पै जो करि आभीर-मिताई,
दीन्ह तुमहु कुल-धर्म विहायी,

दोहा :— *तौ आजुहि निशि रण-मही, तजहु वाहिनी साथ,*
दिखिहें प्रात जो पचि नृप, मरिहें कुरुजन-हाथ।' १००

अर्जुन हित यह नृपति सँदेशा—
'सोह न तुमहिं शूरजन-वेषा।
वेष जो मत्स्य-नाथ गृह धारा,
सोइ स्वरूप यथार्थ तुम्हारा।
वंश यशस्वी तुम ते नाहीं,
उपजे वृहन्नला कुल माहीं।'
भीमहिं भूप सँदेश पठावा—
'दर्प वृकोदर ! कहाँ गँवावा ?
कर्षित लखि निज तिय-परिधाना,
कीन्हे सभा गरजि प्रण नाना।
करहु काल्हि रण साँच सकल प्रण,
पियहु पिशाच ! रक्त दुश्शासन।
करहु समर-महि मम उरु भंजन,
वधहु काल बनि शत मम अनुजन।
समुझु तथापि मूढ़ ! मन माहीं,
खात जो विपुल वीर सो नाहीं।

दोहा :— *रण-आमंत्रण देत मैं, तोहि मत्स्येश-सुआर !*
आय प्रात संगर-मही, सहु मम गदा-प्रहार।' १०१

नृपति विराट, द्रुपद महराजा,
पाण्डव-पक्ष अन्य जे राजा,
पठयेउ कुरुपति सबहिं सँदेशा—
'तजि मम अरिन जाहु निज देशा,

अथवा प्रात समर समुहायी,
यमपुर जाहु भीष्म-शर खायी।
निहतन चहत पितामह जाही,
सकत न रच्छि विष्णु रण ताही।
वाहिनि मम प्रलयाब्धि समाना,
शान्तनु सुवनहिं वेग महाना,
कर्ण तिमिङ्गिल, द्रोणहिं ग्राहा,
दुश्शासन तट-ध्वंस-प्रवाहा,
जयद्रथ अद्रि, भँवर मद्रेशा,
ज्वार वृहद्बल अवध-नरेशा,
कृप, कृत, द्रौणी मकर कराला,
प्रबल वात भगदत्त भुआला,

दोहा :— *वड़वानल काम्बोज-नृप, उद्गम शकुनि सुजान,*
तजितनु अरि-कुल-मुक्ति हित, दल मम तीर्थस्थान।" १०२

सुनत दूत-मुख उद्धत वाणी,
क्षुब्ध नरेन्द्र, क्षुब्ध सेनानी।
नयन वदन जनु ज्वलित हुताशन,
शोणित ओष्ठ विखण्डित दशनन।
उठे भीम, अँग रोष-प्रवाहा,
मनहुँ उदधि-तजि आदि-वराहा।
उठे कुपित अभिमन्यु कुमारा,
अरुण वदन जनु मंगलतारा।
उठे धृष्टद्युम्नहु रण-धीरा,
उठे क्रुद्ध युयुधान अधीरा।
उठे वृद्ध नृप द्रुपद, विराटा,
भृकुटी विकट विशाल ललाटा।
तजि धर्मज, अर्जुन, यदुराजू,
उठेउ द्रुत सब वीर-समाजू।
अंगद-भूपित, चर्चित चंदन,
उठे सभा भुज-शुण्ड सहस्रन।

दोहा :— *इंगित-मात्रहि ते सबहि, कीन्ह शान्त हरि धीर,*
बहुरि विलोकि उलूक दिशि, भाषी गिरा गँभीर— १०३

"कुरुपति-योग्यहि कुरुपति-वाणी,
भयी न ताहि सुने कछु हानी।
वाच्य - अवाच्य - विवेक - विहीना,
हीनहिं वचन कहत जन हीना।
धर्मात्मज धृति-धैर्य-निधाना,
तिनहिं मान-अपमान समाना।
चंदन सम सुजनन-व्यवहारा,
काटेहु सुरभित करत कुठारा।
सकत कि कोउ धर्मज विचलायी?
सकत कि नभ कोउ पंक लगायी?
पार्थ-भरोस सदा निज धनु पर,
शब्द न देन चहत नहिं उत्तर।
गर्जत केहरि सुनि घन-घोषा,
सुनि गोमायु-हुहानि न रोषा।
भीमहिं निज भुजबल-विश्वासा,
करिहैं पूर्ण सुयोधन-आशा।

दोहा :— *गंग-प्रवाह समान यह, पाण्डव दल गम्भीर,*
उदधि न कुरुदल, क्षुद्र नद, क्षणिक प्रवाह अधीर। १०४

करत न पाण्डव जदपि विकत्थन,
करिहैं पै कटि-बद्ध घोर रण।
पाण्डव-मही हरी कुरुरायी,
लेन हेतु तिन कीन्हि चढ़ायी।
कुरुपति-हानि न बसे चुपायी,
तबहुँ प्रचारत धैर्य विहायी।
उद्धत वृत्ति सकत नहिं त्यागी,
जरिहैं शलभ सदृश रण-आगी।
देहु सँदेश ताहि यह जायी—
'पाण्डव-दल न स्वल्प कदराई।

निज बल पाण्डव समर हठीले,
परबल तुम प्रमत्त गर्वीले।
भीष्म, द्रोण गुरुजन करि आगे,
जियन चहत तुम समर अभागे।
निश्चित दुहुन निधन रण माहीं,
बचिहैं प्राण तुम्हारेहु नाहीं।

दोहा :— *तुम रणान्त प्राणान्त-भय, दुरिहौ जहँ जहँ जाय,*
मम परिचालित पार्थ-रथ, जइहै तहँ पछियाय। १०५

सोरठा:— *प्रखर धनंजय-बाण, अटल वृकोदर-प्रण सकल,*
स्वीकृत रण-आह्वान, प्रकटहु पौरुष प्रात निज'।"

कहत मनहुँ भवितव्य जनार्दन,
उठे त्रिविक्रम सम तजि आसन।
गूँजी गिरा, सभा उत्साहा,
रण-रस-मत्त उठे नरनाहा।
गवनेउ कब उलूक नहिं जाना,
तजि रण रहेउ अन्य नहिं ध्याना।
युद्ध-वाद्य कोउ जाय बजाये,
कोउ धाय गज रथ सजवाये।
कौरव-शिविरहु बाजन बाजे,
ध्वनि-प्रतिध्वनि, भट-प्रतिभट गाजे।
सजत सैन्य लखि धर्म भुआला,
गवनेउ केशव-बास बिहाला।
पुलकेउ नृप बिलोकि यदुनंदन,
साजत स्वकर धनंजय-स्यंदन।
बचन विनीत कहे नरनाहा—
"नाथ-हाथ अब मम निर्वाहा।

दोहा :— *बाहिनि क्षुद्र बहित्र मम, रिपु-दल पारावार,*
कर्णधार, रसवार तुम, खेय लगावहु पार।" १०६

तेहि निशि उभय निवेशन माहीं,
निमिषहु सकेउ सोय कोउ नाहीं।
होत प्रात निज निज दल साजी,
चढ़े पक्ष दोउ रण-महि गाजी।
गज, रथ, अश्व, पदाति अपारा,
जनु महि केवल वसत जुझारा।
शोभित रत्न-कवच भट धारे,
उदित अगण्य मनहुँ रवि तारे।
स्वर्ण विभूषण-भूषित गज गण,
दामिनि-वेष्टित मनहुँ सघन घन।
मणिगण मण्डित ध्वजा उड़ाहीं,
अनल प्रज्वलित जनु नभ माहीं।
तोमर, परशु, गदा, धनु ताने,
विरचि व्यूह दोउ दल समुहाने।
निरखि रणोद्यत अरि कुरुरायी,
द्रोण गुरुहिं अस गिरा सुनायी—

दोहा:— *"अवलोकहु आचार्य! वह, पाण्डव-चमू महान,*
कीन्ह व्यूढ जेहि द्रुपद-सुत, शिष्य तुम्हार सुजान। १०७

यहि महँ शूर महा धनुधारी,
समर भीम-अर्जुन अनुहारी।
द्रुपद महारथि, मत्स्य महीशा,
सात्यकि, चेकितान, काशीशा।
धृष्टकेतु, शैब्यहु बलधामा,
कुन्तिभोज-नृप पुरुजित नामा।
युधामन्यु रण-विक्रम-शाली,
वीर उत्तमौजा बलशाली।
सौभद्रहु, द्रौपदि सुत सारे,
सकल महारथ रण-भट भारे।
मम पक्षहु महँ सुभट अनेका,
[illegible] विशिष्ट एक ते एका।

तुम्हरे जानन-हित द्विजरायी,
सैन्य-नायकन कहहुँ सुनायी—
आपु, पितामह, कृप जयधामा,
कर्ण, विकर्णहु, अश्वत्थामा,

दोहा :— *सोमदत्त-सुत आदि बहु, युद्ध-विशारद वीर,*
नाना शस्त्र-प्रहार-विद, मम-हित-दत्त शरीर। १०८

भीष्म सुरक्षित कटक हमारा,
परत लखाय अगण्य अपारा।
भीम-सुरक्षित रिपु-सघाता,
दिखत मोहिं मर्यादित ताता!
रहि नियुक्ति-विधि सब निज अयनन,
चहुँ दिशि करहु पितामह-रक्षण।"
सुनि भीष्महु कुरुवृद्ध ताहि क्षण,
कीन्ह प्रतापी केहरि गर्जन।
महाशब्द निज शख बजावा,
हर्ष सुयोधन-उर उपजावा।
गोमुख, शख, भेरि, पणवानक,
बाजे सहसा शब्द भयानक।
उत सुनि शत्रु-वाद्य ध्वनि श्रवणन,
दोउ सव्यसाची यदुनंदन,
महत, श्वेत-हय-सुरथ सोहाये,
निज निज शंख सुदिव्य बजाये।

दोहा :— *देवदत्त बादेउ विजय, पाञ्चजन्य यदुनाथ,*
महाशख पौण्ड्रहु बजेउ, भीम भीमकृति हाथ। १०९

कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर राजा,
शख अनतविजय कर बाजा।
नकुलहु शख सुघोष बजावा,
मणिपुष्पक सहदेव सोहावा।

धृष्टद्युम्न, काशीश धनुर्धर,
नृपति विराट, शिखण्डि वीरवर,
सात्यकि जे न कबहुँ रण हारे,
द्रुपद नृपति, द्रौपदि-सुत सारे।
महाबाहु अभिमन्यु—सबन इन,
बादेउ पृथक चतुर्दिक शंखन।
कौरव-दल-बल हृदय विदारी,
महि नभ भरी तुमुल ध्वनि भारी।
पुनि कौरव्य वाहिनी सारी,
अर्जुन व्यूह-निबद्ध निहारी।
गुनि समीप पुनि शस्त्रपात-क्षण,
कर उठाय गाण्डीव शरासन,

दोहा:— *हृषीकेश हरि सन वचन, अर्जुन कहे सुनाय—*
"चलहु उभय दल-मध्य ले, स्यंदन मम यदुराय। ११०
चहहुँ विलोकन सब तिनहि, जिन उर युद्ध-उमंग,
यहि रण-उद्यम माहिं हरि, जुझिहैं जे मम संग। १११
लखन समागत सब चहहुँ, जे जे जूझनहार,
समर सुयोधन कुमति के, जे प्रिय-चाहनहार।" ११२

अर्जुन-वचन सुनत पुरुषोत्तम,
थापेउ दोउ दल मध्य रथोत्तम।
भीष्म, द्रोण गुरु, राज-समाजा,
कहेउ सबन सन्मुख यदुराजा—
"करहु पृथा-सुत! तुम अवलोकन,
एकत्रित समस्त ये कुरुजन।"
लखे पार्थ तहँ तबहिं दुहुन दल—
बहु पितृव्य, पितामह, मातुल,
मित्र-वृन्द, आचार्यहु, भ्राता,
श्वसुर, सनेहि, पौत्र, अँगजाता।
बंधु-वर्ग सब पार्थ विलोका,
भाषे वचन सदैन्य, सशोका—

"लखि रणेच्छु हरि! स्वजनन ओरा,
शिथिल गात, सूखत मुख मोरा।
तनु प्रकम्प, रोमाञ्च अतीवा,
खसत हाथ से धनु गाण्डीवा।
मानस भ्रमत, दाह अँग गाढ़ा,
रहि नहिं सकत नाथ! मैं ठाढ़ा।

दोहा :— *मोहिं निमित्त विपरीत सब, केशव! समर लखाहिं,*
युद्ध माहि हति निज स्वजन, दिखत श्रेय कछु नाहिं। ११३

मोहिं न कृष्ण! विजय-आकांक्षा,
राज्य-सुखहु हित मोहिं न वाञ्छा।
गोविंद! राज्य हमहिं कछु नाहीं,
काह भोग, जीवनहू माहीं!
जिन हित तात! भोग सुख साजू,
इच्छत हम, सोइ स्वजन समाजू,
प्राण-सम्पदा-आस विहायी,
समर-मही अवस्थित आयी।
गुरु, पितु, भ्राता, मातुल, सारे,
श्वसुर, पौत्र, सुत नात हमारे—
ये ही सब वरु वधहिं मोहिं रण,
मैं न हतेच्छु इनहिं मधुसूदन!
करिहौं त्रिभुवन हित अस नाहीं,
धरणि-राज्य केहि गणना माहीं!
आततायि धृतराष्ट्र-कुमारा,
अघहि, न हित, कीन्हे सहारा।
वध्य न बान्धव माधव! ताते,
लहिहौं सुख कस स्वजन नपाते!

दोहा :— *लखत न ये मति लोभ-हत, कुल-क्षय-दोष महान,*
रहेउ जनार्दन! नहिं इनहिं, मित्र-द्रोह-अघ ज्ञान। ११४

दोहा :— होहिं हमहिं नहिं कस विमुख, जानि दोष हम आप,
हमहिं तौ परत दिखाय हरि ! वंश-नाश-कृत पाप। ११५

कुल-क्षय ते कुल कर चिर धर्मा,
विनसत, कुल भरि बढ़त अधर्मा।
बढ़े अधर्म, पतन कुल-तिय कर,
भये पतित तिय, उपजत संकर।
कुलघातिहिं कुल निखिल समेतू,
पठवत संकर नरक-निकेतू।
होत लोप पिण्डोदक फेरा,
पितरहु पावत नरक बसेरा।
यहि विधि कुल-घातक, यदुरायी!
स्वकुल वर्ण-संकर उपजायी,
संकर-कारक दोषन-द्वारा,
करत जाति, कुल, धर्म-सँहारा।
वश, धर्म हरि! जिन कर नासा,
सुनियत नियत नरक तिन वासा।
अहो! करन बड़ अघ हम आये,
देत लोभ-वश स्वजन नसाये!

दोहा — गहिहौं नहिं अब शस्त्र मैं, करिहौं नहिं प्रतिकार,
वधहिं धृताञ्ज जो मोहि कुरु, तबहुँ मोर उपकार!" ११६

सोरठा.—यहि विधि वचन उचारि, अर्जुन दुख-उद्विग्न मन,
बाण-शरासन डारि, बसेउ स्वथल रथ रण-मही।

श्रीहरि ताहि सदैन्य निहारी,
ग्रस्त विषाद, विकल दृग वारी,
पूछेउ—"तोहिं दारुण क्षण पायी,
व्याप्त मोह यह कहँ ते आयी!
जे अनार्य यह तिनहिन सोहा,
नासत सद्गति यश अस मोहा।

तुम्हरे योग्य पार्थ ! यह नाहीं,
धरहु न क्लीव-भाव मन माहीं।
क्षुद्र हृदय-दौर्बल्य बिसारे,
उठहु समर रिपु-तापन द्वारे !"
सव्यसाचि सुनि वचन उचारे—
"भीष्म द्रोण दोउ पूज्य हमारे।
कहहु तुमहिं संगर मधुसूदन !
करहुँ शरन कस इन सँग प्रति-रण ?
उचित न बधन महात्मा गुरुजन,
उचित जगत वरु भिक्षा-भोजन !

दोहा :— *जदपि नाथ ! अर्थार्थि ये, तदपि निहति गुरु लोग,*
परिहैं भोगन मोहि जग, रक्त-सने सुख-भोग । ११७

विजय-पराजय दोउन माहीं,
का श्रेयस्कर सूझत नाहीं।
जियन चहत नहिं जिनहिं सँहारे,
सन्मुख कुरुजन सोइ हमारे।
दैन्य-दोष मम हतेउ स्वभावा,
धर्म-ज्ञान मम मोह नसावा।
पूछहुँ काह किये कल्याणा,
निश्चित मोहिं कहहु भगवाना !
नाथ शिष्य मैं शरणहिं लीजै,
शिक्षण मोहिं मधुसूदन ! दीजै।
मिलहिं जो एक-छत्र महि-शासन,
मिलहिं जो अमरपुरी इन्द्रासन,
दिखत न पै मोहिं कछु त्रय लोका,
हरहि जो इन्द्रिय शोषक शोका।"
अस कहि, पुनि कहि-"करिहौं नहिं रण,"
रहेउ चुपाय पार्थ रिपुसूदन।

दोहा :— *उभय वाहिनी मध्य तेहि, यहि विधि खिन्न निहारि,*
विहँसत-अस जनु ताहि सन, वचन कहे असुरारि— ११८

"सोचि अशोच्य क्लेश तुम पावत,
तेहि पै पण्डितपन प्रकटावत।
मृत, जीवितहु हेतु जग माहीं,
शोच करत पण्डितजन नाहीं।
मैं, तुम अरु समस्त ये नृपगण,
रहे न भूतकाल अस नाहिन।
यहहु न सत्य कि भावी माहीं,
रहिहैं बहुरि-सकल हम नाहीं।
शैशव, यौवन, जरा-अवस्था,
यथा देह महँ प्रकट व्यवस्था,
तथा लहत पुनि जीव शरीरा,
मोह न करत जानि यह धीरा।
इन्द्रिय-विषय-सँयोगहि, ताता!
शीत-उष्ण, सुख-दु:ख-प्रदाता।
गुनि क्षण-भंगुर सो संयोगा,
करहु सधैर्य तासु तुम भोगा।

दोहा :— *इन्द्रिय-विषय-सँयोग ते, व्यथित न जो नर वीर,*
अमृतत्व सोई लहत, जो सुख-दुख सम-धीर। ११६

विद्यमान कर नाहिं अभावा,
नहिं अभाव कर संभव भावा।
दोउन केर अंत पहिचानी,
रूप निरूपेउ तत्त्वज्ञानी।
अविनाशी जेहि कीन्ह पसारा,
कोउ न अव्यय नासनहारा।
नित्य, अचिन्त्य कहावत जोई,
अविनाशिहु, तनुधारी सोई।
गुनि ये तासु अनित्य शरीरा,
करहु समर उठि तुम, रणधीरा!
मारनहार याहि जो जानत,
सोऊ—याहि निहत जो मानत,

ज्ञान न अर्जुन ! दोउन माहीं,
मारत मरत कबहुँ यह नाहीं।
जन्मत मरत न यह जग माहीं,
है यह होनहार हू नाहीं।
नित्य, अजन्मा, चिर-प्राचीना,
बधेहु देह यह नाश विहीना।

दोहा :— *अव्यय, अविनाशी, अजहु, नित्य जो जानत याहि,*
कस सो केहि कर बध करत, बधवावत सो काहि ! १२०
धारत वसन नवान्य जिमि, जर्जर मनुज उतारि,
तजि तिमि आत्महु जीर्ण तनु, लेत अन्य नव धारि। १२१

छेदत शस्त्र न अनल जरावत,
भिजवत वारि न वात सुखावत।
छिदत, जरत, भीजत नहिं सूखत,
थिर, पुराण, नित, अचल, सर्वगत।
अविकारी यहि कहत ज्ञानिजन,
जात न यहि लगि इन्द्रिय अरु मन।
यहि विधि याहि जानि मन माहीं,
करहु शोक अर्जुन ! तुम नाहीं।
अथवा तुम जो सोचत निज मन—
जन्मत मरत रहत यह प्रतिक्षण,
शोक-हेतु नहिं तबहुँ, धनजय,
जन्मेउ जो सो मरिहै निश्चय।
तिमि मृतकहु कर जन्म सुनिश्चित,
शोक निरर्थक अपरिहार्य हित।
आदि भूत अव्यक्त समस्ता,
अन्त वहोरि होत अव्यक्ता।

दोहा :— *इन्द्रिय-गोचर होत सब, मध्य अवस्थहि माहिं,*
ताते नाश शरीर कर, चिन्ता कारण नाहिं। १२२

अद्भुत-वत आत्महिं कोउ पेखत,
कोउ तस सुनत, कोउ तस बरनत।
तदपि देखि, सुनि, बरनि अनूपा,
जानत कोउ न तासु स्वरूपा।
यह अवध्य सब देहन माहीं,
ताते शोच्य जीव कोउ नाहीं।
सोचहु जो मन धर्महु आपन,
तबहुँ अशोभन यह हृत्कंपन।
भयेउ प्राप्त यह रण प्रयास बिनु,
उघरे आपुहि स्वर्ग-द्वार जनु।
भाग्यवंत अति क्षत्रिय लोगू,
लहत जे अर्जुन! अस रण-योगू।
यहहु धर्म-अनुमोदित विग्रह,
तजिहौ जो गहि पार्थ! दुराग्रह,
तौ स्वधर्म निज यशहु गँवायी,
करिहौ केवल पाप कमायी।

दोहा :— *करिहैं जन चिरकाल लगि, अयश तुम्हार बखान,*
दुःखद मृत्युहु ते अधिक, सम्भावितहि अमान। १२२

कहिहैं महारथी-समुदायी—
'भय-वश तजि रण गयेउ परायी!'
देत मान्यता तुमहिं जो आजू,
गनिहैं तुच्छ सो वीर-समाजू।
नहिं जो कहन योग्य सोइ सारा,
कहिहैं शत्रु-समूह तुम्हारा।
करिहैं तव पौरुष-अवमाना,
दुःख कवन यहि ते बढ़ि आना?
मरे समर-महि स्वर्ग-सुयोगू,
लहे विजय महि-मण्डल-भोगू।
रण-निश्चय करि ताते निज मन,
उठहु! उठहु! हे कुन्ती-नन्दन!

सुख-दुख, लाभ-अलाभहु दोऊ,
जय अरु अजय मानि सम सोऊ,
करहु समर, निज हतहु अराती,
छुइहै तुमहिं न अघ यहि भाँती।

दोहा :— *सांख्य ज्ञान यहि भाँति कहि, बरनहुँ योग-विधान,*
कटिहैं बंधन कर्म के, पाय पार्थ! जो ज्ञान। १२४

कर्मयोग-पथ माहिं धनंजय!
होत नाहिं आरंभ केर क्षय।
बाधा-विघ्न न पंथ अगारी,
थोरिहुं, सिद्धि महाभय-हारी।
यह कल्याण-पंथ लहि निश्चय,
रहति बुद्धि एकाग्र धनंजय!
चित एकाग्र न जिन करि राखा,
मति अनंत फूटहिं बहु शाखा।
श्रुति-अक्षर-रत, काम-स्वर्ग-चित,
कहत मूढ़ अस वाणी पुष्पित—
यहि अतिरिक्त अन्य कछु नाहीं,
सब कर्मन-फल जन्महि माहीं।
लहन हेतु भव-भोग अपारा,
बरनत क्रिया-विशेष पँवारा।
अपहृत जिनके चित्त यहि ते,
रहत जो वैभव भोगहिं राते,
तिनकै बुद्धि लहति नहिं निश्चय,
थिर न एक थल माहिं धनंजय!
त्रिगुणात्मक सब वेद-पसारा,
जाहु पार्थ! तुम गुण-त्रय पारा।

दोहा :— *योग-क्षेम अरु द्वन्द्व सब, अर्जुन! देहु विहाय,*
होहु नित्य सत्वस्थ तुम, इक आतमहि अपनाय। १२५

जल-सावित-महि कूप व्यर्थ जिमि,
वेद ब्रह्मविद-ज्ञानि-हेतु तिमि।
कर्महि महँ अधिकार तुम्हारा,
नाहिं कर्म-फल पै अधिकारा।
फल-हित करहु कर्म तुम नाहीं,
नहिं आसक्ति अकर्महु माहीं।
योगस्थित, आसक्ति विसारे,
अर्जुन! करहु कर्म तुम सारे।
सिद्धि-असिद्धि लेहु सम मानी,
कहत योग समभावहिं ज्ञानी।
बुद्धियोग अरु कर्मन माहीं,
बुद्धिहि श्रेष्ठ, कर्म वर नाहीं।
बुद्धिहि केर गहहु तुम आश्रय,
दीन जनहिं फल चहत धनंजय!

दोहा :— *साम्य बुद्धि ते युक्त दोउ, पाप-पुण्य नहिं भोग,*
ताते योगाश्रय गहहु, कर्म-कौशलहि योग। १२६

ज्ञानीजन समत्व-बुधि धारे,
त्यागत कर्म-जात फल सारे।
जन्म-बंध ते देत विहायी,
लेत दुःख-विरहित पद पायी।
मोह-आवरण कहँ जब फारी,
लहिहै समता बुद्धि तुम्हारी,
श्रुत श्रोतव्य-वृत्त सब त्यागी,
होइहौ वश्य तुम पार्थ! विरागी।
वेदवाद-गाथा सुनि सारी,
भ्रान्त बुद्धि जो आजु तुम्हारी,
होइहै थिर सो लगे समाधी,
लहिहौ साम्य बुद्धि निर्व्याधी।"
सुनि श्रीहरि सन अर्जुन भाषा—
"का थितप्रज्ञ केरि परिभाषा?

समाधिस्थ, थितप्रज्ञ जो होई,
बोलत, बसत, चलत कस सोई ?"

दोहा :— *कह हरि—"जब तजि देत सब, मनोकामना विज्ञ,*
बसत आपु महँ तुष्ट जब, तबहिं पार्थ ! थितप्रज्ञ । १२७

जो उद्विग्न नाहिं दुख माहीं,
सुख महँ जाहि लालसा नाहीं !
राग, क्रोध, भय जेहि न सतावत,
सोई मुनि थितप्रज्ञ कहावत ।
सब विषयन महँ जो निःसंगा,
पाय जो नित शुभ-अशुभ प्रसंगा ।
करत न द्वेष नाहिं अभिनंदन,
थिर प्रज्ञा सोइ कुन्ती-नंदन !
यथा कूर्म निज अँग-समुदायी,
लेत सर्व दिशि ते सिमिटायी ।
तिमि विषयन ते इन्द्रिय जोई,
लेत कर्षि थिरप्रज्ञा सोई ।
निराहारि हूँ विषय विहायी,
करत निवल इन्द्रिय-समुदायी ।
होत जदपि विषयन कर त्यागा,
छुटत न तदपि विषय-प्रति रागा ।

दोहा :— *पै थितप्रज्ञहिं पार्थ ! जत, परब्रह्म दरसात,*
आपुहिं विषयन-रागहू, विषयन-सह छुटि जात । १२८

केतनहु ज्ञानी करहिं प्रयासू,
होत न सफल दमन-अभ्यासू ।
इन्द्रिय-वेग पार्थ ! अति घोरा,
कर्षत चित्त चहत जेहि ओरा ।
जब सर्वेन्द्रिय-संयम संगा,
साधक-मन मम भक्ति-उमंगा,

होहि तबहि इन्द्रिय वश माहीं,
तब थिर प्रज्ञा, भय पुनि नाहीं।
करत चिन्तवन विषय-प्रसंगा,
उपजत मनुजहि विषयासंगा।
संग ते काम, काम ते कोहा,
क्रोध भये उपजत संमोहा।
संमोहहु स्मृति-भ्रम उपजावत,
स्मृति-विभ्रम पुनि बुद्धि नसावत।
अर्जुन! नष्ट बुद्धि जेहि केरी,
विनसत जीव, न लागति देरी।

दोहा :—*रहित राग अरु द्वेष ते, इन्द्रिय जासु अधीन,*
जदपि सो भोगत सब विषय, पै प्रसन्न, स्वाधीन। १२८

भये प्रसन्न नष्ट सब दुखगण,
बुद्धिहु निश्चल होति ताहि क्षण।
योग-युक्त अर्जुन! जो नाहीं,
बुद्धि भावनहु नहिं तेहि माहीं।
लहत न शान्ति भावना-हीना,
कहँ सुख तेहि जो शान्ति-विहीना?
जाहि विषय-सँग इन्द्रिय जबहीं,
इन्द्रिय-संग जात मन तबहीं।
मन पुनि हरत बुद्धि कहँ यह विधि,
हरत पवन जिमि नाव पयोनिधि।
इन्द्रिय विषयन ते जेहि फेरी,
थिर प्रज्ञा अर्जुन! तेहि केरी।
सोवत जाहि राति सब मानी,
जागत तहाँ संयमी ज्ञानी।
संसृति यह समस्त जब जागति,
सोई राति संयमिहिं लागति।
भरत जदपि जल नित तेहि माहीं,
तजत उदधि मर्यादा नाहीं,

दोहा :— *विषय-भोग सब ताहि विधि, जेहि महँ आय समाहिं ,*
लहत संयमी शान्ति सोइ, कामार्थी जन नाहिं । १३०
वर्तत जो निस्पृह निर्वसि, काम समस्त विहाय ,
निर्मम, निरहंकार जो, लेत शान्ति सो पाय । १३१

सोरठा:—*ब्राह्मी थिति यह जान, यहि लहि मोह न पार्थ ! पुनि ,*
लहत ब्रह्म निर्वाण, अंतकाल नर याहि गहि ।"

कहेउ पार्थ सुनि श्रीहरि-वचनन—
"कर्म ते श्रेष्ठ जो बुद्धि जनार्दन !
चहत करावन तौ यदुनाथा !
घोर कर्म तुम कस मम हाथा ?
व्यामिश्रित मोहिं वाक्य सुनायी ,
रहे मोह कस मन उपजायी ?
एकहि निश्चित करहु बखाना ,
जेहि ते होय मोर कल्याणा ।"
पार्थ-वचन सुनि कह यदुरायी—
"निष्ठा द्वय मैं प्रथम बतायी ।
सांख्य शास्त्र जिनके मन भावत ,
ज्ञानहिं ते अर्जुन ! अपनावत ।
निष्ठा योगिन मन जो भायी ,
कर्मयोग सोइ पार्थ ! कहायी ।
कार्यारंभ समस्त विहायी ,
नर नैष्कर्म्य सकत नहिं पायी ।
केवल सन्यासहि ते कोई ,
सिद्ध धनंजय ! मनुज न होई ।

दोहा :— *कीन्हे बिनु कछु कर्म कोउ, सकत क्षणहु रहि नाहिं ,*
प्रकृति-गुणन-परतंत्र सब, करत कर्म जग माहिं । १३२

जो कर्मेन्द्रिय रोकि हठाता ,
सुमिरत इन्द्रिय-विषयन ताता !

मिथ्याचारी अर्जुन ! सोई,
मूढ़ात्मा तेहि सम नहिं कोई।
करि मन-वश इन्द्रिय निज सारी,
सकल विषय-आसक्ति विसारी,
कर्मेन्द्रिय जो साधन मानी,
साधत योग, श्रेष्ठ सोइ ज्ञानी।
अर्जुन ! कर्महि वर अकर्म ते,
नियत स्वकर्म करहु तुम तातें।
करिहौ जो न कर्म जग माहीं,
तन-निर्वाहहु संभव नाहीं।
यज्ञ-हेतु कृत कर्म विहायी,
बंधन निखिल कर्म-समुदायी।
सकल कर्म तुम, यज्ञहु लागी,
करहु पृथा-नंदन ! रति त्यागी।

दोहा—*आदि यज्ञ सँग रचि प्रजा, भाषे वचन प्रजेश—*
'होय तुमहिं यह कामधुक, लहहु प्रकर्ष विशेष। १२२

तोषहु तुम सुर यज्ञन-द्वारा,
करहिं सुरहु सतोष तुम्हारा।
यहि विधि करि आदान-प्रदाना,
पावहु दोउ परम कल्याणा।
यज्ञ ते पाय तोष सुर लोगू,
देहैं तुमहिं यथेच्छित भोगू।'
भोगत लै बिनु-दीन्हे जोई,
चोर असशय अर्जुन ! सोई।
खात यज्ञ करि शेष सन्तजन,
सर्व अघन ते लहत विमोचन।
अपनेहि हेतु पकावत जोई,
खात पाप, नहिं अन्नहिं सोई।
अन्न निखिल प्राणिन उपजावत,
अन्नहु जन्म मेघ ते पावत।

यज्ञहि माहि होत मेघोद्भव,
यज्ञहु पार्थ ! कर्म ते सभव।

दोहा :— *कर्महु प्रकृतिज, प्रकृति कहँ, पार्थ ! अक्षरज जान,*
यज्ञ बसत ताते सदा, सर्वस्थित भगवान। १२४

चक्र प्रवर्तित अस जग माहीं,
याहि जो मनुज चलावत नाहीं,
इन्द्रिय-रत सो कुन्ती-नंदन !
पापी, तासु निरर्थक जीवन।
आत्म-तृप्त पै जन जो होई,
आत्महिं माहिं तुष्ट जो कोई,
अर्जुन ! जो आत्महि अनुरागी,
कछु कर्तव्य नाहिं तेहि लागी।
जो कछु कीन्ह, कीन्ह नहिं जोऊ,
अर्थ न तासु दुहुन महँ कोऊ।
प्राणिहु अस संसृति महँ नाहीं,
आश्रित तासु अर्थ जेहि माहीं।
करहु तुमहु आसक्ति विहायी,
निज कर्तव्य कर्म-समुदायी।
करत रहत जो कर्म त्यागि रति,
लहत पुरुष सो पार्थ ! परम गति।

दोहा :— *लही सिद्धि जनकादि हू, कर्म-पथहि ते पार्थ !*
करहु लोक-संग्रह हितहि, तुमहूँ कर्म, तजि स्वार्थ। १२५
श्रेष्ठ पुरुष जो जो करत, सोइ सकल संसार,
करत मान्य जो श्रेष्ठजन, सोइ लोक-आचार। १२६

अर्जुन ! तीनहु लोकन माहीं,
मम कर्तव्य कर्म कछु नाहीं,
प्राप्य अप्राप्त नाहिं कछु मोरे,
तदपि न तजत कर्म मैं भोरे।

जो मैं तन्द्रा पार्थ! विहायी,
करत रहहुँ नहिं कर्म सदाई,
अनुसरि मोहिं तौ सर्व प्रकारा,
तजिहैं मनुज कर्म निज सारा।
जो मैं त्यागहुँ कर्म धनंजय!
होहि क्षणहि महँ सर्व लोक-क्षय।
होइहौं मैं तो संकर-कर्ता,
प्रजावर्ग - प्राणन - अपहर्ता।
अर्जुन! कर्म माहिं रति मानी,
करत रहत जेहि विधि अज्ञानी,
ताही भाँति लोक-हित लागी,
ज्ञानिहु करहिं कर्म रति-त्यागी।

दोहा :— *निवसति अज्ञानिन-हृदय, कर्मासक्ति सुभाय,*
नासहिं ताहि न ज्ञानि जन, मन संशय उपजाय। १३७
योग-युक्त रहि आपु सब, कर्म करहिं विद्वान,
सबहिं लगावहिं कर्म महँ, आपुहि करहि प्रमाण। १३८

सत, रज, तम निज गुण त्रय द्वारा,
प्रकृतिहि कर्म करावति सारा।
अहंकार-वश मूढ़ न जानत,
आपुहिं कर्त्ता अर्जुन! मानत।
पै ज्ञानी कर अस मत होई—
मोहिं ते भिन्न कर्म, गुण दोई।
गुणन गुणन-सँग क्रीड़त जानी,
करत पार्थ! आसक्ति न ज्ञानी।
प्रकृति-गुणत्रय-मुग्ध मूढ़ जन,
अर्जुन! लिप्त रहत गुण-कर्मन।
अस अल्पज्ञ, मदमति मनुजन,
भरमावहिं नहिं पूर्ण ज्ञानिजन।
तातें योग बुद्धि अपनायी,
आशा ममता दोउ विहायी,

कर्म समस्त मोहिं करि अर्पण,
शान्त, सुखी-मन करहु पार्थ ! रण।

दोहा :— *प्रतिपालत यह मोर मत, जो मत्सरता-हीन,*
श्रद्धावंतहु, होत सोउ, कर्मन-बंध विहीन। १३६
मत्सर-वश मत मोर जे, पालत नहिं मतिभ्रष्ट,
सर्व-ज्ञान-विरहित तिनहिं, जानहु अर्जुन ! नष्ट। १४०

निज निज प्रकृतिहि के अनुसारा,
करत सकल प्राणी व्यवहारा।
होत किये निग्रह तहँ काहा?
ज्ञानिहु हित सोइ प्रकृति-प्रवाहा।
इन्द्रिय, इन्द्रिय-विषयहु सोऊ,
तिन प्रति राग द्वेष हू दोऊ,
जदपि सहज ये, बाधक जानी,
होय न इनके वश महँ ज्ञानी।
विगुणहु, साधक श्रेय स्वधर्मा,
श्रेयद नहिं सुकरहु पर-धर्मा।
निधनहु उचित स्वधर्म निभायी,
परजन-धर्म महा भयदायी।"
भाषेउ अर्जुन सुनि पुनि हरि प्रति—
"पूछहुँ, कहहु बुझाय वृष्णिपति!
बिनु इच्छा, प्रेरित केहि द्वारा,
करत विवश नर पापाचारा?"

दोहा :— *"काम क्रोध"—भगवान कह, "दोउ राजस-संजात,*
जानहु रिपु, पापी महा, कबहुँ न खाय अघात। १४१

जेहि विधि धूम-पुञ्ज अरु रज-कण,
ढाँपि लेत पावक अरु दर्पण,
ढाँपति गर्भहि झिल्ली जैसे,
काम तें आवृत ज्ञानहु तैसे।

काममूर्ति अर्जुन ! यहि केरी,
ज्ञानिन फेर सतत यह वैरी।
तृप्ति-रहित यह अनल समाना,
राखेउ ढाँपि याहि सब ज्ञाना।
इन्द्रिय, मन अरु बुद्धि धनंजय!
काम-अरातिहि के दृढ़ आलय।
निवसि इनहिं महँ, इनहिन-द्वारा,
मोहत जीव, ज्ञान हरि सारा।
कहहुँ ताहि ते कुन्ती-नंदन!
करि प्रथमहि निज इन्द्रिय-नियमन,
यह विज्ञान-ज्ञान-अपहारी,
पापी काम देहु संहारी।

दोहा:—बाह्य परे इन्द्रिय बसत, तिनहु परे मन वास,
मनातीत बुधि, बुधि परे, निवसत आत्म-प्रकाश। १४२

सोरठा:—*चीन्हि जो बुद्धिहु पार, करि निज संयम निज बलहि,*
अर्जुन कामाकार, दुरासाध निज अरि बधहु।"

कह हरि—"यह जो योग धनंजय,
विवस्वतहिं दीन्हेउ मैं अव्यय।
विवस्वतहि ते मनु पुनि पावा,
इक्ष्वाकुहिं पुनि मनुहु बतावा।
परम्परागत याहि विधाना,
राजर्षिन पायेउ यह ज्ञाना।
बहुरि परन्तप! काल अधीना,
महत योग यह भयेउ विलीना।
योग पुरातन यह पुनि सोई,
सर्व-रहस्यन ते बढ़ि जोई,
तुमहिं सखा, भक्तु निज जानी,
कहेउँ आजु मैं पार्थ ! बखानी।"
पूछेउ अर्जुन संशय-प्रेरा—
"पहिले जन्म विवस्वत केरा।

जन्म अबहिं तुम यदुपति ! लीन्हा,
तव कस तिनहिं योग तुम दीन्हा ?"

दोहा :— *भाषेउ हरि—"बीते बहुत, जन्म हमार तुम्हार,*
जानत तिनहिं न पार्थ ! तुम, मैं सब जाननहार । १४३

यद्यपि मैं सब प्राणिन-ईश्वर,
आत्मा जन्म-विहीन, अनश्वर,
तदपि प्रकृति निज मैं अपनायी,
लेहुँ जन्म माया ते आयी ।
बढ़त अधर्म, धर्म जब छीजत,
आपुहिं तब मैं अर्जुन ! सिरजत ।
करन हेतु सज्जन-परित्राणा,
हरन हेतु खल पापिन-प्राणा,
थापन हेतु धर्म संसारा,
युग-युग लेहुँ सगुण अवतारा ।
दिव्य जन्म, कर्मंहु मम होई,
जानत तत्त्व रूप जो कोई,
तजि तनु बहुरि जन्म नहिं पावत,
लहि मोरिहि गति मम ढिग आवत ।

दोहा :— *अमित ज्ञान-तप-पूत जन, राग-क्रोध-भय-हीन,*
कीन्हेउ प्राप्त स्वरूप मम, मम आश्रित, मोहि लीन । १४४

भजत मोहिं जे जौन स्वरूपा,
भजहुँ तिनहिं मैं ताही रूपा ।
मोरहि पथहि सर्व प्रकारा,
मनुज-समाज चलत गहि सारा ।
कर्म-फलेच्छा ते नर प्रेरा,
पूजन करत देवगण केरा ।
उपजति सिद्धि कर्म ते जोई,
सत्वर प्राप्त लोक -यहि होई ।

मैं ही गहि गुण-कर्म-विभाजन,
कीन्हेउँ चारिउ वर्णन-सिरजन।
यहि विधि तासु जदपि मैं कर्त्ता,
जानहु अव्यय मोहिं अकर्त्ता।
नाहिं फलेच्छा मम हिय माहीं,
कर्महु लिप्त होत मोहिं नाहीं।
विदित रहस्य मोर यह जाही,
बाँधत कबहुँ कर्म नहिं ताही।

दोहा :— *पूर्व मोक्ष-इच्छुक नरन, जानि मोर यह मर्म,*
कीन्हेउ अर्जुन! कर्म जस, तुमहु करहु तस कर्म। १४५

गुनब कर्म का, काह अकर्मा,
उपजत ज्ञानिजनहु मन भरमा।
कर्म तुमहिं अस कहहुँ बुझायी,
ज्ञान जासु लहि अशुभ नसायी।
सम्यक् - लेहु - कर्म तुम जानी,
लेहु विकर्महु कहँ पहिचानी।
जानि लेहु तुम बहुरि अकर्मा,
गहन धनंजय! कर्मन-मर्मा।
कर्म माहिं जो लखत अकर्मा,
लखत अकर्महु महँ जो कर्मा,
सर्व-कर्म-कृत योगी सोई,
बुधजन तेहि समान नहिं कोई।
अर्जुन! जेहि ज्ञानाग्नि प्रजारी,
दीन्हें निखिल कर्म निज जारी,
सर्वारंभ, फलेच्छा-विरहित,
कहत ताहि ज्ञानी जन पण्डित।

दोहा :— *नित्य तृप्त, आश्रय-रहित, जो न कर्म-फल-लग्न,*
करत कबहुँ कछु नाहिं सो, कर्मन जदपि निमग्न। १४६

चित्त संयमन जेहि निज कीन्हा,
आशा ग्रहण त्यागि सब दीन्हा,

वेहहि तासु कर्म-अनुरागी,
होत कबहुँ नहिं सो अघ-भागी।
द्वन्द्व-विहीन, विमत्सर जोई,
लहत जो, तुष्ट ताहि महँ होई,
सिद्धि-असिद्धिहु दोउ सम जाही,
कृत-कर्महु बाँधत नहिं ताही।
ज्ञानहि महँ जे थित चित धारे,
मुक्त, संग जिन सब तजि डारे,
करत कर्म जे यज्ञहि लागी,
ते नहिं होत कर्म-फल-भागी।
हवि अरु हवन ब्रह्म जो मानत,
होता, अग्निहु ब्रह्म जो जानत,
जेहि सब कर्म ब्रह्ममय जाना,
सोई लहत ब्रह्म-निर्वाणा।

दोहा :— *कछुक उपासत योगिजन, सुरन यज्ञ दै भाग,*
पूजत कछु ब्रह्माग्नि महँ, यागहि-द्वारा याग। १४७

जो श्रोत्रादिक इन्द्रिय, सोई,
सयमाग्नि महँ होमत कोई।
इन्द्रिय-पावक कोउ प्रजारी,
देत विषय शब्दादिक जारी।
ज्ञान-शक्ति ते कोउ बड़भागी,
बारि आत्म-सयम-योगागी,
होमि प्राण-इंद्रिय-व्यापारा,
देत जराय धनंजय! सारा।
व्रत जिन यतिन प्रखर अति धारा,
करत यज्ञ ते विविध प्रकारा—
कोउ द्रव्य, तप, योग-स्वरूपा,
कोऊ जप, कोउ ज्ञानहु-रूपा।
प्राणायाम परायण जोई,
प्राण अपान रोकि गति सोई,

होम अपान वायु कोउ प्राणा,
कोउ प्राण महँ वायु अपाना।

दोहा :— *अन्यहु नियताहार कोउ, होमत प्राणन प्राण—*
नष्ट सबन अघ यज्ञ ते, सबहिं यज्ञ-विद्वान। १४८

यज्ञ - शिष्ट - अमृत - उपभोगी,
ब्रह्म सनातन पावत योगी।
जब बिनु यज्ञ नाहिं यह लोका,
कस तब सकत पाय परलोका?
कहे यज्ञ ये विविध प्रकारा,
ब्रह्म-मुखहिं महँ सबन प्रसारा।
कर्म ते सिद्ध होत ये सारे,
होहु जानि ये मुक्त, सुखारे।
सिद्ध होत द्रव्यहिं ते जोई,
तेहि ते श्रेष्ठ ज्ञान-मख होई।
जग महँ कर्म जदपि विधि नाना,
ज्ञानहिं माहिं सबन अवसाना।
तत्त्वदर्शि जे ज्ञान-निधाना,
देहैं पार्थ! तुमहिं ते ज्ञाना।
करि प्रणिपात, प्रश्न, सेवकाई,
सकत ज्ञान तुम तिन ते पायी।

दोहा :— *जानि जाहि लहिहौ बहुरि, मोह पार्थ अस नाहिं,*
जेहि बल लखिहौ भूत सब, मोहि महँ, आपुहि माहिं। १४९
अघिन मध्य जो होहु तुम, सब ते बढ़ि अघकार,
ज्ञान-तरणि चढि तुम तबहुँ, जइहौ सब अघ पार। १५०

जिमि अर्जुन! ईंधन-समुदायी,
देति प्रज्वलित अग्नि जरायी,
तैसेहिं ज्ञान-स्वरूप हुताशन,
करत भस्म सब कर्मन-बंधन।

ताते अर्जुन ! ज्ञान समाना,
नहिं पुनीत कछु यहि जग आना।
योग-सिद्ध नर काल बितायी,
लेत ज्ञान आपुहि महँ पायी।
संयत-इन्द्रिय, श्रद्धावाना,
लगन जाहि सो पावत ज्ञाना।
जेहि अस मिलेउ ज्ञान-अवलम्बा,
लहत सो परम शान्ति अविलम्बा।
जो नहिं विज्ञ, न श्रद्धावाना,
विनसत अस नर संशयवाना।
नहिं संशयी हेतु यह लोका,
नहिं तेहि सुखहु, नाहिं परलोका।

दोहा :—*संशय नासेउ ज्ञान ते, योग ते कर्म-फलास,*
अस आत्मारामहि नहीं, बाँधत कर्मन-पाश। १५१

सोरठा—*अज्ञानज, हृदयस्थ, संशय काटहु ज्ञान-असि,*
संगर तुम योगस्थ, उठहु सव्यसाची! करहु!"

सुनि कह हरि प्रति अर्जुन मतिहत—
"करहुँ कर्म संन्यास प्रशंसत।
योग-प्रशंसा पुनि तुम करहू,
एक जो श्रेय सुनिश्चित कहहू।"
भक्त-वचन सुनि कह भगवाना—
"करत पंथ दोउ मोक्ष प्रदाना।
तदपि श्रेय नहिं कर्मन त्यागा,
मोहिं कर्म-योगहि बढ़ि लागा।
राग-द्वेष नहिं जेहि महँ होई,
जानहु नित-संन्यासी सोई।
एकहु द्वन्द्व पार्थ ! नहिं जाके,
कटत सुखेन बंध सब ताके।
सांख्य योग एकहि दोउ अहहीं,
तिनहिं भिन्न अनभिज्ञहि कहहीं।

सम्यक् एकहि जो अपनावत,
दुहुन केर फल साधक पावत।
जेहि थल जात सांख्य-पथ-गामी,
पहुँचत तहँहि योग-अनुगामी।
सांख्य योग दोउ एकहि जानत,
सोइ यथार्थ तत्त्व पहिचानत।

दोहा :— *कर्म-योग बिनु अति कठिन, लहब पार्थ! सन्यास,*
लहत शीघ्र यति ब्रह्मपद, जाहि योग-अभ्यास। १५१

योग-युक्त नर जो शुद्धात्मा,
जेहि जीतेउ इन्द्रिय निज आत्मा,
लखत जीव सब आपुहि माहीं,
कियेहु कर्म तेहि व्यापत नाहीं।
धारहिं निज मन योगि तत्त्ववित—
'कबहुँ करत नाहि मैं किञ्चित्।'
देखत, सुनत, छुवत अरु खाता,
सूँघत, सोवत, आवत-जाता,
त्यागत, गहत, कहत मुख वयना,
श्वसत, उघारत—मूँदत नैना,
सतत धारणा राखहिं निज मन—
'यह निज विषयन इन्द्रिय-वर्तन'।
त्यागि संग, करि ब्रह्म-समर्पण,
करत रहत जो नित प्रति कर्मन,
व्यापत ताहिं पाप नहिं तैसे,
जलज-दलहिं अर्जुन! जल जैसे।

दोहा :— *इन्द्रिय, तन, मन, बुद्धि ते, संग समस्त विहाय,*
करत योगि जन कर्म नित, आत्म-शुद्धि अभिप्राय। १५२

तजि फल योग-युक्त जो होई,
[illegible] होई।

योग-विहीन, लालसहु जाही,
स्वैर वृत्ति, बाँधत फल ताही।
मनसा कर्म अशेष विहायी,
सुखी जीति इन्द्रिय-समुदायी,
निवसत नवद्वार पुर माहीं,
नहिं कछु करत, करावत नाहीं।
मनुज-कर्म अरु कर्त्ता-भावा,
परमेश्वर नहिं इनहिं बनावा।
कर्म-फलहु-संयोग न प्रभु-कृत,
प्रकृतिहि ते यह सर्व प्रवर्तित।
पार्थ! जो पाप-पुण्य जग माहीं,
लेत ताहि परमेश्वर नाहीं।
ढाँकि लीन्ह ज्ञानहिं अज्ञाना,
माया-मोहित जीव भुलाना।
ज्ञान ते जासु नष्ट अज्ञाना.
तेहि हित अर्जुन! तेहि कर ज्ञाना,
करत प्रकाशित सूर्य समाना,
उज्ज्वल परब्रह्म भगवाना।

दोहा :— ब्रह्म-बुद्धि, ब्रह्मातम जो, ब्रह्म निष्ठ, रत जोय,
लह न जन्म पुनि, तासु अघ, जात ज्ञान-जल धोय। १५४

यहि जगती महँ ज्ञानी सोई,
समदर्शी जो अर्जुन! होई।
तेहि हित द्विज विनयी विद्वाना,
श्वपच, श्वान, गज, धेनु समाना।
यहि विधि साम्य भाव जेहि लहेऊ,
जीवन्मुक्त मनहुँ सो भयऊ।
सम, अदोष इक ब्रह्महि होऊ,
ब्रह्मस्थिति लह ताते सोऊ।
होत प्रसन्न न जो प्रिय पायी,
लहि अप्रिय नहिं जो अकुलायी,

मोह-हीन, थिर-बुद्धिहु जोई,
ब्रह्मभूत, ब्रह्मज्ञहु सोई।
पार्थ ! न बाह्य परस जेहि भावत,
आपु माहिं जो सोइ सुख पावत,
ब्रह्म-योग-युक्तात्मा सोई,
अक्षय सुख अधिकारी होई।
जे जे भोग सँयोग-प्रजाता,
ते सब अर्जुन ! दुःख-प्रदाता।
आदि अंत हू तिनक्षर होई,
रमत न तिन महँ बुधजन कोई।

दोहा :— *काम-क्रोध-उद्वेग जो, सहत मृत्यु पर्यन्त,*
मनुज सोइ यहि जग सुखी, सोई योगी संत। १५५

अन्त सुखी जो आत्मारामा,
भासित आत्मज्योति हृद्धामा,
योगि सो ब्रह्म-रूप ह्वै जायी,
लेत - ब्रह्म-निर्वाणहि भायी।
तजि दीन्हे जिन द्वन्द्व-कलापा,
भये नष्ट जिनके सब पापा,
सर्व-जीव-हित निज हित जाना,
वशी सोइ ऋषि लह निर्वाणा।
करत जो कबहुँ न काम, न क्रोधा,
आत्म-संयमी, जेहि निज बोधा,
प्राप्त मुक्ति अस योगिहिं तैसे,
मनुजहिं वस्तु धरी ढिग जैसे।
बाह्य पदार्थ-सँयोग विहायी,
दृष्टि उभय भ्रू मध्य थिरायी,
नासाचारी प्राण अपाना,
करि अर्जुन ! दोउ वायु समाना,

दोहा :— *बुद्धि मनेन्द्रिय वश करत, क्रोध, भयेच्छा-हीन,*
मुक्त सर्वदा अस यती, मोक्षहि महँ लवलीन। १५६

सोरठा:—*जान जो मोहि जगदीश, भोक्तु मोहिं तप यज्ञ कर ,*
लहत सो शान्ति मुनीश, पार्थ! निखिल प्राणिन-सुहृद ।

करत कर्म पै नाहिं फलाशी ,
सोइ योगी, सोई संन्यासी ।
तजत जो अग्नि, कर्म जग माहीं ,
सो योगी संन्यासी नाहीं ।
जेहि संन्यास कहत सब लोगू ,
जानहु पार्थ ! ताहि तुम योगू ।
कीन्हे बिनु संकल्पन' त्यागन ,
होत न योगी कोउ कुरुनंदन !
चहत जो साधक योग दृढ़ावन ,
कर्महि तासु सिद्धि हित कारण ।
योगारूढ़ होत जब सोई ,
मनःशान्ति तब कारण होई ।
इन्द्रिय-भोग नाहिं आसक्ता ,
कर्महु माहिं न जो अनुरक्ता ,
सर्वेच्छा-संन्यासी जोई ,
योगारूढ कहावत सोई ।

दोहा :—*आपु उबारहि आपु कहँ, पतन ते लेय बचाय ,*
आपुहि आपन अरि मनुज, आपुहि बंधु सहाय । १५७

जीति लेत आपुहिं जग जोई ,
आपन बंधु आपु सो होई ।
आपुहि आपु न जेहि पहिचाना ,
वर्तत निज प्रति शत्रु समाना ।
अंतःकरण जीति जेहि लीन्हा ,
शान्ति प्राप्त जेहि अर्जुन ! कीन्हा ,
परमात्मा जेहि केर समाहित ,
शीत-उष्ण तेहि करत न विचलित ।
सुख-दुख आत्मा तासु समाना ,
सम तेहि हेतु मान-अपमाना ।

तृप्त जो पाय ज्ञान-विज्ञाना,
जित-इन्द्रिय, मूलहिं जेहि जाना,
प्रस्तर, लोष्ट, स्वर्ण सम जाही,
जानहु योग-सिद्ध तुम ताही।
सुहृद, बंधु, मध्यस्थ, उदासी,
मित्र, अराति, साधु, अघ-राशी,
द्वेष योग्य जो—सब सम जाही,
सिद्ध विशेष गुनहु तुम ताही।

दोहा :—*संयत चित्तात्मा सतत, त्यागि परिग्रह आस,*
एकाकी एकान्त बसि, करहिं योग अभ्यास। १५८

योगाभ्यासी शुचि थल पायी,
थिर आसन निज लेहि बनायी।
नहिं अति उच्च, न निम्न बनावहिं,
कुश, मृगछाला, बसन बिछावहिं।
करि चित्तेन्द्रिय-क्रिया संयमन,
मन एकाग्र निवसि तेहि आसन,
अंतःकरण विशुद्धिहिं लागी,
करहिं योग-अभ्यास विरागी।
करि तनु, शीश, ग्रीव सम-रेखा,
अचलस्थिर नासाग्रहिं देखा।
दृष्टि बहोरि न इत उत जायी,
शान्तात्मा, भय-भीति विहायी,
ब्रह्मचर्य व्रत करि परिपालन,
करि सब भाँति संयमित निज मन,
पार्थ! मोहिं महँ चित्त लगायी,
मोहिं अनुरक्त युक्त ह्वै जायी।

दोहा —*करत सतत अभ्यास अस, जात स्ववश मन आय,*
शान्ति मोरि निर्वाणदा, लेत योगिजन पाय। १५९

अतिभोजी या बिनु आहारा,

सधत योग दोउन ते नाहीं,
वर्जित 'अति' योगीजन माहीं।
नियत जासु आहार-विहारा,
नियमित कर्म-आचरण सारा,
परिमित निद्रहु जासु जागरण,
तेहि हित होत योग दुख-नाशन।
है जब मन यहि भाँति संयमित,
होत निजात्महिं महँ जब थापित,
एकहु भोग नाहिं जब भावत,
योग-युक्त नर तबहिं कहावत।
वायु-हीन-थल दीपक-ज्योती,
विचलित यथा कबहुँ नहिं होती,
तैसेहि निश्चल मानस तासू,
करत जो संयत-चित अभ्यासू।

दोहा :—*योगाभ्यास-निरुद्ध चित, लहत जहाँ विश्राम,*
आत्मा लखि आत्मा लहति, आत्म-तोष जेहि ठाम, १६०

बुद्धि-गम्य, इन्द्रिय-अग्राही,
सुख अत्यन्त मिलत जहँ ताही,
भये सो थिर जहँ एकहु वारा,
टरत तत्त्व ते पुनि नहिं टारा,
लहि जेहि अन्य लाभ नहिं भावत,
थिरहिं न जहँ गुरु दुख विचलावत,
तहाँ दुःख ते होत वियोगा,
कहत ताहि तेहि कारण योगा।
तासु साधना निश्चय कीजै,
चित्त उचाट होन नहिं दीजै।
संकल्पज वासना अनेका,
कीजै त्याग, रहहि नहिं एका।
मन-बल निखिलेन्द्रिय समुदायी,
सर्व दिशान ते निज वश लायी।

बुद्धि धैर्य संयुक्त दृढ़ायी,
क्रम-क्रम शान्त होत नित जायी।

दोहा :— *सव्यसाचि ! निज मानसहि, थापहि मानस माहिं,*
आवन देय विचार पुनि, अन्य कोउ मन नाहिं । १६१

अर्जुन ! चंचल मन थिर नाहीं,
भ्रमत जहाँ जहँ विषयन माहीं,
तहाँ तहाँ ते ताहि फिरायी,
राखहि योगी निज वश लायी।
यहि विधि शान्त-चित्त, रज-हीना,
योगी सब अघ-ओघ-विहीना,
ब्रह्महि सो अर्जुन ! ह्वै जायी,
होत प्राप्त उत्तम सुख आयी।
यहि विधि सदा योग जो साधत,
तासु पाप सब अर्जुन ! नासत।
ब्रह्मस्पर्श लहत सो अंता,
भोगत सानँद सुख अत्यंता।
लहत सिद्धि योगी जन जैसेहि,
पावत साम्य दृष्टि वे तैसेहि।
सब प्राणिन महँ आपुहि देखत,
आपु माहिं सब प्राणिन पेखत।

दोहा :— *लखत मोहि सर्वत्र जो, सबहि लखत मोहि माहि,*
बिछुरत तेहि ते नाहिं मैं, सोऊ मोहि ते नाहिं । १६२

जो एकत्व भाव हिय आनी,
भजत मोहिं सर्वस्थित जानी।
करहि सो योगि काहु थल वासा,
एक मोहिं महँ तासु निवासा।
'होत व्याप्त सुख-दुख मोहिं जैसे,

आत्म-उपम्य बुद्धि अस जाही,
योगी उत्तम जानहु ताही।"
सुनि अर्जुन संशय प्रकटावा—
"मोहिं जो प्रभु ! तुम योग सुनावा,
सिद्ध होत जो साम्यहि द्वारा।
रहिहै सो थिर कवन प्रकारा ?
मन अति चंचल दृढ़ बलवाना,
मथि डारत मनुजहिं भगवाना !
सकत न जस कोउ बाँधि प्रभंजन,
तैसेहि दुष्कर मानस-नियमन।"

दोहा :— *भाषेउ हरि—"दुःसाध्य मन, चंचल संशय नाहिं,*
पै अभ्यास विराग ते, होत सोउ वश माहिं। १६३

अंतःकरण न जेहि वश माहीं,
मम मत योग-सिद्धि तेहि नाहीं।
करत यत्न जो मन वश लायी,
लेत सो सिद्धि युक्ति करि पायी।"
पूछेउ पार्थ—"कहहु भगवाना !
जो अयत्न, पै श्रद्धावाना,
बीचहि माहिं जो होय चलित मति,
लहिहै योग-भ्रष्ट अस का गति ?
मोह-ग्रस्त जो यदुपति ! होई,
ब्रह्म-मार्ग थिर रहेउ न जोई,
उभय-भ्रष्ट छिन्नाभ्र समाना,
लहत विनाश कि सो भगवाना !
यह सन्देह मोर परमेशा,
करहु हरण तुम प्रभु ! निःशेषा।
दिखत न मोहिं अन्य यदुरायी !
संशय जो मम सकहि नसायी।"

दोहा :— *कह हरि—"लहत न नाश सो, यहँ, परलोकहु माहिं,*
अर्जुन ! जो कल्याण-रत, लहत सो दुर्गति नाहिं। १६४

पुण्यवान जहँ लहत निवासा,
करि चिर सोउ तिन लोकन वासा,
शुचि श्रीमन्त भवन पुनि पायी,
जन्मत योग-भ्रष्ट नर आयी।
अथवा ज्ञानी योगिन-गेहा,
पावत अति नर-दुर्लभ देहा।
लहि पुनि पूर्व बुद्धि-संयोगा,
अधिक सिद्धि हित साधत योगा।
पूर्व जन्म अभ्यास हठाता,
कर्षत सिद्धि ओर तेहि, ताता!
जिज्ञासहु जो रासन हारा,
जात सो शब्द ब्रह्म के पारा।
जो सयत्न यहि विधि उद्योगी,
सर्व अघन तें शुद्ध जो योगी,
लहत सिद्धि बहु जन्मन जायी,
लेत सो अंत परम गति पायी।

दोहा :—*योगि श्रेष्ठ तपि-ज्ञानि ते, कर्मिष्ठहु ते सोउ,*
तेहि कारण कुन्ती-सुवन! तुमहु योगी होउ। १६५

सोरठा:—*पार्थ! श्रेष्ठतम युक्त, योगि-वृन्द हु माहिं सो,*
जो श्रद्धा-संयुक्त, भजत मोहिं लवलीन है।

मन आसक्त मोहिं महँ कीन्हे,
साधत योग ममाश्रय लीन्हे।
संशय-हीन पूर्ण मम ज्ञाना,
लहिहौ जेहि विधि करहुँ बखाना।
कहहुँ ज्ञान विज्ञान अशेषा,
जानि जाहि कछु ज्ञेय न शेषा।
मनुज सहस्रन महँ इक कोई,
करत प्रयत्न सिद्धि हित जोई।
सिद्धहु करत यत्न जे मम हित,
जानत तत्त्व रूप मोहिं कदिचत।

महि, जल, अनल, अकास, प्रभंजन,
अहंकार अरु बुद्धि और मन—
प्रकृति अष्टधा यह मम जोई,
अपरा पार्थ ! कहावति सोई।
परा प्रकृति कर पृथक स्वरूपा,
सो जग धारति, जीवन-रूपा।

दोहा :— *दोउ येहि कुन्ती-सुवन ! भूतन जन्मस्थान,*
जन्म-प्रदाता निखिल जग, लयकर्त्तहु मोहि मान। १६६

सूत्र-ग्रथित मणि इव मोहिं माहीं,
मोहिं ते परे कतहुँ कछु नाहीं।
वारि माहिं मैं ही रस रूपा,
रवि शशि महँ मैं प्रभा स्वरूपा।
प्रणव रूप श्रुति महँ मम वासा,
शब्द स्वरूप बसहुँ आकाशा।
नर पौरुष, महि गंध स्वरूपा,
अनल माहिं मैं तेजोरूपा।
मोहिं तपस्विन तप तुम जानहु,
सर्व जीव-जीवन मोहिं मानहु।
जानहु मोहिं बीज चिर प्राणिन,
ज्ञानिन - बुद्धि, तेज तेजस्विन।
काम-राग-विरहित बल जोई,
मैं बलवंतन महँ बल सोई।
काम जो धर्म-विरोधी नाहीं,
सोउ पार्थ ! मैं भूतन माहीं।

दोहा :— *सात्विक, राजस, तामसी, भाव जे अर्जुन ! आहि,*
मोहि ते सब, मोहि माहि सब, पै मैं तिन महँ नाहि। १६७

त्रिगुण पदार्थ व्याप्त संसारा,
लोक विमोहित तिन ते सारा।

तिन-अतीत मैं अव्यय, निर्गुण,
जानत मोहिं न कोऊ अर्जुन !
माया दैवी यह मम जोई,
गुणमयि, तरण कठिन तेहि होई।
मोरिहि शरण गहत जो कोई,
माया पार जात जन सोई।
माया हरेउ ज्ञान जिन केरा,
जिन उर आसुर भावहि प्रेरा,
मूढ़, नराधम, पापी जोई,
गहत शरण मम पार्थ ! न सोई।
भजत चारि मोहिं सुकृती प्राणी,
आर्त्त, मुमुक्षु, अर्थी, ज्ञानी।
तिन महँ अर्जुन ! ज्ञानिहि उत्तम,
योग-युक्त नित, भक्त एक मम।
लागत मैं अतिशय प्रिय तेही,
महूँ पार्थ ! अति तासु सनेही।

दोहा :— *सब उदार—पै मोर मत, ज्ञानी आत्महि होय,*
गति सर्वोत्तम जानि मोहिं, रमत युक्त-चित सोय। १६=

जन्म-जन्म महँ करि अभ्यासा,
आवत अंत ज्ञानि मम पासा।
'वासुदेव सब'—जाननहारा,
दुर्लभ साधु पार्थ ! संसारा।
विविध वासना-अपहृत ज्ञाना,
पूजत मनुज अन्य सुर नाना।
वश निज निज स्वभाव सब होई,
पालत रहत नियम सोइ सोई।
भक्त होत जो जेहि तनु केरा,
चाहत अर्चन श्रद्धा प्रेरा,
तेहि कर सोई श्रद्धा भावा,
महूँ ताहि महँ अचल दृढ़ावा।

यहि विधि श्रद्धा संयुत सो जन,
लागत सोइ स्वरूप आराधन।
लहत बहुरि सो मोरहि-निर्मित,
अर्जुन! सोइ काम फल इच्छित।

दोहा :— *लहत मंदमति जिन फलन, तिन कर शीघ्र विनाश,*
जात सुरन ढिग भक्त सुर, भक्त मोर मम पास। १६९

रूप श्रेष्ठ जो मोर धनंजय!
जानत नहिं सर्वोत्तम अव्यय।
बुद्धि विहीनन अस अज्ञाना—
मैं अव्यक्त, व्यक्त मोहिं जाना।
रूप योग-मायावृत होई,
सकत न देखि मोहिं सब कोई।
जानत नाहिं मूढ़ वश भरमा,
अर्जुन! मोहिं अविनाशि, अजन्मा।
प्राणी अहहिं, भये, -जे होहीं,
जानत मैं, कोउ जान न मोहीं।
द्वन्द्व जे इच्छा-द्वेष-प्रजाता,
तिनते मुग्ध-भ्रान्त जग ताता!
पुण्य कर्म अर्जुन! अपनायी,
दीन्हे जिन निज पाप नसायी,
द्वन्द्व-मोह-गत, दृढ व्रत धारे,
भजत मोहिं अर्जुन! ते सारे।

दोहा :— *करत यत्न गहि मम शरण, जन्म - मरण - मोक्षार्थ,*
ब्रह्म निखिल अध्यात्म ते, कर्महु जानत पार्थ! १७०

सोरठा:— *मोहि अधिभूत जे जान, अधिदैवहु, अधियज्ञहु,*
अंतहु करत प्रयाण, मुक्त चित्त सो जान मोहिं।"

पूछेउ पार्थ—"काह यह ब्रह्मा?
का अध्यात्म? काह यह कर्मा?

का अधिभूत ? काह अधिदैवत ?
का अधियज्ञ ? देह को निवसत ?
तजत निग्रही जन जन प्राणा,
जानत कस तुम कहँ भगवाना !"
कह श्रीहरि—"अविनाशी जोई,
अर्जुन ! ब्रह्म कहावत सोई।
वस्तु-मात्र कर मूल स्वभावा,
सोइ पार्थ ! अध्यात्म कहावा।
सर्व जीव उपजावन हारा,
सोई कर्म सृष्टि-व्यापारा।
नाश-शील जो अर्जुन ! होई,
—'क्षर' अधिभूत कहावत सोई।
जो चेतन सब वस्तुन छावा,
सोइ अधिदैवत पार्थ ! कहावा।
यहि तनु करत जो यज्ञ निवासू,
मैं अधियज्ञ धनजय ! तासू।

दोहा — *सुमिरत मोहि अर्जुन ! तजत, अंत समय जो देह,*
मोरहि लहत स्वरूप सो, नहिं यहि महँ सन्देह ! १७१

जेहि आजन्म भाव जो धारा,
तजत प्राण अंतहु तेहि द्वारा।
तेहि तेहि भाव-सदृश जो रूपा,
पावत मम सोइ सोइ स्वरूपा।
सुमिरहु ताते मोहिं सदाई,
रणहु करहु सशय निसरायी।
अर्पि मोहिं मन बुद्धि धनजय !
मिलिहो मोहिं महँ अंत असशय।
योग-युक्त करि करि अभ्यासू,
चित्त भ्रमत इत उत नहिं जासू,
करत सो परम पुरुष कर ध्याना,
पावत अंत दिव्य भगवाना।

अंत समय जो योग-सहायी,
भृकुटिन मध्य प्राण अटकायी,
थिर करि भक्ति समन्वित निज मन,
तेहि सुमिरत जो विज्ञ पुरातन,

दोहा :— *जो अनुशासक, सूक्ष्मतम, जासु अचिंत्य स्वरूप,*
जगदाधार, अतीत-तम, जो रवि वर्ण अनूप— १८२

भजि अस ब्रह्म तजत जो प्राणा,
लहत सो दिव्य रूप भगवाना।
कहत वेद-विद् घर जेहि काहीं,
यति गत-राग प्रविश जेहि माहीं,
चहत ब्रह्मचारी पद जोई,
बरनहुँ सार-रूप तोहिं सोई,
करि सब इन्द्रिय-द्वार संयमन,
करि मानस हिय महँ अवरोधन,
समाधिस्थ, धृत मस्तक प्राणन,
करत ब्रह्म ओंकार जो जापन,
सुमिरत मोहिं तजत जो देहा,
लहत परम पद नहिं सन्देहा।
नित्य निरन्तर मोहिं जो सुमिरत,
जान न देत चित्त निज अन्यत,
योग-युक्त नित योगी जोई,
सुलभ प्राप्ति मम तेहि हित होई।

दोहा — *पाय महात्मा गति परम, जैसेहि मम ढिग आव,*
अचिर, क्लेश-आवास सो, पुनर्जन्म नहिं पाव। १८३

ब्रह्मलोक सब लोकन पायी,
लेत बहोरि जन्म नर आयी,
पै पहुँचत जब नर मोहिं पाहीं,
बहुरि तासु आवर्तन नाहीं।

अर्जुन ! युग-सहस्र कर फेरा,
सोइ दिवस इक ब्रह्मा केरा।
निशिहु पार्थ ! ब्रह्मा कै जोई,
सोऊ युग-सहस्र कै होई।
यहि प्रकार जो गणना मानत,
सोइ यथार्थ दिवस-निशि जानत।
होत जबहिं ब्रह्मा-भिनुसारा,
व्यक्त होत 'अव्यक्तहु सारा,
ब्रह्मदेव निशि जैसहि आयी,
जात व्यक्त अव्यक्त विलायी।

दोहा:—*भूत-वृन्द पुनि पुनि उपजि, विवश निशा मिटि जात,*
अर्जुन ! उपजत सोइ पुनि, जब जब होत प्रभात। १७४
यहि अव्यक्तहु के परे, इक अव्यक्त निवास,
चिर, भूतन-संहार सँग, होत न तासु विनाश। १७५

जो अव्यक्त अक्षरहु होई,
गति उत्कृष्ट कहावति जोई,
पुनि नहिँ जन्म पहुँचि जेहि ठामा,
अर्जुन ! सोइ परम मम धामा।
भूत-वृन्द थित जेहि महँ सारा,
जेहि कीन्हेउ यह सकल पसारा,
उत्तम पुरुष धनंजय ! सोई,
प्राप्त अनन्य भक्ति ते होई।
मृत जब मुक्ति योगिजन पावत,
बरनँहु मृत जब पुनि महि आवत।
सुदी उत्तरायण षट मासा,
दिवस, ज्वाल जब उठति अकाशा,
मृत्यु जासु अस अवसर होई,
पावत ब्रह्म ब्रह्मविद् सोई।
बदी, उत्तरायण षट मासा,
निशि, छायेउ जब धूम अकासा,

मृत्यु जासु अस अवसर होई,
लौटत योगि लोक-शशि सोई।

दोहा:—कृष्ण शुक्ल यहि भाँति दुइ, शाश्वत गति जग माहिं,
गहे एक लौटन परत, अन्य ते लौटत नाहिं। १७६
मोहित होत न योगि कोउ, जानि मार्ग ये दोउ,
ताते अर्जुन! काल सब, योग-युक्त तुम होउ। १७७

सोरठा:—वेद, यज्ञ, तप, दान,—इनके तजि वर्णित सुफल,
परे जो आद्यस्थान, पावत योगी जानि यह।

पार्थ! तुमहिं निर्मत्सर जानी,
कहहुँ गुह्यतम ज्ञान वखानी।
कहहुँ सहित विज्ञान सुनायी,
जाने जाहि अशुभ मिटि जायी।
राजा यह सब विद्यन माहीं,
यहि ते अधिक गूढ़ कछु नाहीं।
पावन, उत्तम, अनुभव गम्या,
सहज-साध्य, अविनाशी, धर्म्या।
जिनहिं नाहिं श्रद्धा यहिं माहीं,
होत प्राप्त तिन कहँ मैं नाहीं।
पुनि पुनि जन्म मृत्यु तिन केरा,
पुनि पुनि मृत्युलोक-पथ फेरा।
निज अव्यक्त स्वरूपहि द्वारा,
व्याप्त कीन्ह मैं जग यह सारा।
निवसत भूत सर्व मोहिं माहीं,
वसत तदपि तिन महँ मैं नाहीं।
यहहु सत्य पुनि अर्जुन होई!,
थित मोहिं माहिं भूत नहिं कोई।
लखहु योग-सामर्थ्य हमारा,
सर्व भूत उपजावन हारा।

दोहा:- आत्मा मम पालत तिनहिं, बसत पै तिन महं नाहिं,
मोहिं बस तेइ, जिमि सर्वगत, महा पवन नभ माहिं। १७८

कल्प-अन्त भूतन-समुदायी,
जात प्रकृति मम माहिं समायी।
कल्पारंभ बहुरि जब आवत,
मैं पुनि पार्थ! तिनहिं उपजावत।
भूत-समूह प्रकृति-वश सारा,
रचहुँ प्रकृति बल बारंबारा।
बाँधत मोहिं कर्म ये नाहीं,
उदासीन, नहिं रति तिन माहीं।
साक्षि-मात्र मैं प्रकृतिहि द्वारा,
रचवावत सचराचर सारा।
यहि कारण अर्जुन! जग केरा,
चलत रहत सिरजन-लय फेरा।
लेत जबहिं मैं नर तनु धारी,
चीन्हि न सकत मूढ़ अविचारी।
जानत मोहि न ईश महाना,
ताते करत मोर अवमाना।

दोहा:—*आसुरि, राक्षसि, मोहमयि, प्रकृति लेत अपनाय,*
वृथा ज्ञान, आशा, कृतिहु, भ्रष्ट चित्त ह्वै जाय। ७६

किन्तु महात्मा जन जे अहहीं,
दैव प्रकृति कर आश्रय गहहीं।
भूत आदि उद्गम मोहिं जानी,
भजत एक मोहिं अव्यय मानी।
यत्नशील ते सुदृढ़ व्रती जन,
संतत करत रहत मम कीर्त्तन।
भक्ति समेत मोहि ते प्रणमत,
योग-युक्त नित मोहिं उपासत।
ज्ञान-यज्ञ ते मोर अन्य जन,
करत विविध विधि यजन उपासन।
मानि एक मोहिं, पुनि बहु रूपा,

मैं क्रतु, यज्ञहु, अर्जुन ! मैं ही,
स्वधा पार्थ ! मैं, औषधि मैं ही।
मैं ही मत्र घृताग्निहु मैं ही,
जानहु अर्जुन ! आहुति मैं ही।

दोहा:—*जगत पितामह, मातु पितु, मैं ही जगदाधार,*
जो कछु ज्ञेय, पवित्र मैं, वेद-त्रयी ओंकार। १८०

गति, पोषक, प्रभु, साक्षी मैं ही,
शरण, निवास, हितैषी मैं ही।
सृजन पार्थ ! प्रलयस्थिति मै ही,
अव्यय, बीज, निधानहु मैं ही।
मोहिं ते जगत उष्णता पावत,
मैं ही जल रोकत, बरसावत।
मैं ही मृत्यु, अमृतहु मैं ही,
जो सत असत धनजय ! मैं ही।
करत जे कर्म त्रिवेद-बखाना,
पाप-विमुक्त सोम करि पाना,
पूजत मोहिं यज्ञ के द्वारा,
याचत सुरपुर भोग विहारा,
पुण्य इन्द्रलोकहिं ते जायी,
भोगत दिव्य भोग-समुदायी।
भोगि विशाल पार्थ ! सुरलोका,
क्षीण-पुण्य लौटत यहि लोका।

दोहा—*विहित वेद-त्रय कर्म करि, चाहत फल उपभोग,*
लहत स्वर्ग आवागमन, ये श्रुति-पंथी लोग। १८१

भक्त अनन्य निष्ठ जे होहीं,
चिन्तन करत उपासत मोहीं,
योग-युक्त नित मोहिं आराधत,
योग क्षेम मैं तिन कर साधत।

अन्य भक्तहू श्रद्धावाना,
पूजत भजत देव जे आना,
यद्यपि विधि-विहीन आराधन,
पै पर्याय सोउ मम पूजन।
भोक्ता सर्व यज्ञ कर मैं ही,
अर्जुन ! तिन कर स्वामिहु मैं ही।
तदपि तत्त्वत. मोहिं न जानी,
गिरत रहत मानव अज्ञानी।
सुर-पूजक सुरलोकन जाहीं,
पितृ उपासक पितरन पाहीं,
भूत उपासक भूतन पावत,
मोर उपासक मम ढिग आवत।

दोहा —पत्र, पुष्प, फल, वारि कछु, भक्ति सहित मोहि देत,
अर्पित संयत-चित्त नर, हर्ष सहित मैं लेत। १८२

करत, खात, होमत जो अर्जुन,
देत, तपत मोहिं करहु समर्पण।
यहि विधि पार्थ ! सकल मोहिं दीन्हे,
नसिहैं कर्म-बन्ध अस कीन्हे।
फल शुभ-अशुभ न व्यापहिं तोहीं,
मुक्त, योग-युत लहिहै मोहीं।
सम मैं बसत प्राणि सब माहीं,
प्रिय अप्रिय मोहिं कोऊ नाहीं।
तदपि भक्त कर मोहिं महँ बासू,
मोरहु भक्तन माहिं निवासू।
दुराचारिहू जो कोउ भारी,
भजहि अनन्य भाव उर धारी।
वर संकल्प बसत मन माहीं,
भयेउ साधु मानहु तेहि काहीं।
शाश्वत शान्ति लहत सो आशू,
नाहिं कबहुँ मम भक्त विनाशू।

दोहा —पाप योनि अरु शूद्रगण, वैश्य वर्ग अरु नारि,
लहत परम गति सोउ मम, आश्रय अर्जुन ! धारि। १८३
सुकृति विप्र राजर्षि हित, कथन काह भक्तार्थ,
लोक अचिर, सुख हीन लहि, भजहु मोहि तुम पार्थ। १८४

सोरठा —दत्तचित्त मनु भक्त, पूजु मोहि, करु मोहि नमन,
यहि विधि ह्वै अभ्यस्त, मत्पर लेहै पाय मोहि।

तोहि तोष सुनि गिरा हमारी,
सुनु पुनि वच उत्तम हितकारी।
पार्थ ! महर्षि देवगण सारे,
प्रभव मोर नहिं जाननहारे।
जेते सुरगण अरु महर्षिगण,
मैं सब भाँति आदि तिन कारण।
जेहि मोहि आदि-रहित,अज जाना,
लोकन सर्व महेश्वर माना,
सोई मानव मोह विहीना,
होत पार्थ ! सब पापन-हीना।
असमोह, बुधि, क्षमा, ज्ञान, दम,
सत्य, दुःख,सुख, भव, अभाव, शम,
साम्य, अहिंसा, तोष भयाभय,
दान, यशायश, तपहु, धनंजय !
भूत भाव ये सर्व प्रकारा,
मोहीं ते इन केर पसारा।
पूर्वज चारि, महर्षिहु साता,
मनुहु चतुर्दश जे विख्याता,
मानस-जात मोर ये भावा,
इन जग प्रजावर्ग उपजावा।

दोहा – यह विभूति मम, योगहू, जान तत्वत जोय,
योग सिद्धि अर्जुन ! अचल, ताहि असशय होय। १८५
सर्व प्रभव मैं, मोहि ते, सकल प्रवर्तनहार,
भाव-युक्त बुधजन भजत, मोहि अस धारि विचार। १८६

अर्पित मोहि माहि मन प्राणा,
एकहिं एक सिरात्रत ज्ञाना।
कीर्तन मोर भक्त मम करहीं,
लहि आनंद तुष्ट जग रहहीं।
यहि विधि समाधान नित होई,
भजत सभक्ति रहत मोहिं जोई,
बुद्धि-योग मैं तासु दृढ़ावत,
पाय जाहि सो मम ढिग आवत।
करत अनुग्रह मैं तिन पाहीं,
पैठत तिन हिय-मंदिर माहीं।
ज्ञान-दीप ते करत उजारा,
नासत अज्ञानज अँधियारा।"
सुनि कह अर्जुन, "तुम भगवाना!
परम ब्रह्म, शुचि श्रेष्ठस्थाना।
देवल, असित, देव-ऋषि नारद,
व्यास, सर्व मुनि ज्ञान-विशारद,

दो०—*कहत—आदिसुर, दिव्य तुम, विभु, अज, पुरुप पुराण,*
कीन्ह तुमहु प्रभु! आजु निज, ताही भाँति बखान। १८७

मानत मैं जो कहत तुम केशव!
जान मूल तव देव न दानव।
हे पुरुषोत्तम! हे विश्वेशा!
भूत-विधाता! हे भूतेशा!
देवदेव मैं तुम कहँ मानत,
आपुहिं एक आपु तुम जानत।
प्रभु जिन दिव्य विभूतिन-द्वारा,
बसहु व्याप्त करि सब संसारा,
सुनन चहहुँ सब कृपा-निकेतू!
कहहु बरनि विस्तार-समेतू।
योगिन! धरि नित ध्यान तुम्हारा,
तुमहिं चीन्हिहौं कवन प्रकारा?

कवन कवन भावन कर ध्याना,
करब उचित आपहु भगवाना!
अमृत गिरा सुनत प्रभु तोरी,
कबहूँ तृप्ति होति नहिं मोरी।

दोहा.—*वरनि कही जो तुम अबहि, शक्ति विभूति तुम्हारि,*
मम हित वरनहु नाथ! पुनि, सोइ सकल विस्तार।" १८८

कह हरि—"अब कहिहौं तोहि पाहीं,
मुख्य मुख्य जो इन सब माहीं।
वर्णन नहिं संभव निःशेषा,
मम विस्तार अनंत अशेषा।
अर्जुन! सब प्राणिन उर अन्तर,
मैं ही आत्मा बसत निरन्तर।
भूतन आदि धनंजय! मैं ही,
तिन कर मध्य, अंतहू मैं ही।
विष्णु मोहिं आदित्यन मानहु,
ज्योतिष्मंतन सूरज जानहु।
जानहु मोहिं मरीचि तुम मरुतन,
निशानाथ जानहु नक्षत्रन।
वेदन महँ मोहिं जानहु सामा,
देवन माहिं इन्द्र मम नामा।
इन्द्रियगण महँ जानहु मोहिं मन,
भूतन महँ मैं तत्त्व सचेतन।

दोहा:—*शकर रुद्रन माहिं मैं, राक्षस-यक्ष कुबेर,*
पावक मैं वसु-वृन्द महँ, शैलन माहिं सुमेर। १८६

मुख्य पुरोहित महीं बृहस्पति,
कार्तिक मैं ही श्रेष्ठ सैन्यपति।
सरोवरन महँ मैं ही सागर,
मध्य महर्षिन भृगु ज्ञानाकर।

गिरा प्रणव एकाक्षर जानहु,
यज्ञन माहिं मोहिं जप मानहु।
थिरन मध्य मैं पार्थ! हिमाचल,
महीरुहन महँ मैं ही पीपल।
सिद्ध कपिल, देवर्षिन नारद,
चित्रसेन गन्धर्व विशारद।
अमृत-मंथन ते संजाता,
उच्चैःश्रवस वाजि विख्याता।
ऐरावत मैं ही गजराजन,
राजा मैं ही अर्जुन! मनुजन।
वज्र आयुधन महँ मोहिं जानहु,
कामधेनु मोहिं धेनुन मानहु।

दोहा :—*प्रजा-प्रजायक पार्थ! मोहिं, जानहु तुम कन्दर्प,*
मानहु सर्प-समूह महँ, मोहिं वासुकी सर्प। १६

नागन माहिं शेष मम रूपा,
वारिचरन मैं वरुण स्वरूपा।
पितरन महँ मैं पार्थ! अर्यमा,
अनुशासक-वृन्दन यम नामा।
दैत्यन मोहिं प्रह्लादहि जानहु,
गणकन माहिं काल मोहिं मानहु।
पशुन माहिं मैं ही मृगराजा,
पक्षिन माहिं गरुड़ खगराजा।
वायु वेग-शीलन मम नामा,
शस्त्रधरन महँ मैं ही रामा।
मकर, पार्थ! जानहु मोहिं मीनन,
सुरसरि तुम जानहु मोहिं सरितन।
सृष्टिन आदि, मध्य, अवसानहु,
तीनहु मोहिं पार्थ! तुम जानहु।
विद्यन मम अध्यात्म स्वरूपा,

दोहाः—*द्वन्द्व समासन माहिं मैं, मैं अच्छरन अकार,*
काल अनश्वर, बह्म मैं, बहुमुख सिरजनहार। १६१

सर्व क्षयी मृत्युहु मम नामा,
भावी प्राणिन उद्गम-ठामा।
नारिन मँह मैं श्री, कीर्तिस्मृति,
मैं ही मेधा, क्षमा, वाक्, धृति।
अर्जुन! वृहत्साम मैं सामा,
छन्दन मम गायत्री नामा।
मासन मार्गशीर्ष मोहिं जानहु,
ऋतुन माहिं कुसमाकर मानहु।
छलिन द्यूत, तेजहु तेजस्विन,
जय, निश्चय अरु सत्व सात्वकिन।
वृष्णिन वासुदेव मम रूपा,
पाण्डव महँ मैं पार्थ स्वरूपा।
मुनिन माहिं मैं व्यास मुनीश्वर,
कविन माहिं मैं शुक्र कवीश्वर।
शासक दण्ड, नीति विजयैषिन,
गुह्य मौन, ज्ञानहु मैं ज्ञानिन।

दोहा :—*नहिं सचराचर मोहि बिनु, जीव बीज मोहिं जान,*
दिव्य विभूति अनन्त मम, ये दृष्टान्त समान। १६२
जहँ जहँ वस्तुन महँ दिखत, लक्ष्मी, विभव, प्रभाव,
जानहु मम तेजांश ते, तिन कर प्रादुर्भाव। १६३

सोरठाः—*यह बहु ज्ञान-प्रसार, जाने तुमहि न लाभ कछु,*
व्यापेउँ सब संसार, केवल एकहि अंश में।"

सुनि कह अर्जुन—"तुम यदुरायी!
कीन्हि कृपा अध्यातम सुनायी।
गुह्य ज्ञान सुनि गत अज्ञाना,
रहित मोह मैं अब भगवाना!

भूत-वर्ग कर सिरजन-नासन,
सुनेउँ सकल मैं सरसिज-लोचन!
ताही विधि माहात्म्य तुम्हारा,
सुनेउँ नाथ! मैं सह विस्तारा।
बरनेउ जस पुरुषोत्तम! रूपा,
चहहुँ लखन सोइ ईश-स्वरूपा।
मोहि योगेश! जो संभव दर्शन,
कीजे अव्यय रूप प्रदर्शन।"
सुनत पार्थ प्रति कहेउ जनार्दन—
"लखहु रूप शत, मोर सहस्रन।
दिव्य रूप ये भिन्न प्रकारा,
वर्ण विभिन्न, भिन्न आकारा।

दोहा:—*मरुत, रुद्र, आदित्य, वसु, दोउ अश्विनी कुमार,*
लखहु जो अचरज बहु कबहुँ, लखेउ न दृगन तुम्हार। १६४

यहाँ आजु एकत्रित सारा,
निरखहु सचराचर संसारा।
जो जो देखन इच्छा होई,
देखहु मम शरीर सोइ सोई।
चर्म विलोचन पार्थ! तुम्हारे,
देखि सकत नहिं रूप हमारे।
देत तोहि मैं दिव्य विलोचन,
करु मम योग विभूतिन दर्शन।"
पार्थहिं अस योगेश! सुनावा,
उत्तम ईश रूप दरसावा।
परे दिखाय अनेकन आनन,
अगणित नयनहु, अद्भुत दर्शन।
दिव्याभरण अनेकन राजे,
दिव्योत्थित आयुध बहु साजे।
दिव्य मालयुत, दिव्य वसन धृत,

देव अनंत विश्वमुख रूपा,
भरित सर्व आश्चर्य स्वरूपा।

दोहा:—उदित होहिं इक संग जो, रवि-सहस्र आकाश,
तासु महात्मा कान्ति सम, दिखहिं तौ कछु कछु भास। १६५

विभु तनु महँ एकस्थित सारा,
लखि बहु विधि विभक्त संसारा,
विस्मय पुलक पार्थ तनु छावा,
नत शिर प्राञ्जलि वचन सुनावा—
"देव! देह तव परत लखायी,
सुर सब, विविध भूत-समुदायी।
राजत प्रभु ब्रह्मा कमलासन,
ऋषि वृन्दहु सब, दिव्य उरगगण।
बाहु, उदर, दृग, वक्त्र न अंता,
लखहुँ सर्व दिशि रूप अनंता।
दिग्गत मोहिं नहिं कहुँ अवसाना,
होत न आदि, मध्य अनुमाना।
हे विश्वेश्वर! दिग्गत न पारा,
विश्वरूप मैं लखत तुम्हारा।
लखहुँ चतुर्दिक अंग तुम्हारे,
गदा, किरीट, चक्र तुम धारे।

दोहा:—तेज-पुञ्ज दुर्लक्ष्य तुम, जगमग ज्योति स्वरूप,
दीप्त हुताशन, सूर्य सम, लखहुँ सर्व दिशि रूप। १६६

अन्तिम ज्ञय, अक्षरहु तुमही,
अन्तिम विश्वाधारहु तुमही।
तुमही पालत धर्म सनातन,
तुमही अव्यय पुरुष पुरातन।
दिखत न आदि, मध्य कहुँ अंता,
शक्ति पार नहिं, वीर्य अनंता।

बाहु अगण्य, भानु-शशि लोचन,
आनन मनहुँ ज्वलंत हुताशन।
सकल विश्व यह तुम हरि तायी!
आत्म-तेज ते रहे तपायी।
महि, नभ, अन्तर, दिशि समुदायी,
व्याप्त एक तुम परत लखायी।
अद्भुत, उग्रहु रूप तुम्हारा,
व्यथित विलोकि भुवन-त्रय सारा।
तुम महँ करत प्रवेश देवगण,
करत भीत कछु विनत निवेदन।

दोहाः—*सिद्ध महर्षिन के परत, निरखि मोहि समुदाय,*
विपुलस्तुति सब मिलि करत, वाणी 'स्वस्ति' सुनाय। १९७

वसु समस्त, आदित्य, साध्यगण,
विश्वेदेवा, रुद्र, मरुद्गण,
अश्विनि दोउ, यक्ष, गंधर्वा,
राक्षस, पितृ, सिद्धगण सर्वा,
सचकित नयनन, विस्मित भारी,
रहे तुम्हारिहि ओर निहारी।
बहुमुख, उरु, भुज, चरण, विलोचन,
उदर, दाढ़ विकराल अनेकन।
महत रूप यह करि अवलोकन,
व्यथित लोक सब, व्यथित मोर मन।
नभस्पर्शि, बहु वर्णन वारे,
प्रसरित विष्णु! वदन उजियारे।
लोचन सकल विशाल प्रज्वलित,
व्यथित हृदय मम शम-धृति विस्मृत।
वदन विलोकि दाढ़ विकराला,
जनु लय काल हुताशन-ज्वाला,
गत देवेश! हर्ष, दिग्ज्ञाना,
करहु अनुग्रह भुवन-निधाना!

दोहा: –*भीष्म, द्रोण धृतराष्ट्र-सुत, कर्ण, सर्व नरनाथ,*
अहो हमारेहु पक्ष के, प्रमुख सुभट तिन साथ— १६८
रहे प्रविशि द्रुत तुव वदन, भयद दाढ़-विकराल,
कोउ कोउ दशनन बिच दिखत, चूर्ण-विचूर्ण कपाल। १६६

जेहि विधि सरित प्रवाह महाना,
हठि उदधिहि दिशि करत प्रयाणा,
तिमि ज्वलंत तव बहु मुख माहीं,
ये नरलोक प्रवीर समाहीं।
शलभ-वृन्द जिमि विनसन लागी,
प्रविशत आपु धाय ज्वलितागी,
तिमि विनाश हित वेग विशेषा,
करत लोक तव वदन प्रवेशा।
हे विभु! तुमहु दीप्त निज आनन,
लीलि लोक सब चाटत जिह्वन!
व्यापि तेज ते जगती सारी,
उग्र प्रभा तपि रही तुम्हारी।
कहहु कवन तुम उग्र रूप-धर,
प्रणमहुँ, होउ प्रसन्न देववर!
मोहि तुम्हारि प्रवृत्ति न अवगत,
आद्य! तुमहि मैं जानन चाहत।"

दोहा:—*कह हरि—"काल प्रवृद्ध मैं, लोक विनाशन हार,*
आयेउँ अर्जुन! यहि समय, करन लोक-संहार। २००
करहु चहे संग्राम तुम, करहु चहे तुम नाहि,
मरनहार योद्धा सकल, ये दोउ दल माहि। २०१

ताते उठु! करु कीर्ति उपार्जन,
भोगु समृद्ध राज्य जित-आरिगण।
मैं पूर्वहि इन सबहिं निपाता,
होउ निमित्त मात्र तुम ताता!
भीष्म, द्रोण, राधेय, जयद्रथ,
तिमि अन्यहु रण वीर महारथ—

युद्धहु ! मम-निहतन संहारहु ।
जितिहौ श्ररि, उर व्यथा बिसारहु ।"
सुनि यहि विधि मधुसूदन-वाणी,
कम्पित नमित पार्थ भय मानी ।
रुद्ध कण्ठ प्रणमत करजोरी,
बोलेउ कृष्णहिं वचन बहोरी —
"उचितहि जो यह जगत जनार्दन !
लहत प्रीति मुद करि तव कीर्तन ।
उचित समीति निशाचर भागत,
उचितहि सिद्ध-संघ जो प्रणमत ।

दोहा :—सकृत महात्मन ! त्यागि क्रम, ये सब नमन तुम्हार,
गुरुतमहू ते गुरु तुमहि, विधिहु बनावन हार । २०२
हे अनन्त ! देवेश हे ! हे संसृति आधार !
तुम सत-असतहु, अक्षरहु, जो इन दोउन पार । २०३

आदि देव तुम पुरुष पुराणा,
तुम यहि संसृति परम निधाना ।
तुमही ज्ञेय, तुमहि पुनि ज्ञाता,
तुमहि परम पद मोक्ष-प्रदाता ।
तुमहि अनंतरूप ! यह सारा,
व्यापेउ निखिल विश्व-विस्तारा ।
अग्नि, वरुण, यम, वायु, प्रजापति,
प्रपितामह तुम, तुमहि निशापति ।
करहुँ प्रणाम सहस्रन वारा,
पुनि वंदन पुनि नमन तुम्हारा ।
प्रणमहुँ सन्मुख, पाछेउ प्रणमहुँ,
सर्वस्वरूप ! सर्व दिशि बंदहुँ ।
प्रभु ! सामर्थ्य अनंत तुम्हारा,
पराक्रमहु कर वार न पारा ।
व्याप्त तुमहि ते संसृति सारी,
ताते ः ा 'सर्व' तम्हारी ।

दोहा :—मानि तुमहिं मैं निज सखा, यह महिमा नहिं ज्ञात,
सखा ! कृष्ण ! यादव !—कहेउँ, प्रणय, प्रमाद-वशात्

गमन-समय वा निवसत आसन,
अच्युत ! करत शयन वा भोजन,
जो प्रत्यक्ष परोक्ष तुम्हारी,
कीन्हि हँसी सत्कार विसारी,
क्षमहु सर्व सो मम अवमाना,
अप्रमेय महिमा को जाना ?
पिता तुमहि सचराचर जग के,
पूज्यहु तुम, तुम गुरुहु गुरुन ते।
तुल्यहु जब न लोक-त्रय आना,
कहँ तब तुम ते बढ़ि भगवाना !
हे अनुपम प्रभाव ! तेहि कारण,
वंदहुँ शीश चरण करि धारण।
तुम ईश्वर, शासक, योग्यस्तुति,
होहु प्रसन्न कृपैपी मम प्रति।
क्षमत सुतहिं पितु,सखहिं सखा जिमि,
प्रियहु प्रिया, मोहिं क्षमहु देव[1] तिमि।

दोहा —हर्षित, भीत अदृष्ट लखि, रीझहु जगदाधार !
दरसावहु देवेश ! मोहिं, पूर्व स्वरूप तुम्हार।

धारे गदा किरीट पूर्ववत्,
चहहुँ लखन पुनि हस्त चक्र धृत।
हे सहस्रभुज ! विश्व-स्वरूपा,
प्रकटहु बहुरि चतुर्भुज रूपा।"
सुनत वचन भगवान उचारा—
"यह निज रूप योग बल द्वारा,
प्रकटेहुँ जो मैं श्रेष्ठ, तेजमय,
आद्य, अनन्त, समग्र धनंजय,
सो नहिं पूर्व कोउ लखि पावा,
[illegible] न मैं [illegible] दिखावा।

घोखे वेद, कियेहू कर्मन,
कीन्हे अर्जुन ! यजन, अध्ययन,
दीन्हे दान, किये तप घोरा,
संभव मनुजहिं दरस न मोरा।
तजि तोहिं नहिं नरलोक कोउ क्षम,
सकहिं जो मोहिं लखि यहि स्वरूप मम।

दोहा :— होहु न व्यथित, विमूढ तुम, निरखि रूप मम घोर,
अवलोकहु गत-भय, मुदित, रूप पूर्व यह मोर।"२०६

यहि विधि अच्युत वचन सुनावा,
वासुदेव निज रूप दिखावा।
कीन्ह सौम्य तनु भवपति धारण,
दीन्ह भीत पार्थहिं आश्वासन।
बोलेउ अर्जुन—"निरखि मनुज तन,
यह तुम्हार पुनि सौम्य जनार्दन !
मैं प्रसन्न अब नाथ ! बहोरी,
भयी स्वस्थ प्रकृतिहु पुनि मोरी।"
कह हरि—"लखेउ जो कुन्ती-नन्दन !
रूप मोर तुम सो दुर्दर्शन।
सर्व काल सुरलोकहु वासी,
यह स्वरूप दर्शन अभिलाषी।
लखेउ मोहिं तुम जाहि प्रकारा,
सभव सो न वेद, तप द्वारा।
किये दान, यज्ञहु जग माहीं,
शक्य भाँति यहि दर्शन नाहीं।

दोहा — अर्जुन ! भक्ति अनन्य बिनु, सभव यहि विधि नाहिं,
दरस, ज्ञान मम तत्वत, अत मिलन मोहि माहिं। २०७

सोरठा —करत कर्म मम लागि, सग-रहित निर्वैर जो,
मोहिं माहिं अनुरागि, लहत पार्थ ! मोहिं भक्त मम।"

पूछेउ अर्जुन—"यदि विधि संतत,
भक्त मुक्त जो तुमहिं उपासत,
अन्य जो ध्यावत निर्गुण, अक्षर,
उभय माहिं को श्रेष्ठ - योगिवर!"
कह हरि—"मोहिं करि चित्त समर्पण,
युक्त जे नित मम करत उपासन,
ते अर्जुन! अति श्रद्धावाना,
योगी श्रेष्ठ तिनहिं मैं माना।
सेउ जे नियमित इन्द्रिय सारी,
साम्य बुद्धिहु निज उर धारी,
सेवत ब्रह्म जो बिनु निर्देशा,
रुद्ध कतहुँ नहिं जासु प्रवेशा,
जो ध्रुव, अचल, अचिंत्य, अगोचर,
सर्व-सृजन-मूलस्थित, अक्षर,
निरत जे सर्व-प्राणि-हित रहहीं,
मोहिं असशय अर्जुन! लहहीं।

दोहा — *रोपि चित्त अव्यक्त पै, क्लेश अधिक लह भक्त,*
देहवत हित पार्थ! यह, कष्ट-साध्य अव्यक्त। २०८

पै जे अर्पि कर्म मोहिं सारे,
मोरहि भाव रहत उर धारे,
गहत योग एकान्तिक आश्रय,
ध्यावत, पूजत मोहिं धनंजय!
मोहिं आसक्त बुद्धि जिन केरी,
तनिकहु करहुँ न तिन हित देरी—
काढ़ि मृत्यु-भव पारावारा,
मैं कौन्तेय! करहुँ उद्धारा।
ताते मन मोहिं माहिं लगावहु,
मोहि महँ अर्जुन! बुद्धि दृढ़ावहु।
भये शरीर-पात मोहिं माहीं,
बसिहा यहि महँ संशय नाहीं।

कीन्हेउ मैं अब लगि जिमि वर्णन,
तिमि थिर होत न मोहिं महँ जो मन,
तौ अभ्यास-योग कर आश्रय,
गहि इच्छहु मोहिं लहन धनजय।

दोहा — करहु कर्म मम हेतु, यदि, अभ्यासहु असमर्थ,
प्राप्त सिद्धि होइहै तुमहि, करत कर्म मम अर्थ। २०६
कर्मयोग आश्रय गहहु, शक्य न यहहु जो लाग,
रोधि चित्त क्रम-क्रम करहु, सर्व कर्म-फल त्याग। २१०

बढि अभ्यास ते अर्जुन ! ज्ञाना,
ज्ञानहु ते श्रेयस्कर ध्याना।
ध्यान ते श्रेष्ठ कर्म-फल त्यागन,
त्याग ते लहत शान्ति नर तत्क्षण।
द्वेष-हीन सब प्राणिन माहीं,
सर्व-मित्र, ममता जेहि नाहीं,
क्षमी, कृपालु, नाहिं अभिमाना,
योगी सुख-दुख जाहि समाना।
सतत तुष्ट, सयत, दृढ निश्चय,
अर्पित बुधि-मन मोहिं भक्त प्रिय।
जो न क्लेश काहुहिं उपजावत,
काहू ते न क्लेश जो पावत,
प्रिय मोहिं भक्त, रोष नहिं हर्षा,
भय, विषाद नहिं, नाहिं अमर्षा,
उदासीन जो व्यथा-विहीना,
जो निरपेक्ष, पवित्र, प्रवीणा,
सर्वारंभन त्यागन हारा,
अस भक्तहि मोहिं पार्थ ! पियारा।

दोहा :— जेहि नहिं इच्छा, द्वेष नहिं, हर्ष, शोक नहिं होहि,
तजत शुभाशुभ, भक्तियुत, भक्त सोइ प्रिय मोहि। २११
शत्रु-मित्र प्रिय जासु ढिग, सम मानहु अपमान,
संग-रहित, सुख-दुःख जेहि, शीतल-उष्ण समान, २१२

दोहा :—*निंदास्तुति सम, मौनि जो, तुष्ट जो पावत थोर,*
थिर मति, थल बिनु, भक्ति युत, मनुज सोइ प्रिय मोर। २१३

सोरठा:—*सेवत श्रद्धावंत, धर्म सुधा-सम मम कथित,*
मोहिं माहिं आसक्त, प्रिय अत्यंत सो भक्त मोहिं।

कुंती-तनय ! देह यह जोई,
जानहु क्षेत्र कहावति सोई।
यहि क्षेत्रहिं अर्जुन ! जो जानत,
तेहि 'क्षेत्रज्ञ' विज्ञजन मानत।
क्षेत्रज्ञहु जो बस सब क्षेत्रन,
जानहु सो मोहिं कुन्ती-नंदन।
यहहु क्षेत्र-क्षेत्रज्ञहु-ज्ञाना,
मोरहि ज्ञान विज्ञ तेहि माना।
क्षेत्र काह ? का तासु प्रकारा ?
कवन कवन तेहि माहिं विकारा ?
केहि ते काह होत तहँ रहही ?
क्षेत्रज्ञहु यह को तहँ अहही ?
उपजावत सो कवन प्रभावा ?—
सुनु ! थोरेहि महँ चहहुँ सुनावा।
ऋषिन विषय यह विविध प्रकारा,
पृथक पृथक बहु छंदन द्वारा,
कीन्ह ब्रह्म-सूत्रन महँ वर्णन,
निश्चय-पूर्वक, सहित प्रमाणन।

दोहा :—*महाभूत महि आदि जे, अहंकार, बुधि पार्थ !*
अव्यक्तहु, इंद्रिय, मनहु, जे पंचेन्द्रिय अर्थ, २१४

राग, द्वेष, सुख, दुख, संघाता,
धृति चेतना-तत्त्व जे ताता,
सोइ 'क्षेत्र सविकार' कहावा,
थोरेहि महँ मैं तुमहिं सुनावा।

मान-हीनता, दंभ-अभावा,
क्षमा, अहिंसा, सरल स्वभावा,
थिरता अरु आचार्य-उपासन,
अनासक्ति, शुचिता, मन-नियमन,
अहंकार हू मानस नाहीं,
सतत विराग विषय सब माहीं,
मृत्यु, जरा, जन्महु, दुख, व्याधी—
लागत जेहि ये सकल उपाधी,
अर्जुन ! दारा-पुत्रन-गेहू,
स्वल्प न माया ममता नेहू,
इष्ट अनिष्टन दोउन माहीं,
एकहि वृत्ति, चलित चित नाहीं,

दोहा —*एकान्तिक निश्चल करति, भक्ति मोरि मन वास,*
रुचत मनुज-समुदाय नहिं, भावत विजन निवास, २१५

नित्य ज्ञान अध्यात्महिं जानन,
तत्त्वज्ञान अर्थन परिशीलन—
यहै सकल कुन्तीसुत ! ज्ञाना,
यहि विपरीत सकल अज्ञाना।
लहत मोच्छ जेहि जाने प्राणी,
सोइ ज्ञेय, तेहि कहहुँ बखानी।
सब ते परे अनादिहु जोई,
अर्जुन ! ब्रह्म कहावत सोई।
'सत' नहिं ब्रह्म कहावत ताता !
असतहु पार्थ ! न सो विख्याता।
सर्व ओर ताके मुख, काना,
कर, पद, शीश, दृगहु दिशि नाना।
सोइ व्याप्त थहि संसृति माहीं,
नहिं थल जहाँ ब्रह्म सो नाहीं।
सब इन्द्रिय गुण तेहि महँ भासा,
इन्द्रिय पै न एक तेहि पासा।

दोहा :— *सब ते रहित अलिप्त सो, पै सब धारनहार,*
सकल गुणन ते हीन पै, सकल गुणन-भोकार। २१६

सो भूतन बाहर हु भीतर,
यद्यपि सो गतिमत तदपि थिर,
सूक्ष्म तत्त्व, ताते अज्ञाता,
दूरि तथापि वसत ढिग ताता।
अविभक्तहु, पै खण्ड लखाहीं,
पृथक दिखत सब भूतन माहीं।
ज्ञेय सोइ सब कर कर्त्तारा,
प्राणिन-पालक, नासनहारा।
तम-अतीत तेहि केर निवासा,
सोई सर्व-प्रकाश-प्रकाशा।
ज्ञानगम्य सो ज्ञेयहु सोई,
ज्ञानहु सोइ, सर्व उर होई।
यहि विधि क्षेत्र, ज्ञेय अरु ज्ञाना,
संक्षेपहि मैं कीन्ह बखाना।
जानि सकल यहु तात्त्विक रूपा,
लहत भक्त मम मोर स्वरूपा।

दोहा :— *जानहु पार्थ! अनादि तुम, प्रकृति पुरुष ये दोय,*
सर्व विकारन गुणन कर, जन्म प्रकृति ते होय। २१७

देहेन्द्रिय कर्तृत्व जो सारा,
प्रकृतिहि तहँ कारण कर्त्तारा।
दोउ दुख सुख भोगनहारा,
पुरुषहि, जदपि न सो कर्त्तारा।
प्रकृतिस्थित पुरुषहि यह ताता,
भोगत गुणन प्रकृति-सञ्जाता।
उपजत गुणन-सँयोगहि पायी,
पुरुष शुभाशुभ-योनिन जायी।
परम पुरुष देहस्थित सोई,
साक्षी, अनुमति-दाता सोई।

भर्ता, भोक्ता सोइ महेश्वर,
परमात्मा यह नाम ताहि कर।
जो यहि विधि पुरुषहिं पहिचानत,
गुणमयि प्रकृति गुणन सह जानत।
वर्तन करहि काहु विधि सोई,
पुनर्जन्म तेहि कर नहिं होई।

दोहा :— *कोउ अपनेहि आपु महँ, लख आत्मा धरि ध्यान,*
कर्मयोग ते, सांख्य ते, कोउ ताहि पहिचान। २१८

जे नहिं सकत आपु लहि ज्ञाना,
भजत अन्य ते सुनि भगवाना।
श्रद्धावंत जो येउ धनंजय!
गवनत मृत्यु-पार नहिं संशय।
उपजत जगत चराचर जेते,
प्रकृति-पुरुष-संयोगज तेते।
थित सब भूतन एक समाना,
अर्जुन! परमात्मा भगवाना।
जात सर्व जब भूत विनासी,
विनसत सो न तबहुँ अविनाशी।
यहि प्रकार जो तेहि कहँ जानत,
तत्त्व यथार्थ सोइ पहिचानत।
अर्जुन! जेहि लागत भगवाना,
व्याप्त सर्वथल एक समाना,

दोहा :— *परमात्मा तेहि ताहि ते, आपुहि माहि लखाय,*
करत न आत्म-विघात सो, लेत परमपद पाय। २१९

जानत जो नित प्रकृतिहिं द्वारा,
होत कर्म सब, सर्व प्रकारा,
जान जो आत्मा नहिं कर्त्तारा,
सो यथार्थ सब जाननहारा।

पृथक भाव जे भूतन माहीं,
एकस्थित जब नरहिं दिखाहीं,
विस्तारहु तेहि माहिं लखायी,
ब्रह्मस्थिति सोइ पार्थ! कहायी।
बसत देह महँ आत्मा अर्जुन!
पै अव्यय, अनादि अरु निर्गुण।
तातें करत धरत कछु नाहीं,
लिप्त होत नहिं काहू माहीं।
यथा सूक्ष्मता तें आकाशा,
लिप्त न, जदपि सर्वथल वासा।
तिमि तनु वसत अंग सब माहीं,
आत्मा लिप्त होत कहुँ नाहीं।

दोहा :— *करत निखिल संसार जिमि, एकहि भानु प्रकाश,*
तिमि एकहि क्षेत्री करत, निखिल क्षेत्र महँ भास। २२०

सोरठा — *जीव-प्रकृति-निर्वाण, भेद क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ कर,*
ज्ञान-दृगन जे जान, लहत परमगति पार्थ! ते।

सब ज्ञानन तें उत्तम ज्ञाना,
सुनहु धनंजय! करहुँ बखाना,
जानि जाहि मुनिजन समुदायी,
परम सिद्धि यहि जग महँ पायी।
यहि कर अर्जुन! आश्रय लीन्हे,
एक-रूपता मोहिं सँग कीन्हे,
जन्मत पुनि नहिं सृजनहु माहीं,
लहत व्यथा लय-कालहु नाहीं।
प्रकृति योनि मम कुन्तीनंदन!
करहुँ बीज मैं तेहि महँ थापन।
ताही तें, अर्जुन! यह सारा,
उपजत सर्व जीव-विस्तारा।
प्रकृतिहि सर्व चराचर-माता,
पिता पार्थ! मैं बीज-प्रदाता।

सत्त्व, रजस, तामस जे त्रय गुण,
प्रकृतिहिं ते उपजत ये अर्जुन!
आत्मा जदपि विकार-विहीना,
बाँधि देह ये करत अधीना।

दोहा :— *निर्मल, अतः प्रकाश-प्रद, दोषहु तेहि महँ नाहिं,*
बाँधि लेत अस सत्व गुण, जीव ज्ञान-सुख माहिं। २२१

रागात्मक इन माहिं रजोगुण,
तृष्णा, रत्ति उपजावत अर्जुन!
कर्मासक्ति ताहि ते होई,
बाँधत जीवन - कर्महिं सोई।
तामस गुण अज्ञान-प्रजाता,
डारत सबहिं मोह महँ ताता!
निद्रालस, प्रमाद उपजायी,
करत निबद्ध जीव-समुदायी।
होत सत्त्व ते सुख महँ रागा,
रज ते कर्म माहिं अनुरागा।
करत तमोगुण ज्ञानाच्छादन,
होत पार्थ! कर्तव्य विस्मरण।
पराभूत करि रज तम दोउ गुण,
पावत वृद्धि सत्त्व गुण अर्जुन!
विजित-सत्त्व-तम रज अधिकायी,
जीति सत्त्व-रज तम बढ़ि जायी।

दोहा :— *देह-द्वार इन इन्द्रियन, उपज विमल जब ज्ञान,*
बढ़ेउ सत्त्व गुण मनुज महँ, पार्थ! होत अनुमान। २२२

अर्जुन! वृद्धि जबहिं रज पावत,
कर्म-प्रवृत्ति, लोभ उपजावत।
इच्छा अरु अतृप्ति मन माहीं,
रहि सो सकत कर्म बिनु नाहीं।

जैसेहि तमहु जीव महँ बाढ़ा,
उपजत हिय अँधियार प्रगाढ़ा।
अप्रवृत्ति, मोहहु अधिकायी,
देत जीव कर्तव्य भुलायी।
लहत वृद्धि जेहि काल सत्त्वगुण,
तजत देह तेहि समय जो अर्जुन!
पावत जीव धनंजय! ते थल,
जात जहाँ ज्ञानी जे निर्मल।
मरण समय जो रज अधिकायी,
जन्मत कर्मासक्तन जायी।
बाढे तम जो तजत जीव तन,
पावत जन्म सो योनिनि मूढ़न।

दोहा :— पुण्य कर्म कर पार्थ! फल, सात्विक, निर्मल ज्ञान,
दुख रजोगुण केर फल, तम कर फल अज्ञान। २२३

पार्थ! ज्ञान, गुण सत्त्व-प्रजाता,
लोभ रजोगुण ते संजाता।
उपजावत दुर्लक्ष तमोगुण,
मूढत्वहु, अज्ञानहु अर्जुन!
करत ऊर्ध्व सत्त्वस्थ प्रयाणा,
रजोगुणी बस मध्यस्थाना।
तम गुण जे अर्जुन! अपनावत,
तेइ जघन्य अधोगति पावत।
उदासीन मानव-मन जेहि क्षण,
होत ज्ञान अस कुन्तीनंदन!
'तजि ये तीनहु गुण संसारा,
अन्य न कतहुँ कोउ कर्त्तारा।'
गुणातीत निर्गुण पहिचानी,
मोर भाव तब पावत ज्ञानी।

दोहा :— मनुज जो देहज तीनि गुण, पार्थ! पार करि जात,
लहत मुक्ति तजि जन्म-दुख, मृत्यु जरहु संजात।"२२४

पूछेउ पार्थ—"जो त्रिगुणन पारा,
काह तासु लक्षण आचारा?
कहहु मोहिं सब नाथ ! बुझायी,
त्रय गुण पार सो केहि विधि जायी?"
पार्थ-वचन सुनि कह यदुरायी—
"ज्ञान, प्रवृत्ति, मोह जो पायी,
करत द्वेष नहिं निज मन माहीं,
जो न मिलत ये, इच्छहु नाहीं,
उदासीन-वत् गुणन अविचलित,
'कर्म करत गुण'—गुनि जो अविकृत,
स्वस्थ, धीर, सुख-दुख सम जाना,
माटी, पाथर, स्वर्ण समाना,
तुल्य जाहि प्रिय-अप्रिय लागा,
निंदा संस्तुति दुहुन विरागा,
जेहि हित तुल्य मान-अपमाना,
शत्रु-मित्र जेहि सम करि जाना,
जेहि एकहु आरंभ न भावा,
गुणातीत सोइ पार्थ ! कहावा।

दोहा :—*गहि एकान्तिक भक्ति जे, सेवत अर्जुन ! मोहि,*
त्रिगुणातीत, समर्थ ते, ब्रह्मस्थिति हित होहिं। २२५

सोरठा:—*ब्रह्म अमर, अविकार, शाश्वत धर्महु पार्थ! जो,*
मैं तिनकर आधार, आनदहु एकान्त कर।

वर्णन अस अश्वत्थ वृक्ष कर;
मूल ऊर्ध्व, शाखा अभ्यंतर।
पल्लव जासु वेद, जो अव्यय,
जान जो वेहि वेदज्ञ धनजय!
शाखा ऊपर-नीचे प्रसरित,
तीनहु गुण-प्ररोह ते वर्धित।
विषयाङ्कुर जड़ कर्म कहायी,
बढ़ि नरलोक जो नीचे छायी।

पै यहि भाँति लोक यहि माहीं,
दिखत स्वरूप तासु सो नाहीं।
लखि नहिं परत आदि-अवसाना,
दिखत नाहिं आधारस्थाना।
अस अश्वत्थ रूढ़-जड जोई,
काटि विराग खड्ग ते सोई,
खोजि लेय पुनि पार्थ! निकेतन,
जहाँ गये पुनि नाहिं निवर्तन।

दोहा — *गुनहि—'प्रवृत्ति पुराण यह, जेहि ते सब संजात,*
आदि पुरुष परमात्म जो, ताही दिशि मैं जात।' २२६

जाहि न मान-मोह ते प्रीती,
संग-दोष जेहि लीन्हेउ जीती,
रहत सतत जो आत्मारामा,
भयेउ धनंजय! जो निष्कामा,
सुख-दुख-द्वन्द्व-मुक्त जो प्राणी,
अव्यय पद पावत सो ज्ञानी।
नाहिं जहाँ शशि-सूर्य-प्रकाशा,
करत न जहाँ हुताशन भासा,
विनिवर्तन जहँ जाय न होई,
अर्जुन! परमधाम मम सोई।
मोरहि अंश सनातन जायी,
जीव लोक महँ जीव कहायी।
प्रकृतिस्थित पचेन्द्रिय अरु मन,
खैंचि लेत पुनि कुन्तीनंदन!
जब शरीर जीवात्मा त्यागत,
अथवा नव तनु प्रविशन लागत,

दोहा — *सुमनादिक ते जिमि पवन, गंधहि लेत उडाय,*
तैसेहि सो इन्द्रिय मनहु, अपने सँग लै जाय। २२७

श्रुति, जिह्वा, दृग, त्वचा, नाक, मन,
इनहिन-कृत सेवत सो विषयन।

यह जो अर्जुन ! निकसत, निवसत,
गुणन-युक्त जो विषयन भोगत,
ईश-अंश सो मूढ़ न जाना,
योगी ज्ञान-नयन पहिचाना।
योगिहु याही भाँति यत्न-रत,
आत्मस्थित आत्महिं पहिचानत।
जन जिन आत्म-शुद्धि नहिं कीन्ही,
यत्नहु ते न सक्त मोहिं चीन्ही।
तेज वसत जो भानु मँझारा,
जेहिते भासित जग यह सारा,
शशि, अग्निहु महँ जासु निवासा,
जानहु सब मम तेज प्रकाशा।

दोहा :— *धारत प्राणिन ओज बनि, मैं महि माहि समाय,*
बनि शशि पोषत सर्व मैं, औषधि रस उपजाय। १२८

वैश्वानरहु अग्नि मोहिं जानहु,
वास सकल प्राणिन-तनु मानहु।
पान अपान पवन दोउ द्वारा,
अन्न चतुर्विध पचवहुँ सारा।
पार्थ ! सर्व हृदयन मैं निवसत,
ज्ञानस्मृति मैं देत विनासत।
वेद-ज्ञेय मैं वेदन-ज्ञाता,
वेदान्तहु कर मैं ही कर्त्ता।
पुरुष दोय जो ये क्षर अक्षर,
जानहु तिन महँ भूत सर्व क्षर।
राशि-स्वरूप जीव महँ जोई,
अक्षर सोइ धनंजय ! होई।
अर्जुन ! भिन्न दुहुन ते जोई,
परमात्मा पुरुषोत्तम सोई।
प्रविशि ईश अव्यय तिहुँ लोकन,
करत रहत सो सब कर पोषण।

दोहा :— उत्तम अक्षर पुरुष ते, बसहुँ पुरुष क्षर पार,
तातें पुरुषोत्तम कहत, मोहि वेद संसार। २२९
मोह-रहित यहि भाँति जो, पुरुषोत्तम मोहि जान,
सर्व भाव ते मोहि भजत, सो सर्वज्ञ सुजान। २३०

सोरठा:—मैं यह कहेउँ बखानि, शास्त्र धनंजय ! गुह्यतम,
होहि मनुज यह जानि, बुद्धिमान कृतकृत्यहू।

दान सत्त्व शुद्धिहु, अभयस्थिति,
ज्ञान-योग कै पार्थ ! व्यवस्थिति,
दम, स्वाध्याय, यज्ञ, सरलाई,
सत्य, अक्रोध, लाज, मृदुताई,
शान्ति, अहिंसा, भोग-विरागा,
जीव-दया, तप तृष्णा-त्यागा,
अचपलता, मर्यादा-पालन,
क्षुद्र भावना कर परित्यागन,
तेज, अद्रोह, शौच, धृति, अर्जुन,
क्षमा, निरभमानहु—ये सब गुण,
ताही महँ सब परहिं दिखायी,
जन्मत दैवि भाव जो पायी।
दंभ, दर्प, क्रोधहु, अतिमाना,
अर्जुन ! पारुष्यहु, अज्ञाना,
तिन महँ ये सब दोष लखाहीं,
उपजत आसुर भावहि माहीं।

दोहा :— दैवी भावहि मोक्षप्रद, आसुर बाँधनहार,
अर्जुन ! त्यागहु शोच तुम, दैवी जन्म तुम्हार। २३१

दैवी आसुर दोउहु भाँती,
पार्थ ! जगत महँ भूतन जाती।
बरनेउँ विस्तर दैवी लक्षण,
सुनहु करहुँ अब आसुर वर्णन।

अमित पार्थ! आसुर अज्ञाना,
ते न प्रवित्ति-निवृत्तिहिं जाना।
जानत नाहिं शौच, अचारा,
विदित न तिनहिं सत्य-व्यवहारा।
जग असत्य यह, बिनु आधारा,
नहिं कोउ ईश बनावनहारा,
प्रेरित काम नारि-नर द्वारा,
उपजेउ यह समस्त संसारा,
ताते भुवन निखिल यहि माहीं,
काम विहाय अन्य कछु नाहीं—
सोचत असुर-वृत्ति यहि भाँती,
नष्टात्मा, मति अल्प, अराती।
होत क्रूर कर्मन-अनुरागी,
जन्मत जगत विनाशहि लागी।

दोहा:—*गहि दुर्भर ये काम सब, दम्भ, मान, मद-मत्त,*
दुराग्रही ये मोहवश, पातक होत प्रवृत्त। १२१

चिन्ता जिनकै पार्थ! अनंता,
अन्त न जासु मृत्यु-पर्यन्ता,
निज सर्वस्व काम जिन जाना,
कबहुँ न तिन भोगन-अवसाना।
काम-क्रोध-रत, शत शत आशा,
बाँधे रहति जिनहिं निज पाशा,
विषय-भोग-हित ये अघ-राशी,
अनय ते द्रव्य-लाभ-अभिलाषी।
पूर्ण मनोरथ यह मम आजू,
करिहौं पूर्ण काल्हि वह काजू,
आजु संपदा एतिक मोरी,
लेहौं एतिक काल्हि बटोरी,
आजु शत्रु निज यह मैं मारा,
करिहौं काल्हि अन्य संहारा,

मैं ही स्वामि, सिद्ध, बलवाना,
सुखी, भोगि मैं, मैं श्रीमाना,

दोहा :— *मैं कुलीन, नहिं मोहि सम, यहि जग कोउ श्रान,*
करिहौं मख यह, मोद वह, देहौं मैं श्रस दान। २३३

मानस भ्रान्त श्रनेकन तर्कन,
श्रावृत दिशि दिशि मोह-श्रावरण,
काम, भोग-आसक्त पार्थ! जन,
श्रंत जात सब नरक श्रपावन।
जिन महँ ऐंठ, श्रात्म-सभावित,
श्रर्जुन! जे धन-मान-मदान्वित,
नाम-मात्र जे यज्ञ रचावत,
विधि-विधान बिनु, दम्भहि भावत,
दर्प, घमंड, बलहिं श्रपनावत,
काम-क्रोध महँ जे सुख पावत,
बसत जो मैं इन महँ, सब माहीं,
करत द्वेष ये मोरहु पाहीं।
महँ पार्थ! इन द्वेषी, क्रूरन,
निरत-श्रशुभ-करमन नर श्रधमन,
श्रासुरि योनि जे यहि ससारा,
डारहुँ तिन महँ बारम्बारा।

दोहा :— *श्रसुर-योनि लहि जन्म प्रति, पाय सकत मोहिं नाहि,*
मूढ उत्तरोत्तर परत, श्रधिक श्रधोगति माहि। २३४

श्रात्मा-नासनहार धनजय!
जानहु नरक-द्वार तुम विधि त्रय।
काम, क्रोध, ये लोभ कहाये,
उचित चलन ये तीनि बराये।
तमोद्वार त्रय जब नर त्यागत,
श्रापुहि चलन पथ शुभ लागत।

निज कल्याण-वृत्ति अधिकायी,
लेत परम गति अर्जुन ! पायी।
जो त्यागत शास्त्रोक्त विधाना,
लागत करन कर्म मनमाना,
सिद्धि कबहुँ नहिं सो नर पावत,
सद्गति, सुखहु न तेहि ढिग आवत।
काह कर्म ? का पार्थ ! अकर्मा,
उपजहि जब तुम्हरे मन भरमा,

सोरठा:—करत जो शास्त्र-बखान, जानि धनंजय ! ताहि तुम,
तेहि कर्तव्य-प्रमाण, मानि कर्म निज तुम करहु।"

पूछेउ अर्जुन—"जे तजि शास्त्रन,
करत सश्रद्धा पूजन अर्चन।
निष्ठा काह नाथ ! तिन केरी,
राजस, सत्त्व कि तम गुण-प्रेरी ?"
सुनत प्रश्न हरि वचन उचारा—
"अर्जुन ! श्रद्धा तीनि प्रकारा।
सोऊ नर स्वभाव अनुरूपा,
सात्त्विक, राजस, तामस रूपा।
अर्जुन ! जेहि विधि मनुज-स्वभावा,
तैसेहि तेहि महँ श्रद्धा-भावा।
जीव पार्थ ! श्रद्धामय होऊ,
जेहि विधि श्रद्धा तैसेहि सोऊ।
सात्त्विक मनुज उपासत सुरगण,
राजस पूजत यक्ष राक्षसन।
तामस वृत्ति लोग जग जेते,
भूत प्रेतगण पूजत ते ते।

दोहा:— प्रेरित कामासक्ति ते, भरे दंभ अभिमान,
करत घोर तप जे मनुज, तजि शास्त्रीय विधान। २३५

अस तप ते पावत अति पीरा,
पंचभूत जे बसत शरीरा।

महँ करत जो सब महँ यासू,
अस मनुजन ते पावहुँ त्रासू।
इनहिं पार्थ! अविवेकी जानहु,
वृत्ति आसुरी इनकै मानहु।
त्रन भाँति प्रय प्रिय अहारा,
यज्ञ, तपहु त्रय भाँति पियारा।
तैसेहि तीनि भाँति कर दाना,
सुनहु पार्थ! सब करहुँ बखाना—
आयु, सत्त्व, बल, स्वास्थ्य-विवर्धन,
सुख-प्रद, रुचिकर, चिक्कण भोजन।
रसमय, पौष्टिक, आनँद दाता,
सात्त्विक-जन-प्रिय भोजन ताता!
कड़ुवा, रूखा, खट्टा, खारा,
तीक्ष्ण, उष्ण अति दाहनहारा,

दोहा :— दुःख, शोक अरु रोगहू, जो उपजावनहार,
राजस जन कहँ प्रिय सदा, सो अर्जुन! आहार। २२६

शीतल, बासी, निरस अपावन,
दुर्गन्धित, उच्छिष्टहु भोजन,
जिन कर तामस पार्थ! स्वभावा,
अस आहार तिनहिं अति भावा।
यज्ञ जौन फल-इच्छा-हीना,
करत सविधि जेहि मन करि लीना,
करत जाहि कर्त्तव्यहि जानी,
सात्त्विक यज्ञ कहत तेहि ज्ञानी।
फलहि हेतु जेहि कर आरंभा,
राजस यज्ञ, भरेउ बहु दंभा।
विधि-विहीन, बिनु अन्नोत्पादन,
रहित दक्षिणा जो बिनु मंत्रन,
श्रद्धा-शून्य यज्ञ जो होई,
तामस यज्ञ कहावत सोई।

अर्जुन ! ब्राह्मण - सुरगण पूजन,
गुरुजन ज्ञानी जनकर अर्चन,

दोहा :— जहँ अहिंसा, स्वच्छता, सूधा सरल स्वभाव,
ब्रह्मचर्यहु—सोइ तप, कायिक पार्थ ! कहाव। २३७

धर्म ग्रन्थ-अभ्यास धनंजय !
वचन सत्य, हितकारी अरु प्रिय,
सुनि उद्वेग न जो उपजावत,
सोइ वाचिक तप पार्थ ! कहावत।
मौन, सौम्यता, आत्म-संयमन,
सर्व काल जो रह प्रसन्न मन,
शुद्ध भावना जेहि महँ होई,
तप मानस कुन्तीसुत ! सोई।
युक्त, परम श्रद्धा उर धारी,
कर्म-फलाशा सर्व बिसारी,
करत जबहिं प्राणी ये तप त्रय,
सात्त्विक सोई कहाव धनंजय !
हेतु यहै जेहि तप कर सारा—
मिलहि मान, पूजा, सत्कारा,
दंभ-प्रसार जहाँ अति होई,
चचल, अस्थिर, राजस सोई।

दोहा :— सहित दुराग्रह तप करत, कष्ट अनेक उठाय,
जासु हेतु पर-घात ही, तामस सोइ कहाय। २३८
चहत न प्रत्युपकार जो, गुनि कर्तव्य जो दान,
सात्त्विक सोई पार्थ ! जहँ, पात्र, काल, थल ध्यान। २३९

हृदय माहिं धरि फल-अभिलाषा,
प्रत्युपकारहु कै करि आशा,
कष्ट सहित जो करत प्रदाना,
सोइ कहावत राजस दाना।

बिना देश अरु कालहिं जाने,
पात्रहु पार्थ ! बिना पहिचाने,
देत तिरस्कृत करि, बिनु माना,
जानहु सोई तामस दाना।
'ओं तत्सत्'—त्रय शब्द विशेषा,
तिन महँ पार्थ ! ब्रह्म निर्देशा।
तेहि निर्देशहि के अनुसारा,
वेद, यज्ञ, ब्राह्मण विस्तारा।
ताते, अर्जुन ! ब्रह्मवादिजन,
करि 'ओंकार' प्रथम उच्चारण।
आरंभत तव मख, तप, दाना,
कर्म-वृन्द जो शास्त्र बखाना।
तिमि मुमुक्षु फल-आस न राखी,
करत दान, मख, तप, 'तत्' भाखी।

दोहा :— *साधु-भाव, सद्भाव महँ 'सत्' कर होत प्रयोग,*
कर्म प्रशस्तहु माहिं तस, पार्थ ! तासु उपयोग। २४०
अर्जुन ! मख,तप, दान महँ, थिर भावहु 'सत' होय,
करत जो-कर्म निमित्त इन, सतहि कहावत सोय। २४१

सोरठा:—*पार्थ ! जो श्रद्धा नाहिं हवन, दान, तप व्यर्थ सब,*
यहँ परलोकहु माहिं, हितकारी नहिं कर्म अस।"

कहे वचन सुनि कुन्तीनन्दन—
"महाबाहु हे ! केशि-निषूदन !
मैं यथार्थ सन्यास स्वरूपा,
ताहि भाँति त्यागहु कर रूपा,
जानन चहहुँ, कहहु यदुराई !
पृथक पृथक दोउ मोहिं बुझाई।"
कह हरि—"काम्य कर्म कर त्यागन,
कहत ताहि संन्यास ज्ञानिजन।
सकल कर्म-फल त्यागत जोई,
त्याग कहावत अर्जुन ! सोई।

कर्म सदोष सर्वथा अहहीं,
ताते त्याज्य ज्ञानि कछु कहहीं।
कर्म यज्ञ, तप, दान समाना,
त्याज्य नाहिं—कछु अन्यन माना।

दोहा :— सुनहु त्याग सम्बन्ध महँ, निर्णय तात ! हमार—
बरने त्यागहु विज्ञजन, अर्जुन ! तीनि प्रकार। २४२

उचित न यज्ञ दान तप-त्यागन,
ये करणीय सकल कुरुनंदन।
करत यज्ञ, तप, दानहु—ये त्रय!
ज्ञानिहु होत पवित्र धनंजय।
ये कर्त्तव्य कर्म कुरुसत्तम,
अस मत मोर सुनिश्चित, उत्तम।
तजि आसक्ति, फलहु करि त्यागन,
करब उचित अर्जुन! इन कर्मन।
विहित स्वधर्म कर्म जो जासू,
उचित पार्थ! सन्यास न तासू।
तजत तिनहिं जो मोहवशाता,
तामस त्याग कहत तेहि ताता!
कर्म दुःख-कारक जो जानी,
अथवा काय-क्लेश-भय मानी,

दोहा :— त्यागत जो निज कर्म सोइ, राजस त्याग कहाव,
अर्जुन! अस निज त्याग कर, त्यागी फल नहिं पाव। २४३

नियत कर्म कर्त्तव्यहि गुनि मन,
त्यागि फलाशा करत जाहि जन,
नहिं तेहि महँ आसक्ति बढ़ावत,
सात्त्विक सोई त्याग कहावत।
हितकर कर्म माहिं नहिं रागा,
अहित कर्म तजि जो नहिं भागा,

सत्त्वशील, मेधावी सोई,
त्यागी संशय-विरहित होई।
कबहुँ न त्यागि सकत कुरुनंदन!
तनुधारी अशेष निज कर्मन।
पै त्यागत कर्मन-फल जोई,
त्यागी सोइ धनंजय! होई।
इष्ट, अनिष्ट, मिश्र—असविधि त्रय,
कर्मन कर फल होत धनंजय!
लहत सो त्याग-विहीन फलाशी,
लहत न फल-त्यागी संन्यासी।

दोहा :— *सांख्यन मत, प्रति कर्म हित, कारण पाँचहिं होहिं,*
कुन्तीनंदन ! ते सुनहु, सकल बतावहुँ तोहिं। २४४

कर्त्ता, अधिष्ठान कुरुनन्दन!
तिसरे विविध भाँति के साधन,
चौथे किया पृथक विधि नाना,
पंचम अर्जुन! दैव बखाना।
जो कछु कर्म देह ते होई,
वाणी वा मानस ते जोई,
न्याय-युक्त अथवा प्रतिकूला,
ये पाँचहुँ तिन कर्मन मूला।
अस विधान महँ जो कोउ प्राणी,
'मैं ही कर्ता'—कहत बखानी,
बुद्धि परिष्कृत नहिं तेहि माहीं,
सो दुर्मति कछु समुझत नाहीं।
भाव न जेहि अस—'मैं ही कर्त्ता',
जासु बुद्धि महँ नाहिं लिप्तता,
बधेउ लोक ये सब कुरुनंदन!
बधत न सो, नहिं बद्ध सो बंधन।

दोहा :— *ज्ञाता, ज्ञेयहु, ज्ञान ये, कर्म-बीज त्रय जान,*
क्रिया, कर्म कर्तव्य हु, कर्म-अंग त्रय मान। २४५

गुण विभेद ते तीनि प्रकारा,
ज्ञान, कर्म कर्त्ता विस्तारा।
बरनेउ जेहि विधि गुण तत्त्वज्ञाना,
सुनहु, कहहुँ सोइ कुन्तानन्दन।
जेहि बल प्राणिन माहिं धनंजय।
परत दिखाय भाव इक अव्यय,
भिन्नहु महँ अविभक्त दिखत इक,
ज्ञान धनंजय! सोई सात्त्विक।
भिन्न भिन्न सब भूतन माहीं,
भिन्नहि देखि परत जेहि काहीं,
जेहि ते होत भिन्नता भाना,
अर्जुन! सोई राजस ज्ञाना।
जो अर्जुन! तत्त्वार्थ न जानी,
एकहि वस्तु माहिं सब माना,
निष्कारण अनुराग बढ़ावत,
तामस सो लघु ज्ञान कहावत।

दोहा :— फल-इच्छा, आसक्ति नहि, राग द्वेष नहिं होय,
करत नियत निज कर्म जो, सात्त्विक अर्जुन! सोय। २५६

भोगेच्छा जो मन महँ राखत,
'मैं ही कर्त्ता'—सोचत, भाखत,
क्लेश-परिश्रम सह जो होई,
राजस कर्म कहावत सोई।
क्षय, हिंसा, निदान बिनु जाने,
बिना शक्ति निज जो पहिचाने,
करत कर्म मोहहि ते प्रेरा,
तामस कर्म नाम तेहि केरा।
अहंकार, रागहुँ जेहि नाहीं,
धृति, उत्साह पार्थ! जेहि माहीं,
सिद्धि न हर्ष असिद्धि न शोका,
कर्त्ता सात्त्विक सो यहि लोका।

कर्म-फलेच्छु, मलिन, जो रागी,
लोभी अरु हिंसा-अनुरागी।
हर्ष शोक ते व्याकुल जोई,
राजस कर्त्ता अर्जुन ! सोई।

दोहा :— *दीर्घसूत्रि, गर्विष्ठ, शठ, अस्थिर प्राकृत जोय,*
घातक, खिन्नहु, आलसी, कर्त्ता तामस सोय। २४७

अर्जुन तीनि गुणन अनुसारा,
बुद्धिहु धृतिहू तीनि प्रकारा,
पृथक् पृथक् मैं सब कर वर्णन,
करत अशेष सुनहु कुरुनंदन !
बुद्धि प्रवृत्तिहिं जो पहिचानति,
पार्थ ! निवृत्तिहु कहँ जो जानति,
कार्य-अकार्य केर जेहि ज्ञाना,
विदित जाहि भय-अभयस्थाना,
बंध-मोक्ष ज्ञानहु जेहि होई,
सात्विक बुद्धि धनंजय ! सोई।
कार्य-अकार्यहु, धर्म-अधर्मा,
इन महँ होत पार्थ ! जेहि भरमा,
निर्णय जासु यथार्थ न होई,
राजस बुद्धि कहावति सोई।
धर्महु महँ अधम जो देखति,
सर्व अर्थ विपरीतहि पेखति,
अंधकार-आवृत जो होई,
बुद्धि तामसी अर्जुन ! सोई।

दोहा :— *प्राणेन्द्रिय - मानस - क्रिया, जाही धृति ते होय,*
जो समत्व महँ थिर रहति, पार्थ ! सात्विकी सोय। २४८

फल-इच्छुक प्रसंग अनुसारा,
धर्म, अर्थ, पावत जेहि द्वारा,

कामहु सिद्ध जाहि ते होई,
धृति राजसि कुन्तीसुत ! सोई।
जो दुर्बुद्धि-प्रमाद प्रदाता,
जेहि ते निद्रा, भय सजाता,
शोक, विषाद देति उपजायी,
तामसि धृति सोइ पार्थ ! कहायी—
सुख हू त्रय विधि अनुसरि त्रय गुण,
बरनहुँ सुनहु सोउ तुम अर्जुन !
जहँ अभ्यासहि ते मन लागत,
पावत जाहि दुःख सब भागत,
जेहि कर आदि गरल सम होई,
लागत अंत सुधा सम जोई,
आत्म - ज्ञान - आनद - प्रजाता,
कहत ताहि सात्विक सुख ताता !

दोहा :—*इन्द्रिय-विषय-सँयोग ते, सुख जो अर्जुन ! होय,*
आदि सुधा सम, अंत विष, जानहु राजस सोय। २५६

सुख जो आदि मोह उपजावत,
परिणामहु महँ मोह बढ़ावत,
निद्रालस ते उपजत जोई,
दुर्लक्षहु ते, तामस सोई।
मही, व्योम वा सुरपुर माहीं,
बिनु प्रकृतिज गुण त्रय कछु नाहीं।
ब्राह्मण आदि जो वर्ण-विभाजन,
तहँहु स्वभाव-जन्य गुण कारण।
पार्थ ! सरलता, क्षमा, शौच, दम,
तप, श्रद्धा विश्वासहु अरु शम,
ब्रह्म ज्ञान, विज्ञानहु ताता !
ब्राह्मण कर्म स्वभाव-सँजाता।
तेजस्विता, दक्षता, दाना,
धीरज, समर नाहिं अँगदाना,

अर्जुन ! शौर्यहु, स्वामी भावा,
प्रकृतिज क्षत्रिय-कर्म कहावा।

दोहा.—*कृषि, गोरक्षा, अरु वनिज, सहज वैश्यजन-कर्म,*
पार्थ ! शूद्र हित एक हीं, प्रकृतिज सेवा-धर्म । २५०

निज निज कर्म करत सब प्राणी,
लहत सिद्धि जस कहहुँ बखानी—
प्राणि-प्रवृत्ति होति जेहि द्वारा,
जेहि ते व्याप्त सकल संसारा,
करि निज कर्म भजत तेहि जोई,
अर्जुन ! लहत सिद्धि नर सोई।
सुकरहु, सदपि, न वर पर-धर्मा,
मङ्गल-प्रद विगुणहु निज धर्मा।
नियत जो कर्म स्वभावहि-द्वारा,
कान्हे तेहि न पाप संसारा।
कर्म जो सहज सदोषहु होई,
तबहुँ त्याज्य न अर्जुन ! सोई।
यथा अग्नि नहिं धूम विहीना,
तिमि उद्योग न दोषन हीना।
जेहि आत्मा निज वश महँ लायी,
सर्वासक्ति दीन्हि बिसरायी,

दोहा—*बसति न एकहु कामना, पार्थ ! जासु हिय-धाम,*
लहत सोइ संन्यास ते, परम सिद्धि निष्काम । २५१

ज्ञान-परा निष्ठा जो होई,
अर्जुन ! ब्रह्म कहावत सोई।
तेहि लहि सिद्धि पाव कस ज्ञानी,
थोरेहि महँ तोहि कहहुँ बखानी—
शुद्ध बुद्धि ते युक्त पार्थ ! जन,
कीन्ह सधृति जेहि आत्म-संयमन,

शब्दादिक विषयन नहिं प्रीती,
राग, द्वेष जेहि लीन्हे जीती,
अल्पाहारि; बसत एकाकी,
मन, वाचा, काया वश जाकी,
ध्यानयोग महँ जो संलग्ना,
रहत सदा वैराग्य-निमग्ना,
अहंकार, बल दर्प-विहीना,
कामहु, क्रोध, परिग्रह-हीना,
तजि ममता जो शान्त स्वभावा,
ब्रह्म-भाव अस योगी पावा।

दोहा:—*ब्रह्मभूत, आनंद-मय, प्राणि मात्र सम भाव,*
शोच, वासना-हीन सो, परम भक्ति मम पाव। २५२

लहत भक्ति ते तात्त्विक ज्ञाना,
जानत को मैं, का परिमाणा,
तत्त्वरूप मोहिं यहि विधि जानी,
प्रविशत मोहिं महँ अन्त सो प्राणी।
गहि सो मोरहि शरण-सहारा,
करत सदा कर्मन-व्यापारा।
शाश्वत, अविनाशी पद जोई,
मोरि कृपा ते पावत सोई।
अर्जुन! तुमहु सर्व निज कर्मन,
करहु बुद्धि ते मोहिं समर्पण।
मत्पर, बुद्धि-योग अपनायी,
देहु मोहिं महँ चित्त लगायी।
चित्त मोहिं महँ अर्जुन! धारे,
मोरि कृपा तरिहौ दुख सारे।

दोहा:—*सव्यसाचि! जो नाहिं तुम, सुनिहौ यह मत मोर,*
होइहै निश्चय नाश तौ, अहंकार वश तोर। २५३

अहंकारवश तुम जो निज मन,
रहे सोचि—नहिं करिहौं मैं रण,

मिथ्या यह तुम्हार आयोजन,
करिहौ तुम निज प्रकृति-विवश रण।
कर्म तुम्हार प्रकृति-संजाता,
तुमहु निरुद्ध ताहि महँ ताता!
कहत न करन मोह वश जाही,
करिहौ अवश धनंजय! ताही।
बसि सब प्राणिन-हृदय मँझारा,
परमेश्वर निज माया द्वारा,
रहत भ्रमावत जीव हठाता,
यंत्रस्थित मानहुँ सब ताता!
ताही केर गहहु तुम आश्रय,
सर्व भाय तेहि भजहु धनंजय!
पइहौ अर्जुन!- तासु कृपा-बल,
परम शान्तिमय तुम नित्यस्थल।

दोहा.—*ज्ञान गुह्यतम मैं तुमहिं, यह विधि कीन्ह बखान,*
गुनि सो सब अब तुम करहु, जो तुम्हरे मन मान। २५८

बहुरि कहहुँ तोहिं सर्व गुह्यतम,
सुनहु धनंजय! वचन परम मम।
तुम अत्यन्त मोहिं प्रिय ताता!
ताते तुमहिं कहहुँ हित-बाता—
मोहिं महँ पार्थ! लगावहु निज मन,
भक्ति मोरि, मम पूजन, वंदन।
प्रिय तुम, ताते कहहुँ सत्य प्रण,
मिलिहौ मोहिं अंत कुरुनंदन!
सर्व धर्म तुम त्यागि धनंजय!
लेहु एक गहि मोरहि आश्रय
करहु शोच नहिं अर्जुन! निज मन
करिहौं तव सब पाप-विमोचन।
जो न करत तप, भक्तहु नाहीं,
नाहिं सुनन इच्छा जेहि माहीं,

करत जो मम निंदा, अवमाना,
ताहि सुनायेउ नहिं यह ज्ञाना।

दोहा :— *मम भक्तन प्रति गुह्यतम, कहिहै जो यह ज्ञान,*
परम भक्ति सो पाय मम, मिलिहै मोहि निदान। २५५

सब मनुजन महँ तेहि सम कोई,
मम प्रिय-करनहार नहिं होई।
अर्जुन! महितल तासु समाना,
मोहिंहु प्रिय न होय कोउ आना।
पार्थ! धर्म-संवाद हमारा,
करिहै जो सुनि मनन विचारा,
ज्ञान-यज्ञ ते तेहि मम अर्चन,
कीन्हेउ अस मम मत कुरुनंदन!
तैसेहि तजि जो छिद्रान्वेषण,
सुनिहै यहि धरि श्रद्धा निज मन,
लहिहै सोउ शुभ लोकन-वासा,
करत पुण्य जन जहाँ निवासा।
कहेउ पार्थ! मैं जो तुव पाहीं,
मन-एकाग्र सुनेउ या नाहीं?

दोहा :— *भयउ उदित अज्ञान ते, मोह जो हृदयाकाश,*
भयउ तासु अथवा नहीं, पार्थ! सर्वथा नाश?" २५६

सोरठा :— *कह अर्जुन!-"प्रभु-छोह, आत्मस्मृति अब मोहि भयी,*
थित, गत-संशय-मोह, करिहौं नाथ निदेश मैं।"

मिथ्या यह तुम्हार आयोजन,
करिहौ तुम निज प्रकृति-विवश रण।
कर्म तुम्हार प्रकृति-संजाता,
तुमहु निरुद्ध ताहि महँ ताता!
कहत न करन मोह वश जाही,
करिहौ अवश धनंजय! ताही।
बसि सब प्राणिन-हृदय मँझारा,
परमेश्वर निज माया द्वारा,
रहत भ्रमावत जीव हठाता,
यंत्रस्थित मानहुँ सब ताता!
ताही केर गहहु तुम आश्रय,
सर्व भाव तेहि भजहु धनंजय!
पइहौ अर्जुन!- तासु कृपा-बल,
परम शान्तिमय तुम नित्यस्थल।

दोहा :—*ज्ञान गुह्यतम मैं तुमहिं, यह विधि कीन्ह बखान,*
गुनि सो सब अब तुम करहु, जो तुम्हरे मन मान। २७४

बहुरि कहहुँ तोहिं सर्व गुह्यतम,
सुनहु धनंजय! वचन परम मम।
तुम अत्यन्त मोहिं प्रिय ताता!
ताते तुमहिं कहहुँ हित-बाता—
मोहिं महँ पार्थ! लगावहु निज मन,
भक्ति मोरि, मम पूजन, वंदन।
प्रिय तुम, ताते कहहुँ सत्य प्रण,
मिलिहौ मोहिं अत कुरुनंदन!
सर्व धर्म तुम त्यागि धनंजय!
लेहु एक गहि मोरहि आश्रय
करहु शोच नहिं अर्जुन! निज मन
करिहौं तव सब पाप-विमोचन।
जो न करत तप, भक्तहु नाहीं,
नाहिं सुनन इच्छा जेहि माहीं,

करत जो मम निंदा, अवमाना,
ताहि सुनायेउ नहिं यह ज्ञाना।

दोहा :— *मम भक्तन प्रति गुह्यतम, कहिहै जो यह ज्ञान,*
परम भक्ति सो पाय मम, मिलिहै मोहि निदान। २५५

सब मनुजन महँ तेहि सम कोई,
मम प्रिय-करनहार नहिं होई।
अर्जुन ! महितल तासु समाना,
मोहिंहु प्रिय न होय कोउ आना।
पार्थ ! धर्म-संवाद हमारा,
करिहै जो सुनि मनन विचारा,
ज्ञान-यज्ञ ते तेहि मम अर्चन,
कीन्हेउ अस मम मत कुरुनंदन !
तैसेहि तजि जो छिद्रान्वेषण,
सुनिहै यहि धरि श्रद्धा निज मन,
लहिहै सोउ शुभ लोकन-वासा,
करत पुण्य जन जहाँ निवासा।
कहेउ पार्थ ! मैं जो तुव पाहीं,
मन-एकाग्र सुनेउ या नाहीं ?

दोहा :— *मयउ उदित अज्ञान ते, मोह जो हृदयाकाश,*
मयउ तासु अथवा नहीं, पार्थ ! सर्वथा नाश ?" २५६

सोरठा :— *कह अर्जुन !-"प्रभु-छोह, आत्मस्मृति अब मोहि भयी,*
थित, गत-संशय-मोह, करिहौं नाथ-निदेश मैं।"

जय काण्ड

सोरठा:—बंद मुरलिधर श्याम, करि वदन पुनि चक्रधर
रथ-नागर अभिराम, वदहुँ कृष्ण अमीपुधर।
कृष्ण-सदृश नय दक्ष, योद्धा अर्जुन सम जहाँ,
सतत बसत तेहि पक्ष, धर्म, विजय, लक्ष्मी, विभव।

दोहा:—मन आनँद, उत्साह उर, वदन ओज-द्युतिमान,
श्रीहरि-पद-पंकज परसि, गहे पार्थ धनु बाण।

कौरव-दल-अनुकूल ताहि क्षण,
सहसा बहेउ प्रचण्ड प्रभंजन।
लक्ष-लक्ष ध्वज क्षौम उडाने,
छहरत अंतरिक्ष फहराने।

नतित उर अगण्य तिन सगा,
जय-ध्वनि, युद्धोन्माद, उमंगा।
सुनत अगति-समर-आमंत्रण,
गरजे पाण्डव-बलहु वीरगण।
सुभट उदायुध उभय सैन्य के,
निर्मम धर्मराज अवलोके।
साहस साकृति, विस्मृत निज तन,
मत्त, शौर्य-रस, एकनिष्ठ-मन।
सीमित भव प्रति रोम विहायी,
चहत असीम मिलन जनु धायी।
दमकत वदन सच्चिदानंदा,
अँग अँग स्रवत शक्ति-निष्यंदा।

दोहा :—*मनुज वाजि, गज नृप लखे, संसृति त्यक्त समस्त,*
व्यक्त विश्व चमकेउ मनहुँ, वीर-रूप अव्यक्त। २

परम-शान्ति संघर्ष-परम क्षण,
चकित समान विलोकि नृपति-मन।
आंशिक सत्य समुझि सब ज्ञाना,
लहेउ ज्ञान विगलित-अभिमाना।
वृत्ति संकुचित तजा नरेशा,
उपजेउ हृदय क्षात्र-आवेशा।
जस कटि-बद्ध धनुष कर धारा,
सन्मुख भीष्महिं भूप निहारा।
रण-प्राङ्गणहु धर्म उर जागा,
धनु पँवारि नृप स्यंदन त्यागा।
पायँन, आयुध वर्म विहायी,
प्रविशेउ शत्रु-सैन्य नररायी।
चिकत स्व-सैन्य अनुज यहि ओरा,
उत्थित कुरु-दल हर्ष-हिलोरा।
"तात! तात" इत अनुज पुकारत,
उत्तरीय उत शत्रु उछारत।

दोहा :—कह दुश्शासन —"भीरु नृप, प्रतिबल प्रबल निहारि,
आवत मम अग्रज-शरण, रण विनु विजय हमारि।" ३

अरि-दल आनँद-ज्वार निहारी,
लज्जित पाण्डव-वाहिनि सारी।
माद्री-सुवन, भीम, युयुधाना,
द्रुपद, विराट, मित्र नृप नाना।
स्यंदन निज निज सकल विहायी,
घेरि हरिहिं उर-व्यथा सुनायी।
धर्मराज-मन जानन हारे,
वचन विहँसि यदुराज उचारे—
"वृथा त्रस्त तुम सब मन माहीं,
धर्म-सुतहिं अरि-दल भय नाहीं।
रचेउ न अब लगि शर चतुरानन,
हरि जो सकत धर्मसुत-प्राणन।
पुण्यश्लोक युधिष्ठिर राजा,
करत सदा धर्मोचित काजा।
भवन, विजन, रणभूमिहु माहीं,
त्यागत धर्म धर्मसुत नाहीं।

दोहा :—धर्म-युद्ध हित बद्ध-कटि, धर्म-निधान नरेश,
गुरुजन ढिग गवने लहन, आशिष, समर-निदेश।" ४

उत उदारमति शान्तनु-नंदन,
चर्चेउ आवत धर्मसुवन-मन।
दूरहि ते लखि स्यंदन त्यागा,
गत रण-राग, हृगन अनुरागा।
क्षितितल-विनिहित-मौलि भुआला,
परसत पद लखि नेह-विहाला।
विनय-विनम्र पौत्र सरिनंदन,
भरि भुज कीन्ह सुचिर आलिङ्गन।
विगत निमेष, विलोचन निश्चल,
विस्मृत क्षण रण-क्षेत्र, सैन्य दल।

उर कर्तव्य-भाव पुनि व्यापा,
लज्जित सरिसुत, उर अनुतापा।
द्विविधा-विकल पितामह जानी,
निर्भर-नेह कही नृप वाणी—
"साकृति क्षात्र-धर्म तुम पावन,
आयेउँ मैं न मोह उपजावन।

दोहा :— *कीन्हे यदुपति यत्न बहु, टरेउ नाहि भवितव्य,*
लहहुँ जो तात-निदेश अब, पालहुँ निज कर्तव्य। ५
करहु तात! कृतकृत्य मोहि, दै निज कृपा-प्रसाद,
निवसति विजय, विभूति श्री, गुरुजन-आशीर्वाद।" ६

मुग्ध चरित-माधुर्य निहारी,
गिरा सधृति गाङ्गेय उचारी—
"जानहुँ तात! स्वभाव उदारा,
नेह-आर्द्र मृदु हृदय तुम्हारा।
स्वल्प पुण्य-भाजन कुल माहीं,
उपजत तुम समान सुत नाहीं।
पलहु तुम्हार समागम पायी,
सौख्य-सिन्धु मन लेत नहायी।
लज्जित मानव आत्म-क्षुद्रता,
ढाँकत वैभव-व्याज नग्नता।
सर्व गुणन-भूषित तुम सोहत,
विभव-विभूति न मानस मोहत।
बसत विश्व जे विभव विहायी,
तिनहिं समीप जात सोउ धायी।
पूर्णकाम तुम, मैं जन पर-भृत,
देय काह जो रण-रत प्रभु-हित!

दोहा :— *रोम रोम ते तात! पै, बरसति यहहि असीस,*
विजय, राज्य, यश, सम्पदा, देहि तुमहि जगदीश!' ७
सोरठा:—*गद्गद सुनत नरेश, गवनेउ गुरु, मातुल ढिगहु,*
द्रोण, कृपहु, मद्रेश, भाषे शुभ आशिष-वचन।

लहि यहि विधि आशिष, आदेशू,
धैर्य-विवेक-निकेत नरेशू,
लखि सन्मुख अरि-वाहिनि चोरा,
कहे पुकारि वचन गम्भीरा—
'गिरा वितथ मैं कबहुँ न भाखी,
कहहुँ यथार्थ अबहुँ हरि साखी—
सत्य धर्म हित मैं रण ठाना,
मम हिय राज-प्रजा-कल्याणा।
होय कोउ जो कुरु-दल माहीं,
जाहि अधर्म-युद्ध प्रिय नाहीं,
सकत पक्ष मम अबहुँ सो आयी,
रखिहौं पूर्व वृत्त बिसरायी।"
सुनत गिरा जनु जलधर-गर्जन,
शिथिल शत्रु-दल, क्रुद्ध सुयोधन।
जस दुर्वचन कहन कछु चाहा,
लखेउ सविस्मय कुरु-नरनाहा—

दोहा :— *तजि ध्वजिनी, सब वंश जन, करि अराति-जयकार,*
धर्मराज दिशि जात निज, अनुज युयुत्सु कुमार। ८
जबलगि व्यथित बढ़ाय रथ, सकहि रोकि कुरुनाथ,
भरेउ समांक युयुत्सु इत, धर्मतनय-पद माथ। ९

जस धर्मेन अरि भरेउ भुजान्तर,
गूँजेउ रणमहि पाण्डव-जय-स्वर।
रिपु-पद-प्रणत अनुज अवलोकी,
सकेउ रोष नहिं कुरुपति रोकी।
करत कठोर बन्धु निर्भर्त्सन,
भाषे कलुषित वचन सुयोधन—
"कायर, कुमति, कुमातु-प्रजाता,
पाण्डव-दलहि योग्य यह भ्राता।
औरहु होय जो कुरुदल कोऊ,
पाण्डव-पक्ष जाहि द्रुत सोऊ।

सहेउँ सधैर्य विपुल मैं दम्भा,
लखहु होत अब समरारम्भा!"
सुनि गरजे बल-प्रतिबल साथा,
प्रविशेउ स्वदल धर्म नरनाथा।
दोउ दिशि भट रोमाञ्च-उदञ्चित,
अचल चरण, पै चलित प्राण-चित।

दोहा — *दीन्हेउ ताहीं क्षण क्षुभित, कुरुपति युद्ध-निदेश,*
कीन्हेउ दुश्शासन गरजि, पाण्डव-सैन्य प्रवेश। १२

सोरठा — *गर्जन व्यापि दिगंत, भीमहुँ बढ़ सदर्प इत,*
रदन लयाग्नि-ज्वलंत, दष्ट ओष्ठ, आभील भ्रू।

शंख असंख्य बजे इक संगा,
गोमुख, भेरी, मुरज, मृदंगा।
पत्ति-पाद-नि स्वन महि काँपी,
दिशि दिशि तोन-तूणिन ध्वनि व्यापी।
लक्ष-लक्ष हयगण हिहनाने,
स्यंदन अयुत-अयुत घहराने।
दिग्दीर्णित अगण्य गज-बृंहण,
धावन-स्वन, घंटा-रव भीषण।
हत-तलत्र-ज्या-शब्द कठोरा,
गरजे क्रूर धनुष चहुँ ओरा।
शूरन किलकिल, सिंह-निनादा,
बधिर श्रवण प्रतिगर्जन-नादा।
त्रिभुवन भरित समर-स्वर-भैरव,
धँसी धरणि जनु दीर्ण व्योम रव।
बढ़े दोउ दल समर-समुत्सुक,
वारिधि जनु युगान्त-वातोद्धत।

दोहा — *भयउ मध्य संघट्ट जस, दुहुँन घोर निर्घोष,*
टकराने हिमशैल गङ, जनु कुलशैल सरोष। १३

सोरठा:—बढ़ेउ वृकोदर-नाद, क्रम-क्रम जित-रण-रव सकल,
दारुण युद्धोन्माद, उद्यत जनु रिपु-कुल-प्रलय।

महिधर-शृंग शरीर विराटा,
उत्तमांग पृथु, तुंग ललाटा।
वक्ष शैलहिम-शिला विशाला,
उत्थित वाम हस्त तरु शाला।
कर दक्षिण पट-कोण-भयंकर,
गदा उदग्र अशनि-प्रलयंकर।
वर्म लोहमय कण्ठत्राणा,
कटि-तट क्रूर कराल कृपाणा।
सजग भाल भीषण त्रय रेखा,
अंकित मणिबँध धनु-किण-लेखा।
द्विरद-दर्प, मृगराज-पराक्रम,
व्याघ्र-क्रूरता, खगपति-गतिक्रम।
निरखि भीम यम-वपु, सुनि गर्जन,
शिथिल, वित्रस्त शत्रु हृत्कंपन,
कुरुदल धँसे वृकोदर गाजी,
विनसे गदाघात गज, वाजी।

दोहा:—हति रथि-सारथि, चूर्ण रथ, वेग प्रहार नृशंस,
करत दक्ष-क्रतु क्रुद्ध जनु, वीरभद्र विध्वंस। १२
नदित अरि-बल-व्यूह-मुख, पाण्डव दल आह्लाद,
धँसे सैन्य—सह शूरगण, करत भीम-जय नाद। १३

सोरठा:—लखि धाये रणधीर, क्रुद्ध धार्तराष्ट्र सकल,
क्रम-क्रम सर्व प्रवीर, जुरे स्वपक्ष सहाय हित।

सम-बल निज निज सुभटन पायी,
रोपेउ द्वन्द्व युद्ध भयदायी।
पार्थहिं पाय भीष्म ललकारा,
धृष्टद्युम्न गुरु द्रोण प्रचारा।

भिरे वीर सात्यकि-कृतवर्मा,
चेकितान-त्रिगतेश सुशर्मा।
धष्टकेतु-वाह्लीक महीशा,
सौभद्रहु-कोशल अवनीशा।
युद्धत नकुल संग दुश्शासन,
भूरिश्रवा-शल्य रण भीषण।
सहदेवहु-दुर्मुख संग्रामा,
शूर शिखण्डी-अश्वत्थामा।
उत्तर-वीरबाहु समुहाने,
कुन्तिभोज-अनुविंद अरुझाने।
वीर अलंवुष राक्षस-नाथा,
संगर उग्र घटोत्कच साथा।

दोहा :—*भिरे भीम-कुरुपति कुपित, धर्मराज - मद्रेश,*
बृहत्क्षत्र-आचार्य कृप, भगदत्तहु - मत्स्येश। १४
श्रुतकर्मा - काम्बोजपति, जयद्रथ - नृप पाञ्चाल,
इरावान अर्जुन सुवन, पली कलिङ्ग भुआल। १५

सोरठा:—*भिरे पदाति-पदाति, वाजि-वाजि, गज गज भिरे,*
लहि समशक्ति अराति, रोपेउ दारुण द्वन्द्व रण।
बढेउ समर-उन्माद, क्रम क्रम बढ़ी करालता,
त्यक्त सर्व मर्याद, वधेउ जाहि जेहि जहँ लहेउ।

पुत्र पितुहिं, पितु पुत्रहिं मारा,
बन्धु बन्धु पै कीन्ह प्रहारा।
पौत्र पितामहिं नहिं पहिचाना,
सुहृदहिं रहेउ सुहृद नहिं ध्याना।
विस्मृत सर्व मधुर सम्बन्धा,
भयेउ युद्ध विध्वंसक, अन्धा।
भिरे रथन सँग रथ महँ आयी,
पथ अवरुद्ध, सकत नहिं जायी।
युद्धत कतहुँ मत्त मातंगा,
दंत-प्रहार छिन्न अँग अंगा।

हयारोहि कहुँ रथहिं प्रचारहिं,
धाय सवेग शूल हनि मारहिं।
रथिहु बरसि शर सैन्य-प्रमाथी,
नासत रथ, पदाति, हय, हाथी।
धारि परश्वध पत्ति-वरूथा,
फिरत वधत रथि, हयगण यूथा।

दोहा :—शक्ति, गदा, तोमर चलत, गिरत पदाति, सवार,
कातर हाहाकार कहुँ, कतहुँ महत जयकार। १६

गजारोहि निज गजहिं प्रचारत,
बढ़ि ढिग शत्रु मुशल हनि मारत।
मत्त द्विरद कहुँ दन्त बढ़ायी,
अश्वावारहिं सारथ उठायी।
देहिं पँवारि, गरजि पुनि धावहिं,
पद विमर्दि, करि चूर्ण नसावहिं।
कहुँ एकहि रण-दुर्मद वारण,
करत रथी रथ, सारथि मर्दन।
रथिहु देखि धावत मद वारण,
करत बरसि शर वार-निवारण।
सकहिं न सहि गज बाण-प्रहारा,
भागत करत तीक्ष्ण चीत्कारा।
रौंदत पदतल जाहिं पदाती,
व्यथित लखहिं नहिं मीत अराती।
पतित कतहुँ गजपाल सतोमर,
कतहुँ सध्वज, सह-योद्धा कुंजर।

दोहा :—उद्धरत सहसा त्यागि गज, कतहुँ कोउ हस्तीश,
गहि कच, खड्ग-प्रहार करि, छिन्न करत अरि-शीश। १७

हत-रथि-सारथि कहुँ कहुँ हयगण,
आहत, अस्त-व्यस्त लै स्यंदन,

धावत अनियंत्रित समुदायी,
चूर्ण विचूर्ण होत टकरायी।
विरथ रथी कहुँ खड्ग उठायी,
क्षुब्ध, बढ़त वारण-समुदायी।
चढ़त द्विरद-रद कोउ रण-माता,
गिरत काँपि तोमर-आघाता।
भग्न-हृदय द्विप-दंत-प्रहारा,
वमत रक्त कहुँ पतित जुझारा।
धृत-उग्रायुध, युद्ध-मदोद्धत,
धावत कतहुँ पत्ति वध-उद्यत।
कतहुँ गतायुध, तबहुँ सक्रोधा,
युद्धत केवल भुज-बल योद्धा,
हनत जानु, पद करतल वोरा,
करत मुष्टिकाघात कठोरा।

दोहा :—*गहि कच कर्षत एक इक, करि करि केहरि-घोष,*
युद्धत नख-दंतन मनुज, श्वापद मनहुँ सरोष। १८
पहुँचे दिनपति मध्य-नभ, होत समर अविराम,
धँसे तबहि पाण्डव-अनी, सरिसुत विक्रम-धाम। १९

सोरठा :—*सित तनुत्र धृत अंग, उत्तमाङ्ग उष्णीष सित,*
स्यंदन सितहि तुरङ्ग, उदित दिवाकर जनु अपर।

रथ-संघात महीतल अवनत,
धावत मनहुँ पराक्रम-पर्वत।
बादत शंख, निनाद विभीषण,
गरजे जनु शत केहरि कानन।
नेमि-निनाद, धनुष-टङ्कारा,
घन जनु नभ सवज्र झंकारा।
बरसे तीव्र तड़ित-गति बाणा,
प्रसरित वसुधा-व्योम विताना।
विनसे विपुल वीर, नृप-नंदन,
हस्ती, पत्ति, तुरङ्गम, स्यंदन।

बढ़त जो पुरुषसिंह - समुहायो,
शर-सपात होत महिशायी।
आहत विशिख तीक्ष्ण अनियारे,
क्षत्रिय रक्त समुक्षित सारे।
अयुत काश्य, पाञ्चाल, चैद्यगण,
जरे भीष्म शर-जाल-हुताशन।

दोहा :— *एकहि एक पुकारि, मिलि, धावत सरितसुत ओर,*
गिरत धनुष कहुँ, शूर कहुँ, निहत अशनि-शर घोर। २०

सोरठा —*निरखि स्वदल अभिमन्यु, विकल पितामह-शर-अनल,*
सहज विवर्धित मन्यु, बढ़े रथस्थित, हस्त-धनु।

लखेउ सविस्मय शान्तनु-नंदन,
आवत कर्णिकार-ध्वज स्यंदन।
वर्ष षष्ठ-दश पार्थ-कुमारा,
तबहुँ प्रांशु तनु हरि-आकारा।
श्याम देह-द्युति, दृग रतनारे,
हलधर-दत्त धनुष कर धारे।
यदु-भारत दोउ वंश-प्रजाता,
महि जनु क्षात्र-तेज साक्षाता।
लखि निज सन्मुख वीर-प्रवाला,
कुल-गौरव गाङ्गेय विहाला।
महाशख उत कुँवर बजावा,
मही-व्योम मौर्वी-रव छावा।
प्रेरे त्वरित धनुष विस्फारी,
शर त्रय आशीविष-अनुहारी।
सके निवारि न कुरुकुल-नायक,
लागे भाल शिला-शित सायक।

दोहा :— *पंचुर विद्ध कुमार-शर, तुङ्ग पितामह-भाल,*
शोभित मनहुँ त्रिशृङ्ग-धृत, स्वर्ण सुमेरु विशाल। २१

सोरठाः—*अचल भीष्म धनुमान, अधर प्रस्फुरित हास-रिस ,*
धरे शरासन बाण, जनु ज्वलत पावक-प्रभा ।

तजे धनुष ते कर्पि कर्ण तक ,
धाये अन्तराल जनु अन्तक ।
आवत उग्र भीष्म-इषु देखे ,
तृण-समान फाल्गुन-सुत लेखे ।
क्षुर सपत्त पल लागत प्रेरे ,
कटे मध्य शर सरिसुत केरे ।
लखत अदृश्य अमर आयोधन ,
गूँजेउ 'साधु ! साधु !' नभ निःस्वन ।
विस्मित कौरव-वाहिनि सारी ,
पाण्डव-ध्वजिनि हर्ष-ध्वनि भारी ।
जानि महारथि-सँग निज संगर ,
लज्जित भीष्महु, रोष तीव्रतर ।
करत पौत्र-आत्मज पै धावा ,
शर-वर्षण शिशु-स्यंदन छावा ।
लखि सरिसुवन-सत्व उत्कर्षा ,
बढ़ेउ मृगेश-किशोर-अमर्षा ।

दोहा :— *लहरत लखि गाङ्गेय-ध्वज, कौरव-दर्प प्रतीक ,*
तजेउ आञ्जलिक तीव्रतम, पार्थ-पुत्र निर्भीक । २२

सोरठाः—*पञ्च - ताल - आकार, छिन्न ताल-तरु-चिह्न ध्वज ,*
कुरुदल हाहाकार, हत अतिरथि जनु कोउ रण ।
तेहि क्षण इत मत्स्येश, सहित श्वेत उत्तर सुवन ,
उत शल्यहु मद्रेश, धाये राह सुत रुक्मरथ ।

जात पितामह दिशि अवलोका ,
शल्य मत्स्य-महिपति पथ रोका ।
पाटल पुष्प-वर्ण नृप हय-गण ,
भेदे मद्रनाथ नाराचन ।

उत्तर कुँवर रुद्ध लखि पितु-गति,
प्रेरेउ गज निज मद्रप-रथ प्रति।
अंकुश-आहत धायेउ कुञ्जर,
जनु सपक्ष ज्या-मुक्त जवन शर।
आवत निरखि नगेन्द्र समाना,
हने अगण्य मद्रपति बाणा।
करि नहिं सके करीन्द्र निवारण,
पहुँचेउ निकट विकट रण-वारण।
धरि उद्धत पद सहसा स्यंदन,
लागेउ करन तुरंगम मर्दन।
तबहुँ अकातर मद्र-नृपाला,
गही हस्त निज शक्ति कराला।

दोहा :—*निपताका वक्रित भृकुटि, दृग संरक्त अँगार,*
त्यागी तड़पत मद्रपति, ताकि विराट-कुमार। २३
तजि घन निकसी जनु तड़ित, दारुण गिरिहु समर्थ,
लागी उत्तर-अँग प्रबल, महाशक्ति अव्यर्थ। २४

सोरठा:—*दीर्ण लोह तनुत्राण, सुखि, तोमर कर ते खसे,*
गिरेउ कुँवर निष्प्राण, अशनि-भग्न,जनु द्रुम तरुण।

पाण्डव-दल उत कातर निस्वन,
उछरे मद्रप इत तजि स्यंदन।
खड्ग-हस्त हुँकरत प्रचण्डा,
हनि द्विप-शुण्ड कीन्हि युग खण्डा।
पूर्वहि शर-सहस्र तनु निकृत,
गिरेउ भूमि गज मनहुँ महीभृत।
मृत द्विपेन्द्र इत करत आर्त्त स्वन,
चढ़े शल्य उत आत्मज-स्यंदन।
उत्तर-अग्रज श्वेत कुमारा,
शयित समर महि अनुज निहारा।
सुखासीन पुनि अरि अवलोका,
नख-शिख गात रोष, गत शोका।

महाबाहु, ओजस्वि, मनस्वी,
अगणित युद्ध-विदग्ध, यशस्वी,
शक्रायुधसम कार्मुक वर्षी,
बढ़ेउ वीर मद्रेश-त्रधर्षी।

दोहा :—*लखि पितु-रक्षक रुक्मरथ, हनेउ श्वेत शर घोर,*
छिन्न उरश्छद, भिन्न अँग, मूर्छित मद्र-किशोर। २५

सोरठा:—*प्रेषी उल्का-कल्प, शूल शल्य रिस-प्रज्वलित,*
लाघव प्रकटि अनल्प, काटी पथहि विराट-सुत।
भट बहु बढ़े सदाप, मद्रप संकट-ग्रस्त लखि,
काटि सबन शर चाप, समर-विमुख कीन्हें कुँवर।

लखे पितामह मद्र-अधीश्वर,
दारुण - मृत्यु-दंष्ट्र अभ्यन्तर।
दूरहि , वे अमोघ शर प्रेरी,
काटी मौर्वि श्वेत-धनु केरी।
धाय बहुरि श्वेतहिं समुहायी,
लीन्ह मद्रपति ससुत बचायी।
कुँवरहु अन्य धनुप कर धारा,
प्रेषे सरुष विशिख दुर्वारा।
बरसे भीष्महु बाण प्रज्वलित,
तेज-पुञ्ज महि-व्योम पिञ्जरित।
विस्मित लखेउ उभय दल योद्धन,
सरिसुत-श्वेत क्रूर आयोधन।
उद्धत दोउ महा द्विरदोपम,
क्रोधित, हिंसा-हृदय व्याघ्र सम।

दोहा :—वेगवंत बरसेउ विपुल, विमल भल्ल शर-जाल,
वधे श्वेत-हय, सारथी, ध्वंसी ध्वजा विशाल। २७

सोरठा :—तजि स्यंदन अव्यम, कूदेउ बली बिराट-सुत,
धत कर शक्ति उदम, अचल निदरि अरिदल निखिल।

भाषेउ शान्तनु-सुतहिं प्रचारी—
"प्रकटहु पौरुष यश-अनुहारी!"
अस कहि घोर, काल-दण्डोपम,
तजी मत्स्य-सुत शक्ति सविक्रम।
गवनी अतराल विकराला,
कुरुदल सकल विलोकि विहाला।
काल कराल सबहिं निज लागी,
धृति नहि एक देवव्रत त्यागी।
धारि अष्ट शर चाप प्रचण्डा,
आवति शक्ति कीन्हि अठ खण्डा।
प्रमुदित लखि विपत्ति विनिवारण,
उत्थित कुरुदल आनँद निःस्वन।
क्रोध-अंध इत मत्स्य-किशोरा,
लै निज हस्त गदा अति घोरा।
धारि शिक्य रणधीर चलायी,
वज्र-भयंकर गर्जत धायी।

दोहा :—कूदे रथ ते भीष्म लखि, आवत आयुध क्रूर,
गदाघात स्यंदन सहित, अश्व, सारथी चूर। २८

करत पार्थ सग द्रोण घोर रण,
विरथ विलोके शान्तनु-नंदन।
वायु-वेग गुरु रथ दौड़ावा,
स्यन्दन निज सरित्सुत बैठावा।
प्रेरेउ तेहि दिशि हरिहु पार्थ-रथ,
रोधेउ पै पथ द्रोण, जयद्रथ।

लज्जित भीष्महु क्रोध-विहाला,
व्याप्त रौद्र-रस वपु विकराला।
वृत्ताकार शरासन धारे,
बरसत भीषण बाण-अँगारे।
बढ़त करन जो श्वेत-सहायी,
होत विमुख शर दारुण खायी।
छिन्न-भिन्न रथि, पत्ति-वरूथा,
केहरि-क्रान्त मनहुँ करि-यूथा।
रहेउ क्षेत्र इक श्वेत वीरवर,
मनहुँ स्वयूथ-भ्रष्ट वन-कुञ्जर।

दोहा :—*गदा शक्ति, स्यंदन-रहित, तनु क्षत-रक्त कराल,*
बढ़ेउ कुँवर गहि काल सम, हस्त शेष करवाल। २९
भीष्म पितामहु ताहि क्षण, शित महास्त्र समान,
अभिमन्त्रित त्यागेउ प्रबल, अन्तर्भेदी बाण। ३०

सोरठा :—*डगमग वीर-वरिष्ठ, दीर्ण हृदय तनुत्राण सह,*
गिरेउ मेदिनी-पृष्ठ, भीष्म-प्रतापानल-शलभ।

क्षुब्ध पार्थ यदुनाथ दुलारे,
बाजे कुरुदल शंख नगारे।
कीन्ह भीष्म-जय-नाद सुयोधन,
नाचेउ हर्ष-मत्त दुश्शासन,
शंख तृतीय विराट कुमारा,
श्वेत समान शौर्य-आगारा।
बढेउ भीष्म दिशि जस धनु तानी,
भाषी शल्य विहँसि विष-बाणी—
"नव विराट-पाण्डव सम्बंधा,
होत प्रणय नव सतत अंधा।
उचित तदपि नहिं प्रथमहि दिन रण,
करब समूल . वंश उच्छेदन।"
सुनि, निज शोकावेग सँभारी,
गिरा सदर्प विराट उचारी—

"स्वार्थ-निरत तुम नीच मद्रजन,
करहु न नेह-नाम उच्चारण।

दोहा—*सकत जानि सो का प्रणय, जियत जो द्रव्य उपासि,*
दीन्ही पाण्डुहि तुम भगिनि, लै अपार धन-राशि। ३१

प्रणय-हेतु नहिं परिणय जैसे,
युद्धहु धर्म हेतु नहिं तैसे।
युद्ध-जीव, निष्ठुर, हत्यारे,
भरत उदर तुम शस्त्र-सहारे।
देत अधिक धन तुम तेहि लागी,
युद्धत धर्म, नीति नय त्यागी।
शनि निज मातुल धर्मनरेशा,
पठयेउ रण हित तुमहिं सँदेशा।
पाय सुयोधन-धन पथ माहीं,
लाजे तजत स्वजन निज नाहीं।
करि तुम सोइ पुत्र अवसादा,
सिखवत मोहिं प्रेम-मर्यादा।
जानत रण परिणय-पश्चाता,
जोरेउ हम पाण्डव-सँग नाता।
मोहि न सुवन-निधन पछितावा,
यश तिन अमर समर-महि पावा।

दोहा—*शोच्य न मम सुत, शोच्य तुम, समर शृगाल समान,*
गहि शान्तनु-नन्दन शरण, रच्छे पामर प्राण।" ३२

सुनी मद्रपति दारुण वाणी,
रोप-तरंगिणि तनु लहरानी।
गरजी शिञ्जिनि दर्प-विमर्दित,
सिंहनाद रण-मही निनादित।
देत विराटहिं रण-आमन्त्रण,
धाये शल्य करत शर-वर्षण।

मत्स्य-नरेशहु शर धनु जोरा,
भयेउ युद्ध द्वैरथ अति घोरा।
उत करि विरथ शंख सरिनंदन,
वधत फिरत पाञ्चाल, चैद्यगण।
शोभित धनुष मण्डलाकारा,
बरसत बाण प्रलय-जल-धारा।
फाल्गुन पुनि पुनि तेहि, दिशि धावत,
रोधत द्रौणि बढ़न नहिं पावत।
गुरु-आभिज-वध-भीरु धनंजय,
सकुचत, करत प्रहार न निर्दय।

दोहा :—सखा-हृदय पहिचानि हरि, लखि पुनि संध्याकाल,
फेरी रण ते सैन्य निज, विफल भीष्म-शर-जाल। ३२

सोरठा :—करि जनु शोणित-पान, शोण वर्ण पश्चिम दिशा,
भयेउ दिवस-अवसान, रण-अवसानहु ताहि क्षण।
पाण्डव सैन्य विषाद, उत्तर श्वेत कुमार हित,
नभ-भेदी जयनाद, गूँजेउ कौरव-वाहिनी।

लै पुनि साथ रणाहत वीरन,
प्रविशे दोउ दल निज निज शिविरन।
कीन्ह चिकित्सकगण उपचारा,
भे विशल्य गज, वाजि, जुझारा।
तैल-प्रसिक्त क्षौम-पट जारी,
भरी भस्म व्रण-पूरनहारी।
बहुरि निमज्जन, भोजन-पाना,
स्वस्ति-पाठ, द्विज-वृन्दन दाना।
मिलन, समर-हत-शूर-संस्मरण,
मागध, बंदी, सूत-सस्तवन।
ऋतु हेमन्त, यामिनी शीतल,
सैनिक बारि काष्ठ-तृण तरुतल,
निवसि चतुर्दिक स्वस्थ, सतापा,
करत बरनि रण वीरालापा।

रक्त सोष्म, उत्साह-तरंगा,
रचत स्वाँग बहु विधि रस-रंगा।

दोहा :—*नृत्य, गान, वादित्र-ध्वनि, कौरव शिविर हुलास,*
पाण्डव शिविरन शोक कहुँ, कतहुँ रोष उच्छ्वास। ३४

फिरत प्रशान्त-वदन यदुनन्दन,
वितरत शिविर-शिविर आश्वासन।
सुधा-स्रावि वदनेन्दु निहारी,
आहत व्यथा बिसारि सुखारी।
सुनि हरि-मुख मृत सुत-रण-विक्रम,
विरमत गर्वित मातु-अश्रु क्रम।
दै कहुँ धैर्य, कतहुँ दै ज्ञाना,
कहुँ अनुराग, कतहुँ सन्माना,
नेहस्निग्ध कतहुँ दै चितवनि,
भरत मुमूर्षु प्राण सञ्जीवनि।
यहि विधि बरसत हर्ष शिविर प्रति,
गवने भीम-निवेश वृष्णिपति।
दूरहि ते निरखे यदुरायो,
विमन वृकोदर शय्याशायी।
श्वास तीव्र, दृग अरुण, प्रजागर,
भृकुटि कोप वक्रित, रुधिराधर,

दोहा :—*बसत कबहुँ उन्मत्त जनु, जानु-उभय शिर धारि,*
उठत कबहुँ मींजत करन, कुरुपति-नाम पुकारि। ३५

स्वाभिमान वीरेन्द्र अधीरा,
तन मन व्याप्त पराभव-पीरा।
रोषानल-हित सुनि जल वाणी,
प्रविशे शिविर न सारँगपाणी।
तजि धधकत आग्नेय पहारा,
विहँसत निज निवेश पगु धारा।

विधु एकादशि व्योम विलोका,
रजतोज्जवल, शीतल आलोका।
लै प्रोत्फुल्ल सुमन दल परिमल,
भ्रमत प्रमत्त अनिल घन शीतल।
विमल हिरण्यवती सरि तीरा,
प्रविशे यदुपति निभृत कुटीरा।
दीप सुगंधित हेमाधारा,
करत सुवास, प्रकाश प्रसारा।
हंस-तूल-शय्या सुख-धामा,
शयित श्याम त्रिभुवन-विश्रामा।

दोहा :—कुरु-शिविरन जय ध्वनि जबहि, प्रविशत श्रुति पथ आय,
शयितहु हरि विद्रुम अधर, उठत कछुक मुसकाय। २१

सोरठा :—उदित व्योम पुनि भानु, निहत शशांशु अराति-तम,
भीषण ज्वलित कृशानु, कुरुक्षेत्र रण-महि बहुरि।

निशि धूमायित ज्वाला अन्तर,
फूटा भभकि प्रभात भयंकर।
समरारंभ-पटह जस बाजे,
धँसि रिपु-सैन्य वृकोदर गाजे।
हति अगणित रथ, हय, पादाता,
नृपति केतुमत समर निपाता।
पुनि कलिङ्ग-युवराज भानुमत,
वधेउ सबंधु भीम युद्धोद्धत।
कुपित श्रुतायु कलिङ्ग भुआला,
घेरेउ लै द्विप-दल विकराला।
क्षुब्ध भीम तजि कार्मुक, स्यदन,
कूदे खड्ग-पाणि रण-प्राङ्गण।
काटे कुंभ, शुण्ड, पद, दंता,
व्याप्त द्विरद-चिग्घार दिगन्ता।
चीन्ह भीम सुर-दुष्कर करनी,
भाग हताहत वारण धरणी।

दोहा :— द्विरद - रुधिर - मेदा - वसा, दिग्ध देह विकराल,
लखत निखिल कुरुदल वधेउ, बली कलिंग भुआल। ३७
भीम-बाण-पंजर परेउ, समर-महीं जो कोय,
रोषानल-ज्वाला जरेउ, फिरेउ शिविर नहिं सोय। ३८

सोरठा :—यहि विधि नित्य प्रभात, कौरव पाण्डव दोउ दल,
करत घात-प्रतिघात, प्रेरित प्रतिहिंसा प्रबल।
वधेउ द्रोण सक्रोध, जबहिं शंख मत्स्येन्द्र-सुत,
लीन्ह भीम प्रतिशोध, धार्तराष्ट्र वधि पञ्च-दश।

दिवस अष्ट युद्धत जब कुरुपति,
खोये समर अनुज द्वय-विंशति।
विगत गीत, गोष्ठी परिहासा,
हृदय विषण्ण, शिथिल जय-आशा।
सकेउ न धारि हृदय दुख-भारा,
कर्ण सुहृद निशि शिविर हँकारा।
वाष्प-वारि-परिप्लावित लोचन,
समर-वृत्त सब कहेउ सुयोधन।
चकित अोष्ठ सुनत वैकर्तन,
कीन्हेउ पुनि सोइ निष्ठुर जल्पन—
"आजीवन तुम मोहिं सन्माना,
सदा शौर्य मम स्वमुख बखाना।
मैं जब सहस मनोरथ-प्रार्थित,
अरि-वध अवसर भयेउ उपस्थित।
वज्र-पात तुम मम शिर कीन्हा,
अधिनायक-पद भीष्महिं दीन्हा।

दोहा :— शीश पलित, साहस गलित, लुप्त सत्व, कर्तृत्व,
सधि-उपासक हस्त तुम, सौंपेउ रण-नेतृत्व। ३९

सहेउँ सोउ, प्रकटेउँ नहिं रोषा,
भयेउ तबहुँ नहिं भीष्महिं तोषा।

निखिल शूर, सनातिन-सन्मुख,
कहे अवाच्य अनेकन दुर्मुख।
तुम अकाण्ड-ताण्डव तेहि माना,
मैं सरिसुवन-हृदय पहिचाना।
जदपि प्रकट अन सबहि कुनीती,
समुभन एक न तुम वश भीती।
वृत्ति न शान्तनु-सुत निज त्यागी,
रण मिस अबहुँ संधि-अनुरागी।
धरे सोइ उर भाव धनंजय,
दोउ मिलि रचत नित्य रण-अभिनय।
पै कुरु-शोणित-तृषित वृकोदर,
नासत नित्य तुम्हार सहोदर।
हत वैराट न पाण्डव आकुल,
हत कुरु-बान्धव, क्रन्दन कुरुकुल।

दोहा — *सोचत शान्तनु सुत हृदय, अनुजन रच्छन काज,*
अब संधि करिहें विवश, तजि आयुध कुरुराज। ४०

क्लीव-भाव यह तुमहिं न भावा,
तातें रण हित मोहिं बोलावा।
पै जब लगि सरिसुत अधिनायक,
धरिहौं व्यर्थ न मैं धनु सायक।
नृप हित मुनिन नीति यह भाखी,
चलहिं प्रतीति एक पै राखी।
प्रिय-अप्रिय नहिं काहुहि मानहिं,
साधहिं ध्येय जो तेहि सन्मानहिं।
संधि चहति जो उर कुरुनन्दन,
सकत साधि सरिसुतहि प्रयोजन।
पै जो चहत शत्रु संहारा,
धरहु समस्त शीश मम भारा।
निष्ठुर समर-धर्म अति ताता,
गण्य तहाँ नहिं नेह, न नाता।

क्षमा-दया-अविषय समरस्थल,
मिलत तहाँ तत्काल चूक-फल।

दोहा :—दृढ करि ताते निज हृदय, अबहि भीष्म ढिग जाय,
करहु तिनहि रण ते विरत, काहु भाँति समुझाय। ४१
निरमेउ कुरु-कुल-तरु-परशु, दंभ-दिग्ध राधेय,
सुने सुयोधन जनु वचन, सुधा श्रवण-पुट-पेय। ४२

सोरठा:—अविवेकी कुरुराज, कृत-निश्चय ताही समय,
परिवृत स्वजन समाज, गवनेउ भीष्म-निवेश दिशि।

गवने सँग-सँग रक्षण-लागी,
अनुज-वृन्द, क्षितिपहु अनुरागी।
धारि प्रज्वलित उल्का हाथा,
गवने शत-शत भृत्यहु साथा।
परिवेष्टित परिखा, प्राकारा,
योजन पञ्च निवेश-प्रसारा।
महा शिविर जनु दुर्ग महाना,
बिच बिच हाट, बाट, उद्याना।
सैनिक नाना देश-निवासी,
विविध वेष, बहु भाषा-भाषी।
बहु शिल्पी, रथकार, चिकित्सक,
वणिक, गुप्तचर, वार्ता-वाहक,
मागध, बंदी, सूत, विप्रजन,
दर्शक, भिक्षुक, सेवक-परिजन।
गवनत पथ विलोकि कुरुनंदन,
जुरत, करत मिलि जय-ध्वनि, वंदन।

दोहा:—स्वीकारत कुरुपति नमन, जय-रव सुनत अशेष,
पद-पद वर्धित मद सहज, प्रविशेउ भीष्म-निवेश। ४३

अवलोके सरि-सुवन सुयोधन,
करत द्रोण गुरु-सँग संभाषण।

वक्ष बाहु अगणित व्रण-रेखा,
जनु तनु लिखित राम-रण-लेखा!
परिणत वयसहु वपु मन-भावन,
गिरा अमर-सरि-धारा पावन।
हृदय दया-द्रव-पारावारा,
भाद्र-वारिधर हस्त उदारा।
निखिल शास्त्र-अवगाह-विमल मन,
शौर्य, धैर्य, गाम्भीर्य-निकेतन।
जित कामार्थ, परार्थ-उपासी,
मृत्युहु बसति जासु बनि दासी।
लखि सन्मुख जनु नर-तनु दिनमणि,
हत-प्रभ कुरुपति खद्र कीटमणि।
व्यापेउ उर अनुभाव-प्रभावा,
गत क्षणैक-उच्छृंखल भावा।

दोहा —*वंदि भीष्म, गुरु-पद बसेउ, हेमासन कुरुराज,*
पूछेउ शकित सरि-सुवन, निशि नृप-आगन-काज। ४४,

भरि उर साहस, सलिल विलोचन,
कहे वचन दुर्वृत्त सुयोधन—
"जीते समर परशुधर आपू,
व्याप्त भुवन-त्रय तात-प्रतापू।
चहहु तो सकहु नाथ! करि शर-बल,
धरा पयोधि, पयोधि, मरुस्थल!
समर तुम्हार बाहु-बल पायी,
सकहुँ सवासव सुरहु हरायी।
तृण-सदृश. पाण्डव., पाञ्चाला.-,
सकत कि सहि प्रभु -विक्रम ज्वाला?
तोहि पै एकादश अक्षौहिणि,
दारुण मम वाहिनि लय-कारिणि।
अछत नाथ, समरहु-संभारा,
छीजत नित कुरुवंश हमारा!

गर्जत धँसि मम सैन्य वृकोदर,
अभय निपातत नित्य सहोदर।
यह असह्य, विनवत अब दासा,
रच्छहु कुरुकुल करि अरिनाशा।

दोहा :—*पै जो पाण्डव-प्रीति-वश, उठत हाथ नहि तात!*
कर्ण-शीश रण-भार तो, आपुहि धरहु प्रभात!" ४५

नाटक कपट, मधुर प्रस्तावन,
भरत-वाक्य सुनि भीष्म भयावन।
लोक-हृदय-विदु: मन निज जाना,
भीषण होन चहत अपमाना।
मंद बुद्धि, राधेय-पठावा,
मम पद हरण हेतु शठ आवा।
वाक्य-शल्य मर्मस्थल लागा,
मन्यु-कृशानु घोर उर जागा।
कम्पित तनु जनु शैल समूला,
शिथिल शीश उष्णीष-दुकूला।
पृथुल ललाट भृकुटि विकराला,
आनन प्रकट स्वेद-कण-जाला।
शोण दृगन ज्वलिताग्नि विभासा,
जनु मरु-मरुत तप्त निःश्वासा।
दष्ट रदच्छद शोणित-शीकर,
विकृत आकृति प्रकृति-मनोहर।

दोहा :—*क्रोध-दग्ध सर्वाङ्ग पै, शान्तनु-सुत गम्भीर,*
रहे मौन धृति-धैर्य-मति, पियत मनहुँ उर पीर। ४६

लखे द्रोण सरिसुत अपमानित,
शून्य, सुप्त, जनु छलित, विलम्बित।
भयेउ असह्य मान्य-अपमाना,
हृदय क्षुब्ध, संवृति अवसाना।

लोचन-ज्वाल खलहिं जनु जारी,
गिरा क्रुद्ध आचार्य उचारी—
"जदपि आजु तुम जन-धन-स्वामी,
हम आश्रित, सेवक, अनुगामी,
तदपि नृपोचित तजि आचारा,
सकत न करि तुम स्वेच्छाचारा।
निमरेउ तुमहिं लहत नृप-महिमा,
निज क्षुद्रत्व, पितामह गरिमा।
हरन हेतु तुम जो सिंहासन,
करत रहत अघ नित्य अनेकन,
सोइ प्रकटि पितु-पद-अनुरागा,
भीष्म विमातु-तनय-हित त्यागा।

दोहा:—ब्रह्मचर्य नहिं जो गहत, जन्मत नहिं धृतराष्ट्र,
जन्मत नहिं दुर्योधनहु, कहाँ तासु महि-राष्ट्र। ४७

लहि उच्छिष्ट जासु नरनाहा,
ताहि नृपत्व बतावत काहा?
धरि तुम शीश चरण, करि क्रदन,
कीन्हे अधिनायक सरि-नंदन,
सोइ तुम धृष्ट आजु अस आयी।
चहत हरन पद लाज विहायी।
कहहु भये तुम रण-पटु कबते?
कब-कब, कहाँ-कहाँ रण जीते?
कहँ उपजेउ यह बुद्धि-विकारा,
लागे तूल जा पाण्डु-कुमारा?
कहहुँ प्रीति, भीतिहु उर नाहीं—
'जेय न पार्थ द्विरथ-रण माहीं।'
पै लघु सैन्यहिं पाण्डव-पासा,
करत सयत्न तासु हम नाशा।
वधत वरसि सरि सुत शर-धारा,
शूर सहस उस प्रण-अनुसारा।

दोहा :— *छीजत जइहैं नित्य जो, जन-वाहन यहि भाँति,*
एक दिवस तजिहैं समर, विरहित सैन्य अराति। ६८

यहि विधि जय तुम्हारि जय-लागी,
दत्तचित्त सरि-सुत अनुरागी।
तुम कृतघ्न राधेय-सिखाये,
करि अपमान हरन पद आये।
बाल-बुद्धि जो दुर्जन-चेरा,
वहत करत सतत पर-प्रेरा,
चित्तवृत्ति नहिं निश्चत जासू—
भय-प्रद सदा प्रसादहु तासू।
राखहु समुझि तदपि मन माहीं,
अर्थ-दास द्विज-सुत मैं नाहीं।
लहि गुण-ग्राहक भीष्म-सनेहा,
निवसेउँ सत्कृत कुरुजन-गेहा।
पै राधेय-अधीन रणाङ्गण,
करिहैं द्रोण न एक क्षणहु रण।
कृपाचार्य अरु अश्वत्थामा,
तजिहैं दोउ मम सँग संग्रामा।

दोहा :— *दुर्नय-पद नहि झुकि सकत, भरद्वाज-सुत माथ,*
जहँ सरिसुत तहँ द्रोण-कुल, समुझु मूढ कुरुनाथ!" ६९

कही द्रोण गुरु दारुण-वाणी,
सुनी उपेक्षि प्रथम अभिमानी।
बहुरि रोष, पुनि संशय व्यापा,
अन्तिम वाक्य सुनत उर काँपा।
टूटेउ मनहुँ विपत्ति पहारा,
ढहेउ समर-आयोजन सारा।
सर्वनाश-भय मिथ्याचारी,
पलटि अन्य माया विस्तारी।
असफल निज विलोकि आघाता,
करत सतत दुर्जन प्रणिपाता।

गहे पितामह-पद बिलखायी—
"छमहु बाल गुनि मोरि ढिठायी।
बंधु-निधन-दुख-दग्ध हृदय चित,
भाषे वचन अशोभन अनुचित।
समुझि दोष मन शोक-प्रजाता,
रोष विहाय द्रवहु पुनि ताता!

दोहा :— *प्रणत-प्रणयि, आश्रित-दयित, मृदु उर, विगत विकार,*
लखन चहत यह दास पुनि, वदन प्रसन्न तुम्हार!" ५०

यहि विधि कुरुपति विविध विधाना,
ताने प्रस्तुति-शब्द-प्रताना।
कीन्हेउ पुनि पुनि आत्म-समर्पण,
लहेउ न तोष तदपि सरि-नदन।
जस जस बुझी विषम रिस-आगी,
हृदय-वेदना दारुण जागी।
सुनि सुनि अनृत श्रवण उकताने,
कैतव लखि लखि दृग पथराने।
सञ्चित कुरुपति-पाप-कलापा,
बनि विष आजुहि जनु तनु व्यापा।
मस्तक महि नत, लोचन निश्चल,
जीवन मनहुँ भार, महि मरुथल।
शोकित, श्रान्त, परास्त, हताशा,
जनु तजि मृत्यु न उर अभिलाषा।
सिक्त प्रीति-रस द्रोणहु-बाणी,
सकी न भरि मुद, हरि उर-ग्लानी।

दोहा :— *एकहि बार उठाय दृग, कहेउ कुरुपतिहि-"तात!*
चहत जौन विधि तुम समर, लखिहौ होत प्रभात!" ५१
चकित सुयोधन सुनि गिरा, गवनेउ शिविर प्रसन्न,
गवने गुरुहु निवेश निज, निंदत मन पर-अन्न। ५२

सोरठा:— *शान्तनु-सुत उन्निद्र, यापी यामिनि काहु विधि,*
विरचेउ प्रात अछिद्र, व्यूह सर्वतोभद्र रण।

बाजे जस पाण्डव-पणवानक,
बाजेउ सरिसुत-शंख भयानक।
मनहुँ युगान्त वज्र शत कड़के,
हय-गय सभय, धीर-हिय धरके।
क्लान्त शत्रु-दल, वदन मलीना,
शूर, शिथिल-भुज, सत्त्व-विहीना।
विकल चित्त, दृग-तल अँधियारा,
भ्रमत मनहुँ महि, विटप, पहारा।
नव बल कौरव-वरुठन पावा,
जय-रव उर्वी व्योम-कँपावा।
बढ़ेउ भीष्म-रथ अरि-दल ओरा,
मुखर अश्व-खुर, प्रधि-स्वर घोरा।
हेमदण्ड-ध्वज नभ लहराना,
चल जनु शृङ्ग सुमेरु महाना।
गरजेउ धनु अन्तक-आकारा,
जनु लय-काल जलधि-हुँकारा।

दोहा :— *वही शरासन ते बहुरि, शर-धारा लहराय,*
ढहेउ व्यूह, सहसा बहे, वैरि-वर्ग असहाय। ५२

पाण्डव-दलहि नित्य चढ़ि धावत,
नित्य भीम कुरु व्यूह नसावत।
ध्वस्त विपक्ष-व्यूह लखि आजू,
मोद-मगन कुरुजन, कुरुराजू।
हुलसेउ एक न द्रोण गुरुहि-मन,
चिन्तित पुनि पुनि लखत सुहृद-तन।
निरखेउ गुरु—न रोष, निशि-शोका,
श्रम उमग वदन आलोका।
निरपेक्षित निज-पर तन-प्राणा,
नहिं उर विजय-पराजय ध्याना।
युद्ध-नीति कौशल निसराये,
समर मरन-मारन ये आये!

समुझि मर्म गुरु द्रोण दुखारे,
दोउ कृप द्रौणि समीप हँकारे।
कहि—'सयत्न रच्छहु सरि-नदन,
अनुहरि सुहृद बढ़ायेहु स्यंदन।

दोहा :— *उत बरसाये सरि-सुवन, बाण प्रदीप्त अगण्य,*
दावानल जनु प्रज्वलित, पाण्डव-सैन्य अरण्य! ५४

अंकित भीष्म-नाम स्वर्णाक्षर,
झरे अनवरत हेम-पुञ्ज शर!
ज्योतिर्मय पाण्डव - चतुरंगा,
विद्युत-रचित मनहुँ रण-रंगा,
मोह-ग्रस्त प्रतिपक्ष, शूरगण,
चितवत कहुँ न दिखत सरिनदन।
नेत्र उठाय लखत जेहि ओरा,
परत दृष्टि शर-जाल कठोरा।
वृन्त-विभिन्न प्रसून समाना,
होत छिन्न शिर लागत बाणा।
तजि गज गजारोहि, गजपाला।
गिरे शराहत, शिथिल, विहाला।
चेतन-विरहित सारथि आहत,
शोणित-परिलुत रथी कराहत।
नष्ट त्रिवेणु, अक्ष, युग, चाका,
कीर्ण किङ्किणी, ध्वस्त पताका।

दोहा :— *अविश्रान्त सरिसुत समर, मोघ न एकहु बाण,*
हत हस्ती, पत्ती पतित, रथि, सादी निष्प्राण। ५५

मागध, चैद्य, मात्स्य, पाञ्चाला,
रथी, महारथि सकल विहाला।
तिल-तिल विद्ध शरन अनियारे,
भ्रान्त भीम रथदण्ड-सहारे।

क्षत-विक्षत आर्जुनि हत-चेतन,
थित गहि हेम-परिष्कृत केतन।
आहत धृष्टद्युम्न अधिनायक,
स्रस्त हस्त ते कार्मुक सायक।
शूर शिखण्डि, माद्रि-अँगजाता,
दीर्ण मर्मथल, रक्तस्नाता।
खण्डित-चाप विराट भुआला,
कवच-विहीन द्रुपद पाञ्चाला।
विरथ उत्तमौजा धनुधारी,
हत हय चेकितान पदचारी।
पञ्च द्रौपदी-सुत धनुमाना,
मूर्छित मनहुँ कीन्ह विष पाना।

दोहा — *युद्धत काहु विधि अबहुँ, दुराधर्ष युयुधान,*
सरिसुत-विक्रम वारिनिधि, अविचल द्वीप समान। ५६

परिपालत रण फाल्गुन-स्यदन,
पाण्डव-सैन्य लखी यदुनदन।
महामत्स्य ते जनु टकरायी,
भग्न वहित्र उदधि असहायी।
साभिप्राय अर्जुन-तन हेरा,
स्यदन त्वरित भीष्म-दिशि प्रेरा।
भयउ घोर रव जस रथ हाँका,
उड़ी व्योम कपिराज पताका।
प्रविशे श्वेत अश्व दल माँहीं,
उड़ि मानस जिमि हंस समाहीं।
रोधहिं जब लगि द्रोण धाय पथ,
पहुँचेउ भीष्म-समीप पार्थ रथ।
हुलसे सैनिक निरखत स्यदन,
शीत-ग्रस्त जन जिमि रवि-दर्शन।
हरि-अर्जुन रण-अजिर बिराजे,
सध्या सँग रवि-शशि जनु राजे।

दोहा :— सन्मुख समरेच्छुक निरखि, कीर्तिमंत कौन्तेय,
द्योतित विक्रम-रस वदन, बरसे शर गांगेय। ५७

बाण-वृष्टि पुनि सोइ घन-घोरा,
पावस-झरनि पार्थ-रव वोरा।
छिपेउ स-वाजि, स-सारथि स्यदन,
क्षण अदृश्य रण कुन्ती-नदन।
बिनु उद्वेग तबहुँ यदुरायी,
रहे काहु विधि वाजि-चलायी।
रण-महि असहन-शील प्रहारा,
पार्थहु क्षुब्ध धनुष कर धारा।
वर्षत शिञ्जिनि शब्द भयंकर,
गरजे जनु पुष्कर प्रलयकर।
बरसे वज्र बाण विकराला,
बही व्योम कालानल ज्वाला।
च्छादित पुनि समराङ्गण सारा,
रुद्ध सरितसुत-शर-सचारा।
दिखेउ बहुरि यदुनाथ-वदन वर,
जलधर-रोध मुक्त जनु शशधर।

दोहा :— भ्रान्त, भीत कुरुदल सकल, बिरमेउ विजय-प्रलाप,
भयेउ न स्वल्पहु मंद पै, शान्तनु-सुवन प्रताप। ५८

अवलोकेउ पुनि बढ़त वीरवह,
तजे बाण सरि-सुवन भयावह।
लागे कछु क्षुर विशिख सपक्षा,
वर्म-अरक्षित श्रीहरि-वक्षा।
रक्त-सिक्त घनश्याम कलेवर,
आँपस-राग-रक्त जनु जलधर।
लखि अर्जुन-उर रोष प्रगाढ़ा,
भीषण बाण तूण ते काढ़ा।
कर्णोपान्त खर्पि, तकि त्यागा,
स्रवत शिरस्त्र, शीश शर लागा।

शोणित-परिसुत लखि सित कुतल,
व्याकुल फाल्गुन, सलिल दृगंचल।
नाना बाल्यस्मृति मन कर्षा,
व्यापृ मोह, गत समर-अमर्षा।
'धिक! धिक क्षात्र धर्म!' कहि निज मन,
लागे सहसा करन मृदुल रण।

दोहा:— उत ताडित शान्तनु-सुवन, भये अधिक विकराल,
अन्तराल धाये विशिख, मनहुँ फुफकरत व्याल। ५९

शिथिल पार्थ यदुनाथ निहारे,
हृदय क्रोध. दृगदल रतनारे।
तबहुँ सयमित रोप नरोत्तम,
हाँके नाना गतिन हयोत्तम।
केवल सारथि-कर्म सहारे,
सरित-सुवन-शर श्याम निवारे।
सारथि-रक्षित रथी निहारी,
छली सुयोधन, छिद्र-प्रहारी।
लै सँग म्लेच्छ अनी अति घोरा,
घेरेउ हरि-पार्थहि चहुँ ओरा।
अभिभावित लखि समर धनंजय,
पूर्ण पितामह-शत्रु-बलोदय।
प्रमुख चैद्य पाञ्चाल प्रचारी,
बधे सुभट चुनि, नाम उचारी।
भीत पलायित निखिल बरूथा,
सुनि केहरि-स्वर जनु मृग-यूथा।

दोहा.— धिकारत, टेरत जदपि, सत्य-शौर्य युयुधान,
टिकेउ न सरितसुत-शर-परिधि, पै एकहु धनुमान। ६०

सोरठा:—इत निज रथ पै भीर, स्वदल पलायित उत लखेउ,
यदुपति क्रोध-अधीर, कूदे सहसा त्यागि रथ।

गर्जन-कम्पित शूर अशेषा,
उठि गर्जेउ जनु क्षुब्ध मृगेशा।
तनु श्यामल जनु विमल सरोवर,
बाहु विशाल मृणाल मनोहर।
रोष दिनेश-रश्मि जनु पायी,
विकसेउ चक्र-कमल कर आयी।
विद्युत-सहस समर-महि द्योतित,
लोल अनल जनु ज्वलित मण्डलित।
निरखि क्षुरान्त-तीक्ष्ण दुर्दर्शन,
काल-दूत सम चक्र सुदर्शन।
भागे भीत म्लेच्छ अघ-राशी,
जनु लखि सहस रश्मि तमराशी।
विचलित सकल पलायित कुरुजन,
अचल एक रण शान्तनु नन्दन।
तिन दिशि रौद्र-वदन यदुरायी,
बढ़े क्रुद्ध पद धरणि कँपायी।

दोहा:— *विद्युत-द्युति पट पल्लवित, नीरद-द्युति तनु श्याम,*
भरित पितामह भक्ति रस, भाषेउ करत प्रणाम— ६१
'आवहु! आवहु! चक्रधर! व्यक्त विभो! भगवान!
बधहु स्वकर भव क्लेश-हर! देहु मुक्ति, यश-दान!" ६२

चकित, भीति इत पार्थ अधीरा,
तजि रथ धाय गहे यदुवीरा।
करि बल पुनि पुनि रोकन चाहा,
रुके न पै हरि, रोष अथाहा।
कर्षत पृथा-सुतहु निज साथा,
बढ़े भीष्म दिशि हठि यदुनाथा।
विकल विजय तव बाहु विहायी,
विनय-वाणि पद प्रणत सुनायी—
"छमहु! छमहु! मम मोह अशोभा,
रोकहु जग-क्षय-क्षम यह क्षोभा।

विनसहिं बरु पाण्डव रण माहीं,
उचित नाथ-प्रण-विलव नाहीं।
नव दिन प्रभु ! मोरेहि अपराधा,
हती पितामह सैन्य अबाधा।
प्रभु-पद शपथ करत प्रण घोरा,
करि हौं अब नित समर कठोरा।

दोहा :—*सकल निखिल अवसादि मैं, अरि-कुल नाथ-प्रसाद,*
विरमहु, रच्छहु मोर यश, निज वचनन-मर्याद।" ६३

लखि प्रिय सुहृद प्रणत निज चरणा,
विनय-द्रवित हरि-अन्त करणा।
शपथ सुनत पुनि उर आश्वासन,
गलित रोष, मन प्रीत जनार्दन।
निरखि निवर्तित उत भगवाना,
सरिसुत-वदन-कमल कुँभिलाना।
अमृत-पात्र अधर लगि लायी,
पियत गयेउ जनु विधि ढरकायी।
ज्वलित भीष्म-उर शोक-कृशानू,
दिशि पश्चिम अस्तोन्मुख भानू।
इत कुरुपति, उत धर्मनरेशा,
रोकेउ समर निरखि दिन शेषा।
विजयी कुरुजन जदपि आजु रण,
कुण्ठित कण्ठ, न कहुँ जय-निःस्वन।
हरि-भय नष्ट आत्म-विश्वासा,
रणहि शेष जनु गत जय आशा।

दोहा :—*गवने यहि विधि निज शिविर, कुरुजन साहस-हीन,*
धर्म नृपहु दिन वृत्त लखि, इत धृति-रहित, मलीन। ६४

सेनप अनुजन साथ नरेशा,

सरिसुत-शौर्य बरनि सोच्छ्वासा,
प्रकटी हरि प्रति हृदय-दुराशा।
क्षोभ वृकोदर-उर सुनि छावा,
उपचित कोप सभा प्रकटावा—
"गाय पितामह-यश नरनाथा,
बरनौं आजु कवनि नव गाथा?
समर-पूर्व निज दूत पठायी,
कथा सोइ कुरुपति कहवायी।
करि तब हम फाल्गुन-बल-वर्णन,
दीन्ह कुरुपतिहिं रण-आमंत्रण।
शोच्य न स्वल्पहु भीष्म-शुराई,
शोच्य समर अर्जुन-कदराई।
तजि प्रण कीन्ह चक्र हरि धारण,
सोइ यथार्थ धर्मज-दुख-कारण।

दोहा:— *रच्छत निज सारथ रथी, विश्रुत समर-विधान,*
रच्छे अर्जुन आजु रण, धारि चक्र भगवान। ६५

अब रिपु भीष्म, पितामह नाहीं,
द्रोणहु गुरु न, शत्रु रण माहीं।
गुरुजन-गौरव इन निज त्यागा,
हृदय न करुणा-कण, अनुरागा।
करत नित्य उठि रण ये निर्दय,
तदपि दुहुन प्रति सदय धनंजय।
उठत प्रहार हेतु नहिं हाथा,
छीजति वाहिनि नित्य अनाथा।
दै वसुधा, धन, धान्य-प्रलोभन,
जोरी सैन्य सहाय सुयोधन।
पै योद्धा जे यहि दल माहीं,
आयुध-जीवि, क्रीत कोउ नाहीं।
हरि, धर्मज-गुणगण अनुरागी,
युद्धत धर्म सनेहहि लागी।

रच्छत तिनहिं न अर्जुन करि रण,
रच्छत दुर्मति, शत्रु-क्रीत जन।

दोहा :—*हितू जो पर, कुरुजन स्वजन, तजहिं पार्थ संग्राम,*
त्यागि नृपहु सब रण-मही, गवनहिं निज निज धाम। ६६
कौरव-वध प्रणबद्ध मैं, भीषण मम उर रोष,
करिहौं एकाकी समर, मोहिं मम भुजन-भरोस।"६७

सुनि उत्तेजित द्रुपद-कुमारा,
सुभट शिखण्डी वचन उचारा—
"युद्धहिं अर्जुन अथवा नाहीं,
भीमहु समर त्यागि बरु जाहीं,
पै पाञ्चालि-पराभव-ज्वाला,
किये शान्त बिनु हम पाञ्चाला,
दीन्हे बिनु कौरव क्रव्यादन,
सकत न करि रण-प्राङ्गण-त्यागन।
पाण्डव जो राज्यहि-अभिलाषी,
सरस समर तजि त्याग उपासी।
मानहिं हित हम समर-प्रणेता,
हतिहैं शत्रु कि रहिहैं खेता।
जदपि पितामह विश्रुत बीरा,
निर्मित अस्थिहिं मांस शरीरा।
नयनन दिखत, अदृश्यहु नाहीं,
उड़त न व्योम, चलत महि माहीं।

दोहा :—*शस्त्र-छेद्य तनु, मर्त्य ते, कीन्ह न अमृत-पान,*
मूढ़ सदा अति-वृद्ध हित, गढ़त वितथ आख्यान। ६८

सोरठा :—*सत्य वचन यह मोर, लखिहौ रण-महि भ्रात तुम,*
करि मैं ही रण घोर, हतिहौं शान्तनु-सुत समर।"

वचन क्षुपित पाञ्चाल उचारे,
सभा ओर यदनाथ निहारे—

कहुँ न पूर्व सौहार्द विलोका,
क्रोधित कोउ, काहु उर शोका।
भाषी गिरा समय अनुकूला,
झरे विनोद-वचन जनु फूला—
"कहे अर्जुनहिं वचन वृकोदर,
रिस-रस-कटुक, रूक्ष प्रति अक्षर।
पै यह सहज अग्रजन-रीती,
मुख कटुता, अन्तस्तल प्रीती।
सहज यहहु अनुजन-व्यवहारा,
धरत सर्व अग्रज-शिर भारा।
जानत मैं पार्थहि-अपराधा,
हती पितामह सैन्य अबाधा।
त्यागहिं तदपि भीम उर-अनुशय,
नहिं उपचार-अभूमि धनंजय।

दोहा :—*तोषे त्रिपुर-अराति जेहि, करि सगर अविराम,*
लखिहैं भुजबल तासु अरि, काल्हि प्रात समाम। ६६

पै सुनि द्रुपद सुवन वर वचनन,
उपजेउ अन्यहि भाव मोर मन।
प्रकटि काल्हि निज भुज-बल-वैभव,
करहिं शिखण्डिहि भीष्म-पराभव।
भीम धनंजय दोउ प्रभाता,
रच्छहिं सजग द्रुपद-अँगजाता।
करन हेतु सरिसुत-सरंक्षण,
धावहिं जे द्रोणादि रथीगण,
रोकहिं अर्जुन करि रण घोरा,
सकहिं न बढ़ि द्रुपदात्मज ओरा।
शेप समस्त शूर-समुदायी,
करहि साथ रहि पार्थ-सहायी।
शाश्वत विजय वीर ते पावत,
कृत-निश्चय जे रण-महि आवत।

निरपेक्षित तनु करहु उग्र रण,
मृत्युहिं मानि मुक्ति, व्रण भूषण।

दोहा:— *युद्धहु रक्षित पार्थ सब, उर कार्पण्य विहाय,*
लहिहौ निश्चय तुम विजय, सरिसुत समर सोहाय।" ७०

सोरठा:—*भरित प्रीति-रस, ओज,युक्ति-युक्त सुनि हरि-गिरा,*
विकसित वदन-सरोज, नवस्फूर्ति प्रति वीर-उर।
गहे एक इक हाथ, प्रकटत पूर्व प्रतीति पथ,
लौटे भट, नरनाथ, सुख सोये निज निज शिविर।

विगत निशा, प्राची दिशि सत्वर,
उदित सहस्रकर दिवसेश्वर।
सज्जित हरि-शासन-अनुसारा,
व्यूह-बद्ध पाण्डव-दल सारा।
मस्तक रथी, अंग मातंगा,
उदर पदातिक, पंख तुरंगा।
नखर शिखण्डी, चञ्चु धनंजय,
बढ़ेउ गरुड़-दल रण-महि निर्भय।
अभिमुख भीष्म जनार्दन-प्रेरे,
उड़े श्वेत हय अर्जुन केरे।
प्रसरित कपि-ध्वज-प्रभा नभस्तल,
द्योतित जनु वड़वाग्नि उदधि-जल।
फहरत वात केतु, रव घोरा,
किलकत प्रेत मनहुँ चहुँ ओरा।
समर उछाह विजय-उर छावा,
देवदत्त धरि अधर बजावा।

दोहा:— *कम्पित सहसा वसुमती, भग्न मनहुँ व्योमान्त,*
सधि-बंध-दीर्णित दिशा, होत मनहुँ कल्पान्त। ७१

सोरठा:—*व्याप्त घोर आतंक, विकल वीर, वाहन सकल,*
द्रोणाचार्य सशंक भाषे कुरु[illegible] सन वचन-

"रण-विधि नृपति ! तुमहिं जो भायी,
सो कछु काल्हि भीष्म दरसायी।
आजु विलोकहु पूर्ण प्रदर्शन,
करत धनंजय आपु आक्रमण।
दुर्नय-तरु जो काल्हि लगावा,
सन्मुख लखहु तासु फल आवा !"
कहि जब लगि कछु सकहि सुयोधन,
कुरुदल धँसेउ धनंजय-स्यंदन।
घर्घर, किंकिणि-क्वाण कराला,
रथ जनु रिपु-क्षय-प्रण वाचाला।
सुदृढ़ मुष्टि-आकृष्ट-मौर्वि-रव,
भरि कौरव-दल व्यापेउ भैरव।
बरसी बाणावलि लय-कारी,
शूरवीर धृति धीरज-हारी।
भग्न व्यूह-मुख शर-संपाता,
शैल-माल जनु वज्राघाता।

दोहा :— *उमहि बही पाण्डव-अनी, मनहुँ महानद धार,*
दीर्ण अद्रि-अवरोध करि, प्रविशी पारावार। ७२

कौरव-अब्धि क्षुब्ध उद्वेलित,
प्रतिहत, फेनिल, कम्पित, तरलित।
पार्थ-शरासन-निःसृत सायक,
सकेउ न सहि एकहु कुरु-नायक।
प्रति पद भट शत समर विनासे,
सहित मनोरथ रिपु-रथ नासे।
विशिर मनुष्य, विपाद तुरंगा,
रथ बिनु चक्र, विशुण्ड मतंगा।
गिरे सशब्द लोह तनु त्राणा,
शैल-स्रस्त जनु शिला महाना।
कटि कटि गिरे हस्त, पद, अंगा,
महि जनु कोटर-स्रस्त विहंगा।

भागे पत्ति त्यागि निज प्रहरण,
गजारोहि तजि रण निज वारण।
कूदे रथ ते रथी विषादी,
त्यागि तुरगम भागे सादी।

दोहा:—*प्रहर पूर्व जे रण चढ़े, गर्जत जनु मृगराज,*
जर्जर अर्जुन-अशनिकृ, भागे भट तजि लाज। ७३

सोरठा:—*जरे अमित शर-आगि, परे अमित आहत मही,*
प्रमुख कछुक भट भागि, भीष्म द्रोण पाछे दुरे।

लै सँग सात्यकि प्रभृति धनुर्धर,
भयेउ शिखण्डी समर अग्रसर।
सकेउ न पै भीष्महिं समुहायी,
रोधेउ मार्ग द्रोण गुरु धायी।
तिन दिशि पार्थहिं बढ़त विलोकी,
बढ़ि गति आपु सरित-सुत रोकी।
कोमल वृत्ति तजी दोउ वीरन,
कीन्हेउ क्रुद्ध, रौद्र आयोधन।
हनि निज शर पुनि प्रतिशर वारत,
'सजग होहु'—कहि बहुरि प्रचारत।
प्रेषे सरुष भीष्म शर जेते,
किये विफल फाल्गुन हठि तेते।
तैसेहि एकहु अर्जुन-तीरा,
सकेउ परसि नहिं भीष्म-शरीरा।
निरखि निर्विवर घोर दुहुन रण,
प्रीत प्रशसत आपु जनार्दन—

दोहा:—*"अनुपम धनु-आधात यह, अनुपम शर-संधान,*
अनुपम लाघव लक्ष्य यह, अनुपम ये शित बाण।" ७४

सोरठा:—*निरखि भीष्म दुस्पर्श, वृद्ध तथापि अश्रान्त रण,*
सव्यसाचि सामर्थ, कीन्ह सकौशल छिन्न धनु।

लब्ध-संधि कौन्तेय घनेरे,
मर्म-विदारक मर्णिक प्रेरे।
रक्तोचित नख-शिख सरिनंदन,
स्रवत गेरु जनु शैल प्रस्रवण।
क्षुभित प्रपीड़ित पार्थ-प्रहारा,
धनुष अन्य सरिसुत कर धारा।
क्षिप्र-पाणि पुनि पार्थ सदापा,
काटेउ शर क्षुरप्र सोउ चापा।
लखि गुरु द्रोण सुहृद-अनुरागी,
बढ़े भीष्म-दिशि द्रौपद त्यागी।
धाय सक्रोध सुभद्रा-नंदन,
रोधेउ पथ द्रोण गुरु-स्यंदन।
धृष्टद्युम्न युयुधानहु धाये,
एकहु पग न बढ़न गुरु पाये।
पै अविचल इत शान्तनु-नंदन,
धारेउ हस्त तृतीय शरासन।

दोहा :— *तीव्र-विद्ध सिंधुर सदृश, रण-दुर्मद गाङ्गेय,*
ज्वलन-ज्वाल बरसेउ समर, मनुहुँ शैल आग्नेय। ७५

सोरठा:— *स्यंदन तबहिं बढ़ाय, मुक्त द्रोण-शर-पाश ते,*
सरि-नंदन समुहाय, बढेउ शिखण्डी क्रुद्ध रण।

गर्जत द्रौपद कर कोदण्डा,
बेधे सरिसुत शरन प्रचण्डा।
लखेउ न पै तेहि दिशि सरिनंदन,
धाये पुनि तकि अर्जुन-स्यंदन।
रोधेउ पथ बढ़ि द्रुपद-कुमारा,
वचन परुष शर बरसि उचारा—
अब लगि कीन्ह समर तुम हीना,
हते दिवस नव सैनिक दीना।
धर्म-युद्ध-नियमन स्वीकारी,
बधे सारथिहु तुम अविचारी।

विरहित वर्म जदपि हरि-गाता,
कीन्ह तिनहु पै तुम शर-पाता।
नहिं अधर्म जो मिलि सब योद्धा,
तुमहिं निपाति लेहिं प्रतिशोधा।
तदपि धरहु नहिं उर भय भीती,
तजिहै नहिं धर्मज-दल नीती।

दोहा:—एकाकी हतिहौं तुमहि, करि मैं ही रण घोर,
जात निदरि यहि भाँति मोहिं, कहाँ धनजय-ओर?"७६

सुनत देवव्रत द्रौपद-वचनन,
दृग सरक्त, वदन दुर्दर्शन।
उत्तर दर्प-विदीपित दीन्हा—
"दुर्मति! मोहिं न अब लगि चीन्हा।
पौरुष मम सर्वस ससारा,
गनत शत्रुता मैं उपहारा।
विग्रह मोहिं अनुग्रह लागत,
अरि-बाहुल्य भाग्य मम जागत।
रण आह्वान मोहिं वरदाना,
रिपु-दर्शन निधि-दर्शन माना।
शस्त्र-निपात प्रसून-प्रवर्षण,
व्रण आभरण रक्त अनुलेपन।
समर-महिहि रँग-महि जेहि लागी,
डरपावत तेहि काह अभागी!
सुरासुरहु सब जुरि इक साथा,
सकत हराय न मोहिं धनु-हाथा।

दोहा:—पै युद्धत नहि नारि सँग, ब्रह्मचर्य व्रत धारि,
तिनहु सग नहि रण करत, रहे पूर्व जे नारि। ७७
जन्म-वृत्त शठ! तोर अब, महितल सर्व प्रसिद्ध,
तव सँग रण-चर्चा कहा?—दरसहु मोहिं निषिद्ध!"७८

सोरठा:—अस कहि अर्जुन ओर, तीक्ष्ण विशिख प्रेरे बहुरि,
पार्थहु तजि शर घोर, काटेउ सोउ सकोप धनु।
क्रुद्ध द्रुपद-अँगजात, बरसे शर पुनि प्राण-हर,
वेधत सरिसुत-गात, भाषे मर्मस्पर्शि वच—

"जिये जदपि तुम अधम ! काल चिर,
रहे विमूढ़हि, पृथहि पलित शिर।
अमरोचित वर्तन, अनुभावा,
पै पर-सेवा जन्म बितावा।
कहत जगत सिंहासन त्यागी।
युद्धत पै निज उदरहि लागी।
पारुष्यहि पौरुष तुम जाना,
ब्रह्मचर्य नारी-अपमाना।
का अचरज निरखेउ निज नयनन,
कर्षत वधू-वसन दुःशासन !
रहेउ कहाँ तव दर्प तुम्हारा ?
बरसे अश्रुहि, नहिं शर-धारा !
कीन्ह न जेहि कुल-तिय-संरक्षण,
करत सो आजु पूर्व-तिय-रक्षण !
मुद्रित इत मिथ्या अभिमाना,
जीवन विडम्बना नहिं जाना।

दोहा:— बरनत गर्वित चित्त निशि, शिविर निवसि तुम धर्म,
प्रात समर-महि शस्त्र-धृत, रक्षत नित्य अधर्म। ७६
धिक मिथ्या माहात्म्य तव ! धिक गाथा परमार्थ !
ब्रह्मचर्य धिक ! त्याग धिक ! धिक भुजबल, पुरुषार्थ ! ८०

सोरठा:—बुझिहै प्राण-प्रदीप, निश्चय मम कर आजु तव,
मृत्यु-मुहूर्त समीप, लेहु निरखि जग भरि नयन।"

बाणहु ते शिततर सुनि वाणी,
मर्म-विद्ध सरितंदन ज्ञानी।

पूर्व आत्म-गौरव मन व्यापा,
सुमिरि वृत्त पाछिल उर काँपा।
सोचत—सत्यहि शत्रु-विडम्बन,
देह-वहन-मात्रहि अब जीवन।
अस्तंगत मम महिमा-भानू,
भस्म प्रताप-प्रभाव-कृशानू।
बरसि सुकृत-वारिद अब रीते,
सुयश-प्रदीप बुझे दिन बीते।
महा त्याग मम गौरव-धामा,
दास्यहि आजु तासु परिणामा।
कीन्ह काल-गति पुण्यहु पापा,
जीवन दीर्घ भयेउ अभिशापा!
श्रीहरि-हस्त मृत्यु मैं माँगी,
लही सोउ नहिं कालिह अभागी।

दोहा :—*पै परिचालत रथ अबहुँ, सन्मुख मम भगवान,*
तजिहौं निरखत हरि-वदन, पार्थ-शरन निज प्राण। ८१
धारेउ हस्त चतुर्थ धनु, मरण हृदय निज ठानि,
प्रेरे मृदु शर पार्थ प्रति, द्रुपद-सुतहिं अवमानि। ८२

सोरठा:—*याचत द्वैरथ-युद्ध, दग्ध अनादर-अग्नि उर,*
द्रुपद-नदनहु क्रुद्ध, बेधे पुनि सरिसुत शरन।
अगणित नद-नदि धार, महण महोदधि जिमि करत,
द्रौपद-शर अविकार, सहे सरित-सुत तिमि सकल।

पार्थहिं बहुरि प्रचारन लागी,
महाशक्ति सरित्संदन त्यागी।
हनि अर्जुन नाराच प्रचण्डा,
बीचहिं शक्ति कीन्हि शत खण्डा।
क्षुब्ध चढ़ाय बहुरि रथ अभिमुख,
हने अगण्य क्षुरप्र, शिलीमुख।
प्रावृट-घन किरीटि-धनु लागा,
पूर्ण बाण-जल भीष्म-तडागा।

आहत अश्व, भिन्न रथ-चाका,
मूर्च्छित सारथि, छिन्न पताका।
दीर्ण शिरस्त्र, व्यस्त शिर त्राणा,
शकलित देह, स्नस्त तनुत्राणा।
तिल-तिल विद्ध पितामह-गाता,
इन्द्रगोप-द्युति रक्तस्नाता।
सहि न सकत निर्वैर प्रहारा,
प्रकटत कीटहु कृपण विकारा,

दोहा:— *पै विरहित विद्वेष-विष, सरिसुत तेजोधाम,*
सहे पार्थ-द्रौपद विशिरव, निर्विकार, निष्काम। ८३
श्याम-नाम रसना जपत, ध्यानहु श्यामहि ध्येय,
श्याम-रूप-अमृत पियत, दृग मूँदे गाङ्गेय। ८४
'विरमहु! विरमहु'!-पार्थ प्रति, भाषेउ उत जगदीश,
रथ ते इत सरिसुत पतित, पूर्व दिशा कृत शीश। ८५

सोरठा:—*शित इषु-जाल अनल्प, रोम रोम प्रति विद्ध तनु,*
शौर्योचित शर-तल्प, लहेउ भीष्म अस्पृष्ट-महि।

विजय-वाद्य पाण्डव-दल बाजे,
सृञ्जय चैद्य शूर रण गाजे।
अभिनदत कोउ द्रुपद-कुमारा,
करत कोउ अर्जुन - जयकारा।
'हा! हा!' रव कौरव-दल घोरा,
क्रन्दन नभस्पर्शि चहुँ ओरा।
अश्रुत हर्ष-शोक यदुनंदन,
प्रेरेउ द्रुत सरिसुत दिशि स्यंदन।
विपद सधैर्य, समृद्धि अनुद्धत,
सर्वकाल यदुनाथ शील-रत।
सद्गुण-क्रीत, सुजन-अनुरागी,
उतरे भक्त-दयित रथ त्यागी।
लखे समीप सरित-सुत जायी,
रक्त-सिक्त, शर-शय्या-शायी।

गति वीरोचित निरखि पुलक तन,
झलके लोचन-नलिन अश्रु-कण।

दोहा :— *परसत मस्तक क्लेश-हर, शशि-कर शीतल हाथ,*
भाषे संजीवन वचन, उद्‌बोधत यदुनाथ— ८६

सोरठा.—*"निजाधीन अवसान, तात! जितेन्द्रिय, धैर्य-निधि,*
तजन चहत कस प्राण, रहत भानु दक्षिण अयन?
सुधा स्रावि सुनि बैन, पुलकेउ तनु शर-उन्मथित,
उघरे सरिसुत-नैन, इष्टदेव-दर्शन-विकल।

निरखत निज सन्मुख श्रीरंगा,
अम्बुज-वदन विलोचन-भृंगा।
आनँद-जल अन्तस्तल छलकेउ,
लोचन पूर, कपोलन ढरकेउ।
रहित ताप लहि अमृत राशी।
गिरा भक्तिरस-स्रावित भाषी—
"देव मुक्ति तुम जेहि भगवाना!
तेहि हित दोउ रवि-अयन समाना।
उर मम अन न आस अभिलाषा,
निधनहि सहज जियन आयासा।
दुर्विभाव्य पै नाथ-मनोगति,
समुझि सकत नहिं मनुज स्वल्प-मति।
गुनि मन रहेउ काज कछु शेषा,
करिहौं पालन प्रभु-आदेशा।
तुमहु करेहु मोहिं नाथ! न विस्मृत,
चित्त अतृप्त समागम-अमृत।

दोहा :— *दारुण भव-मरु-दग्ध ये, प्रेम-तृषातुर प्राण,*
प्रभु-दर्शन पाथेय बिनु, चहत न करन प्रयाण।' ८७

सोरठा —*आर्द्र हरिहु दृग-कोर, तोपि भक्त भाषे वचन—*
"लखहु तात! चहुँ ओर, दर्शनेच्छु दोउ दल सुभट।"

सुनत नयन सरिनंदन फेरे,
निरखे स्वजन शूर सब नेरे।
शोभित चहुँ दिशि पूरि रणाङ्गण,
मनहुँ प्रजापति घेरि अमरगण।
सँग सँग धर्म नरेश-सुयोधन,
जयद्रथ-पार्थ भीम-दुःशासन।
द्रोणाचार्यहु-द्रुपद नरेशा,
कृत-शैनेय शल्य-मत्स्येशा।
सँग-सँग धृष्टद्युम्न-द्रौणायन,
सौभद्रहु - दुःशासन - नंदन।
लक्ष्मण दुर्योधन-अँगजाता,
धर्मज-सुत प्रतिविंध्य सभ्राता।
औरहु सब भुज सन भुज जोरे,
विद्यमान शोकार्णव बोरे।
जन्मजात जनु बैर बिहायी,
विसब जुरेउ जीव समुदायी।

दोहा — *कहि सरिसुत स्वागत-गिरा, हरेउ शोक सन्मानि,*
भाषी कुरुपति दिशि निरखि, प्रीति-युक्त स्वर वाणि— ८८

सोरठा —*"निरवलम्ब मम शीश, विद्ध भाल शर-जाल नहिं,*
दै मोहि उचित उसीस, करहु सुस्थ शिर तात! मम!"

सुनत सुयोधन दास बोलाये,
शिविर लेन उपधान पठाये।
औरहु बहु सेनप, अवनीशा,
लावन चले निवेश उसीसा।
ताल वृन्त कोउ निजकर धारी,
धायेउ करन सप्रीति बयारी।
कोउ घनसार-चोद, कोउ चंदन,
चहत करन कोउ हिम लव-लेपन।
विहँसि पितामह सबहिं निवारा,
अर्जुन दिशि सस्नेह निहारा।

बोलि पार्थ, गुण शौर्य बखानी,
हरी पार्थ अन्तस्तल ग्लानी।
भापेउ पुनि फेरत कर शीशा—
"देहु तात ! मम योग्य उसीसा।"
सजल विलोचन सुनत धनंजय,
धारे तदपि शरासन शर त्रय।

दोहा :— *हने ललाट विशाठ खर, भेदि टिके महि जाय,*
निकसी आशिष भीष्म-मुख, सुख शीर्षासन पाय। ८६

मिलि पुनि दोउ धर्मज कुरुरायी,
परिखा तहँ चहुँ दिशि निर्मायी।
अरुण प्रतीची मुख तेहि काला,
लागेउ अथवत रवि बेताला।
किरण-जाल जनु जिह्वा लोलित,
महि लगि फैलि पियति रण-शोणित।
क्रम-क्रम निशा निशाचरि आयी,
केश-राशि महि नभ छिटकायी।
घन तम, शिवा-शब्द चहुँ ओरा,
भयी भयद रण-धरणी घोरा।
तब लगि सेवक-वृन्द प्रज्वलित,
लाये हेम-प्रदीप सुगंधित।
धरे साजि शरशय्या पासा,
दीपित्त सरित-सुवन तनु भासा।
जनु असंख्य तारावलि साथा,
शोभित अंतरिक्ष निशिनाथा।

दोहा :— *रक्षक अमित नियोजि, करि, प्रदक्षिणा त्रय बार,*
लौटे शिविरन शूर सब, नमित हृदय दुख-भार। ६०

सोरठा :— *लहि अवसर तेहि काल, पूर्व वृत्त सुमिरत क्षुभित,*
प्रणमेउ कर्ण विहाल, जाय पितामह-पद-कमल।

निर्मम, वैर-रहित सरिनंदन,
द्रवित निरखि नत-शिर वैकर्तन।
स्वल्पहु विनय विलोकत तोषा,
चिरस्थायि नहिं सज्जन-रोषा।
उदित पितामह-उर सद्भावा,
प्रवदि नेह नव वचन सुनावा—
"कीन्ह वत्स! मैं अगणित बारा,
सभा समर अपमान तुम्हारा।
कारण कछुक रहेउ तेहि माहीं,
कहिहौं अब राख कछु नाहीं।
गुनि मन तुमहिं पार्थ-प्रतियोधा,
रचेउ सुयोधन बधु-विरोधा।
नासन हेतु तासु उत्साहा,
वारण हेतु विप्रय गृह-दाहा।
करन हेतु निज कुल सरक्षण,
कहे तुमहिं मैं जब तब कुवचन।

दोहा:— *तेज-निधान, वदान्य तुम, शौर्य भुवन विख्यात,*
पौत्र कुरुपतिहि सम तुमहु, छमहु आजु मोहिं तात। ६१
विनवहुँ औरहु—सर्व हित, सुयोधनहि समुझाय,
अबहुँ वत्स! मम निधन सँग, देहु रणाग्नि बुझाय। ६२

अन्य रहस्यहु व्यास-बतावा,
चहत आजु मैं तुमहिं सुनावा।
उपजे तुम न सूत-कुल ताता!
तुम कानीन पृथा-अँगजाता।
धर्मस्मृति-विधान अनुसारा,
तुमहि ज्येष्ठ पुनि पाण्डु कुमारा।
जेहि महि हित कुरु पाण्डव रारी,
तुमही तासु विहित अधिकारी।
कुरुपति सँग तुम्हार दृढ नाता,
तजहु वैर गुनि पाण्डव भ्राता।

अनुमति जो तुम्हारि मैं पावहुँ,
धर्म-सुतहिं यह वृत्त सुनावहुँ।
धर्मज्ञ सदा धर्म-पथ-गामी,
करिहैं तुमहिं राज्य-धन-स्वामी।
सुयोधनहु लखि सुहृद-अभ्युदय,
लहिहैं तोप हृदय गुनि निज जय।

दोहा :—*रोकहु यहि विधि वत्स! यह, वीर-विनासी रारि;*
क्षत्र जाति रच्छहु निखिल, विनय मोरि स्वीकारि!"६३

सुनी कर्ण सरिनंदन-वाणी,
व्यापे विपुल भाव उर मानी।
लज्जित जन्म-वृत्त उल्लेखन,
लिखत नखाग्र धरणि नत-लोचन।
करत महीतल पुनि पुनि रेखा,
छेंकन चहत मनहुँ विधि-लेखा!
आयेउ क्षण समष्टि-हित ध्याना,
जागेउ अंत आत्म-सम्माना।
कृत निश्चय सरिसुतहिं निहारी,
वाणी दृढ़ स्वर कर्ण उचारी—
"वृत्त तात अविदित मोहिं नाहीं,
उपजति ग्लानि सुनत मन माहीं।
पै न जननि प्रति मम उर रोपा,
देत सदा मैं भाग्यहिं दोषा।
प्रकटत पूर्वहिं वृत्त जो सारा,
बाल्य काल मोहिं मिलत सहारा।

दोहा :—*करत न जग कहि सूत-सुत, प्रति पद मम अपमान,*
जीवन अमृत होत नहि, मम हित गरल समान। ६४

अधिरथ सूत रिच्छ मम प्राणा,
पोपेउ मोहिं निज सुवन समाना।

जानत कुन्तिहिं मैं न अभागी,
राधहि अब अम्बा मम लागी।
पाण्डु-सुतन सँग मोहिं न काजू,
अधिरथ सुतहिं भ्रात मम आजू।
सूत-सुता गृह-सौख्य-प्रदाता,
पुत्रहु सूतसुता-संजाता।
क्षत्रिय वंश जन्म मम दूषण,
सूत-समाज गनत मोहिं भूषण।
मम सर्वस्व सूत जग माहीं,
तजिहौं तिनहिं राज्य-हित नाहीं।
थमहि कि होय घोर संग्रामा,
मोहिं न क्षत्रिय कुल सन कामा।
कीन्ह सदा जिन मम अपकारा,
नहिं मम शिर तिन रच्छन भारा।

दोहा :—*प्रिय मोहि माण्डु ते अधिक, एक सुयोधन त्यागि,*
विनसहि कुल-मद-मत्त यह, क्षत्र जाति गृह-आगि। ६५

जन्म-वृत्तहू मम प्रकटाई,
करि न सकत तुम वंश-भलाई।
तजिहैं जो धर्मज अधिकारा,
करिहौं तेहि न आपु स्वीकारा।
मैं कुरुपति-सहचर, अनुगामी,
करिहौं तिनहिं निखिल महि स्वामी।
होइहै यहि विधि मम ऋण-शोधन,
रुकिहै पै नहिं यह आयोधन।
तुम शूरोचित शय्या-शायी,
देहु द्विजोचित वृत्ति विहायी।
नियम, विधान न राज्य-विधायक,
असि-धारहि अन्तिम निर्णायक!
करि दश दिवस घोर संग्रामा,
भये भुवन त्रय तुम यश-धामा।

मन प्रमुदित अब देहु निदेशा,
करहुँ महँ रण-सिन्धु प्रवेशा।

दोहा :—बाल-सुलभ चापल्य-वश, कही जो मैं कटु बानि,
छमहु दशा मम सुनि विषम, पौत्र-ससहु निज जानि।" ६६

सोरठा —धृति-सागर गाङ्गेय, भाषी शुभ आशिष गिरा,
बंदत पद राधेय, गवनेउ कुरुपति-शिविर दिशि।

शोक्ति उत निवेश दुर्योधन,
हस्त ललाट, निमीलित लोचन।
वदन दर्प बिनु, दृग-तल झाँई,
गलित अधर ताम्बूल-ललाई।
शिर किरीट, भुज अगद शिथिलित,
देह निशीथ-प्रसाधन-विरहित।
पार्थ-भीति व्याकुल नरनाथा,
सुमिरत कर्ण श्वास प्रति साथा।
राखि वयस्य-शीश सब भारा,
चहत जान रण सागर पारा।
चिन्तित सोचि द्रोण गुरु-वाणी,
सकत न मानी द्विज अवमानी।
प्रविशि ताहि क्षण नृपति-निवेशा,
दीन्हेउ शकुनि विषम सन्देशा—
"कोशलेश, त्रैगर्त सुशर्मा,
विंद अनुविन्द, शल्य, कृतवर्मा।

दोहा :—नृपति सुदक्षिण आदि जे, औरहु दल सेनानि,
अधिनायक द्रोणहिं चहत, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ भट जानि।" ६७

सोरठा—सुनि कुरुपति उर क्रोध, भयउ हृदय कछु बोध अब,
करत जे स्वजन-विरोध, गहन परत पर पद तिनहिं।

शोक, क्रोध, मोहान्ध भुआला,
प्रविशेउ शिविर कर्ण तेहि काला।

धाय सुहृद नृप हृदय लगावा,
दृग सवाष्प दुर्वृत्त सुनावा।
पै न कर्ण हर पूर्व विकारा,
भीष्म-समागम हृदय उदारा।
सोचत मन—अभिजन ये नायक,
करिहैं कस सूतहिं अधिनायक।
आनि वयस्य विवश, असहायी,
वाणी वर वसुषेण सुनायी—
"प्रीति-क्रीत मैं दास तुम्हारा,
मोहिं यथेष्ट चेष्टित सत्कारा।
वधित यदि रण अरि बल-गौरव,
करन - चहत वे उवि अकौरव।
उचित न नासय निज दल एका,
करहु सहर्ष द्रोण-अभिषेका।

दोहा :—गनिहौं निज शिर भार मैं, करिहौं द्रोण सहाय,
लखिहौ युद्धत प्रात तुम, मोहिं अराति समुदाय।" ६८

सुनि आनंदित, प्रीत सुयोधन,
थकत न करत सुहृद अभिनंदन।
उतरउ अर्जुन-ज्वर, भय बीता,
जनु राधेय अबहिं रण जीता।
कुटिल सौवलहु वचन सुनावा,
कलश हलाहल जनु ढरकावा—
"जूझे भीष्म जदपि सावेशा,
रहेउ समर सब बिनु उद्देशा।
करिहैं द्रोणहु युद्ध भयंकर,
वधिहैं तदपि न पाण्डव निजकर।
बात मम मत, तिनहिं रिझायी,
माँगहिं यह वर कुरुपति जायी—
अरि बहाय शर शर-सरित-प्रवाहा,
बंदी करहिं धर्म नरनाहा।

यहि विधि सहजहि शत्रु-पराभव,
सकत न त्यागि अग्रजहि पाण्डव।

दोहा :— करिहैं धर्मज मुक्त हम, तजिहैं जय अधिकार,
बसिहैं कानन जाय पुनि, निर्जित पाण्डु-कुमार।''६६

उदासीन सुनि राधा-नंदन,
मज्जित मोद-पयोधि सुयोधन।
नृप सेनप निज शिविर बोलाये,
गुरुहिं प्रशसत वचन सुनाये—
''वाहिनि मम जेते सेनानी,
सकल बुद्धि, बल, विक्रम-खानी।
पै आचार्य ज्येष्ठ सब माहीं,
शस्त्रधरहु कोउ तिन सम नाहीं।
सब शस्त्रास्त्र प्रयोग-समेतू,
जानत गुरु रण-वारिधि-सेतू।
धनुर्वेद क्षितितल साक्षाता,
अग्रगामि रण, वाहिनि-त्राता।
सुहृदन संतत अभय प्रदायक,
सर्व पूज्य, सहजहि अधिनायक।
देहिं जो अनुमति निखिल नरेशा,
करहुँ अबहिं अभिषिक्त द्विजेशा।''

दोहा :— गूँजेउ सुनतहि भरि शिविर, गुरुवर विजय-निनाद,
हर्षित सुभट, विनष्ट जनु, भीष्म-पतन-अवसाद। १००

सोरठा:—कीन्ह द्रोण अभिषेक, भक्तिमंत उर कुरुपतिहु,
बाजे वाद्य अनेक, कुरुक्षेत्र नादित निखिल।

द्विज-दुर्लभ पद द्रोणहु पावा,
सिद्ध-सिन्धु जनु जियत नहावा।
प्रिय न काहि पूजा सन्माना,
को न मुग्ध सुनि निज गुण गाना?

चरण प्रणत कुरुपतिहिं विलोकी,
कीन्ह विप्र उर लाय विशोकी।
अनवधि आनँद, धैर्य भुलाना,
माँगन कहेउ खलहिं वरदाना।
पाठ जो मातुल पूर्व रटावा,
शुक सम सोइ कुरुनाथ सुनावा।
विस्मित द्विजवर सुनि अभिलाषा,
पद-रहस्य हृत्पट सब भासा।
दै वर पै न सकत लौटायी,
गिरा सधृति आचार्य सुनायी।
"रहेउ तात! मम हृदय विचारा,
करिहौं रण निज मत अनुसारा।

दोहा:— *रच्छि स्वदल, हति शत्रु-दल, रहेउ विजय मम ध्येय,*
कृत-प्रण करिहौं यत्न पै, गहन हेतु कौन्तेय।"१०१

लब्ध-रंध्र सुनतहि गुरु-वाणी,
सौबल कुटिल युक्ति पुनि ठानी।
द्रोण-प्रतिज्ञा दृढ़वन हेतू,
पठये चर प्रति सैन्य-निकेतू।
दिशि-दिशि घोषित वृत्त करावा,
सुनि उल्लास निखिल दल छावा।
बाजे शंख असंख्य निवेशा,
सिंहनाद, जयनाद अशेषा।
उत धर्मज जब अर्जुन साथा,
हरि-मुख सुनत भीष्म-यश-गाथा।
लायेउ बंधन-वृत्त गुप्तचर,
अट्टहास सुनि कीन्ह वृकोदर—
"दै सरिसुत-आहुति दुर्योधन,
चहत रणाग्नि गुरुहिं अब होमन।
अछत भीम समराङ्गण माहीं,
सकत कि छुइ कोउ अग्रज-छाहीं।

दोहा :— *सकल कि परसि तुरंग-सुत, कबहुँ सिंह-सुत केश ,*
सकत कि बंदी मेरु करि, करहुँ काल भुजगेश !" १०२

कहि निष्फल कुरुनाथ प्रयासू ,
कीन्ह सव्यसाचिहु उपहासू ।
पै न उपेक्षेउ धूत्त वृष्णिपति ,
चिन्तित भाषे वचन पार्थ प्रति—
"जानत मैं, तुम रच्छत जाही ,
गहि नहिं सकत यमहु रण ताही ,
उपजत मन मम अन्यहि संशय ,
होइहै अब जन-क्षय, रण निर्दय ।
चापाचार्य द्रोण विख्याता ,
शास्त्रहु ते बढ़ि शस्त्र-ज्ञाता ।
यद्यपि विप्र, तपस्वी, ज्ञानी ,
नृप ते बढ़ि तेजस्वी, मानी ।
गहत त्यागि निज जे पर धर्मा ,
निर्मर्याद सदा तिन कर्मा ।
रहत सतत गुरु उर यह ध्याना ,
करहिं न कोउ कहि द्विज अवमाना ।

दोहा :— *समर-शौण्डता, क्रूरता, तासु अशुभ परिणाम ,*
लखिहौ प्रातहि निज दगन, तुम अभूत समाम !" १०३

सोरठा:— *करि यहिभाँति सचेत, बहुरि हृदय उत्साह भरि ,*
गवने कृपा-निकेत, निज निवेश लहि नृप-विदा ।

हरि कथनहि अनुहार प्रभाता ,
समर भयेउ वीर-भय-दाता ।
चाप, कमण्डलु वेदी अंकित ,
दिखेउ द्रोण ध्वज व्योम तरंगित ।
अपर्याप्त आपुहिं मुनि शापा ,
समर समुद्यत जनु धृत-चापा !

शास्त्र-विधान-विनिर्मित स्यंदन,
सज्जित नाना आयुध, प्रहरण।
सिन्धुज, शोण, सुवर्ण-सुकल्पित,
धावत हय जनु अनल प्रज्वलित।
शोभित प्रचालत आकाशा,
छत्र द्रोण-शिर जनु यश-हासा।
रक्षित नख शिख तनु बहु वेष्टन,
ताल-प्रमाण हस्त बाणासन।
यद्यपि वृद्ध, तरुण-बल-धारी,
प्रविशे दल भट प्रमुख प्रचारी।

दोहा:— चढे धर्मजहि लक्ष करि, ध्वंसत पाण्डव-व्यूह,
मर्दत दारुण बाण-बल, सर्व मार्ग-प्रत्यूह। १०४

सोरठा:—*चहेउ धनंजय धाव, रोधन जैसेहि द्रोण-पथ,*
लखे कर्ण समुदाय, आवत जंगम मेरु जनु।

लहि प्रतिभट चिर दिन पश्चाता,
शौर्य प्रवाह किरीटी-गाता।
फरकेउ कर गाण्डीव अधीरा,
निकसे बाण त्याग तूणीरा।
पै सहसा तेहि क्षण यदुनंदन,
प्रेरेउ धर्मराज दिशि स्यंदन।
निरखेउ पार्थ—समर करि घोरा,
बढ़त द्रोण गुरु अग्रज-ओरा।
बाण-विद्ध, मर्माहत, दीना,
धृष्टद्युम्न रथ सज्ञा-हीना।
सहित स्वर्ण कुण्डल, उष्णीषा,
गुरु शर छिन्न युगधर-शीशा।
कीन्ह सिंहसेनहु महि शायी,
बधेउ व्याघ्रदत्तहिं पुनि धायी।
विचरत द्विज जनु यम रण प्राङ्गण,
बरसत शर नहिं, मृत्यु शरासन।

दोहा :—*निहत चक्र-रक्षक निरखि, लखि गुरु-द्रोण समीप,*
बद्ध-कवच, सन्नद्ध रण, धृत-धनु धर्म महीप। १०५

पै आचार्य न अवसर दीन्हा,
हनि शर छिन्न धर्म धनु कीन्हा।
लीन्ह अवनिपति अन्य शरासन,
कीन्ह वेध-पटु द्विज सोउ भञ्जन।
लीन्ह युधिष्ठिर कर धनु जोई,
काटेउ सहठ द्रोण सोइ सोई।
पाय धर्म अवनीश निराश्रय,
गरजे द्रोण सदर्प दुराशय।
सिंह-निनाद रणाङ्गण व्यापा,
भीत भ्रान्त पाण्डव-दल काँपा।
उत्थित कुरुदल जय-रव, जल्पन,
बढे करन गुरु द्रोण पूर्ण प्रण।
तडकेउ ताही क्षण गाण्डीवा,
बरसी तहँ इषु धार असींवा।
गुरु-अग्रज-अभ्यतर माहीं,
व्याप्त पार्थ-शर, थल तिल नाहीं॥

दोहा :—*रोके कर्ण विराट उत, भीम, सात्यकिहु धाय,*
प्रजवित यदुपति वाजि निज, गये गुरुहि समुहाय। १०६

सोरठा—*विजय - बाण - उल्लास, छादित दिशि दश द्रोण-रथ,*
बद्ध मर्कटक पाश, विवश क्षुद्र जनु मक्षिका।
लज्जित गुरु रण घोर, कीन्ह क्रुद्ध निज शिष्य सँग,
एकहु पद नृप ओर, सके न धरि पै भरि दिवस।
कुरुपति क्षुब्ध उदास, रोकेउ रण दिवसान्त लखि,
निशि अधिनायक पास, गवनेउ सह सेनप सुहृद।

मद मनोरथ, गुरु मन माखे,
व्रीडित वचन नृपति सन भाखे—

"अर्जुन जदपि शिष्य मम ताता !
मोहिं ते यदि अब रण-निष्णाता।
रुद्र, इन्द्र वरुणादि रिझायी,
लहेउ विशेष अस्त्र-समुदायी।
कृती, तरुण, तेजस्वी, धीरा,
दिव्य चाप, अक्षय तूणीरा।
एकाकिहि कालहि भयदायी,
तेहि पै यदुपति तासु सहायी।
धावत मिलि जनु अनल प्रभंजन,
जारत कुरुदल मनहुँ शुष्क धन।
अचल विन्ध्य-हिमशैल समाना,
गरुड़-अरुण सम तेज निधाना।
अछत सव्यसाची-यदुनंदन,
संभव समर न धर्मज्ञ-बंधन।

दोहा :— *रण-हित पार्थ प्रचारि जो, अनत कोउ लै जाय,*
पलहि माहि गहिहौं नृपहिं, अरि-दल निखिल हराय।" १०७

सोरठा:—*सुनि निस्तब्ध समाज, गिरी सभा-महि गाज जनु;*
लखत जाहि कुरुराज, दृष्टि बरावत वीर सोइ!

निरखि तजेउ भटगण भट-धर्मा,
उठेउ सभा हठि सुभट सुशर्मा।
नृप त्रिगर्त, संशप्तक-स्वामी,
पार्थ पूर्व-बैरी रण-कामी।
शैल-निवासी, शैल-विशाला,
हिंगुल वदन, विलोचन ज्वाला।
बृहदाकर पट्ट उष्णीषा,
शाल विटप जनु हिमगिरि-शीशा।
रोमाञ्चित रस शौर्य शरीरा,
गिरा दुंदुभी-घोष गँभीरा—
"अर्जुन वीर-वंश-अवतंसा,
कीन्हि सत्य गुरु तासु प्रशंसा।

हमहु शूर पै शूरहि-जाये,
जूझन यहँ शूरहि सँग आये!
फिरत न वधत मृगहि मृगनाथा,
युद्धत समद द्विपेन्द्रहु साथा।

दोहा:—*गवनत जे सशस्त्र रण, सशस्त्रक धनुमान,*
अयुत रथी मम, प्रिय जिनहि, प्राणहु ते बढि आन। १०८

सोरठा.—*तिन सँग कुरुपति कार्य, करिहौं पार्थ प्रचारि रण,*
पूर्ण करहि आचार्य, इत निज प्रण गहि धर्म नृप।"
"साधु! साधु!"-कुरुराय, भाषेउ सुनि प्रस्थल-पतिहि,
गयेउ शिविर हर्षाय, करत मनोरथ मार्ग रात।

प्रात प्रबोध-माङ्गलिक-वाणी,
सुनि जागे भट, निशा सिरानी।
स्यंदन साजि अयुत सशस्त्रक,
निकसे तजि निवेश जनु अन्तक।
काया प्रांशु, समुन्नत कंधर,
पुष्ट प्रकोष्ठ, वक्ष-भुज पीवर।
धृत-कुश-चीर मौञ्जि कटि बाँधे,
कवच शरीर, शरासन काँधे।
पृथक पृथक कृत होम-विधाना,
दै धन, धान्य, धेनु, मणि दाना,
अग्निहिं साखी करि व्रत लीन्हा,
अर्जुन-निधन हेतु प्रण कीन्हा—
"वधिहैं पार्थ कि तजिहैं प्राणा,"
गवने दक्षिण दिशि प्रणवाना।
क्रान्त अयुत रथ धरणी काँपी,
दिनमणि मलिन, धूलि नभ व्यापी।

दोहा:—*अंतरिक्ष भरि शंख-स्वर, ज्या-रव, सिंह-निनाद,*
जाय प्रचारे पार्थ रण, कहत विविध दुर्वाद। १०९

सोरठा:—सुनतहि रोष अपार, प्रकटे विजय निवेश तजि,
प्रकटेउ कन्दर-द्वार, जनु मृगेन्द्र घन-नाद सुनि।

सारथि-वेष, सुसज्जित स्यंदन,
पहुँचे ताहि समय यदुनंदन।
कृत-वंदन अर्जुन अरि-द्वेरी,
भाषी गिरा गर्व रस प्रेरी—
"लखहु नाथ! ये रथि त्रिगर्तगण,
आये रण मिस मृत्यु निमंत्रण।
मृगयार्थी-ढिग मृग-समुदायी,
जुरेउ विपिन स्वेच्छा जनु आयी!
जानत मम प्रण तुम भगवाना!
करत न अस्वीकृत आह्वाना।"
भाषेउ सुनत प्रपञ्च-विधाता—
"दुरभिसंधि कछु यहि महँ ताता!
तुमहिं स्ववाहिनि से बिलगायी,
बाँधन चहत नृपहिं असहायी।
वीरोचित तुम्हारि यह टेकू,
उचित तदपि नहिं तजब विवेकू।

दोहा:—धर्मज-रक्षण भार जो, सकहु काहु शिर धारि,
तौ त्रिगर्त-आह्वान तुम, लेहु समुद स्वीकारि।" ११०

सोरठा:—सुनि पाञ्चाल कनिष्ठ, सत्यजितहिं सुमिरेउ विजय,
धारेउ वीर-वरिष्ठ, भार स्वशिर सन्मान गुनि।
धृष्टद्युम्न उत व्यूढ, रोपेउ रण गुरु द्रोण सँग,
इत स्यदन आरूढ, बढे त्रिगर्तन दिशि विजय।

सम महि अर्धचंद्र आकारा,
पार्थ शत्रु-रथ-व्यूह निहारा।
पुरुषाकार शरासन धारे,
दीक्षित-मृत्यु वीर वरियारे।

विजय-उरहु उत्साह-तरंगा,
शोणित उष्ण बहेउ प्रत्यंगा।
हेम-परिष्कृत, अशनि-निनादी,
वादेउ शंख सुरहु-अवसादी।
कर्पी कार्मुक-मौवि हठाता,
रव जनु वज्र-विन्ध्य-संघाता।
जड़ीभूत सशस्त्र-श्रंगा,
दग विविक्त, निस्तब्ध तुरंगा।
मूर्च्छा विगत विलक्षित योधा,
बढ़े उग्र संरब्ध, सक्रोधा।
घेरत अर्जुन रथ पै टूटे,
चाप अयुत शर लाखन छूटे।

दोहा :—*मँडरानी हरि-पार्थ पै, बाणावलि यहि भाँति,*
पुष्पित तरु पै जनु घिरी, मधु ऋतु भ्रमरन-पाँति। १११

सोरठाः—*आहत पार्थहु क्रुद्ध, रोधे अरि-शर प्रतिशरन,*
रोधति जलनिधि क्षुब्ध, अनायास जिमि तट-धरणि।

वारिद-पटल प्रकटि आकाशा,
भरति तड़ित जिमि भुवन प्रकाशा।
जगमग तिमि गाण्डीव-शरासन,
द्योतित विभा निखिल रण-प्राङ्गण।
क्षिप्र हस्त शर पै शर धावत,
ज्या-मिस मनहुँ धनुष यश गावत।
छादित दिशा प्रज्वलित बाणन,
दमकत मनहुँ कीटमणि अनगन।
समर घोर प्रवीर-विनाशन,
छिन्न उरश्छद, छत्र, शरासन।
हत हय सारथि, स्यंदन ध्वसा,
पतित रथी मुख करत प्रशसा।
भूपित मणि कुण्डल-उष्णीषा,
कटि कटि गिरे निगर्तन-शीशा।

मनहुँ चढ़ाय पार्थ शतपत्रन,
करत मगन रणचण्डी-पूजन।

दोहा :—*विचलित कछुक त्रिगर्त जब, कुरुपति ताही काल,*
पठयी नारायण अनी, हरि प्रदत्त विकराल। ११२

हरि-दिशि हरि-शिक्षित चतुरंगिणि,
बढ़ी उदधि दिशि मनहुँ तरंगिणि।
दीर्घ काल लहि शस्त्रन-शिक्षा,
देन चहत जनु आजु परीक्षा।
तृण समान गनि फाल्गुन-बाणा,
बढे गोप बरसत शर नाना।
बाण-वितान पार्थ-रथ छावा,
घिरि जनु दिवस नैश तम आवा।
सहित ध्वजा, अर्जुन, यदुनंदन,
बूडेउ शर-समुद्र जनु स्यंदन।
जानि जनार्दन-विजय-विनाशा,
अरि-दल जय-निनाद, उल्लासा।
बाजे शंख, मृदंग, नगारे,
उत्तरीय उन्मत्त उछारे।
इत प्रस्वेद-सिक्त सब गाता,
टेरेउ सखहिं श्रमित श्रम-त्राता।

दोहा :—*संधानेउ वायव्य शर, सव्यसाचि तत्काल,*
चक्रवात उपजेउ प्रबल, छिन्न शत्रु-शर-जाल। ११३
गुनि निज मन—सामान्य शर, गोप-वृन्द दुर्जेय,
अमजन्हित चिन्तित तजेउ, त्वाष्ट्र अस्त्र कौन्तेय। ११४

सोरठा—*प्रकट पार्थ यदुनाथ, अगणित सहसा रण-मही,*
जूझे एक इक साथ, बिनस मोहोपेत रिपु।

उत गुरु द्रोण-दर्प उद्दामा,
धन्वि प्रधान वधे संग्रामा।

हरि दृढ़सेन, क्षेम नृप-प्राणा,
हतेउ समर अतिरथि वसुदाना।
पुनि समुहाय मत्स्य नृप-भ्राता,
शतानीक रथ ध्वंसि निपाता।
निरखेउ बहुरि शिखण्डी-नन्दन,
चत्रदेव रोधत निज स्यन्दन।
क्षुद्र कीट सम सुभटहिं लेखी,
एकहि बाण वधेउ गुरु तेखी।
बढ़े धर्म दिशि गरजि द्विजेशा,
गज-यूथप दिशि मनहुँ मृगेशा।
आपु-नृपति बिच निरखि सत्यजित,
समरेच्छुक, शर-कार्मुक-सज्जित,
द्रोण अधीर, असह्य विरोधा,
चहेउ गहन नृप वधि सोउ योद्धा।

दोहा :—तजे शिला-शित शर अमित, विषम एक ते एक,
सत्य-पराक्रम सत्यजित, काटे सकल सटेक। ११५
निज विशिखन बेधे बहुरि, सारथि, ध्वजा, तुरग,
होत भग रथ द्रोण लखि, अँग-अँग रोप-नरग। ११६

सोरठा:—गुरु बल-कौशल-सींव, अर्धचन्द्र त्यागेउ प्रबल,
छिन्न सत्यजित-ग्रीव, गिरेउ वीर निर्जीव महि।

द्रोण - पराक्रम - पारावारा,
उमहेउ निर्मर्याद, अपारा।
सृञ्जय, चेदि, मत्स्य-समुदायी,
बहे बहित्र अवश, असहायी।
बूड़त धर्म भुआल-जहाजू,
समुझि विहाल हर्ष कुरुराजू।
तेहि क्षण गदा उद्यम वृकोदर,
धाये जनु सशृंग गिरि मन्दर।
रुकी द्रोण-गति जनु सरि-धारा,
रुद्ध, क्षुब्ध टकराय पहारा!

व्याघ्र भीति निर्भीक गुरुहु मन—
चहत गदा हनि यदु रथ भंजन।
धृत्ति आक्रमक तजि निज रक्षा,
कीन्हि विप्र तजि विशिख सपक्षा।
दीप्त शरन-बिच पाण्डव अविचल,
वलयित जनु विंध्याद्रि दवानल।

दोहा :—*सात्यकि, भीमद्रहु तबहिं, धृष्टद्युम्न सह धाय,*
घेरत गुरु-स्यंदन बढ़े, धर्मज, भीम-सहाय। ११७

सोरठा:—*अर्जुन-शंख-निनाद, परेउ श्रवण-पथ दूरि जनु,*
कुरुपति उर अवसाद, होत विफल लखि तीज दिवस।

निरखि धैर्य भगदत्त बँधावा,
गज निज धर्मज ओर बढ़ावा।
करि न सके जो द्रोणहु काजा,
बढ़ेउ करन कैवतेन-राजा!
शक्र समान नरेन्द्र धनुर्धर,
ऐरावत सम अंकुशादुर्धर—
शिर, श्रुति, नेत्र गण्ड मद-धारा,
स्रवत सप्तधा मनहुँ पहारा।
वेष्टन-रक्षित गज-प्रत्यंगा,
पद-रक्षक सहस्र भट संगा।
तोत्र-विताड़ित बढ़ेउ सरोषा,
फहरेउ केतन, घन्टा-घोषा।
पूरित इभ-मद-गंध समीरण,
भास्वर धरणी रत्न-आभरण
आवत लखि सिन्धुर सामर्षा,
पाण्डव-भटन कीन्हि शर-वर्षा।

दोहा —*चिनसे पद-रक्षक विपुल, विरमेउ पै न गजेन्द्र,*
रक्त-सिक्त जंगम मनहुँ, स्रवत गेरु शैलेन्द्र। ११८

लखि द्विरदस्थ दशार्ण-नरेशा,
प्रेरेउ निज द्विरदहिं सावेशा।
करि बृंहण अम्बुद-ध्वनि वारण,
भिरि कीन्हेउ इक-एक निवारण।
पुनि टकराने दोउ रण-दक्षा,
युद्धत जनु गिरि सद्रुम, सपक्षा।
शुण्ड भँवाय रोष-रस-राते,
धावत जनु प्रवात मदमाते।
लब्ध-योग भगदत्त-मतंगा,
भेदे रद दशार्ण-द्विप अंगा।
दीर्ण पार्श्व, चिग्घार महाना,
गिरेउ धरणि सिन्धुर निष्प्राणा।
चलितासन दशार्ण नरनाहा,
उछरि द्विरद जस त्यागन चाहा,
करि तोमर भगदत्त प्रहारा,
द्विरदस्थहिं अराति सहारा।

दोहा :—*अंकुश, पद-अंगुष्ठ पुनि, प्रेरेउ गज भगदत्त,*
धायेउ द्रुत युयुधान दिशि, द्विरद रौद्र, मदमत्त। ११६

गहि रथ निज कर सर्पाकारा,
कंदुक सदृश उठाय पँवारा।
निष्फल जानि शरासन बाणा,
रच्छे उछरि प्राण युयुधाना।
बहुरि प्रचारित शुण्ड भँवायी,
बढ़ेउ युयुत्सु-ओर गजरायी।
तजेउ ससंभ्रम रथ कुरुनंदन,
मर्दे गज हय, सारथि, स्यंदन।
भागी भीत चमू चहुँ ओरा,
बढ़ेउ भीम दिशि मदकल घोरा।
कीन्हें गदा प्रहार वृकोदर,

गहेउ प्रचण्ड शुण्ड निज वारण,
कीन्ह भीम पै निपुचि निवारण।
चढ़त भीम लखि रथ दन्तावल,
धायेउ गड़गड़ात रिस-विह्वल।

दोहा:— *निज दिश बढ़त निलोकि गज, मानहुँ चल गिरि-शृंग,*
रोके रुके न, रथ सहित, भागे भीत तुरंग। १२०

सोरठा:— *केतु युगान्त समान, अंतरिक्ष पथ ताहि क्षण,*
कपि-केतन लहरान, मूर्तिमंत जनु जय महा।

पाण्डव-दल प्रत्यागत प्राणा,
तकि भगदत्त चढे भगवाना।
पथ जेहि जहाँ चहेउ बिलमावा,
कुपित पार्थ यम-सदन पठावा।
पै अभीत भगदत्त महीपा,
प्रेरेउ द्विप यदुनाथ-प्रतीपा।
निरखि तृणीकृत पार्थ-शिलीमुख,
पहुँचेउ क्रुद्ध द्विरद हरि-सन्मुख।
सारथि-कर्म-कुशल यदुनंदन,
दक्षिण पार्श्व कीन्ह द्रुत स्यंदन।
पुनि सवेग निर्दय द्विप धावा,
हरि स्यंदन दिशि वाम हटावा।
लखि समुहान हरिहिं पुनि कुञ्जर,
हने धनंजय लक्ष्य-लक्ष्य शर।
हेम-परिच्छन्न वर्म विशाला,
गिरेउ तड़ित जनु तजि घन-माला।

दोहा:— *पैठेउ अर्जुन मर्म-विद, बहुरि कुंभ शर घोर,*
गिरेउ रदन-भर मरि द्विरद, रण-महि दारुण रोर। १२१

प्रेरि तोमर पै तबहुँ, प्रबल प्राच्य अवनीश,
करत विफल काटेउ विजय, अर्धचन्द्र शर शीश। १२२

उत ताही क्षण अश्वत्थामा,
हतेउ अनूप नृपति समामा।
बधि तत्र वृहत्क्षत्र सक्रोधा,
लीन्हेउ धृष्टद्युम्न प्रतिशोधा।
कुपित कर्ण सृञ्जय संहारे,
धनजयहु कर्णानुज मारे।
कृति-प्रतिकृति प्रतिपल रण घोरा,
गिरे हताहत भट चहुँ ओरा।
थमेउ जबहिं दिवसान्त महारण,
सहमे शूरहु लखि क्षय भीषण।
रक्तस्नात वाहिनी दोऊ,
अक्षत अंग वीर नहिं कोऊ।
पै न पूर्ण कुरुपति अभिलाषा,
गत गुरु-कौशल बल विश्वासा।
गुरुहु जात लखि सुयश उजागर,
यापी निखिल निशीथ प्रजागर।

दोहा :— *विज्ञोचित मर्याद तजि, रच्छेउ केवल मान,*
कीन्हेउ क्रुद्ध प्रभात उठि, चक्रव्यूह निर्माण। १२३

सोरठा — *जोरे पुनि कुरुराय, मालव, गोप, त्रिगर्त गण,*
हरि पार्थहि बिलगाय, गवने दक्षिण दिशि बहुरि।
पहुँची पाण्डव-सैन्य, इत रण-महि सनद्ध जय,
व्याप्त दुराशा दैन्य, दिखेउ न काहुहि पथ कतहुँ।

गदा-हस्त दुर्धर्ष वृकोदर,
हठि जब चहेउ धँसन अभ्यंतर,
सहसा रोकि अनुज निज टेकी,
भाषे धर्मज वचन विवेकी—
"सन्मुख रण करि भीषण जन-क्षय,
सके न गहि मोहिं द्रोण दिवस द्वय।
खीझि, विशेष व्यूह रचि आजू,
छल तें करन चहत द्विज काजू।

तजि यहि भाँति आर्य-मर्यादा,
करत न विह्न अज्ञ-अवसादा।
लहत राम तें जनु रण-शिक्षा,
लही द्रोण क्षत्रिय-क्षय-दीक्षा।
चक्रव्यूह यह रचेउ दुरभिभव,
दोउ प्रवेश-निकास असंभव।
तजि यदुपति, प्रद्युम्न, धनजय,
भेदि न सकत व्यूह कोउ दुर्जय।

दोहा :— *निष्फल बल आयुध सकल, व्यूह-ज्ञान जो नाहिं,*
मृत्यु पराजय दोइ मोहि, रण-महि आजु दिखाहिं।"१२४

सोरठा:— *व्याकुल धर्म-नरेन्द्र, तजि संताप न जनु सुहृद,*
लखि भाषे वीरेन्द्र, वचन सुभद्रा-सुत नृपहिं।

"वृथहि शोक-उद्विग्न तात-मन,
करि मैं सकत व्यूह-विध्वंसन।
शैशव जो पितु मोहि सिखावा,
व्यूह-प्रवेश-ज्ञान मैं पावा।
गवने तबहिं आपु सब कानन,
सकेउँ सीखि नहिं मैं विनिवर्तन।
मातुल जदपि अनुग्रह-राशी,
सिखयेउ स्वपुर न, नित्य-प्रवासी।
चहेउ जबहिं प्रद्युम्न सिखावन,
पहुँचे मत्स्य-पुरी तें धावन।
यहि विधि रहेउ ज्ञान मम आधा,
पै न व्यूह-भंजन महँ बाधा।
शत्रु-सैन्य नहिं दुर्ग-समाश्रित,
वाहन-मनुजन व्यूह विनिर्मित।
पारेंक लहि हम व्यूह प्रवेशा,
वधिहैं हय, गय, वीर अशेषा।

दोहा :— *निहत निखिल वाहन मनुज, व्यूहहि जब कहुँ नाहिं,*
रहिहै बाधा तब कवनि, प्रत्यावर्तन माहिं। १२५

दोहा :— *लखहु करत मैं पथ अबहिं, चक्रव्यूह करि भंग,*
करहिं अनुगमन मम रथी, पत्ति, गजेन्द्र, तुरंग।"१२६

मुदित जदपि सुनि धर्म नरेशा,
लखि वय सकुचे देत निदेशा।
द्विविधा-वश पितृव्य निहारी,
गिरा विहँसि पुनि कुँवर उचारी—
"दोष दिखात काह मोहिं माहीं,
देत निदेश तात ! जो नाहीं।
विकल विलोकि जो लघु वय मोरा,
विसरत कस मैं सिंह-किशोरा !
समुझत जो मोहिं निर्बल निज मन,
यह न न्याय विनु किये परीक्षण।
देत पितुहिं मम तुम नित सेवा,
कस विरक्ति यह मम प्रति देवा !
पितुहिं सदृश मैं भृत्य तुम्हारा,
तिन प्रति पक्षपात कस धारा ?
हरिण-हृदय कौरवदल सारा,
तेहि हित व्यर्थ सिंह-संभारा !

दोहा :— *सिन्धु सप्त वलयित मही, जनक दिग्विजय काज,*
जीतन देहु नगण्य मोहि, कुरुक्षेत्र-रण आज।"१२७

सोरठा :— *सुनि वात्सल्य-प्रवाह, प्रीत धर्मनंदन-हृदय,*
गद्गद स्वर नरनाह, आशिष दीन्हि निदेश सह।
लहि पितृव्य-प्रसाद, दीप्त सुभद्रा-सुत वदन,
विक्रम-रस उन्माद, फरके भुज, गर्जेउ धनुष।
चढ़ेउ कुमार प्रहृष्ट, सिंहनाद करि व्यूह-दिशि,
श्रीहरि - हस्त - विसृष्ट, दीप्त सुदर्शन चक्र जनु।

सैन्य-सहित भीमादि सुभट-गण,
कीन्हेउ शस्त्र-उद्यम अनुसरण।

फहरे केतन, घहरे स्यंदन,
कुण्ठित श्रवण दृग-श्रवण धूलि-स्वन।
प्रत्यासन्न सुभट-संघाता,
भीषण दोउ दिशि आयुध-पाता।
रोधी पाण्डव ध्वजिनि जयद्रथ,
सकेउ न पै अवरोधि कुँवर-रथ।
बरसी विषम विशिख-परिपाटी,
मृत गज वाजि पत्ति महि पाटी।
बाणाहत बहु रथि निष्प्राणा,
दीन्हेउ बहु पथ-सँग अँगदाना।
प्रमुख भटहु तजि समर पराने,
जीर्ण पर्ण जनु अनिल उड़ाने।
शोभित अरि-अनि मथत वीरनर,
अंबुधि-भँवर मनहुँ गिरि-मंदर।

दोहा:—*दुरवगाह मद सिन्धुरहु, सिंधुनाथ - चतुरंग,*
अछत द्रोण सौभद्र-शर, सैकत-गृह सम भंग। १२८

सोरठा:—*पै तजि जैसेहि द्वार, अंतरंग प्रविशेउ कुँवर,*
निरखेउ चक्राकार, व्यूह घोर कांतार जनु।
पत्ति विकट तरु-जाल, आयुध उत्कट कण्टकित,
रथ, गजाश्व गिरि-माल, प्रतिपद भट श्वापद प्रचुर।

बढ़त विलोकि कुँवर-रण-बंका,
जनु अरण्य मृगयाधि अशंका,
"धावहु ! गहहु !"—कोलाहल घोरा,
रथ-घर्घर ज्या-रव चहुँ ओरा।
दारुण विस्फारित धनु आनन,
झपटे जनु अगण्य पचानन।
शत शत नृपति सुतन रथ घेरी,
बाणावलि सहस्र सँग प्रेरी।
क्षुभित किरीटि सुतहु अरि हेरे,
काल कटाक्ष मैंहित शर प्रेरे।

अश्मक-नृपति गिरेउ खसि रथ ते,
जनु मृगयाथि-निहत शिखि तरु ते।
हतेउ वसातिहिं बहुरि सकौशल,
छिन्न शीश जनु पक्व ताल-फल।
पुनि द्विरथ क्राथ-सुत मारा,
वमत रक्त महि पतित जुझारा।

दोहा:—शल्यानुज हति, रुक्मरथ, शल्य-सुतहिं सहारि,
कीन्हु विद्ध शल्यहु शरन, स-सुख समर प्रचारि। १२९

सोरठा:—शत नरपति-सुत शीश, चुने सुमन सम पार्थ-सुत,
विक्षत शेष महीश, शुष्क वदन, प्रस्वेद तन।

निज दल दशा विलोकी लक्ष्मण,
दुर्योधन-नंदन, प्रिय दर्शन।
सुख-सवर्धित, अतिशय मानी,
बढ़ेउ पार्थ-सुत दिशि धनु-पाणी।
प्रेरित सुवन-सनेह सुयोधन,
धायेउ आप करन संरक्षण।
गवनत नृप अवलोकि लजाने,
भट-रण-विरत बहुरि समुहाने।
कृप, कृत, कर्णहु धाये विह्वल,
द्रोण, द्रौणि, अवन्तेश बृहद्बल।
घिरे घोर घनगण जनु श्रावण,
शर-झरि चहेउ कुँवर-रथ बोरन।
बरसे सौभद्रहु शर नाना,
वेगवत लय वात समाना।
प्रमथित भटगण बहुरि पराने,
छूँटि जनु वारिद-पटल उड़ाने।

दोहा.—पै न हटेउ लक्ष्मण हठी, कातर समुझि स्वपक्ष,
वेधेउ विशिख सपक्ष तजि, सव्यसाचि-सुत-वक्ष। १३०

सोरठा:—*पीडित धृष्ट प्रहार, रक्त वक्ष, आरक्त मुख,*
क्रोधित धरेउ कुमार, यम-किङ्कर सम शर धनुष।
जनु फुफकरत अहीश, छूटेउ धनु ते भल्ल शर,
छिन्न सकुण्डल शीश, शशि जनु तारक-युग सहित।
कुरुदल हाहाकार, बाढ़ेउ शख किरीटि सुत,
सुनि उत द्वार प्रहार, कीन्ह वृकोदर पुनि गरजि।

काँपेउ सुत वध निरखि सुयोधन,
जनु सहस्रधा हृदयस्फोटन।
सौभद्रहिं पुनि नृपति विलोका,
रोषावेग-शमित क्षण शोका।
सुनि पुनि द्वार वृकोदर-गर्जन,
भाषेउ सिन्धुपतिहिं दुर्योधन—
"रोधहु व्यूह द्वार तुम ताता।
लहहिं प्रवेश न पाण्डव भ्राता।
घेरि अन्य भट इत यह बालक,
बधहिं आततायी सुत-घालक।"
विनशत व्यूह-ध्येय निज जानी,
कही द्रोण गुरु नृप सन वाणी—
"एकहि चक्रव्यूह उद्देशा—
गहन चहत मैं धर्म नरेशा।"
करहिं सुभट सौभद्र-पराभव,
प्रविशन देहु व्यूह पै पाण्डव।

दोहा:— *सकिहैं पाण्डव एक नहि, पार्थ-पुत्र ढिग आय,*
व्यूह-ज्ञान विरहित नृपहि, गहिहौं मैं भरमाय।" ८३१

सोरठा—*सुनि अभिमन्यु वधेच्छु, सशयालु कुरुनाथ मन,*
द्विज यह शत्रु-हितच्छु, चाहत रच्छन शिष्य-सुत।

रिस-उच्छ्वास द्रोण जनु जारी,
साधिकार नृप गिरा उचारी—

"सक्त न शत्रु-शिशुहु जे जीती,
मोहिं न अब तिन वचन प्रतीती!
वृथा सर्व यह रण--समारा,
निर्विष अहि-हित जिमि फण-भारा।
अछत अगण्य रथी, नरनाथा,
निहत सुवन मम मनहुँ अनाथा।
हते बिना निज सुत हन्तारा,
अर्थ-हीन मम हित रण सारा।
करन जो चहत मोर प्रिय योद्धा,
लेहिं प्रथम मम सुत-प्रतिशोधा।
प्रविशन देहिं व्यूह तव अरि-गण,
गुरुहु सकहिं तो करहिं पूर्ण-प्रण।
जस लक्ष्मण मम आँखिन तारा,
तस पार्थहिं सौभद्र पियारा।

दोहा :— *पाण्डु, मत्स्य, यदु तिहुँ कुलन, प्रिय यह बाल समान,*
बधहु महारथि! मिलि सकल, लहहि न कहुँ निर्याण।" १३४

सोरठा:—*सुनी द्रोण नृप-वाणि, सही जानि सुत-शोकवश,*
शमत बहुरि उर ग्लानि, सन्मानेउ शासन विषम।
करत व्यूह विध्वंस, गवनेउ जेहि पथ पार्थ-सुत,
जयद्रथ पुनि सो अंश, पूरेउ रथीं गजाश्व भरि।
युद्धत इत निरुपाय, पाण्डव पथ-दर्शक-रहित,
उत सुभटन समुदाय, बढेउ किरीटि-कुमार दिशि।

आवत निरखे कुँवर वीरवह,
भरे क्रोध प्रतिशोध भयावह।
साहस-मात्रहि गनि निज सहचर,
धरे धनुष इषु प्रखर, प्राण हर।
दमके दीप्त शरन अरि-स्यंदन,
मनहुँ महीरुह निशि खद्योतन।
जिमि समुहाय पयोधि अथाहा,
विरमत सहसा सरित-प्रवाहा।

तिमि प्रतिहत आर्जुनि-भुज-विक्रम,
सहसा रुद्ध अरातिन-गतिक्रम।
पुनि कर-पाश शमन-अनुहारी,
रिपु-दल धँसेउ आपु धनुधारी।
प्रेषी बाण-अवलि यम-दूती,
विनसी अरि-शस्त्रास्त्र-विभूती।
भजेउ अरि-दल निखिल वीरवर,
भंजत नलिनि-जाल जिमि कुञ्जर,

दोहा :— *सादि, निषादि, पदाति, रथि, समर असंख्य सोवाय,*
बरसे शर जनु घोर घन, कुरु-प्रवीर समुदाय। १३३

हनि प्रचण्ड शर शैल-विदारक,
हतेउ प्रचारि वीर वृन्दारक।
पुनि कोशल-अधिराज बृहद्वल,
बधेउ सवर्म वेधि वक्षस्थल।
निरखि पलायित नृपति-कुमारा,
गुरुजन दिशि तब कुँवर निहारा।
संहारेउ कृत-सारथि - गाजी,
मारे सोमदत्त-रथ-वाजी।

भेदे कृपाचार्य रथ-चाका,
पातित भारद्वाज-पताका।
काटेउ भूरिश्रवा-शरासन,
मूच्छित छिन्न-देह दुःशासन।
विरथ द्रोण-सुत विचरत पाँयन,
आहत सौबल कीन्ह पलायन।
मर्माहत कुरुपति अँग अगा,
भागे लै रथ भीत तुरंगा।

दोहा :— *पहुँचि कर्ण ढिग पुनि कुँवर, प्रेरे कर्णिक बाण,*
कम्पित गिरि भूकम्प जनु, छिन्न देह तनु त्राण। १३४

सोरठा:— *पतित सारथी साश्व, गिरी ध्वस्त क्षितितल ध्वजा,*
हत सब रक्षक पार्श्व, विकल विरथ राधा सुवन।

सोरठा:— *निरखि द्रोण गुरु ओर, भाषेउ कर्ण विवर्ण मुख—*
"बालक यह अति घोर, घालक कौरव-दल निखिल।

जीते मैं रण अमित वीरवर,
लखेउँ न यहि सम अन्य धनुर्धर।
मर्मस्थल मम मथित शिलीमुख,
लखहि चश मैं अबहुँ रणोन्मुख।
गनत किरीटिहि मैं निज प्रतिभट,
पै यह बाल पितुहु ते उद्भट।
करत प्रभातहि ते संग्रामा,
निमिषहु लहेउ न यहि विश्रामा।
धनु-मण्डलहि सकल लखि लोचन,
दिखत न शर-संधान, विमोचन।
लखन न देत रिपुहिं निज रक्षन,
लखेहु करत पल महँ सरक्षण।
आपु सर्व अरि-छिद्रन-ज्ञाता,
विद्युत-वेग करत आघाता।
भट जेते यहि आजु सहारे,
मिलिहु न हम अब लगि रण मारे।

दोहा: — *करिहैं हम जो वेगि नहि, कछु उपाय आचार्य।*
तौ निश्चय शिशु शित शरन, सबन निधन अनिवार्य।" १३५

सोरठ:—*सुनि भाषी गुरु-वाणि, गलित गर्व वसुषेण लखि—*
"जब लगि धनु शिशु-पाणि, सकत न विष्णुहु याहि वधि।"

सुनि तजि पौरुष-पथ, यश, माना,
मन अधर्म वैरतंन ठाना।
अभय-वचन कहि भट लौटाये,
मिलि सब बहुरि कुँवर दिशि धाये।
युद्धत जेहि क्षण भरित उमगा,
शिशु असख्य प्रतपक्षिन संगा।

कर्ण पार्श्व ते दृष्टि निवारी,
काटेउ कार्मुक विशिख प्रहारी।
लखि भट अभय हनत नाराचा,
चढ़े नीच मिलि मनहुँ पिशाचा।
संयत, एकीभूत आक्रमण,
घेरेउ सिंह-शाव जनु द्विरदन।
कीन्हेउ कृपाचार्य ध्वज भंगा,
अश्वत्थामा हते तुरंगा।
कृतवर्मा सारथि संहारा,
मिलि पुनि शिशु-तनु कीन्ह प्रहारा।

दोहा :— *ताड़ित अगणित बाण पै, खसेउ न तनु ते त्राण,*
कूदे तजि सौभद्र रथ, क्रुद्ध खगेश समान। १२६

हस्त गृहीत चर्म-निस्त्रिंशा,
उमही अंग अंग प्रतिहिंसा।
मथेउ निखिल दल गर्जत घोरा,
चमकी असि-लेखा चहुँ ओरा।
जनु दिशि-दिशि घन-मण्डल-गामिनि,
दमकी व्यापि व्योम सौदामिनि।
पतित निहत पुनि शत्रु समाहित,
उष्ण रुधिर रण धरणि प्रवाहित।
प्रसे कुँवर भट समर-प्रवीणा,
जिमि सरि महामत्स्य लघु मीना।
विचलित लखेउ द्रोण दल सारा,
अस्त-प्राय पुनि रविहु निहारा।
प्रण-हित व्यग्र उग्र तजि बाणा,
काटेउ गुरु शिशु-हस्त कृपाणा।
चर्महु मणिमय तारक-मण्डित,
गिरेउ धरणि वसुपेण-द्विखण्डित।

दोहा :— *चढ़े बहुरि कायर सकल, जानि अरक्षित बाल,*
गहेउ कुँवर तत्क्षण कुपित, हस्त चक्र विकराल। १२७

दोहा :—कमल नयन, श्यामल वदन, काया शाल प्रमाण,
चक्रपाणि शोभित कुँवर, मनहुँ प्रकट भगवान। १३८

शोणित स्रवत सिक्त तनुत्राणा,
नख-शिख अरुण सुतनु परिधाना।
पुलकित सकल रोम जनु भासा,
भृकुटि कुटिल जनु यम अधिवासा।
दृगन अनल, श्वासोष्ण प्रवाहा,
धरणि प्रदीपित जनु दिग्दाहा।
दमकत दक्षिण हस्त रथाङ्गा,
समुदित मनहुँ प्रताप-पतङ्गा।
क्षुभित सवेग द्रोण दिशि धाये,
कुन्तल लहरि भाल लहराये।
द्रोणहु हृदय निरखि उद्वेगा,
अर्धचन्द्र सर तजे सवेगा।
धाये पितु रच्छक द्रौणायन,
वसुषेणहु, कृप, कृत एकायन।
दुःशासनहु लब्ध पुनि चेतन,
अन्य रथस्थ क्रुद्ध दुर्योधन।

दोहा :—बरसेउ शिशु पर शर सघन, घेरि मनहुँ यम-भृत्य,
गिरेउ चक्र महि छिन्न जनु, व्योम-स्रस्त आदित्य। १३९

सोरठाः—शर सर्वाङ्ग विपन्न, शल्लकि सम अति घोर तनु,
तबहुँ कुँवर अविषण्ण, गही हस्त गुर्वी गदा।

अश्वत्थामहिं सन्मुख पायी,
बढ़ेउ पार्थ-सुत गदा भँवायी।
लखि हृत्कम्पन, स्वेद निखिल तन,
रच्छे प्राण द्रौणि तजि स्यंदन।
दुःशासन-पुत्रहु वेहि काला,
धायेउ गहि कर गदा कराला।

चदन-चर्चित, हेम-विमण्डित,
उठीं गदा जनु मेरु महीभृत।
अरि-आघात निवारि कुमारा,
बढेउ आपु जस करन प्रहारा।
तीक्ष्ण विशिख पुनि कर्ण चलावा,
मर्माहत शिशु, दृग तम छावा।
गिरतहु सहठ गदा निज घोरा,
प्रेरी दुःशासन-सुत ओरा।
सकेउ न शत्रु प्रहार बरायी,
आहत सोउ संग महि-शायी।

दोहा :— *दुःशासन-सुत पुनि उटेउ, उठि नहिं सकेउ कुमार,*
कुलाङ्गार कीन्हेउ उटत, शिशु-शिर गदा प्रहार। १४०

सोरठा.—*बधेउ शिशुहि बहु शूर, मिलि एकाकि निरस्त्र करि,*
बधत व्याध जिमि क्रूर, घेरि अरण्य गजेन्द्र-सुत।
शान्त कुमार-कृशानु, अरि-गन निखिल जराय इत,
अस्त अरुण उत भानु, लखि अघ जनु लज्जित वदन।
कुन्दल विजय निनाद, विलखे पाण्डव वृत्त सुनि,
फिरे शिविर सविषाद, सींचत पथ दृग बाष्प-जल।

उत श्रीहरि अर्जुन यश-राशी,
संशप्तक गोपादि विनाशी।
अथवत रवि विलोकि, तजि स्यंदन,
कीन्ह समर-महि संध्या-वंदन।
गवनत बहुरि निवेश श्रान्त-तन,
सुनेउ अशान्त शत्रु-जय-निःस्वन।
पुनि कछु दूरि युयुत्सु विलोका,
धिक्कारत कुरुजनहिं सशोका—
"गहि अधर्म-पथ शिशु संहारी—
जय-रव करन चाह अविचारी!
क्षणिकहि यह तुम्हार उल्लासा,
काल्हि पार्थ-शर प्राण-विनाशा।

विष, जतु-गृह, तिय-केशाकर्षण,
चिर दिन सहेउ विजय, यदुनन्दन।
सहिहैं पल न पाप यह घोरा,
मिलिहै प्रातहि दण्ड कठोरा।

दोहा:— इन्द्र-वज्र, यम-दण्ड ते, सकत रच्छि वरु प्राण,
अर्जुन-धनु, हरि-चक्र ते, त्रिभुवन कतहुँ न त्राण।"१४१

सोरठा:—प्रविशे अर्जुन-कर्ण, शब्द भयकर बाण सम,
दृग जल, वदन विवर्ण, कम्पित अशुभ-विशंकि उर।

परेउ युयुत्सु न बहुरि लखायी,
गत रथ, धूलि-पटल पथ छायी।
पुनि अरि-अट्टहास, उपहासा,
व्यापेउ भरि दिगन्त आकाशा।
चितये पार्थ अधीर सखा-तन,
लखे यदुपतिहु खिन्न अन्यमन।
भरेउ हृदय,' धृति शेष सिरानी,
भाषी अश्रु विमिश्रित वाणी—
"नाथ! युयुत्सु-वचन विकराला,
सुनि मम तन, मन, प्राण विहाला।
को यह शिशु जेहि समर सँहारी,
हास-हुलास शत्रु-दल भारी।
सदा समर-अमग, अरि-गजन,
कुशल तौ तात! सुभद्रा-नदन?
हाँकहु रथ सवेग यदुरायी।
सुत-हित रहे प्राण अकुलायी।"

दोहा:—सुनि प्रेरे हरि क्रान्त हय, शिविर-प्रान्त नियरान,
निरखे दुहुन निवेश सर, निरानन्द निष्प्राण। १४२

शान्त महानक, तूर्य अस्तमित,
एकहु शिविर न जय-स्वर-मुखरित

चतुष्पथहु कहुँ सैनिक नाहीं,
विपणि-वर्त्म सब शून्य लखाहीं।
मगध-निवेश सकल श्री-हीना,
बाजत कहुँ न मुरज मधु वीणा।
शिवस्तवन श्रवणन-सुखदायी,
परत न काशि-निवेश सुनायी।
सृञ्जय-शिविर जहाँ नित चारण,
वरनत निशि रचि गीत दिवस-रण।
जुरत सूत बंदी जहँ नाना,
मूक आजु सब मनहुँ मसाना।
पाण्डव-शिविर लखेउ पुनि सन्मुख,
सिसकत द्वार भृत्यगण नत-मुख।
भ्रातन सहित सुभद्रा-नंदन,
कीन्ह न धाय आजु अभिनंदन।

दोहा :—प्रविशे स्यंदन द्वार तजि, शिविर पार्थ, यदुराय,
लखेउ निखिल नृप-कुल, विकल, शोक-मगन, मृतप्राय। १४३

वृद्ध द्रुपद गाम्भीर्य-निकेतन,
बिलखत सहित अमात्य, आप्तजन।
निशि जनु मुद्रित कमल विलोकी,
व्याकुल चंचरीक-कुल शोकी।
हत-पूर्वहि सब सुत संग्रामा,
गत-चेतन विराट धृति-धामा।
जलनिधि निरखि निमज्जित तरणी,
मूर्च्छित मनहुँ वणिक तट-धरणी।
दृग-जल-आर्द्र माद्रि-सुत विह्वल,
पतित पंक जनु रत्न समुज्ज्वल।
वाचा विरल, तप्त अभ्यंतर,
श्वसत भीम जनु भुजग भयंकर।
मूर्ति विषाद, निहत धृति-मति-गति,
लिखित मही जनु धर्म महीपति!

ग्लानि वदन, उर दाह अपारा,
'हा! सुत!'—अधर, दृगन जल-धारा।

दोहा :—अंतःपुर हू ते उठत, रहि रहि हाहाकार—
"हा! विधु-आनन! प्राण-धन! हा अभिमन्यु कुमार!" १४४

सोरठा:—*सके न शोक सँभारि, गिरे धरणि अर्जुन विकल,*
बाहु सवेग पसारि, भरेउ सुहृद हरि धृति-अवधि।

पोंछत उत्तरीय दृग-वारी,
शोक-हरनि हरि गिरा उचारी—
"सहजहि सुत-सनेह दुर्वारा,
तेहि पै मृदुल स्वभाव तुम्हारा।
उचित तथापि न करव विस्मरण।
वीर-कुलज तुम, यह समराङ्गण।
याचत सदा शूर यश-धामा,
शस्त्र-मृत्यु अभिमुख संग्रामा,
लही सो आजु सुभद्रा नंदन,
उचित कि तात! तासु हित क्रन्दन।
धृति-अभाव प्राकृतजन-लक्षण,
करत न यहि विधि विज्ञ आचरण।
होत प्रवात महीरुह-भंगा,
डिगत कि कबहुँ महीधर-शृंगा?
तुम सत्वस्थ भुवन-विख्याता,
सबहिं अभय-अवलम्ब-प्रदाता।

दोहा :—*होहु न मोह-विलास वश, उटहु छोभ तजि तात!*
करहु विशोकी ये सकल, विकल स्वजन, सुत, भ्रात!" १४५

सोरठा:—*झलकेउ गीता ज्ञान, कहत वचन भगवान-दृग,*
बोध, धैर्य, अवधान प्रविशे क्रमश: पार्थ-मन।

बहुरि प्रबोधि धर्म नरनाथा,
पूछेउ समर-वृत्त यदुनाथा।

बरनि सर्व दुःखान्त कहानी,
गद्गद कण्ठ कही नृप-वाणी—
"कीन्ह जो धर्म कुँवर एकाकी,
तात ! भुवन समता नहिं ताकी।
शब्दन सकत कथा को बरनी,
लिखित सो हताहतन रण-धरणी।
शेष न व्यूह, न गुरु-अभिमाना,
चक्रव्यूह-महि घोर मसाना।
अंत भात रण-नीति बिहायी,
बधेउ खलन मिलि शिशु असहायी।
ग्लानि तात ! मम हृदय महाना,
रच्छेउ वत्स मोहिं तजि प्राणा।
धिक पौरुष, रण-ज्ञान हमारा,
दीन्ह न स्वल्पहु शिशुहिं सहारा।

दोहा :—*रोधत पथ जो द्वार नहि, जयद्रथ सिन्धु-महीप,*
बुझत न असमय तात ! तौ, भारतवंश-प्रदीप। १४६

जस जस सुनी पार्थ सुत-गाथा,
तस तस गर्व-समुन्नत माथा।
नष्ट शोक, नख शिख रिस-आगी,
प्रतिहिंसा भीषण उर जागी।
दर्प-स्वेद सिञ्चित तनु सारा,
प्रणमत हरि-पद वचन उचारा—
"गुनि मन बान्धव-विग्रह यह रण,
कीन्ह नित्य मैं आत्म-संवरण।
निमिषहु द्वेष न मम उर जागा,
समर-महिहु अनुराग न त्यागा।
यत्न अनेक नाथ ! तुम कीन्हे,
निज इंगित उपदेशहु दीन्हे।
गहि कर चक्र प्रणहु निज तोरा,
निनसेउ तबहुँ मोह नहिं मोरा।

दै न सके जो तुम प्रभु! ज्ञाना,
दीन्ह सुवन करि निज बलिदाना।

दोहा :—*समुझेउ आजुहि तात! मैं, व्यर्थ जन्म-गत नात,*
सहज बधु नहि कोउ जगत, सुजनहि सुजनन-भ्रात। १४७

मिलि कि सरत अनुराग खलन ते,
सलिल अनल ते, आस उपल ते?
पापी कुरुजन भये अहेरी,
सुत मम बधेउ व्यूह-वन घेरी।
बिनु कान्हे खल-कुल-उन्मूलन,
लहि नहि सकत शांति अब मम मन।
सुत सँग जिन जिन कीन्ह अधर्मा,
बधिहौं समर क्रूर करि कर्मा।
रण साधारण काल्हि न ताता!
दण्ड हेतु यात्रा मम भ्राता।
व्यूह-द्वार अवरोधन हारा,
सैन्धव प्रमुख सुवन-हत्यारा।
जाय न जो तजि समर परायी,
आवहि जो न नाथ-शरनाई,
बधिहौं निश्चय ताहि काल्हि रण,
प्रभु-पद परसि करत प्रण भीषण।

दोहा :—*अवलोकत तेहि रण जियत, अथवहि काल्हि जो भानु,*
तजिहौं मैं हा प्राण निशि, प्रविश ज्वलत कृशानु!" १४८

अस कहि कर गाण्डीव उठावा,
अकस्मात हठि पार्थ चढ़ावा।
अभिभावित प्रण शब्द कठोरा,
गूँजेउ कुरुक्षेत्र रव घोरा।
सुयश-हास सम विशद सोहावा,
देवदत्त पुनि विजय बजावा।

सखा-ओज लखि मुदित हृदय, मन,
बादेउ पाञ्चजन्य यदुनंदन।
व्याप्त दशहु दिशि शब्द महाना,
जनु विक्षुब्ध शौर्य-निधि-ध्वाना।
सुप्त शोक-विष भट-समुदायी,
जागेउ जनु संजीवनि पायी।
हृत साहस-रस शोक अपारा;
जनु रवि-रश्मि नैश नीहारा।
शिविर शिविर प्रति बाजे तत्क्षण,
शंख, समर-वादित्र सदृशन।

दोहा :—*दमकी असि तजि कोष कहुँ, कहुँ प्रचण्ड ज्या नाद,*
उमहेउ प्रतिहिंसा उदधि, मज्जित शोक विषाद। १४६

सोरठा —*कुरुजन द्रोण-निवेश, करत मन्त्र जब प्रीत मन,*
अर्जुन - प्रण - सन्देश, दीन्ह दूत कौरव-पतिहि।
चिन्तातुर सुनि द्रोण, सिंधुनाथ अवसन्न तनु,
दुर्योधन-दृग शोण, भाषे वचन सदर्प नृप—

"प्रकटत सुभट समर निज भुजबल,
दुर्बल-बल संकल्पहि केवल।
जय जन कछु दुख देत विधाता,
करत सदा प्रभु पाण्डव भ्राता।
तोषत यहि विधि ये रनिवासू,
लहत धैर्य तिय, विरमत आँसू।
निरखि द्यूत-महि कठिन निबाहू,
किये भीम प्रण उत्थित-बाहू।
वर्ष त्रयोदश गत प्रण रीते,
समरहु दिवस त्रयोदश बीते।
भयेउ न अब लगि मम उरु भङ्गा,
अनहुँ रक्त दु:शासन-अङ्गा।
सुनि सुत-वध-ज्वर-जनित विकत्थन,
भीमहि सरिस उपेक्ष्य पार्थ प्रण।

एकाकी सैन्धव चतुरंगा,
करिहैं समर पार्थ-मद-भंगा।

दोहा — सहस पदातिम सादि-गण, दस सहस्र द्विरदेन्द्र,
सह रथिन सह सिंधुपति, रण-महि आयु महेन्द्र। १५०

सोरठा—*पूर्ण मोर उद्देश, सफल भयेउ सौभद्र-वध,*
करिहौं अनल प्रवेश, कालिह हगन निज शत्रु कर।

निरखि सुयोधन करत प्रलापा,
प्रकटेउ सिन्धुनाथ उर-तापा—
"मोहिं आपु निज पौरुष-ज्ञाना,
कौरव-बलहु सकल मैं जाना।
पै यहि विधि पाण्डव अवमानी,
मिथ्या निज माहात्म्य बखानी।
करि न सकत तुम निज कल्याणा,
दै न सकत काहुहिं अवधाना।
केवल मरण-प्रगल्भ नहिं पाण्डव,
प्रकट पराक्रम भीष्म-पराभव।
निज दल ते बिलगाय धनंजय,
कीन्ह आत्म-रक्षण तुम दिन द्वय।
यदुपति सहित पार्थ सोइ प्राता,
करिहै रण सुत-वध रिस-राता।
प्रिय मोहिं जदपि पलायन नाहीं,
धँसन न चहहुँ मृत्यु मुख माहीं।

दोहा :—*देहैं वचन जो द्रोण नहि, रच्छन हित मम प्राण,*
तौ रातिहि तजि रण-मही, करिहौं स्वपुर प्रयाण।" १

लखि राखत सब निज शिर भारा,
वचन धीर आचार्य उचारा—
"रचिहौं व्यूह प्रभात विशेषा,
लहिहै पार्थहु जहँ न प्रवेशा।

करि पूर्वार्ध शकट-आकारा,
रचिहौं तेहि महँ सैन्य अपारा।
पश्चिमार्ध पद्माकृति-अन्तर,
रचिहौं सूची-व्यूह भयंकर।
तासु मध्य पट अतिरथि-रक्षित,
रहिहौ तुम निज वाहिनि-परिवृत।
शकट व्यूह-मुख-रक्षण-भारा,
अजहीं ते मैं निज शिर धारा।
सकिहै जो रण मोहिं पछारी,
सकिहै जो मथि सेना सारी,
सकिहै जो अतिरथिन हरायी,
सकिहै सोइ तुमहिं नियरायी।

दोहा :— *यहि ते अधिक न करि सकत, संरक्षण मैं तात।*
तजहु हृदय-कार्पण्य तुम, वीर वंश-सजात।"१५२

सोरठा:—*सुनि त्यागेउ उर दैन्य, लज्जा नत-शिर सिन्धुपति,*
बाजे कौरव सैन्य, वाद्य ओज-वर्धक विपुल।

उत प्रवीण निज दूत पठायी,
रिपु-दल-वृत्त लहेउ यदुरायी।
दारुक सारथि भक्त, सुजाना,
बोलि वचन भाषे भगवाना—
"कालिह वधन-हित जयद्रथ दुर्जय,
कीन्ह महाप्रण क्रुद्ध धनंजय।
उत गुरु द्रोण, समस्त सुभटगण,
करिहैं रण सैन्धव-संरक्षण।
जानत तुम सुत, बान्धव, दारा,
प्रिय न मोहिं जस पार्थ पियारा।
कुन्ती-सुत विरहित जग माहीं,
निमिषहु जियन चहत मैं नाहीं।
विग्रह जो वसु-वसुधा लागी,
ताही हित मैं आयुध-त्यागी।

पार्थ-प्राण हित कालिह् पार रण,
लायेउ रथ प्रभात समराङ्गण।

दोहा :— सकिहैं जो नहि हति रिपुहि, पार्थ रहत दिन शेष,
करिहौं पूर्ण वयस्य-प्रण, वधि मैं सिन्धु-नरेश। १५३
बाजहि जेहि क्षण स्वरऋषभ, पाञ्चजन्य यह घोर,
हाँकेउ सुनतहि तात! तुम, रथ सवेग मम ओर। १५४

सोरठा:—स्वामी - प्रेम - पिपासु, सुनि गवनेउ दारुक मुदित,
इत पाण्डव-रनिवासु, प्रविशे करुणाकंद हरि।
लखीं सकलतिय दीन, धैर्य-विलीन मलीन तनु,
मनहुँ अमरतरु-हीन, निरानद नंदन विपिन।

सतत शोकिता कुन्ती माता,
निष्प्राणित जनु नव आघाता।
सहि भरि दिवस प्रवात-प्रहारा,
हत दिनान्त जनु लता तुषारा।
प्राकृत प्रमदा सम सुकुमारी,
मोचति द्रुपद-सुता दृग वारी।
पतित उत्तरा मूर्छित धरणी,
शर विष-दिग्ध विद्ध जनु हरिणी।
हाहाकार-गेह रनिवासू,
एक सुभद्रहि-दृगन न आँसू।
धीर गँभीर नारि नहिं रोयी,
उर शोकाब्धि, विलोचन दोई!
निरखि हरिहिं जनु सागर ज्वारा,
सहसा वहे वदन उद्गारा—
"अछत वृष्णिपति, चक्र सुदर्शन,
अछत पार्थ, गाण्डीव शरासन,

दोहा :— अछत वृकोदर-कर गदा, अद्रि-विदारिणि घोर,
अछत सिंह त्रय केहि हतेउ, रण-हरिणेश-किशोर! १५५

अन्तर्बाष्प भगिनि हरि जानी,
शमत शोक भाषी शुचि वाणी—
"तुम वीरजा, वीर-पति-गृहिणी,
वीर-जननि, वीरद्वय भगिनी।
कहँ यह गौरव ! कहँ यह मोहा !
शोक कि शुभे ! तुमहिं अस सोहा ?
करि अभिमन्यु जासु पय पाना,
भयेउ सर्व-विजयी धनुमाना,
तेहि न दैन्य दुख ते कछु काजू,
गर्वहिं उचित तासु उर आजू।
तजि अनित्य तनु तनय प्रवीरा,
अमर आजु लहि सुयश-शरीरा।
कीन्हे कुँवर कृतार्थ उभय कुल,
मम मन गर्व तासु मैं मातुल !
तुमहु कुलोचित धीरज धारी,
करहु विशोक वधू सुकुमारी।

दोहा—*शिशु-जीवन-कलिका दली, तजि विवेक जेहि आज,*
वरिहै अर्जुन शर-ज्वलन, कालिह सो राज-समाज।"१५६

सोरठा—*दीन्ह स्वसहिं आश्वास, बहुरि प्रबोधीं तिय सकल,*
तजि पाण्डव-रनिवास, गवने श्रीहरि निज शिविर।
तेहि निशि धर्म-नरेश, विकल बन्धु-कल्याण-हित,
लही न नींद निमेष, यापी यामिनि हरि-सुमिरि।

प्रात प्रसन्न-वदन यदुनंदन,
लाये द्वार साजि जय स्यंदन।
मोचत लोचन सलिल-प्रवाहा,
सौंपेउ अनुज हरिहिं नरनाहा—
"जानत तुम मम मन भगवाना !
अनुजन माहिं बसत मम-प्राणा।
गोय समर-महि एकहु भ्राता।
सकत न धारि प्राण मैं ताता !

दग्ध हृदय सुत-शोक-हुताशन,
तेहि पै वज्र-निपात पार्थ-प्रण।
गिरत कूप जो घट यदुनाथा!
तजत कि कोउ रज्जु तेहि साथा?
यह अनर्थमय प्रण मम लागी,
सकेउँ निवारि न तदपि अभागी।
तुमहि नाथ! अब रच्छन हारे,
सौंपत अर्जुन हाथ तुम्हारे।

दोहा :—कीन्हि जो मैं कछु पुण्य कृति, जप-तप जग यदुनाथ!
फलहि आजु सब पार्थ-हित, रच्छहि रहि रथ-साथ।"१५७

सुनि नृप-समाधान प्रभु कीन्हा,
आपु धनंजय धीरज दीन्हा।
पुनि संनद्ध, सवेग प्रवाहिनि,
चढ़ी रणोन्मुख पाण्डव-वाहिनि।
लखेउ समर-महि पहुँचि धनंजय,
द्रोण विनिर्मित व्यूह दुरत्यय।
जेहि जेहि ओर करत दृगपाता,
परत दृष्टि कुरुदल-संघाता।
जनु प्रति पल चतुरंग शस्त्र-धृत,
रही उगिलि महि, व्योमहु बरसत।
दर्प-विदीपित अर्जुन-आनन,
जनु मृग-यूथ निरखि पंचानन,
बोलि समीप वीर युयुधाना,
शौर्य प्रशंसि शिष्य सन्माना।
धरि शिर अग्रज-रक्षण-भारा,
लखि हरि दिशि कर धनुष सँभारा।

दोहा — हाँके हय हरि, धूल नभ, दीर्ण कर्ण ज्या-रोर,
लखि स-मुख गज-रुद्ध पथ, तजे पार्थ शर घोर। १५८

सोरठा —कौरव-दलहु सरोष, दुःशासन-प्रेरित बढ़ेउ,
घोर शस्त्र निर्घोष, गज-घंटा-बृंहण-निनद।

शान्त कछुक जस विषम विरावा,
कीन्हेउ दुर्मद द्विरदन धावा।
मनहुँ महार्णव क्षुब्ध प्रभंजन,
उत्थित तुङ्ग महोर्मि सहस्रन।
घेरेउ श्रीहरि-अर्जुन-स्यंदन,
जिमि नभ अरुण विरोचन घनगण।
तजे अभीत धनंजय बाणा,
प्रसरित रण रवि-किरण समाना।
हेम-पुङ्ख शर विद्ध मतङ्गा,
उल्का दीप्त मनहुँ गिरि-शृंगा।
गिरे निषादि सहित अम्बारी,
छिन्न-कवच, शोणित चङ्गारी।
छादित धरणि हताहत द्विरदन,
कटे कुंभ, कट, दन्त, निवेष्टन।
विपुल पलायित बाण-विहाला,
गड़गड़ात, चिग्घरत कराला।

दोहा :— *लखि दुःशासन दति हत, भग्न निखिल दल-व्यूह ;*
भागि द्रोण पाछे दुरेउ, भ्रान्त-चित्त, मद-च्यूह। १५६

सोरठा:—*क्रुद्ध हृदय आचार्य, रोधेउ पथ लखि रथ बढ़त,*
जानि समर अनिवार्य, धर अर्जुनहु शर धनुष।

दोउ अजेय श्रेष्ठ धनुमाना,
दुहुन दिव्य शस्त्रास्त्र-ज्ञाना।
दोउ प्रण-बद्ध, रोष दुहुँ घोरा,
मचेउ धरिक आयोधन घोरा।
द्विज-शर-विक्षत हरि हय प्रेरत,
अंतरिक्ष पुनि प्रतिक्षण हेरत।
बढ़त दिवसपति निरखि अधीरा,
भाषे सरोहि वचन यदुवीरा—
"बढ़ेउ तात! रवि-रथ नभ माहीं,
प्रविशे अजहुँ व्यूह तुम नाहीं।

उमड़त घेरत जदपि घोर घन,
विरमत व्योम न दिनपति-स्यंदन।
तैसेहि तुमहु करत संग्रामा,
बढ़त चलहु प्रति पल अविरामा।
केतनहु होय रोष उर माहीं,
बधिही गुरुहिं स्वकर तुम नाहीं।

दोहा :— बिनु बध द्रोणहि तात ! तुम, सकत न समर हराय,
ताते अनुमति देहु मोहि, बढ़िहौं गुरुहि बराय।"१६०

अस भाषत तत्क्षण यदुनंदन,
हाँकेउ मण्डल-गति निज स्यंदन।
करत मनहुँ गुरु द्रोण-प्रदक्षिण,
क्रम क्रम तदपि बढ़े दिशि दक्षिण।
सचकित द्रोण भेद जब जाना,
त्यागे व्यंग वचन सह बाणा—
"रही तुम्हारि पार्थ! जग ख्याती,
तजत न रण अविजित-आराती।
लहेउ अयश तजि समर जनार्दन,
करत तुमहुँ रणछोड़-अनुकरण।"
सुनि कीन्हेउ अर्जुन प्रतिभाषण—
"सतत अनुकरण-योग्य महत जन।
पुनि गुरु सन्मुख तजि संग्रामा,
शिष्यहिं काह लाज ते कामा?
चहत करन जो शिष्य-परीक्षण,
राखहु अन्यहि दिवस कतहुँ रण!"

दोहा — असकहि गुरु-पद बाण तजि, अर्जुन कीन्ह प्रणाम,
मुदित युगान्त-प्रवात-गति, रथ हाँकेउ घनश्याम। १६१

सोरठा:—शकट व्यूह विनिवेश, कीन्हेउ जैसेहि पार्थ हरि,
सादि समूह अशेष, उमहेउ पारावार सम।

मद्र, यवन, काम्बोज, उशीनर,
शक, अम्नष्ठ, वसाति वीरवर।
प्रास, कुन्त-धृत अश्वारूढ़ा,
बढ़े युद्ध-दुर्मद सब व्यूढ़ा।
सके न पै हरि-रथ नियरायी,
बरसे अर्जुन शर-समुदायी।
महि, नभ, दिशि, विदिशा दुर्दर्शन,
एकीभूत सर्व शर-वर्षण।
विशिख-जाल-विक्षत अँग-अंगा,
गिरे विचेतन श्वेत तुरंगा।
पावस ऋतु हिमशैल मराला,
पतित मही जनु वृष्टि-विहाला।
गान्धारज, बाह्लीकज, सिंधुज,
आरट्टज, पारस्य, वनायुज।
बहु देशज हय रण महि आहत,
जिह्वा-ग्रस्त सकष्ट कराहत।

दोहा :— *सस्वर अश्वारोहि-शिर, गिरे छिन्न चहुँ ओर,*
पक्व ताल फल जनु झरत, झंझानिल झकझोर। १६९

दाहत सादि अश्व शर-ज्वाला,
वधेउ पार्थ अम्नष्ठ भुआला।
निरखि बढ़त पुनि हस्त शस्त्रधर,
शूर श्रेष्ठ काम्बोज-अधीश्वर,
हनेउ सुतीक्ष्ण विशिख वक्षस्थल,
गिरेउ सुदक्षिण विद्ध धरणितल।
भ्रष्ट किरीट, नष्ट तनुत्राणा,
कीर्ण आभरण भट निष्प्राणा।
जिमि समुदाय जलधि इक धारा,
सकति न लौटि बहुरि सरि धारा।
तिमि अर्जुन-रथ जो समुहाना,
मज्जित शौर्य सिन्धु अवसाना।

भग्न अनी, जनु वात-विघाता,
छिन्न-भिन्न नभ वारिदव्राता।
तीव्र, कशा हुंकार, शरासन—
प्रेरत अश्व तजेउ रण रिपुगण।

दोहा :— *धायेउ हरि-स्यंदन बहुरि, शकट व्यूह करि पार,*
सन्मुख कृतवर्महि लखेउ, पद्म व्यूह-रखवार। १६३

धायेउ कृत संनद्ध रणाङ्गण,
मद-श्री-शोभित जनु ऐरावण।
साहस-शील, समर-अनुरागी,
कीन्ह क्रूर रण कुरुपति लागी।
लखि विलम्ब भाषेउ यदुरायी—
"रहे तात! तुम शत्रु खेलायी।
हृदिक-सुतहिं सबंधि विचारी,
कोमल वृत्ति बहुरि उर धारी।
प्रिय मोहिं येहू जिमि युयुधाना,
पै न समर महि नेहस्थाना।
आहुति लहत अनल गृह माहीं,
पूजत तेहि मसान कोउ नाहीं!
गुनि मन जयद्रथ-सम कृतवर्मा,
करहु विक्रमोचित रण-कर्मा।"
सुनि अर्जुन निज पौरुष साँचा,
प्रकटेउ धारि धनुष नाराचा।

दोहा :— *भग्न ध्वजा, सूताश्व हत, विद्ध वक्ष, भुज भाल,*
पतित विमूर्च्छित भोजपति, स्यंदन व्यथा-विहाल। १६४

सोरठा.—*हाँकेउ रथ श्रीरंग, लहि पथ गवने दूरि कछु,*
सहसा लखे तुरंग, श्रान्त, पिपासु, शरार्त-तनु।

यदुपति जस स्यंदन विरमावा,
वाञ्छित अवसर कुरुपति पावा।

गवनेउ द्रोण समीप सछोभा,
कहेउ वचन अविवेकि अशोभा—
"मथि मम मह चमू, करि जन-क्षय,
प्रविशेउ सरसिज व्यूह धनजय।
नृप अम्बष्ठ पठै यम-धामा,
हति काम्बोज-पतिहिं संग्रामा।
करि अवपाशित कृत शर-पाशा,
पहुँचन चहत सिन्धुपति पासा।
तुम विश्वास-घात अति कीन्हा,
प्रविशन व्यूह धनजय दीन्हा।
लहत वृत्ति तुम, निवसत मम घर,
मम विप्रिय-रत रहत निरंतर।
मधु-प्रदिग्ध छुर सम तुम भीषण,
छलत मोहिं करि नूतन नित प्रण।

दोहा :— *देत राज-आदेश मैं, तजि यह थल यहि काल,*
गवनहु सूची व्यूह तुम, रच्छहु सिन्धु भुआल।" १६५

सोरठा:—*शीर्ण द्रोण गुरु नैन, सुनि पावक मानी हृदय,*
भाषे दारुण बैन, भरित अवज्ञा शब्द प्रति—

"तुम कुबुद्धि, स्वच्छंद, प्रवादी,
दुराग्रही, सुहृदन-अवसादी।
आग्रह तुम सरिसुत-सँग कीन्हा,
पठै अकाल काल-मुख दीन्हा।
काल्हि नृपत्व मोहिं दरसाया,
घेरि अबोध बाल वधवाया।
यदि हठ तुम पार्थहिं उकसावत,
परि विपत्ति कटु वचन सुनावत।
युद्धत मैं निज शक्ति-प्रमाणा,
करत तदपि तुम, मम अपमाना।
भरत पुरातन रण-व्रण नाहीं,
होन नवीन नित्य तनु माहीं।

आजहु कीन्ह समर मैं घोरा,
क्षत विशिखन तिल-तिल तनु मोरा।
पै प्रवीण सारथि यदुरायी,
धँसे व्यूह मम बाण बरायी।

दोहा :— रोके मैं यहि थल निखिल, पाण्डव अनी अजेय,
रोकहि उत मिलि षट रथी, एकाकी कौन्तेय। १६६

कहाँ आजु वल्लभ वैकर्तन?
करत न कस सैन्धव संरक्षण?
शिष्यन मैं लहि वृत्ति पढ़ावा,
सेति तुम्हार अन्न नहिं खावा।
मद गोष्ठी, पैशुन्य विहायी,
करत काह सूतज सेवकाई?
जेहि तुम दीन्ह अंग-महि राजू,
पठवत तेहि न समर कस आजू?
नृप तुम निवसत जब सिंहासन,
समर-मही अधिनायक-शासन!
देत निदेश तुमहिं मैं यहि क्षण,
जाहु, धनंजय साथ करहु रण!
देहीं तजि पद पहुँचि निवेशा,
पालहु रण-महि मोर निदेशा।
मिथ्या द्यूत तुमहिं तब भावा,
अब रण-द्यूत देखि भय छावा।

दोहा :— द्विरद-दन्त पाँसा तबहि, अब पाँसा शित बाण,
बसु-वसुधा बाजी तबहि, अब बाजी तन-प्राण। १६७
तव हित मैं नत दन्ति सम, कीन्ह स्वतनु सोपान,
युद्धहु अब आपुहि स्वहित, मोहि असह्य अपमान।"१६८

लखि गुरु रौद्र रूप नृप काँपा,
क्रम क्रम आत्म-ज्ञान मन व्यापा।

जानि हठी द्विज वचनन-तत्पर,
भयेउ दीन नृप विगत दर्प-ज्वर।
एकहि भाँति होत वश गुरुजन,
तजि विवाद पद आत्म-समर्पण।
गहे चरण नृप दंभ-प्रवीणा,
भाषत वचन कंठ-स्वर क्षीणा—
"अरि-विक्रान्त, भ्रान्त मन मोरा,
छमहु कहे जो वचन कठोरा।
सके रोकि आपुहि नहिं जाही,
सकिहौं जीति न मैं रण ताही।
तदपि शीश धरि वचन तुम्हारा,
मरणहु रण मोहिं अंगीकारा।
लहि तुम्हार अगुलि-निर्देशा,
ज्वलित अनल करि सकहुँ प्रवेशा!"

दोहा :— *अस कहि समरोद्यत चढेउ, कुरुपति कपट-सयान,*
उपजी करुणा द्विज-हृदय, बिनसेउ रोष महान। ९६

सोरठा:—*निज ढिग बहुरि बोलाय, रण स्फूर्ति भरि, शोक हरि,*
पठयेउ अँग पहिराय, सर्व-अस्त्र-वारण कवच।
हृदय समर-उत्साह, दिव्य कवच-माहात्म्य सुनि,
कीन्ह गमन नरनाह, अर्जुन-प्रतिभट आपु गुनि।

पाञ्चजन्य-रव ताही काला,
भयेउ भुवन-व्यापी विकराला।
सुनि उत धर्मज-मुख कुँभिलाना,
उर आतंक, शुष्क जनु प्राणा।
धैर्याब्धि हु उर धैर्य विहायी,
बोलेउ नृप युयुधान बोलायी—
"निरखहु उठत व्यूह प्रलयंकर,
मृत्यु-जिह्व शस्त्रास्त्र भयंकर।
उड़त बाण नभ मनहुँ विषानन,
रामनहिं परत मनहुँ रण-क्रीड़न।

पाञ्चजन्य यदुराज बजावत,
देवदत्त-स्वर श्रुति नहिं आवत।
बादि अनुज बिनु विभव, राज्य, जय,
बादि जियन मम बिना धनंजय।
व्यूह विपत्ति-ग्रस्त मम भ्राता,
लावहु जाय वृत्त तुम ताता!"

दोहा :— *सुनि नृप-रक्षा-भार शिर, सकुचे मन युयुधान,*
सुनी न एकहु पै नृपति, विधुर धनंजय-ध्यान। १७०

बढ़ेउ व्यूह दिशि शिनि-सुत योद्धा,
कीन्ह न द्रोण गुरुहु प्रतिरोधा।
आगे लीन्ह सैन्य जब घेरी,
दृष्टि द्रोण धर्मज-दिशि फेरी।
नृपहिं अरक्षित रण-महँ पावा,
विद्युत-वेग कीन्ह गुरु धावा।
बढ़ेउ निरखि शिशुपाल कुमारा,
धृष्टकेतु अतिरथी जुझारा।
पै गुरु शस्त्र ढाँपि तेहि दीन्हा,
तूणहिं निखिल रिक्त जनु कीन्हा।
पल महँ हरे चेदिपति प्राणा,
कवचहिं भयेउ मृतक-परिधाना।
पुनि मगधपति सहदेवहिं पावा,
बधेउ मृगेश मनहुँ मृग-शावा।
बहुरि वीर पाञ्चाल प्रचारे,
पञ्च द्रुपद-सुत द्रोण सँहारे।

दोहा :— *बधु-निधन लखि निज दृगन, धृष्टद्युम्न विकराल,*
जीवन-तृष्णा तजि बढ़े, मूर्तिमन्त जनु काल। १७१

हति अगणित गुरु-रथ-अनुगामी,
समहाने द्रोणहिं वध-कामी।

विषस्पर्श शर शत शत त्यागे,
सके निवारि न गुरु, उर लागे।
रुधिर-प्रदिग्ध विद्ध वक्षस्थल,
मूर्च्छित वयोवृद्ध द्विज विह्वल।
लब्ध सुयोग क्रोध उर गाढ़ा,
तीक्ष्ण कृपाण द्रुपद-सुत काढ़ा।
चढ़ि रथ बढेउ वधन जस योद्धा,
भरद्वाज-सुत लहेउ प्रबोधा।
रण-विद्, अद्वितीय धनुमाना,
धरे धनुष वैतस्तिक बाणा,
निकटवर्ति रिपु वेधन हारे,
शर विशेष आचार्य पँवारे।
पीडित धृष्टद्युम्न तजि स्यंदन,
आरभेउ द्वैरथ-आयोधन।

दोहा :— *उत्थित ताही क्षण बहुरि, पाञ्चजन्य-स्वर घोर,*
लौटे शैन्य न वृत्त ले, धर्मज शोक-विभोर। १७२

पठयेउ भीमहिं[1] सहठ नरेशा,
कीन्ह वृकोदर व्यूह प्रवेशा।
लखेउ द्रोण रथ बढ़त समीपा,
जंगम मनहुँ अहंकृति-द्वीपा।
करत विनोद वचन गुरु भाखा—
"सात्यकि पार्थ मान मम राखा।
जानि अजेय मोहिं सग्रामा,
गये व्यूह करि विनय-प्रणामा।
मिथ्या दर्प तुमहु विनु त्यागे,
एकहु पग न सकत धरि आगे।"
सुनत वृकोदर दृग अरुणारे,
अट्टहास सह वचन उचारे—
"तुम निरस्त्र सौभद्र निपाता,
बंदी करन चहत मम भ्राता

शिष्य न अब मैं, गुरु तुम नाहीं,
लेहु जो मिलत समर-महि माहीं।"

दोहा.— *अस भाषत फेंकी गदा, अशनि-सदृश अनिवार्य,*
विनशे सारथि, रथ, तुरग, उछरि बचे आचार्य। १७३

सोरठा.—*मथि अरि-अब्धि महान, धार्तराष्ट्र पथ अए धधि,*
लखे भीम युयुधान, करत हार्दिक-सुत-सँग समर।

उत विरमाय विटप-तल स्यंदन,
किये विशल्य अश्व यदुनंदन।
औषधि लेपि व्यथा-अपहारी,
रहे पियाय जबहिं हरि वारी,
लब्ध-संधि लै रथ-सघाता,
बढ़े विन्द अनुविंद दोउ भ्राता।
घर्घर-स्वर चहुँ ओर अपारा,
उमहेउ जनु रथ-पारावारा।
घेरे दोउ पार्थ यदुनाथा,
सान्ध्य मेघ जनु रवि शशि साथा।
शस्त्र-रहित हरि शंख उठावा,
पाञ्चजन्य भरि ओज बजावा।
भरित भुवन-त्रय घोर प्रणादा,
कम्पित सचराचर सविषादा।
मूर्छित निज निज रथ भट नाना,
निश्चल वाहन जनु पाषाणा।

दोहा :— *जागहिं जब लगि शत्रु-रथि, धरि अर्जुन धनु बाण,*
हरि चहुँ दिशि तत्क्षण रचेउ, दीपन बाण-वितान। १७४

जिमि पावस ऋतु सेतु ढहावन,
उमहत सरि जल-ओघ भयावन,
तिमि पार्थहिं शस्त्रास्त्र-प्रवाहा,
विंद अनुविन्द बहावन चाहा।

पै कौन्तेय अचल टकरायी,
रुद्ध वीर वाहिनि निरुपायी।
दीर्घग पृथु, सुपर्व, अरि ग्रासी,
बरसे शर प्रतिशस्त्र विनाशी।
गिरे छिन्न शर शीश मनोहर,
व्योम-स्रस्त जनु पूर्ण कलाधर।
शव-परिपूर्ण जदपि समराङ्गण,
कीन्ह न मालवगण रण-त्यागन।
युद्धत रण-उन्माद महाना,
कब कटि शीश गिरेउ नहिं जाना।
धावत रण कबन्ध उठि नाना,
कछु धृत-खड्ग कछुक धनु बाणा।

दोहा:— *जदपि अर्ध-मृत महि परे, छिन्न भिन्न अँग अंग,*
रहे माँगि शर धनु तबहुँ, मिटी न समर-उमंग। १७१

सोरठा— *वधे विन्द अनुविन्द, अगणित रथि-सह पार्थ इत,*
उत स्यदन गोविन्द, योजे विराहत क्रांति हय।

हत-नायक पै मालव योद्धा,
कीन्ह युद्ध पद पद प्रतिरोधा।
शर-बल पथ पार्थ निर्मावत,
विविध गतिन हरि रथहिं चलावत।
बढ़त जात क्रम-क्रम शीरङ्गा,
चारि मकर जिमि जलधि-तरङ्गा।
निकसेउ रथ रथि-पाश निवारी,
राहु विमुक्त मनहुँ तमिचारी।
जैसेहि सूचि व्यूह नियराना,
वादेउ पाञ्चजन्य भगवाना।
सहसा कीन्हेउ घाय सुयोधन,
सूची व्यूह द्वार-अवरोधन।
द्वन्द्व युद्ध हित पार्थ-प्रचारी,
गर्व गिरा कुरुनाथ उचारी—

"मैं एकाकी, तुम-यदुराजू,
मिलि प्रकटहु निज विक्रम आजू।

दोहा.— लहे दोउ शस्त्रास्त्र जे, पार्थिव दिव्य अपार,
करहु सुदर्शन चक्र सह, आजु समस्त प्रहार।"१७६

अस कहि विशिख प्रखर बहु प्रेरे,
वेधे अँग-अँग अर्जुन केरे।
हरिहु-हृदय-भुज करत प्रहारा,
काटि हस्तत्राजन महि डारा।
क्रोधित पार्थ शरावलि त्यागी,
निष्फल सकल कवच-तल लागी।
हने बहुरि अभिमंत्रित बाणा,
सके न सोउ भेदि तनुत्राणा।
अर्जुन चकित भेद अनुमानी,
कही विहँसि श्रीहरि सन बाणी—
"कवच जो मोहिं आचार्य बतावा,
आजु सोइ यहि गुरु ते पावा।
जे धन्वी, दिव्यास्त्र-ज्ञाता,
तिनहिंन हित तनुत्र यह ताता!
सकत कवच दै काहुहि गुरुजन,
स्वानहिं करि न सकत पंचानन!

दोहा :— यदि न सकत मैं आजु यहि, इतनहिं कवच-प्रभाव,
करत अबहि पै रण-विमुख, निरखहु नाथ उपाव।"१७७

अस कहि रोष-अमर्ष-समन्वित,
धरेउ धनुप शर भल्ल शिला-शित।
कर्पि श्रवण लगि, ध्वज तकि, त्यागा,
पतित छिन्न मणि-निर्मित नागा।
अकस्मात तजि वारिद-व्राता,
समर अवनि जनु तड़ित-निपाता।

बहुरि छत्र शिर शुभ्र विलोका,
जनु कौरव-कुल-श्री-आलोका।
त्यागि तीक्ष्ण नालीक गिरावा,
शकलित शशि जनु महि तल आवा।
भंजि धनुष पुनि बधे तुरगा,
निहत सारथी, स्यंदन भगा।
कवच-सुरक्षित तजि तनु सारा,
कीन्ह पार्थ पुनि पाणि प्रहारा।
छिन्न-भिन्न करि अंगुलि-वेष्टन,
कीन्ह मांस-नख-अन्तर वेधन।

दोहा :— *मर्मस्थल-पीड़ित, व्यथित, नष्ट राजसी साज,*
पद-चारी, रण-महि तजी, गलित-गर्व कुरुराज। १७८

गवनेउ कर्ण ओर कुरुनंदन,
प्रविशे सूचि व्यूह यदुनंदन।
अवलोकेउ परसत आकाशा,
जयद्रथ-ध्वज अरुणार्क-प्रकाशा।
माला-भूषित, हेम-परिष्कृत,
मध्य वराह रत्न-मणि निर्मित।
चहेउ बढ़न जैसेहि तेहि ओरा,
सुनेउ भीम-गर्जन-रव घोरा।
निरखे आवत सात्यकि साथा,
जनु वैश्वानर सह सुरनाथा,
सात्यकि श्रान्त, उग्र अति भीमा,
लखि अनुजहिं हिय हर्ष असीमा।
तृषित पथिक जनु मरु करि पारा,
लखी समीप विमल जल-धारा।
अंकमाल - दै एकहिं एका,
मिले सकल आनँद अतिरेका।

दोहा :— *ममज चिन्तित पार्थ सुनि, देवदत्त लै हाथ,*
वादेउ,—उत निर्घोष सुनि, मुदित धर्म नरनाथ। १७६

पाण्डव-दल प्रहृष्ट सब जेहि क्षण,
बिलखेउ कर्ण समीप सुयोधन—
"बाँधि बाल जिमि सून विहङ्गा,
करत क्रूर क्रीडन तेहि सङ्गा,
तिमि रथ भञ्जि, ध्वसि सब साजू,
दुर्गति पार्थ कीन्ह मम आजू।
सहि अरि-हाथ घोर अपमाना,
एकहि आस रहे तनु प्राणा—
रच्छि आजु समराङ्गण सैन्धव,
करिहौ तुम उर्वी निष्पाण्डव।
रच्छे जयद्रथ पार्थ वितथ-प्रण,
करिहै निशा प्रवेश हुताशन।
मृत अर्जुन तजिहै नृप प्राणा,
नृप सँग सब अनुजन अवसाना।
लहिहैं हम नहिं पुनि अस अवसर,
होहु समर हित तात ! अग्रसर।

दोहा :— *स्वल्पहि दिन अवशेष अब, शरन समर-महि छाय,*
दरसावहु भुज-अस्त्र-बल, सैन्धव लेहु बचाय।" १८०
भाषे इत कुरुपति वचन, उत कपि ध्वज लहरान,
कृत-निश्चय राधा सुवन, रण-हित कीन्ह प्रयाण। १८१

सोरठा — *लखि गवनत वसुषेण, अश्वत्थामा, शल्य, शल,*
कृपाचार्य, वृषसेन, बढे समर भूरिश्रवा।

धाये अर्जुन दिशि करि गर्जन,
ताकि गजहिं जनु व्याघ्र अनेकन।
भार किरीटी शिर अति जाना,
प्रविशे समर भीम, युयुधाना।
रोकेउ कर्णहिं धाय वृकोदर,
रोधत वायु-वेग जिमि भूधर।
विघ्न विलोकि कुपित दुर्योधन,
जनु प्रथमहिं अनिष्ट-सदर्शन।

बोलि अलवुप राक्षस-नाथा,
पठयेउ भीम ओर कुरुनाथा।
गवनत यातुधान अवलोका,
बढ़ि युयुधान बीच पथ रोका।
भिरे वर्म नख-शिख दोउ धारे,
जनु नभ नैश जलद कजरारे।
प्रेषी राक्षस शक्ति महाना,
देह प्रविद्ध व्यथित युयुधाना।

दोहा :— *सहसा कर्पि शरीर ते, घोर शक्ति शैनेय,*
तर्जत ताही ते हतेउ, यातुधान दुर्जेय। १८२

शिथिल जबहिं सत्यकि तनु सारा,
रण हित भूरिश्रवा प्रचारा।
गुनि मन प्राणहु ते बढ़ि माना,
स्वीकारेउ यादव आह्वाना।
भयेउ प्रथम द्वैरथ रण दारुण,
पुनि रथ त्यागि भिरे रक्तारुण।
लै असि-ढाल बहुरि समुहाने,
खण्डित सोउ गदा कर ताने,
चूर्ण-विचूर्ण भयीं जब सोऊ,
कीन्हेउ बाहु-युद्ध पुनि दोऊ।
मनहुँ प्रमद दन्तावल कानन,
युद्धत दारुण शुण्ड-विषाणन।
भये श्रान्त अति सात्यकि क्रम-क्रम,
प्रकटेउ भूरिश्रवा पराक्रम।
अधर उठाय भँवाय पछारा,
गहि कच कीन्हेउ पाद प्रहारा।

दोहा :— *चहेउ करन जस छिन शिर, काढ़ि कराल कृपाण,*
शिष्य-दशा अर्जुन तजेउ, ताही क्षण क्षुर बाण। १८३

सोरठा — *गिरेउ सहित करवाल, सायुद कटि भुज भूमितल,*
उठि सात्यकि तत्काल, हतउ अरिहि गहि खड्ग सोइ।

सोरठा—*युद्धत सैन्धव ओर, बढे धनजय उत बहुरि ,*
इत संगर अति घोर, कीन्ह भीम वसुषेण सँग ।

लहि अनिमित्त-पिशुन, विद्वेषी ,
क्रुद्ध भीम राधेय-वधैषी ,
कीन्ह छिन्न अरि-त्राणन-व्यूहा ,
चक्रघात जिमि शलभ-समूहा ।
वेधत बहुरि कर्ण-अँग सारा ,
वधि तुरग सारथि संहारा ।
स्यंदन अन्य कर्ण चढ़ि धावा ,
गदाघात सोउ भीम नसावा ।
निरखि विपत्ति-ग्रस्त वैकर्तन ,
धार्तराष्ट्र रण बढ़े अनेकन ।
भीमहु भिरे रोप-रस-राते ,
तीसक कुरुपति-अनुज निपाते ।
लब्ध सुअवसर राधानंदन ,
काटेउ कार्मुक करि गुरु गर्जन ।
त्यागी बहुरि उग्र शर-माला ,
शीर्ण तनुत्र, देह व्रण-जाला ।

दोहा :— *लखेउ आधिरथि ताहि क्षण, विकल पार्थ-शर-जाल ,*
भागत कौरवदल निखिल, तजि रण सिन्धु-भुआल । १८४

भागत बंधुहु बंधु विहायी ,
करत न पितु निज सुतहु सहायी ।
विकवच, वाहन-विरहित, निर्जित ,
दीर्ण देह, व्रण रक्त प्रवाहित ।
मुक्त केश, मुख करुणा-क्रन्दन ,
सत्त्व विहीन, स्रस्त पथ प्रहरण ।
मृत्युहि अर्जुन-शर बनि आयी ,
रही शूर जनु रण पछियायी ।
समुकुट छिन्न बाहु शिर रूरा ,
काहु भुजा के यूपित भूरा

तोमर-युक्त दन्ति-पति-हाथा,
हयारोहि-भुज पट्टिश साथा।
कशा-सुशोभित सारथि-बाहू,
सहित चर्म-असि पत्ति प्रबाहू।
द्विरद-विषाण-शुण्ड हय-शीशा,
स्यंदन-चक्र, अक्ष, युग, ईषा।

दोहा :— *भागत जीवित जे अबहुँ, नर-वाहन टकरात,*
गिरत धरणि-तल श्रान्त कछु, शव-समूह दुरि जात। १८५

सोरठा:— *लखे बहुरि वसुषेण, मूर्छित, मद्रप, कृप रथन,*
द्रोण-पुत्र, वृषसेन, युद्धत अर्जुन सँग अबहुँ।
ताही क्षण कौन्तेय, कीन्हेउ वृषसेनहि विरथ,
तजि भीमहि राधेय, धायेउ सत्वर पार्थ-दिशि।

पाछे करत समर-आह्वाना,
बढ़े सवेग भीम, युयुधाना।
सकहि पहुँचि जब लगि वैकर्तन,
आहत द्रौणिहु अर्जुन-बाणन।
कर्णहि इत किरीटि समुहाये,
सात्यकि भीमहु शर बरसाये।
अस्तोन्मुख रवि हरि दरसावा,
शौर्य अभूत पार्थ प्रकटावा।
निहति सारथी भंजेउ चापा,
बाण अगण्य कर्ण-रथ व्यापा।
जर्जर भीम-शरन तनु सारा,
सकेउ न सहि राधेय प्रहारा।
छिन्न तनुत्र प्रदीपित बाणन,
मनहुँ दिवसपति-रश्मि महा घन।
पतित विचेतन अधिरथ-नंदन,
भागे आहत हय लै स्यंदन।

दोहा :— *कीन्हेउ यहि विधि पार्थ हरि, अगम व्यूह अब पार,*
व्याघ्र-सिंह-आकीर्ण जनु, लाँघेउ पथिक पहार। १८६

सोरठाः—अस्तप्राय पतग, धायेउ सैन्धव-ओर रथ,
झपटेउ श्येन विहग आमिष-पिण्ड विलोकि जनु,
विशिख आत्म-रक्षार्थ, तजे सिन्धु-अवनीश जे,
निष्फल करि सब पार्थ, धरेउ शरासन घोर शर।
छूटेउ तजि कोदण्ड, जनु अमोघ वासव-अशनि,
लागत मीत्र प्रचण्ड, छिन्न शीश जनु मृदु सुमन।

विशद शरस जनु यश-तरु कंदा,
वादेउ सव्यसाचि सानंदा।
कीन्हेउ हर्ष निनाद वृकोदर,
भरित भुवन पुनि पाञ्चजन्य स्वर।
जयद्रथ-निधन युधिष्ठिर जाना,
बाजे वाद्य धर्म दल नाना,
पहुँचि द्रोण ढिग तेहि क्षण कुरुपति,
कहे अवाच्य अनेकन गुरु-प्रति।
लज्जित भारद्वाज कीन्ह प्रण—
"बिनु अरि नाश, न तजिहौं दंशन!"
सैन्य बहुरि आचार्य सँभारी,
समर-हेतु अरि-अनी प्रचारी।
लौटेउ पाण्डव दलहु सहर्षा,
विजयोजित भुज-शौर्य प्रकर्षा।
भिरि दोउ बढ़ी, बहुरि चतुरंगिणि,
मिलि जनु सुरसरि जमुन तरंगिणि।

दोहा :— अस्त दिवाकर रण-मही, छायेउ घन अँधियार,
लखत न, लै लै नाम भट, करत प्रचारि प्रहार। १८७

सोरठा:—पत्तिन धर्म महीप, दीन्ही आज्ञा ताहि क्षण,
अगणित उल्का दीप, सहसा पाण्डव-दल जरे।
कौरव-दलहु पदाति, दुर्योधन निर्देश लहि,
बारि विदीपन-पाँति, राजे चहुँ दिशि रण अजिर।

कोरक जनु निशि कर्णपूर के,
दीप सहस्र चतुर्दिक दमके।

स्यंदन-स्यंदन उल्का शोभित,
मन्दिर जनु दीपावलि द्योतित।
द्विरद-द्विरद बहु उल्का ज्वाला,
विद्युत-जगमग जनु घन-माला।
दमके केतन विद्रुम-चित्रित,
छत्र-दण्ड मणि-हेम-विमण्डित।
जातरूप-मय वाजि-आभरण,
कुञ्जर-झालर रत्न-निवेष्टन।
सुभटन-वर्म, विभूषण भासे,
नीलोत्पल करवाल प्रकाशे।
प्रतिभासित नर-वाह-निकाया,
समर-मही जनु काञ्चन-छाया।
मनोहरण भीषण उजियारा,
जनु निशि दाव-दीप्त वन सारा।

दोहा :— *धावत रण-महि वीर वर, करत घोर अविघात,*
दमकत मुख, सरसिज-विपिन, कम्पित मनहुँ प्रवात। १८८

सोरठा:— *हते समर शैनेय, सोमदत्त, वाह्लीक दोउ,*
उत क्रोधित राधेय, वधेउ घटोत्कच भीम-सुत।

वधन चहत द्रोणहि पाञ्चाला,
भ्रमत गुरुहु रण-महि जनु काला।
क्रोधित, क्रूर, घोर आयोधन,
भयौ निशिहु प्रति पल अति भीषण,
क्रम-क्रम श्रान्त निखिल नर-वाहन,
युद्धत सुभट खसत कर-प्रहरण।
करत स्वधर्महि वश संग्रामा,
याम-सहस्रा लागि त्रियामा।
रक्त-नयन कछु नींद-बिगोये,
विवश, विचेष्ट, विमोहित सोये।
प्रतिभट सुमिरि पूर्व अपकारा,
निरखि श्रान्त सोचत संहारा।

सोवत सपने लखि अरि कोई,
चौंकत, वधत मिलत जहँ जोई।
सब निद्रान्ध, न रण-उत्साहू,
निज-पर-ज्ञान रहेउ नहिं काहू।

दोहा :— *श्रीहरि-सम्मति मानि तब, थमेउ घरिक संग्राम,*
मिलेउ जाहि अवसर जहाँ, कीन्ह सेवन विश्राम। १८६

कोउ हय गय, कोउ स्यंदन ऊपर,
रहेउ सवर्म सोय कोउ भू-पर।
गदा-पाणि कहुँ, कहुँ धनु हाथा,
सोवत कहुँ स-खड्ग नरनाथा।
हेम-योत्र जोरे निज स्यंदन,
सोवत दिशि दिशि अश्व सहस्रन।
रहि रहि निज खुराग्र छिति खनहीं,
सम महि विषम, विषम सम करहीं।
धरे पीठ केतन अंबारी,
अस्थिर-शुण्ड युक्त भयकारी।
श्वसत महागज अगणित निद्रित,
शैल-पंक्ति जनु भुजग-समन्वित।
यहि विधि दोउ दल निद्रा-प्रेरे,
शयित मनहुँ पट लिखे चितेरे।
बीती क्रम-क्रम और त्रियामा,
भयेउ छितिज सहसा अभिरामा।

दोहा :— *तजि प्राचीदिशि-कन्दरा, केसर-किरण पसारि,*
प्रकटेउ इन्दु मृगेन्द्र जनु, वारण-तिमिर विदारि। १९०

दर्शित प्रथम व्योम अरुणाई,
जनु वधु रोहिणि-अधर-ललाई।
उदित पाण्डु-द्युति पुनि मनहारी,
कुल-कामिनि-कपोल अनुहारी।

क्रमशः प्रकटित सितकर-रूपा,
विशद नवल-वधु हास-स्वरूपा।
शोभित श्रवत सुधा-निष्यंदा,
सिहरी निखिल प्रकृति सानंदा।
क्षुब्ध विलोकि विधुहिं जिमि जलनिधि,
क्षोभित तिमि युग पक्ष सैन्य-निधि।
जागे इन्दु-उदय सब योद्धा,
कुमुद-विपिन जनु लहेउ प्रबोधा।
वर्म-संयमित शस्त्र सँभारे,
वादे शस्त, अराति प्रचारे।
आरंभेउ पुनि सोइ भयकारी,
रण क्रोधान्ध, शूर-संहारी।

दोहा :— *प्रकटेउ रौद्र स्वरूप निज, अरि-दल द्रोण विदारि,*
सके न सृञ्जय, चेदिगण, गुरु-आक्रमण निवारि। १६१

सोरठा —*युद्धत उदित दिनेश, करि परास्त शशधर-प्रभा,*
तजि रण पत्ति नरेश, भये भानु-अभिमुख सकल।

वंदि रविहिं करि सन्ध्योपासन,
गहेउ बहुरि गुरु हस्त शरासन।
दण्ड-पाणि मानहुँ यमराजा,
हतेउ प्रचारि द्रुपद-महराजा।
करि पुनि मत्स्य-महिप आह्वाना,
हतेउ कुपित गुरु एकहि बाणा।
ग्रसे सूर्य-शशि मानहुँ राहू,
विलखे विकल धर्म-नरनाहू।
सेनप, सैनिक सकल उदासा,
जयद्रथ-वध-आनँद निरासा।
धृष्टद्युम्न-स्यंदन विध्वंसा,
द्रुपद-पौत्र त्रय वधे नृशंसा।

दोहा :— *प्रकट परशुधर अन्य जनु, क्षत्रिय-क्षय-प्रणवान,*
पुनि स्यमन्त-पञ्चक चहत, करन मनहुँ निर्माण। १६२

सोरठा:—*भीमहु करि रण घोर, सके निवारि न जब गुरुहिं।*
भाषे वचन कठोर, जारत द्विज जनु दृग-ज्वलन—

"द्विजजन आर्यजाति-उन्नायक,
सकरुण प्राणिन-अभय-प्रदायक।
जदपि सर्व शस्त्रास्त्रन-आश्रय,
करत कबहुँ नहिं विद्या-विक्रय।
परशुधरहु नहिं रण-अनुरागी,
गहेउ शस्त्र प्रतिकारहि लागी।
वधि अधर्म-रत, क्षत्रिय योद्धा,
कीन्ह स्वपितु-हत्या प्रतिशोधा।
कीन्हि तुम्हारि न हम कछु हानी,
विनत सतत, पूजेउ सन्मानी।
पै तुम केवल द्रव्य-उपासी,
करत आचरण जनु पिशिताशी।
तजि स्वकर्म तुम करत अधर्मा,
धर्म-निष्ठ हम रत निज कर्मा।
धिक्! तुम्हार विप्रत्व-बखाना,
शुक-पाठहि धर्मस्मृति-ज्ञाना।

दोहा:— *दिव्य अस्त्र-अनभिज्ञ जन, दिव्यास्त्रन वधि आज,*
कीन्ह मलिन ऋषि-वश-न्यश, तबहुँ हृदय नहिं लाज। १६३
शिविर जाय निरखहु मुकुर, मुख निज विप्र! कराल,
भरद्वाज-अँगजात तुम, अथवा अघि चाण्डाल!" १६४

सोरठा:—*विषम वृकोदर-वाणि, अक्षर-अक्षर मर्म-भिद,*
उपजी भीषण ग्लानि, ज्ञान-खानि आचार्य-उर।

नख-शिखान्त तनु अनुशय-आकुल,
प्रकटेउ अन्तर्लोचन ऋषि-कुल।
गौतम, अत्रि, वशिष्ठ मुनीश्वर,
कहत मनहुँ—"त्यागहु तनु नश्वर।

तोरि शस्त्र-अस्त्रन सँग नाता,
लहहु मृत्यु विप्रोचित ताता!"
भयेउ गुरुहिं इत समर-विस्मरण,
धृष्टद्युम्न उत कीन्ह आक्रमण।
चढ़ेउ धाय द्रुपदात्मज स्यंदन,
तजे द्रोण गुरु बाण-शरासन।
निर्विकार, विरहित-भव-माया,
अक्षर-ध्यान-मग्न द्विजराया।
लखेउ न धृष्टद्युम्न परिवर्तन,
क्रोध-पिशाच करत दृग नर्तन।
शराघात गत-चेतन जाना,
काढेउ कहि दुर्वचन कृपाणा।

दोहा:— *तजे प्राण आचार्य इत, जपत मंत्र ओंकार,*
कीन्ह छिन्न पाञ्चाल्य शिर, करि उत क्रूर प्रहार। १९५
सुनि गुरु वध, अरि हर्ष-रव, घोर भीम-जयनाद,
नृप, वसुषेण, सुयोधनहु, तजेउ समर सविषाद। १९६

सोरठा:—*पै रण अचल अभीत, द्रौणि भरित प्रतिशोध उर,*
कर गृहीत उपवीत, कीन्हेउ प्रण सबोधि अरि—

"सबहिं सुनाय करत प्रण घोरा,
बधेउ प्रतस्थ जनक जेहिं मोरा,
साक्षिहु जे यहि क्रूर कर्म के,
बधिहौं तिनहिं, वंशजहु तिनके।
शिशुहु सवय, गर्भस्थहु जेऊ,
जरिहौं अस्त्र-अग्नि सब तेऊ।
करि महि नि सोमक निष्पाण्डव,
बधिहौं केशव सह सब यादव।
यह सोइ पुण्य अवनि जहँ व्रतधर,
कीन्ह क्षत्र-क्षय कुपित परशुधर।
मृग सहचर, मृदु-मन, वन वासी,
कीन्ह राम जो वैर-उपासी,

अस्त्र-निधान, समर-अनुरागी,
सहज सो सकल कर्म मम लागी।
बधेउ अशस्त्र पितुहिं संग्रामा,
जियत अजहुँ पै अश्वत्थामा।

दोहा :— *समर-मही गुरु द्रोण मृत, जीवित द्रोण-कुमार,*
सुप्त जदपि रण-शौण्डता, जागत पै प्रतिकार।"१६७

अस कहि तजेउ द्रौणि प्रलयकर,
रण नारायण-अस्त्र भयंकर।
प्रगटे दीप्त बाण नभ अनगन,
चक्र, शतघ्नी, नाना प्रहरण।
पूरित शस्त्र-अस्त्र आकाशा,
मंद मुहूर्त दिनेश-प्रकाशा।
बिनसत पाण्डव सैन्य निहारी,
भाषेउ श्रीहरि सबहिं पुकारी—
"तजहु! तजहु! सैनिक! नृप नंदन!
सत्वर निज निज आयुध स्यंदन!
हरि-निदेश सुनि, अस्त्र विहायी,
गत-महि निखिल वीर-समुदायी।
तजेउ न एक भीम निज स्यंदन,
बढ़े गदा गहि तकि द्रोणायन।
प्रकटेउ तत्क्षण अस्त्र प्रभावा,
आयुध-वृन्द शीश घिरि आवा।

दोहा :— *ज्वाला-वलयित भीम-तनु, लखि धाये यदुराय,*
गदा छीनि कीन्हेउ विरथ, सतत भक्त सहाय।१६८

सोरठा:—*लक्ष्य-हीन लखि सैन्य, भयेउ शान्त दिव्यास्त्र नभ,*
व्यापत द्रौणि उर दैन्य, तजेउ समर कुरुगन सहित।

चलेउ शिविर कौरव्य-वरूथा,
यूथप खोय मनहुँ गज-यूथा।

त्रस्त, मूक सब अवनत आनन,
करत न कोउ काहु सन भाषण।
निरखि भीत सामन्त सहायी,
गयेउ शिविर निज लै कुरुरायी।
शौर्य प्रशंसि, करत आश्वासन,
भाषेउ ओज-वचन कुरुनंदन—
"चढ़ि रण निधन विजय दुइ त्यागी,
गति नहिं अन्य वीरजन लागी।
शेष अबहुँ मम सैन्य अपारा,
अरि तें अधिक साज-संभारा।
कृप, कृत, द्रोणि, शल्य, वैकर्तन,
एक तें एक बली मम भटगण।
होहिं जो सहमत सब मम नायक,
कर्णहिं करहुँ सैन्य-अधिनायक।"

दोहा — *अस कहि आशा-मुग्ध नृप, कीन्ह सुहृद-गुण-गान,*
कीन्हेउ काहु विरोध नहिं, लहेउ कर्ण सम्मान।

सोरठा:—*जदपि प्रात अँगनाथ, प्रकटेउ विक्रम पूर्ण निज,*
कीन्ह विफल सब पार्थ, वधि कौरव वाहिनि विपुल।
निशि शोकार्त, विवर्ण, लौटे जब कुरुजन शिविर,
लज्जित आपहु कर्ण, कहे सुयोधन सन वचन—

"वधि मम अक्षत सैन्य मम आजू,
कीन्ह कीर्तिकर अर्जुन काजू।
तदपि अजहुँ मम मन यह निश्चय,
नहिं रण मम समरत्थ धनंजय।
हम दोउ सम दिव्यास्त्र निधाना,
विक्रम दोउन बाहु समाना।
पै तेहि तें बढ़ि मम विज्ञाना,
अस्त्र प्रयोग, प्रयोजन-ज्ञाना।
सौष्ठव, अस्त्र-लाघवहु माहीं,
पाण्डु-सुवन यह मम सम नाहीं।

गाण्डीवहु ते श्रेष्ठ धनुष मम,
राम-प्रदत्त, सुरासुर-जय-क्षम।
कहहुँ सोउ जस श्रेष्ठ धनंजय,
दिव्य तासु ज्या, तूणहु अक्षय।
पै यथार्थ यह पार्थ-बड़ाई,
सारथि तासु आपु यदुराई।

दोहा :— हमरे दल महँ कृष्ण सम, रथनागर मद्रेश,
जीतहुँ अर्जुन जो लहहुँ, सारथि शल्य नरेश।" २००

सोरठा :—*सुनि प्रहृष्ट कुरुनाथ, बहुरि अकुरित आस उर,*
अनुज, सुबल-सुत साथ, गयनेउ द्रुत मद्रप-शिविर।
प्राञ्जलि, विनत विशेष, प्रकटेउ उर-अभिप्राय नृप,
सुनत क्रुद्ध मद्रेश, वंकित-भ्रू, भाषे वचन—

"नृप-कुल श्रेष्ठ जन्म तुम पावा,
तदपि कुलोचित शील भुलावा।
वल्लभ निज अधिनायक कीन्हा,
सूतहिं तुम क्षत्रिय-पद दीन्हा।
हम अविरोध सही अनरीती,
रहे मौन केवल वश प्रीती।
तुष्ट तबहुँ नहिं हृदय तुम्हारा,
करन चहत अब नृप रथकारा।
वहत वयस्य तुमहिं सोइ भावा,
जानत तुम नहिं कर्ण-स्वभावा।
सालत हीन जन्म उर माहीं,
सकन विसारि वंश निज नाहीं।
करि अभिजात सरन-अपमाना,
लहन चहत गौरव, सन्माना।
जय-रद सारथि स्यंदन नाहीं,
निवसति विजय शूर-भुज माहीं।

दोहा :— *करि दिनेक रण जो लही, स्वबल-थाह राधेय,*
उचित प्रकट निज पद तजहि, कहि अजेय कौन्तेय।"

सुनि विनष्ट कुरुपति-अभिलाषा,
तजी न सुबल-सुवन पै आशा।
नीच, नीच-मन जानन हारा,
अर्थ-दिग्ध मृदु वचन उचारा—
"पितु सम तुमहिं सुयोधन जाना,
सपनेहु करि न सकत अपमाना।
मानि कृष्ण ते बढ़ि हय-ज्ञाता,
कहे वचन आदर दै ताता!
सारथि तुम समान जो पायी,
सकिहै कर्ण न पार्थ हरायी,
लहिहै व्याज अन्य पुनि नाहीं,
होइहै लाञ्छित दोउ दल माहीं।
नहिं कोउ अन्य कर्ण पश्चाता,
होइहौ अधिनायक तुम ताता!
जोहत मुख तुम्हार कुरुराजू,
करहु हताश तिनहिं नहिं आजू।

दोहा :—आये कुरुपति पास तुम, अनुजा-सुत निज त्यागि,
करत विमुख अब कस तिनहिं, तुम स्वभक्त-अनुरागि?" २०२

सोरठा:—पुनि पुनि कीन्ह नरेश, नत-मस्तक अनुरोध जब,
स्वीकारेउ मद्रेश, नायक-पद-हित लहि वचन।

सुनेउ कर्ण जब सुखद-सवादू,
प्रकटेउ सरसहिं हृदय आह्लादू—
"दुष्कर कीन्ह तात! तुम कामा,
लखिहौ सुफल काल्हि सग्रामा।
दाहत जिमि वन शुष्क अनल दव,
दहिहौं निज शराग्नि तिमि पाण्डव।
वधि समराङ्गण प्रात धनंजय,
देहौं तुमहिं राज्य जय निश्चय!"
सुनि सुहृदहिं निज हृदय लगायी,
प्रीत सुयोधन गिरा सुनायी—

"रहिहैं कालिह संग समराङ्गण,
भरित शस्त्र शर शकट सहस्रन।
दुःशासन-सह मम सब भ्राता,
वृषसेनहु तुम्हार अँगजाता,
औरहु बहु अतिरथि बलधारी,
करिहैं रण तुम्हारि रखवारी।

दोहा :—*पार्थहिं करिहौं श्रान्त मैं, म्लेच्छन प्रथम पठाय,*
वधेउ अराति प्रचारि तुम, जबहि सुयोग लखाय।" २०३

सोरठा:—*वैकर्तन कुरुनाथ, करि प्रलाप यहि विधि विपुल,*
सहस मनोरथ साथ, सोये शिविरन तेहि निशा।

प्रात ससैन्य धनंजय सङ्गा,
पहुँचे जस रण-महि श्रीरङ्गा,
वैकर्तन-रथ शल्य निहारी,
गुनि रहस्य मन गिरा उचारी—
"वसुषेणहिं उत लखहु धनंजय!
आयेउ आजु समर कृत-निश्चय।
सारथि नव, नवीन रथ साजू,
विजय-पराजय-निर्णय आजू।
प्रतिभट यह तुम्हार विख्याता,
जानत यहि कर प्रण तुम ताता!—
'वधे धनंजय बिनु समराङ्गण,
करिहौं नहिं निज पद प्रक्षालन!'
अन्तक-प्रतिमा यह रण माहीं,
पार्थ! उपेक्ष्य शूर यह नाहीं।
धर्म नृपति यहि भीति-विगोये,
वर्ष त्रयोदश सुख नहिं सोये।

दोहा :—*रथि वरिष्ठ, दर्पी, कृती, तेजस्वी दुर्जेय,*
वधहु सयत्न अराति निज, आजु समर कौन्तेय। २०४

भीष्महिं, द्रोणहिं आदर दीन्हा,
मृदु रण तुम दोउन सँग कीन्हा।
गुरु कृप, गुरु-सुत अश्वत्थामा,
बधिहौ तुम न दुहुन संग्रामा।
मातुल शल्य तुमहिं प्रिय लागा,
कृतवर्महु प्रति उर अनुरागा।
पै न कर्ण-हित कोमल भावा,
प्रकटहु पूर्ण निजास्त्र-प्रभावा।
तुमहिं सकृत बधि यहि रण माहीं,
कर्ण निधन बिनु रण-जय नाहीं।
यह दुर्बुद्धि पाण्डु-कुल शूला,
द्वेषी, बान्धव-विग्रह-मूला।
सदा कुपथ कुरुपतिहिं चलावा,
नित विद्वेष-अनल घृत नावा।
केवल यहि भुजबल दुर्योधन,
रोपेउ यह दारुण आयोधन।

दोहा:— *करत अकारण बैर यह, यहि कारण जन-नाश,*
नासहु बधि वसुषेण रण, कुरुपति-राज्य-जयाश।"२०५

सोरठा:—*अस भाषत यदुनाथ, प्रेरेउ रथ जस कर्ण-दिशि,*
विविधायुध धृत हाथ, रोकेउ पथ घिरि म्लेच्छगण।
दरसायेउ कुरराज, प्रमुदित कर्ण सुयोग लहि,
ताकि धर्म नरराज, बढेउ मथत पाञ्चाल-दल।

विगत शृंखला गज मद-माता,
धँसेउ विपणि-पथ जनु रिस-राता।
छादित कर्ण-बाण रण-प्राङ्गण,
गत रवि-आभा, रुद्ध समीरण।
निनसे अश्व, सारथी, स्यन्दन,
छिन्न तनुत्र, छत्र, धनु, केतन।
निहत महागज विपुलाकारा,
ध्वंसित द्रुम जनु परशु प्रहारा।

गिरे सुभट-शिर कटि शर-जाला,
महि विकीर्ण जनु सरसिज-माला।
दुर्निवार वसुषेण-प्रहारा,
व्यथित चेदि-सृञ्जय-दल सारा।
वात-क्षुब्ध जनु वारिधि-वारी,
त्रस्त सभीत निखिल जल-चारी।
प्रेत-पुरी सम रण दुर्दर्शन,
आनँद-मग्न विलोकि सुयोधन।

दोहा :— *पाण्डव-दल कर्णास्त्र-चल, विनसेउ स्वल्प प्रयास,*
कहेउ धर्मजहि लखि स्वरश, वचन करत परिहास— २०६

अद्रि-अरण्य जन्म तुम पावा,
जीवन हू गिरि-विपिन बितावा।
मृग, मुनि, वनमानुष-सहवासी,
तनु प्रसून-सुकुमार, फलाशी।
तैसेहि मृदुल स्वभाव तुम्हारा,
कृत्य द्विजोचित तुमहिं पियारा।
तुम जप, योग, हवन-अधिकारी,
यह संग्राम-मही भयकारी।
सक्त अवहुँ तुम तजि आयोधन,
परिहौं मैं न मार्ग-अवरोधन।
सुनि असह्य भूपहिं अपमानू,
लोचन उत्तर देत कृशानू—
"सूत-पुत्र निज कर्महिं त्यागी,
जव ते भये समर-अनुरागी।
उपजेउ तन ते हृदय विरागा,
पूजा-पाठ मोहिं प्रिय लागा।

दोहा :— *तदपि नृपति-अँगजात मे, मोहि शस्त्रास्त्र ज्ञान,*
करहु सूत! दृढ़ निज हृदय, सहहु, तजत मैं बाण!" २०७

रंजित मुख, कपोल रिस-रागा,
श्रुति पर्यन्त कर्षि इषु त्यागा।

निकसेउ वाम-पार्श्व शर फोरी,
शोणित अंग-अवनिपति बोरी।
डसेउ मनहुँ विकराल भुजंगा,
दृग तम अंध, शिथिल प्रत्यंगा।
कतहुँ किरीट, तूण कहुँ चापा,
रथ वसुषेण गिरेउ गत-दापा।
हा! हा! ध्वनि कौरव-दल छायी,
बढ़ेउ क्रुद्ध रण-हित कुरुरायी।
कुपित रिपुहिं लखि धर्म भुआला,
तजी कराल शक्ति जनु ज्वाला।
लागि अमोघ, दीर्ण संनाहा,
पतित विचेतन रथ कुरुनाहा।
अश्वत्थामा धाय सँभारा,
सिंह-ग्रस्त जनु मृगहिं उबारा।

दोहाः — *लहि प्रबोध तब लगि बढ़ेउ, बहुरि कर्ण नृप ओर,*
कुपित वृकोदर शिबय धरि, तजी गदा निज घोर। २०८

सोरठाः—*मूर्च्छित अंग-नरेश, रच्छेउ मद्रप तजि समर,*
कुरुदल छिन्न अशेष, भग्न-सेतु जनु सरि-सलिल।
विनसेउ विधि-वश बोध, तजेउ न दुःशासन समर,
बढ़े लेन प्रतिशोध, सुमिरि भीम निज भीम प्रण।

उत वाह्लीक, यवन, शक, तगण,
शबर, किरात, दरद, खस अफगन,
वर्बर, म्लेच्छ, विदेशी पारद,
कलह-जीवि, बहु शस्त्र-विशारद,
मुण्डित, अर्ध-मुण्ड जटिलानन,
अशुचि देह-मन, विकृत-दर्शन,
बढ़े पार्थ दिशि जनु जल-राशी,
तिन सँग अगणित दक्षिण-वासी।
अंजन-वर्ण शरीर विशाला,
दृग आरक्त दीर्घ, रद लाला।

गंध-खोद अनुलेपित अंगा,
वसन सूक्ष्म, शोभन, बहु-रंगा।
कल्पित विपुल केश घुँघरारे,
नख-शिखान्त मणि भूषण धारे।
दमकत देह हेम-सँनाहा,
तिमिर ज्वलत मनहुँ हविवाहा!

दोहा:— *निरपेक्षित-तनु, हस्त धृत, नाना प्रहरण घोर,*
सरभित धाये सकल, कृष्णार्जुन रथ ओर। २०६

पार्थहु कुसमय मेघ समाना,
बरसाये उपलोपम बाणा।
नष्ट सस्य सम सुभट सहस्रन,
तजेउ न म्लेच्छन तबहुँ रणाङ्गण।
निनसत हठि जिमि शलभ अभागी,
जरेउ घिरत, त्यागत नहिं आगी।
धँसे कछुक रथ-तरे नराधम,
ध्वसन चहत रथाङ्ग, तुरंगम।
घेरि वधन हित कुन्ती-नंदन,
चढे साहसिक कछु बढ़ि स्यंदन।
लपटे कछु अति धृष्ट कृष्ण-तन,
चहत अभीषु, प्रतोदन छीनन।
पटकत गजपहिं जिमि गजरायी,
झटकि गिराये महि यदुरायी।
हनि पार्थहु वैतस्तिक बाणा,
बधे रथस्थ म्लेच्छगण नाना।

दोहा:— *हाँकेउ यदुपति ताहि क्षण, रथहि मण्डलाकार,*
बिनसे हय-पद चक्र तल बर्बर यवन अपार। २१०

तजेउ जदपि म्लेच्छन हरि-स्यदन,
कीन्ह दूरि ते शिला-प्रवर्षण।

प्रस्तर-वृष्टि तुमुल चहुँ ओरा,
आहत हय आघात कठोरा।
क्रुद्ध पार्थ तजि -बाण प्रचण्डा,
कीन्हे उपल शिला शत खण्डा।
गिरे म्लेच्छ-दल खण्ड अनेकन,
पीड़ित जनु भ्रमरावलि दंशन।
भागे तजि तजि खल कर-उपलन,
अश्म-चूर्ण आकीर्ण रणाङ्गण।
शान्त म्लेच्छ बहु अर्जुन-बाणा,
जल-प्रवाह जनु अनल मसाना।
छँटेउ दाक्षिणात्यहु दल सारा,
मारुत-छिन्न मनहुँ नीहारा।
वात-वेग यदुपति रथ हाँका,
उड़त, मनहुँ महि छुवत न चाका।

दोहा:— *खोजत यसुपेणहि बढे, उत्तर दिशि हरि-पार्थ,*
जात जलाशय दिशि मनहुँ, हरिणाधिप हरिणार्थ। २११

सोरठा:—*उत दुःशासन संग, करत वृकोदर घोर रण,*
जस जस पूर्व प्रसंग, सुमिरत, उमहत रोष उर।

गुनि जनु आजु निधन निज निश्चय,
युद्धत कुरुपति-अनुजहु निर्भय।
त्यागेउ शूल विपुल, अनलोज्ज्वल,
विद्ध वाम भुज, भीमहु विह्वल।
प्रेषी बहुरि शक्ति तकि माथा,
गही उछरि पाण्डव निज हाथा।
क्रुद्ध जघन धरि, तोरि, बहायी,
तजि कार्मुक, कर गदा उठायी।
कीन्हेउ व्योम-विदारक गर्जन,
चलित मही जनु सहित शैल-वन।
रौद्र त्रिपुर-वैरी जनु शङ्कर,
फेंकी गिरि-गुरु गदा भयंकर।

घूर्णे तुरंग, सारथी, स्यदन,
पतित धरणि आहत धुरुनंदन।
ध्वस्त उरश्छद, शीर्ष-आवरण,
अशुक स्रस्त विकीर्ण आभरण।

दोहा:—*भरेउ विजय-स्वर भूमि नभ, गरजि गरजि पाञ्चाल,*
बढे वृकोदर त्यागि रथ, हस्त खड्ग धाराल।-२१२

जाय समीप, कण्ठ पद राखी,
दारुण गिरा वृकोदर भाखी—
"राजसूय अवभृथ-जल पावन,
द्रुपद-आत्मजा-केश सोहावन,
कर्षे जेहि कर तैं अभिमानी,
भजत आजु भीम सोइ पाणी!
संवृन एक वसन, सुकुमारी,
रजस्वला कुल-बाला सारी,
कर्षी जेहि कर तैं अभिमानी,
भंजत आजु भीम सोइ पाणी!"
अस भाषत भभरी दृग ज्वाला,
गहि अरि दक्षिण बाहु विशाला,
झपटि उपाटी भीम प्रचण्डा,
जनु मद कुञ्जर सरसिज दण्डा।
करत वक्ष पुनि पाद प्रहारा,
कुरुदल निखिल भीम ललकारा—

दोहा—*"बधि दुःशासन रण चहत, करन क्षतज मैं पान,*
*होय जो कुरुदल वीर कोउ, रच्छहि पापी प्राण।"*२१३

सोरठा:—*परेउ सुनाय सुदूर, सहसा कुरुपति-कर्ण-स्वर,*
"विरमु! विरमु! रे क्रूर, कुरुदल वीर-विहीन नहि।"

सुनेउ न भीम अमर्ष-अधीरा,
प्रविशेउ मनहुँ पिशाच शरीरा।

करि शिर छिन्न कृपाण-प्रहारा,
तीक्ष्ण नखन अरि-वक्ष-विदारा।
गरजि क्रुद्ध शार्दूल समाना,
पियेउ उष्ण शोणित प्रणराना।
अट्टहास उठि कीन्ह भयङ्कर,
रक्त-सिक्त, बीभत्स वृकोदर।
वपु विरूप, पद-गति विशृङ्खल,
मूँदे दृग कुरुदल भय विह्वल।
गिरे आर्त कछु महितल मूर्च्छित,
रण प्रहरण तजि अन्य पलायित।
पहुँचि कर्ण कुरुपति तेहि काला,
लखेउ वृकोदर वपु विकराला।
दुःशासन शव बहुरि विलोका,
धृति मति नष्ट, हृदय भय शोका।

दोहा :— *हत-चेतन—"हा वत्स कहि", निज स्यंदन कुरुराज,*
खसे हस्त ते बाण धनु, शिथिल अंग अँगराज। २१४

सोरठा:— *स्वामि विलोकि विहाल, कुरुपति-सारथि रण तजेउ,*
भाषे मद्र-भुआल, व्यंग वचन वसुषेण प्रति—

"सोहत तुमहिं न कर्ण! विषादा,
गत कहँ अहङ्कार-उन्मादा?
वसि रथ निर्विष अहि अनुहारी,
श्वसत काह तुम समर निसारी?
कुल्या तुल्यहि गनि तुम पाण्डव,
आये करन किरीटि-पराभव।
बूड़त पै तुम यहि क्षण विह्वल,
गोपद-जल सम भीम-बाहु-बल।
करत सुयोधन-सँग मद पाना,
कीन्हे तुम प्रलाप प्रण नाना।
निज मुख निज गुण नित तुम गावा,
छल करि अधिनायक पद पावा।

लखि रण, गत क्षत्रोचित क्षमता,
उपजी सूत-सुलभ कातरता।
शिक्षा, श्रेष्ठ सगतिहु पायी,
नीच कि सकत स्वभाव विहायी?

दोहा :— *कहा, रश्मि निज कर गहहु, हाँकहु रथ राधेय!*
देहु शरासन बाण मोहि, बधिहौं मैं कौन्तेय।"२१५

सोरठा.—*सुनत कर्ण उर बोध, निवसेउ स्वस्थ उपस्थ उठि,*
प्रेरित लज्जा क्रोध, भाषी गिरा तररि दृग—

"निहति अरक्षित कुँवर वृकोदर,
कीन्ह कर्म रण कवन यशस्कर?
तुच्छ वृकहु लहि वन असहायी,
सकत निपाति बली मृगरायी।
रहेउ कुँवर संतत मम साथा,
प्रिय मोहि सोउ यथा कुरुनाथा।
निरखि निधन शोकित वश प्रीती,
व्यापति कर्ण-हृदय नहिं भीती।
गदा कुबेर, अतकहु-दण्डा,
वरुण देवता पाश प्रचण्डा,
त्वष्ट्रा-पर्वत, कार्मुक धाता,
सुर-सेनापति-शक्तिहु त्राता,
वासव-वज्रहु ते भय नाहीं,
भीम-गदा येहि लेखे माहीं?
बधन हेतु अर्जुन यदुराजू,
आयेउँ कृत-प्रण मैं रण आजू।

दोहा — *अमरहु सकत न सहि समर, मम शस्त्रास्त्र कठोर,*
गहहु शल्य! हय-रश्मि दृढ, हाँकहु रथ अरि ओर।"२१६

सोरठा—*नेहि क्षण परेउ दिखाय, उडत पार्थ-ध्वज व्योम-पथ,*
वसुषेणहि दरसाय, भाषेउ विहँसत मद्रपति—

अवलोकहु वह दक्षिण ओरा,
लहरत वानर-केतन घोरा,
काँपत चक्राघात धरणि-तल,
परसति उड़ि पथ-रेणु नभस्तल।
देवदत्त-स्वर परत सुनायी,
बाढ़त पाञ्चजन्य यदुरायी।
सुनहु होत अर्जुन-धनु-निस्वन,
करत सहस्र क्रौञ्च जनु कूजन।
अवलोकहु प्रदीप्त शर-जाला,
रचित व्योम जनु काञ्चन माला।
भीत, पलायित कुरुदल सारा,
नियरानेउ स्यदन दुर्वारा।
आये वधन जिनहिं तुम आजू,
सम्मुख लखहु पार्थ यदुराजू।
हरिहु तुम्हारिहि दिशि रथ हाँका,
चढेउ मूर्त जनु कर्म विपाका।

दोहा :— *गही हस्त मैं रश्मि दृढ, गहहु धनुष दृढ हाथ,*
लखन चहन मैं सून कस, बधत पार्थ यदुनाथ।"२

सोरठा :—*सुनत कुपित वृषषेण, भाषे आपहु कटु वचन,*
तन लगि चढ़ि वृषसन, अवरोधेउ हठि पार्थ-पथ।
अमय कर्ण-अँगजात, प्रेरे शर तकि यदुपतिहि,
क्षत-विक्षत हरि-गात, शोणित-रञ्जित पीत पट।

निरखि धनञ्जय-दृग अगारा,
सुमरेउ पुनि अभिमन्यु कुमारा।
वक्र भ्रुकुटि, वृषषेण निहारी,
भाषेउ अधिरथ-सुतहिं प्रचारी—
"करि सुत मम निरस्त्र असहायी,
हतेउ सग लै भट-समुदायी।
पै सायुध वृषसेन कुमारा,
सँग चतुरंगिणि सैन्य अपारा।

विद्यमान तुम पितुह समीपा,
तदपि बुझत सुत-प्राण-प्रदीपा।
तजत विशिख जीवन-अपहारी,
रच्छहु सुवन कर्ण ! धनुधारी।"
अस कहि पार्थ शरन रथ पाटा,
कार्मुक भंजि कुँवर शिर काटा।
सुत-विनाश निज नयनन-दर्शी,
बढ़ेउ समर-हित कर्ण अमर्षी।

दोहा :— *उत यदुपति इत मद्रपति, लाये रथन चढ़ाय,*
लखेउ एक-इक रक्त दृग, कर्णार्जुन समुहाय।

सोरठा :— *दोउ निज सैन्य-शरण्य, समर-शास्त्र-मर्मज्ञ दोउ,*
दोउ मानिन-मूर्धन्य, दोउ शौर्य-शालिन-तुला।

महा काय दोउ मानहुँ महिधर,
महाशाल-भुज, केहरि कंधर।
शोभन दर्शन दोउ अमरोपम,
देह देव-बल, देव-पराक्रम।
श्वेत अश्व-युत रथ दोउ राजत,
दुहुन हस्त धनु दिव्य विराजत।
वर्म-विभूषित दोउन अंगा,
खड्ग दुहुन-कटि, पृष्ठ निषंगा।
दिन-रण-श्रान्त तदपि दोउ दर्पित,
दिशि-विदिशा धनु-शब्द निनादित।
मत्त द्विरद सम दोउ तरस्वी,
घिरे दोउ निज दलन यशस्वी।
व्योम युगान्त समय जनु समुदित,
युग सहस्रकर तारक-परिवृत।
क्रोधित गरजि व्याघ्र जनु उद्धत,
तजे शिलीमुख दुहुन वधोद्यत।

दोहा :— *फहरि उठीं दोउन ध्वजा, उठे अश्व हिहनाय।*
गिरे [illegible] दोउन विशिख अतराल [illegible]।

भये उभय दिशि बहुर प्रहारा,
बरसे शर, पै शर दुर्वारा।
गत-प्रत्यागत शर-संघाता,
निज रक्षण, अरि-शस्त्र-विघाता।
वीर-विमोहन, रहित-रध रण,
निरखि चकित महि भट, नभ सुरगण।
बधिर श्रवण अति घोर मौर्वि-स्वर,
गिरत अजस्र वज्र जनु महिधर।
मही छिन्न-नाराच-अंगारा,
व्याप्त बाण नभ घन अँधियारा।
क्रम-क्रम तम प्रगाढ़ भयकारी,
गिरे अध महि खग नभ-चारी।
अर्जुन अग्नि-अस्त्र प्रकटावा,
सहसा अनल-ज्वाल रण छावा।
जदपि छिन्न तम दारुण आगी,
अरि-अनि त्रस्त समर तजि भागी।

दोहा.—*वरुण-अस्त्र वसुषेण तजि, दये मेघ नभ छाय,*
बरसे धाराधर सलिल, ज्वाला-जाल बुझाय। २२०

सोरठा:—*शित वैकर्तन-बाण, प्रविशे पाण्डव-दल बहुरि,*
पतित धरणि निष्प्राण, अगणित सृंजय, चेदिगण।
प्रकुपित पार्थ अतीव, तजन चहेउ जस दिव्य शर,
अति-कपित गाण्डीव, सहसा भजित शिंजिनी।

लब्ध-सुअवसर चदन-चर्चित,
शर चिर पार्थ-वधार्थ-सुरक्षित,
सन्नत-पर्व, निशित, सर्पानन,
धरेउ काढ़ि धनु राधा नदन।
हठि आकर्ण पूर्ण सकंपित,
तजेउ किरीटी-कण्ठ सुलक्षित।
उड़ेउ उग्र जनु उरग कराला,
कंपि विकल चेदि, पाञ्चाला।

निरखेउ हरि अवधान अतीवा,
आवत शर तकि अर्जुन-ग्रीवा।
प्रत्युत्पन्न-बुद्धि यदुनंदन,
दाबेउ पद-बल तत्क्षण स्यंदन।
गिरे जानु-भर हय निष्पेषित,
धँसेउ रथाङ्गहु धरणी किञ्चित।
धावत अर्जुन-ग्रीवा-उन्मुख,
लक्ष्य भ्रष्ट वसुषेण-शिलीमुख।

दोहा :— *रक्षित रथ सँग निम्न-गत, पार्थ-शीश हरि-यत्न,*
कटेउ किरीट, विकीर्ण महि, तड़ित प्रभा मणि-रत्न। २२१

सोरठा —*नभ-महि हरि-जय-घोष, 'साधु!साधु!' भाषेउ अरिहु,*
सव्यसाचि उर रोष, जोरी शिंजिनि अन्य धनु।
सहसा जनु विधि-योग, धँसेउ कर्ण-रथ-चक्र महि,
पार्थहु पाय सुयोग, मथेउ शत्रु-तनु शित शरन।

उतरि उठावत जेहि क्षण चाका,
ध्वसी अर्जुन कर्ण-पताका।
शर क्षुरप्र पुनि तीक्ष्ण पँवारे,
कुण्डल मुकुट काटि महि डारे।
तजि नाराच बहुरि अति उत्कट—
काटे शीश-निवेष्टन कर्कट।
उठत न चक्र ग्रसेउ जनु धरणी,
बूड़ति अरि-शराब्धि असु-तरणी।
रिस-अतिरेक हृदय, दृग वारी,
भाषेउ पार्थहिं कर्ण पुकारी—
"विरमहु! विरमहु! पृथा-कुमारा!
उचित न यहि क्षण शस्त्र प्रहारा।
तुम शुचि भरत वंश संजाता,
शील-निधान, धर्म-रण ज्ञाता।

भये उभय दिशि बहुरि प्रहारा,
बरसे शर, पै शर दुर्वारा।
गत-प्रत्यागत शर-संपाता,
निज रक्षण, अरि-शस्त्र-विघाता।
वीर-विमोहन, रहित-रध्र रण,
निरखि चकित महि भट, नभ सुरगण।
बधिर श्रवण अति घोर मौर्वि-स्वर,
गिरत अजस्र वज्र जनु महि-पर।
मही छिन्न-बाणन-अंगारा,
व्याप्त बाण नभ घन अँधियारा।
क्रम-क्रम तम प्रगाढ़ भयकारी,
गिरे अंध महि खग नभ-चारी।
अर्जुन अग्नि-अस्त्र प्रकटावा,
सहसा अनल-ज्वाल रण छावा।
जदपि छिन्न तम दारुण आगी,
अरि-अनि त्रस्त समर तजि भागी।

दोहा — *वरुण-अस्त्र वसुषेण तजि, दये मेघ नभ छाय,*
बरसे धाराधर सलिल, ज्वाला-जाल बुझाय। २२०

सोरठा.—*शित वैकर्तन-बाण, प्रविशे पाण्डव-दल बहुरि,*
पतित धरणि निष्प्राण, अगणित सृञ्जय, चेदिगण।
प्रकुपित पार्थ अतीव, तजन चहेउ जस दिव्य शर,
अति-कर्षित गाण्डीव, सहसा भजित शिञ्जिनी।

लब्ध-सुअवसर चंदन-चर्चित,
शर चिर पार्थ-वधार्थ-सुरक्षित,
सन्नत-पर्व, निशित, सर्पानन,
धरेउ काढ़ि धनु राधा नंदन।
हठि आकर्ण पूर्ण सकंपित,
तजेउ किरीटी-कण्ठ सुलक्षित।
उड़ेउ उग्र जनु उरग कराला,
कंपि विकल चेदि, पाञ्चाला।

निरखेउ हरि अवधान अतीवा,
आवत शर तकि अर्जुन-ग्रीवा।
प्रत्युत्पन्न-बुद्धि यदुनंदन,
दाबेउ पद-बल तत्क्षण स्यंदन।
गिरे जानु-भर हय निष्पेषित,
धँसेउ रथाङ्गहु धरणी किञ्चित।
धावत अर्जुन-ग्रीवा-उन्मुख,
लक्ष्य भ्रष्ट वसुषेण-शिलीमुख।

दोहा :— रक्षित रथ-सँग निम्न-गत, पार्थ-शीश हरि-बल,
कटेउ किरीट, विकीर्ण महि, तड़ित प्रभा मणि-रत्न। २२१

सोरठा:—नभ-महि हरि-जय-घोष, 'साधु!साधु!'भाषेउ अरिहु,
सव्यसाचि उर रोष, जोरी शिञ्जिनि अन्य धनु।
सहसा जनु विधि-योग, धँसेउ कर्ण-रथ-चक्र महि,
पार्थहु पाय सुयोग, मथेउ शत्रु-तनु शित शरन।

उतरि उठावत जेहि क्षण चाका,
ध्वंसी अर्जुन कर्ण-पताका।
शर क्षुरप्र पुनि तीक्ष्ण पँवारे,
कुण्डल मुकुट काटि महि डारे।
तजि नाराच बहुरि अति उत्कट—
काटे शीश-निवेष्टन कंकट।
उठत न चक्र ग्रसेउ जनु धरणी,
बूड़ति अरि-शराब्धि असु-तरणी।
रिस-अतिरेक हृदय, दृग वारी,
भाषेउ पार्थहिं कर्ण पुकारी—
"विरमहु! विरमहु! पृथा-कुमारा!
उचित न यहि क्षण शस्त्र-प्रहारा।
तुम शुचि भरत वंश सजाता,
शील-निधान, धर्म-रण ज्ञाता।

विरमहु ! निमिप वीर-व्रत-धारी !
लेत अवहिं मैं चक्र निकारी।

दोहा :— *विरथ, विवर्म, अशस्त्र पै, त्यागत शर नहिं शूर ,*
कहत तुमहिं सब शूरतम, करत कर्म कस क्रूर। २२२

सोरठाः— *सुनि सुत-वध-वृत्तान्त, सजग पार्थ-मानस-पटल ,*
क्रोधित मनहुँ कृतान्त, भाषे मर्मान्तक वचन—

"यहि दे बढ़ि का धर्म-बड़ाई ,
कर्णहिं आजु धर्म-सुधि आयी।'
लाक्षा-गेह जवहिं निर्मावा ,
पाण्डव चहेउ समातु जरावा ,
कपट-द्यूत जब हरि धन, देशा ,
कर्षे सभा द्रौपदी-केशा ,
पठये वन वल्कल पहिरायी ,
तब नहिं तुमहिं धर्म-सुधि आयी ?
हास्य धर्म तुम्हरे मुख तैसे ,
करुणा-कथा वधिक मुख जैसे !
तनहुँ पूर्व गाथा यह सारी ,
देत विनय सुनि आजु विसारी।
जात न पै सुत-निधन त्रिसारा ,
तुम निरस्त्र सौभद्र सँहारा।
सभा-गृहहिं नहिं त्यागेउ धर्मा ,
समर-महिहु तुम कीन्ह कुकर्मा।

दोहा :— *सकत विरमि नहिं छमि तिनहिं, लीन्हे जिन सुत प्राण ,*
सँभरहु सूतात्मज ! तजत, मैं जीवान्तक बाण !" २२३
लज्जा-नत उत्तर-रहित, इत निपच राधेय ,
अभिमन्त्रित शर अञ्जलिक, त्यागेउ उत कौन्तेय। २२४

सोरठाः— *मृत्यु-हित भयकारि, दीप्त, प्रसर हरि-चक्र जनु ,*
सकेन कर्ण निवारि, लागेउ कण्ठ अमोघ शर।

सोरठा:—*महि वैकर्तन-शीश, गिरेउ छिन्न शोणित स्रवत ,*
रक्त-बिम्ब ज्योतीश, प्रविशत अब्धि दिनान्त जिमि ।

निरखि समर वैकर्तन-अंता ,
जय-ध्वनि पाण्डव-अनी अनंता ।
बादत शंख, पणव, जयमंगल ,
आलिङ्गत -इक एकहिं विह्वल ।
उत भय-विकल पलायित कुरुजन ,
रक्षक-रहित धेनु जनु वृक-वन ।
भीम - गदा - आघात - विदारे ,
अर्जुन - उग्र - शरानल - जारे ,
भागे सैनिक करत विलापा ,
क्रन्दन करुण चतुर्दिक व्यापा ।
गजारोहि, रथि, सादिन-यूथा ,
मर्दत जात पदाति-वरूथा ।
भागत दिग्भ्रम भीति असीमा ,
दिखत चतुर्दिक अर्जुन-भीमा ।
नष्ट विजय, धन, धरणी-ध्याना ,
रच्छन चहत काहु विधि प्राणा ।

दोहा :— *सुनि निशि पाण्डव-आक्रमण, लौटे बहु न निवेश ,*
भागे भीत स्वदेश दिशि, बिनु यूथप-आदेश । २२५

सोरठा —*कृप, कृत, मद्र-भुआल, शकुनि, सुशर्मा कुरुपतिहु ,*
पाण्डव-त्रास-विहाल, गवने हिमगिरि-प्रस्थ दिशि ।
निरखि वेदना-दग्ध, रहित-चेतना कुरुपतिहि ,
भाषे वृद्ध, विदग्ध, कृपाचार्य नृप सन वचन—

"निहत स्वजन, निर्जित हम आजू ,
तदपि न उचित शोक कुरुराजू !
परि आपत्ति-अब्धि गम्भीरा ,
होत पार केवल नर धीरा ।

सोचहु तजि विषाद नरनाहा !
हित हमार अब कीन्हे काहा ?
जदपि युद्ध मैं, तनु प्रिय नाहीं,
दिखत न मोहिं लाभ रण माहीं।
शान्तनु-सुवन, द्रोण, वैकर्तन,
सके न जीति जिनहिं रण-प्राङ्गण,
तिनहिं मिलिहु हम जे- हत-शेषा,
सकत हराय न समर नरेशा !
सुनि दूरिहि ते पाञ्चजन्य-स्वन,
लखि फहरत नभ वानर केतन,
तजति समर कुरु-सेना सारी,
सँभरति तात ! न काहु सँभारी।

दोहा :— *तजी अंगपति साथ हम, आजु समर जय-आस,*
कीन्हे बहुरि प्रभात रण, केवल आत्म-विनाश। २२६

मम मत ,अब करि रण अवसाना,
रच्छहु साम नीति गहि प्राणा।
लखि आपुहिं निर्बल नरनाथा,
करत जे संधि सबल रिपु साथा,
होत न तिन कर कबहुँ पराभव,
भोगत चिर निज धरणी वैभव।
करि विनती प्रणिपातहु आजू,
रच्छहु प्राण राज्य कुरुराजू !
नवत विजातिहु-प्रति नय-ज्ञाता,
प्रीति-पात्र ये पाण्डव भ्राता।
करत संधि इन सँग कुरुरायी !
नहिं कछु लाज, न जगत हँसाई।
गुरु-जन-निष्ठित धर्म नरेशा,
टरिहैं नहिं पितृव्य-निदेशा।
सतत सनेह-व्रती यदुरायी,
करिहैं सुनत तुम्हारि सहायी।

दोहा :— *सकुचत जो निज मुख कहत, देहु मोहि आदेश,*
लखिहौं होत प्रभात तुम, रक्षित निज धन, देश !"२२७

सोरठा:— *यत्न-संयमित वारि, वहेउ उमहि कुरुपति-दृगन,*
बंधु वयस्य पुकारि, कीन्हेउ करुण विलाप चिर।
लोचन-जल निवृए, लहि क्लेशित उर धैर्य कछु,
बरनत मनहुँ अहए, भाषे कौरव-पति वचन—

"मम-हित-प्रेरित वचन तात के,
लागे तदपि मोहिं नहिं नीके।
वंश क्रमागत लहि सिंहासन,
करि बहु काल नृपन पै शासन,
भोगि देव-दुर्लभ सुख-वैभव,
अब रिपु-पद-प्रणिपात असंभव!
समुझहु यहहु तात! मन माहीं,
संधि-साध्य अब पाण्डव नाहीं।
करिहैं धर्मज पुनि न प्रतीती,
जदपि साधु जानत नय नीती।
रोष माद्रि-पुत्रन उर भारी,
सकत न सुत-वध पार्थ विसारी।
अपमानित कृष्णा कृत-दासी,
सोवति निशि महि वैर उपासी।
सभा-भवन अपकृत यदुरायी,
सकत न करि अब मोरि सहायी।

दोहा — *पै ये हू सब जो द्रवित, रचिहैं संधि-प्रबंध,*
बधिहै अवसर पाय मोहि, क्रूर भीम रिस-अंध। २२८

निज नयनन तुम आजु निहारा,
बधेउ अनुज जेहि विधि हत्यारा।
वैसेहि एक मम भंजि पिशाचा,
करिहै निश्चय निज प्रण साँचा।

अग्रज, अनुज, आपु यदुरायी,
सकत न कोउ पशुहिं समुझायी।
अटल मरण जो मम तेहि हाथा,
कस न मरहुँ करि रण खल साथा ?
एकहि तात-वचन मैं माना,
भयेउ आजु सगर अवसाना।
जेहि बल मानि जगत तृण सारा,
पाण्डु-सुतन रण-हेतु प्रचारा,
सुहृद सो आजु समर-महि नासा,
विनसी तेहि सँग मम जय-आशा।
विपिन-निवास, मरण रण त्यागी,
गति नहिं अन्य आजु मम लागी।

दोहा :— *चहत समर जो आपु तव, प्रिय न मोहि निज प्राण,*
जान चहत जो गेह निज, करिहौं विपिन प्रयाण।"२२६

भीरु-हृदय-निःसृत सुनि वाणी,
भापेउ शूर सुशर्मा मानी—
"संधि-वृत्त यह कस रिपु सङ्गा ?
उपजेउ कस वन-गमन-प्रसङ्गा ?
नष्ट न अब लगि कुरुदल सारा,
मद्रपतिहु सँग विपुल जुझारा।
शेष अबहुँ संशप्तक वीरा,
बहु गोपालगणहु रण-धीरा।
शकुनिहु सँग बहु अश्वावारा,
त्रय अक्षौहिणि यह दल सारा।
नष्ट समर पाण्डव चतुरङ्गिणि,
शेष आजु एकहि अक्षौहिणि।
तबहुँ जाहिं जो हम रण त्यागी,
हम सम को जग भीरु अभागी ?
जाय गेह निज चहत जो जाना,
करहिं कुरुपतिहु विपिन प्रयाणा,

दोहा :— एकहु सशक्त जियत, जब तक महितल माहि,
अरि-विनाश-प्रण-बद्ध हम, तजिहैं समर नाहि।"२३०

सोरठा — सुनि वीरोचित वाणि, प्रकटेउ मुद कृप,द्रौणि दोउ,
विनसी मानस-ग्लानि, मातुल दिशि कुरुपति लखेउ।

सदा कुमति-रत कुटिलाचारी,
पाप-पिटारी शकुनि उचारी—
"रुचेउ न कबहुँ मोहिं रण-रगा,
बुद्धि-साध्य सब जगत-प्रसगा।
जब जब तुम सम्मति मम मानी,
लहेउ इष्ट बिनु जन-धन-हानी।
जदपि लाह-गृह तुम निर्मायी,
सके न पाण्डव अनल जरायी,
सरेउ तुम्हार तबहुँ सब काजू,
त्यागेउ अत अर्ध तिन राजू।
भये सार्वभौमहु जब पाण्डव,
सके द्यूत ते तुम हरि वैभव।
अजहुँ समर जो कछु तुम हारा,
छल ते सहज तासु उद्धारा।
सब विधि रिपु-बिनाश नृप-कर्मा,
आत्म-विनाश न क्षत्रिय-धर्मा।

दोहा :— देहहि महँ निवसत सकल, जेते जगत-प्रसङ्ग,
बिनसत जैसेहि पात्र यह, ढरकत सब तेहि सङ्ग। २३१

धारि मुनिन-व्रत, स्वाँग बनायी,
निवसहु कछुक दिनन बन जायी।
जाहिं हमहु निज निज गृह आजू,
लहहिं युधिष्ठिर धन, जन, राजू।
सम्बन्धी निज मोहिं बिचारी,
देहैं क्रम-क्रम वैर बिसारी।

पाय सुअवसर, करि सेवकाई,
लेहीं प्रीति प्रतीत बढ़ायी।
लहि प्रवेश तिन बिच इक बारा,
करिहीं कपट प्रपंच पसारा।
घुलि-मिलि नसिहीं अरि मैं छल-बल,
तोरत नर नवाय जिमि तरु-फल।
सके जिनहिं तुम रण नहिं नासी,
मरिहैं मम कर तें विश्वासी।
भेद नीति, विष पावक द्वारा,
सम्भव सहजहि अरि संहारा।

दोहा :— प्रकटेहु निरखि सुयोग तुम, लहेहु बहुरि निज राज,
तजि मायामय नीति यह, अन्य युक्ति नहि आज।"२२२

क्रोधित सुनि त्रिगर्त नररायी,
कृपहु खलहिं कटु गिरा सुनायी।
सुनि मत अगणित वैर-परायण,
प्रकटेउ मनस्ताप द्रौणायन—
"वाद-विवाद व्यर्थ यह सारा,
उचित सर्व विधि रिपु-अपकारा।
अरि-विनाश हित मैं प्रणवाना,
रण-सँग अब न वैर-अवसाना।
भीम-प्रणहु तें मम प्रण घोरा,
अरि-कुल निखिल नाश व्रत मोरा।
पशु सम करि पाञ्चाल वश बलि,
देहौं जनकहिं मैं रक्ताञ्जलि!
जब लगि हय, गय, सैनिक, स्यन्दन,
करहु शत्रु-प्रतिरोध रणाङ्गण।
रहिहैं जब नहि आयुध योद्धा,
लेहैं अन्य भाँति प्रतिशोधा।

दोहा :— *सेनप निज करि मद्रपति, बधहु शत्रु रण माहिं,*
करिहैं अन्य उपाय हम, लहिहैं जय जो नाहिं।"२२३

द्रौणि-वचन सुनि कुरु नरनाहा,
लहेउ धैर्य, उर नव उत्साहा।
पूर्व वचन पुनि निज सन्मानी,
चहेउ करन मद्रप सेनानी।
बोलेउ शकित शल्य सयाना—
"तुम सब हृदय पलायन ठाना।
पार्थ न केवल कर्ण सँहारा,
मनहु कीन्ह परास्त तुम्हारा।
जानत तुम, जेहि करत सैन्यपति,
हठि वधवावत ताहि वृष्णिपति।
सेनप-पद करि मोहिं प्रदाना,
चहत जो केवल मम बलिदाना,
सकिहौं मैं न ताहि स्वीकारी,
जदपि वृद्ध, मोहिं प्राण न भारी!
दीन्ह तुमहिं मैं सदा सहारा;
उचित न मम सँग यह खेलवारा।

दोहा :— चहत युद्ध पै आपु जो, बन्द-कन्द तजि भीति,
सकत अबहुँ मैं कृष्ण सह, पाण्डु-सुतन रण जीति।"२३४

रहित प्रपंच मद्रपति-वाणी,
मुदित त्रिगर्त-नाथ सन्मानी।
मौन सुबल-सुत मन मुसकायी,
लज्जित कुरुपति गिरा सुनायी—
"देहु विहाय तात! मन-शंका,
मम उर रच न अरि-आतंका।
लखि रण सुहृद-अनुज-वध घोरा,
केवल शोक-ग्रस्त मन मोरा।
समुझहु ताहि क्षणिक मन-मोहा,
उर सोइ साहस, सोइ अरि-द्रोहा।
एकाकी निज गदा-प्रहारा,
सकत नासि मैं अरि-दल सारा।

तदपि प्रात अतिरथि मिलि सारे,
रहिहैं रक्षक समर तुम्हारे।
करिहैं सब इक-एक सहायी,
जइहै कोउ न काहु विहायी।

दोहा :— *नासन हित संशय सकल, लेहु शपथ तुम तात।*
पञ्च महापातक लगहि, तजहि सँगाति जो प्रात। २३५

सोरठाः—*लखि रणेच्छु कुरुराय, उपजी हृदय प्रतीति पुनि,*
सबते शपथ कराय, स्वीकारेउ पद मद्रपति।
यहि विधि भट प्रण-बद्ध, हिमगिरि-प्रस्थ बिताय निशि,
प्रात शस्त्र-संनद्ध, गवने सज्जित सैन्य रण।

पाण्डु-सुतहु उत सब प्रणवाना,
"करिहैं आजु समर अवसाना।"
पहुँचेउ जैसेहि रण दल सारा,
श्रीहरि कौरवव्यूह निहारा।
लखि एकत्रित शूर प्रधाना,
शत्रु रहस्य हृदय अनुमाना।
स्वदल चमूपति निकट हँकारे,
अरि दरसावत वचन उचारे—
"जुरेउ एक थल भट समुदायी,
भ्रान्त भीत मोहिं परत लखायी।
मनहुँ सकल अन्योन्य-विशंकी,
युद्धन चहत न कोउ एकाकी।
तुमहु सकल मिलि मद्रप ओरा,
करहु ससैन्य आक्रमण घोरा।
प्रथम एक ते इक बिलगायी,
जीतहु सबन पृथक, असहायी।

दोहा :— *मृत्यु-भीति जिन उर बसति, सहजहि ते रण जेय,*
उत्पाटहु किल्विष विटप, लहहु आजु निज ध्येय।"२३६

सोरठा:—*अस भाषत भगवान, पार्थहि ले तेहि दिशि बढ़े,*
इन्द्रहि यज्ञस्थान, लिये जात मानहुँ मरुत।

बाजे निशि-प्रसुप्त पणवानक,
रणारंभ, आक्रमण भयानक।
विनसेउ वाणन शत्रु-द्विरद-दल,
छिन्न प्रवात मनहुँ घन-मण्डल।
ध्वसित रथ, अगण्य सग्रामा,
अनल-दग्ध जनु धनिकन-धामा।
उमहि धर्म-दल बहेउ अपारा,
जनु कल्पान्तक पारावारा।
रिपु प्रधान इत-उत बिलगाने,
युद्धत द्वीप समान लखाने।
प्रकटेउ विक्रम धर्म नरेशा,
लहि एकाकि वधेउ मद्रेशा।
पार्थ-धनुप जनु ग्रीष्म विवस्वत,
अरि-दल शुष्क शरांशु वापि वत।
संशतक गोपालहु सारे,
सहित सुशर्मा समर सँहारे।

दोहा:—*भीम सर्व कुरुपति-अनुज, बधे खोजि सावेश,*
नकुल निपातेउ कर्ण-कुल, जल-दातहु नहि शेप। २१७

धृष्टद्युम्न लहि रण दुर्योधन,
हति हय-सारथि भंजेउ स्यंदन।
रथ-विहीन, विकवच, असहायी,
तजेउ सभीत समर कुरुरायी।
जाय दूरि निरखेउ सग्रामा—
युद्धत कृप, कृत, अश्वत्थामा।
चहेउ जान जैसेहि तिन ओरा,
सुनेउ वृकोदर-गर्जन घोरा।
विकल, पलायित, उर-उत्कपन,
मृग जनु सुनि केहरि-रव कानन।

भागत चहुँ दिशि लखत सशोका,
शकुनिहिं दच्छिण ओर विलोका।
क्षत-विक्षत सहदेव-शिलीमुख,
शकुनिहु लखे सुयोधन सन्मुख।
लहि अवलंब पलायन-विह्वल,
धायेउ दुर्योधन दिशि सौवल।

दोहा :— *रोधेउ पथ पै माद्रि-सुत, तजे बाण पै बाण,*
कपट-द्यूत-पटु काटि कर, हरे कुटिल-मति प्राण। २३८

सोरठा :— *अर्जुन सात्यकि साथ, युद्धत कृप, कृत, द्रौणि उत,*
लखे न कहुँ कुरुनाथ, त्यागी तीनहु रण-मही।
पाण्डव दल जय-घोष, विजय-वाद्य शत-शत बजे,
भीमहि एक सरोष, गर्जत खोजत कुरुपतिहि।

काँपत सुनि सुनि स्वर कुरुनाथा,
सैन्य न स्वजन, न वाहन साथा।
एकादश अक्षौहिणि-स्वामी,
भृत्य-विहीन, दीन, पद-गामी।
सुप्त हृदय सहसा सब भावा,
सजग एक भय मानस छावा।
जस जस भीम-नाद नियराना,
तस तस अधिक भये प्रिय प्राणा।
दृगन गाढ़ तम, सलिल-प्रवाहा,
सूझत पथ न, विकल नरनाहा।
श्रान्त शरीर, स्वेद, उसासा,
कंपति चरण जियन-अभिलाषा।
गिरत-परत मृतकन चढ़ि धावत,
शत्रु-दल दुरत लखत कोउ आवत।
व्यूह-पार काहू विधि जायी,
रण-महि लखी घूमि कुरुरायी।

दोहा :— *बूडत नर जिमि तट पहुँचि, मुरि निरखत जल ओर ,*
निरखेउ कुरुपति तिमि अगम, रण सागर अति घोर । २३६

गिरि-नद सम कुरुनाथ-शुराई ,
बहत बोरि तट हिम-जल पायी ।
धावत घहरि प्रवाह विनासी ,
ध्वसत सस्य, विटप, तट-वासी ।
भये क्षीण हिम, पुनि सोउ क्षीणा ,
सहसा उग्र प्रवाह विलीना ।
रहत सलिल नहिं बूँदहु शेषा ,
केवल पथ ध्वंस-अवशेषा ।
तिमि पर-पोषित, अब असहायी ,
निरखेउ कुरुक्षेत्र कुरुरायी ।
आपुहि चकित निरखि निज करनी ,
पाटित शव-समूह रण-धरणी ।
नाना-आकृति मृत भयदायी ,
जनु विभीषिका तनु धरि आयी !
दिशि दिशि दारुण मुण्डन-ढेरी ,
करि परिहास रहीं जनु हेरी ।

दोहा :— *पङ्किल महि शोणित वसा, अस्थि केश अथार ,*
मुख सोवत निष्प्राण भट, आहत हाहाकार । २४०

शीर्ण शीश कोउ परिघाघाता ,
कोउ विदीर्णित गदा-निपाता ।
परशु-छिन्न कोउ अँग-प्रत्यगा ,
मर्दित कोउ रथ तुरग मतंगा ।
बाण-विद्ध कोउ निखिल शरीरा ,
घूर्णित लोचन व्यथा-अधीरा ,
उठि उठि व्याकुल गिरत अभागी ,
याचत मृत्यु, मिलति नहिं माँगी ।
कोउ निरायुध, रहित परिच्छद ,
आहुँ क्रोध उर, दष्ट रदच्छद ,

बद्ध मुष्टि युग, तीव्र उसासा,
निंदत विधिहिं, लखत आकाशा।
कोउ अधोमुख कर-पद-विरहित,
श्वसत मुमूर्षु रक्त निज मज्जित।
छटपटात कहुँ हय गय विह्वल,
दिशि दिशि हिंसक पशु कोलाहल।

दोहा :— *उड़त श्येन बहु घेरि शव, गिद्ध काक मँडरात,*
धावत श्वान शृगाल लरि, कपि अर्ध-मृत खात। २४१
बरनत जे अगणित नरक, पापिन हेतु पुराण,
तिन ते भीषण दृश्य लखि, सिहरे कुरुपति-प्राण। २४२

सोरठा:—*अकस्मात तेहि काल, निकसे तेहि पथ व्याध कछु,*
कज्जल असित कराल, पाश-हस्त यम-भृत्य जनु।
प्रेरित जनु भवितव्य, शंकित तरु गुल्मन दुरत,
धँसेउ भीत कौरव्य, द्वैपायन-ह्रद-ढिग निरखि।

ठिठके व्याधहु नृपहिं निहारी,
चकित विलोकि धँसत ह्रद-वारी।
लखि पुनि दिवसहि रण-अवसाना,
नृप-अपयान वृत्त अनुमाना।
अनुहरि वृत्तिहि मनुज स्वभावा,
लोभ लुब्धकन हृदय समावा।
प्रविशि विजेता-शिविरन निर्भय,
दीन्हेउ भीमहिं कुरुपति-प्रत्यय।
रहेउ जो निमिष पूर्व नृप-नाथा,
बेचेउ व्याधन तेहि अरि-हाथा।
हर्ष हिलोर लहत सवादू,
उठित अयस्कद जय-नादू।
लै श्रीहरि, सात्यकि, पाञ्चाला,
धायेउ सानुज धर्म भुआला।
रथ-घर्घर, कोलाहल घोरा,
घेरेउ सर विशाल चहुँ ओरा।

दोहा :— तुमुल शब्द कुरुपति सुनेउ, गुप्त दीर्घिका-गेह ,
विस्मित, उद्वेजित हृदय, कम्पित नख-शिख देह । २४३

सोरठा.— कलरव, स्यंदन-ध्यान, भये मंद क्रम-क्रम सकल ,
मंदर-नाद समान, गूँजेउ मथि हृद भीम-स्वर—

"रे रे कुमति ! विषान्न-प्रदाता !
पामर ! लाह-गेह-निर्माता !
कुलाङ्गार ! बान्धव-अपकारी !
द्यूत-प्रवंचि राज्य-अपहारी !
धन, धरणी, यौवन-अभिमानी !
सभा-भवन कुल-तिय अपमानी !
श्रीहरि - बंध - प्रपंच - विधाता !
सूचिकाग्र-महि-लेश न दाता !
समरानल सुलगावन हारा ,
भीरु ! सुभद्रा-सुत-हत्यारा !
सतत निज-भुज-शौर्य-प्रलापी !
लाज न पंक दुरत अब, 'पापी !
रण करवाय वंश अवसाना .
भये तोहिं प्रिय पापी प्राणा ।
पै रण-सिन्धु कीन्ह जिन पारा ,
दुरि सर तिनते अब न उबारा !

हा :— धँसिहै अतलहु जो अधम, करिहौ तहँहु प्रवेश ,
मोहि भजे बिनु तव जघन, वृथा राज्य, जय, देश । २४४
कीन्ह कलंकन कुल विमल, धिक! धिक! शत-शत बार ,
शेष जो पौरुष, त्यागि हृद, सहु मम गदा प्रहार !" २४५

रठा:— जदपि आपदा ग्रस्त, पराभूत, सर्वस्व हृत ,
मानस्तुति अभ्यस्त, सकेउ न सहि नृप अरि-गिरा ।
सुनि आह्वान कराल, नष्ट भीति जीवन-तृषा ,
उर मानानल-ज्वाल, बरसे अंगारक वदन—

"भीत न मैं, नहिं प्राणन-मोहू,
अव लगि रोम रोम विद्रोहू।
आयेउँ लहन स्वल्प विश्रामा,
करत प्रभात बहुरि संग्रामा।
पै मम-कृत अपमान-कहानी,
निज मुख जो तजि लाज बखानी,
वदी-वाणी सम सोइ लागी,
जाग्रत मैं श्रम तद्रा त्यागी।
विजित न जब लगि समर सुयोधन,
असमय तब लगि विजय-विकत्थन।
पूछत पै मैं कृष्णहिं आजू,
धर्म तुम्हार कहाँ यदुराजू!
केहि रण-नीति-नियम अनुसारा,
सब मिलि एकहिं चहत सँहारा?
युद्धहिं एक एक जो आयी,
सकत सबहि मैं समर सोवायी।

दोहा :— *पाँचहु पाण्डव, शिनि-सुवन, सृञ्जय, तुम यदुनाथ!*
चहत जान यम-धाम जो, करहि समर मम साथ!"२४६

सोरठा :—*क्रोध निहाल भुआल, अस भाषत ,गहि कर गदा,*
प्रकटेउ मानहुँ व्याल, फुफकारत तजि ह्रद-सलिल।

शोणित-सलिल-प्रसिक्त नरेशा,
पंकिल वसन, विशृंखल केशा।
लखि कुनेप सोमक-समुदायी,
करि करतल-ध्वनि हँसे ठठाई।
अपमानित नृप कहत कुवाणी,
तिन दिशि बढ़ेउ गदा कर तानी।
धाय, बाहु गहि, नृपहिं निवारी,
भाषेउ हरि समीप बैठारी—
"जदपि भवन, रण-भूमिहु माहीं,
पालेउ कबहुँ धर्म तुम नाहीं

क्षमी तथापि धर्म नरनाथा,
तजत न धर्म अधर्महु साथा।
करिहैं आर्योचित आचारा—
नृप-सँग नृपति-योग्य व्यवहारा।
निरखहु ! देत धर्म नरनाहा,
तुमहिं शिरस्त्र हेम सनाहा।

दोहा :— धारहु वर्म नवीन अँग, गहहु गदा निज हाथ,
युद्धहु तजि उर भीति भ्रम, एक वृकोदर साथ।"२६७

सोरठा :—सुरस लब्ध ताम्राभ, धारेउ कुरुपति वर्म तनु,
तेहि क्षण हिमशैलाभ, पहुँचे हलधर ताहि थल।
सुनि सब विग्रह-गाथ, निरखि रणोद्यत शिष्य दोउ,
गवने लै निज साथ, थल स्यमंत-पञ्चक सबहिं।
सरस्वती सरि-तीर, स्वर्ग-द्वार सम तीर्थ शुचि,
गुरुपद वंदि प्रवीर, भीम सुयोधन रण बढ़।

गदा हस्त दोउ तनु उत्तुङ्गा,
शोभित जनु नग युग सह शृङ्गा।
लखि एकैक वक्रभ्रू, गर्जन,
रोष अनल उर, ज्वाला नयनन।
अधरस्फुरण, कण्ठ कटु वाणी,
रहे मौन पै गुरु सन्मानी।
उत्थित गदा गुर्वि, गिरि-सारा,
आरंभेउ समुहाय प्रहारा।
मनहुँ द्विरद-द्वय दंताघाता,
चहत क्रुद्ध अन्योन्य निपाता।
गत-प्रत्यागत, मण्डल-विचरण,
महा रौद्र रण लोम-प्रहर्षण।
मही चरण-निर्घात प्रचण्डा,
दमकत अंतराल भुज-दण्डा।

पुनि पुनि घोर गदा-संघर्षण,
भुवन-व्यापि जनु वेणुस्फोटन।

दोहा :— *अग्नि-कणन परिवृत सुभट, शोभित दोउ विशाल,*
उड़त ज्योतिरिङ्गण मनहुँ, घेरि महातरु शाल। २४८

शत शत निर्दय करत आक्रमण,
रक्त-सिक्त दोउ नख-शिख भीषण।
धावत क्षत-विक्षत अँङ्ग अंगा,
रुधिर-गंध जनु मत्त मतंगा।
शोणित-परिसुत गदा भँवायी,
हनत गरजि अरि-छिद्रहिं पायी।
मूर्त सत्व दुर्योधन भीमा,
बल अगाध, अभ्यास असीमा।
जानत गति-विधि दोउ अनंता,
दुराधर्ष, दुर्जेय, दुरन्ता।
प्रकटत कौशल, भुज-बल-वैभव,
सकत न करि इक-एक पराभव।
युद्धत वध-प्रण-नद्ध वृकोदर,
क्रुद्ध, रौद्र मानहुँ यम-सहचर।
जानि पणीकृत रण निज प्राणा,
युद्धत कुरुपति करि छल नाना।

दोहा :— *बढति, बुझत जिमि दीप-द्युति, तिमि सतेज कुरुनाह,*
लब्ध-सधि ध्वसेउ गरजि, पाण्डु-सुवन-सनाह। २४६

सोरठा:— *कपट-कुशल समुदाय, कर-लाघव प्रकटाय पुनि,*
भीम-दृगन चौंधाय, हनी घोर सहसा गदा।

लागेउ वक्षस्थल आघाता,
शैल-शृङ्ग जनु अशनि-निपाता।
अविचल तबहु भीम बलवाना,
रक्त-विपाटल तनु-परिधाना।

स्वरस-प्रसिक्त मनहुँ अति साला,
रक्त भद्रश्री-विटप विशाला।
आपुहि सधृति कीन्ह पुनि धावा,
मुरि कुरुपति-आक्रमण बरावा।
क्रोधित भीम भैरवाकारा,
कर्षेउ बाहु देह-बल सारा।
बढ़त अरिहिं लखि कुरु नरनाहा,
धसि महि दाँव बरावन चाहा।
गुनि दुर्योधन-युक्ति भीम मन,
कीन्हेउ वितथ प्रहार-प्रदर्शन।
धसि महि उछरेउ कुरुपति जैसे,
हनी गदा उरु पाण्डव तैसे!

दोहा :—*अंतराल दमकी निमिष, लागी कुलिश कराल,*
भग्न जघन, नृप महि पतित, छिन्न-मूल जनु शाल। २५०

सोरठा —*भरित-रोष-प्रतिकार, सके न संयम भीम करि,*
कीन्हेउ चरण-प्रहार, महिशायी अवनीश-शिर।

व्याकुल लखि अभद्र व्यवहारा,
धाय धर्म नृप अनुज निवारा।
हलधर सदा सुयोधन-वत्सल,
छलकेउ दशा विलोकि नयन जल।
पद-ताडित पुनि लखेउ भुआला,
सहज अमर्षि, हृदय रिस-ज्वाला।
आनन अरुण स्वेद कण झलके,
औपसि नभ तारक जनु चमके।
भाषेउ हरि प्रति धृति मति त्यागी,
बरसी तुहिनशैल जनु आगी—
"युद्ध-नियम खल भीम निसारा,
कीन्ह नाभि-तल नीच प्रहारा।
तोषेउ तबहुँ न यह मदमाता,
कीन्ह पतित-शिर पद-आघाता।

दीन्हे बिनु यहि दण्ड कठोरा,
लहिहै शान्ति हृदय नहिं मोरा।"

दोहा:— अस कहि विस्मित भीम दिशि, गहि हल हस्त कराल,
चढे हलायुध उग्र-वपु, मूर्त कुपित जनु काल। २५१

सोरठा.—लखि धाये यदुनाथ, भरेउ भुजन हठि अग्रजहि,
सानुराग गहि हाथ, विनयान्वित भाषी गिरा—

"पतित, प्रताडित सह-अनुभूती,
संतत संतन-हृदय-विभूती।
तेहि पै पद-प्रहार करि भीमा,
तजी धर्म मर्यादा सीमा।
गर्हित यह कुकृत्य, अविचारा,
अनुचित रंच न रोष तुम्हारा।
पै तनु-पीडहु ते बढ़ि ताना!
दारुण अन्तस्थल-आघाता।
कुरुपति सभा कपि पाञ्चाली,
कहि दासी जो कीन्हि कुचाली,
लखि अमर्षि, असहाय विषादी,
क्रम-क्रम भीम भये उन्मादी।
भजेउ जघन प्रणहि अनुसारा,
जनित अमर्षहि चरण-प्रहारा।
देह-वेदना-पीडित आजू,
दया-पात्र जिमि कौरव राजू,

दोहा:— क्षमा-पात्र तिमि पाण्डु-सुत, अन्तर्दग्ध विषाद,
चिर वंचित निज स्वत्व महि, याचत तात-प्रसाद।"२५२

सोरठा:—उग्र निसर्ग-स्वभाव, लहेउ न हलधर तोष सुनि
हिय पाण्डव-दुर्भाव, गवने द्वारावति कुपित
उत तनु रोष-तरङ्ग, कुहनिन-भर कुरुपति उठेउ,
जनु विच्छिन्न भुजङ्ग, भाषे हरि-प्रति विष-वचन—

"कंस-दास-सुत, तुम कुल-हीना,
रहित राज्य-पद, कपट प्रवीणा।
धर्म-व्याज निज मान बढ़ावत,
फिरत सबहिं उपदेश सुनावत।
दीन पाण्डु-सुत तुम भरमाये,
निज यश पै न मोहिं करि पाये।
जे यहि जग श्री-हीन, अभागी,
गहत धर्म धन-अर्जन लागी,
कल्पित परलोकहिं नित बरनी,
हरत आढ्य-मूढ़न धन-धरणी।
मैं नृप-सुत, महि-विभव-समन्वित,
मूढ़हु नहिं, जानत हित-अनहित।
नहिं श्रुति-हित मम उर सन्माना,
पंथ अन्य मम, शास्त्रहु आना।
जे चार्वाक मार्ग-अनुगामी,
धर्म-भीरु नहिं, ते सुख-कामी।

दोहा — *याचत नहिं करुणा-दया, करत न शोक-विलाप,*
अजहुँ मुँदत दृग मम हृदय, स्वल्प न पश्चात्ताप। २५२

मानत जो मैं धर्म तुम्हारा,
लहत अराति राज्य-अधिकारा।
होत युधिष्ठिर धन-जन-स्वामी,
मैं कर-बद्ध चरण-अनुगामी।
सेवत तेहि, लखि जाहिं जरत मन,
जीवन नट वत् परत बितावन।
सिखवत धर्म, जो अस व्यवहारा,
अधमहि करत ताहि स्वीकारा।
मोहिं मनस्विन-मार्गहि भावा,
गहि तेहि मही-मान मैं पावा।
करि अरि पराभूत, हरि शासन,
वर्ष त्रयोदश बसेउँ सिंहासन।

सुर-दुर्लभ, मैं कीन्ह विलासा,
एकहु शेष न उर अभिलाषा।
जदपि कण्ठ-गत अब मम प्राणा,
न्यून न मम महिमा, अभिमाना।

दोहा :— *सकिहैं कबहुँ न शत्रु ये, तिय-अपमान बिसारि,*
सोइ अनश्वर मम विजय, यह मम हारि, न हारि। २५४

सोरठा.—*जब लगि ज्ञानि-गरिष्ठ, जीवित गुरु चार्वाक मम,*
तब लगि वसुधा-पृष्ठ, सकत न सुख नसि पाण्डु-सुत।"
प्रलपत यहि विधि क्रान्त, परेउ अवनि तल नृप बहुरि,
लखि मुमूर्ष, उद्भ्रान्त, भाषेउ हरि कर शीश धरि—

"विजय-पराजय-वाद न आजू,
व्यर्थहि लहत व्यथा कुरुराजू!
थित तुम यहि क्षण मृत्यु-दुआरे,
उघरि रहे परलोक किँवारे।
तनु सँग होत न तत्त्व विनाशा,
लहिहौ निमिष माहिं तुम भासा।
इतनहि तात! सुनहु धरि ध्याना,
उचित न अंत समय अभिमाना।
आर्य-हृदय अस होत न मोहा,
यह दानव-मद तुमहिं न सोहा।
सयम सदृश न साधन आना,
क्षोभ विहाय तजहु तुम प्राणा।
सके न जिन पैं रण जय पायी,
सकत नेह ते अबहुँ हरायी।
अमृत प्रेम, द्वेष विष जानी,
नव पथ पथिक होहु नव प्राणी।

दोहा :— *जिये मरे तुम आपु हित, भयेउ नरक संसार,*
गहहु क्षमा-अनुराग-पथ, उघरहि स्वर्ग-किवार।" २५५

दोहा :— *बरसेउ हरि लोचन सलिल, दया-द्रवित भगवान,*
विगत ताप प्रभु-मुख लखत, त्यागे कुरुपति प्राण। २५६

सोरठा:—*धर्म नृपहु दृग नीर, हर्ष-हीन भीमहु हृदय,*
नत-आनन, गम्भीर, फिरे विषएण निवेश सब।

पाँचहु पाण्डव सात्यकि साथा,
गवने कुरु शिविरन यदुनाथा।
लखे भीम-भय दासी दासा,
सकल पलायित तजि रनियासा।
क्रन्दत कौरव-तिय हत-नाथा,
चहत जान पुर भीत, अनाथा।
पंथ अपरिचित, अनुचर-हीना,
भटकत इत-उत दीन, मलीना।
रविहु-अदृष्टपूर्व जे बाला,
पूछत ग्वालन मार्ग विहाला।
व्याकुल पाण्डव दृश्य विलोका,
नेहस्निग्ध हरेउ भय शोका।
धन-मणि-राशिहु बहुरि सँभारी,
सौंपी सकल- युयुत्सु हँकारी।
दै कुँवरहिं वाहन नृप ज्ञानी,
पठयीं कुल-तिय पुर सन्मानी।

दोहा :— *लिये संग भ्राता सकल, शिनि-नन्दन, यदुनाथ,*
ओघवती सरि लगि गयेउ, तियन-साथ- नरनाथ। २५७

विरमि तहाँ लखि श्रीहरि ओरा,
कह नृप—"नाथ! विकल मन मोरा।
हत शत सुवन समर महि माहीं,
वंशजनहु जीवित कोउ नाहीं।
मज्जित शोक-समुद्र अथाहा,
बिनु आधार वृद्ध नरनाहा।

देहु नाथ ! जो मोहिं निदेशा,
करहुँ अनहिं मैं पुरी प्रवेशा।
अथवा आपु जाय यदुरायी !
तोषहु मम पितृव्य बुझायी।
पतिव्रता गान्धारिहु अम्बा,
वस्त्रावृत दृग, निज अवलम्बा।
सींचि शान्ति-वाणी वर वारी,
तुमहिं सक्त प्रभु दोउ सँभारी।
होइहैं तहँ व्यासहु मुनिरायी,
करिहैं तात ! तुम्हारि सहायी।

दोहा :— *सुमिरि सुमिरि गान्धारि-मुख, सुत-वियोग-दुख-दग्ध,*
*लागति लक्ष्मी मोहिं गरल, बधु-नाश-उपलब्ध।"*२५८

सोरठा—*सुनि चिन्तित भगवान, गुनि अयुक्त नृप पुर गमन,*
गजपुर कीन्ह प्रयाण, आपुहि सरि-तट तजि नृपहि।

लखे दूरि कछु यदुपति जायी,
गवनत पुरी व्यास मुनिरायी।
तजि रथ प्रभु मुनिपद शिर नावा,
मिलि सप्रीति स्यदन बैठावा।
पथ सुनि श्रीहरि-मुख रण-गाथा,
भाषे विपद वचन मुनिनाथा—
"दुर्विद लीला नाथ ! तुम्हारी,
सकत को समुझि मर्म तनुधारी।
सूत्र ज्ञान-विज्ञान-प्रसारा,
स्वल्पहि दृष्ट, अदृष्ट अपारा।
रण सम नहिं कछु घोर अमंगल,
साधत जन-मंगल तुम तेहि पल।
रणारण्य भीषण महि आजू,
लहिहै शक्ति, सुशान्ति, सुराजू।
निराता जिमि कक्ष उजारी,
करत सयत्न धान्य रखवारी।

दोहा :— खल गण तिमि निर्मूलि तुम, रच्छे पाण्डव-भक्त ,
कीन्ह सुदृढ निर्माण तुम, आर्य-राष्ट्र अविभक्त ।"२५६

सोरठा:—सुनि सस्मित विश्वेश, पूछेउ मुनिहि अजान जनु—
"को अब भारत शेष, धर्मज-राज्य न जाहि प्रिय ?"

मर्म प्रश्न सुनि मुनिमन शोचू ,
उत्तर देत हृदय संकोचू—
"अब लगि नाथ ! द्रौणि-उर क्रोधा ,
लै न सकत पै रण प्रतिशोधा ।
तजि यदुजन कोउ शेष न आजू ,
सकहि बिनासि जो धर्मज-राजू ।
यदुवंशिहि स्ववृद्धि-अभिलाषी ,
अबहुँ सकल साम्राज्य-उपासी ।
पाण्डव-द्वेष सबन उर माहीं ,
पै प्रभु-भय प्रकटत कोउ नाहीं ।
मम मत इक शिनि-नदन त्यागी ,
एकहु नहिं धर्मज-अनुरागी ।
जानत तुम सो सब यदुरायी !
काहे मम मुख रहे कहायी ?"
अस कहि गही मौन मुनि धीरा ,
मौन आपु हरि, वदन गँभीरा ।

दोहा :— प्रविशि पुरी निरखेउ दुहुन, नृप-प्रासाद प्रशस्त ,
शोकित जनु नदन विपिन, यातुधान - विध्वस्त । २६०

लखे अंध अवनिप गान्धारी ,
मनहुँ शोक करुणा तनु-धारी ।
दाहे सुवन-बिनाश विषम ज्वर ,
विदुरहु धीरज-वचन अगोचर ।
द्वैपायन-आगमन जनायी ,
वंदे पद हरि, नाम सुनायी ।

प्रविशे श्रुति जस दोउ अभिधाना,
नृप निर्जीव लहे जनु प्राणा।
मुनि-हरि दुहुन चरण अकुलायी,
बिलखत गहे दीन नररायी।
सकरुण हरि बोधेउ गहि पाणी,
कही मुनिहु समयोचित वाणी—
"जल-बुदबुद वत् सुत धन गेहा,
उचित असीम न तिन प्रति नेहा।
दुर्नय-उदधि स्वकर निर्मायी,
बूडे शत सुत सहित महायी।

दोहा :— *हरि, नारद, विदुरहु, महँ, दीन्ह तुमहि बहु ज्ञाय,*
कीन्हे तुम महि-लोभ-वश, काहु वचन नहि कान। २६१

एक वार हालाहल खायी,
निशरात नहि प्रभाव पछितायी।
कीन्हें शोक न अब निर्वाहा,
बहत विषाद न अश्रु-प्रवाहा।
ज्ञानहि ओषधि तेहि हित एकू,
गहहु धैर्य, नहिं तजहु विवेकू।
सकत बराय न वाडव सागर,
क्षय नहिं सक्त निवारि क्षपाकर।
राहु अवार्य भानु हित जैसे,
मृत्यु अवार्य मर्त्य हित तैसे।
चय परिणाम क्षयहि जग माहीं,
कहँ प्रकर्ष अवनति जहँ नाहीं?
जहाँ लाभ तहँ अन्तहु हानी,
सकल तात! दुःखान्त कहानी।
मिलन जहाँ तहँ अंत विछोहू,
अस गुनि संत हृदय नहिं मोहू।

दोहा :— *ममतहि मूल विषाद-तरु, ताहि विरक्ति-उपारि,*
यापहु जीवन शेष तुम, तथा प्रपंच विसारि।"२६२

सुनि मुनिवर्य विशद वर वचनन,
भाषेउ विलपि अम्बिका-नंदन—
"कहेउ सत्य सब तुम मुनिरायी !
सकत न पै मैं सुत विसरायी।
मैं अनेत्र निज पुत्र न देखे,
प्राणाधिक जन्महि सुनि लेखे!
सुनि बहोरि आत्मज कल भाषण,
बरसेउ अमृत जनु मम श्रवणन।
परमानंद जो वेद बतावा,
सुत बैठाय अंक मैं पावा।
सुनि सुनि शिशु-क्रीडन, रस रंगा,
उडत प्राण मम जनु तिन संगा!
एकहि सुरतरु सुरपति-कानन,
विलसे शत मम मन्दिर प्राङ्गण!
नष्ट आजु ते शत इक साथा,
केहि विधि धैर्य धरहुँ मुनिनाथा!

दोहा :—*निष्ठुर, अशनिहु ते कठिन, तात! दग्ध ये प्राण,*
सुनि भीषण संवाद जो, करत न अघी प्रयाण।"२६२

सोरठा:—*सुनि पति आर्त विलाप, पतिव्रता गा-धारजा,*
भरित हृदय संताप, कुपित वचन हरि प्रति कहे—

"तुम मम गृह-सुख-उपवन-शूला,
निखिल भरत कुल तुम निर्मूला।
निज दल तुम मम सुवनहिं दीन्हा,
पाण्डु-सुतन नेतृत्वहु कीन्हा।
कुरुक्षेत्र-रण तुमहि प्रणेता,
जयी न पाण्डव, तुम रण जेता।
तजि कृतवर्मा सात्यकि दोई,
युद्धेउ आय न यदुजन कोई।
रच्छे सोऊ तुम रण माहीं,
रच्छेउ एकहु सुत मम नाहीं।

निज कुल-वृद्धि हेतु तुम सारा,
रचि रण कौरव-कुल संहारा।"
अस कहि हरिहिं रोष जनु जारी,
दारुण शाप दीन्ह गान्धारी—
"जस गृह-कलह भरतकुल-नाशा,
तैसेहि यदुकुल लहहि विनाशा।

दोहा:— *पुत्र, पौत्र, भ्राता, स्वजन, बचहि वश नहि कोय,*
एकाकी, निर्जन विपिन, अंत तुम्हारहु होय।" २६४

विस्मित सुनि मुनि हरि दिशि हेरा,
वदन सौम्य सोइ शान्ति बसेरा।
भाषेउ तापित तपोनिधाना—
"कीन्ह काह तुम यह भगवाना!
कहे वचन जो मैं पथ माहीं,
तथ्य अतथ्य विदित मोहिं नाहीं।"
सुनि मुनिवरहिं श्याम समुझावा,
निज मुख यदुजन-अनय सुनावा।
मर्म-युक्त हरि-मुनि-संवादू,
सुनि अभिनव नृप-हृदय विषादू।
गान्धारिहु उर उपजी ग्लानी,
सुमिरि सुमिरि निज शाप लजानी।
भाषेउ पाद प्रणत घनश्यामा—
"मातु! यशस्विनि तुम तप-धामा।
सती-शिरोमणि तुम कुल-नारी,
लेत शाप मैं निज शिर धारी।

दोहा:— *याचत इतनहि पद-रत, त्यागहु रोष अपार,*
पाण्डु-सुवन, गुनि पुत्रवत्, करहु प्रीतिव्यवहार।" २६५

अस कहि शोक-निवारण लागा,
मुनिहिं वृद्ध दम्पति ढिग त्यागी

माँगि बिदा गवने यदुरायी,
लखे पाण्डु-सुत सरि-तट जायी।
धर्मज व्यथित वृत्त सुनि सारा,
निर्विकार हरि शोक निवारा।
पुनि प्रसन्न लखि निर्मल नीरा,
भाषेउ नृपहिं वचन यदुवीरा—
"गत निशि अर्ध, मोर मन माहीं,
गवनहिं अब निवेश हम नाहीं।
सरि पुनीत यह, सकल सुपासा,
मंगलेच्छु निशि करहिं निवासा।"
विपिन जन्म, तीर्थन-अनुरागी,
श्रीहरि-गिरा नृपहिं प्रिय लागी।
सुनि सब दिन-श्रम-श्रान्त शरीरा,
सोये निशा ओघवति-तीरा।

दोहा:— *इप, छल-रचित द्रौणि उत, करि निशि शिविर प्रवेश,*
हते सुप्त सोमक सकल, द्रौपदि-सुतहु अशेष। २६६

फिरे प्रात हरि-सह जब पाण्डव,
लखेउ निवेश दग्ध जनु खाण्डव।
निहत सुहृद, सम्बन्धी सारे,
निर्मूलित निज शिशुहु निहारे।
पितु, भ्राता सुत-सर्व-वियोगिनि,
पतित, विचेतन द्रौपदि मेदिनि।
कहि—"जीतिहु मैं रण यह हारा",
धर्मज दृगन बही जल-धारा।
सव्यसाचि-उर भीषण क्रोधा,
जागेउ निशिहि-सुप्त प्रतिशोधा।
निरखत अरि-रथ रेख जनार्दन,
हाँकेउ बहुरि धनंजय-स्यन्दन।
उत द्रौणिहु भागीरथि-तीरा,
आवत लखे पार्थ यदुवीरा।

जानि न बचत अन्य विधि प्राणा,
ब्रह्म शिरास्त्र विप्र सधाना।

दोहा :— तजेउ अर्जुनहु अस्त्र सोइ, करि दोउन पुनि शान्त,
बाँधेउ स्यंदन गहि द्विजहि, भय विह्वल, उद्भ्रान्त। २६७

सोरठा:—प्रेरे हय यदु-दीप, पहुँचेउ सत्वर रथ शिविर,
शोकित प्रिया-समीप, लाये अर्जुन अरि विजित।

सन्मुख जीवित शत्रु निहारी,
गिरा अमर्षित भीम उचारी—
"पापी यह पिशाच, हत्यारा,
लखतहि कस न सखहिं संहारा।
जदपि विप्र यह, वध नहिं अनुचित,
आततायि नहिं शास्त्र-सुरक्षित।
हति शिशु शूरहु सुप्त अशंका,
कीन्ह कलंकित कुल अकलंका।
द्रौणाचार्य स्वधर्म बिसारा,
धन-हित क्षात्र-कर्म स्वीकारा।
नीच सुवन, तजि शूरहु धर्मा,
कीन्ह जघन्य जनंगम-कर्मा।
गुनि द्विज यहि हम समर बचावा,
दारुण आजु तासु फल पावा।
अनहिं निपातत मैं चाण्डाला,
खाहिं अधम तनु श्वान शृगाला।

दोहा :— पूर्ण युद्ध-क्रतु मोर यह, अवभृथ रक्तस्नान",
अस भाषत रोषाश्रु दृग, काढेउ भीम कृपाण। २६८

सोरठा—लज्जा-रज मुख म्लान, रज्जु-बद्ध बलि-पशु मनहुँ,
सिहरे द्रौणी प्राण, सन्मुख खड्ग कराल लखि।

सोरठा:—सहसा करुणा-वारि, बहेउ द्रुपद-नंदिनि दृगन ,
विलपति पतिहि निवारि, दया-आर्द्र भाषे वचन—

"छमहु नाथ ! यह दासि अभागी ,
याचति प्राण-दान द्विज लागी ।
विष-पादपहु रोपि निज आँगन ,
करत न कोउ स्वकर उत्पाटन ।
ये तौ गुरु-सुत, पावन नाता ,
पूज्य गुरुहि-सम गुरु-अँगजाता ।
कीन्हे गुरु जे अस्त्र-प्रदाना ,
रच्छे तिन तुम्हार रण प्राणा ।
तिनहि सहाय शत्रु सहारी ,
आजु राज्य जय तुम अधिकारी ।
लहेउ यहहि गुरु प्रत्युपकारा ,
रण नित सहे तुम्हार प्रहारा ।
पितु-वध-क्रोधित, विस्मृत-नाता ,
धृष्टद्युम्न गुरु स्वकर निपाता ।
करि इन रात्रि तासु प्रतिकारा ,
निखिल पितृकुल मम सहारा ।

दोहा :—समर-मही तजि अन शिविर, प्रविशेउ यह प्रतिशोध ,
विनसत शय्या सुप्त नर, शिशु विश्वस्त, अबोध । २६८

विनसेउ दोष न करि प्रतिदोषा ,
भयेउ रोष ते शान्त न रोषा ।
द्विजहु-हृदय करुणा नहिं जागी ,
कीन्हि छमा-जल शान्त न आगी ।
निर्बल कबहुँ न होत उदारा ,
तुम बलशील तजहु प्रतिकारा ।
धारहु छमा-भाव हृद्धामा ,
वैर-चक्र यह लहहि विरामा ।
वधेउ इनहिं निज सुत, पितु, भाई ,
सकति न नाथ ! बहुरि मैं पायी ।

दैव-विहित यह दुख मम लागी,
करहु न अब गुरु-तियहिं अभागी।
हत-पति आर्या कृपी दुखारी,
जीवित इक सुत-वदन निहारी।
तजिहैं तनु सुनि सुत अवसाना,
निठुर तासु न मम सम प्राणा।

दोहा :— *गुरुनिपाति, अब सुत निहित, करहु न निखिल कुलान्त,*
धारि नृपोचित उर क्षमा, करहु नाथ ! वैरान्त !" २७०

सोरठा— *श्रीहरि करुणायत, सुनि उदात्त नारी-गिरा,*
सजल नेत्र-पर्यन्त, कहे पुण्य भीमहि वचन—

"सन्मानहु द्रौपदि-अनुरोधा,
त्यागहु तात ! क्रोध प्रतिशोधा।
गुण निधान साध्वी गान्धारी,
सकी न सोउ उर रोष सँभारी।
पै निज संयम-बल पाञ्चाली,
भीन्ह नारि-कुल गौरव-शाली।
अपकृता कृष्णा सम जग माहीं,
जन्मी कतहुँ अन्य तिय नाहीं।
लहेउ न भरि जीवन सुख भासू,
रही विपत्तिहि संपति तासू।
हारेउ पति जेहि द्यूत पणीकृत,
अरिकृत जासु वसन कच कर्षित।
सहि घन दुख पुनि वैर उपासी,
रही विराट भवन जो दासी।
कृपावता सोइ आजु उदारा,
क्षमति भ्रात, पितु, सुत हत्यारा।

दोहा :— *जो दानव खल-दल-दलनि, चण्डी-मूर्ति रणादि,*
दया-मूर्ति भव अम्बिका, सोइ शत्रु अवसादि। २७१

दोहा :—तजहु तुमहुँ विग्रह-जनित, दूषित मनोविकार,
जागहिं जग मानव-दया, सोवहि दनु प्रतिकार। २७२
करहिं क्षमा ते पाण्डु-सुत, शासन निज प्रारंभ,
चिरस्थायि साम्राज्य जो, आश्रित प्रेमस्तंभ।"२७३

सोरठा—हरि-नियोग-अभ्यस्त, तजी भीम असि रोष-सह,
अचल चित्र जनु व्यस्त, चकित द्रौणि परित्राण लहि।
घिरि जनु विष-घन घोर, अकस्मात बरसे सुधा,
गवनेउ कानन ओर, दै चूड़ामणि द्रौपदिहि।

आरोहण काण्ड

सोरठाः—गीता-वाणि प्रमाण, कीन्हेउ खल-दल गंजि जेहि,
युग-युग जन-परित्राण, प्रणमहुँ सोउ प्रत-पाल हरि।
प्रकटेउ सुधा-सुराज, मथि अथाह जेहि रण-उदधि,
द्रवत न कस सो आज, खल-पदतल लखि जन्म-महि ?

दोहा :—समर-जयी श्रीहरि कृपा, लहि श्रीहरि-आदेश,
प्रविशेउ सह श्रीहरि अनुज, गजपुर धर्म नरेश। १

व्यास-निदेश शीश निज धारी,
धृतराष्ट्रहु कुरुपुरी सँवारी।
निरखि प्रबुद्ध वृद्ध नरनाहा,
संजय विदुरहु ८र उत्साहा।

धर्मज-राज्य सतत अभिलाषी,
मज्जित जनु सुख-निधि पुरवासी।
सुनि नरपति-मह, श्रीपति-आवन,
हर्ष-प्रकर्ष विभोर पौर-मन।
श्रीहरि-पाण्डव-चरित विचित्रन,
प्रकटत प्रीति द्वार लिखि चित्रन।
उमहत दिशि दिशि आनँद-रसव,
धाम धाम मंगल विपुलोत्सव।
वीथि वीथि मलयज-जल-धारा,
उत्पल-दल प्रकीर्ण पुर सारा।
सोध सौध केतन पट फहरत,
माल्य वितान पण्य-पथ लहरत।

दोहा :—*बाजत वीणा वेणु मधु, कलरव-कल दिग्भाग,*
मुखरित शंख असंख्य पुर, चिर प्रसुप्त जनु जाग। २

अनुसृत गज तुरंग रथ अनगन,
पहुँचेउ नगर निकट नृप स्यंदन।
राज-लक्ष्म शुभ छत्र सोहावा,
प्रथम शुभ्र जन-दृग-पथ आवा।
नव रवि करि अरि तिमिर विनाशा,
उदित मनहुँ भारत-आकाशा।
श्री-मण्डप जनु व्योम-विहारी,
सुयश-पटल मानहुँ मनहारी।
अर्जुन आतपत्र कर धारे,
राज्यतंत्र जनु शौर्य सहारे।
शरच्चंद्रिका छबि छिटकावत,
चँवर माद्रिसुत युगल डोलावत।
अर्थ काम जनु नर तनु धारी,
सेवत धर्मराज अधिकारी।
द्विरद-दन्त-द्युति तुरग सवारू,
हाँकत समुद वृकोदर आपू।

दोहा :— *निहत शत्रु-कुल, पूर्ण प्रण, अँग अँग हर्ष प्रवाह ,*
शोभित अश्व-अभीषु धृत, साकृति जनु उत्साह । ३

आतन परिवृत शोभित राजा ,
शिखरन सहित मेरु जनु भ्राजा ।
नृपति, तदपि यति संयमवाना ,
ब्रह्म-तेज-सम्पन्न, सुजाना ।
सत्य-निधान, दयामय, दाता ,
धर्म-प्रमाण, धर्म साक्षाता ।
प्रायश्चित्त राज्य-दुश्चरितन ,
पुण्यश्लोक, दिव्य सच्चरितन ।
निरखेउ जन स्वरूप भरि लोचन ,
नृप जनु राष्ट्र आपु दुख-मोचन ।
मुकुट मनोहर हिम-गिरि सोहत ,
आनन सप्तसिंधु मन मोहत ।
मध्यदेश जनु हृदय विशाला ,
कटि तट मनहुँ विन्ध्यगिरिमाला ।
पूर्व प्रान्त पश्चिम दिग्खंडा ,
जनु आजानु बाहु बरबंडा ।

दोहा :— *लहरत पट जनु वारिनिधि, चरन युगल तट देश ,*
लखि विमुग्ध गजपुर-प्रजा, राष्ट्र-मूर्ति नृप-वेश । ४

गवनत नरपति-स्यंदन घेरे ,
बंदी मागध सूत घनेरे ।
यश-प्रशस्ति कल कण्ठन गावत ,
हर्ष-हिलोर हृदय उपजावत ।
नृप पाछे यानन सजि साजू ,
शोभित अभिजन, स्वजन-समाजू ।
पुनि युयुत्सु सँग कुल-तिय-वृन्दू ,
गिरा-अतीत पृथा-आनंदू ।
विस्मृत जनु जीवन दुख-गाथा ,
गवनत नयन तनय-रथ साथा ।

सोहति सासु-साथ पाञ्चाली,
रूप-राशि, गुण-गौरव-शाली,
निरखि विजित रण रिपु-संघाता,
आपुहि मनहुँ विजय साक्षाता।
बहुरि सुभद्रा रति-मद-हारिणि,
जनु हरि-भक्ति निखिल कुल-तारिणि।

दोहा :— *मूर्तिमंत आशा मनहुँ, तियन उत्तरा सोह,*
कुल-संजीवनि गर्भ धृत, भारत वंश-प्ररोह। ५

यहि विधि निखिल राज-परिवारा,
प्रमुदित गजपुर प्रजा निहारा।
तबहुँ न नयन चकोर अघाने,
खोजत कृष्णचंद्र अकुलाने।
सहसा शोभित मागध स्यंदन,
निरखे सात्यकि सह यदुनंदन।
मनहुँ कलाधर जलधि निहारा,
उत्थित कर-कल्लोल अपारा।
स्वागत-स्वर उन्मत्त, अधीरा—
'जयतु अधर्म दलन यदुवीरा!'
व्योम विलोकि मनहुँ घन श्यामा,
मत्त मयूर-ध्यान अभिरामा।
पुनि जस श्याम मूर्ति नियरानी,
नयन निबद्ध, शिथिल जन-वाणी।
लहेउ निरखि क्षण छवि अभिरामा,
जन्म अनंत पुण्य परिणामा।

दोहा :— *अपलक अवलोकत वदन, जनु प्रसन्न मधुमास,*
उपजावत अनुराग उर, नवोत्साह, नव आस। ६

जात न समय प्रजाजन जाना,
क्रम-क्रम नगर-द्वार नियराना।

आपु वृद्ध नृप स्वागत-हेतू,
विद्यमान द्विज सचिव समेतू।
निरखि युधिष्ठिर, स्यंदन त्यागी,
गहि पितृव्य चरण अनुरागी,
कहे विनीत वचन नरनाहा—
"यहि विधि तात ! न मोर निबाहा।
मैं शिशु सेवक नाथ ! तुम्हारा,
मम हित कस स्वागत सत्कारा ?
नामहि मात्र जनक मैं जाना,
आशैशव तातहिं पितु माना।
हरि-पद शपथ कहहुँ पुनि आजू,
नाथ ! तुम्हार धान्य, धन, राजू।
पिता तुमहिं, स्वामी तुम त्राता !
पद-सेवक हम पाँचहु भ्राता।

दोहा :— *धरा, धाम, धन ते अधिक, मोहि पितृव्य-प्रसाद,*
तेहि बिनु मम हित घोर वन, त्रिदशपतिहु-प्रासाद।"७

विनय वचन सुनि नयनन नीरा,
अंध वृद्ध धृतराष्ट्र अधीरा।
प्रकटत शब्द शब्द उर-ग्लानी,
भाषी वदन अवनमित वाणी—
"दिव्य स्वभाव वत्स ! तुम पावा,
संपति विपति रहत सम भावा।
हृदय तुम्हार उदधि गम्भीरा,
होत न यातायात अधीरा।
हरिहु कहे मैं तुमहिं न जाना,
सुत शत खोय आजु पहिचाना।
जिमि तरु-शिखर चढ़त मधु लागी,
कुमति किरात पतन-भय त्यागी,
तिमि अविवेकी, राज्य-विमूढ़ा,
भये सुवन मम रण आरूढ़ा।

मैं कुबुद्धि नहिं तिनहिं बरावा,
चहेउँ छीनि महि तुमहिं नसावा।

:—याचत तवहुँ प्रसाद मम, तुम बिसारि अपकार,
को जघन्य मम सम जगत, तुम सम कवन उदार !"८

सुनि धर्मज-धृतराष्ट्र-वचन वर,
उभय पक्ष आनँद-रस-निर्भर।
सौम्य शान्ति सूचक वर वाणी,
सुनि निज क्षेम प्रजहु हर्षानी।
लखि पितृव्यहिं निज अनुकूला,
मुदित धर्म नृप, गत उर शूला।
विनसेउ भय विषाद समुदायी,
आजुहिं साँच विजय जनु पायी।
लखि विदुरहिं आनँद अधिकाना,
प्रणमत पद विह्वल तन प्राणा।
कृपाचार्य पुनि नृपति निहारे,
लज्जा-रज-धूसर, मनमारे।
प्रणमि चरण मृदु वचन उचारी,
हरेउ सँकोच शोच उर भारी।
संजय सचिवहिं हृदय लगायी,
प्रविशेउ राजमार्ग नरराषी।

:—समादिष्ट धृतराष्ट्र सब, पहुँचि राज-प्रासाद,
तजेउ यान सहरण-जनित, श्रम, भ्रम, खेद, विषाद। ६

लहि कछु काल तहाँ विश्रामा,
गवने सभा-भवन छवि-धामा।
विद्यमान पुर प्रमुख निवासी,
स्वजन, राजजन, जनपद-वासी।
नारदादि ऋषि शिष्यन-साथा,
शोभित सभा व्यास मुनिनाथा।

सुरहु अलक्षित लसत उछाहू,
छुयेउ हेम, मणि, महि नरनाहू।
गोरस, घृत, दधि, मधु घट नाना,
हवन-काष्ठ जस वेद बखाना,
हेम विमण्डित शंख सोहावन,
मौक्तिक, लाज, रत्न मनभावन—
राखी वस्तु धौम्य सब लायी,
सविधि वेदिका स्वकर बनायी।
वाघंबर आसन नरराजा,
द्रुपद-आत्मजा सहित विराजा।

दोहा :— *आहुति दीन्ही धौम्य जस, प्रकटि हर्ष अतिरेक,*
सर्व प्रथम हरि आपु उठि, कीन्ह राज्य-अभिषेक। १०

सोरठा — *गहि पुनि निज कर कम्बु, धृतराष्ट्रहु प्रमुदित हृदय,*
सींचि शीर्ष शुचि अम्बु, कीन्ह पाण्डु-नंदन तिलक।

सलिल पुनीत सकलित तीर्थन,
लै अभिषेक कीन्ह द्विज, मुनिजन।
सुरसरि-जल लै प्रजा-प्रधाना,
सींचि कीन्ह अधिकार-प्रदाना।
बसेउ हेम सिंहासन राजा,
शुभ्र मेघ जनु मेरु विराजा।
हरि प्रेरित पुनि नृप मतिमाना,
कीन्ह अमात्य-समिति निर्माणा।
पद युवराज भीम कहँ दीन्हा,
सेनाध्यक्ष धनंजय कीन्हा।
संधि-वैग्रहिक विदुर बनावा,
अर्थ-सचिव पद संजय पावा।
धौम्यहिं दीन्हि देव-द्विज-सेवा,
कीन्ह अंग-रक्षक सहदेवा।
पद आचार्य कृपहि पुनि दीन्हा,
नकुलहि पार्थ-सहायक कीन्हा।

दोहा — *संजय, विदुर, युयुत्सु सन, कहेउ बहुरि नरराज—*
"जानि पूर्व पितृव्य-मत, करहु सर्व जन-काज।" ११

निरखि कृतिहु वाणी सम निश्छल,
निर्मूलित सन संशय कश्मल।
नष्ट अशेष जयी-जित-भावा,
विस्मृत रण, प्रति उर सद्भावा।
निज शीलहि-बल नृपति उदारा,
रचेउ निमिष महँ नव संसारा।
तजि सिंहासन पुनि हरि साथा,
गवनेउ सभा-द्वार नरनाथा।
घिरे अपार नगर-नर-नारी,
शंख-निनाद, विजय-ध्वनि भारी।
ध्वनित दुंदुभी पटह अमन्दा,
गावत यश चारण सानंदा।
गोधन, हेम, रत्न, परिधाना,
कीन्हे मुक्तहस्त नृप दाना।
'स्वस्ति'-वचन बरसे चहुँ ओरा,
हर्ष-पयोधि मनहुँ नृप बोरा।

दोहा :— *सहसा विप्र-समाज ते, प्रकटि कुटिल चार्वाक,*
व्यंग गिरा नृप सन कही, करि दाए सबहि अवाक—१२

"मैं प्रसन्न तुम पै अवनीशा!
आयेउँ आजु देन आसीसा।
गवने जब तुम वन तजि राजू,
कीन्ह स्वकर निज महत अकाजू।
सुख-भोगहि भव-उपवन-फूला,
मिथ्या श्रुति अनुभव-प्रतिकूला।
पृथ्वी, वारि, हुताशन, वाता,
इनतें निर्मित यह तनु ताता!
भूत चारि ये तजि भव माहीं,
पंचम तत्त्व कतहुँ कछु नाहीं।

मन बुद्धिहु नहिं तत्त्व नवीना,
इन सयोगज, इनहिं अधीना।
लेत जीव जब अन्तिम श्वासा,
तन-सँग मानस बुद्धि विनाशा।
भूमि तत्त्व पुनि भूमि समायो,
सलिल माहिं पुनि सलिल विलायो।

दोहा :— *पावक महँ पावक मिलत, मिलत समीर समीर,*
रहत शेष नहिं कछु कतहुँ, विनसत जबहि शरीर। १३

असंबद्ध, बिनु ध्येय प्रबधा,
कार्य समस्त प्रकृति कर अधा।
परिवर्तन मय वस्तु अशेषा,
उपजत विनसत बिनु उद्देशा।
आत्मा कर श्रुति करति बखाना,
कब, केहि, कहाँ लखेउ, कस जाना!
इन्द्रिय-ग्राह्य वस्तु जो नाहीं,
नहिं अस्तित्व तासु भव माहीं।
कहुँ न ईश, नहिं कतहुँ विधाता,
जन्मत पुनि न जीव मृत ताता!
जरत चिता पै जो जनु होरी,
सकत कि लौटि सो जीव बहोरी!
मिथ्या पुनर्जन्म, परलोका,
यह तनु सत्य, सत्य यह लोका!
यहि लोकहु महँ जो बलधारी,
सोइ स्वामी, सोइ सुख-अधिकारी।

दोहा — *पै निबलहि जग महँ विपुल, स्वल्प सबल, श्रीमान,*
बाँधत सबलन गढ़ि निबल, अगणित धर्म विधान। १४

नग्न-भाग जिमि द्रष्य अंशुकी,
जगत दशा तिमि आढ्य मनुज की!

पौरुष-रहित, अकिंचन, दीना,
विप्र चाट-पटु, कपट-प्रवीणा,
जग प्रत्यक्ष असत्य बतायी,
वंचत धनिन स्वर्ग-गुण गायी।
हरि धन तासु करावत अनशन,
आपु पचावत षट रस व्यंजन!
नित्य ग्रन्थ नव पंथ बनावत,
सुर-पूजा मिस आपु पुजावत।
श्रुति पाखण्डहि, नाहिं प्रमाणा,
धूर्तन-वार्ता शास्त्र पुराणा।
हितकर देह हेतु जो ज्ञाना,
सोई ज्ञान, शेष अज्ञाना!
देह विहाय न कछु कहुँ साँचा,
देहहि माहिं चतुर-मन राँचा।

दोहा — *निज अनिष्ट सम नहि कुकृत, सुकृत न स्वार्थ समान,*
जीवन-ध्येय न सुख सदृश, आपुहि आपु प्रमाण! १५

तुम्हरेउ हृदय स्वार्थ सुख जागे,
ताते आजु मोहिं प्रिय लागे।
जदपि शिष्य मम नृपति अनेका,
क्रूर कराल एक ते एका।
पै तुम सम मम तत्त्व-उपासक,
भयेउ न भरतखण्ड कोउ शासक!
कंस, सुयोधन, मगध-नरेशा,
सके त्यागि नहिं दया अशेषा।
कारागेह कंस पितु डारा,
कीन्ह कुबुद्धि न तासु सँहारा।
वधी देवकिहु नहिं अज्ञानी,
सही अंत निज प्राणन हानी।
तैसेहि जरासंध अविचारी,
लहि गृह भीम, विजय, कंसारी,

घेरि सैनिकन नहिं वधवाये,
धर्म-युद्ध करि प्राण गँवाये।
धर्म-भीरु ये धर्म उपासत,
धर्म-राज तुम धर्महिं शासत!

दोहा :— *सुयोधनहु सानुज तुमहि, जीति द्यूत, करि दास,*
अविवेकी पठयेउ विपिन, कीन्ह सयुक्ति न नास। १६

सिद्ध-हस्त तुम मर्महिं जाना,
उर मम शिक्षा, मुख श्रुति गाना!
जदपि पितामह भीष्म तुम्हारे,
जिये सतत तुम तिनहिं सहारे,
पै छेदत शस्त्रन तिन काया,
उपजी स्वल्पहु उर नहिं दाया।
द्रोणहु गुरु तुम्हार विख्याता,
श्रुति-अनुसार पूज्य अति नाता।
अघ न ब्रह्म-हत्या सम आना,
हरे तबहुँ तुम निज गुरु प्राणा।
रच्छे जब गुरु आजा नाहीं,
अन्य स्वजन के गणना माहीं!
निज पितृव्य-सुतहु तुम सारे,
एक एक करि समर सँहारे।

दोहा :— *जानत तुम मम तत्त्व यह, मिथ्या नाता, नेह,*
जन्मत बिनसत यहि जगत, एकाकी यह देह। १७

प्रकृति-विरुद्ध नात सब जानी,
निवसत आत्म-तृप्त सब ज्ञानी।
पत्नी, पुत्र, मातु, पितु, भ्राता,
मूढ़हि हेतु सर्व ये नाता।
पर-सुख-हेतु आत्म-सुख त्यागी,
... रथ ... भागी।

पै तुम सम को भुवन सयाना,
निज हित कीन्ह सबहिं बलिदाना।
कहँ कुल सहित द्रुपद-पाञ्चाला ?
कहाँ सुतन सह मत्स्य-भुआला ?
गवनेउ कुन्तिभोज केहि देशा ?
कहँ अगण्य सबंधि नरेशा ?
कहँ प्रतिविंध्यहु तनय तुम्हारा ?
कहँ सौभद्र पार्थ-दृग-तारा ?
अरिन सहित तुम नेहिहु अनगन,
जारे स्वार्थ-यज्ञ जनु ईंधन।

दोहा :— *धन्य ! धन्य ! तुम धर्म-सुत, धन्य शिष्य आदर्श,*
गवनत आशिष दे तुमहि, लहहु नित्य उत्कर्ष !" १८

यहि विधि भाषि वचन अविनीता,
दुरेउ भीर चार्वाक सभीता।
सुनत कर्ण-कटु वर्ण-कलापा,
नख-शिख धर्मप्राण नृप काँपा।
पूर्वहि ते मन रूढ़ विचारा,
स्वार्थ-मूढ़ मैं वंश सँहारा।
लागि गिरा गर्हित सब साँची,
मृतजन-मूर्त्ति दृगन-तल नाची।
इत हरि नृपति सँभारेउ विह्वल,
उत जन-राशि, विषम कोलाहल—
'धावहु ! धरहु !' उग्र ध्वनि छायी,
गहेउ सहठ जन शठ पछियायी।
मुनि मण्डलिहु कोप अति व्यापा,
तरलित पिंगल जटा-कलापा।
तजि भुज रसे अजिन चहुँ ओरा,
मुद्रा रुद्र, शाप स्वर घोरा।

दोहा :— *जब लगि सकहिं उदार हरि, रोप अपार निवारि,*
कीन्हेउ मुनिजन छार खल, तप-ज्वाला निज जारि। १९

क्रम-क्रम शान्त रोष-उच्छ्वासा,
पुनि दिशि-दिशि सोइ हर्ष हुलासा।
क्लान्त एक नृप, शान्त न छोभा,
हृत नीहार मनहुँ दिन-शोभा।
सुनत बाद वीथिन जयनादा,
प्रविशेउ विमन राज-प्रासादा।
अमर-सद्म सम पैतृक धामा,
विभव-विलास-भवन अभिरामा।
कचुक, कनक-वेत्र जहँ धारे,
राजत प्रतीहार बहु द्वारे।
जहँ सेविका मनहुँ सुर-नारी,
लिये हेम-घट कुंकुम-वारी,
सजि घनसार सुमन मणि-पात्रन।
शोभित मज्जन-मही सहस्रन,
मलयज शीतल माल-सजायी,
जहाँ विलेपन-भूमि सोहायी।

दोहा — *शयन-सदन, भोजन-भवन, जहँ सुर-अर्चन-धाम,*
कला, केलि, कौतुक-निलय, नंदन सम आराम। १०

सोरठा — *भोग विलास अशेष, निरखत जेहि दिशि जात दृग,*
नृप-मन हर्ष न लेश, लब्ध बधु-बध गुनि विभव।

सुख सुर-दुर्लभ सचित आगे,
नयन विरक्त जात जनु भागे।
राज्य रोग जनु, श्री जनु शापा,
मही नरक, जीवन जनु पापा।
भोग भुजङ्ग, हार जनु भारा,
मलयज अनल, गरल आहारा।
विकल विभव बिच नृप निज धामा,
जनु अलि कमल-निलीन त्रियामा।
मौनी, चेष्टा-विरहित, दुर्मन,

सोचत को मैं ? का धन धामा ?
अंत काह विषयन-परिणामा ?
अथवा क्तहुँ न चिर कल्याणा,
व्यर्थ स्वार्थ-परमार्थ समाना,
निरालोक नृप-उर भव-भीती,
मन विमुग्ध, गत आत्म-प्रतीती।

दोहा :— *संशय भार असह्य अति, दृग मूँदे नरनाथ,*
सहसा शिर मन-ज्वर-शमन, धरेउ हाथ यदुनाथ। २१

निरखे नृप उन्मीलित-लोचन,
ज्ञानमूर्ति हरि विपति-विमोचन।
करुणा-धाम देत अवधाना,
गिरा भव्य भाषी भगवाना—
"आजु भुवन-विजयी तुम ताता!
तदपि न विषय भोग मन राता।
विपिन विपिन जिमि विटप अनेका,
नंदनवनहु कल्पतरु एका।
तिमि थल थल नृप इन्द्रिय-दासा,
विरलहि कहुँ कोउ विषय-उदासा।
प्रजाजनहि वसु-वसुधा-ईशा,
अभिभावक मात्रहि अवनीशा।
कीन्ह न जिन जिन तन मन शासन,
सकत कि करि ते जनु-अनुशासन?
नहिं आसक्ति राज्य महँ जासू,
सोइ सुयोग्य अधिकारी तासू।

दोहा — *अभिपरहु-वासर निरखि, राज्य विमुख नरराज,*
रहित समर-संशय-श्रमहु, पूर्णकाम मैं आज। २२

सोरठा— *तत्वहीन न तात! कहे वचन चार्वाक जे,*
अनाग्नि-मज्ञात, दह-पर औरहु कछुक।

विश्व अनंत, प्रसार अपारा,
जनु असीम वारिधि-विस्तारा।
वस्तु विपुल जलनिधि तल माहीं,
मानव-नयन लखीं सब नाहीं।
उमहि निजेच्छा जलधि-तरङ्गा,
तट धरि जाति वस्तु बहुरङ्गा।
थल-वासी असंख्य नरनारी,
शुक्ति शंख लहि होत सुखारी।
स्वल्पहि तृप्त यथा ये प्राणी,
तथा तात ! चार्वाक-कहानी।
निज रहस्य जो भव प्रकटावत,
सोइ सर्वस्व मानि सुख पावत।
पै अपरहु कछु नरवर धीरा,
जे न सुखी बसि वारिधि-तीरा।
जलधि-रहस्य निखिल बिनु जाने,
निवसत नहिं ते भोग-भुलाने।

दोहा:— *अवमानत निज तुच्छ तनु, प्रविशत उदधि अगाध,*
पावत नूतन रत्न नित, बिनसति तबहुँ न साध। २१

विश्व-रहस्यहु ताहि प्रकारा,
तेहि प्रति प्रकट जो खोजनहारा।
साँचहु महि, जल, अनल, समीरा,
व्योम-विनिर्मित मनुज-शरीरा।
तदपि चेतना जो तेहि माहीं,
महाभूत-निर्मित सो नाहीं।
जे जड़, जड़ता जिनहिं पियारी,
तृप्त जगत जड़-दृगन निहारी।
देत ज्ञान पंचेन्द्रिय जेतिक,
विश्व ससीम मूढ़ हित तेतिक।
जड़ प्रति विरति उपज हिय जिनके,
उघरि जात मति-लोचन तिनके।

विश्व अपरिमित परत लखायी,
इन्द्रिय जड जहँ सकत न जायी।
सीमित इन्द्रिय-पहुँच अतीवा,
मति-गति तात! अबाध, असींवा।

दोहा :— *बसत जदपि तन-यन्त्र मन, तदपि न तासु अधीन,*
सर्वग सो आकाश-सम, यद्यपि आकृति-हीन। २४

मन-रत्नहिं योगिन पहिचाना,
जड-मति तासु प्रभाव न जाना।
तेहि सम अन्य शक्ति नहिं ताता!
जीवहिं सोइ सर्व फल-दाता।
विषयिन कर यह विषय दृढ़ावत,
योगिहिं परम तत्त्व दरसावत।
जब लगि भौतिक सुख अनुरागा,
तब लगि मनहु ताहि महँ पागा।
सून निरुद्ध विहग अनुहारी,
उडि न सकत मन पंख पसारी।
जस जस जकडत विषयन-पाशा,
तस तस घटत उडन-अभ्यासा।
जो यहि दशा माहिं तनु-हानी,
जन्मत निम्न योनि लहि प्राणी।
क्रम क्रम निज मन गति अवसादी,
जडवत् होत अंत जडवादी!

दोहा :— *विकसित मन हित जलनिधिहु, गोपद-सलिल समान,*
समुझन जड जो नर मनहि, जड तेहि सम नहिं आन।" २५

सोरठा — *भापे वचन अधीर, धर्मज सुनि श्रीहरि-गिरा—*
"हरहु नाथ! भव-पार, विभव-पङ्क ते काढ़ि मोहि।

भक्त तुम्हार, तुमहिं मैं ध्यावत,
बस मोहिं कलुषित पंथ लगावत?

उचित कि मदिरा मुनिहिं पियावन ?
सद्‌भृत्यहिं प्रभु-द्रोह सिखावन ?
उचित कि डारब सुजन कुसंगा ?
रचब विरत हित मोह-प्रसंगा ?
स्वल्पहु विषय-भोग-संयोगू,
बढ़ि नासत धृति, तनु जिमि रोगू।
भ्रमर, मीन, मृग, द्विरद, कुरंगा,
विनसत इक इक विषय-प्रसंगा।
नर महँ सब अनर्थ इक साथा,
अकथ नरेश-कथा, यदुनाथा!
राज्य सर्व विषयन-भण्डारा,
परि तेहि माँहि न बहुरि उबारा।
विनसत मोह कि भजे एषणा ?
मिटति कि लवण-पान ते तृष्णा ?

दोहा :— *शान्त होति नहिं कामना, किये काम-उपभोग,*
बढ़ति लालसा भोग-सँग, ज्वाला जिमि घृत-योग। २६

मित धन-धान्य द्विजन-गृह माहीं,
लोभ-प्रसंगहु जीवन नाहीं।
स्वल्प विषय, नहिं विभव अशेषा,
नहिं असीम ईर्ष्या विद्वेषा।
भव-भय पै विप्रन-मन माहीं,
तजि निकेत निज कानन जाहीं।
भूप-व्यवस्था प्रभु! अति घोरा,
नख-शिख रहत विषय-रस बोरा।
राग द्वेष धधकत जनु आगी,
बचत विहाय जात जो भागी।
ताते सुनि मम विनय विशेषा,
देहु समोद मोहिं आदेशा—
[illegible] भारी

जहँ फल मूल सुलभ आहारा,
निर्झर निर्झर जहँ जल-धारा,

दोहा :— *हर्म्य जहाँ गिरि-गह्वरहि, धर्म-कथा संलाप,*
तरुन अपत्य सनेह जहँ, सुहृद मृगहि निष्पाप। २७

सोरठा:— *नृप-पद प्रेयस्थान, श्रेय-प्राप्ति प्रभु! तहँ कहाँ?*
खनि वसुधा अनिधान, लहि कि सकत निधि-अर्थि निधि!"

विहँसे विनय-वाणि सुनि श्रीपति,
भाषे बोध वचन पुनि नृप प्रति—
"भवन विशेष न विषय-निवासू,
विपिनहु महँ अभाव नहिं तासू।
वसत तात! सो मनुजहि माहीं,
रहत साथ जिमि तनु परिछाहीं।
जात मनुज जब कानन भागी,
रहत न सोउ, जात सँग लागी।
मित तुम रकन-राग बखाने,
ईर्ष्या द्वेषहु लघु करि माने।
नृपति-विषय-द्वेषहु बड जाना,
पै यह तात! भ्रान्त अनुमाना।
रकन माहिं वस्तु लघु लागी,
धधकत राग द्वेष बनि आगी।
रहत न स्वल्प-अनल्प-विचारा,
होत कुटुम्ब ग्राम जरि छारा।

दोहा :— *वनहु माँहि मुनि-मण्डली, निवसति नहिं निष्पाप,*
दण्ड कमण्डलु हित लरत, देत परस्पर शाप। २८

विषय-निवास निजहि महँ जानी,
इत उत भ्रमत फिरत नहिं ज्ञानी।
गुनि औषधिहू आपुहि माहीं,
तजत धाम वे, धामहिं नाहीं।

विषयन-साथ निरखि मन जाता,
रोकत निग्रहवंत हठाता।
जस जस बढ़त जात अभ्यासा,
तस तस छिन्न वासना-पाशा।
जड़-विमुक्त मन-विहग उड़ायी,
धावत चेतन दिशि हर्षायी।
लहि तेहि तात अनत पुनि नाहीं,
मन थिर होत काम मिटि जाहीं।
बसत न तात ! मोक्ष आकाशा,
नहिं भूतल पातालहु बासा।
विमल मानसहि मोक्ष कहावा,
आपुहि माहिं मनुज तेहि पावा।

दोहा :— *व्यापत आत्माराम-मन, नहिं भव-भोगन-जाल,*
पावस-वारि प्रसिक्त वन, दहति न जिमि दव-ज्वाल। २६

पै यह आत्म-लाभ, कल्याणा,
जीवन-पथ अन्तिम सोपाना।
प्रथम परिग्रह, पुनि जग त्यागा,
पूर्व राग रति, अंत विरागा।
बिनु प्रवृत्ति नहिं तात ! निवृत्ती,
अनासक्ति कहँ बिनु आसक्ती ?
कहँ बिनु प्रेय, श्रेय संसारा ?
बिनु संचार न प्रति संचारा।
ईहा बिना कहाँ उपरामा ?
कहँ बिनु काम-वृत्ति निष्कामा ?
तृष्णा बिना कहाँ निर्वाणा ?
कहाँ निरोध बिना व्युत्थाना ?
सर्ग बिना उपसर्ग न संभव,
सुखहु न पूर्ण बिना दुख-अनुभव !
बंध-वेदना जेहि नहिं जानी,
सकत कि चाहि मुक्ति सो प्राणी ?

दोहा:— जब लगि भोग-निदाघ ते, व्याकुल तन मन नाहिं,
खोजत नहिं तब लगि मनुज, मोक्ष-महीरुह छाहिं। ३०

सोरठा— धर्म-युक्त कामार्थ, ताते वरनति तात! श्रुति,
लहत न कोउ परमार्थ, लहे बिना पुरुषार्थ त्रय।

औरहु निज मन करहु विचारा,
नर न स्वतंत्र, शीश ऋण-भारा।
शैशव बालक स्वबल-विहीना,
जीवन जननी-जनक-अधीना।
विपुल जीव अन्यहु हितकारी,
पोषक, अभिभावक, भयहारी।
भये वयस्क लहत जो ज्ञाना,
सोउ पर-अर्जित, अर्पित निधाना।
यौवन भोगत भोग सोहाये,
सोउ समाज-कृत, निर्ज न, पराये।
जन्म-मृत्यु-बिच क्षण नहिं ताता,
जब न समाज होत सुखदाता।
ऋण यहि विधि नर शीश अनेकन,
विश्रुत देव-पितृ-ऋषि-ऋणगण।
कहत सर्व श्रुति शास्त्र पुकारी,
नाहिं अनृण्य मोक्ष-अधिकारी।

दोहा:— कीन्ह ऋषिन ऋण-शोध हित, आश्रम-धर्म विधान,
धारिहु जीवन-फल लहत, गहि जेहि आर्य सुजान। ३१

जेहिं न संतुलित जीवन भावा,
भ्रमत सो आपु, जगहिं भरमावा।
अहंभाव अस मनुजन माहीं,
मन उच्छृंखल, धीरज नाहीं।
नहिं विदग्धता, जीवन काँचा,
हृदय न ज्ञान विरागहु साँचा।

कबहुँ तिनहिं जो दैव घशाता,
विषयन-संग होत पुनि ताता!
जात सर्व वैराग्य परायी,
तृण जिमि झंझावात उड़ायी।
निरखि कष्ट-कारक ये धर्मा,
तजत विराग-ब्याज निज कर्मा।
ये नहिं साधु मोक्ष अभिलाषी,
भरत उदर 'शिव! शिव!' मुख भाखी।
त्याग सर्व ऋण-वंचन लागी,
लहत अधोगति अन्त अभागी।

दोहा :— *गवनत वन ये तजि भवन, सुनि इत-उत कछु ज्ञान,*
रति-विरतिहु-अनुभव-रहित, पावत नहिं कल्याण। ३२

जीवन-अग्नि जरेउ नहिं जोई,
सो न विदग्ध विरागी होई।
परखत हेम डारि जिमि आगी,
परखिय विषयन डारि विरागी।
स्वानुभूति बिनु उपज न ज्ञाना,
कानन नहिं अनुभूतिस्थाना।
जे पालत जे विहित स्वधर्मा,
तजत न असमय जे निज कर्मा,
गहत संयमित जीवन-सरनी,
होत भवाब्धिहिं तिन हित तरनी।
जीवन भरि जो जेहि ते पावत,
करि सतगुण निज ऋणहिं चुकावत।
करत ते शैशव विद्याभ्यासा,
यौवन परिमित भोग विलासा।
वय तृतीय ते होत विरागी,
योग ते देत अत तनु त्यागी।

दोहा :— *धर्महि-हेतु गृहस्थ ते, सन्तति-हेतु विवाह,*
ग्रहण त्याग-हित, त्याग महँ, रंचहु नहिं य — । ३३

ये आदर्श गृहस्थ कहाये,
विश्व-विभूषण मोहिं अति भाये।
पालत इतर आश्रमन निज श्रम,
तातें सब तें श्रेष्ठ गृहाश्रम।
पथ जो तात! गृही-प्रतिकूला,
करत सो छिन्न धर्म-तरु मूला।
एक यहहि आश्रम अपनायी,
मुक्ति पूर्व जनकादिक पायी।
ससक्तिहु द्विविधा जग माहीं,
बंध्या वंद्या तात! कहाहीं।
देहादिक महँ उपजति जोई,
वन्ध्यासक्ति कहावति सोई।
लहि तेहि भोगहि महँ मन लागा,
लुब्ध गृद्ध जिमि पिशितहि पागा।
आत्मज्ञान तें उपजति वंद्या,
मम विभूति सो सदा अनिंद्या।

दोहा :— *स्वार्थ शून्य संसक्ति यह, सदा परार्थहिं लागि,*
सुखी जगत जे यहि गहत, लहत मुक्ति तनु त्यागि। २४

वंद्या ससक्तिहि तें ताता!
सिरजत भुवन समस्त विधाता।
तेहि प्रताप चक्रादिक धारी,
पालत विष्णु सृष्टि यह सारी।
गहि तेहि शिवासक्त शिवशङ्कर,
भव-भय-हरण अंत प्रलयंकर।
यह वंद्या संसक्ति उपासी,
दिनमणि नित नभ-मार्ग-प्रवासी।
लोकपालगण, सिद्धहु सारे,
करत लोक-हित याहि सहारे।
ध्रुव, प्रह्लाद, विदेह महीपा,
बहु राजर्षि नृपन-कुल-दीपा।

नारदादि मुनिवरहु उदासी,
नित बंधा संसक्ति-उपासी।
परहेतुहि इन जीवन धारा,
याही हित मोरहु अवतारा।

दोहा :— *उपजी तुम्हरेहु उर विरति, दृढवहु करि अभ्यास,*
नृप विदेह सम राज्य करि, काटहु निज-पर-पाश। ३५
यह बंधा संसक्ति उर, सदा बसहि निष्काम,
होहु तात! तुम याहि बल, धर्म-मेघ सुख-धाम। ३६

सोरठा —*सत-रवि भासित आपु, शीत-उष्ण सुख-दुख परे,*
निवसि हरहु जग-ताप, धर्म-वारि निशि-दिन बरसि।"

सुनि हरि-गिरा नृपति मन हर्षा,
मृत तनु पै जनु अमृत-वर्षा।
रहित-शोक-सशय थिर नृप-मन,
शान्त प्रवात भये जनु नभ घन।
हरिहु प्रसन्न नृपहिं लखि अविकल,
भाषे बहुरि वचन जन-वत्सल—
"शान्तनु-सुत शर-शय्या-शायी,
निशि दिन तात! रहे मोहिं ध्यायी।
नहिं जग बहुश्रुत भीष्म समाना,
शस्त्रहि सम शास्त्रहु कर ज्ञाना।
शोच्य न मृत्यु माहिं तन-नाशा,
शोच्य जो तन-सँग ज्ञान-विनाशा।
पुण्य समाज अर्चान-तल सोई,
राखत गुरुजन-ज्ञान सँजोयी।
तुम पै अमित पितामह-प्रीती,
तुमहि सकत लहि निधि मनचीती।

दोहा :— *सरिसुत-दर्शन हेतु मैं, करिहौं गमन प्रभात,*
तमह स्वजन अनजन सहित, चलहु संग मम तात।"३७

सोरठा:—मुनि पुलकित नरराय, अनुमोदे श्रीहरि-वचन,
गमन कीन्ह यदुराय, लखि सायं-संध्या-समय

बीती क्षणदा क्षणहि समाना,
सुमिरे प्रभु प्रभात युयुधाना।
आयेउ नृपहु सहित परिवारा,
सब मिलि कुरुक्षेत्र पगु धारा।
लखेउ दूरि ते मुनिन-समाजू,
जनु रण-क्षेत्र ज्ञान-महि आजू।
शर-शय्या शान्तनु-सुत देखा,
मनहुँ सांध्य रवि अन्तिम रेखा।
आतुर तजि स्यंदन घनश्यामा,
कीन्ह सश्रद्धा पाद प्रणामा।
मूर्च्छा-मीलित भक्त-विलोचन,
लखि कर भाल धरेउ भव-मोचन।
लहि मृणाल-अंगुलि शीतलता,
विनसी अन्तर्तम विह्वलता।
पाय रश्मि-शीकर नख-शशि के,
चंद्रकान्तमणि-प्राणहुं पुलके।

दोहा:— प्रत्युज्जीवन-क्षम परस, लहि जागे गाङ्गेय,
सन्मुख निरखी दिव्य छवि, भवहर, संसृति-श्रेय। ३८

भीष्महिं श्यामल तनु अस भासा,
पुञ्जीभूत मनहुँ आकाशा।
चंचल पट शरीर-संलग्ना,
दामिनि जनु चिर व्योम-निमग्ना।
मोर-मुकुट जनु कान्तिन-सारा,
मज्जत दृग रँग-पारावारा।
नील वक्ष द्योतित वनमाला,
पुहुप मनहुँ ग्रह लोक विशाला।
हस्त सुदर्शन चक्र सदन्ता,
कालचक्र जनु सयुग अनंता।

वीर गँभीर सलय आलापू,
प्रकटत नाद-ब्रह्म, जनु आपू।
विश्व-सार हरि भीष्म निहारा,
सन्मुख निराकार साकारा।
लहे न तदपि पदाम्बुजन्दर्शन,
उठत न शीश बिद्ध शित बाणन।

दोहा :— *लखि हरि शय्या पद धरेउ, भीष्म चरण-रज लीन्हि,*
फूटी वाणी कण्ठ ते, भक्त प्रभुस्तुति कीन्हि—३६

"सिरजत प्रथम विश्व तुम स्वामी!
तुमहिं विधाता-रूप नमामी।
पालत बहुरि तुमहिं भव नाथा,
वंदहुँ विष्णु-रूप नत-माथा।
प्रकटि, पालि पुनि करत सँहारा,
वंदहुँ शंभु-स्वरूप तुम्हारा।
बरसत घन जिमि एकहि वारी,
होत मही-अनुहरि मधु खारी,
तिमि तुम नाथ! जदपि अविकारा,
होत त्रिविध त्रिगुणन अनुसारा।
जग प्रमेय तुम्हरे हित सारा,
अप्रमेय पै तुम जग-द्वारा।
कामद आपु, जदपि गत-कामा,
अविजित आपु, तदपि जय-धामा।
जदपि व्यक्त संसृति कर कारण,
आपु स्वयं अव्यक्त, अकारण।

दोहा :— *हृदयस्थित पै दूरि तुम, तपी तदपि निष्काम,*
अदुखी पै पर-दुख-हर, अजर, पुरातन नाम। ४०

तुम सर्वज्ञ, सबहिं-अज्ञाता,
आपु स्वयंभू सर्व-विधाता।

आपु अनीश्वर, पै सर्वेशा,
एक, तदपि सब रूप प्रवेशा।
अस तथापि तुम जन्महिं धारत,
जदपि निरीह, शत्रु संहारत।
सोवतहू तुम जागनहारे,
सकत जानि को चरित तुम्हारे ?
एक जन्म महँ जप-तप-योगा,
अन्य जन्म भोगत बहु भोगा।
कबहुँ असुर बधि प्रजा उबारा,
कबहुँक उदासीन व्यवहारा।
तुमहिं मुक्ति-हित मुनि अभ्यासी,
ध्यावत ज्योति-रूप उर-वासी।
पथ प्रभु ! मुक्ति-प्राप्ति-हित नाना,
पृथक पृथक श्रुति शास्त्र बखाना।

दोहा :— *जिमि सुरसरि-धारा विविध, पारावार समाहिं,*
तिमि तुम्हरेहि प्रति पंथ सब, अत भक्त लै जाहिं। ४१

चित्त निवेशित तुम्हरेहि चरणन,
कर्म सर्व करि तुमहिं समर्पण।
तजत मुक्ति हित विषयन साथा,
तिनकै एक तुमहिं गति नाथा।
सुमिरतहू जब पाप नसाहीं,
दरस-परस-फल किमि कहि जाहीं ?
तुमहिं न कछु अलभ्य विश्वेशा !
लभ्यहु कछु न रहेउ कहुँ शेषा।
करत तबहुँ तुम जन्म जो धारण,
लोक-अनुग्रह केवल कारण।
कर्महु करत जो तुम सर्वेशा !
एक लोक-संग्रह उद्देशा।
प्रभु-विरचित प्रत्यक्ष पसारा,
सोउ न ज्ञान-गम्य जब सारा।

श्रुति, अनुमानहि जहाँ प्रमाणा,
सकत को जानि तुमहिं भगवाना !

दोहा :— *प्रभु-गुण-चरित अनत सब, बरनि सकेउ कब कौन ?*
निज अशक्ति ही ते सदा, धारति वाणी मौन !"४२

सोरठा:—*विरमी वाणी हारि, बद्ध भीष्म-दृग पै वदन,*
मनहुँ सुमन गुञ्जारि, पियत मधुप निःशब्द मधु !

सुनि शान्तनुसुत-गिरा-कलापा,
हर्ष अपार मुनिन-उर व्यापा।
गूँजेउ 'साधु'-शब्द, जय-निःस्वन,
वात-स्वरित जनु मधुर वेणु-वन।
हरिहु विनय-मय बैन सुनाये—
"तात ! दरस-हित पाण्डव आये।
गुरुजन-निधन-ग्लानि मन माहीं,
धर्म-सुवन सम्मुहात लजाहीं।"
कहेउ पितामह—"तुम भगवाना !
धर्म-अधर्म-मर्म सब जाना।
शास्त्र-विहित रण क्षत्रिय-कर्मा,
किये सुकृत, नहिं किये अधर्मा।
पितु आचार्य, पितामह, भ्राता,
सायुध जो अधर्म-रण-माता,
उचित वधब तेहि बिनु सकोचू,
करत व्यर्थ धर्मज उर शोचू।

दोहा :— *शशि महँ जिमि उष्मा नहीं, शोष न यथा जलेश,*
तिमि धर्मज महँ नहि सकत, निवसि अधर्महु लेश।"४३

सोरठा:—*फेरेउ मस्तक हाथ, अस कहि बोलि समीप नृप,*
लहि अवसर यदुनाथ, प्रकटेउ उर गत भाव निज—

"जब लगि दक्षिण-अयन दिवसपति,
तब लगि तात-समागम-संगति।

छप्पन दिवस शेष महि-वासू,
परमधाम पुनि नियत निवासू।
तजि पर-हित तुम स्वार्थ न जाना,
अबहुँ करहु जग-जन-कल्याणा।
देहु हमहिं निज मुख उपदेशा,
राजधर्म, सब कहहु अशेषा।
ज्ञान-कोष, विज्ञान-विभूती,
तुम सम केहि लोकहु-अनुभूती।
लहिहैं हम न सुयोग बहोरी,
ताते तात ! विनय यह मोरी।
मुनिन-समाजहु सोइ जिज्ञासा,
धर्मज-हृदय सोइ अभिलाषा।
लहि संततिहु ज्ञान-भण्डारा,
युग-युग गइहै सुयश तुम्हारा।"

दोहा — *विहँसि कहेउ सुनि हरि-गिरा, शान्तनु-सुत हरि-दास,*
"अछत नाथ उपदेश मम, करत काह परिहास ! ४५

सोरठा — *दीप दिखाये तात ! बढति कि कहुँ पावक-प्रभा ?*
प्रजवित झंझावात, होत डोलाये कहुँ व्यजन ?

सुरपति-ढिग सुरलोक-बखाना,
तिमि प्रभु अछत धर्म-आख्याना।
जेहि धर्मार्थ काम उपजाये,
पावत मोक्ष जाहि नर ध्याये,
सन्मुख सोइ जगद्गुरु राजत,
कहहु शब्द कहत मन लाजत।
नहिं कछु अचरज जो भगवाना!
चीन्हत नर नहिं तुमहिं अयाना
लघुहिं महत नहिं महत लखाहीं,
मुकुर माहिं जिमि गिरि-परिछाहीं!
परमक्षतहु जो बिसरायी,
मनुजहि मानि लखहुँ यदुरायी।

समता-योग्य तबहुँ की नाथा।
सकल अलौकिक जीवन-गाथा।
श्रुति वेदाङ्ग शास्त्र जग जेते,
सप्रयोग जानत तुम तेते।

दोहा :— *सर्व-व्यापिनी, सर्व-विद, सर्व-उपाय प्रवीण,*
तदपि प्रेममयि नाथ-मति, सतत परार्थहि लीन। ४५

प्रेम-व्रती तुम प्रेम-स्वरूपा,
प्रेम-पूर्ण सब चरित्त अनूपा!
शैशव प्रेमहि माहिं बितावा,
ब्रज बसि प्रेमामृत बरसावा।
गोप, गोपिका, वत्सहु, गाई,
तोषे नेह-सरित अन्हवायी।
प्रेम यदुजनहु-प्रति प्रकटावा,
सौख्य उमहि द्वारावति आवा।
जदपि प्रेममय नाथ-स्वभाऊ,
तजत धर्म देखेउँ नहिं काऊ।
नेह जहाँ जब धर्महिं बाधत,
तुम तजि नेह धर्म आराधत।
नात जो पृथा-सुतन सह ताता,
सोइ शिशुपाल चैद्य सँग नाता।
भगिनि जो नाथ! अर्जुनहिं दीन्ही,
कुरुपति-दुहिता सुत-हित लीन्ही।

दोहा :— *नासे कुरुपति, चेदिपति, गही पाण्डु-सुत-बाँह,*
कारण कछु नहि अन्य तहँ, केवल धर्म-निबाह। ४६

धर्म-हेतु तुम कंस बिनासा,
जरासंध धर्महि हित नासा।
पौण्ड्रक, भौमासुर संहारे,
काल, शाल्व धर्महि हित मारे।

रक्त-पात पै तुमहिं न भावा,
जहँ जहँ संभव नाथ बरावा।
राजनीति का कहहुँ बखानी?
तुम अशेष नय-नीतिन-खानी।
काल . यवन भारत-आराती,
नासेउ प्रभु! तुम तेहि जेहि भाँती,
अबहुँ सो कौतुक सुमिरि मुरारे!
हर्ष-विभोर होत जन सारे।
कूटयुद्ध-पटु यवन निकाया,
सके न सोउ समुझि प्रभु-माया।
नासेउ गिरि भ्रमाय यवनेशा,
रच्छेउ यवन-त्रास ते देशा।

दोहा :— *अस्त्र-शस्त्र-विद वीरजन, उपजे बहु जग माहिं,*
तुम समान संतत जयी, लखेउँ सुनेउँ कहुँ नाहिं। ४७

लघु बल ते बहु अरि-बल नासी,
नव रण-पटुता नाथ प्रकाशी।
बार अष्ट-दशयें मगधेशा,
चढेउ जबहिं लै विपुल नरेशा,
मथुरापुरी अरच्छ्या जानी,
त्यागी तुम जस सारँगपानी,
दुर्ग द्वारका जस निर्मावा,
जरासंध जस अंत नसावा,
सो सब रण-चातुर्य-कहानी,
अजहुँ भवन प्रति जाति बखानी।
सैन्य, शस्त्र महँ जय-बल नाहीं,
बसति विजय सेनानिहि माहीं।
यह रण-तत्त्व नाथ ! तुम चीन्हीं,
दुर्योधनहिं सैन्य निज दीन्हीं।
अस्त्र शस्त्र पुनि सकल बिहायी,
आये कुरुक्षेत्र यदुरायी।

दोहा :— *रण-सचालन कीन्ह तुम, रथ-सचालन साथ ,*
सेनानी महिमा तहँहु, पुनि प्रकटी यदुनाथ । ४८

कहँ लगि बरनहुँ प्रभु-गुण-ग्रामा ,
तुम पुरुषोत्तम, सार्थक नामा ।
नासि असुर सब सहित सहायक ,
आजु जयी तुम यदुकुल-नायक !
धर्म-सुतहिं बैठाय सिंहासन ,
चहत धर्म-सयुत तुम शासन ।
तेहि हित मोहिं उपदेश-निदेशा ,
मैं असमर्थ, बुद्धि नहिं लेशा ।
शराघात-पीडित अँग अगा ,
मानस व्यथित, मर्म-थल भगा ।
गिरि, तरु, भूमि, दिशा आकाशा ,
मन विभ्रान्त एक सब भासा ।
अस्थिर असु, गत वाणी, बोधा ,
अबुध आपु केहि करहुँ प्रबोधा ?
एतिक दिनन तुम्हारिहि दाया ,
जियेउँ नाथ ! बिनसी नहिं काया ।

दोहा :— *उपदेशहु तुम धर्मसुत, करहुँ विनय भगवान ! ‑*
पियत अत लगि स्वर-सुधा, निकसहि तनु ते प्राण ।"४६

सुनि निर्मल सुरसरिसुत-वाणी ,
भाषेउ प्रीति भक्त वरदानी—
"निश्छल तात ! स्वभाव तुम्हारा ,
सतत विनयी, वचन उदारा ।
देहुँ तुमहिं वर, होहु सुखारी ,
बिनसहिं तन-मन-दुख-भ्रम भारी ।
मूर्च्छा दाह मिटहिं पल माहीं ,
क्षुधा-पिपासा व्यापहिं नाहीं ।
रज-तम निनसहिं, सत गुण भासहिं ,
श[illegible] अनभ्र सम बुद्धि प्रकासहिं ।

होहु तत्त्वदर्शी, मतिमाना,
जागहिं हृदय ज्ञान विज्ञाना।
माया-जनित आवरण फारी,
त्रिकालज्ञ मति होय तुम्हारी।
दिव्य दृष्टि लहि मोरि विशेषा,
देहु धर्मपुत्रहिं उपदेशा।"

दोहा :— *निकस तमुख ते वर वचन, शान्तनु-सुत गत-क्लेश,*
रवि अथवत लखि लहि विदा, गवने पुर विश्वेश। ५०

बहुरि प्रभात पाण्डु सुत साथा,
आये सरिसुत ढिग यदुनाथा।
दिवस भीष्म वचनामृत-पाना,
निशा बहोरि नगर प्रस्थाना।
नित्य यहहि क्रम हरि अपनावा,
नव उत्साह धर्म-सुत पावा।
जेहि थल भीषण नर सहारा,
होत तहाँ अब शास्त्र विचारा।
यह हरि-कीर्ति विश्व-विख्याता,
सिरजत सतत प्रलय-पश्चाता।
धृतराष्ट्रहु मुनिजन सग आवत,
सुनत भीष्म-वाणी सुख पावत।
अमरहु सर्व सहित-आखण्डल,
सुनत विमान बसे नभ-मण्डल।
श्रोता मुख्य युधिष्ठिर रायी,
पूछत प्रश्न नित्य नव आयी।

दोहा :— *प्रभु-प्रसाद सरिसुत-वदन, बही ज्ञान-रस-धार,*
सागर किमि गागर भरहुँ, बरनहुँ स्वल्पहि सार। ५१

प्रभु-पद-पद्म वंदि अभिरामा,
कीन्ह भीष्म पुनि मुनिन प्रणामा।

जानि धर्ममति नृप-अभिलाषा।
कीन्ही प्रथम धर्म परिभाषा—
"धारण करत सृष्टि जो सारी,
सोई धर्म सर्व-हितकारी।
मानत द्विविधि तात! तेहि ज्ञानी,
पृथक पृथक दोउ कहहुँ बखानी।
सत्य, अहिंसा, इन्द्रिय-सयम,
शौचास्तेय पंच धर्मोत्तम।
नित्य इनहिं तुम जानहु ताता!
सर्व काल, सब कहँ सुख-दाता।
पुनि अनित्य बहु धर्माचारा,
प्रचलित देश काल अनुसारा।
गुनि मन माहिं लोक-हित-हानी,
ग्रहण करत, त्यागत तेहि ज्ञानी।

दोहा:— *वेदस्मृति शास्त्रहु कहत, बहु प्रकार युग-धर्म,*
अज्ञानिहि हठि आचरत, सुजन समुझि तिन मर्म। ५२

कृतयुग प्रचलित जो आचारा,
त्रेता पुनि न तासु व्यवहारा।
जो त्रेता सो रहेउ न आजू,
धर्महु अनुहरि चलत समाजू।
आदि काल सब नर स्वाधीना,
नहिं कोउ राज्य-कुटुम्ब अधीना।
नहिं विवाह-बंधन तेहि काला,
सब स्वच्छंद-विहारिणि बाला।
श्वेतकेतु लखि प्रजा-विषादा,
बाँधी यह विवाह-मर्यादा।
पति-पत्नी-अपत्य बँधि बंधन,
उपजायेउ कौटुम्बिक जीवन।
कुल कुटुम्ब ते, कुल ते जाती,

बसे ग्राम, पुर निगमहु नाना,
क्रम क्रम भयेउ राष्ट्र-निर्माणा।

दोहा:—सँग कुटुम्ब, कुल, जाति के, उपजे जे व्यवहार,
सोइ धर्म तेहि काल के, सोइ मान्य आचार। ५३

पालत स्वेच्छा तिनहिं समाजा,
कतहुँ न कोउ नियामक राजा।
मानत जे न धर्म-अनुशासन,
करत समाज आपु तिन-शासन।
अन्य जाति कुल जब चढ़ि आवत,
मिलि युद्धत, इक एक बचावत।
सबहिं सर्व-कर्मन-कर्त्तारा,
आपु पुरोहित, वणिक, जुझारा।
अस समाज 'गण' तात! कहाये,
शासन विविध गणन-गुण गाये।
जब लगि नित्य धर्म, सद्भावा,
नहिं समष्टि-हित व्यक्ति नसावा,
तब लगि बढ़त गयेउ बल-वैभव,
करि न सकेउ कोउ गणन-पराभव।
पै क्रम क्रम गुण छीजन लागे,
आलस अनैक्य गणन महँ जागे।

दोहा:—पागे निज निज स्वार्थ नर, सबहि सर्व-हित भार,
विलव व्यापेउ भूमितल, नष्ट जाति आचार। ५४

तेहि अशान्ति ते उपजेउ राजा,
दस्यु विनासि, साधि जन काजा।
'विरजा' नाम वंश विख्याता,
प्रथम राज-कुल क्षेम-प्रदाता।
उपजे विपुल नृपति जन-वत्सल,
थापे नित्यधर्म दलि खल-दल।

सुखी समृद्ध निखिल जब देशा,
उपजेउ तेहि कुल वेन नरेशा।
लहेउ सिंहासन क्रूर, कुचाली,
तजि नृप-धर्म प्रजा खल घाली।
रहे अराजकता-दुख जेते,
उपजे वेन-राज्य पुनि तेते।
लखि मुनिजन-उर छोभ-अपारा,
गहि कुश मंत्र-पूत संहारा।
वेनहि सदृश ज्येष्ठ सुत तासू,
नाम निपाद, कुमति, नर-पाशू।

दोहा :— *निरखि क्रूर, नृप-गुण-रहित, पितु-सम इन्द्रिय-दास,*
जानि प्रजा-मत तेहि मुनिन, दीन्ह देश-निर्वास। ५५

वेन द्वितीय तनय 'पृथु' नामी,
विनय-निधान, धर्म-अनुगामी।
सौंपत तेहि पैतृक सिंहासन,
दीन्ह मुनीशन अस अनुशासन—
'चहत जो निज पितु-राज्य विशाला,
होहु प्रतिज्ञा-बद्ध भुआला।
राजा सोइ करत जन-रंजन,
क्षत्रिय, अक्षत जासु प्रजाजन।
नित्य धर्म, जातिहु आचारा,
औरहु जे हितकर व्यवहारा,
तुम्हरे हेतु सर्व करि संचित,
करिहैं धर्मशास्त्र हम विरचित,
पालहु प्रजा ताहि अनुसारा,
करहु सबन सँग सम व्यवहारा।
जे समाज-त्रासक, उद्दण्डा,
देहु तिनहिं न्यायोचित दण्डा।

दोहा :— *काम, क्रोध, मत्सर तजहु, लोभ, मोह, मद, मान,*
मनसा - वाचा - कर्मणा, करहु लोक-कल्याण।' ५६

सोरठा:—*शुक्रनीति नृप-काज, विरची शुक्राचार्य तब,*
भयेउ सबहि पृथु-राज, चारि फलद, त्रय ताप-हर।

यहि विधि मुनिन यत्न करि नाना,
कीन्ह निरंकुशता अवसाना।
भयेउ राज-पद धर्म नियंत्रित,
निखिल नृपति-जीवन नय-नियमित।
पै नहिं अब नृपतिहि जन-पालक,
सचिव यथार्थ राज्य-सञ्चालक।
जन-विश्वास-पात्र, तद्देशी,
विग्रह-संधि-प्रवीण विशेषी,
जेहि धर्मार्थ काम कर ज्ञाना,
लखि लक्षण जेहि नर पहिचाना,
निरहंकारी, मत्सर-हीना,
जो नित नृपति-प्रजा-हित लीना,
मृदु-भाषी, कृतज्ञ, गुण-दर्शी,
सतत क्षमी नहिं सतत अमर्षी,
चित्तस्थिर, जित इन्द्रिय जोई,
सचिव सुयोग्य नीति कह सोई।

दोहा:— *अन्य अनुचरहु याहि विधि, सदा परखि पहिचानि,*
रहत नियोजत जो नृपति, होति नाहि हित-हानि। ५७

सचिव अनुचरहु समुचित पायी,
रहहिं सतर्क सतत नररायी।
दुष्कर त्यागन स्वार्थ समूला,
दुर्लभ मनुज सदा-अनुकूला।
सचिव, सभासद, सुहृद, सजाती,
घेरे रहत नृपहिं दिन राती।
एक न अस जेहि इच्छा नाहीं,
रहहिं भूप मोरेहिं वश माहीं।
तातें नीति निपुण नरनाथा,
राखत राज्य सूत्र निज हाथा।

काहू पै न पूर्ण विश्वासा,
पै सब प्रति प्रतीति-आभासा।
भृत्य आदरहि सुहृद समाना,
सुहृद सहोदर सम सन्माना।
सोदर सग करहि व्यवहारा,
राजपाट जनु तिन कर सारा।

दोहा :— *प्रतिनिधि मानहि आपु कहँ, चतुर नृपति दरसाय,*
भ्रात, सचिव, सामन्त, जन, लेय सबहि अपनाय। ५८

अति शंका, अतिशय विश्वासा,
होत उभय ते नृप-हित-नाशा।
अति प्रतीति संतत गर फाँसी,
मरत अकाल-मृत्यु विश्वासी।
जेहि विश्वास काहु पै नाहीं,
जियतहु मृतवत सोउ जग माहीं।
ताते 'अति' दुहुँ ओर विहायी,
गहत मध्य-पथ नृप सुखदायी।
बहु-सख्यक मनुजन कहँ त्यागी,
उचित न होब एक-अनुरागी।
तदपि एक जो गुणन-निकेतू,
त्यागहि अगणित नर तेहि हेतू।
आपन रिपु-सँग जिन कै प्रीती,
मृदु भापहि, नहिं करहि प्रतीती।
कबहुँ जासु धन-मान विनासा,
उचित न बहुरि तासु विश्वासा।

दोहा :— *होत पात्र-सम जल यथा, तिमि नृप धरहि स्वरूप,*
मृदु रहि सरहि न काज जब, प्रकटहि निज यम-रूप। ५९

नृप केतनहु मृदुता-आवासू,
दण्डहि अंतिम आश्रय तासू।

देव न, मनुजहि तात ! नरेशा,
दण्डहि तेहि ढिग एक विशेषा।
सोइ आदर्श राज्य, सोइ राजा,
अभय करत जो प्रजा-समाजा।
धर्म जदपि जग-धारणहारा,
टिकेउ सोउ लै दण्ड-सहारा।
तदपि दण्डहू नहिं स्वाधीना,
तासु प्रयोगहु धर्म-अधीना।
लौकिक, शास्त्र-विहित व्यवहारा,
सोई दण्डनीति-आधारा।
प्रिय अप्रिय सब ताहि समाना,
समतहि राजदण्ड कर प्राणा।
माता, पिता, गुरुहु किन होई,
दण्डनीय अपराधी जोई।

दोहा :— *दण्ड विनाशक काल-सम, विधि-सम अटल विधान,*
जागरूक शंकर सदृश, रक्षक विष्णु समान। ६०

थापव शान्ति राज्य निज माहीं,
कठिन काज मोरे मत नाहीं।
राजा, राज्य, समाज-विनासी,
बाह्य रिपुहि जन-सर्वस नासी।
दण्डहि युद्ध-रूप पुनि धारी,
रक्षत राष्ट्र शत्रु-संहारी।
तदपि तात ! मोहि नृप सोइ भावत,
यदि उपाय जो समर बरावत।
चेतनहु कोउ नृप बली, प्रवीणा,
युद्ध माहिं जय दैव-अधीना।
नाहिं दैव पर जासु भरोसा,
देत परिस्थिति कहँ सो दोषा।
विषमस्थिति या दैव-वशाता,
रण-परिणाम न निश्चित ताता !

तातें साम, भेद अरु दाना,
अपनावत नृप नीति-निधाना।

दोहा :— *बोलि विविध खग-शब्द जिमि, गहत किरात विहग ,*
करत स्ववश नृप शत्रु तिमि, रँगि आपुहि तिन रङ्ग। ६१

सखा सुहृद बनि हित प्रकटायी ,
देत रिपुहिं दुर्व्यसन सिखायी।
मृगया, द्यूत, मद्य अरु नारी ,
समय-सुयश-धन-बल अपहारी।
देत अरिहिं इन माहिं लगायी ,
आपु बसत संयम अपनायी।
भव्य भवन, मनहर उद्याना ,
करवावत अरि ते निर्माणा।
तासु कोप यहि भाँति नसावत ,
निज धन क्रम-क्रम आपु बढ़ावत।
भाग्य बरनि तेहि सिखवत तोषा ,
आपु करत पुरुषार्थ-भरोसा।
जब धनहीन क्लेश रिपु मावत ,
साधु-विप्र-धन-हरण सिखावत।
प्रायश्चित्तहु बहुरि बतावत ,
यति बनाय तेहि विपिन पठावत।

दोहा :— *यद्यपि गहित पथ यह, कहेउँ तथापि बखानि ,*
राजनीति मायामयी, उचित लेब सब जानि। ६२

जब लगि सबल शत्रु नरनाथा !
आत्म-घात सगर तेहि साथा।
बहति जबहिं सुरसरि घहरायी ,
बचत वेत्र लघु शीश नवायी।
बृहदाकारहु तरु प्रतिकूला ,
नष्ट होत अविनीत समूला।

तिमि आपन-पर-बल पहिचानी,
अवसर परखि आचरहि ज्ञानी।
रिपु प्रकृतिहि नित परखत रहही,
जस रुचि सोइ करहि, सोइ कहही।
मानी देखि करहि सन्माना,
लोभि विलोकि देहि धन दाना।
प्रकट चकित रहि हरिण-समाना,
गुप्त सतर्क सजग जिमि श्वाना।
इंगितज्ञ रहि काक स्वरूपा,
काटि देय दुर्दिन निज भूपा।

दोहा:— *धारहि घट सम शीश निज, जब लगि शत्रु प्रचण्ड,*
लखि अवसर प्रस्तर पटकि, फोरि करहि शत खण्ड। ६३

यद्यपि साम दान फल-दायक,
भेदहि नीति-वृन्द महँ नायक।
कर्म-प्रधान युद्ध-व्यापारा,
बुद्धि-प्रधान नीति-व्यवहारा।
भेद विशुद्ध बुद्धि-खेलवारा,
तातें सोइ सब नीतिन-सारा।
नृप जो साम दाम पहिचाना,
सोऊ करत भेद-सन्माना।
आपु सबल सँग करत मिताई,
देत अरिहिं तेहि संग जुझायी।
रण-भूमिहु महँ भेद सहारे,
सहजहि जात शत्रु संहारे।
कीन्ह प्रथम मैं 'गणन' बखाना,
ऐक्यहि तिन कर जीवन प्राणा।
केतनहु बली होय कोउ राजा,
करि न सकत रण गणन-अकाजा।

दोहा:— *एक भेद तजि और नहि, तिनके जय हित नीति,*
नासत प्रथम मतैक्य जो, सकत सोइ गण जीति। ६४

नीति-त्रयी मैं बरनि सुनायी,
गहि जेहि पूर्व नृपन श्री पायी।
तदपि गौण यह नीति पसारा,
युद्धहि अंत राज्य-आधारा।
वर्ण-व्यवस्था, आश्रम धर्मा,
ज्ञान, ध्यान, यज्ञादिक कर्मा,
कृषि-गोधन वणिकन-व्यापारा,
विविध शिल्प, बहु कला-प्रसारा,
वैवाहिक जीवन, सुत, जन, धन,
औरहु जे सामाजिक बंधन—
रक्षण सब कर रण-महि माहीं,
समर-विजय बिनु कछु कहुँ नाहीं!
उपवन-रक्षक कण्टक जैसे,
युद्ध मनुजता रक्षक तैसे!
बसत विहग जिमि वृक्ष सुखारे,
तैसेहि संस्कृति शूर-सहारे।

दोहा :— *भोगत सबलहि धन-विभव, अर्जित निबल-प्रयास,*
जिमि पिपीलिका-श्रम-रचित, डीह करत अहि वास। ६५

सोरठा:—*श्रुति, इतिहास, पुराण, सतत प्रशंसत अध्वरहि,*
मोरे मत नहिं आन, यज्ञ तात! रण-यज्ञ सम।

शूर नरेश यज्ञ यजमाना,
अश्व-निकर अध्वर्यु समाना।
मत्त मतंगहि ऋत्विज ताता!
दुंदुभि-वृन्द यज्ञ-उद्गाता।
व्यूह-विधान त्रयाग्नि सोहायी,
बलि-पशु निखिल शत्रु-कटकाई।
तोमर, शक्ति, खड्ग स्रुक सारे,
स्रुवहि कराल बाण अनियारे।
उभय सैन्य-बिच रिक्तस्थाना,
यज्ञ-वेदिका सोइ महाना।

'मारु ! काटु !' ध्वनि रण जो होई,
साम-गान जानहु तुम सोई।
गज-चिग्घार धनुष-टकारा,
वषटकार रव सोइ अपारा।
रुधिर-धार पूर्णाहुति-दाना,
विजय पूर्ण क्रतु-अंतस्नाना!

दोहा :— त्यागहि तप कर सार जो, रण ते बढ़ि तप नाहि,
देत शरीरहु त्यागि निज, शूर समर-महि माहि। ६६

होय आपु जब नृप दृढ़-मूला,
सैनिक तुष्ट, प्रजा अनुकूला।
समर-निपुण गज, अश्व, पदाती,
प्रचुर यंत्र, आयुध बहु भाँती।
रचि प्रसंग कछु, वाद बढ़ायी,
जाय सवेग शत्रु-पुर धायी।
शान्ति-व्यसन जेहि नृप महँ होई,
करत न कबहुँ आक्रमण सोई।
आत्म-रक्षणहि सर्बस मानत,
चढ़त आपु अरि तब रण ठानत।
नीति आक्रमक द्रुत जय-दायी,
रक्षहु कर सोइ श्रेष्ठ उपायी।
तड़कि तड़ित जिमि एक निमेषा,
गिरति जहाँ कछु रहत न शेषा।
तैसेहि शूरहु प्रथम-प्रहारी,
रिपु-मर्मस्थल देत विदारी।

दोहा :— *यहि विधि अरि-सैनिक, सुहृद, प्रजा माहि भरि भीति,*
थोरेहि बल ते रिपु प्रबल, सकत कुशल नृप जीति। ६७

जब नहिं विपुल रक्षि निज पासा,
समर माहिं नहिं जय-विश्वासा,

निष्फल सामहु, दामहु, भेदू,
तबहुँ करहि नहिं नृप मन खेदू।
सबल रिपुहिं लखि करत चढ़ाई,
लेय दुर्ग महँ आश्रय धायी।
जनपद-प्रतिनिधि, धनिक प्रजाजन,
सचिव, पुरोहित, सुहृद, राजजन,
तजहि न इनहिं चतुर नरनाथा,
राखहि दुर्ग माहिं निज साथा।
खेतन ते द्रुम अन्न मँगायी,
राखहि सकल दुर्ग महँ लायी।
सकहि न जेतिक धान्य सँभारी,
जेहि थल तहँहि देय सब जारी।
सकल सरित-सेतुन कहँ तोरी,
देय तडाग सरोवर फोरी।

दोहा :— *कूप-वारि जो नहि सकहि, नृपति बहाय सुखाय,*
विष मिलाय दूषित करहि, सकहि न अरि सोउ पाय। ६८

जिमि रस लेत मधुप बिनु तरु-क्षति,
लेय प्रजा ते कर तिमि नरपति।
तदपि करहि जब सबल चढायी,
दुर्दिन-घटा घिरहि जब आयी।
धनिकन ते धन याचि उधारा,
करै नृपति वाहिनि विस्तारा।
लोभ-निरत, निज स्वार्थहि पागे,
देहि धनिक जो धन नहिं माँगे,
तजि सकोच हरहि धन राजा,
होन देय नहिं राज्य-अकाजा।
रक्षत प्रजहि नृपति सब काला,
रक्षहि प्रजहु विपति भूपाला।
विज्ञ प्रजहिं कर्तव्य बतावहिं,
धनिक देहिं, नृप-कोष बढावहिं।

शिल्पी करहिं शस्त्र निर्माणा,
सब मिलि करहिं राज्य-कल्याणा।

दोहा :— *परहिं विपति जब देश पै, सकल भेद बिसराय,*
चारि वर्ण, योगी-यतिहु, आयुध लेहिं उठाय। ६९

विप्र, वैश्य, शूद्रहु किन होई,
जन-रक्षक जो, क्षत्रिय सोई।
दै न सकत जो प्रजहिं सहारा,
मृतक श्वान सम सो भू-भारा।
सो जल-विरहित जलद समाना,
काष्ठ मतंग-सदृश निष्प्राणा।
अन्य सकल नृप धर्म मृगेशा,
प्रजहिं उबारत सोइ नरेशा।
निज क्षेमहि जो चाहनहारा,
क्षत्र कलंक ताहि धिक्कारा।
निहति दस्यु जो प्रजहिं बचावा,
शास्त्र पुराण तासु यश गावा।
रुधिर-धार अष्टांग नहायी,
देत शूर सब पाप बहायी।
युद्ध समान पुण्य यश-दाता,
नहिं कोउ धर्म विश्व महँ ताता।"

दोहा :— *समर-प्रशंसा भीष्म-मुख, सुनि यहि भाँति अशेष,*
चकित-चित्त भाषे वचन, शान्ति-निधान नरेश— ७०

सोरठा —*"कीन्ह अहिंसा-गान, नित्य धर्म तेहि कहि प्रथम,*
अब प्रभु! करत बखान, कस अस हिंसा मय समर?"

प्रश्न सममं सुनत नृप केरा,
विहँसे सरिसुत, हरि-दिशि हेरा।
प्रभु-मन जानि, हृदय सुख मानी,
कहेउ नृपहिं अधिकारी जानी—

"नित्यधर्म जे प्रथम गनाये,
वे श्रुति-सम्मत, शास्त्रन-गाये।
कहत सुनत सब सरल लखाहीं,
पै आचरत मुनिहु भय खाहीं।
सुजनहिं बसत जो यहि जग माहीं,
करत कुकर्म अधम जो नाहीं,
होत प्रशस्त धर्म-पथ ताता।
संशय-रहित, नित्य सुखदाता,
खल जय करत प्रजा-अवसादा,
उपजत धर्महु महँ अपवादा।
तजि तब सुजन विहित-व्यवहारा,
आपद्धर्म करत स्वीकारा।

दोहा :—*राजधर्म कहँ तात ! मैं, मानत आपद्धर्म,*
प्राकृत जन हित जो कुकृत, नृप-हित सोइ सुकर्म। ७१

तैसेहि एक देश कर धर्मा,
अन्य देश महँ होत अधर्मा।
आजु जाहि सब धर्म बखाना,
कालिह होत सोइ पाप महाना।
अगणित सूक्ष्म प्रसंग बखानी,
आपद्धर्म सिखावत ज्ञानी।
सर्प-यज्ञ अति क्रूर भयावन,
भे उत्तङ्क ताहि करि पावन।
राक्षस यज्ञहु क्रूर कहावा,
करि तेहि स्वर्ग पराशर पावा।
वधिक सदृश पापी नहिं आना,
नहिं अभोज्य कछु जस मृत श्वाना?
विश्वामित्र तपी मुनिरायी,
परि दुष्काल श्वपच गृह जायी,
बरजेउ वधिक तबहुँ नहिं माना,
भखि श्वान मृत रच्छे प्राणा!"

दोहा :— *कीन्ह प्रश्न सुनि धर्म नृप, "जो प्राणहि सर्वस्व ,*
रहेउ कहाँ तब तात ! जग, नित्यधर्म-वर्चस्व ? ७२

मुनिजन निज निज मत-अनुसारा ,
बरनत धर्म अनेक प्रकारा ।
रही श्रुतिहु जब नाहिं प्रमाणा ,
केहि विधि होय धर्म कर ज्ञाना ?
बढ़त जात मन संशय-भारा ,
बरनहु तात ! सहित विस्तारा ।"
कहेउ पितामह—"मम मत ताता !
सिरजेउ जन-हित धर्म विधाता ।
सर्व-लोक-हितकर सोइ धर्मा ,
जन-हित-नाशक सोइ अधर्मा ।
सत आचरत लखि हित-हानी ,
अक्षर पकरि चलत अज्ञानी ।
सर्व-भूत-हित कर जो कारण ,
सोई सत्य, न शब्दोच्चारण ।
प्राणिन देत अभय जो दाना ,
सोइ अहिंसा धर्म महाना ।

दोहा :— *घेरि हरत दुर्जन जबहि, सुजनन कर धन प्राण ,*
रहति अहिंसा मौन जो, हिंसा सोइ महान ! ७३

बाह्य आचरण धर्म न होई ,
बसत मनुज-मानस महँ सोई ।
मन ही सब कर्मन-आधारा ,
मन-संजात आचरण सारा ।
शुद्ध अशुद्ध होत मन जैसा ;
तैसिहि वाणी, कर्महु तैसा ।
परहि धर्म-संकट जब प्राणी ,
निरखहि प्रथम शास्त्र श्रुति-वाणी ।
तर्कहु-सम्मत शास्त्र जो होई ,
पालहि तेहि सब संशय खोई ।

करहि तर्क जो शास्त्र-विरोधू,
लेहिं मनुज निज मानस शोधू।
पर-हित-रत जन बुद्धिहिं पावहि,
करहि सोइ जो तर्क बतावहि।
शास्त्र तर्क दोउन सन्मानी,
रहत आचरत संतत-ज्ञानी।"

दोहा :— *कहे भीष्म निश्छल वचन, अनुमोदे सब व्यास,*
उपजेउ धर्म नरेश हिय, नवस्फूर्ति, विश्वास। ७४

बोलेउ हेरि पितामह ओरा—
"एकहि प्रश्न तात ! अब मोरा।
नित्य अहिंसा आदिक धर्मा,
काल-विवश जो होत अधर्मा;
तैसेहि हिंसा आदि कुकर्मा,
होत समय-वश जो सत्कर्मा,
तौ कालहि यहि जग बलवाना,
मिथ्या सब पुरुषार्थ-बखाना।
कार्य मनुज, कालहि जो कारण,
संभव तात ! न तासु निवारण।"
सुनत अवनिपति-प्रश्न गँभीरा,
भाषेउ बहुरि भीष्म मति-धीरा—
"प्रश्न तुम्हार मोहिं अति भावा,
काल बली, बहु तासु प्रभावा।
मनुज तथापि अधिक बलवंता,
बुद्धि असीम, प्रभाव अनंता।

दोहा :— *काल कार्य, कारण मनुज, पुरुषार्थहि बलवान,*
पुरुषोत्तम सतत करत, युग नवीन निर्माण। ७५

कृत, त्रेता, द्वापर, कलिकाला,
चारि युगन महँ कलिहि कराला।

आवत तात ! सो जब जेहि देशा,
करत प्रजा महँ नाहि प्रवेशा।
राज्य-सूत्र जिन मनुजन हाथा,
प्रजा-प्रमुख अथवा नरनाथा,
प्रविशत तिनहिं माहि हठ ठानी,
हरत विवेक, करत अभिमानी।
अहंकार-सँग स्वार्थ-प्रवेशा,
जहाँ स्वार्थ तहँ शील न लेशा।
नष्ट-शील द्रुत धर्म-विनाशा,
सत्यास्तेय शौच कर नासा।
इन्द्रिय-दमन रहत नहिं शेषा,
हिंसक सबे जन-पंच, नरेशा।
यहि विधि सब नृप, नायक सारे,
होत स्वार्थ-रत शील विसारे।

दोहा :—*प्रजा-समाजहु लखि तिनहिं, देत धर्म-पथ त्यागि,*
व्याप्त पूर्ण कलिकाल तहँ, जात शक्ति सुख भागि। ५६

परत सुजन जो कबहुँ लखायी,
देत प्रबल खल तिनहिं नसायी।
जहँ समाज यहि भाँति मलीना,
धर्महु होत प्रभाव-विहीना।
उपजत महापुरुष तब आयी,
देत अहिंसा शान्ति विहायी।
गहि हिंसा-मय आपद्धर्मा,
करत कठोर कुटिल नित कर्मा।
धर्म-उदधि लहरत उर माहीं,
तदपि कार्य विपरीत लखाहीं!
क्रम-क्रम दुर्जन-वृन्द प्रचारत,
करि छल-बल समूल संहारत।
कलिहु-प्रभाव रहत नहिं शेषा,
प्रकटत नव युग पुनि तेहि देशा।

करत जे यहि विधि युग-निर्माणा,
कहत तिनहिं युग-पुरुष पुराणा।

दोहा :— *होत तात ! युग-व्यक्ति महँ, जेतिक धर्म-विशेष,*
कृत, त्रेता, द्वापर तथा, होत प्रकट तेहि देश। ७७

क्षत्रिय-धर्म वेद जो गावत,
सोइ युग-पुरुष सतत अपनावत।
ताते क्षात्र-धर्म सम ताता!
अन्य धर्म नहिं अभय-प्रदाता।
रच्छत जन जो हरि-पथ शूला,
मम मत सोइ सब धर्मन-मूला।
अन्य धर्म बरु संशयकारी,
यह प्रत्यक्ष सर्व-हितकारी!
ताते धरि शिर हरि-आदेशा,
राजधर्म मैं कहेउँ विशेषा।
धर्म-तनय तुम धर्म सदेहा,
त्यागहु निखिल हृदय-संदेहा।
जप-तप, यजन-भजन फल जेते,
लहिहौ प्रजहिं पालि तुम तेते।
अंत समय मम तात! असीसा—
जन-प्रिय हरि-प्रिय होहु महीशा!"

दोहा :— *भये पितामह मौन दै, शुचि आशिष, उपदेश,*
भये उत्तरायण तबहिं, वसुधा-नयन दिनेश। ७८

हरि, मुनिजन, पुरजन कुरुलोगू,
विकल होत लखि भीष्म-वियोगू।
शोभित घेरि पितामहिं सारे,
जिमि शशधरहिं प्रात नभ तारे।
भीष्महु सबहिं सनेह विलोका,

"सहज अपत्य-नेह नर माहीं,
उचित विवेक तजब पै नाहीं।
एक आत्मजहि पुत्र न ताता!
सुवन सोइ जो सौख्य-प्रदाता।
श्रद्धा, विनय, नेह उर धारे,
धर्म-निष्ठ, कुरुकुल-उजियारे,
सुत अस तुम्हरे पाण्डव पाँचा,
साक्षी शास्त्र, वचन मम साँचा।
गुनि पाण्डव निज, शोकहु त्यागी,
होहु बहुरि सुतवंत सभागी।"

दोहा :— *अवनत पद धृतराष्ट्र उत, धारेउ शीश निदेश,*
फिरी पितामह-दृष्टि इत, लखे समीप भवेश। ७९

नाविक जिमि परि उदधि अपारा,
निरखत अथक गगन ध्रुव तारा,
नैमिहि वृत्ति पितामह केरी,
लोचन सजल रहे हरि हेरी।
भक्ति-सिंधु मानहुँ अवगाहा,
बहेउ कपोलन अश्रु-प्रवाहा—
"चहहुँ तरन अब तनु-अवमाना,
आयसु देहु, चलहुँ भगवाना!"
निरखि भक्त-अनुरक्ति प्रगाढ़ा,
मन-धृति हरिहु, दृगन जल बाढ़ा—
"तुम निष्पाप, सुयश-आवासू,
जाहु, करहु वसुलोक निवासू।"
अन्तिम बार रूप-भव-मोचन,
लखि मूँदे सरि-नंदन लोचन।
वशीभूत-मन, धरि हरि ध्याना,
कर्षे ऊर्ध्व पितामह प्राणा।

दोहा :— *निकसउ तजि तजि अंग अँग, जस जस प्राण-समीर,*
भये शरहु तस तस सकल, करि दान-रहित शरीर! ८०

लखत निखिल मुनिजन, भगवाना,
निकसे ब्रह्मरंध्र-पथ प्राणा।
व्योम अमरगण वाद्य बजाये,
मुदित बहुरि निज निधि जनु पाये।
उत सुरपुर-वीथिन जल-चंदन,
अश्रु-सिक्त महि इत जन क्रन्दन।
उत स्वागत नर्तत सुर-बाला,
नाचति भीष्म-चिता इत ज्वाला।
उत वसु करत भीष्म-सन्माना,
भरतवंश-कुल इत जल-दाना।
शोक-विकल नृप, प्रजा-समाजू,
कहत—"अनाथ भये हम आजू।
क्षात्र-धर्म छोणीतल छीणा,
ब्रह्मचर्य, बिनु आश्रय, दीना।
महापुरुषता, ऋजुता नासी,
विक्रम-रस परलोक-प्रवासी !"

दोहा :— सुरसरि-सुत अंत्येष्टि करि, सुरसरि-तट सविधान,
लौटे कुरु-पाण्डव पुरी, मृत-गुण करत बखान। ८१

सोरठा:—प्रकटी बनि अनुराग, भीष्म - निधन - समवेदना,
नव प्रतीति उर जाग, भये एक कुरु-पाण्डु-कुल।
प्रजा, वृद्ध नरराज, पाण्डु-सुतहु सब लखि सुखी,
"एक दिवस यदुराज, कहे धर्म नृप सन वचन—

कुरुक्षेत्र समरानल-ज्वाला,
बिनसे अगणित वीर भुआला।
तेहि हित मोहिं विषाद नहिं ताता!
करत सर्व क्षति पूर्ति विधाता।
अपत तरुहु पुनि फूलहिं फरहीं,
ग्रीष्म-शुष्क सरि पावस भरहीं।
गत बिसारि जो भावी ध्यावत,
सोइ समृद्धि सौख्य जग पावत।

एकहि चिन्ता मम मन राता,
लघु-वय मृत-नृपतिन-अँगजाता।
कहुँ कहुँ शोकित विधवा नारी,
रहीं काहु विधि राज्य सँभारी।
मोहिं भीति सीमान्त-प्रदेशन,
करहिं न कछु उत्पात म्लेच्छगण।
ताते अश्वमेध करि ताता!
होहु सबहिं नव शक्ति-प्रदाता।

दोहा :— *अर्जुन अनुसरि यज्ञ-हय, जीति देश प्रति खण्ड,*
करि विप्लव-अवसान पुनि, थापहिं राज्य अखण्ड।"८२

सोरठा:—*देश-काल-अनुरूप, सुनि विवेक-युत प्रभु-वचन,*
भक्ति-भाव-मय भूप, प्रकटे उर-उद्गार निज—

"लोक-शरण्य नाथ-अभिधाना,
हृदय कृपा-कारुण्य-निधाना।
मति नि:स्वार्थ, अनागत-दर्शी,
गिरा सार-गर्भित, मधुवर्षी।
श्रुति-सम सदा निदेश तुम्हारा,
मैं आजीवन निज शिर धारा।
तदपि आजु विनवहुँ कर जोरी,
पुरवहु इक अभिलाषा मोरी।
जदपि मनोरथ मम चिर-सचित,
सकुचति गिरा सुभाषित-वंचित।
कहहुँ जो—'यह महि नाथ! तुम्हारी',
तौ त्रिभुवन-पति लघिमा भारी।
'स्वीकारहु श्री'—कहहुँ जो प्रभु-प्रति,
सोउ सदोष, सतत तुम श्री-पति।
'रच्छहु प्रजा'—कहहुँ जो ताता!
तौ पुनरुक्ति, अबहुँ तुम त्राता।

दोहा :— *कहत यह हि—'नहिं नाथ! मैं, सार्वभौम पद योग्य,*
जेहि रच्छी भारत-अवनि, ताही ते सो भोग्य'।"८३

चकित सुनत वचनन यदुवीरा,
क्रम क्रम वारिज-वदन गँभीरा।
विहँसि, बहुरि अवनीश निहारी,
ज्ञान-सार हरि गिरा उचारी—
"वचन तुम्हार प्रीति-रस-बोरा,
हुलसेउ पै न हृदय सुनि मोरा।
त्याग-परिग्रह दुहुन उदासी,
मैं केवल कर्तव्य-उपासी।
पर-हित-रत जो स्वार्थ-विरागी,
सम कर्तव्य सर्व तेहि लागी।
तेहि हित, जेहि सम मान-अमाना,
सहज-प्राप्त सोइ उचितस्थाना।
लहत जो धर्म-कर्म अनचाहा,
करत सुचारु तासु निर्वाहा।
जन्मत जो मैं नृप-अँगजाता,
पालत विहित धर्म निज तता!

दोहा :—*जन सामान्य-सँजात मैं, तुम अवनीश-कुमार,*
हरि न सकत अधिकार मैं, तजि न सकत तुम भार। ८४

हरत जो स्वार्थ-हेतु पर-राजू,
करत सो अघी समाज-अकाजू।
त्यागहु करत दम्भ ते जोई,
सद्गति तासु तात ! नहिं होई!
निज वैयक्तिक धन तुम ताता!
सकत मोहिं दै प्रीति वशाता।
निहित राज्य महँ जन-कल्याणा,
होत न तासु दान-प्रतिदाना।
लीन्ह तुम्हार पक्ष मैं यहि रण,
तहँहु तात ! अनुराग न कारण।
जन-हितकर गुनि राज्य तुम्हारा,
तजि प्रण चक्रहु मैं कर धारा

तातें प्रजा-वरोहरि जानी,
रच्छहु राज्य धर्म पहिचानी।
गुनि निज प्रजा-मात्र मोहि द्वेवा!
लागहि उचित लेहु सोइ सेवा।

दोहा :— *जब लगि क्रतु-हित उपकरण, जुरहिं यहाँ सब आय,*
तब लगि आयसु देहु मोहि, बसहुँ पुरी निज जाय।"८५

लज्जित अवनिनाथ सुनि वचनन,
निरखत अपलक हरिहिं गुनत मन—
जीवन-मुक्त कहति श्रुति जाही,
लखत नयन मम निशि-दिन ताही।
रहेउ ध्यान प्रभु-शब्दहि माहीं,
सीखेउँ निरखि चरित कछु नाहीं।
अनासक्त ये, विना विकारा,
लीलहि इन हित सब संसारा।
आत्म-तृप्त ये, आत्मारामा,
रिक्त सर्व हम रक, सकामा।
ये आनँदघन बरसि सुरारी,
हम सर शुष्क भरन लहि वारी।
मोहि सम मूढ़ भुवन नहिं आना,
दातहि देन चहेउँ जो दाना।
बसेउ एक-रस जो व्रज ग्रामा,
द्वारावती, पुरंदर-धामा,

दोहा :— *गो-चारण, आरोह गज, छत्र, पिच्छ सम जाहि,*
सम गोपाल भुआल जेहि, मोहत राज्य कि ताहि? ८६

सोचत अस मन नृप पछिताना,
सुमिरि गमन पुनि उर बिलखाना।
भक्तिमंत नृप दृग जल छावा,
संयम-बद्ध बहन नहिं पावा।

व्यथा विलोकि धैर्य हरि दीन्हा,
गमन अंध अवनिप-गृह कीन्हा।
प्रणमे दम्पति-पद अनुरागी,
विदा विनीत वृष्णिपति माँगी।
विनय-वाणि सुनि, गुनि निज शापा,
शोक सुबल-तनया उर व्यापा।
धृतराष्ट्रहु प्रकटेउ पछितावा,
मृदु बैनन प्रभु ताप मिटावा।
पृथा, द्रौपदिहिं भेंटि सनेहा,
कीन्हेउ गमन सुभद्रा-गेहा।
तोषी अनुजा वधू-समेतू,
गवने संजय, विदुर-निकेतू।

दोहा :— *भेंटि सबहि, लै संग निज, चिर सहचर युयुधान,*
सजल-नयन गजपुर निखिल, तजि गवने भगवान। ८७

सोरठा.— *बरनत पथ पुर, ग्राम, सात्यकि-प्रति गिरि, सरि, तरुहु,*
विरमत मनहर ठाम, निरखेउ हरि गिरि रैवतक।

अथवत रवि पहुँचेउ रथ पासा,
लखेउ चतुर्दिक विशद प्रकाशा।
होत महोत्सव गिरि पै जाना,
विहँसि सात्यकिहिं कह भगवाना—
"कुरुक्षेत्र रण प्रलयंकारी,
शोकमयी भारत महि सारी।
पै यदुजन सुख-मग्न दिवस-निशि,
समुदित षोडश कला विभव-शशि।
शिखर-शिखर मणि रत्नन-राजी,
लखि जनु छिपेउ जलधि रवि लाजी।
गुहा-गुहा प्रति निर्झर पासा,
वितरत तरु-प्रदीप द्युति-हासा।
तरु-तरु हेम सुमन मनहारी,
श्री-हत निशिपति प्रभा निहारी।

देव-द्रुमन सह शैल सोहावा,
नदन उतरि मनहुँ महि आवा।

दोहा — *निरसहु सात्यकि ! ओर चहुँ, ध्वज,पताक फहराय,*
*मद-मन्मथ-उन्मत्त स्वर, रहे नारि-नर गाय ।"*८८

चढ़ेउ अद्रि पै तेहि छण स्यंदन,
निरखे स्वजन-वृन्द यदुनदन।
स्वरित वल्लकी, वेणु, मृदंगा,
विहरत विपिन नारि-नर संगा।
गायन, नर्तन, कौतुक नाना,
सरस विलास, हास, मधु-पाना।
शख श्वेत हरि हाथन धारा,
परसत अधर भयेउ रतनारा।
जनु रक्तोत्पल हस विराजा,
अधर-सुधा लहि मधु स्वर बाजा।
दिशि दिशि हरि-आगमन जनायी,
पाञ्चजन्य ध्वनि गिरि वन छायी।
परत शब्द श्रुति भोग-बिसारी,
धाये दरस तृपित नरनारी।
जय-स्वर प्रकटत उर-उल्लासा,
पहुँचे आतुर श्रीहरि पासा।

दोहा .— *धरि रथहि हर्षे सकल, बरसे सुमन अपार,*
उमहेउ हरि नदनेदु लगि, यदुजन - पारावार । ८६

सोरठा — *हरिहु भरउ भुज काहु, पूछी काहु त कुशल,*
हरेउ काहु उर-दाहु, मन्दस्मित-अमृत बरसि ।

स्वजन संग निशि शैल बितायी,
प्रविशे गेह प्रात यदुरायी।
प्रणमत सुत वसुदेव बिलोकी,
उर उल्लास सके नहि रोकी।

प्रेमस्निग्ध कीन्ह आलिंगन,
दग्ध निदाघ अद्रि जिमि नव घन।
मिलत प्रीत दोउ शोभित कैसे,
निशि-अवसान जलज रवि जैसे।
धाय देवकिहु गोद उठाये,
राखि सुचिर उर प्राण जुडाये।
खोजति रण-व्रण वत्स-शरीरा,
हेरे परसि हरति जनु पीरा।
गवने अन्तःपुर घनश्यामा,
भयेउ महोत्सव जनु प्रति धामा।
परिजन उरहु प्रहर्ष उमङ्गा,
मनहुँ प्रभात प्रबुद्ध विहङ्गा।

दोहा :— *शोभित निज अन्तःपुरी, रानिन सह भगवान,*
वल्ली-वलयित कल्पतरु, जनु नंदन उद्यान। ६०

सोरठा:— *द्वारावती - अधीश, निवसे द्वारावति बहुरि,*
मज्जित सुख-वारीश, इष्टदेव निज लहि प्रजा।

उग्रसेन नृप, उद्धव साथा,
गवनत नित्य सभा यदुनाथा।
कुरुक्षेत्र संग्राम-प्रसङ्गा,
पूछत नृपति, कहत श्रीरङ्गा।
शूर सुभद्रा-सुत रण-करनी,
अमर, रोमहर्षण हरि बरनी।
बरनेउ सजल-नयन अवसाना,
मिलि जिमि रथिन हरे शिशु-प्राणा।
शोकित शौरि, उग्र नरनाहू,
तरुण अरुण-दृग, फरकत बाहू।
सुमिरि सुमिरि शिशु पौरुष-धामा,
पूछत क्रुद्ध अधमिन-नामा।
गुनि मन कृतवर्मा तिन माहीं,
लीन्हे रथिन-नाम हरि नाहीं।

सात्यकि पै न अमर्ष सँभारा,
प्रकट भोजपति-नाम उचारा।

दोहा :— *प्रकुपित कृतवर्महु कहे, शिनि-सुवनहिं दुर्वाद,*
भोज-वृष्णि-वंशन बढेउ, सहसा विषम विवाद। ६१

लखि विद्वेष विकल यदुरायी,
निज प्रभाव-बल कलह बरायी।
गवने गृह अंतस्तल शोका,
अनाचार नित नवल विलोका।
कतहुँ न पुरी पूर्व मख, दाना,
श्रुति-चिन्तवन, साधु-सन्माना।
शून्य समस्त चैत्य, देवालय,
विलसत जन-संकुल मदिरालय।
कुल-आचार-विचार बिसारे,
मत्त वित्त-मद यदुजन सारे।
जियत उदात्त वृत्ति सब त्यागी,
मृगया-मात्रहिं श्रम तिन लागी।
द्यूत विनोद, होड़ मदपाना,
तिय पुरुषार्थ, सुरसता छाना,
मान्य-विमानन महा सत्त्वला,
स्वेच्छाचार, दुराग्रह प्रभुता।

दोहा :— *निवसत जब यहि भाँति पुर, अच्युत व्याकुल चित्त,*
अकस्मात यदुकुल घटेउ, अन्यहु इक दुर्वृत्त। ६२

कृष्ण-पौत्र अनिरुद्ध कुमारा,
शुद्ध-अरुद्ध, रूप-उजियारा।
रुक्मि-पौत्रि तेहि लही स्वयंवर,
गवने लग्न लागि हरि हलधर।
कुरुक्षेत्र रण-महि हत-शेषा,
जुरे भोजकट नगर नरेशा।

लखि सपन्न कृत्य शुभ सारा,
दुर्मति नृपतिन हृदय विचारा—
यदुजन-लागि रुक्मि-विद्वेषा,
क्रम-क्रम होत जात अब शेषा,
आजु सुअवसर, रचहिं प्रसंगा,
करहिं विवाह-रंग महँ भंगा।
रचि प्रपंच यहि विधि अविचारी,
जाय रुक्मि-प्रति गिरा उचारी—
"शस्त्र-समर दुर्जय बलरामा,
जीतहु इनहिं द्यूत-संग्रामा।

दोहा :— *जदपि अक्ष-अनभिज्ञ य, लक्ष्मी-गर्व महान,*
व्यसनिहु, करहिं नहि कबहुँ, अस्वीकृत आह्वान।"६३

सोरठा —*सुनि रुक्मिहु अनुकूल, जाग्रत वैर प्रसुप्त उर,*
द्यूत आपदा-मूल, आरभउ खल बोलि हलि।

निष्क सहस बलभद्र लगाये,
जीति दाँव रुक्मी अपनाये।
अक्ष-अदक्ष, बहुरि बलरामा,
हारे लक्ष द्यूत-संग्रामा।
प्रमुदित हलिहिं रदन दरसायी,
हँसे कुमति कछु नृपति ठठायी।
भाषेउ रुक्मिहु जय-मद-माता—
"होत न घोष द्यूत-निष्णाता।"
रोषावेश राम-मति भोरी,
धरे दाव पुनि निष्क करोरी।
लखि विशाल निधि कैतव कीन्हा,
उत्तर प्रकट न रुक्मी दीन्हा।
पाँसा पै तेहि पण हलि डारे,
सत्वर हलि निज विजय पुकारे।
भाषेउ रुक्मि—"न मैं कछु हारा,
पण तुम्हार मैं कब स्वीकारा?"

दोहा :— *अस कहि नृपतिन तन लखेउ, अनुमोदे तिन बैन,*
कोप-प्रकंपित राम तनु, बरसे शोणित नैन। ६४

सबल हस्त करि अक्षाघाता,
रुक्मी तत्क्षण हली निपाता!
भागे नृप 'हा! हन्त!' पुकारा,
कलभस्तभ राम कर धारा—
"हँसे मोहिं जे रद दरसायी,
तिन-सह सकत स्वदेश न जायी!"
अस कहि धाय गहे, महि डारे,
हलि अमर्षि हठि रदन उपारे!
कोउ शिर चूर्ण, काहु कर टूटे,
शोणित स्रवत काहु अँग फूटे।
घोर राजगृह हाहाकारा,
विलपत विकल रुक्मि-परिवारा।
करुणाधाम बंधु-अनुरागिणि,
स्रवति अजस्र अश्रु-जल रुक्मिणि।
इत तिय-दुख, उत अग्रज-रोषा,
सके न हरि दै काहुहिं दोषा।

दोहा :— *जस-तस करि सपन्न प्रभु, जो विवाह-विधि शेष,*
पठे स्वजन द्वारावती, आपु गये कुरुदेश। ६५

यज्ञ-द्रव्य उत लावन-काजा,
गवनेउ हिमगिरि सानुज राजा।
पहुँचि गजपुरिहु लीलाधामा,
लहेउ न एकहु पल विश्रामा।
दुःखद वृत्त तजत रथ पावा—
'सुत विराटजा मृत जन्मावा!'
पृथा, सुभद्रा, द्रौपदि-क्रन्दन,
सकरुण सुनेउ द्वार यदुनंदन।
लगीं जाय गृह पाण्डव-नारी,
जनु कारुण्य-किंकरी सारी।

प्रथमहिं द्रौणी सैन्य-निवेशा,
सहारे सुत सुभ अशेषा।
यहि शिशु-सँग कुल-अंकुर नासा,
उर न काहु जीवन-अभिलाषा।
लखत हरिहिं धायीं सब रानी,
बिलखत विकल चरण लपटानीं।

दोहा :— मृदुल कुमुद-सम हरि-हृदय, आतुल करुणाकंद,
प्रविशेउ श्रुति-पथ ताहि क्षण, मत्स्य-सुता आक्रन्द। ९६

निराधार, शोकानल-जारी,
कलपति विकल वियोगिनि नारी—
"विधि! पूर्वहि मैं निहत, अभागी,
अब यह वज्रपात केहि लागी!
छीनि प्राणपति, तातहु, भ्राता,
हरत शिशुहु कस दस्यु! विधाता।
गवनत नाथ लीन्हि नहिं साथा,
तजी दासि असहाय, अनाथा।
मंद-बुद्धि मैं यहि शिशु-लागी,
धारे प्राण प्रणद-व्रत त्यागी।
सोउ कामना दैव न पूरी,
नष्ट आजु मम जीवन-मूरी।
जन-संकुल जगती-तल सारा,
मम-हित आजु विजन कान्तारा।
व्याप्त तमिस्र विषम चहुँ ओरा,
सुनहि अरण्य-रुदन को मोरा?

दोहा :— काह करहुँ, कहँ जाहुँ मैं, कहाँ सँजीवनि मूरि,
सकत दुःख हरि एक हरि, चले जाय सोउ दूरि!"९७

सुनि विह्वल हरि मूर्त सनेहा,
प्रविशे धाय सूतिका-गेहा।

लखी अवनितल मत्स्य कुमारी,
निपतित मनहुँ नलिन बिनु वारी।
छाम वाम-तनु कान्ति-विहीना,
भये स्रोत-क्षय जनु सरि छीणा।
अस्तव्यस्त विभूषण-भूषा,
मलिन दीप-द्युति जनु प्रत्यूषा।
गत सुत-सँग विधवा एकाशा,
कर्षत प्राण विपोष्ण उसासा।
रहति मूक, क्रन्दति पुनि कैसे,
हूकति चक्रवाकि निशि जैसे।
सुनतहि परिचित हरि-पद चापा,
मनहुँ प्राण रस नव तनु व्यापा।
धाय, उठाय गहेउ शिशु अंका,
जनु प्रतीचि दिक् प्रात मयंका।

दोहा :— *लटपटाय यदुराय-पद, लाय, डारि मृत बाल,*
प्राञ्जलि दीनदयालु प्रति, बोली वाम विहाल— ६८

"शरण-प्रपन्न जानि निज चेरी,
करुणा दृष्टि देव! तुम फेरी।
भाषत व्यास आदि सब मुनिजन,
निष्फल नाथ! तुम्हार न दर्शन!
रच्छी प्रभु संतत तिय दीना,
पै को मो सम भाग्य विहीना?
पति, पितु, भ्रात, विधातहु-त्यागी,
गति तुम एक नाथ! मम लागी।
जदपि अनुग्रह-निग्रह-आलय,
नाथ विरुद 'करुणा करुणालय'।
द्रवहु अभागिनि प्रति भगवाना,
करहु सुतहि प्राण-प्रदाना।
सुयश भुवन त्रय भरि अस छावा,
प्रभु गुरुपत्नी सुवन जियावा।

यमहु-संयमन करि तुम नाथा!
लाये जिमि गुरु-सुत निज साथा,

दोहा :— मृत्यु-पाश ते मुक्त तिमि, करहु सुवन मम स्वामि!
जानत मम उर-वेदना, तुम विभु अन्तर्यामि। ९९

सोरठा:—नृप-पद जाहि स्वहस्त, कीन्ह काल्हि अभिषिक्त तुम,
वंश तासु विध्वस्त, होत विलोकत नाथ! कस!"

दीन बैन सुनि जननी केरे,
शिशु दिशि दीनबंधु दृग फेरे।
भूति वैष्णवी भरति जो त्रिभुवन,
भयी प्रकट सहसा विभु-आनन।
स्रवत शान्त, शीतल आलोका,
अनिमिष दृष्टि शिशुहिं अवलोका।
निजस्नेह दै यदुकुल-दीपा,
कीन्ह सजग जनु प्राण-प्रदीपा।
मनहुँ अमिय-रस-धारा बरसी,
चेतनता शिशु-अँग-अँग सरसी।
उषःकाल रवि-कर जनु पायी,
विलसेउ कमल-मुकुल हुलसायी।
तनु सजीव जनु सोवत जागा,
क्रम-क्रम श्वास लेन शिशु लागा।
श्वास-श्वास मुख-द्युति अधिकानी,
हर्ष-विभोर विलोकहिं रानी।

दोहा :— 'हरे कृष्ण! केशव हरे! हरे श्याम! यदुवीर'!
भरी सूतिका-वेश्म ध्वनि, आनँद कण्ठ अधीर। १००

सोरठा:—पुलकी सुता विराट, दीन्ह शिशुहि हरि अंक जस,
चूमि कपोल, ललाट, ललकि भरेउ हिय-धन हृदय।

लीन्हे यज्ञ-द्रव्य तेहि काला,
लौटेउ सानुज धर्मभुआला।

वृत्त अशुभ पुर प्रविशत पावा,
बहुरि द्वार—'हरि शिशुहि जियावा'।
धाय सवन यदुपति-पद परसे,
हर्ष-वाष्प-जल लोचन बरसे।
गोय तरुहु लखि अंकुर अँगुसत,
को छायार्थि न उर जो हुलसत?
दीन्हेउ सचिवन बोलि नरेशा,
पौत्र-जन्म-उत्सव आदेशा।
धाये इत-उत जन मुद-विह्वल,
पद-आघात चलित जनु महितल।
पटह निनाद- चतुर्दिक समुदित,
जनु कृत अट्टहास पुर प्रमुदित।
दिशि-दिशि नगर हर्षध्वनि छायी,
जनु मथि सिंधु सुधा सुर पायी।

दोहा :— *कहत पौर इक एक सन, 'हरि शिशु जीवन-दान,*
रच्छे दोउ राजा-प्रजा, आजु सदय भगवान।' १०१

दिवस षष्ठ मत्स्येश-कुमारी,
तजेउ सूतिका-सद्म सुखारी।
दिवस दशम शुभ घरी सोहायी,
कीन्हेउ नामकरण यदुरायी—
"जय परिक्षीण भयेउ कुल सारा,
जन्मेउ बाल वंश-उजियारा।
राजा-प्रजा मनोरथ-धामा,
तावे होय परीक्षित नामा।"
धर्मनृपहु शिशु-वदन निहारा,
निर्भर रस सनेह तनु सारा।
लीन्ह सुख्याल बाल निज अंका,
जनु राका-संजात मयंका।
धारत पुनि पुनि हृदय समीपा,
निरखत शिशु तन, गुनत महीपा—

अभिनंदन हित पाण्डव-शासन,
रुदन हेतु वंश सिंहासन,

दोहा :— समर-जनित अवसाद हू, हरन हेतु यदुराय,
अभिमन्युहि जनु स्वर्ग ते, दीन्ह आजु मोहि लाय। १०२

यहि विधि मोद-मग्न महराजा,
आरंभे हय-अध्वर काजा।
मख-साधन लखि संचित सारे,
अश्व-पारखी भूप हँकारे।
वाजि सुलक्षण तिन पहिचानी,
कृष्णसार दीन्हेउ शुभ आनी।
शुभ मुहूर्त लखि व्यास मुनीशा,
कीन्ह यज्ञ-दीक्षित अवनीशा।
बोलि बहुरि अर्जुन धनुमाना,
कहे वचन नृप करि सन्माना—
"धन्वी तुम सम शशि-कुल माहीं,
भयेउ न, होनहारहु नाहीं।
पूजी सब तुम मम अभिलाषा,
जिमि सुकाल-घन कृषकन-आशा।
रच्छहु वाजि जहाँ जहँ जायी,
फिरेहु सवेग विजय-श्री पायी।"

दोहा :— *नव उमंग अर्जुन-हृदय, सुनि अग्रज वर बाणि,*
समयोचित तेहि क्षण गिरा, भाषी सारँगपानि— १०३

"हय-सरक्षण भार कठोरा,
संभव यत्र-तत्र रण घोरा।
तदपि तात! यह मम उपदेशा—
करेहु न पदाक्रान्त कोउ देशा।
महि-मणि भारतवर्ष महाना,
वर्ण कदम्ब, जाति, कुल नाना।

युग-युग वे निज-निज महि वासी,
सब स्वतंत्र, सब शौर्य-उपासी।
प्रिय अति सबहिं निजहिं आचारा,
शासित सब स्ववंश-नृप-द्वारा।
उपजे पूर्व काल बहु जेता,
शूर-श्रेष्ठ, साम्राज्य-प्रणेता।
तजि इक जरासंध नृप-पाशा,
पूर्व वंश-क्रम काहु न नासा।
चले जाहि गहि रघु, मान्धाता,
सार्वभौमता-पथ सोइ ताता!

दोहा :—*जहँ जहँ सभय तुम निजय, लहेउ शान्ति अपनाय,*
पघेउ जाहि रण तासु सुत, आयेहु राज्य बसाय। १०४

सोरठा:—*करेहु प्रजा-परित्राण, अवनि पर्यटत वाजि सँग,*
निखिल भरतमहि-त्राण, लायेहु जय सँग तात! तुम।"

ताही समय करत श्रुति-गायन,
अध्वर-वाजि तजेउ द्वैपायन।
यायावर-अनुसरि धनु-हाथा,
गवने पार्थ वाहिनी-साथा।
अक्षत, अंकुर, सुमनन-राशी,
बरसत दिशि-दिशि गजपुर-वासी।
अश्वहु-उर जनु गौरव व्यापा,
गवनत उत्थित ग्रीव सदापा।
मुरि पार्थहिं लखि, नेह जनायी,
खुनि महि खुरन चलत हिहनायी!
उच्चैःश्रवा मनहुँ अवतारी,
योजन-मात्र गनत महि सारी।
पुलकित पुरजन वचन उचारे—
"निनसहिं हय! पथ-विघ्न तुम्हारे।
जय सर्वत्र, क्लेश नहिं लेशा,
फिरहु पुरी लहि सुयश अशेषा।"

दोहा :— *यहि विधि उर-अभिलाप जनु, अर्जुन-संग पठाय ,*
नगर-द्वार लगि दै विदा, लौटेउ जन-समुदाय । १०५

सोरठा—*पार्थ-सुरक्षित वाजि, गवनेउ उत्तर ओर उत ,*
इत मणि-रतनन साजि, रची भीम शुचि मख-मही ।

हरि-निदेश सहदेवहु पावा ,
यज्ञ-निमंत्रण-वृत्त पठावा ।
विप्र अनेक पत्र लै धाये ,
देश देश नृप न्यौति बोलाये ।
द्वारावतिहु निमंत्रण आवा ,
बाँचत उग्रसेन सुख पावा ।
बलरामहिं नृप दीन्ह निदेशा—
"लै उपहार जाहु कुरुदेशा ।
जाहिं संग कृतवर्मा, सारण ,
गद, सात्यकि, प्रद्युम्न आदि जन ।"
हलधर सुनि प्रमोद प्रकटावा ,
कृतवर्महिं क्रतु-वृत्त न भावा ।
कुरुपति पूर्व नेह प्रतिपाली ,
चरन चहत कछु अबहुँ कुचाली ।
नृपति-निदेश टारि नहिं जायी ,
गवनत स्वजनन कुमति सिखायी—

दोहा:—*"आवहि जब आनर्त महि, अर्जुन सँग क्रतु-अश्व ,*
करेहु प्रदर्शित बाँधि तेहि, तुम यदुकुल-वर्चस्व ।"१०६

करि यहि विधि प्रपंच, अपकर्मा ,
गवनेउ गजपुर दिशि कृतवर्मा ।
उत अनुसरि मख-वाजि धनंजय ,
कीन्ह उत्तरापथ सब निर्भय ।
जाय मेरु पर्यन्त रणाङ्गण ,

सिंधुज-केसर-रंजित वाजी,
विचरत वंक्षु-द्राक्ष-वनराजी,
भ्रमत विपुल हिम-भूषित गिरि, वन,
करत अलकनंदा-अवगाहन,
मुरेउ प्राचि दिशि इच्छाचारी,
मही पूर्वतम पार्थ निहारी।
जीते सर्व किरात नरेशा,
स्वर्णभूमि, मणिमान प्रदेशा।
गंगासागर हय अन्हवायी,
लखे महेन्द्र, मलय गिरि जायी।

दोहा :— *करत दक्षिणापथ अभय, जीतत हठी नरेश,*
विन्ध्य नाँघि अर्जुन लखेउ, यदुजन-शासित देश। १०७

सोचत—यह हरि-महि अभिरामा,
शत्रु-शून्य, नहिं कहुँ संग्रामा।
उग्रसेन वसुदेव पूज्यजन,
मिलिहैं प्रकटि प्रीति सब यदुजन।
पार्थ-हृदय अति दरस-उमगा,
प्रविशेउ वढ़ि आनर्त तुरंगा।
भ्रमत जबहिं गोकर्ण, प्रभासा,
पहुँचेउ अश्व रैवतक पासा,
लखे पार्थ यदु बाल अनेकन,
मृगया-निरत, भ्रमत गिरि-कानन।
जदपि अल्प-वय तेज-निधाना,
वक्ष विशाल, वाहु बलवाना।
सज्जित शस्त्र, समर-वरियारे,
जनु वहु कार्तिकेय वपु धारे।
लखि रैवतक चढ़त मख-वाजी,
धाये बाल बाण धनु साजी।

दोहा :— *बरजहिं जब लगि पाण्डु-सुत, पकरेउ घेरि तुरंग,*
बहुरि प्रचारेउ युद्ध हित, गरजि, तरजि, करि व्यंग। १०८

गुनि दुस्साहस भ्रम-वश कीन्हा,
विहँसि नाम निज अर्जुन लीन्हा।
सुनत बाल सब हँसे ठठायी—
"विदित हमहिं कुल, नाम, बड़ाई।
धर्मराज हय-मेध रचावा,
तुमहिं दिग्विजय हेतु पठावा।
देश-देश मख-अश्व फिरायी,
घूमत थापत कुल-प्रभुताई।
यह हय प्रकट समर-आह्वाना,
गहि तेहि हमहु देत रण-दाना।
उपजति पै जो उर कदराई,
गवनहु गजपुर वाजि विहायी।
कुंकुम पोंछि, भंजि मख-माला,
बँधिहैं अश्व हमहु हय-शाला।"
अस कहि अट्टहास करि घोरा,
हय लै चले बाल पुर ओरा।

दोहा :— *निरखत पार्थहि त्रस्त हय, बार बार हिहनाय,*
तजी न पै उर-धृति विजय, बढे शिशुन पछियाय। १०६

कर्षत अश्व, करत परिहासा,
पहुँचे बालक गोपुर पासा।
आवत जात पथ जन जेते,
जुरत, लखत सब कौतुक तेते।
भयी भीर गोपुर ढिग भारा,
हँसत नारि-नर, बाजत तारी।
सहसा तेहि पथ वज्र कुमारा,
निकसेउ यदुपति-पौत्र पियारा।
सुनत कुवृत्त पार्थ ढिग जायी,
प्रणमेउ सादर नाम सुनायी।
हटकेउ शिशुन, सुनेउ तिन नाहीं,
उपजेउ रोष वज्र उर माहीं।

गहेउ समीप अश्व जब जायी,
छीनेउ शिशुन बहुरि बरियायी।
सुनेउ वृष्णि-वंशिन संवादू,
धाये करत वज्र-जय-नादू।

दोहा :— *भोज-वशि, अंधकवुलज, जुरे आय इक ओर,*
दिशि द्वितीय बहु वृष्णिजन, भाषत वचन कठोर। ११०

रण-उन्मत्त पक्ष दोउ जानी,
कही पार्थ वृष्णिन सन वाणी—
"मख-हय-रक्षण कर सब भारा,
हरि-निदेश ते मैं शिर धारा।
करि विभक्त अज सकल न ताही,
सकत स्वबल कर्तव्य निबाही।
शिशु, पुनि स्वजन-संततिहु जानी,
सहेउँ अश्व अपमान, कुवाणी।
वै जो अंधक, भोजवश जन,
करन चहत हरि-नगर रणाङ्गण,
देहिं बाल सब पुर पहुँचायी,
गहहिं अश्व पुनि सन्मुख आयी।
समर-विमुख होइहौं मैं नाहीं,
धनु गाण्डीव अबहुँ कर माहीं।
बधे स्वजन मैं हरि-उपदेशा,
बधत न यदुजन मोहिं अँदेसा।"

दोहा :— *धाये भोजान्धक सुनत, उमहेउ रोष अथाह,*
नगर-द्वार तेहि क्षण दिखे, उग्रसेन नरनाह। १११

सोरठा :— *रोकेउ वेगि विवाद, तोषेउ नृप कुन्ती-सुतहि,*
लहि अनल्प उपहार, चढे पार्थ सौवीर-दिशि।

उत गजपुरी शिल्पि-समुदायी,
रत्नमयी मख-महि निर्मायी।

रचे अगण्य अतिथि-आवासा,
जनु अमरावति सुरन-निवासा।
मणिगण-मण्डित, मन-अभिरामा,
हेमस्तंभ-पंक्ति प्रति धामा।
जन-मन-रंजन हेतु सजायी,
कौतुक-मही विचित्र बनायी।
जलचर, थलचर, नभचर प्राणी,
राखे अद्भुत अगणित आनी।
भोजन-महि बहु बृहदाकारा,
दिशि दिशि विविध अन्न-भंडारा।
लखि घृत होत सरोवर भाना,
बहत दूध-दधि सरित समाना।
द्रव्य-राशि चहुँ ओर लखायी,
जनु कुबेर-निधि मखमहि आयी।

दोहा :—*क्रम-क्रम आये मुनि सकल, प्रजा-वृन्द, नरनाथ,*
अक्षत-तनु पार्थहु फिरे, दिग्विजयी हय-साथ। ११२

चैत्र पूर्णिमा दिवस सोहावा,
व्यास यज्ञ आरंभ करावा।
मख-महि निखिल महर्षि विराजत,
नारदादि देवर्षिहु राजत।
जटाजूट मस्तक सब धारी,
कपिल कान्ति वितरति उजियारी।
वल्कल देह, कक्ष मृगछाला,
हस्त कमण्डलु, अक्षन माला।
बदन विपाटल आभा-मण्डल,
जनु रवि-अवलि अवतरित महितल।
मध्य सुशोभित व्यास मुनीश्वर,
तारक-राशि श्याम जनु जलधर।
मरकत मणिस्तंभ कृत छाया,
शोभित सभा नरेश-निकाया।

मनहुँ नलिनि-वन छाया श्यामा,
विलसत राजहंस अभिरामा।

दोहा :— *जित मरकत-द्युति कान्ति निज, राजत तहँ भगवान,*
यज्ञ-मही जगमग निखिल, कौस्तुभ-प्रभा-वितान। ११३

शोभित श्रीहरि-सँग संकर्षण,
गद, प्रद्युम्न आदि सब यदुजन।
सुत युयुत्सु-सह हरिहिं समीपा,
रत्नासन धृतराष्ट्र महीपा।
दिशि दिशि प्रजा-समाज सोहावा,
व्योमहु अमर विमानन छावा।
मगल-तूर्य, शङ्ख-ध्वनि छायी,
श्रुति-ध्वनि पुण्य, श्रवण-सुखदायी।
बाजत कहुँ मृदंग, कहुँ वीणा,
कतहुँ वेणु-स्वर नर तल्लीना।
शेष न कतहुँ भ्रान्ति, भय, शोका,
मर्त्यलोक जनु अमरन-लोका।
व्योम निर्जरहु वाद्य बजावत,
हर्ष-निमग्न सुमन बरसावत,
यहि विधि नित प्रति जुरत समाजू,
अध्वर-कृत्य करत नरराजू।

दोहा :— *गुनि शुभ दिन पुनि व्यास मुनि, पुण्य घरी सविधान,*
अश्व-मेघ करि नरपतिहि, दीन्हेउ मज्जा-स्नान। ११४

भयेउ पूर्ण जस आहुति-काजा,
परसे व्यास-पदाम्बुज राजा।
आनँद-निर्भर उर, दृग वारी,
गिरा विनीत नरेन्द्र उचारी—
"देव! दक्षिणा वेद-विधाना,
उर मम सकुच करहुँ का दाना?

महीं, स्वर्ग, पातालहु माहीं,
मुनिवर-योग्य वस्तु कछु नाहीं।
तदपि उदधि लगि भारत सारा,
असुर ध्वंसि जेहि हरि उद्धारा,
दीन्ह मोहिं पुनि जो भगवाना,
करत प्रभुहिं मैं सोइ प्रदाना।
यज्ञ-दक्षिणा तेहि निज मानी,
स्वीकारहु मोहिं सेवक जानी।
दास ओर का भेंट चढावहि,
कृष्ण दीन्ह सो कृष्णहि पावहि!

दोहा — *जदपि तुच्छ उपहार यह, स्वीकारहु मुनिनाथ!"*
अस भाषत नरपति गहेउ, वारि-पात्र निज हाथ। ११५

लखि दाक्षिण्य चकित सब राजा,
चकित निखिल मुनि द्विजन समाजा।
चक्ति प्रजाजन, चक्ति अमरगण,
पुलकत, करत सुमनदल-वर्षण।
कण्ठ कोटि स्वर एक उचारा—
'धन्य भूप! धनि दान तुम्हारा।'
शान्त चित्त दै नृपहिं असीसा,
कहे वचन शुचि व्यास मुनीशा—
"त्याग मूर्त तुम धर्मभुआला!
दानहु हृदय-समान विशाला।
तदपि गुनहु नृप! निज मन माहीं,
जन-शासन हित मुनिजन नाहीं।
जन मन पै स्वामित्व हमारा,
जन-तन पै अधिकार तुम्हारा।
परुष वृत्ति आश्रित तन-शासन,
मृदुता ते शासत हम जन-मन।

दोहा — *सिरजे जन-तन-राज्य हित, विधि आयुध धनु बाण,*
मनोराज हित हम लहे, श्रुति, साहित्य, पुराण। ११६

सहसा तजि न सकहुँ निज धर्मा,
नहिं अपनाय सकहुँ पर-कर्मा।
लेत जाहि हरि-भक्ति सकुचाती,
तेहि मैं लेहुँ न अस अज्ञानी।
हरि ते अधिक कवन मतिमाना,
हरि जो सकल पात्र-पहिचाना।
राज-दण्ड दै तुम्हरे हाथा,
मोहि मुनि-दण्ड दीन्ह भवनाथा।
पालहिं हम दोउ निज निज धर्मन,
सुफल करहिं हरि-चरण समर्पण।
हरिहिं सदा प्रिय जन-कल्याणा,
हरि-पूजा न तेहि सम आना।
ताते मैं यह महि लौटारी,
आपन आशिष-गिरा सुखारी—
होहु तात आदर्श नरेशा,
सुयश अमर जब लगि महि शेषा।"

दोहा :— *निरखि शिष्य-गुरु-त्याग सुर, कहत—"धन्य यह देश,*
*धर्म नृपति सम नृप जहाँ, व्यास समान द्विजेश!"*११७

धरि शिर व्यास-निदेश, असीसा,
स्वर्ण दक्षिणा दीन्हि महीशा।
मुद्रा दश अर्बुद मँगवायी,
दीन्ही द्विज-वृन्दन नररायी।
बहुरि मनोवांछित दै दाना,
निखिल याचकन नृप सन्माना।
हेम-विमण्डित तोरण अनगन,
यूपस्तंभ, पात्र, आभूषण,
मख-हित रचित साज-सभारा,
दीन्हेउ अधिन क्षितिपति सारा।
व्यास आपु जो संपति पायी,
दीन्ही कुन्ती वधुहिं बोलायी।

आशिष समुझि पृथा तेहि लीन्हा,
व्यय धर्मार्थ अर्थ सब कीन्हा।
भयेउ सशान्ति यज्ञ-अवसाना,
कीन्ह नृपति क्रतु-अंतस्नाना।

दोहा :— *सन्माने नृप माण्डलिक, दै वाञ्छित बल, कोष,*
गवने निज निज पुर सकल, लहि नव शक्ति, भरोस। ११८

गवनत द्वारावति बलरामा,
कह हठि—"चलहु संग घनश्यामा!"
युधिष्ठिरहु तैसेहि हठ ठाना,
लोचन सजल, देत नहिं जाना।"
निरखि धर्म-संकट यदुरायी,
रामहिं कहेउ सप्रेम बुझायी—
"धर्मराज अब भारत-स्वामी,
हम यदुवंशि करद, अनुगामी।
प्रथमहि इनहिं, निरखि गुण अनुपम,
धारेउँ उर मैं कौस्तुभ मणि सम।
अब ये सार्वभौम अवनीशा,
शिरोधार्य जिमि शशि शिव-शीशा।
इनहिं निजेच्छा दै उच्चासन,
उचित सतत पालब अनुशासन।
ताते मानि नृपेश-निदेशा,
बसहु तुमहु कछु दिन कुरुदेशा।"

दोहा — *सस्मित संकर्षण-वदन, सुनि मायामयि वाणि,*
रहे आपु, प्रेषे स्वजन, हरि-इच्छा सन्मानि। ११९

सोरठा:— *बसे जाय बलराम, वृद्ध नृपति धृतराष्ट्र-गृह,*
सुखी आपु घनश्याम, सखा सव्यसाची-भवन।

कुरुक्षेत्र रण-मही अशेषा,
बिनसे मनहुँ कलह, विद्वेषा।

धृतराष्ट्रहिं पाण्डव सन्मानी,
पूजत जनकहु ते बढ़ि जानी।
द्रौपदि आदिक पाण्डव-नारी,
सेवत कुन्तिहि सम गान्धारी।
पाय प्रथम पितृव्य-निदेशा,
राज-काज सब करत नरेशा।
उठत प्रात - बदत पद जायी,
सोवत निशिहु पूछि कुशलाई।
पाण्डु-सुवन लखि आज्ञाकारी,
विनय-विवेक-निरत, प्रियकारी,
सुखी दम्पतिहु गत बिसरायी,
प्रथमहि बार शान्ति उर पायी।
लोभ, मोह, भय, शोक-विहीना,
मन गोविन्द-पदाम्बुज लीना।

दोहा:— *गुनत विदुर लखि वृद्ध नृप, श्रीहरि-प्रीति विभोर—*
उपजति भक्तिहु नाहिं उर, बिनु प्रभु-करुणा-कोर। १४०

निखिल राजकुल-नेह निहारी,
निवसत गजपुर हरिहु सुखारी।
कबहुँ सखा प्रिय अर्जुन साथा,
विहरत गिरि, बन, सरि यदुनाथा।
कबहुँ व्यास ऋषि-दर्शन लागी,
गवनत आश्रम हरि अनुरागी।
जात धर्म अवनीशहु सगा,
सुनत शास्त्र श्रुति सूक्ष्म प्रसंगा।
कबहुँ अन्तःपुर पगु धारहिं,
धावहिं रानी काज बिसारहिं।
परीक्षितहु लखतहि यदुरायी,
धावत धात्रि गोद बिसरायी।
किलकत पुलकि अंक हरि पाये,
जात न जननिहु निकट बोलाये।

विफल प्रयास हँसहिं सब रानी,
शिशुहिं हँसाय हँसहिं सुखदानी।

दोहा:—*गेह-गेह यहि भाँति हरि, नेह-सुधा बरसाय,*
गमन हेतु आयसु बहुरि, माँगी नृप ढिग जाय। १२१

व्याकुल सुनत भुआल बहोरी,
बोलेउ विनय वचन कर जोरी—
"नाम-प्रभावहिं सुनि मुनि सारे,
भजत तुमहिं सर्वस्व विसारे।
हम नयनन निरखे भगवाना,
सँग निशि-दिन शयनाशन, पाना।
तजि प्रभु अन्य न गति मैं जानी,
'कृष्ण' नाम इतनिहि मम वाणी।
रोम रोम अनुराग अथाहू,
कहि मुख नाथ! कहहुँ तुम जाहू?
गवने दुस्सह हमहिं वियोगू,
रहे, विहाल विरह यदु-लोगू।
विरमे करि मम प्रेम-निबाहू,
केहि मुख बहुरि कहहुँ नहिं जाहू?
पै मोरहु इक प्रण भगवाना!
प्रभु महि तजत तजहुँ निज प्राणा।"

दोहा —*अस भाषत हरि तन लखेउ, रुद्ध कण्ठ, मन मोह,*
स्रवत दृगन मौक्तिक विमल, बाष्प-बिन्दु-संदोह। १२२

सोरठा:—*श्याम-गमन सवाद, पठयेउ अंतःपुर नृपति,*
छायेउ विरह-विषाद, निखिल भरत कुल तेहि निशा।
होत प्रात प्रति धाम, जाय लही यदुपति विदा,
आपु सजल-दृग श्याम, राम-साथ स्यंदन चढ़त।

सानुज धर्मज, वृद्ध नरेशा,
सुहृद, सचिव, पुर-प्रजा अशेषा,

सींचत हरि-पथ नयनन-वारी,
गवन स्यंदन-सँग पदचारी।
पुर बाहर जैसेहि रथ आवा,
बरबस सबहिं राम बिरमावा।
बिरमे पद पै, नयन न हारे,
गोविंद-वदन बद्ध जनु तारे।
धायेउ दारुक-प्रेरित याना,
प्रति पल बिलग भये भगवाना।
छिपेउ छितिज पुनि यानहु दूरी,
गत यदुनाथ, शेष पथ धूरी।
बिकल पाण्डु-सुत लौटे धामा,
जनु बन बिजन बिना घनश्यामा।
जे जे थल हरि-पद-रज परसे,
लखि लखि तिनहिं उमहि दृग बरसे।

दोहा —*दरसावत इक एक -कहँ, पुनि पुनि पावन ठाम,—*
"करत निमज्जन देव यहँ, यहँ भोजन, विश्राम!"१२२

सोरठा —*तापित भक्त-वियोग, पहुचे यदुपति उत पुरी,*
मग्न मद्य, सुख-भोग, लखेउ बहुरि यदुकुल सकल।

बसे अलिप्त तहाँ हरि तैसे,
मीन-बिलोचन जल महँ जैसे।
जदपि हृदय सोइ यदुजन-प्रीती,
अप्रिय दिन प्रति भयी अनीती।
आर्योचित आचार बिहायी,
पतित निखिल यादव समुदायी।
तजि कुल शील, धर्म अवसादी,
करत आचरण जनु उन्मादी।
अहंकार-विष दूषित वाणी,
चलत उग्रसेनहु अवमानी।
संयम-शून्य, संकोच निसारे,
पियत सुरा नृप-सन्मुख सारे।

होत विवाद कलह दिन राती,
लरि लरि धधकति उद्धव-छाती।
हरि ढिग आवत, अश्रु बहावत,
सुनत हरिहु, समुझाय पठावत।

दोहा:— *दंडत खल, मंडत मही, रंजत प्रजा-समाज,*
निवसे पुर स्वजनन सहित, कछु वत्सर यदुराज। १२४

एक दिवस धृत-कर वर वीणा,
गावत हरि-यश रस-तल्लीना,
दृग प्रेमाश्रु, पुलक तनु छाये,
मुनि नारद द्वारावति आये।
अंकमाल, आसन सन्मानी,
भाषी हास-सरस हरि वाणी—
"अँग अँग आनँद मुनिवर ! छावा,
मानहुँ कछु नवीन कहुँ पावा।
होय न गोपनीय जो गाथा,
जन निज जानि कहहु मुनिनाथा !"
सुनि कह नारद—"तुम अखिलेशा,
अवगत विश्व रहस्य अशेषा।
महूँ तुम्हारिहि माया-प्रेरा,
करत रहत नित लोकन-फेरा।
देखत सोइ जो तुम दरसावत,
सुनन चहहु सोइ आय सुनावत।

दोहा:— *भ्रमत अवनितल आजु मैं, लखेउँ युधिष्ठिर-राज,*
सागर ते गिरि मेरु लगि, शान्ति, शक्ति, सुख-साज। १२५

लहि रसाल-फल जिमि नरनारी,
देत मंजरी-विभव बिसारी,
पाय आजु तिमि धर्म नरेशा,
विस्मृत पूर्व नृपन-यश देशा।

धर्मराज दृढ़व्रत, धर्मज्ञा,
वेदस्मृति - पुराण - तत्त्वज्ञा,
जन-हित-निरत, विचक्षण, त्यागी,
विजित क्रोध, सज्जन-अनुरागी,
सत्यसंध, धृति धैर्य अगाधू,
प्रिय-दर्शन, लोकप्रिय, साधू।
अरि-तम-रवि, जन-कैरव-हिमकर,
अर्थि-कल्पतरु, गुण-रत्नाकर।
जलनिधि सम मर्यादा-पालक,
अनल समान दोष-तृण-घालक।
साम वशीकृत सकल महीशा,
विनय वशीकृत मान्य, मुनीशा।

दोहा — *अर्जत धन, निर्लोभ पै, भोगी, पै रति-हीन,*
पालत धर्म, मुमुक्षु पै, निर्भय, रक्षण-लीन। १२६

शिष्ट रिपुहु भूपति सन्माना,
जिमि कटु औषधि लेत सुजाना।
खल जो प्रियहु नृपति उत्पाटत,
जिमि अहि-दष्ट अंग जन काटत।
प्रतिपालत सब भाँति प्रजाजन,
करि पोषण, शिक्षण, संरक्षण।
पितु अब केवल जन्म-प्रदाता,
नृपतिहिं प्रजा-पिता साक्षाता।
लेत जो षष्ठ अंश 'कर' राजा,
सोउ प्रजा-उत्कर्षहिं काजा।
रवि सम कर्षि स्वल्प धन-वारी,
बरसि सहस गुण करत सुखारी।
चतुरंगिणि नृप-सैन्य सोहायी,
केवल म्लेच्छ खलन भयदायी।
जन हित छत्र-रूप सुखकारिणि,
आतप-वर्षा-शत्रु निवारिणि।

दोहा :— *शासत नृप जनु लघु नगर, भारतमहि - विस्तार,*
सलिलनिधिहि परिखा मनहुँ, तटमहि जनु प्राकार। १२७

पंच महाभूतहु प्राचीना,
नृप-प्रभाव जनु भये नवीना।
नव छिति, नवलहि लागत वारी,
नवलहि विभा हुताशन धारी।
नवल पवन, नवलहि आकाशा,
धृत अपूर्व गुण नव सब भासा।
वस्तु वस्तु नव सत्त्व विकासू,
देति- धान्य महि स्वल्प प्रयासू।
सहज स्वभाव लता तरु धारा,
फूलि फलहिं सब ऋतु अनुसारा।
गोधन विपुल, देत पय गाई,
जात सकल ब्रज, ग्राम नहायी।
पुर, जनपद धन-धान्य-निधाना,
प्रजा धर्म-प्रिय, नित मख दाना।
आधि-व्याधि विनु मनुज निरोगी,
हृष्ट समस्त सहज सुख भोगी।

दोहा — *अनल, वात, जल-भीति नहिं, परत न कहुँ दुष्काल,*
नर इन्द्रिय-निग्रह-निरत, कतहुँ न मृत्यु अकाल। १२८

दिखत पाण्डु-सुत पंच कलेवर,
व्याप्त सबन महँ तुमहिं भवेश्वर!
समझेउँ अब प्रभु! चरित तुम्हारे,
तुमहिं पाँच पाण्डव वपु धारे।
धर्म-शील जो नाथ! तुम्हारा,
धर्म नरेश सोइ साकारा।
बल जेतिक प्रभु-अंगन माहीं,
सोई भीम अन्य कोउ नाहीं।
समर-कुशलता प्रभु कै सारी,
सोइ [illegible] साची [illegible]।

नकुल नाथ-तन-सुषमा गेहा,
शास्त्र-ज्ञान सहदेव सदेहा।
रुचत न तुमहिं भक्त निष्कर्मा,
चहहु भक्ति-सँग निज गुण-धर्मा।
पाण्डु-सुतन महँ गुणगण जागे,
दुख-दारिद्र्य त्यागि महि भागे।

दोहा :— *धर्मराज थापेउ बहुरि, धर्म-राज्य यहि देश,*
द्वापर कीन्हेउ सत्ययुग, कतहुँ अधर्म न लेश। १२९

लीन्ह नाथ ! जब तुम अवतारा,
कम्पित निखिल मही अघ-भारा।
स्वार्थहिं अर्थशास्त्र नर जाना,
मत्स्य-न्याय तजि न्याय न आना।
वंचन कौशल, कैतव नीती,
कला युद्ध, कामुकता प्रीती।
विनसे सदाचार, सत्कर्मा,
क्वचितहिं शेष रहेउ कहुँ धर्मा।
नाथ-कृपा ते सोइ महि आजू,
भयी स्वर्ग लहि शान्ति, सुराजू।
आजु पूर्ण भूतल उद्धारा,
पूर्ण सकल प्रभु ! काज तुम्हारा।
किये जदपि तुम विपुल प्रयासा,
पूजी पै न एक अभिलाषा।
धर्मस्थापन-यशहु तुम्हारा,
चाहेउ दैन पाण्डवन सारा।

दोहा :— *गुनि मन लहिहैं पाण्डु-सुत, तुम्हरे अछत न श्रेय,*
गवनत तुम नहिं गजपुरी, बसत यहीं भजेय। १३०

जग समस्त तबहुँ यह जाना,
धर्मज-राज्य-मूल भगवाना।

शैशव ते हय-मख पर्यन्ता,
कीन्हे जे तुम चरित अनंता,
कवन ग्राम पुर भारत माहीं,
बरनत तिनहिं जहाँ नर नाहीं।
खेतन करत शालि रखवारी,
गावति प्रभु-यश कृषक-कुमारी।
बिलकि पालने बाल अबोला,
लेत प्रथम हरि-नाम अमोला।
प्रभु-लीला-मय मनुज-विनोदा,
मंगल गायन, नृत्य, प्रमोदा।
नाथ-मूर्ति-मय भारत भासा,
तेहि-गत निखिल कला-अभ्यासा।
हरि-मय भारत, भारतवासी,
स्वप्नहु प्रभु-दर्शन अभिलाषी।

दोहा :— *विज्ञ नरन के का कथा, शुक सारिकहु विहग,*
गेह-गेह गावत मुदित, हरि-अवतार-प्रसंग। १३।

लखेउँ नाथ! जो सकल सुनावा,
एकहि वृत्त समुझि नहिं पावा।
जात उत्तरापथ नहिं नाथा,
सुखी निवसि नहिं यदुजन साथा,
सफल सकल संकल्प तुम्हारे,
कस अब लगि मानव वपु धारे?
कहहु जो, त्यागत मही तुम्हारे,
तजिहैं पाण्डव राज्य दुखारे।
तबहुँ नाथ नहिं प्रजा-अकाजू,
विज्ञ, वयस्क परीक्षित आजू।
भूषित पैतृक-गुणन कुमारा,
सहजहिं धारि सकत शिर भारा।
अमरहु चहत फिरहिं अब स्वामी,
वि[illegible] [illegible] सो [illegible]न्तर्यामी।

राखि महीतल सुयश अशेषा,
करहु नाथ! अब लीला शेषा।"

दोहा — *'एवमस्तु'—प्रभु हँसि कहेउ, नार्जी पुनि मुनि-वीन,*
गवने नारद व्योम-पथ, महि हरि चिन्तन-लीन। १३२

सोचत पुनि पुनि मन यदुराजू,
शेष कि कहुँ कछु लघु नड काजू?
रहेउ कि कहुँ कोउ नेही, दासू,
हरि विपत्ति न अब लगि जासू?
अकस्मात जाग्रत इच्छामा,
शैशव सुहृद सुदामा नामा।
सुमिरत ही पुलके भगवाना,
देखी सखा-दशा धरि ध्याना।
निरखेउ द्विज—निज पद अनुरागी,
आत्मतत्त्व-रत, भोग विरागी।
तनु दारिद्रय-दग्ध, अति चीणा,
वसन एक सोउ जीर्ण मलीना।
दीन-दुखी निमि द्विजवर-जाया,
अन्न विहीन गेह, कृश काया।
विनवति नित पति—'हरि ढिग' जाहू,
सकुचत विप्र, न उर उत्साहू।

दोहा — *दशा निरखि श्रीपति विकल, सिक्त कमल दृग-कोर,*
प्रेरेउ सत्वर द्विज-हृदय, चलेउ द्वारका ओर। १३३

दिवस एक श्री-रुक्मिणि धामा,
हरि मध्याह्न लहत विश्रामा।
सुरभित अगरु, प्रसून-सुवासू,
रम्य हर्म्य जनु रमा निवासू।
बाल व्यजन कर कमल डोलाया,
रुक्मिणि करति कंत सवकाई।

हास-विलास, सरस, आकर्षण,
रंजति प्रणयिनि नारि हृदय-धन।
प्रविशि गेह सहसा प्रतिहारी,
सस्मित आनन गिरा उचारी—
"नाथ ! अवस्थित द्विज इक द्वारे,
जनु रंकत्व आपु वपु धारे।
तनु नहिं उत्तरीय, उष्णीषा,
जर्जर अधोवसन जगदीशा !
धूलि-धूसरित, बिनु पद-त्राणा,
क्षुधा-क्षीण द्विज जनु म्रियमाणा।

दोहा :— टारे- टरत न द्वार ते, चकित लखत धन-धाम,
कहत-'सखा यदुनाथ मम, विप्र सुदामा नाम'।"१३४

सुनत पुलक अंकुर तन छाये,
आतुर द्वार ओर हरि धाये।
लखि वयस्य अनुराग-विहाला,
भरेउ बाहु युग दीनदयाला।
नयन सनीर नेह बरसावत,
रुद्ध कण्ठ, मुख बैन न आवत।
भौंचक लखत दास अरु दासी,
पूछति द्वार जुरी जन-राशी—
'को यह निर्धन, भाग्य-निधाना ?
भेटत जेहिं यहि विधि भगवाना।'
गहि कर नेह-निहाल सुदामा,
लाये श्रीहरि रुक्मिणि-धामा।
चकित प्रिया सन वचन उचारे—
"बालसखा के प्राणपियारे।
बसे संग हम गुरु कुल तैसे,
जननी-गर्भ युग्म मिलि जैसे।

दोहा :— उज्जयिनी नगरी रहे, मुनि सान्दीपनि-गेह,
[illegible] हम दो[illegible] भये एक प्राण दुइ देह।"१३५

अस भाषत पर्यङ्क सोहावा,
लाय सखहिं सादर बैठावा।
आपुहि आतिथेय लै सारे,
द्विज-पद निज कर-कमल पखारे।
चरणोदक रनिवास सिचावा,
मृगमद मलयज अंग लगावा।
धूप, दीप, पूजन सन्मानी,
राखे षटरस व्यंजन आनी।
भोजन-पान तृप्त द्विज कीन्हा,
लै ताम्बूल हाथ निज दीन्हा।
लखि हरि-नेह, जानि द्विजदेवा,
कीन्हि आपु रुक्मिणि अति सेवा।
व्यजन फेन-शुचि कर निज धारी,
लागी सादर करन बयारी।
कबहुँ विलोकति दीन सुदामा,
मलिन वसन, अँग अँग क्षुत्क्षामा।

दोहा :— *कबहुँ लखति यदुनाथ तन, सोचति मन मुस्काय,*
'दीनबंधु बिनु दीन अस, सकत सखा को पाय' । १३६

गुरुकुल-वृत्त विपुल अभिरामा,
पूछति रुक्मिणि, कहत सुदामा।
विहँसत, सुनत, गुनत भगवाना—
विषय-विरत यह विप्र सुजाना।
गृहिणी मम ढिग सहठ पठावा,
सकुचत अबहुँ माँगि नहिं आवा।
तण्डुल-भेंट जो मम हित लाये,
लाजत, देत न, लेत दुराये।
सोचत अस मन कौतुक-खानी,
भाषी विहँसि विप्र सन वाणी—
"गुरु-गृह मम प्रति सखा ! तुम्हारा,
रहेउ सतत अनुराग अपारा।

मुनि-पत्नी ते जो कछु पावा,
मोहिं खवाय आपु तब खावा।
निज गृह ते आये यहि बारा,
लाये काह प्रीति-उपहारा ?"

दोहा :— *लक्ष्मी-पतिहिं न दै सकत, द्विज तण्डुल-उपहार,*
सकत असत्य न भाखि मुख, टूटेउ विपति पहार। १३७

तेहि क्षण चीर-बँधे हरि चाउर,
अहँचे, भयेउ विप्र भय-बाउर।
परसत ही काँपे अँग सारे,
बहे देह ते स्वेद पनारे।
कह हरि मंद मंद मुसकायी—
"देहु सखा ! हिय-सकुच विहायी।
केवल पत्र, पुष्प, फल, वारी,
अर्पत जो सभक्ति नर नारी।
करत ग्रहण मैं नवनिधि मानी,
कस सकुचत तुम अक्षत-दानी !"
अस कहि भरि मूठी यदुरायी,
लीन्हे चाउर विहँसि चबायी।
बरनत स्वाद, कहत—"अति मीठे,
मिलत भवन नित तण्डुल सीठे !"
मूठी हरि जस भरी बहोरी,
गहि कर रुक्मिणि कहेउ निहोरी—

दोहा :— *"लहेउ विश्व-ऐश्वर्य द्विज, एकहि मूठी माहिं,*
केवल कमला त्यागि अब, शेष नाथ ! कछु नाहिं। १३८

तेहि निशि राखि सुदामहिं धामा,
सब विधि सुखी कीन्ह घनश्यामा।
होत प्रात पहुँचावन काजू,
गवने पुर-उपान्त द्विजराजू।

प्रणमे सजल नयन हरिरायी,
दीन्हि विदा बहु विनय सुनायी।
माँगेउ विप्र न कछु प्रभु पाहीं,
दीन्हेउ हरिहु हाथ धन नाहीं।
श्याम-सनेह शिथिल सब गाता,
सोचत विप्रहु मन पथ-जाता—
चरण जासु चारिहु फल-दायक,
परसे मम पद तिन जग-नायक,
सेवत जाहि ऋद्धि-सिधि सारी,
तेहि रुक्मिणि मोहिं कीन्हि बयारी।
धिक! धिक! नर अस प्रभु बिसरायी,
देत भोग परि जन्म गँवायी।

दोहा :— *कीन्ह न भल जो मैं मिलेउँ, धरि उर धन-अभिलाष,*
कीन्ह परम उपकार प्रभु, पूजी जो नहिं आस। १२६

यहि विधि सोचत भक्त सुदामा,
प्रीति-पूर्ण पहुँचेउ निज ग्रामा।
निरखि चतुर्दिक रंक अधीरा,
दृग-पथ परी न पर्ण-कुटीरा।
निरखी महल-अवलि तेहि ठामा,
हेम, रत्न, मणि-मय अभिरामा।
दिशि-दिशि मनहर उपवन नाना,
रम्य महीरुह, लता, विताना।
विहरत खग-कुल पादप शाखा,
मधुलिह सुमन-सुमन मधु चाखा।
विमल सरोवर वारि-पसारा।
फूलत बरट फुल्ल कह्लारा,
रत्न-विभूषित वर नर-नारी,
आवत जात द्वार रव भारी।
विभव विलोकि विभीत सुदामा,
पूछत कितन—'कहाँ मम धामा?'

दोहा :— *सहसा निरखी नारि निज, रमा-रूप अभिराम,*
कहति-"सखहि हरि दीन्ह सब, धान्य, धरा, धन, धाम।"१४०

यहि विधि गमन-पूर्व भगवाना,
कीन्ह सखहिं निज सर्वस दाना।
ऋद्धि सिद्धि यदुवंशिन केरी,
गवनी द्विज-गृह श्रीहरि-प्रेरी।
बढी सुदामा-पुरी दिवस-निशि,
अस्त द्वारकापुरी विभव-शशि।
लागे अशकुन होन कराला,
प्रविशहिं पूजा-भवन शृगाला।
बोलहिं निशि उलूक भयकारी,
चलति अहर्निशि प्रबल बयारी।
गुनि मन गमन-समय नियराना,
यदुजन बोलि कहेउ भगवाना—
"अशुभ दिवस-निशि पुरी लखाहीं,
उचित वास द्वारावति नाहीं।
रवि-उपराग तिथिहु अब पासा,
निवसहिं हम सब जाय प्रभासा।"

दोहा :— *यहि विधि स्वजन बुझाय हरि, गये प्रभास लिवाय,*
सह कुटुम्ब यदुजन निखिल, बसे जलधि-तट जाय। १४१

निवसे हरिहु कुटी निर्मायी,
मन प्रसन्न शुचि क्षेत्र नहायी।
उग्रसेन, पितु, अग्रज साथा,
मंगल-कृत्य-मग्न यदुनाथा।
जननि देवकी, सब पटरानी,
हरिहिं अनुहरहिं उर सुख मानी।
होत होम, मख, पूजा, दाना,
सुनत पुराण, धर्म-आख्याना।
पढ़त मंत्र श्रुति द्विज मुनि नाना,
व्याप्त दशहुँ दिशि पावन गाना।

जलनिधि-जल, शुचि यज्ञ-हुताशन,
महि, आकाश, प्रचण्ड प्रभंजन।
सस्वर जनु श्रुति-गिरा सोहायी,
रहे सलय पुनि पुनि दोहरायी।
जदपि धर्म-मय तीर्थ प्रभासा,
तजेउ न यदुजन विषय-विलासा।

दोहा :— *द्वारावति ते नित विपुल, लहि विलास-सुख-साज,*
नख-शिख बूड़े भोग-रस, तजि हरि-गुरुजन-लाज। १४२

क्षेत्र पवित्रहु विषय कराला,
मदिरा, आमिष, असती बाला।
जुरेउ नर्तकी नटन समाजू,
बिसरेउ धर्म, कर्म, जन-काजू।
सागर-तट, वन, विपिन, पहारा,
करत फिरत निशि-दिवस विहारा।
पियहिं मद्य सब होड़ लगायी,
गावहिं हँसहिं गवाय हँसायी।
नाचहिं मिलि तनु-दशा बिसारी,
गिरि महि उठहिं, बजावहिं तारी।
बनत द्विजन-हित लरिय पकवाना,
छीनि उपद्रव विरचहिं नाना।
मैरेयक मिष्टान्न मिलायी,
देहिं कौतुकी कपिन खवायी।
विप्र-रोष लखि करि उपहासा,
स्वाँग बनाय देहिं बहु त्रासा।

दोहा :— *व्याकुल देखि कुकृत्य सब, उद्धव अति मतिमान,*
गहि पद पूछेउ-"काह अब, करन चहत भगवान। १४३

दिशि-दिशि छाय रहेउ यदु जनरव,
द्वारावति कर सब धन-वैभव,

यदुजन निरखि पाप-पथ-गामी,
दीन्ह सुदामा विप्रहिं स्वामी।
दीन्ह सुबल-तनया जो शापा,
तासु प्रभाव वंश भरि व्यापा।
सकहु नाथ! तुम अशुभ मिटायी,
विनवहुँ करहु दया यदुरायी!
पापिहु जो ये यदुजन सारे,
तुम इनके, ये नाथ! तुम्हारे।
रच्छे तुमहिं नेह करि वर्षण,
आजहु तुमहि सकत करि रक्षण।
पै जो कछु औरहि मन ठाना,
मैं चिर दास चहत सोउ जाना।
मोरहु धर्म कहहु मोहिं पाहीं,
तजि स्वामिहिं सेवक-गति नाहीं।"

दोहा:—*लखि जन-दुख, पुनि मन सुमिरि, आजीवन अनुराग,*
भाषेउ हरि, उद्धव-हृदय, प्रकटत ज्ञान विराग—१४४

"त्यागहु उद्धव! उर-पछितावा,
तुम मम भक्त, न मोहिं दुरावा।
पाय धर्म साक्षात नरेशा,
आजु धर्म-मय मही अशेषा।
उदित देश-नभ धर्म-मयंका,
तेहि महँ यह यदुवंश कलंका।
जरासंध-सम ये अभिमानी,
दुर्योधन-सम खल, अज्ञानी।
भौमासुर सम ये सब क्रूरा,
प्राणि-विनाशन हेतुहि शूरा।
चेदिनाथ-सम कुमति, अभागी,
बुद्धि छिद्र-अन्वेषण लागी।
कालयवन-सम पर-धन-भूखे,
शाल्व-सदृश नेहिहु सँग रूखे।

अब लगि जे मैं शठ संहारे,
तिन ते अधिक अघी ये सारे।

दोहा — *गही आसुरी वृत्ति इन, रहेउ विश्व भय खाय,*
रच्छहुँ जो मैं गुनि स्वजन, मम सममार नसाय। १४१

औरहु कहहुँ रहस्य अनूपा,
ये यदुजन सुर-मनुज-स्वरूपा।
अमरन-सुकृत होत जब छीणा,
जन्मत महि मम मायाधीना।
कर्मभूमि यह देश विचारी,
हृदय मुमुक्षु-भावना धारी,
जन्मे मम सँग ये सब सुरगण,
कीन्ह न तदपि पुण्य नव अर्जन।
सहजहि अमर विषय-अनुरागी,
सके स्वभाव यहुँहु नहिं त्यागी।
अवनि जन्म निज व्यर्थ गँवायी,
बसिहैं अमरावति पछितायी।
इन देवन ते नर वे नीके,
सम सुख दुख रहत उर जिनके।
तिनहिं माहिं मम भक्त सुदामा,
अरहु-हीन तनहुँ निष्कामा।

दोहा — *लहि जो द्वारावति-विभव, सुरहु भये अनुरक्त,*
निर्विकार भोगत सकल, सोइ सुदामा भक्त। १४२

निस्सव जिमि सघर्ष वेणु-वन,
नसिहैं तिमि गृह-विग्रह यदुजन।
पुरिहु गरु मम गेह विहायी,
लहिहै शयन जलधि-तल जायी।
गवन गोपहु सब मम धामा,
मोगहु अब न अवनि-तल कामा।

पूछत तात ! धर्म निज काहा,
भरि जीवन तुम जाहि निबाहा।
एकहि अन्तिम मम आदेशा,
तजहु अबहिं आनर्त प्रदेशा।
'बदरी' नाम धाम मम पावन,
तुहिन-शैल थित, सहज सोहावन।
तहँ जाय, आश्रम निर्मायी,
भजहु तात ! मोहिं चित्त दृढ़ायी।
अत त्यागि तनु तुम निष्कामा,
मिलिहौ आय मोहिं मम धामा।"

दोहा — *सुने सुमति उद्धव वचन, शून्य सकल जग लाग,*
वारि-धार नयनन बही, रोम रोम अनुराग। १४७

गहि पदाब्ज उद्धव अकुलायी,
पुनि पुनि बिलखत विनय सुनायी—
"तुम विभु, सर्व-सहाय, शुभकर,
कस असहाय तजत अस किंकर?
करहु न दर्शन-वंचित देवा!
याचत दास अंत लगि सेवा।"
सुनि विनती हरि-हृदय विहाला,
तजेउ न आग्रह तबहुँ कृपाला।
चहत शाप ते भक्त बचावा,
लखि प्रभु-हठ सेवक शिर नावा।
कीन्ह सचिव उत्तर प्रस्थाना,
इत यदुजन पापहु अधिकाना।
लागे क्रन आश्रमन धावा,
रचि नव कौतुक मुनिन रिझावा।
रोष अपार ऋषिन उर व्यापा,
दीन्हेउ वंश विनाशन शापा।

दोहा — *विकल शाप-सवाद सुनि, उग्रसेन महिपाल,*
विहँसे लीलाधाम मन, लगि नर्तत शिर काल। १४८

आयेउ ग्रहण-दिवस भय-दायक,
क्रम-क्रम ग्रसेउ राहु दिननायक।
उमहे पुरजन, जनपद-वासी,
जुरी प्रभास विपुल जन-राशी।
भोजन-पान मनुज बिसराये,
लखत व्योम दिशि दृष्टि लगाये।
जनु निज सुहृदहिं कोउ पछारी,
रहेउ क्रूर हठि प्राण निकारी।
करुणा-विकल समाज सशंका,
उर अव्यक्त व्याप्त आशंका।
भयेउ पूर्ण जेहि क्षण ग्रासा,
तम-मय क्षिति, वारिधि, आकाशा।
व्याकुल निखिल प्राणि-समुदायी,
जलनिधि क्षुब्ध उठेउ घहरायी।
दिवसहु तारक गगन दिखाने,
लखि संध्या खग नीड़ छिपाने।

दोहा :— *भयेउ हरय औरहि बहुरि, लहेउ सुयोग दिनेश,*
क्रम-क्रम मण्डल पुनि विमल, वसुधहु विरहित क्लेश। १४६

शुचिस्नान पुनि प्रमुदित जन मन,
कीन्हेउ हरिहु वारिनिधि मज्जन।
दै द्विज-याचक-वृन्दन दाना,
प्रविशे निज कुटीर भगवाना।
इत यदुजनहु निवृत्त निमज्जन,
तरु-तल जुरे करत मिलि भोजन।
ग्याये षटरस व्यंजन नाना,
मैरेयक-मिश्रित पक्वाना,
तीर्थ-तिथिहु-मर्याद बिहायी,
जुरेउ पान हित पुनि समुदायी।
पियत चषक अगणित मनचीते,
भये पान-भाजन यहु रीते।

व्यापेउ अँग अँग मद्य-विकारा,
पाटल वदन, लोल दृग तारा।'
अवयव शिथिल, विशृंखल वाणी,
स्रस्त आभरण, संवृति हानी।

दोहा :— *प्रथम हास, उपहास पुनि, व्यंग बहुरि आरोप,*
प्रथम शिशुन, पुनि वृद्धजन, कीन्ह विवाद सकोप। १५०

बरनत निज निज शौर्य अभागे,
एकहिं एक प्रचारन लागे।
कुरुक्षेत्र रण-महिं निज करनी,
खड्ग-हस्त कृतवर्मा बरनी।
सहि न सकेउ सुनि साम्ब कुमारा,
कहि 'अभिमन्यु-वधिक' धिक्कारा।
काँपे सुनि कृतवर्मा-गाता,
कीन्ह कुँवर पै असि-आघाता।
लखि धाये युयुधान अमर्षण,
सायुध कीन्ह साम्ब-संरक्षण।
चिर अरि निज भोजेश निहारा,
कण्ठ मदश्लथ वचन उचारा—
"तुम रण सोमदत्त-अँगजाता,
छिन्न-हस्त, रण-विरत निपाता।
लागत अघ लखि मुखहु तुम्हारा,
होहु न मम सन्मुख हत्यारा!"

दोहा :— *अति निस्त्रपी सात्यकिहु, अक्षर सुनत कठोर,*
"विरमु! विरमु! धर्मज्ञ!" कहि, चढ़े हृदिक-सुत ओर— १५१

"किये कुकृत्य नित्य नव पापी!
कबहुँ न लाज हृदय तव व्यापी।
लोभ स्यमंतक मणि उर धारी,
शतधन्वा निज बंधु हँकारी,

सत्राजितहिं नीच ! बधवावा,
हरिहु-चरित्र कलंक लगावा।
बनि पुनि दुर्मति ! कुरुपति-दासा,
पामर ! यदुकुल-ऐक्य विनासा।
कुरुक्षेत्र-महि धर्म विहायी,
लीन्ह अधर्म-पक्ष खल ! जायी।
स्वजन-शिशुहु अभिमन्यु कुमारा,
तजि रण-नीति निरस्त्र सँहारा।
पाण्डव-शिविर दस्यु ! निशि जारे,
शिशु अबोध निद्रित सहारे।
अघ-घट भरेउ आजु शठ ! तोरा,
सँभरु अधम ! लखु भुज-बल मोरा !"

दोहा :— *गर्जेउ कृतवर्मेहु समद, बहेउ सात्यकी-हाथ,*
पतित कतहुँ तनु, कहुँ पतित, छिन्न भोजपति-माथ। १५२

लखि कृतवर्मा-निधन कराला,
धधकी भोजवश रिस-ज्वाला।
लै अंधकवशिन-समुदायी,
घेरेउ सब युयुधानहिं धायी।
बढ़ि दीन्हेउ प्रद्युम्न सहारा,
वृष्णिजनहु कर शस्त्र सँभारा।
अगणित खड्ग उठे इक साथा,
दिशि दिशि गिरे छिन्न भट-माथा।
विषधर-जय शस्त्रास्त्र भयंकर,
बरसे मृत्यु-जिह्व प्रलयंकर।
भोजान्धक संरब्ध आक्रमण,
सके सँभारि न स्वल्प वृष्णिजन।
पतित निहत महितल युयुधाना,
गद, प्रद्युम्न, साम्ब-अवसाना !
माधव - हलधर - पुत्र - पौत्रगण,
एक एक सब गिरे रणाङ्गण।

दोहा :— *पुनि रामहिं घेरेउ अघिन, सुनि आये हरि आप,*
साम्य वदन, अतरल नयन, अंतस्तल निस्ताप। १५३

कहि मृदु वचन चहेउ समुझावन—
"उचित न वंश समूल नसावन।
कीन्ह न कछु संकर्षण दोषू,
करत व्यर्थ कत इन पै रोषू!"
सुनेउ न अधमन मद-मतवारे,
रक्त-पिपासु मनहुँ वृक सारे।
काल-पक, सुनि हरिहुँ अराती,
धढ़े उदायुध आत्म-विघाती।
अब लगि समर-विरत संकर्षण,
लखेउ होत हरि पै शर-वर्षण।
लागी रोम रोम रिस-आगी,
सोवत सिंह उठेउ जनु जागी।
कर्पि वर्पि हल मुसल-प्रहारा,
लहेउ जहाँ जेहि तहँ संहारा।
श्यामहु सती-शाप सन्माना,
सोहे कमल-करन धनु-बाणा।

दोहा — *निमिषहि महँ बिनसेउ निखिल, आततायि-समुदाय,*
शेष न नर यदुवंश कोउ, हरि, हलि, वज्र विहाय। १५४

तजे विरक्त शस्त्र भगवाना,
दारुक आय चरण लपटाना।
सिक्त वसन दृग-सलिल प्रवाहा,
क्रन्दत—"नाथ! कीन्ह यह काहा?
कुरुक्षेत्रहु ते भयदायी,
यह यदुक्षेत्र निरखि नहिं जायी!"
पोंछत स्वकर दास-दृग-वारी,
थिर स्वर श्रीहरि गिरा उचारी—
'आत्म-द्रोह करि बिनसेउ यदुकुल,
होइ [illegible] नहिं तेहि हित [illegible]।

लीला शेष होति मम आजू,
सौंपत तुमहिं जो अन्तिम काजू।
गजपुर ओर तात ! तुम धावहु,
पाण्डु-सुतन संवाद सुनावहु।
द्वारावती धनंजय आयी,
जाहिं वज्र-सह तियन लेवायी।

दोहा :— *कहेउ धर्मजहिं तात ! यह, करहिं न मम-हित शोक,*
पूर्ण सकल संकल्प मम, गवनत समुद स्वलोक।"१५५

सौम्य वदन हरि वचन सुनावा,
दारुक-शिर जनु वज्र गिरावा।
आजीवन संकेतहिं पायी,
कीन्हीं धाय स्वामि-सेवकाई।
निश्चित आज्ञा, गुरुतम काजू,
परत न पद गजपुर-पथ आजू।
गलितस्मृति जनु मृत्यु-अधीना,
जनु अहि-दष्ट, विवेक-विहीना।
सेवक-दशा स्वामि पहिचानी,
भाषी भ्रान्ति-विनाशन वाणी—
"व्यापेउ तुमहिं कबहुँ नहिं मोहा,
आजहुँ तात ! अधैर्य न सोहा।
करहु काज सत्वर मम जायी,
तजि तनु मिलेहु लोक मम आयी।"
सुनि हरि-गिरा संयमित-पीरा,
गवनेउ सींचत पथ दृग-नीरा।

दोहा :— *इत प्रभु खोजत अग्रजहिं, पहुँचे जलनिधि-तीर,*
अवलोके तरु-मूल हलि, पद्मासन गम्भीर। १५६

लखि आवत निज दिशि घनश्यामा,
उठे भक्ति-विह्वल बलरामा।

अग्रज-उचित तजेउ आचारा,
गिरे चरण-तल-तनु न सँभारा—
"भक्त-दयिक प्रकटहु प्रभु ! दाया,
हरहु वेगि दुस्तर निज माया।
नर-तनु-सह दीन्हेउ मद माना,
भरेउ हृदय मम कुल-अभिमाना।
धर्मनृपहिं नहिं मैं पहिचाना,
परि नित निज-पर-फेर भुलाना।
आजुहिं समुझि सकेउँ विश्वेशा!
कृष्ण-जन्म-लीला, उद्देशा।
धर्मराज-पथ यदुजन शूला,
नासे तुम सोउ आजु समूला।

दोहा — 'त्यागे बिनु सर्वस्व कोउ, करि न सकत जन-काज'—
थापेउ उच्चादर्श तुम, जन-सेविन हित आज। १५७

सगर दीन्ह निज सुतहिं विहायी,
राम प्रिया निज विपिन पठायी।
परम त्याग जन-हेतु तुम्हारा,
निज कुल निखिल स्वकर संहारा।
दीन्हि नाथ-पद मैं बहु बाधा,
गुनि जन आजु छमहु अपराधा।
आत्म-प्रतीति मोहिं अब नाहीं,
ताते करत विनय प्रभु पाहीं—
जन्महुँ बहुरि जो महि प्रभु-साथा,
होहुँ कबहुँ नहिं अग्रज नाथा!
अनुजहि पद सोहत मोहिं स्वामी!
रहन चहहुँ नित पद-अनुगामी।
शेष भयेउ मम काज महीतल,
आयसु देहु, बसहुँ पुनि निज थल।"
विहँसत हरिहु दीन्ह अनुशासन,
निवसे बहुरि राम पद्मासन।

दोहा :— *ध्यान-मग्न मूँदत दृगन, करि महि-अभिनय शेष,*
निमिषहि महँ नर-मूर्ति तजि, कीन्ह स्वमूति प्रवेश। १५८

यहि विधि बंधु पठै निज धामा,
प्रविशे गहन विपिन घनश्यामा।
जो जग आश्रय, रमा-निकेतन,
विचरत वन-वन मनहुँ अकेतन।
भटकत सुमिरि शाप श्रीरंगा,
जनु नभ नीड-विहीन विहंगा।
निरखि निकुञ्ज-पुञ्ज घन छाया,
निवसे विटप-मूल तजि माया।
जनु 'इति' करत कृष्ण-अवतारा,
रूप चतुर्भुज प्रभु निज धारा।
गदा-पद्म युग हस्त विराजत,
सरसिज-शंख युगल कर राजत।
नव वारिद-द्युति सुन्दर तनु की,
चकृत होत चित्त अवलोकी।
तेहि पै पीताम्बर छवि छायी,
मनहुँ नीलमणि हेम जड़ायी।

दोहा :— *शीश मुकुट, कुण्डल श्रवण, गर कौस्तुभ, उर माल,*
अलक सुशोभित शशि-वदन, हरत विश्व-तम-जाल। १५६

आनँद-मज्जित, धीर विलोचन,
स्रवत सुधा भव ताप विमोचन।
वितरत मुसहिं मनोहरताई,
मृदु मधुरस्मित अधर सोहायी।
दक्षिण जानु वाम पद धारे,
शयित श्याम अति शान्त सुसारे,
कानन शान्त, शान्त वन-प्राणी,
विहगहु शान्त, शान्त हरि जानी,
शान्त व्योम महि, शान्त बयारी,
आनँद-शान्त सृष्टि जनु सारी।

सहसा बन मर्मर-स्वर छावा,
दलत शुष्क पत्रन कोउ आवा।
लखी दूरि कछु दीनदयाला,
व्याध-मूर्ति जनु काल कराला।
मृगयार्थी, हाथन धनु-बाणा,
रहेउ निरखि पद-तल धरि ध्याना।

दोहा :— *कौतुक ही कीन्हेउ चपल, पाद-पद्म द्युतिमान,*
उपजायेउ लुब्धक-दृगन, मृग-विभ्रम भगवान। १६०

धारे धनुष व्याध शर त्यागा,
धाय तड़ित गति पदतल लागा।
लब्ध-लक्ष्य मन आनँद छावा,
धाय व्याध श्रीहरि ढिग आवा।
निरखि चतुर्भुज-नर भय माना,
लखि पट पीत प्रभुहिं पहिचाना।
उपजेउ हृदय विषाद अगाधा,
परेउ चरणतल बिलखत व्याधा।
बरसत दृगन वाष्पजल-धारा,
'पाहि! पाहि!' कहि प्रभुहिं पुकारा।
निर्विकार हरि वधिक उठावा,
"होहु अभय"—कहि कंठ लगावा।
"तजन चहेहुँ मैं आजु शरीरा,
तुम निमित्त, कत शोक-अधीरा?"
वर्धित सुनत व्याध-उर तापा,
रोम-रोम शोकानल व्यापा।

दोहा :— *त्यागेउ तत्क्षण व्याध तनु, प्रकटेउ दिव्य विमान,*
दीन्ह स्वर्ग प्रमुदित हृदय, निज वधिकहि भगवान। १६१

निरखे हरि उद्धव तेहि काला,
निज दिशि धावत विकल विहाला।

जदपि बाण-आघात कराला,
रधस्राव महीतल लाला।
गुनि मन, भक्त निदेश न माना,
करि मृदु व्यंग हँसे भगवाना—
"स्वेच्छाचारी यदुजन सारे,
उद्धव हू मम वचन बिसारे!"
सुनि परिहास सचिव अकुलाना,
चरणन गिरेउ, लखेउ नहिं बाणा—
"छमहु अवज्ञा अन्तर्यामी!
रहि न सकेउ सेवक बिनु स्वामी।
पितु वसुदेव नाथ-अनुरागी,
गवने विरह-विकल तनु त्यागी।
त्यागे उग्रसेन नृप प्राणा,
बचेउँ अधम मैं पाप-निधाना।

दोहा :— *बिनसेउ हरि-कुल हरि-अछत, महितल आजु समूल,*
जाहुँ कहाँ? केहि सन कहहुँ? कहँ दुख-वारिधि-कूल!"१६२

सोरठा.—*अकस्मात खर बाण, बिद्ध चरण उद्धव लखेउ—*
"चले तुमहु भगवान"! कहत पतित महि भक्त वर।

दीन्ह धैर्य हरि, भक्त उठावा,
दुर्वासा-वर कहि समुझावा—
"पायस मिस मोहिं देत असीसा,
चहेउ करन मोहिं अमर मुनीशा।
चरु मैं निज सर्वाङ्ग लगायी,
केवल पदतल दीन्ह बिहायी।
परि पर्यङ्क धूरिन अवसाना,
समर-मरण सम अन्त न आना।
मैं अजेय, तेहि सकेउँ न पायी,
कीन्ही आय किरात सहायी!
लही मृत्यु मैं शित शर घोरा,
पुलक-प्रफुल्ल अत्रद्ध तनु मोरा!

उपजेउ तुमहिं मोह कस भारी ?
आपु दुखी, मोहिं करत दुखारी।
तुमहिं तात ! अस मोह असोहन,
जहँ अवतरण, तहाँ आरोहण !

दोहा :— मम लीला-आरंभ जिमि, निभृत कारागार,
होत तासु अवसान तिमि, एकाकी कान्तार !"१६३

सोरठा :—समुझावत अज्ञेय, निज गति भक्तहिं हरि जबहि,
तपोमूर्ति मैत्रेय, निरखे आवत ताहि छण।

बाण-प्रविद्ध सदपि जगवंदन,
कीन्हेउ सादर मुनि अभिनंदन।
गिरा मधुर द्युति-धाम उचारी,
हंस-मुखर जनु सुरसरि-वारी—
"सुनि मम अंत तपोवल-द्वारा,
कीन्हि कृपा मुनिवर ! पगु धारा।
तुम नाना विज्ञान-उजागर,
सरि सहस्र पावन जिमि सागर।
करुणाकर, प्रसाद-प्रासादा,
दर्शन-मात्र हरत अवसादा।"
सकुचे सुनि मुनि वचन उचारा—
"तुम विभु, मैं प्रभु ! भक्त तुम्हारा।
करहु न माया-वश विश्वेशा !
आयेउँ सुनन स्वस्ति संदेशा।
पै भव-मोहति मूर्ति तुम्हारी,
निरखि शिथिल मम मति-गति सारी।

दोहा :— अपर्याप्त सुनि नेत्र द्वय, निज व्यापार बिसारि,
इन्द्रिय, मन, प्रति रोम मम, रहेउ स्वरूप निहारि। १६४

श्रुति, वाणिहु गत लोचन साथा,
पूछहि, सुनहि कवन अब नाथा !
ब्रह्मानंद-मग्न मम प्राणा,
सहसा सब संशय-अवसाना।

तबहुँ अबहुँ जग संशय-शीला,
तुम करि रहे सवरण लीला।
भव-भय, भ्रान्ति, भेद-अपहारी,
होति तिरोहित मूर्ति तुम्हारी।
केवल नाथ-चरित, उपदेशा,
रहिहैं वसुमति-तल अब शेषा।
सचित सोइ बर भक्तन-द्वारा,
हरिहैं मनुज हृदय अँधियारा।
चहत महूँ प्रभु! पावन ज्ञाना,
वंचित करहु न मोहिं भगवाना!"
सुनि विहँसे, भाषेउ भव-मोचन—
"सुनहु सँदेश मूँदि मुनि! लोचन।"

दोहा :—*दृग-अलि वर्पि मुखाब्ज ते, मूँदे मुनिहु हठात,*
सुधा-शब्द प्रविशे श्रवण, भव-त्राता, अवदात— १६५

"संचय जेते जग मुनिनाथा,
छीजत सर्व काल-गति-साथा।
तनु-अनुराग मोहिं नहिं जैसे,
राग न वाचिक ज्ञानहु तैसे।
जेहि जेहि दिव्य दीन्ह मैं ज्ञाना,
समुझेउ तेहि निज भाव समाना।
मम पाछेहु निज रुचि-अनुसारा,
करिहैं नर मम ज्ञान प्रसारा।
गिरि महितल जिमि सुरसरि-धारा,
होति मलिन लहि मही-विकारा,
ज्ञानहु तिमि परि मानव-श्रवणन,
करत सतत मानवता धारण।
शुद्ध ज्ञान इक ईशहि माहीं,
लै-दै सकत ताहि नर नाहीं।
दूरि न, पै ईश्वर अति पासा,
उर उर मुनिवर! तासु निवासा।

दोहा :— *मम पाछेहु जे मोहि भजि, करिहैं अनुसंधान,*
लहिहैं निज हिय माहिं मोहि, मम सँग मम सब ज्ञान । १६६

भव-अतीत मम नित्य विभूती,
लहत न नर तेहि बिनु अनुभूती।
भाव अचिंत्य मुनीश्वर ! जेते,
उचित न साधब तिनहिं तर्क ते।
सकत न खग नभ-परे उड़ायी,
मतिहु न व्यक्त-परे तिमि जायी।
सीमित नर, नर-बुद्धिहु-सीमा,
बुद्धि-परे मैं बसत असीमा।
खोजत निज उर जे न अभागो,
मैं अज्ञेय तात ! तिन लागी।
ध्यान-धारणा जिन हित व्याधी,
मानत जे पाखण्ड समाधी।
स्वकर दिव्य दृग ते निज फोरी,
गवनत भव-पथ लकुट टटोरी !
भटकत बोधचंचु भव माहीं,
उन्मुख कबहुँ होत मोहि नाहीं।

दोहा :— *मन-इन्द्रिय-बल लहि सकत, जेतिक नर मम ज्ञान,*
लहेउ तर्क-बल सब स्थपिन, प्रथमहि सृष्टि-विहान । १६७

इन्द्रिय-ग्राह्य निखिल संसारा,
तिन परिवर्तन-शील निहारा।
चंचल सर्व वस्तु-व्यवहारा,
प्रतिपल भिन्न नाम-आकारा।
जगत नाम-रूपहि-समुदायी,
परत नित्य नहिं कतहुँ लखायी।
पै जिमि कंकण-नामाकारा,
संभव बिनु न स्वर्ण-आधारा,
नाम-रूप-मय तिमि समस्त भव,
बिनु सत्ता-सामान्य न संभव।

मूल स्वरूप तासु अविकारी,
नाना रूप सकतिं पै धारी।
सोइ कहुँ घट, कहुँ पट-आकारा,
तत्त्व एक, बहु रूप पसारा।
मानि क्षरहिं यहि भाँति प्रमाणा,
अक्षर तत्त्व कपिल अनुमाना।

दोहा :— *गुनी जदपि निज तर्क-बल, तिन सत्ता अविकार,*
सके न लहि प्रत्यक्ष पै, कहुँ तेहि रहित विकार। १६८

व्याप्त जदपि सो संसृति माहीं,
निजु अपाय-आगम कहुँ नाहीं।
आविर्भाव-उपकरण जेते,
तिरोभाव-साधनहू तेते।
सृष्टि चराचर जब सब छानी,
सके न मूल बीज कपि जानी,
त्यागि बाह्य तब वस्तु-निकाया,
खोजी तिन सजीव निज काया।
आपुहि महँ तिन 'मैं' जो पावा,
गुनेउ तर्क-बल तासु स्वभावा।
जानि दशेन्द्रिय मन-अनुगामी,
समुझेउ मनहि प्रथम तनु-स्वामी।
पुनि सुषुप्त तनु माहिं निहारा,
मनहु श्रान्त, निरहित-व्यापारा।
गुनि 'मैं' तबहुँ सजग, सज्ञाना,
मन ते भिन्न ताहि अनुमाना।

दोहा :— *करत देह-मानस क्रिया, 'मैं' ही एकाकार,*
पल-पल बदलत देह मन, 'मैं' ही इक अविकार। १६९

देह-क्षेत्र सचालक ये ही,
'मैं' क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रपति, देही।

जगत दृश्य, 'मैं' देखनहारा,
ज्ञाता यहहि, ज्ञेय संसारा।
'मैं'—हित व्यर्थ तर्क, अनुमाना,
स्वयंसिद्ध, साक्षात प्रमाणा।
तजि यह 'मैं' यहि सस्रुति माहीं,
अनुभव-गम्य ब्रह्म कहुँ नाहीं।
यहि विधि आपुहि महँ 'मैं' रूपा,
चीन्हेउ अपिन चिदात्म स्वरूपा।
ब्रह्माण्डहु महँ पिण्ड समाना,
तिन सर्वत्र ताहि पहिचाना।
निरखेउ जेहि दिशि दृष्टि उठायी,
प्रकृति निखिल तेहि-मय तिन पायी।
गाढ़ आवरण छादित भावा,
पै न जडहु महँ तासु अभावा।

दोहा — *अयसहु महँ संवेदना, कर्षण चुम्बक माहिं,*
विरहित संविद वस्तु कहुँ, यहि संसृति महँ नाहिं। १५०

विकसत धनि रस औषधि सोई,
जगम माहिं प्राण सोइ होई।
अध-प्रतीतिहि पै इन पासा,
आत्म-रक्षणहिं इक अभिलाषा।
नहिं चिज्ञात लखत ये प्राणी;
बोलत ये विज्ञात न वाणी।
मनुजहि माहिं विशेष विकासा,
स्वयवेद्य प्रज्ञा तेहि पासा।
बोलत, श्वसत, लखत विज्ञाता,
प्रज्ञा-बल निज भाग्य-विधाता।
सुप्त जो सत्ता जड़ महँ होई,
जाग्रत कछु औषधि महँ जोई।
पशु महँ जो चर, पै अविचारी,
नर महँ आपुहि चीन्हनहारी।

एकहि ध्येय मनहुँ भव तासू—
बुद्धि स्वयसवेद्य विकासू।

दोहा.—पूर्ण स्वयंसवेद्यता, पै मनुजहु महँ नाहि,
निम्न योनि-अनुभव अयहुँ, लिपटे तन-मन माहि। १७।

जदपि जडात्मक तम गुण स्वल्पा,
नर महँ पशु-गुण रजहि अनल्पा।
विनसेउ जस जस तम-अज्ञाना,
बाढ़ेउ रज-सँग राग महाना।
तिर्यक महँ जो क्षुधा पिपासा,
वढ़ि नर महँ सोइ भोग-विलासा।
स्वयंवेद्य प्रज्ञा तेहि केरी,
त्यागि चिदात्म वासना-चेरी।
मति अशुद्ध निज गुनि यहि भाँती,
समुझि वासनहिं ज्ञान-अराती,
त्यागे अपिन तर्क, अनुमाना,
शोधी बुद्धि पंथ गहि नाना।
भव-निबद्ध निज आत्मा जानी,
मुक्तिहि चरम सिद्धि तिन मानी।
उपजी प्रबल नित्य जिज्ञासा,
भूले भंगुर भोग-विलासा।

दोहा —*खोजत स्वाती-बूँद जो, रटि रटि निशि-दिन पीव,*
होत कि चातक तृप्त सो, लहि जल-धार असीव। १८२

निग्रह-पंथ ऋषिन अपनाया,
ताहि परम पुरुषार्थ बताया।
इन्द्रिय-वेग निरखि अति घोरा,
साधे तिन व्रत-नियम कठोरा।
जस जस विषयन मन भरमाया,
हठि तिन सघन समूल सुखाया।

पुनि परिपंथि भवहि लखि सारा,
मानि त्याज्य तिन ताहि बिसारा।
साग्रह इन्द्रिय जीतन लागी,
बसे गहन वन स्वजनन त्यागी।
अंतःकरण विराग प्रभावा,
भयेउ विमल लहि सत गुण भावा।
आत्म-ज्योति हृत्पद्म प्रकासी,
लहेउ अपिन मोहिं अन्तर्वासी।
जल ते विलग वीचि जिमि नाहीं,
लखेउ भवहु तिन तिमि मोहिं माहीं।

दोहा.—अनुभव निज बरने बहुरि, ऋषिन अनेक प्रकार,
सोइ श्रुति, आप्त-प्रमाण सोइ, सोई ब्रह्म-विचार। १७३

पै मुनीश ! मैं भाष्य-अतीता,
सकत न ऋषिहु गाय मम गीता।
गुनि मोहिं बाँधि सकति नहिं वाणी,
धारत मौन 'नेति' कहि ज्ञानी।
आंशिक सत्यहि शास्त्रन माहीं,
प्रवचन-लभ्य तात ! मैं नाहीं।
ताते सब श्रुति, शास्त्र, पुराणा,
स्वल्प सहाय प्रदीप समाना।
स्वानुभूति आदित्य-प्रकाशा,
तेहि बिनु नहिं भ्रम-तिमिर विनासा।
स्वप्नहु जो मुनीश ! संसारा,
तेहि-हित सत्य जो देखनहारा।
टूटत जागे निजहि स्वप्न-क्रम,
पर-प्रबोध विनसत नहिं विभ्रम।
निज यत्नहि निज-हित फल-दायक,
आत्म-प्रतीतिहि मोक्ष-प्रदायक।

दोहा.—श्रेयद पूर्णहु सत्य नहिं, जो केवल उपदिष्ट,
निज अनुभव-उपलब्ध जो, सत्य-अंश हू इष्ट। १७४

अन्तिम निष्ठा निर्गुण ज्ञाना,
लहि तेहि लहत मनुज निर्वाणा।
पै सहसा भव दृश्य विहायी,
सकत न नर अलखहिं अपनायी।
निर्मम मानव-उर मुनि! नाहीं,
बुद्धिहु दिग्ध हृदय-द्रव माहीं।
कामहि यह मानव साकारा,
रँगे कामना सर्व विचारा।
निखिल मानुषिक ज्ञान सकामा,
श्रद्धहु तीव्र कामना नामा।
हृदय-कामना नहिं जेहि माहीं,
उपजति श्रद्धा तेहि महँ नाहीं।
मतहि-मात्र मुनिवर! नहिं ज्ञाना,
प्रविशत सो नर-तन-मन-प्राणा।
जब लगि हृदय न उत्कट एषण,
करत न मानव मम अन्वेषण।

दोहा :— *भारमहि ते गहि अलस, सके कछुहि मोहि पाय,*
बढ़त अमित नर ध्येय दिशि, निज प्रकृतिहि अपनाय। १७५

बिनु आधार कामनहु नाहीं,
सो मम माया, बस मोहिं माहीं।
सृजन-पूर्व एकत्व विहायी,
चहहुँ होन मैं बहु मुनिरायी।
यह मम आदिकामना जोई,
जीव-कामना-उद्गम सोई।
मोरहि अंश जीव यह जैसे,
मोरिहि तासु कामनहु तैसे।
लीलहि हित यह मम अभिलाषा,
आपु बँधहुँ निज माया पाशा।
पै इतनिहि मम लीला नाहीं,
बंध-संग मुक्तिहु तेहि माहीं।

करि आपुहि भव माहिं अनेका,
चहहुँ बहोरि होन मैं एका।
बाँधति मोहि जो मम अभिलाषा,
सोई करति छिन्न पुनि पाशा।

दोहा :— *होति मुनीश्वर ! बंध सँग, निहित मुक्ति जो नाहिं,*
महँ सच्चिदानद तौ, रहत जड़हि भव माहिं । १७६

बंधहि हेतु जगत जिन माना,
तिन लीला-रहस्य नहिं जाना।
पतन-हेतु नहिं सृष्टि-कहानी,
उपजत उत्थानहि-हित प्राणी।
हर्ष-हुलास जो अचिर लखाहीं,
दुख-अवसादहु तौ चिर नाहीं।
निरवधि होत जो दुख-विस्तारा,
जियन चहत को यहि संसारा?
होत असीम जो विषयानंदा,
चहत जीव को ब्रह्मानदा?
होत असीमित दोउ पथ-बाधक,
सीमित दोउ परम हित-साधक।
जो कछु जगत अपूर्ण लखायी,
रहेउ पूर्णता दिशि सब जायी।
होत दृष्टिगत योनि जो नाना,
सकल पूर्णता-पथ-सोपाना।

दोहा :— *अघकारिणि नहिं कामना, अघकर मार्ग-विराम,*
लहि वस्तुहि भोगन चहत, सोइ यथार्थ सकाम । १७७

नाहिं कामना महँ अघ-वासा,
अघ तहँ जहाँ भोग-अभिलाषा।
सदा कामना नरहिं बढ़ावति,

भोगत जे कछु पाय सुखारी,
देत अचिर-हित चिरहिं बिसारी,
करत ते सीमित नर निज एपण,
थमत तहँहि मोरहु अन्वेपण।
विनसति वस्तु रुके जेहि लागी,
धधकति हृदय वियोगज आगी।
शोकानल-विशुद्ध मम ओरी,
भोग-भार बिनु बढ़त बहोरी।
यहि विधि गिरि-उठि, सुख-दुख पायी,
मम दिशि जात जीव—समुदायी।
नृप ययाति सम थिरहु जासु सुख,
ऊबि होत सोऊ मम उन्मुख।

दोहा :— *प्रेरति पुनि तेहि कामना, आपु जीव उकताय,*
तजि चर्वित-चर्वण विरस, बढत मुक्ति-पथ धाय। १७८

बिनसत विषय, कामना रहई,
अमर सो जब लगि मोहिं नहिं लहई।
जेहि मुनि ! समुझि मर्म यह पावा,
करि तप सो नहिं ताहि सुखावा।
सूखत तनु, इन्द्रिय मुरझाहीं,
विषयन भोगि सकहिं ते नाहीं।
रूढ़ कामना पै मुनिनाथा !
सूखत नहिं तन-इन्द्रिय-साथा।
रोधब हठ इन्द्रिय-समुदायी,
प्राण-त्याग ते बढ़ि दुखदायी।
निग्रह-पंथ मुनीश ! कठोरा,
लागत प्राकृत मनुजहिं घोरा।
प्रेयहि दिशि मानव-मन धावत,
सतत करि प्रयत्न तेहि पावत।
श्रेयहु जबहिं प्रेय सम भासत,
नर सकाम तेहि तबहिं उपासत।

दोहा :— *होत सत्य जब सुन्दरहु, शिवहु देत आनंद,*
बिनु उपदेशहि तब तिनहि, ध्यावत मानव-वृंद। १७६

मैं मुनीश ! जिमि जलनिधि नीरा,
कतहुँ स्वल्प, कहुँ अति गभीरा।
कहुँ जल-जीवहु थाह न पायी,
क्रीडत कतहुँ बाल-समुदायी।
तिमि निर्गुण-ज्ञानिहु-हित दुर्गम,
ग्राह्य-विमूढहु सगुण भूति मम।
आरभत जैसेहि मैं सिरजन,
होत सगुण मैं आपु ताहि क्षण।
'कर्त्ता'-गुण मैं लहत मुनीशा!
उपजत जगत-सग जगदीशा।
बँधत प्रथम मैं आपु विधाता,
विरचत जीव-बध पश्चाता!
विश्रुत यह मम आदि विसर्गा,
याही ते उपजत सब सर्गा।
सृजन-यज्ञ यह मोर कहावा,
'पुरुष-सूक्त' महँ श्रुति जेहि गावा।

दोहा :— *भिन्न नाहिं निस्पद ते, यथा पवन सस्पद,*
निर्गुण ते तिमि भिन्न नहि, सगुण सच्चिदानद। १८०

सगुण-समष्टि कहावत ईश्वर,
तासु व्यष्टि ही जीव मुनीश्वर!
जब लगि अहंकार अभिमाना,
निज ईशत्व जीव नहिं जाना।
अब्धि असीमित विहरनहारी,
जाल-बद्ध जिमि मीन दुखारी,
तिमि यह जीव सच्चिदानदा,
आपु निबद्ध अहंकृति-फंदा।
श्रेष्ठ मुक्ति-पथ सोइ मुनिरायी!

जे संन्यास-मार्ग अनुसरहीं,
सर्वस जदपि त्याग निज करहीं,
सर्व-त्याग पर कर्ता जोई,
तजि नहिं जाति अहङ्कृति सोई।
पै जो भक्ति-पंथ पगु धारत,
आरंभहि ते 'अह' निसारत।

दोहा :— *आत्म-तुच्छता तृस जो, आपुहि महँ अनुरक्त,*
होत मुनीश ! न अस मनुज, कबहुँ काहु कर भक्त। १८१

ताहि-अभावहु जो निज भासा,
द्वेषत तेहि जेहि माहिं विकासा।
सकत न वितथ अहम्मति त्यागी,
नीच न कबहुँ काहु अनुरागी।
जहाँ 'अहं' तहँ भक्ति-अभावा,
सकत न रहि इक सँग दोउ भावा।
पै विलोकि-मुनि अन्य-विभूती,
करत जो उर आनँद-अनुभूती,
प्रगति-शील सोइ 'अह' विहायी,
लहत आपु तेहि आढ्य-रिझायी।
होत ताहि सम सोउ तेहि पाये,
भक्त उपास्य एक श्रुति गाये।
घटाकाश तजि घट मुनिरायी।
महाकाश जिमि जात समायी।
मम भक्तहु तिमि 'अह'-विहीना,
निश्चित होत अंत मोहिं लीना।

दोहा — *जीवहि बंदीगेह यह, अहमेवहि भयकारि,*
देति मुक्ति मम भक्ति ही, कारागार उघारि। १८२

प्रकटि काष्ठ ते जिमि अगारा,
करत जराय काष्ठ सोइ छारा।

राग-प्रसूत तथा मम भक्ती,
नासति सर्व राग-आसक्ती।
तप-क्लेशहिं मम भक्त न जाना,
शोषत देह न रोधत प्राणा।
लहि रसनिधि मोहिं इन्द्रिय सारी,
निज निज विषय बिसारि सुखारी।
जिमि अलि कल्पवल्लि-रस पायी,
अन्य प्रसून-समीप न जायी,
भक्ति-सुधा तैसेहि लहि मोरी,
जात विषय ढिग मन न बहोरी।
शोभित, नर-जीवन मोहिं पायी,
शशि-भासित जिमि धरणि सोहायी।
जिमि तिय करति धान्य-रखवारी,
सस्वर गाय बजावति तारी,

दोहा :— *विहग उड़ावति, सग सँग, लहति गीत-आनंद,*
लहत भक्त तिमि प्रेय-सँग, श्रेय सच्चिदानंद। १८३

सर्व-सुलभ मुनिवर! यह साधन,
करत तिर्यकहु मम आराधन।
विश्रुत लै मम नाम उदारा,
ग्राह-ग्रस्त गज मोहिं पुकारा।
जदपि अबूझ भक्ति तेहि केरी,
सुनी विनय मैं कीन्हि न देरी।
आर्त भक्त ये जानहु मोरे,
नर-योनिहु महँ अस नहिं थोरे।
तमोगुणहि जिन माहिं विशेषा,
सुमिरत ते न परे बिनु क्लेशा।
तदपि नरन महँ रजहि प्रधाना,
अर्थी भक्तहि तिन महँ नाना।
लहत सत्व जेहि माहिं विकासू,
होत भक्त मम सोइ जिज्ञासू।

ज्ञानहु लहि जो तजत न पूजा,
ज्ञानि भक्त सो, तस नहिं दूजा।

दोहा:— बरने यद्यपि भक्त निज, मैं मुनिवर विधि चारि,
जानहु तितनेहि भेद पै, जितने जग नर नारि। १८४

मति-विभेद जिमि जगत अपारा,
तिमि अनत मम भक्त प्रकारा।
संतत निज-निज मत अनुरूपा,
पूजत मनुज मोहिं बहु रूपा।
एक्हु वस्तु व्योम महि नाहीं,
नर न निरूपत मोहिं जेहि माहीं।
नाना विधि मम पूजन ध्याना,
देश-देश युग-युग महँ आना।
शब्दन निर्गुण मोहिं बखानी,
लेत समुझि आपुहिं जे ज्ञानी,
मम अनुभूति-रहित मति जिनकी,
निदरत तेइ अस भक्ति कुतरकी।
प्रवचन मात्र न जिन मोहिं जाना,
जिन हित मैं सुख, शम, कल्याणा,
अनुभूतिहि जे मानत साधन,
ते आदरत सर्व आराधन।

दोहा:— सर्व वस्तु महँ व्याप्त मुनि! मैं आकाश समान,
तातें पूजत भक्त मोहिं, पूजत हू पाषाण। १८५

एक अनल उद्गम-अनुहारी,
होत यथा ज्वाला, चिनगारी,
तिमि अनुहरि नर-वृत्ति विषमता,
मोहिं उपास्य महँ दिखति विविधता।
जिमि दृग महत दुग्ध-धवलाई,
त्वचा शैत्य, रसना मधुराई,

तिमि नर सर्व विभिन्न स्वभावा,
लखत एक मोहिं महँ बहु भावा।
महुँ प्रतीक गौण करि माना,
रहत भावनहि माहिं लोभाना।
मम-हित मुनि! नहिं ठाम कुठामा,
भक्त बोलावत तहँ मम धामा।
जबहिं हिरण्यकशिपु नरनाहा,
अवसादन प्रहलादहिं चाहा,
खंभहि ते सुनि भक्त-पुकारा,
प्रकटि दैत्यपति मैं संहारा।

दोहा :— *लघु ते लघुहु प्रतीक महँ, निहित सदा जगदीश,*
छिपेउ सिन्धु जल-बिन्दु महँ, रज-कण माहिं गिरीश। १८६

जिमि लै काँकर आकृति नाना,
शिशुहिं करावत अक्षर-ज्ञाना,
करन हेतु तिमि मम अभ्यासू,
ये प्रतीक आरंभ-प्रयासू।
मै सर्वत्र, प्रतीकहु माहीं,
ताते असत सोउ मुनि! नाहीं।
पै समुझत जो अस मुनिरायी!
मैं नहिं अनत प्रतीक-विहायी,
मोहिं प्रतीक-मात्र जो माना,
सोइ तेहि माहिं असत, अज्ञाना।
पै अस भक्तु चिर मोहिं राँचा,
क्रम-क्रम लहत ज्ञान मम साँचा।
सत्य अंध-भक्तिहु कल्याणी,
यहि पथ पाखण्डहि महँ हानी।
पूजा जासु बाह्य आडंबर,
सोई प्रगति-शील नहिं मुनिवर!

दोहा :— *होत दंभ ते औरहु, घनीभूत अज्ञान,*

पै उर जासु भक्ति मम निश्चल,
अहं-रहित, जेहि केवल मम बल,
होत सो ज्ञान-पात्र नर तैसे,
बीज-योग्य मृदु धरणी जैसे।
करति भक्ति मम विमल तासु बुधि,
जिमि जल कलुष निर्मली औषधि,
स्वर्णकार लै अनगढ़ सुबरन,
निर्मावत जिमि सुभग आभरण,
करि तिमि अंध भक्ति परिशोधा,
भक्तहिं देहुँ प्रदीपित बोधा।
बाहर ते नहिं मैं कछु लावत,
जो तेहि माहिं सोइ विकसावत।
असतहु जो कछु तेहि महँ होऊ,
लहि मम परस होत सत सोऊ।
मल-आवरण भक्त मन जेते,
नासहुँ एक एक करि तेते।

दोहा — *परति विमल जलनिधि सलिल, आपुहि जिमि रवि-ज्योति,*
भक्ति विमल उर तिमि उदित, आपु ज्ञान श्री होति। १८८
प्रथम प्रतीकहि माँहि जेहि, समुझेउ निज भगवान,
करत अंत सोइ भक्त मम, विश्व रूप कर ध्यान। १८९

'अहं' काढ़ि यहि भाँति पँवारा,
जिमि वैद्यधिक शीश ते भारा।
मम मय विश्व भक्त जस जाना,
निज स्वरूप तेहि तस पहिचाना।
लखत हृदय निज मम आलोका,
भव समस्त महँ आपु विलोका।
जस जस भीजत उर अस ज्ञाना,
तस तस लहत भक्त निर्वाणा।
अचल जासु मुनि! अस अनुभूती,
मनुज रूप मो मोरि विभूती।

अंत द्वैत-भावहु अवसाना,
होत अभिन्न भक्त-भगवाना।
जागे यथा स्वप्न-अवशेषा,
नष्ट दृश्य सब, द्रष्टहि शेषा,
तिमि आत्मिक जागरणहु माहीं,
आत्मा त्यागि शेष कछु नाहीं।

दोहा :— *भ्रमत जीव जो मोहि मुनि, भिन्न आपु ते जान,*
लहत समुझि एकत्व सोइ, अमृतत्व ! कल्याण। १६०

नहिं अस ज्ञान बुद्धि-सजाता,
सत-दर्शन सो मुनि ! साक्षाता।
प्रत्यक्षहि यह अनुभव होई,
जानत सोइ लहत तेहि जोई।
आत्महि आत्मा आपु निहारा,
नहिं तहँ तर्क-गिरा-पैठारा।
सकत कि कोउ अर्धहि समुझायी,
उषा-हास, शशि शरद-जुन्हाई।
जेते मानव-तर्क-प्रयासू,
'नेति, नेति' इक उत्तर तासू।
ज्ञान-प्राप्ति-साधन जग जेते,
कुण्ठित तहाँ, न पहुँचत तेते।
जो विपरीत विशेषण द्वारा,
वर्णन होत तासु संसारा,
जानहु मुनि ! अपूर्ण सब सोई,
ब्रह्म नकार-ज्ञेय नहिं होई।

दोहा :— *लहहि चहे सम्राट-पद, अमरपुरिहु कर राज,*
अस अनुभव बिनु शांति कोउ, लहि न सकत मुनिराज। १६१

यह पुरुषार्थ-अवधि मुनिरायी !
ब्रह्महि ब्रह्मविदहु है जायी।

होति सरित जिमि सागर लीना,
तिमि मुक्तहु मोहिं अहं-विहीना।
ज्ञाता-ज्ञेय आपु तेहि जाना,
आपुहि भव, आपुहि भगवाना।
यहहि मुक्ति, यह गतिहु निदाना,
यह कैवल्य, यहहि निर्वाणा।
निद्रा सो जनु स्वप्न-विहीना,
जागरणहु सो निद्रा-हीना।
जेते मन-विचार, उर-कामा,
मोहिं पाय, सब लहत विरामा।
इन्द्रिय तासु मोहिं महँ पागी,
महि वैकुण्ठ होति तेहि लागी।
रवि ते अधिक हृदय-आकाशा,
उदित दिव्यतम आत्म-प्रकाशा।

दोहा :— *शीतल परमानद-मय, सो शशि-रश्मि समान,*
लहि तेहि शेष न शोक उर, सर्व दाह-अवसान। १६२

लहत आत्म-दर्शन मुनिनाथा।
विनसेत सर्व द्वन्द्व इक साथा।
नष्ट अज्ञता-असत-पसारा,
ताहि न कहुँ कछु बाँधनहारा।
चित्र-व्याघ्र सम संसृति सारी,
कौतुक-मात्र, न तेहि भयकारी।
कतहुँ न कछु तेहि हेतु कठोरा,
वरसत सुख तेहि पै चहुँ ओरा।
छलकत तेहि उर ते मुद कैसे?—
शशधर ते अमृत-रस जैसे।
यथा पालने झूलत बाला,
पुलकत किलकत हर्ष-विहाला,
मुक्त-वृत्तिहु तिमि मुद-पागी,
निवसत सो आनंदहि लागी।

अस आनंद जासु उर जागत,
भ्रमणहु ताहि रमण मुनि ! लागत।

दोहा :—*त्यागत सो न मुनीश ! कछु, ग्रहण करत कछु नाहि ,*
भाव-अभाव-विहीन सो, पूर्ण सो आपुहि माहि। १९३

विरहित सर्व भोग-अभिलाषा,
बोध-विपिन सो करत निवासा।
आवत-गवनत विषय-कलापा,
तेहि क्षय-वृद्धि-अतीत न व्यापा।
सम सो इष्ट-अनिष्टन माहीं,
द्वेषत कछु न, प्रशसत नाहीं।
जिमि वितरत अनजाने लोका,
सुमन सुरभि, तारक आलोका,
तिमि जीवन-क्रम तासु उदारा,
सौख्य चतुर्दिक वितरनहारा।
बालन बीच बाल सो होई,
वृद्धन मध्य वृद्ध-सम सोई।
पालत समुचित सब सँग नाता,
प्रेमस्निग्ध पिता, पति, भ्राता।
सो मम कृपा मही साक्षाता,
सबहिं अभय, सुख, शान्ति-प्रदाता।

दोहा :—*फूटि आवरण ते यथा, प्रसरत दीप-प्रकाश ,*
भेदि 'अहं' तिमि मुक्त ते, नव आशा, विश्वास। १९४

मुक्त जदपि निर्मम, गत-मत्सर,
सो नहिं भित्ति-चित्रवत मुनिवर !
प्राणवंत, तेहि महँ गति-वाणी,
वृत्ति समस्त तासु कल्याणी !
विनसत अहं-संग भव-पाशा,

सो न अनित्य-'अहं' पर निर्भर,
प्रश्रय नित्यतत्त्व ही तेहि कर।
सचराचर जो मैं निर्मावा,
सर्व विविधता महँ मम भावा।
मैं ही करत व्यष्टि महँ वासू,
'अहं'-साथ नहिं तासु बिनासू।
लहि ईशत्व जीव मुनिराजू!
सकहि न करि जो पुनि भव-काजू,
तौ असमर्थ ब्रह्म अनुदारा,
सकत महँ नहिं लै अवतारा।

दोहा :— ब्रह्म न केवल सत्य ही, शिवहु तासु अभिधान,
भक्त सतत भगवान सम, करत भुवन-कल्याण। १६५

उपजत ज्ञान जबहिं तेहि माहीं,
तजत फलहि सो, कर्मन नाहीं।
प्रश्न प्रवृत्ति-निवृत्तिहु केरे,
सापेक्षिक सब, मोहहि-प्रेरे।
'करत कर्म मैं'—जेहि अस भावा,
सोइ विमूढ़ कर्म-फल पावा।
मन-निदेश तन पालनहारा,
मन यथार्थ कर्मन-कर्तारा।
ताते तन ते करतहु कर्मन,
परत न बंध, विरक्त जासु मन।
भोग-बुद्धि बिनु जो आस्वादा,
नहिं तेहि माहिं बंध-अवसादा।
अज्ञ भवन सुख शय्या-शायी,
सपने गिरत कूप दुख पायी।
विज्ञ परत जो साँचहु कूपा,
लहत न शोक, सो आनँद-रूपा।

दोहा :— जिमि रस-शाली पारदहि, सकत न अनल जराय,
ज्ञान-विदग्धहि कर्म तिमि, बाँधत नहिं मुनिराय। १६६

भये क्षुभित जल-रवि-प्रतिबिम्बा,
क्षुब्ध न यथा नभस्थित बिम्बा,
तिमि मुक्तहु सविकार लखायी,
बाह्य वृत्ति ही ते मुनिरायी।
नहिं देहादि धर्म तेहि माहीं,
देह-धर्म महँ सोऊ नाहीं।
करत धर्म सो धर्महि-लागी,
नहिं वाणिज्य-वृत्ति मति पागी।
जग-व्यवहारहु महँ रहि तत्पर,
सुप्त सो तेहि महँ, जागत अन्तर।
लोक-दृष्टि ही ते विमुक्त जन,
दिखत, उठत, बैठत, रत-कर्मन।
आत्म-दृष्टि से यहि भव माहीं,
करत कबहुँ ज्ञानी कछु नाहीं।
तातें तिनहिं न बँध संसारा,
कुण्ठित उपल यथा असि-धारा।

दोहा —*उपादेय लहि जो सुखी, दुखी पाय जो हेय,*
तेहि हित बध, न तासु हित, लीलहि जेहि कर ध्येय। १८७

भये बिना मनुजत्व-विनाशा,
मुक्त माहिं ईशत्व-विकासा।
अछतहु देह सो होत विदेहा,
भव-लीला उद्देशहु येहा।
जो अव्यक्त, अगुण, बिनु शीला,
करि सो सकत मुनीश! न लीला।
जीवात्मा मम माया-चेरा,
पूर्ण न कला-यन्त्र पर-प्रेरा।
मुक्तहि केरि केलि स्वच्छंदा,
लहहुँ ताहि ते लीलानंदा!
मणि-प्रदीप सम सो यहि लोका,
विषय-धूम-विरहित आलोका।

यहि समस्त भव-नाटक माहीं,
तेहिते श्रेष्ठ कोउ कहुँ नाहीं।
मम कामना-पूर्ति साकारा,
मूर्ति सो मम, महि मम अवतारा।

दोहा :— *सोइ भव-नाट्य-रहस्य सब, सम्यक मुनिवर! जान,*
निज इच्छा ते ताहि महँ, करत योग निज दान। १९८

व्यर्थहि सो मुनीश! मम सुमिरन,
जो न सिखावत मोर अनुकरण।
ज्ञानहु सो यथार्थ नहिं होई,
प्रकटत नहिं शुभ कर्मन जोई।
प्रिय मोहिं सोइ ज्ञानी मुनिनायक!
जो मम सम भव-श्रेय-विधायक।
प्रथम प्रकृति जो अवश करावा,
अब तेहि करि सो आनँद पावा।
पूर्व अनर्थ ताहि जो भासा,
सोइ सार्थ लहि ज्ञान-प्रकाशा।
कटु कर्तव्य पूर्व जेहि जाना,
अब सो मुदमय अमृत-पाना।
मगल-मयी वृत्ति तेहि केरी,
प्रकृतिहु तासु अनुचरी, चेरी।
ईशहि-सम सो भव-अधिराजू,
ईश-समान करत भव-काजू।

दोहा :— *निज समान-धर्मा गनहुँ, मैं अस भक्त मुनीश!*
होत ईश ते मैं मनुज, भक्त मनुज ते ईश! १९९

वाणी यह पुराण जो भाषी—
एक-रूप वैकुण्ठ-निवासी,
सबहि चतुर्भुज वपु अभिरामा,
सबहि पीत पटधर, घनश्यामा,
नाहिं कल्पनहि सो मुनिरायी!
होत जो मम सम सोइ तहँ जायी।

निवसत लहि सब पूर्ण विकासा,
पै नहिं तहँहु बहुत्व-विनाशा।
चहत न नासन भक्त विभक्तहिं,
चीन्हत तेहि महँ मोहिं अविभक्तहिं।
जब महि निखिल जीव-समुदायी,
लेहै दिव्य दृष्टि यह पायी,
सर्व-हितहि जब निज हित जाना,
तबहिं वैर-विग्रह-अवसाना।
होइहैं तब नर प्रकृति-अधीश्वर,
धरणिहु यह वैकुण्ठ मुनीश्वर!

दोहा — *लीला-उद्देशहु यहहि, अवतारहु यहि काज,*
होय मही मम धाम सम, मोहि सम मनुज-समाज। २००

प्रथम भारतहि महँ मुनिरायी।
दिव्य दृष्टि मम भक्तन पायी।
जो कछु अनत सो भारत माहीं,
जो नहिं यहाँ, कतहुँ सो नाहीं।
यह समस्त संसृति कर सारा,
वैकुण्ठहि सम मोहिं पियारा।
ज्ञान आजु जो मैं मुख भाखा,
यहि महि-पृष्ठ प्रकृति लिखि राखा।
जदपि अशेष विविधता-धामा,
देश अखण्ड एकत्व अभिरामा।
यहँ एकत्व भिन्नता-अन्तर,
सकत निरखि मम भक्त निरंतर।
वारिधि ते हिमाद्रि पर्यन्ता,
वर्ण जाति जे बसत अनंता,
तिन सब कहँ एकहि जेहि जाना,
तेहि सम को उदार, मतिमाना!

। — *जिन बहु रूपन माहि ये, पूजत निज भगवान,*
तिनसब महँ जो मोहि लखत, भक्त को मम तस

जे अनुदार हृदय, अति दीना,
सदा विभक्तहि महँ ते लीना।
ते यदुवंशिन सदृश अभागी,
कुलहि-मात्र भारत तिन लागी।
अन्यहु कछुक अहंकृति-दासा,
चहत करन विविधत्व-विनाशा।
जरासंध-सम रक्त-पियासे,
नाना राज्यवश जेहि नासे।
दोउ भारत-विकास-पथ बाधा,
नासि दुहुन मैं गहि-हित साधा।
उद्धव यदुकुल-नाश-हताशा,
कहत आजु मैं हरि-कुल नासा।
मम मत, समदर्शी मति जिनकी,
सकल जे बहु महँ एक विलोकी,
हरि-वंशी तेइ भारतवासी—
नृपति, प्रजा अथवा संन्यासी।

दोहा :—*हरिहि सदृश अस हरि-कुलहु, अविनाशी मुनिनाथ!*
युग-युग तासु विकास नव, युग-युग मैं तेहि साथ।" २०२
भये मौन प्रभु कहि वचन, निखिल भुवन-परित्राण,
खोले उत मैत्रेय दृग, मूँदे इत भगवान। २०३

सोरठा :—*छायी ज्योति अपार, धरा-गगन एकहि भये,*
हरि जन-भय, भू-भार, स्वर्गारोहण कीन्ह प्रभु।
भयेउ व्योम जय-नाद, भयी अमरतरु-सुमन झरि,
भूतल विरह-विषाद, मिलन-वाद्य सुरपुर बजे।
अद्भुत हरि-अवतार, अद्भुत तिमि आरोहणहु,
अद्भुत चरित अपार, सकेउ बखानि अशेष को?
तेहि जो कला-अतीत, सकति बाँधि नहि कवि-कला,
वाणिहि करत पुनीत, सुमिरि काव्य-मिस तेहि सुकवि।
अगणित वाद-विवाद, विविध ज्ञान-विज्ञान महि,
मिटत न भव-अवसाद, प्रभु-दर्शित पथ बिनु गहे।